श्रीराम चरित

(उत्तर खण्ड)

- श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्रीराम-चरित

(उत्तर खण्ड)

लेखक

सुदर्शन सिंह 'चक्र'

श्रीराम चरित—उत्तर खण्ड

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	पृ. सं.	क्र. सं.	पृ. सं.
१. अपनी बात		२१. वानरराज सुग्रीव	१०६
२. उपक्रम	१	२२. ऋष्यमूक-निवास	१०८
३. सूर्पणखा	६	२३. पवन-पुत्रकी सावधानी	११०
४. खर-दूषण-दलन	१२	२४. रोष-नाट्य	११२
५. लंकामें खलबली	१८	२५. वानर-प्रेषण	११८
६. दशग्रीवकी दुरभिसन्धि	२२	२६. सीतान्वेषण	१२४
७. सीता-हरण	३०	२७. सम्पाती-संवाद	१३२
८. जटायुका आत्मोसर्ग	३८	२८. जाम्बवानकी प्रेरणा	१३०
९ अशोक वाटिका	४२	२९. मार्गके विघ्न	१४०
१०. वियोग-विलाप	४६	३०. सुबेल शिखरपर	१४८
११. जटायुकी अन्त्येष्टि	५०	३१. अन्वेषण	१५४
१२. कवन्ध-मोक्ष	५६	३२. विभीषण-मिलन	१६०
१३. शवरीके बेर	६२	३३. वैदेही-दर्शन	१६४
१४. पम्पासरोवर	७४	३४. वाटिका-विध्वन्स	१८४
१५. हनुमान-मिलन	७६	३५. दशग्रीवके सम्मुख	१९०
१६. सुग्रीव-मैत्री	८०	३६. लंका-दहन	१९६
१७. सीताजीके वस्त्राभरण	८२	३७. प्रत्यावर्तन	२०२
१८. सुग्रीवकी कथा	८४	३८. सम्वाद-निवेदन	२०८
१९. बल-परीक्षण	९०	३९. विजय-यात्रा	२१४
२०. बालि-वध	९६	४०. दशग्रीवका दर्प	२१८

क्र. सं.	पृ. सं.
४१. विभीषण-शरणागति	२२८
४२. सागरपर रोष	२३४
४३. सेतु बन्ध	२४०
४४. रामेश्वर-स्थापन	२४६
४५. सुबेल-शिविर	२५४
४६. अंगदका दौत्य	२६२
४७. युद्धारम्भ	२६८
४८. मायावी मेघनाद	२७४
४९. कुम्भकर्ण-कदन	२७८
५०. लक्ष्मण-शक्ति	२९२
५१. सञ्जीवनी-आनयन	२९६
५२. मेघनाद-वध	३०६
५३. प्रमिला-सती	३१६
५४. अहिरावण	३२२
५५. शक्ति-पूजन	३२८
५६. रावण-युद्ध	३३२
५७. अशोकवाटिकामें	३३८
५८. रावण-वध	३४४
५९. रावणोपदेश	३५२
६०. श्रीराम-स्तवन	३५८
६१. रावणकी अन्त्येष्टि	३६२
६२. विभीषणका अभिषेक	३६६
६३. वैदेहीकी विपत्ति-विदा	३७०
६४. उपसंहार	३७८
६५. पुष्पकारूढ़ राम	३८२
६६. किष्किन्धामें	३८८
६७. प्रयाग पहुँचे	३९४
६८. आतुर अयोध्या	३९८
६९. आतुर भरत	४०४
७० हनुमान आये	४१०
७१ भरत-मिलाप	४१६
७२ श्रुतकीर्तिका संग्रहालय	४२२
७३. राज्याभिषेक	४२६
७४. पुरस्कार-वितरण	४३२
७५. वानरोंकी विदाई	४३८
७६. विभीषणकी विदाई	४४२
७७. विभीषण-विमोचन	४४६
७८. पुनः पदार्पण	४५२
७९. हनुमदोपदेश	४५६
८०. चुटकी-सेवा	४६२
८१. पवनपुत्रको प्यारदान	४६८
८२. अयोध्याके कथावाचक	४७२
८३. धर्मारण्य-यात्रा	४७८
८४. माताओंका परलोक प्रस्थान	४८४
८५. दिनचर्या	४९०
८६. गया श्राद्ध	४९६
८७. सम्बन्धियोंका सत्कार	५०२
८८. महायाजी	५०६
८९. श्रीजानकीका दोहद	५१२
९०. अपवाद-श्रवण	५१६
९१. सीता-त्याग	५२०
९२. अयोध्याकी अवस्था	५२६
९३. वैदेही वाल्मीकि आश्रममें	५३२
९४. पशु-पक्षियोंको भी न्याय	५३८
९५. शत्रुघ्नकी लवण-वधार्थ यात्रा	५४४
९६. लव-कुश-जन्म	५५०
९७. लवण-वध	५५२
९८. शत्रुघ्न लौटे	५५८

क्र. सं.	पृ. सं.	क्र. सं.	पृ. सं.
अनुजोंके पुत्र	५६२	११३. लव-कुश युद्ध	६४४
१०० लव-कुश-प्रशिक्षण		११४. बन्दी पवन-पुत्र	६५२
१०१ शत्रुघ्नका पुत्रोंको अभिषेक	५७२	११५. लव-कुशका रामायण-गान	६५८
१०२ शम्बूक-वध	५७६	११६. भूमिजाका भू-प्रवेश	६६४
१०३ अश्वमेधकी प्रेरणा	५८२	११७. अश्वमेध-पूर्ण	६७०
१०४ स्वर्ण-सीता	५८६	११८. कालपुरुष पधारे	६७४
१०५. अश्वमेधका आरम्भ	५९०	११९. लक्ष्मण-त्याग	६७८
१०६. सुबाहु-शापोद्धार	५९६	१२०. पुत्रोंका अभिषेक	६८२
१०७. सत्यवानका सर्वस्व समर्पण	६०४	१२१. आञ्जनेयको आदेश	६८६
१०८. विद्युन्माली-वध	६०८	१२२. लीला-संवरण	६९०
१०९. आरण्यक मुनि	६१४	१२३. कुशका पुनरागमन	६९६
११०. शिव-भक्तसे संग्राम	६२०	१२४. नित्य अयोध्या	७०२
१११. अश्व-गात्र स्तम्भ	६२८	१२५. उपसंहार	७०८
११२. राजा सुरथसे युद्ध	६३२		

●●●

श्रीराम-चरित

(उत्तर खण्ड)

मंगलाचरण

वन्दौं सुपुण्यमयी स्वच्छ सलिला सरयू नित्य,
वन्दौं अनादि परम अविचल अयोध्या धाम ।
वन्दौं अवधवासी सकल सचराचर सदा,
वन्दौं राघवेन्द्र पदपंकज-प्राप्त पुण्यकाम ।।
वन्दौं भानुवंश भव्य भुवन यशोज्ज्वल शुभ्र,
वन्दौं कैकेयी-सुमित्रा-कौशल्या-पद ललाम ।
वन्दौं माण्डवी, उर्मिला, श्रुतिकीर्ति चरण,
वन्दौं जगज्जननी श्रीसीता पद पुण्य-धाम ।।
वन्दौं भरत-भरताग्रज, लक्ष्मणानुज शुचि,
वन्दौं श्रीराम नाम, राघवराम सीताराम ।
राजाराम, रघुपतिराम, सीताराम-सीताराम ।।

अपनी बात

नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ।।
कलपभेद हरिचरित सुहाए । भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ।।

मानस, बाल० ३२। ६-७

श्रीरामचरितमानसकी यह अमर पंक्ति ध्यानमें रहनी चाहिये । किसी भी चरित-लेखकके लिए सम्भव नहीं है कि ऐसे कल्पभेदसे हुए चरितोंको एक ही वर्णनमें समन्वित कर ले । जैसे केवट-प्रसंग कहाँ आवे, परशुरामजी कहाँ मिलें, धनुर्भंग राजाओंके एक साथ हुए प्रयत्नके मध्य हो अथवा उनके विफल लौटनेके पश्चात्- ये वर्णन निर्णयकी अपेक्षा करते हैं । मैंने इनके निर्णयका आधार अध्यात्म रामायण अथवा वाल्मीकीयको बनाया है, वैसे ही अन्य रामायणोंमें वर्णित सभी चरितोंको स्थान अथवा कालके भेदसे कहीं ले लिया जाय, यह सम्भव नहीं हुआ ।

श्रीरामोपासनाकी श्रृंगारिक शाखा अर्थात् श्रीरामकी मधुर भावसे उपासनाके जो आधार-ग्रन्थ हैं, उनमें वर्णित चरितोंका समन्वय वाल्मीकिके वर्णनसे किसी प्रकार हो नहीं पाता था । अतः ऐसे वर्णन मुझे छोड़ ही देने पड़े हैं ।

यहाँ भुशुण्डि रामायणका नामोल्लेख उपयुक्त होगा । इस ग्रन्थमें श्रीरामचरितको जहाँ एक ओर वज्रयानकी तान्त्रिक-साधनासे समन्वित किया गया है, वहीं दूसरी ओर श्रीकृष्णकी गोकुल-वृन्दावनकी लीलाओंसे भी एक किया गया है । महाराज दशरथ रावणके भयसे अपने चारों कुमारोंको गुप्त रूपसे सरयू पार गोपोंके मध्य रहने भेज देते हैं और वहाँ प्रायः वे सब चरित होते हैं, असुरवध, गिरिधारण, रास आदि, जो श्रीकृष्ण-चरितमें हैं । ऐसे वर्णन कल्पभेदसे सत्य हो सकते हैं, किन्तु उन्हें इस चरितमें लेना किसी प्रकार मेरे लिए सम्भव नहीं हुआ ।

यहीं एक बात कह देनी है कि श्रीराम-चरितका आध्यात्मिक अर्थ

अनेकोंने किया है । गोस्वामी तुलसीदासजीने भी आध्यात्मिक अर्थका संकेत किया है । सीता-हरण, सीता-शोध, रावण-वध आध्यात्मिक अर्थके प्रमुख आधार बनते हैं । इस अर्थकी ओर अंगुल्या निर्देश करके भी मैं गोस्वामी तुलसीदासजीकी ही भाँति अयोध्या-नरेश महाराज दशरथके पुत्र श्रीराम और उनके चरितका चिन्तक-लेखक हूँ ।

श्रीराम मेरे कुल-पुरुष हैं । मैं कहता हूँ—

राम-कृष्णमें भेद नहीं है । जहाँ भेद है— वेद नहीं है ॥
पूर्वज अपने राम प्रणम्य । सहज कृष्णका सौहृद गम्य ॥

ऐसी स्थितिमें जो रामकी ऐतिहासिकता ही अस्वीकार करके उनमें चरितको केवल आन्तरिक संघर्ष कहते हैं, ऐसे महाचिन्तकोंको प्रणाम ही किया जा सकता है । मेरे लिए तो श्रीरामचरित लेखन, अन्तःकरण-शुद्धिका सर्वश्रेष्ठ साधन, भगवच्चिन्तन ही नहीं, पितृऋण-परिशोधका भी प्रयास है ।

श्रीरामचरित अनन्त है । अनेक कल्पोंकी कथाओंका वर्णन विभिन्न ग्रन्थोंमें है । मूल मन्त्र संहिता (वेदों) में भी श्रीरामचरित्रका सूत्र प्राप्त होता है । उपनिषदोंमें, पुराणोंमें, महाभारतमें, उपपुराणोंमें, तन्त्र-ग्रन्थोंमें, काव्य-साहित्यमें राम-कथाका विपुल विस्तार है । रामायणोंमें तो रामचरित है ही और इन रामायणोंकी संख्या भी थोड़ी नहीं है ।

केवल संस्कृत वाङ्मयकी बात क्यों की जाय । हिन्दी, बंगला, उत्कल, असमिया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, नैपाली तथा उर्दूमें भी श्रीराम-कथा है । राम-कथा तो भारतसे बाहर यवद्वीप (जावा)में, कम्बोडिया आदिमें भी है और इन भाषाओंमें जो रामचरित है—एक-एक भाषामें अनेक-अनेक रामचरित हैं— उनमें केवल अनुवाद है, मौलिकता नहीं है, यह बात कोई अत्यन्त अज्ञ ही कहेगा ।

हिन्दीमें गोस्वामी तुलसीदासजीका श्रीरामचरित-मानस अब विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ होगया है; किन्तु गोस्वामी तुलसीदासजीके ही रामकथाकाव्य ग्रन्थ दूसरे भी तो हैं । गीतावली, कवितावली, छप्पय रामायणादिमें अनेक कथाएँ श्रीरामचरितमानससे भिन्न ढंगकी हैं । यही बात श्रीरामकथा सम्बन्धी संस्कृत

तथा दूसरी भाषाओंके ग्रन्थोंके सम्बन्धमें है । उसमें अनेक कथाएँ सर्वथा दूसरे ग्रन्थोंसे भिन्न हैं । मौलिक हैं । ऐसी हैं कि दूसरे ग्रन्थोंसे उनका कोई मेल बैठाया नहीं जा सकता ।

सृष्टि अनन्त है । कल्प अनन्त हैं । प्रत्येक कल्पमें श्रीरामका अवतार होता है । अतः अमुक घटना कल्पना है, कविकी उद्भावना है, किसी कल्पका सत्य नहीं है, ऐसा कहनेका साहस नहीं किया जा सकता । दूसरी बात यह कि जैसे अग्निमें पड़ी प्रत्येक लकड़ी अग्नि बन जाती है, वैसे ही चिन्मय भगवान्‌से सम्बद्ध होकर प्रत्येक कल्पना सत्य होजाती है । उनमें लगी कल्पनाका नाम ही भावना है । वे उस भावनाको स्वीकार करके सत्य बनाते चलते हैं ।

श्रीराम-कथाके इस अपार विस्तारको जानलेना भी मेरे लिए सम्भव नहीं था । मैंने बहुत दूरसे इस महासमुद्रका दर्शन—सम्भवतः स्वप्न-दर्शन किया—है और अपने साहसके अभावमें स्नानके स्थानपर हाथ जोड़ लिया है ।

किसीके लिए भी सम्भव नहीं है कि सम्पूर्ण वाङ्मय वर्णित श्रीराम-चरितकी विविध कथाओंका पूरा संकलन कर सके । उनमें इतनी विविधता, परस्पर विरुद्धता भी है कि उनमें एकरूपता लाना तो शक्य ही नहीं है । वे एक ही कल्पकी घटनाएँ तो नहीं है कि उनमें एकरूपता आ सके । आप कभी पूर्व चलते हैं, कभी पश्चिम, उत्तर या दक्षिण । आपके चलनेका वर्णन करना हो तो मैं आपको किधर चलनेवाला कहूँ ? इसी प्रकार सर्वतन्त्र स्वतन्त्र लीलामय किसी नियममें बँधे नही हैं । वे किसी कल्पमें कोई बात एक प्रकारसे करते हैं और किसी कल्पमें दूसरे प्रकारसे । कोई भी वर्णन तो एक ही ढंगसे करेगा ।

मेरे वर्णनमें भी भूलें होंगी—केवल इतना कह सकता हूँ कि वे जान बूझकर किसी पूर्वाग्रहसे नहीं की गयी हैं, क्योंकि मैंने किसी अपने मतकी स्थापनाके लिए यह चरित नहीं लिखा है । मैंने इसे अपने लिए लिखा है—अपने अन्तरमें श्रीरामचरितका चिन्तन चले, इसलिए लिखा है । अतः इसमें मेरी भावनाएँ तो हैं; किन्तु भूलें मेरे अज्ञानके कारण हुई हैं । उन्हें मैं सुधारनेको सदा प्रस्तुत रहा हूँ और अब भी हूँ । सुधीजन जो सुझाव देंगे, उन्हें यथासम्भव ग्रहण करनेका प्रयास अगले संस्करणमें करनेकी सच्ची इच्छा है ।

भूलें तो मेरे प्रमादवश बहुत होतीं; किन्तु सहज सुहृद श्रीराम-कथाके देशके माने हुए सम्मानित विद्वान् वेदान्तभूषण पण्डित श्रीराम कुमारदासजी रामायणी, साहित्यरत्न (मणि पर्वत, अयोध्या)ने समयपर सुझाव देकर बहुत-सी त्रुटियाँ सुधार दीं। मैं अपनी अयोग्यताके कारण उनके सभी सुझाव ग्रहण नहीं कर सका, यह मेरी त्रुटि है और वे अपने सौजन्य, स्नेहके कारण सदासे मेरी त्रुटियोंको क्षमा करते आये हैं। विश्वास है, इस बार भी क्षमा कर देंगे।

उनका स्नेहाग्रह—वे अपने श्रीराम ग्रन्थागारमें मेरी पुस्तकोंकी सभी पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित कर देना चाहते हैं; किन्तु अपने इस अस्त-व्यस्त जीवन-क्रमको देखते कितनी पाण्डुलिपियाँ दे सकूंगा, कह नहीं सकता हूँ।

भाई श्रीजयदयाल डालमियाने प्रत्येक अध्यायको छपनेसे पूर्व पढ़ा—इतने ध्यानपूर्वक पढ़ा कि अक्षर-मात्राओंकी त्रुटियाँ भी सुधारीं। पूछ-पूछकर सुधारीं। जहाँ कोई बड़ी त्रुटि दीखी—उसे ग्रन्थोंमें ढूँढ़ा और मुझे सुझाया। उनका यह श्रम भगवत्कथाके प्रति स्वाभाविक आकर्षणके कारण है। मैं उन्हें भाई कहता हूँ, अतः आभार या धन्यवादकी बात नहीं उठती।

लिखा मैंने नहीं—केवल मैंने प्रमादवश भूलें कीं सम्यक् अवधान न होनेसे, अपनी स्मृति-योग्यताका अडंगा मध्य-मध्यमें लगा देनेसे। कन्हाईकी प्रेरणासे पृथक पड़कर मैंने भूलें की हैं। सुहृदोंने सुधारनेका प्रयत्न किया है। अब भी बहुत-सी रह गयी हो सकती हैं, उन्हें आप क्षमा कर दें। सूचना देंगे तो सुधारनेका भी सम्भव प्रयास किया जायगा।

मुझे इसके लिखनेमें लाभ हुआ—अकल्पनीय लाभ हुआ। इतने दिनों तक श्रीरामचरितका चिन्तन चलता रहा। आपको भी कुछ लाभ हो, कुछ भगवत्स्मृति हो, भावना जागे और उसका पुण्य-प्रसाद मुझे भी देना स्वीकार हो तो आशीर्वाद दें कि अन्तिम-श्वास तक श्रीराम या श्यामका चिन्तन करता रह सकूँ। इनके चारु-चरितोंमें चित्त लगा रहे।

ज्येष्ठ पूर्णिमा सं० २०३३ वि० विनम्र—

(१२ जून १९७६ ई) सुदर्शनसिंह

योग-निकेतन, उत्तरकाशी

उपक्रम

आपके मनमें कोई विचार मूर्त हुए बिना, वह क्या जीवनमें किसी कार्यके रूपमें आ सकता है ? जीव अज्ञानी है, अतः अनजानमें उससे कुछ हो जाना सम्भव है; किन्तु सृष्टिकर्ता अज्ञानी नहीं है । अतः सृष्टिमें ऐसा कोई पदार्थ या क्रिया सम्भव नहीं जो चेतन सृष्टिकर्ताके मानसमें पहिले आये बिना मूर्त हो जाय ।

मानसमें आये विचार आध्यात्मिक हैं । बाह्य जगतमें व्यक्त पदार्थ, क्रिया आधिभौतिक हैं । इन दोनोंके मध्य अधिदेव है । जैसे आपका शरीर अधिभूत है और आप स्वयं-जीव अध्यात्म हैं, किन्तु जीव जिस मन, बुद्धि, चित्त, अहंको लेकर शरीरको चलाता है, वह अन्तःकरण अर्थात् पूरा सूक्ष्म शरीर अधिदेव है । इसी प्रकार सृष्टिमें जितने कार्य या पदार्थ व्यक्त होते हैं, उनमें जो उनका सञ्चालक चेतन है, उसे अधिदेव कहते हैं ।

मनमें जो भाव, मूर्ति आ सकती है, वह बाह्य जगतमें भी मूर्त हो सकती है । बाह्य जगतमें जो मूर्त है, उसका अधिदेव है और अध्यात्म भी है । बिना अध्यात्मके अधिभूत सम्भव ही नहीं है । अतः आप जो भी घटना या पदार्थ देखते सुनते-जानते हैं, वह या तो काल्पनिक है और यदि तथ्य है तो उसका आध्यात्मिक आधार भी है ।

पुराणमें वर्णित घटनाओंकी आध्यात्मिक व्याख्या ही इसलिए सम्भव है; क्योंकि वे काल्पनिक नहीं हैं । उनका आधिभौतिक रूप भी ऐतिहासिक सत्य है । जब कोई कहता है—'यह वर्णन केवल मनुष्यकी आन्तरिक सत्-असत् भावनाओंका संघर्ष-वर्णन है ।' तब वह सृष्टिके इस तथ्यसे ही दूर रहता है कि जो आन्तरिक तथ्य है, वह इतिहासका सत्य बन चुका है अथवा बनने वाला है ।

यह बात सृष्टिकी समस्त घटनाओं, पदार्थोंके सम्बन्धमें कही गयी; किन्तु ईश्वर तो सत्यसंकल्प है । उस नित्य-चिन्मयका संकल्प ही तो यह सृष्टि है । अतः भगवदीय अवतार कभी किसी कालमें हुआ, ऐसा नहीं है अवतार-

कालमें जो चरित हुए, वे नित्य हैं। वे सब लीलाएँ अब भी वैसे ही हैं। अवतार-कालमें उनका आविर्भाव स्थूल जगतमें होता है और फिर तिरोभाव रहता है।

श्रीरामचरितकी समस्त लीलाओंका इस समय तिरोभाव मात्र है। अब भी भाव-प्रवण भक्तोंके लिए किसी भी लीलाका आविर्भाव सम्भव है। समय-समयपर होता रहता है।

श्रीरामचरितकी आध्यात्मिक व्याख्या सम्भव ही इसलिए है; क्योंकि उसका ऐतिहासिक रूप भी तथ्य है—इतिहासका मुख्य तथ्य है। यदि वह इतिहासका मुख्य तथ्य न हो तो मानस-जगतका भी मुख्य सत्य नहीं हो सकता था !

श्रीरामचरितकी घटनाओंमें सीता-हरणसे लेकर रावण-वध तथा सीताकी पुनरुपलब्धि तककी घटनाओंकी आध्यात्मिक व्याख्या बहुत लोगोंने की है, अब भी की जाती है। जीवात्मा परमात्मासे अभिन्न है। उसकी नित्य शक्ति—नित्य स्वभावभूता शक्ति सीता अर्थात् शान्ति। यह शान्ति अज्ञानके कारण ही अपहृत है। जीवनमें वैराग्य आवे, तब शान्तिका पता लगे और अज्ञानका नाश हो, तब शान्तिकी उपलब्धि हो। यही आध्यात्मिक व्याख्याका मुख्य रूप है। इस व्याख्याकी ओर संकेत गोस्वामी तुलसीदासजीने भी गीतावलीमें किया है।

'मोह दसमौलि तद्भ्रात अहंकार

और

'प्रबल वैराग्य दारुण प्रभञ्जन तनय ॥'

श्रीरामचरितकी यह व्याख्या सत्य होते हुए भी मुझे सदा अनावश्यक लगी है; क्योंकि जो आध्यात्मिक साधन बहुत-से ग्रन्थोंमें स्पष्ट वर्णित हैं, उन्हींको कथाके द्वारा निकालनेका कष्ट क्यों उठाया जाता है ? जो सरल-सुगम रीतिसे उपलब्ध है, उसे क्लिष्ट कल्पनाके द्वारा व्याख्यायित करनेकी आवश्यकता ? लेकिन लोकरुचि अद्भुत है। लोगोंको क्लिष्ट कल्पना रहस्य-निरूपण प्रिय लगता है, इस ओर आकर्षण होता है।

जहाँ तक मेरी बात है, मेरी अपनी सत्ता ही श्रीरामके ऐतिहासिक तथ्यका प्रमाण है । वे मर्यादापुरुषोत्तम पृथ्वीपर प्रकट न हुए होते तो उनके वंशका यह बालक ही कहाँसे आता । अतः मेरी रुचि किसी आध्यात्मिक रूपकके वर्णनमें नहीं है । मैं जिस-जिस रामचरितका वर्णन कर रहा हूँ, वह मेरे मनमें सत्य है । इस पृथ्वीपर घटित सत्य है और केवल सत्यघटना मात्र नहीं है । ऐसा सत्य है कि अब भी जिसके स्मरणमें उसका कोई अंश भी आ जाता है, उसके अन्तःकरणके समस्त कल्मषोंको नष्ट करके उसे आलोकित कर देता है । उसे शाश्वत चित्प्रकाशसे परिपूरित कर देता है ।

इस परम सत्य, परम पावन सत्यका ही मेरे साथ आप भी चिन्तन करें । आध्यात्मिक व्याख्याओंके उत्कट जञ्जालको एक ओर पटककर पञ्चवटीकी पर्णकुटीमें भगवती भूमिजाके साथ विराजमान जटामुकुटी, वल्कलवसन, कृष्णमृगचर्माम्बरोत्तरीय, धनुषस्कन्ध, पद्मपलाशलोचन इन्दीवरसुन्दर श्रीरामका चिन्तन करें ।

'देवि ! इस धरापर न मैं अकारण आया हूँ और न तुम आयी हो ।' एक दिन एकान्तमें जब श्रीलक्ष्मण समीपके वनमें फल, कन्द एकत्र करने गये थे, श्रीराम अपनी अभिन्न सहचरीसे बोले, 'हम दोनोंके अवतरणका मुख्य प्रयोजन तो पूरा हो ही रहा है । यह व्यक्त रूप हमारे चरितोंका चिन्तन प्राणियोंको पवित्र करके परमधामका अधिकारी बनाता रहेगा; किन्तु सुरोंका संकट भी दूर करना है । लंकामें अपने ही जब प्रशप्त होकर राक्षस बने बैठे हैं, उन्हें अपनाना है । उनके मध्य अपने इस रूपमें तुम रहो, यह उचित नहीं है और रहो तो कोई लीला सम्भव नहीं है । तुम्हारी साक्षात् सन्निधिमें आसुर भाव दो क्षण भी नहीं टिकेंगे । तुम्हारी अवमानना तुम्हारी ऐश्वर्य शक्ति ही सहन नहीं करेगी । असुर-आसुर भाव तमसकी गाढ़ता ही तो है । अतः तुम अपना कोई छाया-रूप प्रकट करो तो वह तुम्हारे उन शिशुओंके मध्य रहकर उनके उद्धारका माध्यम बने ।'

'आर्य-पुत्र लीलाभिनय करना चाहते हैं तो मुझे क्या आपत्ति है ।' श्रीजनक-नन्दिनीने सस्मित कहा । सहसा उनके शरीरकी छाया मूर्तिमान हो गयी । ठीक ऐसी मूर्ति कि उसमें किञ्चित् भी अन्तर पहिचानना सम्भव नहीं

था—'अब आप इसे अपने वामांगमें विराजमान करें ।'

'इसलिए यह सम्भव है; क्योंकि इसकी स्वयं कोई सत्ता नहीं है ।' श्रीरामने उस छाया-मूर्तिको देखा—'यह तुम्हारी छाया तुमसे अभिन्न है ।'

श्रीजनकनन्दिनी उसी समय वहाँ स्थित गार्हस्पत्याग्निमें, जिस अग्निमें श्रीराम नित्य हवन करते थे, जिसकी रक्षाकी सतत सावधानी अब तक श्रीजानकीने रखी थी, उसमें प्रविष्ट होगयीं ।१

इस प्रकाश दशग्रीव-दलनके प्रधान कार्यका उपक्रम उस दिन उस पर्णशालामें होगया ।

●●●

---

१. वैदिक कथा ही यह है कि यज्ञोपवीत संस्कारके पश्चात् बालक नित्य हवन प्रारम्भ करता था । विवाहके समय उसे गार्हस्पत्याग्नि मिलती थी । इस अग्निकी रक्षा पत्नीका कर्तव्य था । इसका विसर्जन संन्यासके समय या मरणोपरान्त होता था । श्रीराम-लक्ष्मण संकट-कालकी विधिके अनुसार अपनी अग्नियाँ अयोध्यामें ब्राह्मणोंके पास छोड़ आये थे; किन्तु वनमें नित्य हवन करते थे । जहाँ स्थायी रहते थे, अग्नि-रक्षा भी होती थी ।

सूर्पणखा

अपनी दिग्विजय- यात्रा में दुर्दम दशग्रीवने देवता-दानव किसी को अछूता नहीं छोड़ा था। उसने देवता, गंधर्व, यक्ष, किन्नर, किम्पुरूषोंपर विजय प्राप्त की तो वानर, नाग प्रभृति उपदेवताओं से भी संघर्ष किया और अधोलोकों में जाकर दानवदैत्यों से भी दो-दो हाथ किये। इसी विजय-यात्रा में जब वह दानवों से युद्ध कर रहा था, अपनी सगी, बहिन सूर्पणखा के पति विद्युज्जिह्न से उसका संघर्ष हो गया। विद्युज्जिह्न रावण के हाथों मारा गया। सर्पूणखा विधवा हो गयी।

विधवा, शोकार्त्ता बहिन जब रोती-चिल्लाती लंका पहुंची, रावण ने उसे शांत करने के लिए उसमय राष्ट्र प्रदेश की राज्यपालिका बना दिया, जो प्रदेश मयने अपनी पुत्री मन्दोदरी के दहेजमें दशग्रीव को दिया था। सूर्पणखा के साथ खर, दूषण तथा त्रिशिरा ये तीन राक्षस-सेनापति चौदह सहस्त्र राक्षस सेना के साथ नियुक्त किये। ये खर, दूषण, त्रिशिरा रावण के भाई—मातुल पुत्र थे और अत्यन्त पराक्रमी थे।

अब तो केवल लड़कियां ही नहीं, लड़के भी नख बढ़ाने लगे हैं। लेकिन वर्णन से लगता है कि सूर्पणखा नाम उसके नखों के कारण पड़ा होगा। उसकी अंगुलियां मोटी होंगी,अतः नख चौड़े होंगे और बढ़ाये गये नखों का आकार सूर्प (सूप) के समान होगा।

अगस्त्याश्रम के आगेका पूरा दक्षिण-भारतको प्रदेश सूर्पणखा के ही प्रभुत्व में था। दण्डकारण्य भी उसका अधिकृत प्रदेश ही था, किंतु जहां तक ऋषि मुनियों ने आश्रम बना लिये थे, वहां तक राक्षसों का उपद्रव उन तपस्वियों के तेज से बहुत कुछ सीमित हो गया था। इस प्रदेश में सबसे दक्षिण मतंगाश्रम था और किष्किन्धा के वानरेन्द्र बालि के द्वारा पराजित होकर तो रावण ने उसे अपना मित्र ही बना लिया था।

राक्षस दण्डकारण्य तक ही उत्पात नहीं करते थे, वे आगे शरभंग आश्रम केसमीप तक पहुंचते थे। वे निसर्ग क्रूर थे। घोर रजोगुणी थे। मांसभक्षी

थे और प्राणि-हत्या उनकी प्रिय क्रीड़ा थी । वे प्रचण्ड तेजस्वी तपस्वियों से ही डरते थे । अवश्य ही चित्रकूटके अत्रि-आश्रम के दक्षिण-विराध और पंचवटी के दक्षिण कबन्धसे वे दूर रहते थे । ये दोनों महा दैत्य उनके लिए भी दारुण थे ।

पंचवटी में श्रीराम ने निवास किया, यह समाचार राक्षसों से छिपा नहीं था, किंतु महातेजस्वी अगस्त्यने भी जिनका सत्कार किया, विराधको जिन्होंने मार दिया, उनके समीप जानेका साहस कोई सामान्य राक्षस नहीं कर सकता था ।

खर-दूषण त्रिशिराने भी उपेक्षा की—'वे धनुर्धर होकर भी कोई उत्पात तो करते नहीं हैं । अपने प्रदेशमें दूसरे तपस्वियोंको भी तो हम सहन करते हैं । अकारण उनको उत्तेजित नहीं करना चाहिए ।'

खर-दूषण-त्रिशिरा सेनापति थे, किंतु सूर्पणखा तो उस प्रदेश की राज्यपालिका थी । उसे अपने प्रदेशका पता रखना चाहिये । उसके प्रशासित प्रदेश की पंचवटी में आकर जो दो पुरूष पर्णकुटी बनाकर बस गये हैं, उन्हें देख लेना उचित लगा उसे । वह अकेली वन में विचरण करने निकली । रावण की दुर्धर्ष बहिन को अपने ही प्रदेश में भय किसका ? स्वच्छन्द बिहारिणी राक्षसी किसी को साथ लेकर घूमने निकले तो उसे अपनी स्वतंत्रतापर अंकुश लगता नहीं लगेगा ?

इतना रूप ! इतना सन्दर्य मनुष्योंमें होता है ? दूरसे सूर्पणखाने श्रीराम तथा लक्ष्मणको देखा और देखती रह गयी । कल्पनासे परे जो असीम सौन्दर्य सिंधु है, उसकी रूप माधुरी ने एक काम-चारिणी राक्षसी को विमुग्ध बना दिया तो आश्चर्य क्या ।

सूर्पणखा कोई सती, इन्द्रिय-जयी तो थी नहीं । कोई श्रद्धालु देखे उस रूप-राशि को तो अपने को उसपर उत्सर्ग कर दे । कोई तत्तवज्ञ तापस देखे तो उसको अंतर में आसीन करके युग-युगान्त तक उसके पादारविन्दों की सेवा को उत्कण्ठित हो, किंतु इन्द्रियराम विषय लोलुप जब रूप राशि देखेगा तो उसे अपना उपभोग्य ही तो बनाना चाहेगा । वासना-विवश राक्षसी, उसकी वासना ही तो भड़क सकती थी ।

'ये परम-सुंदर !' राक्षसों की वासना श्रीरामके समीप आसीना सीता को देखकर भी देखने नहीं देती थी । उसे तो दीखता था-ये दोनों वृहद्‌बाहु, विशाल वक्ष, तरूण !

वह मायाविनी थी । राक्षस उपदेवता हैं । उनमें से प्रत्येकको जन्म-से इच्छानुसार रूप धारणकी सिद्धि प्राप्त होती है । सूर्पणखाके मनमें नारीका जो सुंदरतम रूप आ सकता था,वैसा रूप धारण किया उसने । अपनी समझसे वह ..भुवनकी सर्वश्रेष्ठ सुंदरी बनी थी ।

सबके चिन्तनका स्तर होता है । सौन्दर्यकी परिभाषा भी सबकी एक नहीं है । अपने देश, काल, सभ्यताके अनुसार सौन्दर्यकी परिभाषा पृथक-पृथक होती है । सूर्पणखा को कैसे पता लगता कि अयोध्या के लोगोंकी सौन्दर्यानुभति कैसी है । उसकी अपने परिवारकी-राक्षसोंकी सौन्दर्यपरिभाषा ही उसके मनमें आ सकती थी । उसीके अनुसार सर्वश्रेष्ठ रूप बनाया था उसने ।

सात्विक श्रृंगार में साज-सज्जा भी सात्विक होती है । मन्दिरकी कलामें कमल, वृषभ, स्वास्तिक चिंह ही मिलेंगे, मनुष्यका कंकाल,कपाल तो मिलनेसे रहा । मिले भी तो भैरव, भद्र काली जैसे मंदिरमें मिलेगा । सूर्पणखा कामातुरा थी । उसे संकल्पसे ही वस्त्राभूषण व्यक्त करने थे, किंतु उस समय उसका मानस सात्विक कला की कल्पना करनेकी स्थितिमें था !

विशाल सुपुष्ट शरीर, सबल कर-पद एवं मुखाकृति, अत्यन्त गौरवर्ण, अंग-अंग भारी रत्न-जटित आभूषणोंसे अलंकृत, अत्यन्त मूल्यवान रत्न खचित वस्त्र । सर्पणखा को स्मरण ही नहीं रहा कि वनके इस परिवेशमें इतनी साज-सज्जा चौंकानेवाली है । यह भी स्मरण नहीं रहा कि नारी के सौंदर्यमें शरीरका वर्ण, अंगराग, वस्त्राभरण ही मुख्य नहीं, सौकुमार्यका भी प्रधान स्थान है । उसके अनजानमें ही अन्तर्मनमें जो राक्षस कला निहित थी, आभरणों में, वस्त्रमें वह खुलकर व्यक्त हो गयी । उसे अपने आभरणों-वस्त्रके चित्रोंपर ध्यान देने का अवकाश ही कहां था ।

पूर्वाह्न कृत्य सम्पन्न करके सीताके साथ श्रीराम अपनी पर्णशालामें आकर बैठे ही थे कि सूर्पणखा आ गयी थी । वह गोदावरीके तटसे चरण-चिह्न देखती आयी थी मनोरमा नारी रूप धारण करके, आभूषणोंकी झंकार

करती, मटकती चपल कटाक्ष करके मुस्कराती वह श्रीरामको पर्णशालाके द्वारपर आयी ।

सिंह स्कन्ध, सुकुमार, कन्दर्प-शतोपम इन्दीवराभिराम श्रीरामके समीप पहुँचकर उसने कटाक्षपात पूर्वक पूछा- 'नवधन सुन्दर ! मनोहारी ! तुम कौन हो ? इस घोर अरण्यमें क्यों आये हो ?'

'सुन्दरी ! हम दोनों भाई अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश दशरथजीके पुत्र हैं । पिताकी आज्ञासे वनमें आये हैं । मेरा नाम राम है और मेरे छोटे भाईका नाम लक्ष्मण है । ये मेरी पत्नी सीता है ।' श्रीरामने भी सस्मित पूरा परिचय देकर सूर्पणखाके वस्त्राभरणको गम्भीर दृष्टिसे देखते पूछा- 'तुम कौन हो ? अरण्यमें एकाकिनी क्यों घूम रही हो ? तुम राक्षसी तो नहीं प्रतीत होती हो ।'

'तुम्हारा अनुमान अतथ्य नहीं है । मैं राक्षसी ही हूँ । मेरा नाम सूर्पणखा है । महामुनि विश्रवाका पुत्र लोकपाल कुबेरका भाई त्रिभुवनजयी रावण मेरा सगा भाई है । सदा सोते ही रहने वाला महाकाय कुम्भकर्ण और धर्मात्मा विभीषण, ये मेरे दो भाई है हैं । मैं इस दण्डकारण्यकी प्रशासिका हूँ । मेरे प्रसिद्ध भाई खर-दूषण और त्रिशिरा मेरे सेनापति हैं ।' सूर्पणखाने अपना परिचय छिपाना उचित नहीं समझा । उसे लगा कि ये चक्रवर्तीके कुमार हैं तो इन्हें सामान्य नारी स्वीकार हो ही नहीं सकती । अपने कुल, कुल-प्रभाव तथा ऐश्वर्यका पूरा परिचय दिया उसने- 'मैं कामरूपिणी हूँ । तुम जैसा चाहोगे, वैसा रूप धारण कर सकती हूँ ।'

'त्रिभुवनमें ऐसा कोई नहीं जो मुझे पानेकी इच्छा न करे; किन्तु मैंने सबका त्याग कर दिया है । तुम्हीं मेरे उपयुक्त पति हो और तुम्हारे उपयुक्त पत्नी मैं ही हूँ ।' अब उसने श्रीजानकीकी ओर संकेत किया- इस अत्यन्त दुर्बला-कुरूपा सीताके द्वारा तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? इस अल्पप्राणीकी ओर मत देखो । तुम्हें इसका और भाईका संकोच हो तो मैं दोनोंको खाये लेती हूँ । मुझे स्वीकार करके यहां के राज्य वैभव का भोग करो ।'

'तुम देखती ही हो कि मैं विवाहित हूं और पत्नी मेरे साथ हैं । हम आर्य जिसका पाणि-ग्रहण करते हैं, प्राण देकर भी उसकी रक्षा अपना कर्तव्य मानते हैं । तुम सपत्नी के साथ रहो, यह तुम्हारे गौरवके अनुरूप नहीं है ।'

श्रीरामने हंसकर यह कहा, किंतु स्पष्ट कर दिया कि सीताका उत्पीड़न वे सह नहीं सकेंगे । लक्ष्मणकी ओरसंकेत किया—' वे मेरे छोटे भाई भी युवा हैं । वनमें पत्नी-विरहित हैं । वे यदि तुम्हें स्वीकार कर लें तो तुम्हारे योग्य अच्छे पति सिद्ध होंगे ।'

'तुम्हारे रूपके योग्य मैं हूँ ।' सूर्पणखाने समझा कि रामके सामने दूर खड़ी रहकर प्रस्ताव करके उसने भूल की है । लक्ष्मणके गलेमें ही भुजाएं डालने बढ़ी तो वे हट गए । हंसकर बोली—'भागते क्यों हो? राक्षसी हूं तो भी तुम्हें खाऊंगी नहीं । तुम मुझे स्वीकार कर लो ।'

'मैं तो उनका दास हूं । मेरी पत्नी बनकर तुम दासी क्यों बनना चाहती हो ।' लक्ष्मणने भी हंसकर कहा—'उनकी बनोगी तो मेरी स्वामिनी, हो जाओगी । वे कौशलेश हैं, समर्थ हैं । उनके साथ जो हैं, वे तो पुरानी हो गयीं, दुर्बल भी हैं । अतः तुम मेरे उन अग्रजका ही वरण करो ।'

कामातुरा सूर्पणखा परिहास समझनेकी स्थितिमें नहीं थी । उसे यह तर्क ठीक लगा कि राम उसे स्वीकार कर लें तो लक्ष्मणकी वह स्वामिनी बन जायेगी । लक्ष्मण उसे सहज सुलभ होंगे । इसमें राक्षसीको कोई अनौचित्य नहीं दीखा । वह रामके समीप लौटी । श्रीरामने उसे देखकर दूर रहते हीकह दिया— 'बहुत भोली हो तुम । देखती नहीं हो कि पत्नी मेरे पास हैं । मेरे भाईसे थोड़ा आग्रह भी नहीं करके उनकी बातोंमें आ गयीं ।

वह फिर लौटी । सचमुच उसे आग्रह करना चाहिए, किन्तु लक्ष्मण ने इस बार समीप आने का अवसर ही नहीं दिया । तनिक दूरसे ही डांटा— दुष्टे ! वहीं ठहर । तू नारीकी मर्यादा भी नहीं समझती । अग्रजकावरण करने जाकर तू मेरी आदरणीया बनी मेरे समीप आकर उनके लिए अस्पृश्या हो गयी, यह भी तेरी बुद्धि में नहीं आया । तुझ असती निर्लज्जाका वरण वही कर सकता है जो तेरे समान ही लज्जासे सर्वथा शून्य केवल वासना कादास हो ।

क्या ? त्रिभुवनजयी अमित पराक्रम दशग्रीवकी दुर्धर्षा भगिनी को कोई इस प्रकार प्रताड़ित करनेका साहस करता है ? सूर्पणखा के नेत्र जल उठे । काममें-प्रबल काममें बाधा पड़नेपर वैसा ही प्रबल क्रोध आया । वह

पलटी—'रामने इस प्रकार अपमानित करनेको उसे छोटे भाईके समीप भेजा ? रामको गर्व किसपर है ? उस छुई-मुई-सी सीतापर जो उनके समीप है ? सूर्पणखा को सीताकी उपस्थिति प्रारम्भसे खटक रही थी । वह समझती थी कि यह दुर्बला स्त्री ही उसकी इच्छा-पूर्तिमें बाधक है । अब वह उसे अवश्य खा लेगी ।

सूर्पणखा लक्ष्मणके पाससे लौटी तो उसकी व्याकुलता, निर्लज्जता, एकसे दूसरे भाईके पास भटकना देखकर, वह फिर अपने स्वामीके समीप आ रही है, यह देखकर श्रीजानकीको हंसी आ गयी ।

यह मेरा उपहास करती है ? सूर्पणखाने सीताको हंसते देखा और क्रोधसे दांत पीसा-सूर्पणखा राक्षसी है । इसे अभी ज्ञात होगाकि राक्षसी कैसी होती है और राक्षसीके उपहासका साहस कितना दारूण होता है ।'

कज्जल कृष्णवर्णा, अरूणकेशी, करालमुखी, विकटदंष्ट्रा, विघूर्णितरथचक्र-पीत-नेत्रा, लम्बोदरी, लम्बितस्तनी, वृद्धा, विकराल नखा सूर्पणखाका अपना रूप क्रोधावेशमें प्रकट हो गया । वह सीधे आग्नेय नेत्रोंसे सीताको घूरती झपटी ।

इसके पूर्व क्षणमें ही, जैसे ही सूर्पणखा लक्ष्मणके समीपसे घूमी थी, लक्ष्मणकी दृष्टि अपने अग्रजकी ओर उठी । वह दृष्टि आदेश चाहती थी— 'आर्य! इस राक्षसीके साथ यह परिहास ?

'लक्ष्मण ! दुष्टोंके साथ परिहास नहीं किया जाता ।' स्पष्ट कहा श्रीरामने और दक्षिण करसे संकेत किया । करकी तीसरी अंगुली ऊपर उठी अर्थात ऊपरका तीसरा लोक (भूः, भुवः स्वः में स्वः-स्वर्ग) उसका एक नाम नाक है, फिर तर्जन-अंगुष्ठने शून्य बनाया अर्थात् आकाशकी तन्मात्रा शब्द ग्रहण करने वाली इन्द्रिय कर्ण, अंगुलीसे काट देने का एक झटका ।

लक्ष्मणके लिए इतना संकेत पर्याप्त था । महर्षि अगस्त्यने इन्द्रके द्वारा दिया जो खड्ग श्रीरामको दिया था, वह लक्ष्मणके समीप ही था । कोशसे खड्ग खींचकर लक्ष्मण दौड़े और सूर्पणखाके आगे आ खड़े हुए । वह राक्षसी कुछ समझे, इससे पहिले उसकी नाक और दोनों कान काट दिये श्रीरामानुजने ।

नासिका-कर्ण कट जाने पर रक्त की धारा चल पड़ी । अपने ही रक्तसे लथपथ चिल्लाती राक्षसी हाथ-पैर फेंकती वहाँसे भागीं ।

श्रीरामनुजने पीछे लौटकर खड्ग स्वच्छ किया और इस शान्तिसे राक्षसीके रक्तबिन्दु आश्रम भूमिसे स्वच्छ करने लगे जैसे कोई अत्यन्त सामान्य घटना हुई हो ।

मध्यान्ह स्नान-संध्याका समय हो गया, जब तक लक्ष्मणने आश्रम भूमि स्वच्छ की । दोनों भाई गोदावरी स्नान करने उठे तो श्रीरामने वैदेही-से कहा-'देवि! अब आज तुम भी सरिता-तट साथ ही चलो । तुम्हें अब थोड़े क्षण भी अकेले नही छोड़ा जा सकता ।'

●●●

खर-दूषण-दलन

अकस्मात् चिल्लाती रक्त-स्नाता, नासिका-कर्णहीना सूर्पणखा अपनी राजधानी पहुंची । उसे इस रूपमें देखते ही राक्षसों में आश्चर्य, क्रोधावेश फैला । खर कुछ पूछे इसके पहिले ही सूर्पणखाने चिल्लाकर डांटा— 'तुम सब कापुरूष हो । निकम्मे हो । शत्रु घरमें घुस आया और तुम सब सुरा पीकर सो रहे हो । धिक्कार है तुम्हें ।

'बहिन ! किस अज्ञने यह धृष्टताकी है ? खर क्रोधमें कांपता उठा । सूर्पणखाका हाथ पकड़कर उसने उसे नम्रता, स्नेह-पूर्वक बैठाया—'कौन मरनेको उत्सुक है ? किसने अपने काल को आमन्त्रित किया है ?

'जाके देख कि वे कौन है ! सूर्पणखा क्रोधमें भरी चिल्लायी-अयोध्याके दो राजकुमार तपस्वी बनकर पंचवटी में आ बसे हैं । उनके साथ एक स्त्री है । ऐसी सुंदरी जैसे लंकामें कभी देखी-सुनी नहीं गयी । मैं भाई दशग्रीवके लिए उसे हरण करना चाहती थी तो छोट कुमारने मेरी यह दशा बना दी' ।

'शोणिताक्ष ! अह्नि भक्षी ! महिषाक्ष !' खर एक ओरसे अपने सबसे क्रूर, बलवान राक्षसोंके नाम पुकारता चला गया । चौदह नाम पुकारे उसने और वे चौदह राक्षस उठ खड़े हुए— 'उन दोनों कुमारों को खा लो और उनके

साथकी स्त्री को यहां पकड़ लाओ ।'

'मैं साथ जा रही हूं । उनदोनोंका रक्त-पान करूँगी, तब मेरा क्रोध शान्त होगा ।' सूर्पणखा उन साक्षसोंके आगे मार्गदर्शिका बनकर दौड़ चली ।

'खर, दूषण, त्रिशिरा, तुम सब चलो, पूरी राक्षसी सेना चलेगी!' सूर्पणखा गयी और लौटी । पूरे वेगसे दौड़ती गयी थी राक्षसों के साथ और अकेली भागती-हांफती लौटी । लौटते हीउसने आदेश दिया । वे दोनों कुमार अत्यन्त दुर्धर्ष हैं । बड़े ने धनुष चढ़ाकर एक बाण छोड़ दिया और तुम्हारे भेजे चौदह राक्षसों के उसके एक बाणने टुकड़े काट फेंके । ऐसे तो राक्षस-वंशका ही विनाश हो जाएगा । संपूर्ण सेना लेकर आक्रमण करो । आज उन दोनोंका में अवश्य रक्तपान करूँगी । तुम उनके शरीर भक्षण कर लेना ।'

खरको सर्पूणखाकी बात ठीक लगी । वैसे भी वह सूर्पणखाकी आज्ञा मानने को विवश था और जो एक बाणसे चौदह वीर राक्षसोंको मार दे सकता है, उसके समीप थोड़ी सेना भेजना अपनी शक्तिको क्षीण करना था । खरने युद्ध-भेरी बजा दी । क्षणोंमें ही राक्षसोंकी सम्पूर्ण सेना सज्जित हो गयी । इस बार भी अमंगलरूपा सूर्पणखा स्वयं मार्गदर्शिका बनकर आगे चली ।

दिनका तृतीय प्रहर प्रारम्भ हो गया था । दक्षिणसे उठती धूलिका अम्बार, अपार कोलाहल सुनायी पड़ा । श्रीरामने अनुजसे कहा 'लक्ष्मण! राक्षसोंकी सेना आ रही है । इस समय युद्धकी अपेक्षा सीताकी सुरक्षा अधिक आवश्यक है । तुम्हें मेरी शपथ, प्रतिवाद मत करो । सीताको लेकर पर्वतकी गंभीर गुफा में चले जाओ । धनुष चढ़ाकर सावधान रहना, किंतु इतने भीतर रहना कि राक्षस तुम्हें भी सहसा न देख सकें । मैं राक्षसोंके इस दलको देखता हूँ ।

लक्ष्मणको बोलनेका अवकाश ही नहीं था । उन्होंने दोनों त्रोण कसे । धनुष चढ़ाया और अग्रजके चरणोंमें मस्तक झुकाकर सीताजीको आगे करके चल पड़े । थोड़ी ही दूरीपर पर्वतमें एक गंभीर गुफा दोनों भाईयोंने पहिलेसे देख रखी थी । श्रीजानकीने उस गुफा में प्रवेशकिया । लक्ष्मण द्वारसे कुछ भीतर गुफाके द्वारकी ओर मुक करके, धनुषपर बाण चढ़ाये सावधान खड़े हो गये ।

जैसे ही सीताको लेकर लक्ष्मण चले, श्रीराम भी उठकर खड़े हो गये ।

उन्होंने अपनी जटाएं समेटकर, मुकुटके समान बांध ली। ऐणेयाजिन उत्तरीयके ऊपर पीठपर दोनों अक्षयत्रोण कसे। धनुष चढ़ाया और एक बाण दक्षिण करमें लेकर पर्णशाला के प्रांगणसे बाहर आकर खड़े हो गये। युद्ध होता है तो रक्त-माँससे पर्णशालाका प्रांगण अपवित्र नहीं होना चाहिए।

'वह रहा परमसुंदर बड़ा राजकुमार! सूर्पणखाके साथ खर आकाश-मार्गसे आया था। दूरसे सूर्पणखाने संकेत किया— 'यह नवघनसुंदर पद्मपलाश-लोचन, परम सुकुमार दीखता ही है। अत्यन्त बलवान है। जटाबल्कल कृष्णाजिनधारी ये लोग फल-मूलाशन हैं। जितेन्द्रिय, तपस्वी, धर्मपालक होकर हमारे सभी नियमोंको नष्ट कर रहे हैं। गन्धर्वराजसे सुन्दर ये पता नहीं देवता हैं या मनुष्य। इसीकेछोटे भाईने मुझे विरूप किया है; किन्तु वह गौर कुमार तथा इसकी भुवनसुन्दरी पत्नी कहाँ है? लगता है कि इस बड़े भाईने पत्नी तथा भाईको कहीं छिपा दिया है।'

'यह सौन्दर्य!' खर तो देखता ही रह गया। उसने पीछे मुड़कर भाइयोंको समीप बुला लिया— 'दूषण! त्रिशिरा! इतना सौन्दर्य तो ब्रह्माकी सृष्टिमें मैंने सुना नहीं। इनको मारकर सृष्टिकी सुन्दरताका उत्कृष्टतम उदाहरण नष्ट करनेको जी नहीं चाहता।'

'सेनापति अकम्पन!' खरके समान ही दूषण, त्रिशिरा भी उस रूपराशिको अपलक देख रहे थे। जब दोनों भाइयोंने विरोध नहीं किया तो खरने अकम्पनको पुकारकर बुलाया और आज्ञा दी—'ये अनुपमेय सौन्दर्यशाली मार देने-योग्य नहीं हैं। जीवनमें पहिली बार सुकुमार सौन्दर्यको देखकर खरकी जिह्वापर उसे खा लेनेके लोभसे पानी नहीं आया है। इन्हें देखते ही रहनेको जी चाहता है। यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको विरूप बनाया है; किन्तु इनसे जाकर कहो क्षमा करता हूँ। दोनों भाई अपनी पत्नीको देकर यहाँसे चले जायँ। अब इन्हें जनस्थानमें नहीं रहना चाहिये।'

श्रीराम सहज भावसे धनुष चढ़ाये, दक्षिण करमें बाण लिये इस प्रकार दक्षिण दिशाकी ओर देख रहे थे, जैसे आक्रमणको उद्यत वनराज गजयूथको देख रहा हो। अकम्पन उस अभय भंगीको ही देखकर काँप गया। सघन वृक्षोंकी ओटसे ही उसने पुकारा—'मैं जनस्थानके शासक राक्षसाधिप खरका

दूत अकम्पन तुम्हें चेतावनी देता हूँ ।'

'जनस्थान ?' श्रीरामके मुखपर हास्य आया—'तुम राक्षसोंने तो इसे निर्जनस्थान बना दिया है; किन्तु राक्षस ! तू दूत है तो सम्मुख आ जा ! दूतको किसी धर्मज्ञ क्षत्रियसे भय नहीं होता ।'

'राक्षसाधिप खरका आदेश है कि तुम अपनी पत्नीकी भेंट देकर भाईके साथ यहाँसे भाग जाओ तो वे तुम्हारा अपराध क्षमा कर देंगे ।' अकम्पनने कहा—'तुमने उनकी बहिनके नाक-कान काटकर वधके योग्य अपराध किया है । वैसे भी हम राक्षस दया करना नहीं जानते; किन्तु तुम्हारे सौभाग्यसे हमारे अधिपतिको तुमपर दया आगयी है कहाँ है तुम्हारी पत्नी ? उसे शीघ्र बुलाकर मुझे दो और तुम दोनोंको अविलम्ब यहाँसे चले जाना चाहिये । दण्डकारण्यमें पुनः प्रवेशका साहस मत करना ।'

'राक्षस ! हम भागते, भयातुर लोगोंपर प्रहार नहीं करते ।' श्रीरामने हँसकर कहा—'अपने स्वामीसे जाकर कह, हम क्षत्रियोंका स्वभाव ही आखेट है और वन्यके दुष्ट खर हमारे विशेष लक्ष्य होते हैं; किन्तु उसे और तुम सबोंको भय लगता हो तो भाग जाओ । यह और सुन लो कि अबसे किसी ऋषि-मुनि-तापसको उत्पीड़ित किया तो राम पुनः क्षमा नहीं करेगा ।'

अकम्पन उलटे पैर भागा । वह मेघ-गम्भीर स्वर, वह धनुषपर बाण चढ़ानेको उत्सुक भंगी—पता नहीं क्यों उसका हृदय रामको देखकर ही काँपने लगा था । खरके समीप जाकर उसने श्रीरामका उत्तर सुना दिया । खरने क्रोधपूर्वक आदेश दिया राक्षस सेनाको—'मार दो इस तपस्वी को ।'

'मार दो ! काट डालो ! खा लो !' चिल्लाती राक्षसोंकी सेना टूट पड़ी । गदा, भल्ल, तलवार, त्रिशूल, पत्थर—कोई राक्षस शस्त्रहीन नहीं था । सबने एक साथ प्रहार किया । मानो शस्त्रोंकी वर्षा हुई; किन्तु उसे युद्ध कहना कठिन है । श्रीरामने धनुषका ज्या-घोष किया और हाथका बाण धनुषपर चढ़ाकर छोड़ दिया ।

'यह ? यह ?' खर ही नहीं, सभी राक्षस उस शत-सहस्र वज्रपातके समान कठोर ज्या-घोषसे ही भूमिपर गिर पड़े । तीनों भाई राक्षस-नायकोंके नेत्र फटे-फटे होगये—'यह क्या इन्द्रजाल है ?'

मायावी राक्षस सर्वत्र माया देखनेके अभ्यासी । उन्होंने देखा कि श्रीरामका बाण धनुषपर पहुँचकर दस हुआ, छूटते ही सहस्र होगया और लक्ष-लक्ष होकर राक्षसोंके शस्त्रोंके टुकड़े-टुकड़े काट दिये उसने । श्रीरामका कर कब त्रोणसे शर लेता है, कब धनुष प्रत्यञ्चापर पहुँचता है, कब बाण छूटता है, देखना कठिन था । पल-पल उस धनुषका ब्रह्माण्ड-भेदी प्रलंयकर ज्या घोष गूँज रहा था और गूँज रहा था राक्षसोंका आर्तनाद । किसीको कहीं भागनेको भी स्थान नहीं था । दिशाएँ, गगन बाणोंसे भर गये थे । लगता था कि आकाशसे, पृथ्वीसे, वनके पत्ते-पत्तेसे विकराल बाण छूट रहे हैं । राक्षसोंके कर, पद, भुजाएँ, मस्तक, शरीर-खण्ड कट-कटकर उछल रहे थे । छिन्न अंगोंके भी टुकड़े हो रहे थे । पृथ्वी शस्त्र-खण्डोंसे, मांसके टुकड़ोंसे, रक्तकी वर्षासे भयावह हो उठी । मांसाशी, प्राणियोंका आर्तनाद सुनकर अट्टहास करनेवाले, रक्तकी होली खेलकर नृत्य करनेवाले, राक्षस आज आर्तनाद कर रहे थे और भागनेको भी स्थान नहीं पा रहे थे ।

'भाई दूषण !' खरने ललकारा । दूषण राक्षसोंकी सुरक्षित ५०० सेना लेकर आगे बढ़े, तब तक तो सम्मुख संग्राम-भूमिमें लड़ती मुख्य सेनाका हाहाकार समाप्त हो चुका था । किसी आहतकी सिसकी तक सुनायी नहीं देती थी ।

'अरे तापस ! तेरा काल दूषण आरहा है, सम्हाल !' व्यर्थ थी दूषणकी गर्जना और उसका गदाघात । रघुवंश-विभूषणके सम्मुख कभी दोष-दूषण टिका है ? क्या हुआ कि वह मूर्तिमान दूषण—दोषोंका साक्षात् अधिष्ठाता था । श्रीरामको तो दूसरा शर-सन्धान भी नहीं करना पड़ा । दूषण और उसके सहायक राक्षस प्रथम प्रहारमें ही पृथ्वीपर प्राण-हीन पड़े थे ।

'मेरे रहते आप स्वयं युद्ध करने जायँगे ?' त्रिशिराने क्रोधावेशमें आगे बढ़नेको उद्यत त्रिशूल-हस्त खरको रोका । अवशिष्ट समूची सेना लेकर वह श्रीरामके ऊपर टूटा । प्रज्वलित अग्निपर पावसमें पतंग टूटते हैं तो उनका क्या होता है ? दूषणका अनुज त्रिशिरा—दूषणके पीछे क्या उत्पन्न होता है ? अन्तःकरण दूषित हुआ तो काम, क्रोध, लोभ—यही तो आवेंगे । गीतामें कहे गये नरकके तीन द्वार—'कामः क्रोधस्तथा लोभः' लेकिन इनमें कोई श्रीराम-चरण-चिन्तकको अभिभूत कर सकता है ?

त्रिशिरा तो मूर्तिमान ज्वर था । आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक त्रिविध तापोंका साकार अधिदेवता । आधि-व्याधिके अधीश्वर उसके सैनिक; किन्तु श्रीरामका स्मरण ही जिन्हें निःशेषकर देता है, वे स्वयं श्रीरामपर आक्रमण करें तो कितने क्षण टिकते !

खर— पशुता एवं कर्कशताकी घनीभूत मूर्ति— अहंकारका व्यक्त आक्रोश ! किन्तु श्रीरामके पराक्रमने उसे भयभीत कर दिया । भाग सकता तो अवश्य भाग जाता । लेकिन दशग्रीवसे बचकर भागेगा भी कहाँ । उसने एक बार चारों ओर देखा, बाणोंसे—तीक्ष्ण बाणोंसे व्याप्त दिशाएँ ! खरने विवश होकर माया-युद्ध प्रारम्भ किया । दिशाएँ अन्धकारमें डूब गयीं । गगनसे प्रज्वलित शिलाएँ गिरने लगीं । पृथ्वीसे भूत-प्रेत-पिशाच प्रगट होकर अट्टहास करते दौड़ने लगे । लेकिन यह सब दो क्षण भी नहीं चला । श्रीरामके शरने माया ध्वस्त करके खरको भी मार दिया ।

'लक्ष्मण ! तुम्हारे अग्रज किस अवस्थामें है, तनिक देखो तो !' श्रीजानकी बाहरके कोलाहल, चीत्कार, आर्तनादको सुनकर व्याकुल हो रही थीं । वृक्षोंकी सघनताने गुफाका द्वार छिपा रखा था । इससे जहाँ गुफाका द्वार छिपा रखा था । इससे जहाँ गुफा अधिक सुरक्षित थी, वहाँ उसके भीतरसे बाहरका कुछ देखा नहीं ज सकता था ।

'आप आर्यके धनुषकी प्रत्यञ्चा-ध्वनि पहिचानती हैं ।' लक्ष्मणने अनेक बार यह आश्वासन दुहराया—'गूँज रहा है वह ज्याघोष और फलतः आततायी राक्षसोंका आर्तनाद भी गूँज रहा है । आपको आशंका करनेका कोई कारण नहीं है । धनुष चढ़ाये श्रीरामको क्षति पहुँचानेकी शक्ति त्रिभुवनमें है ही नहीं ।'

'लक्ष्मण ! अब तो वह ज्याघोष भी सुनायी नहीं पड़ता !' दो घड़ीमें ही श्रीरामने समूची राक्षस-सेनाको समर-शैया दे दी । विपक्षमें कोई आहत भी आर्तनाद करने वाला नहीं बचा था ।

'अम्ब ! मैं देखता हूँ ।' लक्ष्मणने कहा—'लगता है आर्यने शत्रुओंको समाप्त कर दिया । आप किसीका चीत्कार या क्रन्दन भी तो नहीं सुनती हैं ।'

धनुषपर बाण चढ़ाये लक्ष्मण गुफासे सावधानीपूर्वक निकले । उन्होंने वृक्षोंके झुरमुटमें-से ही इधर-उधर देखा और हँसकर धनुष उतारते हुए पुकारा—

'अम्बा नैकषेय युद्ध-शैयापर सो चुके । आप अब आकर मेरे संग्राम जयी अग्रजका स्वागत करें ।'

श्रीजानकी गुफासे निकलीं । आतुर पदोंसे पर्ण-कुटीकी ओर बढ़ीं । लक्ष्मणने उनका अनुसरण किया । उनको देखकर श्रीरामने स्वस्थ, सस्मित स्वरमें पुकारा—'आओ लक्ष्मण !' उन्होंने धनुषकी ज्याको उतार लिया था । अब धनुष कन्धेपर पहुँच चुका था ।

अंगोंपर स्वेद-बिन्दु झलमला रहे थे । स्थान-स्थानपर रक्त-बिन्दु सुशोभित थे । श्रीवैदेहीने समीप आकर एक-एक रक्त-बिन्दुको अपनी सुकुमार अँगुलीसे टटोलना प्रारम्भ किया—'आर्यपुत्रको कहीं आघात लगा है ?'

'ये प्रतिपक्षियोंके रक्तबिन्दु हैं देवि;' श्रीरामने हँसकर कहा ।

'किन्तु आर्यपुत्र अत्यन्त श्रान्त हो गये हैं ।' श्रीमैथिलीने अपने करोंसे स्वामीकी पीटपर कसे त्रोण खोले—'अब आप तनिक विश्राम करके तब स्नान करें ।'

लक्ष्मणने अग्रजके चरणोंमें प्रणाम किया और उठ खड़े हुए वे परम चतुर । इस समय श्रीसीतारामको एकान्त देना आवश्यक था । कार्य बहुत था । आश्रमके समीप इतना रक्त, मांस सड़नेको नहीं छोड़ा जा सकता था । यह सब पड़ा रहा तो रात्रिमें ही मांस-भक्षी पशुओंका समूह यहाँ एकत्र होगा और वह अस्थि-खण्ड, मांससे पर्णशाला-प्रांगण भी दूषित कर देगा ।

दिनका तृतीय प्रहर व्यतीत हो चुका था । सायंकालसे पूर्व समर-स्थानको स्वच्छ करनेके लिए लक्ष्मणको धनुषका सहारा लेना पड़ा । वायव्यास्त्रका सन्धान करके ही उन्होंने उस भूमिमें पड़े सब शव-खण्डोंको शस्त्रोंके टुकड़ों-सहित समेटकर एक भारी खड्डमें फेंका । उसपर काष्ठ-राशि डाली और तब उसे प्रज्वलित कर दिया ।

सायं स्नानके लिए दोनों भाई गोदावरी-तटपर पहुँचे तो श्रीजानकीको भी स्नान करना था । उनके कर भी स्वामीके स्पर्शसे राक्षसोंके शोणितमें सन गये थे । उस समय उस खड्डसे धुआँ और लपटें उठ रही थीं । उसमें चौदह सहस्र राक्षसोंकी चिता खर-दूषण-त्रिशिराके साथ जल रही थी । जनस्थान सचमुच जनस्थान—मुनिजन-स्थान हो चुका था । श्रीरामने उसे निर्जन बनाने वाले राक्षसोंका नाम शेष कर दिया था ।

●●●

लंकामें खलबली

असुरोंमें सब अज्ञ ही नहीं होते । उनमें भी बुद्धिमान होते हैं । जनस्थानमें ऐसा ही बुद्धिमान अकम्पन न होता तो वह भागकर प्राण बचा पाता ? खरने उसे श्रीरामके समीप दूत बनाकर भेजा था । श्रीरामको समीपसे देखकर ही वह समझ गया था कि उसके पक्षका विनाश निश्चित है । खरको सन्देश दिया उसने और जब खरने राक्षसोंको आक्रमणका आदेश दिया, वह युद्धभूमिसे दूर खिसक गया । उसकी अनुपस्थितिकी ओर भला उस समय कौन ध्यान देता ।

स्वरके मारे जानेके पश्चात् छिपकर युद्धके परिणामको देखनेवाला अकम्पन भागा । उसे भय लगा कि राम अब कहीं बचे राक्षस न ढूँढ़ें । सीधा लंका गया वह ! रावणके सम्मुख अत्यन्त कातर काँपता पहुँचा । उसकी अवस्था देखकर रावणने डाँटा—तू इतना कातर क्यों हो रहा है ? क्या कहना चाहता है ?'

बहुत अप्रिय समाचार है !' अकम्पन हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाया—'आप यदि मुझे अभय दें, आश्वासन दें कि मेरा वध नहीं कर देंगे तो निवेदनका साहस करूँ ।'

'अच्छा, अभय दिया तुझे !' रावण हँसकर बोला—'मेरा अप्रिय करनेका साहस यम इन्द्र वरुण और विष्णु भी नहीं कर सकते । कौन है जो अपने मरणको आमन्त्रित करने लगा है ।'

'जनस्थान राक्षसहीन हो गया ।' अभय पाकर भी अकम्पन निर्भय नहीं हुआ था । डरते-डरते ही उसने कहा—'अयोध्याके राजकुमार राम अमित तेजस्वी, धनुर्धारियोंमें सर्वश्रेष्ठ, दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता हैं । उनके समान ही अतलोपम उनके छोटे भाई लक्ष्मण उनके सहायक हैं । रामके बाण तो सिंह बनकर राक्षसोंका भक्षण करते हैं ।'

'अयोध्या—अयोध्याके राजकुमार राम ?' रावण चौंका और उठ खड़ा हुआ—'मैं अभी स्वयं जाकर उन दोनोंको मार दूँगा ।'

'क्रुद्ध श्रीरामके सम्मुख मत जाइये ! वे अभी क्रोधमें भरे होंगे ।' अकम्पनने चरण पकड़ लिया रावणका—'मैंने उनको युद्ध करते देखा है । वे समस्त पृथ्वीको पलक झपकते समुद्रमें डुबा दे सकते हैं । युद्धमें स्वयं काल भी उनको पराजय नहीं दे सकता । नीतिको अपनाइये ! रामकी पत्नी भुवनसुन्दरी है । वे उसे इतना चाहते हैं कि उसके वियोगमें व्याकुल होकर अवश्य प्राण त्याग देंगे । आप किसी प्रकार उनकी पत्नीका अपहरण करो ।'

'अच्छा !' दशग्रीव गम्भीर होगया । उसे सोचनेके लिए समय चाहिए था । अकम्पनको विदाकरके वह राक्षसोंकी राजसभामें आ बैठा । यह चिन्तनकी उसकी अपनी शैली थी । राजसभाके चाटुकार जब उसकी स्तुति करते होते थे, उसका मस्तिष्क अधिक सक्रिय हो जाता था ।

दशग्रीव असावधान नहीं था । अयोध्यासे वह सदा सशंक रहा था । अनरण्यने उसे शाप दिया था कि उनका वंशज ही उसे मारेगा और जबसे राम-लक्ष्मणने विश्वामित्रके यज्ञ-रक्षाके निमित्त सिद्धाश्रमके समीप रहने वाले राक्षसोंको मारा था, रावण अयोध्याके इन दोनों राजकुमारोंसे अधिक सशंक होगया था । वह इनकी गतिविधियोंका पता रखता था ।

रामने शिव-धनुष तोड़ दिया । विश्वामित्रका स्नेह प्राप्त किया और परशुरामको भी प्रसन्न कर लिया । परशुराम दक्षिणमें महेन्द्राचलपर ही रहते हैं और उन्हें क्रुद्ध करनेका साहस नहीं किया जा सकता । अयोध्याके विरुद्ध जितने मोर्चे रावणने अत्यन्त सावधानीपूर्वक खड़े किये थे, राम एक-एकको ध्वस्त करते जा रहे हैं । पिताकी आज्ञाका बहाना बनाकर वे वनमें आ गये भाईके साथ और अतुलनीय पराक्रमी विराधका वधकरके अब तो दण्डकारण्यमें पहुँचकर पञ्चवटीमें बस गये हैं ।

रावणने सोलह राक्षसोंको राम-लक्ष्मणको मारनेका आदेश देकर पञ्चवटी भेजा था । वे सभी बलवान थे, मायावी थे; किन्तु उन्हें खर-दूषणके समीप तो भेजा नहीं जा सकता था । रावण स्वयं सीधे प्रयत्न कर रहा था और वह उलटा पड़ा । वे राक्षस योजनबाहु कबन्धकी पकड़में आकर उसके पेटमें पहुँच गये । अब आज अकम्पन यह समाचार लाया है ।

'मूर्ख ! चार चक्षुहीन; स्त्रीजित ! कामुक ! तू महाराज बनता है ?

तुझे अपने राज्यका कुछ पता है ?' सूर्पणखा सगी बहिन थी। वह सीधे राजसभामें पहुँची और रावणकी भर्त्सना करने लगी—'तेरे आरक्षी खर-दूषण, त्रिशिरा पूरी सेनाके साथ मार दिये गये। भारतकी मुख्य भूमि पर अब पद धरने जितना प्रदेश भी तेरा नहीं है। तेरे जनस्थानको, मयराष्ट्रको शत्रुने अधिकृतकर लिया और देख तेरी बहिन होनेके कारण मेरी क्या दुर्गतिकी गयी है ! धिक्कार है तुझे ! तू यहाँ निश्चिन्त बैठा है ?'

सूर्पणखा जनस्थानमें युद्धारम्भ होते ही दूर हट गयी थी। अकम्पन भी बचा है, यह उसे पता नहीं था। जब युद्धका कोलाहल शान्त होगया, गगनमें राक्षसोंकी चिताका धूम उठने लगा, आकाशसे ही राम-लक्ष्मणको सीताके साथ गोदावरी-तटपर जाते देख सूर्पणखाने सिर पीटा—'हाय ! मेरे तीनों भाई और सब सैनिक मारे गये ?'

'वह नरेश नष्ट होजाता है जो गुप्तचर, कोश, मन्त्रियों और सेनाको अपने वशमें नहीं रखता। जो शत्रुकी ओरसे उदासीन रहता है। तुझे पता है रामने ऋषियोंके सम्मुख समस्त राक्षसोंको मार देनेकी प्रतिज्ञा की है ?' सूर्पणखा रोती-चिल्लाती लंका आयी और राजसभामें रावणके सम्मुख अपने केश नोचती, छाती पीटती क्रन्दन कर रही थी—'कमललोचन इन्दीवर-सुन्दर, जटामुकुटी, वल्कलवसन राम क्रुद्ध होकर समुद्रको सुखा दे सकते हैं। तू उनके पराक्रमके सम्मुख तुच्छ है !'

'बहिन ! यह सब कैसे हुआ ?' रावणने हाथ पकड़कर उठाया—'तेरे कर्ण-नासिका क्यों काटे उन्होंने और मेरे सुरासुरजयी आरक्षी खर-दूषण-त्रिशिरा.......... ।'

अकम्पनने जो कुछ कहा था, उसे तब रावण पूरा समझ नहीं सका था। 'जनस्थानके सब राक्षस मारे गये। इसका अर्थ इतना भयानक है, यह अब उसकी समझमें आया। वह चिन्तित हो उठा।

'कैसे क्या हुआ ?' सूर्पणखाने विवरण बताया—'उनके साथ एक स्त्री है। ऐसी स्त्री त्रिभुवनमें दूसरी नहीं है। मन्दोदरी भाभी उसकी दासी होने योग्य भी नहीं। उसके सौन्दर्यके सम्मुख उमा-रमा तुच्छ हैं। मैंने इन सबको देखा है; किन्तु घूमती पञ्चवटी पहुँची तो उस स्त्रीको देखकर देखती रह गयी।

उसके बिना तो तेरा अन्तःपुर कुरूपाओंका आगार है । मैं तेरे लिए उसे उठा लाना चाहती थी । मेरी इस चेष्टासे वे दोनों क्रुद्ध हो उठे । स्त्री समझकर मेरा वध नहीं किया । नाक-कान काटकर भगा दिया । मैं खरदूषणके समीप पुकारती पहुँची; किन्तु हाय ! इस भाग्यहीना बहिनकी सहायता करने जाकर वे तीनों भाई सम्पूर्ण सेनाके साथ मारे गये ।'

सूर्पणखा पछाड़ खाकर गिरी । रावणने उसे उठाया—'तू लंकामें रह । अन्तःपुरकी सब स्त्रियाँ तेरा सम्मान करेंगी । दशग्रीवका सम्पूर्ण ऐश्वर्य तेरा है । तेरा उपहास करने वाला प्राणदण्ड पावेगा । हमारे भिषक् तेरे कर्ण-नासिकाका आरोपण कर देंगे ।'

सूर्पणखाको समझाकर रावणने चिकित्साके लिए भेजा । अब राजसभामें बैठना उपयुक्त नहीं था । वह उठा वहाँसे । उसके मस्तिष्कमें आँधी चल रही थी—'राम-लक्ष्मणने खर-दूषण-त्रिशिराको मार दिया ! जनस्थान अधिकृत कर लिया !'

यह आँधी तो लंकाके राक्षसोंके प्रत्येक मन-मस्तिष्कमें चलने लगी थी । नगरमें समाचार फैल चुका था । सब सशंक—'उन्होंने सम्पूर्ण राक्षसोंको मार देनेकी प्रतिज्ञाकी है ? खर-दूषण-त्रिशिरा मेघनादके समान शूरोंको मार दिया ?'

लंकामें हलचल मच गयी, किन्तु दशग्रीवके भयसे कोई प्रकट कुछ कहनेका साहस नहीं कर सकता था ।

●●●

दशग्रीवकी दुरभिसन्धि

'अब ? अब क्या ? राम जनस्थानको अधिकृत कर चुके । भारतके दक्षिण आगये । लंका अब बहुत दूर नहीं है । कौन हैं ये राम ?' दशग्रीवके मस्तिष्कमें अन्धड़ चल रहा था ।

'अकम्पन कहता है कि उनकी पत्नीका हरण कर लो तो वे उसके वियोगमें प्राण त्याग देंगे । बहुत प्रेम है उनका अपनी पत्नीपर । प्राण न भी त्याग दें तो अत्यन्त दुर्बल अवश्य हो जायँगे ।' रावण मनमें उद्वेग-पूर्वक सोच रहा है—'खर-दूषण-त्रिशिरा सभी देवताओंके लिए दुर्जय थे । उन्हें अकेले रामने दो घड़ीमें मार दिया ? केवल प्रलयंकर महेश्वर ऐसा कर सकते हैं; किन्तु वे मेरे आराध्य हैं । वे हम राक्षसोंका अनिष्ट नहीं करेंगे । दूसरे—दूसरे ? तब क्या परमपुरुषने रामके रूपमें अवतार ग्रहण कर लिया ? दूसरा तो कोई दशग्रीवके आरक्षीको मार नहीं सकता ।'

'परमपुरुष मुझे मारने अवतीर्ण हुए तो मैं धन्य होगया ।' अधिक चिन्ता करना रावणके स्वभावमें नहीं था । वह खुलकर हँसा—'तब दशग्रीव सब राक्षस-कुलका समुद्धारक बनेगा । ये राक्षस कोई जप-तप तो करने वाले नहीं हैं । रावणके आश्रयमें रहकर ये निर्भय रहे हैं, मनमाने भोग भोगे हैं इन्होंने । केवल परमात्माके आश्रितोंको ही परित्राण नहीं प्राप्त होता । पौलस्त्य दशग्रीवका आश्रय लेनेवाला भी परमपद पा लेता है, यह संसार देखे । यदि राम परम पुरुष हैं, उनको सम्पूर्ण राक्षस-कुलका संहार करना पड़ेगा । उनके शरोंसे, उनके सम्मुख, उनका दर्शन करते देह त्याग करके दशग्रीवके सब स्वजन, अनुचर परम पद पावें ।'

'यदि राम परमपुरुष नहीं हैं ?' रावण फिर हँसा खुलकर—'वह विदेहराज-दुहिता—शिव-धनुषको तोड़कर दशाननको उसे प्राप्त करनेका सुयोग नहीं मिल सका था; किन्तु हम राक्षस कहाँ नारीके सतीत्वके मिथ्या प्रलोभनमें पड़ते हैं । वह त्रिभुवनमें रमणी-रत्न है और वसुन्धरा तो वीरभोग्या है ।

यदि राम सामान्य मानव हैं— दिव्यास्त्रोंसे तो सौ योजन समुद्र पार कोई आ नहीं सकता ।'

दशग्रीव निश्चय पर आगया । उसने अपने मन्त्रियोंको राजभवनमें ही बुलवा लिया । इस मन्त्रणामें विभीषणको उसने नहीं बुलाया । मन्त्रियोंके आ जानेपर उसने कहा— 'अकम्पन स्वयं जो देख आया है, तुम लोगोंने सूर्पणखाके मुखसे वह सब सुन ही लिया है । उन दोनों तपस्वियोंने जन-स्थानपर अधिकार कर लिया है । अकम्पन ठीक कहता है कि उनके साथ वहाँ जाकर युद्ध करना उचित नहीं है ।'

दशग्रीवको मन्त्रणा सभामें मन्त्रीगण कदाचित् ही कुछ अपना मत प्रकट करते थे । रावण विरोध न सुन सकता था, न सह सकता था । फलतः मन्त्रियोंका काम केवल अपने महाराजकी बात सुनकर समर्थन करना, स्तुति करना मात्र रह गया था ।

'विश्वमें ऋषि विश्वामित्र सबसे बड़ा दिव्यास्त्र-ज्ञाता है । रामने उसके यज्ञकी रक्षा की । सम्भव है विश्वामित्रने उसे अपने सब दिव्यास्त्र दे दिये हों ।' दशग्रीव ही बोल रहा था— 'रामने खर-दूषण-त्रिशिराको पूरी सेनाके साथ दो घड़ीमें मार दिया । अब मैं या मेघनाद उससे युद्ध करने जायँ तो भी हमारी विजयसे पहिले वह हमारे बहुतसे योद्धा अवश्य मार देगा । मैं नहीं चाहता कि मेरे स्वजन अकारण मारे जायँ ।'

'महाराजाधिराज सदासे अपने आश्रितोंके प्रति अत्यन्त सदय रहे हैं ।' मन्त्रियोंने स्तुति की— 'लेकिन महाराजकी सेवामें प्राणार्पण करना प्रत्येक राक्षस अपना सौभाग्य मानता है ।'

'अकम्पन कहता है कि रामको अपनी पत्नी इतनी प्रिय है कि यदि उसकी पत्नीका हरण हो जाय तो पत्नी-वियोगमें वह प्राण ही त्याग देगा ।' दशग्रीवने मन्त्रियोंकी बातको कोई महत्त्व दिये बिना कहा— 'यदि वह प्राण-त्याग न भी करे तो बहुत दुर्बल अवश्य हो जायगा । अतः मैं एकाकी जाकर उसकी पत्नीको उठा लाना चाहता हूँ । इसमें क्या गुण-अवगुण है, इसपर सब लोग विचार कर लें ।'

'हम राक्षसोंने स्त्री-हरणमें कभी संकोच नहीं किया है ।' दशग्रीवका मातुल, मन्त्रियोंमें मुख्य प्रहस्त हँसा—'आपने अनेकों-सैकड़ों स्त्रियोंका हरण किया है । स्त्री सम्पत्ति है, भोग्या है और भोग्य वस्तु उसका स्वत्व है, जिसकी भुजाओंमें बल हो । हम राक्षस इसी वीरधर्मपर विश्वास करते हैं । स्त्रीका क्या स्व और पर । अतः स्त्री-हरणमें अवगुणका तो प्रश्न ही नहीं है । पत्नी-हरणसे राम इतना व्याकुल अवश्य हो जायगा कि उसे अपने दिव्यास्त्रके मन्त्र विस्मृत हो जायँ ।'

लंका जनस्थान नहीं है कि कोई मानव पैरसे चलकर यहाँ पहुँच जायगा ।' दूसरे मन्त्रीने कहा—'मानव तो हम उपदेवोंके समान गगन-पथसे यात्रा कर नहीं सकता और रामके समीप इस समय लोकान्तरों तक जाने वाले रथोंमें-से कोई है नहीं । लेकिन इस तुच्छ कार्यके लिए महाराज स्वयं कष्ट क्यों करें ?'

'इसलिए महाराजको स्वयं जाना चाहिये; क्योंकि स्त्री-हरण करना है और उसे अपने अन्तःपुरमें रखना है ।' प्रहस्त हँसा—'राक्षसोंकी स्वाद लोलुपतापर भरोसा नहीं किया जा सकता । अनेक बार सुकुमार शरीर देखकर वे उसे मुखमें रख लेनेसे अपनेको रोक नहीं पाते ।'

इस व्यंगमें बहुत-सी अनकही बातें सम्मिलित थीं । मन्त्रियोंके मुखोंपर हास्य आगया । सर्वसम्मतिसे निश्चय होगया कि महाराजका विचार सर्वथा उपयुक्त है । दशग्रीवने उसी समय अपना गगनचारी, वह रथ सज्जित करनेकी आज्ञा दी, जिसमें गर्दभ जोते जाते थे । उस गृद्धध्वज रथपर बैठकर वह उसी समय चल पड़ा ।

'सीताको वे अकेली छोड़ते नहीं होंगे । इस समय तो सर्वथा नहीं, जब कि सूर्पणखाने उसके हरणका प्रयास किया था और खर-दूषणको मारकर वे मुझसे शत्रुता कर चुके हैं ।' गगनमें रथके उठते ही रावणने अनुमान कर लिया । 'उन दोनों भाइयोंको किसी बहाने उनके आश्रमसे हटाकर ही सीताका हरण सम्भव है ।'

मनमें पूरी योजना बनाकर रावण समीपके समुद्री द्वीप—मारीच द्वीपपर

उतरा ।१ मारीचका वह द्वीप तपोवनके समान ही था । मारीच जबसे श्रीरामके शराघातसे वहाँ आकर गिरा था, उसका जीवन ही दूसरा हो गया था । उसकी राक्षसी वृत्ति समाप्त हो गयी थी । उसने जटा धारण कर ली थी । बल्कल पहिनता था । कन्दमूल खाकर तप करता था । अवश्य ही शिवभक्त होनेके कारण वह ललाटपर, भुजाओंपर भस्मका त्रिपुण्ड लगाता था और रुद्राक्षकी मालाएँ पहिनता था । जप और ध्यानमें ही अपना समय व्यतीत करता था ।

मारीच सिद्धासनसे मृगचर्मपर बैठा समाधिमें स्थित है, यह देखकर दशग्रीवको हँसी आयी । रथ उसने दूर छोड़ दिया था । हाथ जोड़कर कुछ व्यंग-पूर्वक उच्चस्वरसे उसने प्रणाम किया—'नैकषेय महर्षि मारीचको पौलस्त्य दशग्रीव प्रणाम करता है ।'

चौंककर मारीचने नेत्र खोला । आतुरतापूर्वक उठा और रावणको आदरके साथ ले जाकर आसनपर बैठाया । अर्घ्य, पाद्य आदिसे रावणकी पूजा की । उसको आहारके लिए मधुर फल तथा कन्द दिये । दशग्रीवने भी शान्तिसे यह सत्कार स्वीकार कर लिया । जब वह फलाहार कर चुका, मारीचने हाथ जोड़कर पूछा—'महाराजाधिराजने इस सेवकपर कैसे कृपा की ? आप एकाकी क्यों आये हैं ?'

'मुझे तुम्हारी सहायता अपेक्षित है ।' रावणने थोड़ेमें खर-दूषणादिका वध सुनाकर कहा—'रामने जनस्थानपर अधिकार कर लिया, बहिन सूर्पणखाको विरूप बना दिया, यह मेरे लिए असह्य है । मैं उनकी पत्नीका हरण करना चाहता हूँ ।'

'महाराज ! किसने आपको यह सम्मति दी है ? वह आपका शुभचिन्तक कदापि नहीं है । वह सम्पूर्ण राक्षस-कुलका विनाश चाहता होगा ।' रावणने

आज जिसे लंका कहा जाता है, वह तो सिंहल द्वीप है । वाल्मीकीय रामायण और श्रीमद्भागवतमें भी उससे पृथक लंकाका वर्णन है-

'सिंहले लंकेति ।' -भागवत ५-१९-३०

रावणकी लंका भारत के अन्तिम दक्षिण छोर कन्याकुमारी से सौ योजन (सात सौ मील) दूर दक्षिण समुद्रमें थी । वहाँ इस समय लंकद्वीप समूह है । समीपके मालद्वीप समूह मारीच द्वीप हैं ।

जब रामका नाम लिया था, तभी मारीचने भयसे काँपते हुए चौंककर इधर-उधर देखा था। वह अब भी भयातुर स्वरमें ही बोल रहा था—'राम—आप रामके समीप जानेकी सोचते हैं ? लौटिये लंका। भूल जाइये जनस्थान आपका था। आप नीतिज्ञ हैं। अत्यन्त सबल विरोधी कुछ छीन भी ले तो उसे त्यागकर दूर हट जाना ही श्रेयस्कर होता है। आप उत्तम कुलमें उत्पन्न होकर चोरी करेंगे ? पर-स्त्रीकी चोरी ? मुझे पापमें सहायता देनेको कहते हैं ? देखते ही हैं कि मैं सब सुख-भोग त्यागकर यहाँ एकान्त द्वीपमें भजन करनेमें लगा हूँ। मुझपर दया कीजिये।'

'महाराज ! प्रतिशोधकी ज्वाला बहुत सन्ताप देती है। आप सोचते हैं कि उन तपस्वी कुमारने आपकी निरपराध बहिनको विरूप किया, आपके आरक्षी मारे तो आप उनसे प्रतिशोध लेंगे। मैं भी ऐसा ही सोचता था।' मारीच कहता गया—'आपके आदेशसे भाई और परिवारके साथ मैं सिद्धाश्रमके समीप था। हमारे वनमें विश्वामित्रने आश्रम बना लिया। उनके शापसे सावधान रहकर हम केवल थोड़े उत्पात करके उन्हें वहाँसे भगा देना चाहते थे। विश्वामित्र अयोध्याके राजा दशरथसे उनके इन्हीं पुत्रोंको माँग लाये। मेरी माता ताड़काको इन्हीं बड़े साँवलेने एक ही शरमें मार दिया।'

मारीच रो पड़ा। वह रामका नाम लेनेसे भी बचता था। उसने कहा—'मेरे सब सहायक और मेरे भाई सुबाहुको इन्होंने मार दिया। उस समय मैं इनके शराघातसे सौ योजन दूर समुद्र-तटपर गिरा, मूर्छित होगया था। जब मूर्छा मिटी, बहुत क्रोध आया अपने भाई तथा सहायकोंका विनाश ज्ञात होनेपर; किन्तु अयोध्या जानेका साहस नहीं था। मैं प्रतिशोधकी ज्वालामें जलता रहा। सुअवसरकी प्रतीक्षा करता रहा। थोड़े-से मायावी राक्षस सहायक भी मिल गये मुझे। इन दोनोंका पता लेता रहा। प्रसन्न हुआ जब ये वनमें आये। जब इन्होंने पञ्चवटीमें पर्ण-कुटी बना ली, मैं अपने सहायकोंको लेकर इन्हें मारने पहुँच गया।'

'महाराज ! इनके दिव्यास्त्रकी शक्ति देख चुका था। प्रकट आक्रमणका साहस नहीं था। सोचा था कि दोनों भाइयोंको पृथक-पृथक करके धोखेसे मार देंगे। मैं और मेरे सब सहायक मृग बनकर गये थे।' मारीचने फिर चौंककर

इधर-उधर देखा—'इन दोनोंमें एकको भी धोखा देना सम्भव नहीं। बड़ेने देखते ही हमें पहिचान लिया। दूसरे मृगोंके साथ खेल रहे थे; किन्तु हम पहुँचे तो धनुष चढ़ा लिया। हममें-से किसीको भागनेका अवसर नहीं मिला। सब सहायक मारे गये। पता नहीं क्यों उन्होंने इस बार भी मुझे मारा नहीं। इस बार उनके शराघातसे मैं इस द्वीपमें आकर गिरा।'

'मुझे भयोन्माद हो गया है तबसे। किसी शब्दका प्रथमाक्षर 'रा' हो तो—र हो तो भी उसे पूरा सुननेसे पूर्व ही मेरे प्राण-सूखने लगते हैं। मैं राज, रत्न, रमणी, रथ आदि सुनकर भी चौंकता हूँ—कहीं 'राम आये' न सुनायी पड़ें।' मारीच गिड़गिड़ाया—'महाराज ! बहुत उत्पीड़क होती है प्रतिशोधकी ज्वाला; किन्तु वह इस स्थानमें तो विनाशको बुला रही है। आप इस विचारको त्यागकर लंका लौटिये।'

'मारीच ! मैं तुमसे उपदेश नहीं सुनने आया हूँ। तुमसे सहायता लेना आया हूँ।' रावणने खड्ग खींचकर गर्जनाकी—'तुम जानते हो कि दशग्रीव प्रतिवाद नहीं सुना करता। अभी यहीं मरना है तुम्हें ? नहीं तो जो कहता हूँ, चुपचाप सुनो और आज्ञापालन करो। मेरे साथ रथमें बैठो। तुम वहाँ मृग बनकर गये थे, इस बार मैं तुम्हें उनकी पर्णकुटीके समीप रथसे उतार दूँगा तो मृग बन जाना—इतना सुन्दर मृग कि वे देखकर तुम्हारा चर्म पानेको लालायित हो उठें। उन्हें अपनेपर आकर्षित करके तुम्हें दूर ले जाना है—इतनी दूर कि लौटें भी तो आधी घड़ी लगे उन्हें। फिर उनके बाणसे कैसे बचकर निकल भागना, यह सोचना तुम्हारा काम है। मैं इतने अन्तरालमें उनकी पत्नीका हरण कर लूँगा।'

'मैं आर्त हूँ। तुम्हारी शरण आया हूँ। तुम्हारी सहायता चाहता हूँ।' दशग्रीवने स्वर बहुत विनम्र बना लिया—'तुम बहुत बड़े मायावी हो, बलवान हो और मैं तुम्हारा स्वामी संकटमें हूँ। मेरी बहिन कुरूपा कर दी गयी है। मेरे तीन भाई मार दिये गये हैं। मैं उनकी त्रिभुवनसुन्दरी पत्नीको पाये बिना व्याकुल होरहा हूँ। तुम्हें मेरी सहायता करनी चाहिये।'

'अपने प्राण देकर भी सत्पुरुष स्वजातिके अपमानका प्रतिशोध लेते हैं।' रावण कहता गया—'पत्नी उन्हें बहुत प्रिय है। उसके वियोगमें वे स्वयं

प्राण त्याग देंगे । न भी प्राण त्याग दें तो दुर्बल हो जायँगे । तब मैं उन्हें मार दूँगा ।'

'महाराज ! संसारमें आपके समान शक्तिशालीको स्तुति करने वाले, मधुभाषी सदा ही मिलते हैं; किन्तु सत्य और हितकी कटु बात कहने वाले मिलने दुर्लभ हैं । भले वह बात औषधिके समान हो ।' मारीच काँपते हुए बोला । जैसे उसके शरीरका रक्त सूख गया हो । बार-बार अपने ओष्ठ चाटता था । अटकता था बोलनेमें—'आपके गुप्तचर असावधान हैं । उन्होंने आपको विपक्षीके सम्बन्धमें ठीक समाचार नहीं दिया है । मैं चाहता हूँ कि राक्षस-जातिपर उनका क्रोध न उतरे, तभी हम सबका मंगल है । सीताके कारण समस्त राक्षस जातिका ही विनाश मत बुलाइये ! इस प्रकार तो लंका ही नष्ट हो जायगी !'

'वे बहुत वीर्यवान, बुद्धिमान, निर्लोभ, धर्मज्ञ, गुणवान और अजेय हैं ।' भयके कारण निरन्तर श्रीरामके चिन्तनमें लगे रहनेसे मारीचका अन्तःकरण निर्मल होगया था । उसके मानसमें श्रीरामका स्वरूप आने लगा था । उसने बतलाया—'आप भ्रममें मत पड़ो कि वे किसी दोष-दुर्बलताके कारण निर्वासित हैं । माता-पिता की बात मानकर वे वनमें आये हैं । जितेन्द्रिय हैं, स्त्री-जित नहीं । क्रूर नहीं हैं, सदय हैं । आपकी बहिनके द्वारा बड़ा अपराध हुए बिना उसे विरूप नहीं किया होगा । अज्ञ नहीं हैं कि उन्हें धोखा दिया जा सके । वे तो मूर्तिमान धर्म हैं । उन सत्य पराक्रमसे शत्रुता मत करो ।'

'राक्षसेश्वर ! सीता परम सती हैं । वे भले मर जायँ—रामको छोड़कर दूसरेकी ओर दृष्टि नहीं उठावेंगी ।' मारीचने फिर चेतावनी दी—'सीता अपने सतीत्वसे ही सुरक्षिता है । उनके लोभमें रामकी क्रोधाग्निको फूँक मारकर मत भड़काओ । रामके समीप मत जाओ ! अपने राज्य, सुख, स्वजन, सबको संकटमें मत डालो । सीताको धर्षित कर पाना अशक्य है । सीता तो अग्नि-शिखाके समान है । कदाचित् आपने युद्धमें रामको देखा होता । एक बार लंका जाकर कुम्भकर्ण विभीषण आदिसे सम्मति कर लो ।'

'आप जानते हो कि मुझमें दस सहस्र गजबल हैं । मैं ऋषि-मुनियोंका ही मांस खाता था और वे बालक थे, तब तक दिव्यास्त्र भी नहीं मिले थे

उन्हें, जब उन्होंने सिद्धाश्रममें मुझे उपेक्षापूर्वक बिना फरका बाण मारा था ।' मारीचने समझानेका पूरा प्रयत्न किया 'मैं दूसरी बार दण्डकारण्यमें मृग बनकर गया, तब भी ऋषियोंको ही खाता था । एक ही आघातसे मेरे साथी मार दिये उन्होंने और मुझे यहाँ फेंक दिया । तबसे मैं कन्द-मूल खाकर रहने लगा । मेरा जीवन परिवर्तित होगया । मुझे तो जहाँ दृष्टि जाती है, वे धनुर्धर इन्दीवरसुन्दर ही दीखते हैं ।'

'महाराज ! बलि और नमुचि जिनको जीत नहीं सके, हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपुको जिन्होंने फाड़ फेंका, उनसे शत्रुता मत करो ।' अन्तमें रोकर बोला—'यदि आप मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मेरे सामने उनकी चर्चा मत करो । उनका नाम मत लो । आपको उचित लगे, वह करो; किन्तु मैं आपका साथ इस समय नहीं दे सकूँगा ।'

'मारीच ! उपदेश मत दो । जो स्त्री कैकेयीकी बात मानकर वनमें चला आया वह बुद्धिमान हो सकता है ? उसमें दोष हैं या गुण, यह मैं तुमसे नहीं पूछता । मुझे सीताका हरण अवश्य करना है । तुमसे कुछ नहीं जानना चाहता । मैं राक्षसेश्वर तुम्हारे पास आया हूँ और तुम दुष्टतापूर्वक कटु भाषण करते हो ? मेरा कहना मानो ! वहाँ स्वर्णमृग बन उन्हें प्रलुब्ध करो । जब वे तुम्हारे पीछे दूर चले जायँ तो उनके स्वरमें आर्तके समान लक्ष्मणका नाम लेकर पुकारना और फिर चाहे जहाँ भाग जाना ।' रावणने प्रलोभन दिया—'तुम्हें मेरी यह सहायता करनी ही है । मैं सफल होकर लौटनेपर तुम्हें एक पूरे प्रदेशका राजा बना दूँगा । उठो ! तुम्हारा मार्ग कल्याणकारी हो । मेरे अनुकूल चलकर ही बच सकते हो, अन्यथा मैं अभी तुम्हें मार दूँगा ।'

'मार देने योग्य वह है जिसने तुम्हें यह सम्मति दी है । वह पापी है । उसने तुम्हें विनाशका मार्ग बतलाया है । वह तुम्हें प्रज्वलित अग्निमें झोंक देना चाहता है !' मारीचने सिरपर दोनों हाथ पटके—'तुम मुझे राज्य दोगे ? मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि उनके सम्मुख जाकर जीवित बचनेकी आशा करूँ । उन्होंने दो बार मुझे जीवित छोड़ा है, अब नहीं छोड़ेंगे । लेकिन तुम भी अपनेको अब मरा ही मानो । मैं चल रहा हूँ । तुम्हारी आज्ञा मानूँगा । यहाँ तुम्हारे हाथसे मुझे नहीं मरना है । मैं राक्षस हूँ, तुम्हारा आश्रय पाया

है । ऋषि-मुनियोंके भक्षणका पाप भी सिरपर है । उनके वाणसे, उनको देखते हुए देहत्याग ही मेरे लिए सबसे श्रेयस्कर है ।'

'अब तुमने समझदारी की बातकी है ।' रावण यह कहकर मुड़ पड़ा । उसके पीछे सिर झुकाये मारीच चलता रहा, जैसे प्राणदण्ड प्राप्त अपराधी फाँसीके तख्तेकी ओर जाता है । समस्त अस्त्र-शस्त्रोंसे भरे उस रथमें मारीच पीछे जाकर बैठ गया । उस पिशाच मुख गधे वाले रथमें रावण मारीचके समीप बैठा । वह रथ वहाँसे आकाशमें उठा और उत्तर चल पड़ा ।

●●●

सीता-हरण

'अब तुम अपना काम करो !' रावणने पञ्चवटी पहुँचकर रथ छिपाया थोड़ी दूर और मारीचको हाथ पकड़कर पर्णकुटीकी ओर संकेत करके बोला— 'स्मरण रखो कि दोनों भाइयोंको यहाँसे दूर करना है । तुम्हें पर्याप्त पुरस्कार प्राप्त होगा ।'

'पौलस्त्य ! पुरस्कारका प्रलोभन मत दो ।' मारीचने रावणकी ओर घृणापूर्वक देखकर कहा—'मैं आज मरणका महापर्व मनाने आया हूँ; किन्तु तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूर्ण कर दूँगा । रामने राक्षस-कुलके विनाशकी प्रतीज्ञा की है । उनका प्रण पूरा हो और मेरे समान ही तुमको तथा तुम्हारे सब स्वजनों, सेवकोंको रामके शरोंसे प्राण-त्यागका सौभाग्य प्राप्त हो ।'

दशग्रीव मनमें हँसा । मारीचका यह शाप उसे वरदान प्रतीत हुआ । मारीच क्षणार्धमें मायामृग बन गया । अद्‌भुत स्वर्णमृग । उसके स्वर्णिम शरीरपर सर्वत्र उज्ज्वल रजत-विन्दु थे । श्रृंग श्वेत रौप्य निर्मित लगते थे और खुर लगता था कि नीलमणिसे बने हैं । श्रृंगाग्र जैसे रक्तपीतमणिसे बने हों । मुखका भाग कृष्ण-श्वेत था । ओष्ठ लाल थे । जब वह आश्रमकी ओर दौड़ चला, रावण उसे मनमें सफल होनेका आशीर्वाद देता, मुग्ध नेत्रोंसे देखता रहा ।

'आर्य पुत्र ! यहाँ आइये ।' श्रीजनक-नन्दिनी पुष्प चयन करने उठी थीं । दिनका तृतीय प्रहर था । मृगको देखकर वे मुग्ध नेत्रोंसे उसीकी ओर देखने लगी थीं । मृग कभी कोमल तृणमें मुख लगाता था, कभी चौकड़ी भरकर दूर जाता था और कभी समीप आकर श्रीवैदेहीके चरण सूँघ जाता था । अत्यन्त ललित चेष्टा थी उसकी ।

'ऐसा मृग तो मैंने कभी देखा नहीं । आप इसे पकड़ लाइये । मैं इसे अपना क्रीड़ा-मृग बनाऊँगी । पालूँगी इसे । अपने साथ अयोध्या ले जाऊँगी । मेरी बहिनें और माननीया सासजी प्रसन्न होंगी इसे देखकर !' श्रीरामके समीप आ जानेपर जानकीने उनके वाम स्कन्धपर कर रखकर अत्यन्त आग्रह भरे स्वरमें कहा । इसी समय मृग लम्बी छलाँग लेकर दूर चला गया । यह देखकर मैथिली बोलीं—'यह बहुत चञ्चल है । यदि पकड़ा न जा सके तो इसे मारकर इसका चर्म मुझे ला दीजिये । मेरी तपस्विनी सासजी इसके चर्मको पाकर प्रसन्न होंगी ।'

श्रीरामने विचित्र भंगीसे भार्याकी ओर देखा । उस दृष्टिमें उपालम्भ था—'देवि ! सृष्टिके सुन्दरतम प्राणियोंके चर्म, पंख आदि अपने मनोरञ्जनके लिए प्राप्त करनेकी यह वासना बहुत निष्ठुर है ।'

'इसे पकड़ लाइये अथवा इसका चर्म ला दीजिये ।' श्रीवैदेहीने फिर अनुरोध किया । उनकी दृष्टि मृगपर लगी थी । इस समय स्वामीकी दृष्टिका तात्पर्य समझनेकी मनस्थितिमें वे नहीं थी ।

'अच्छा देवि !' श्रीरामने शिथिल स्वरमें ही स्वीकार किया । जैसे मनमें कहा हो—'तुमको स्वर्णमृग पानेका लोभ लगा है तो स्वर्णपुरीमें ही निवास करना होगा ।'

वह स्वर्णमृग कभी पौधोंके कोमल अंकुर खा लेता था । कभी पृथ्वी सूँघता था । दूसरे मृगोंने उसे सूँघा और दूर भाग गये । चतुष्पाद प्राणीकी नासिकाको मारीचकी माया धोखा नहीं दे सकी थी । लक्ष्मण यह देखकर सशंक होगये ।

'आर्य ! पहिले भी मायावी राक्षस मारीच मृग बनकर इस अरण्यमें आचुका है । उसने बहुत-से मुनियोंको खा लिया था । लगता है, वही आया

है । मृग बननेका उसे अभ्यास है ।' श्रीराम धनुष उठाने पर्णकुटीमें आये तो लक्ष्मणने समीप आकर नम्रतापूर्वक निवेदन किया—'सृष्टिमें ऐसा मृग देखना तो दूर, सुना भी नहीं गया है । अतः यह राक्षसी माया है, मृग नहीं ।'

'लक्ष्मण ! इसके प्रति सीताके मनमें स्पृहा जागी है । यदि यह मुनि-भक्षक मारीच है, तो भी इसे मार देना उचित है । अतः मैं इसके पीछे जा रहा हूँ । मृग हो या मायावी राक्षस, आज इसका मरण निश्चित है । मैं इसे मारकर शीघ्र लौटूँगा ।' श्रीरामने भाईको सचेत किया—'तुम बहुत सावधान रहकर सीताकी रक्षा करना । यह मायावी राक्षस है तो इसके सहायक भी समीप हो सकते हैं । सीताकी रक्षाके लिए जो आवश्यक हो, करना ।'

श्रीरामने धनुषको ज्या-सज्ज किया । उसपर बाण चढ़ाया । जबसे वैदेहीने श्रीरामको पुकारा था, मृग समीप नहीं आया था । वह दृष्टिसे ओझल भी नहीं हुआ; किन्तु दूर-दूर ही कूदता, उछलता, क्रीड़ा करता रहा । अब धनुषपर बाण चढ़ाये श्रीरामको अपनी ओर आते देखकर वह भाग चला ।

जटामुकुटी, कृष्णमृगचर्मके उत्तरीयपर त्रोण कसे, वल्कलवसन, धनुष चढ़ाये पंकजारुण-चरण श्रीराम वनभूमिमें मृगकी ओर दृष्टि लगाये भाग रहे हैं । भागनेकी आवश्यकता है इन्हें ? जिनका मन्त्र-प्रेरित शर जयन्तके पीछे समस्त लोकोंमें लगा रहा था, वे खड़े-खड़े ही मृगको बाणका लक्ष्य नहीं बना दे सकते ? लेकिन लीलामयको लीला करनी है । मारीच अपने पीछे दौड़ते इन धनुर्धर नीलसुन्दरकी झाँकी करनेकी अभीप्सा लेकर चला है आज और इनसे लगकर किसीकी अभिलाषा अपूर्ण तो नहीं रहती ।

मृग गर्दन मोड़कर बार-बार पीछे देखता है—'वे आ रहे हैं । वे दौड़े आ रहे हैं ।' मन-प्राणमें यह छवि बस गयी है । वह छलाँगें लगाता है—लम्बी छलाँगें और दूर चला जाता है । रुकता है, पीछे देखता है और ऐसे चलने लगता है जैसे अब श्रान्त हो गया । अब कूद नहीं सकेगा । कभी पृथ्वीसे चिपक-सा जाता है । कभी लगता है कि कहीं छिप गया, अदृश्य होगया । श्रीराम चौंककर देखने लगते हैं इधर-उधर । सहसा फिर सम्मुख दौड़ता दीखता है ।

'यह तो मुझे बहुत दूर ले आया !' श्रीराम चौंके । उन्होंने दौड़ते पद

रोके । धनुषपर चढ़ा बाण लक्ष्यपर छोड़ दिया ।

'हा सीते ! हा भाई लक्ष्मण ! भैया लक्ष्मण ! लक्ष्मण !' मृग बने मारीचने गर्दन घुमाकर अरुणाभ हुए—स्वेद-कणोंसे सुशोभित श्रीरामका मुख देखा । इसी समय बाण उसके हृदयको फोड़ता निकल गया । मारीचने मरते-मरते श्रीरामके ही स्वरमें तीन बार लक्ष्मणको पुकारा । व्याकुलतामें माया मिट गयी । मृग-देह नहीं, राक्षस मारीचका शरीर गिरा भूमिपर । प्राण-त्याग करते उसके ओष्ठ हिले । क्षीण, अस्पष्ट ध्वनि निकली—'राम !'

'यह राक्षस !' श्रीरामने सदय दृष्टि डाली । मारीच धन्य हो गया । श्रीरामका दर्शन करते, उनके बाणसे विद्ध, उनका नाम लेता, उनकी दृष्टिके सम्मुख देहत्याग किया उसने । लेकिन श्रीराम दूसरे ही क्षण चौंककर लौट पड़े—'इसने दुष्टतापूर्वक मेरे स्वरमें ही मेरे भाईका नाम कातर कण्ठसे पुकारा है ! क्या दशा होगी यह स्वर सुनकर सीता और लक्ष्मणकी ?'

'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' स्वर बहुत कातर, बहुत उच्चस्वरमें गूँजा था । उसे लक्ष्मणने और सीताने सुना । लक्ष्मण धनुष चढ़ाये सावधान स्थिर थे । उनके अनुरोधपर श्रीजानकी पुष्प-चयन त्यागकर पर्णकुटीमें लौट आयी थीं । लक्ष्मणने कहा था—'अग्रजके लौटने तक आपको पर्णशालामें ही रहना चाहिये ।'

'लक्ष्मण ! तुम अभी यहीं खड़े हो ? सुनते नहीं हो कि तुम्हारे अग्रज तुम्हें संकटमें पड़े पुकार रहे हैं ?' अत्यन्त व्याकुल होकर पर्णशालाके द्वारपर खड़े लक्ष्मणसे श्रीमैथिलीने कहा—'दौड़ो ! अपने अग्रजकी शीघ्र सहायता करो !'

'अम्ब ! यह स्वर मेरे आराध्य अग्रजका नहीं है । यह किसीका छलपूर्ण स्वर है । श्रीरामको संकट-ग्रस्त कर सके, ऐसी शक्ति त्रिभुवनमें नहीं है ।' लक्ष्मणने शान्त स्वरमें समझाया—'आप धैर्य रखें । रघुवंशी कुमार प्राण-संकटमें भी इतना कातर कभी नहीं होता कि इस प्रकार पुकार करे । मेरे समर्थ अग्रज ऐसे स्वरमें पुकारेंगे कभी ?'

'दुर्बुद्धे ! क्या तुम बड़े भाईका मरण चाहते हो ?' नेत्रोंमें अश्रु भरे आग्नेय दृष्टिसे लक्ष्मणकी ओर देखती सीताने क्रोधपूर्वक कहा—'रामका संकट तुम्हें प्रसन्न करता है ? तुम्हें भरतने नियुक्त किया है अथवा स्वयं मेरे प्रति

दुर्भावके कारण साथ लगे वन आये हो ? स्मरण रखो कि सीता शरीर त्याग देगी । अन्य पुरुष इसे प्राप्त नहीं कर सकेगा ।'

'देवि ! मेरे अग्रजको युद्धमें सुर-असुर, पिशाच, राक्षस कोई जीत नहीं सकते । श्रीराम अवध्य हैं । उनके विषयमें आप भय त्याग दें ।' लक्ष्मणने मस्तक झुकाये हुए समझाया—'अग्रजने मुझे आपकी रक्षामें नियुक्त किया है । मैं आपको एकाकिनी नहीं छोड़ सकता ।'

'तुम मित्रके रूपमें भाईके शत्रु हो ! इस करुण पुकारको सुनकर भी उनकी सहायताको नहीं जा रहे हो । तुम उनकी मृत्यु देखना चाहते हो ?' सीता धम्-से बैठ गयीं—'तुम्हारे मनमें दुर्भाव है । मैं पाषाणपर मस्तक पटककर अभी प्राणत्याग करूँगी ।'

'आप मेरी आराध्या हैं । मैं आपको उत्तर नहीं देना चाहता; किन्तु मेरे प्रति ऐसे वचन आपके योग्य नहीं हैं ।' हाथ जोड़कर रुदन करते लक्ष्मणने कुछ क्रोधपूर्वक कहा—'वनके सब प्राणी, वनदेवता सुन लें कि आपको मुझसे भी शंका है । आपको धिक्कार है । आपका मंगल हो । मैं श्रीरामका सेवक हूँ । आपकी आज्ञासे उनके समीप जाता हूँ । वनदेवता आपकी रक्षा करें ।'

'अम्ब ! एक अनुरोध मान लेना ।' चलते-चलते पर्णशालाके चारों ओर लक्ष्मणने धनुषकी नोकसे मन्त्रपाठ करते हुए रेखा खींचकर कहा—'अग्रजके लौटने तक इस रेखाका उल्लंघन करके बाहर मत निकलना ।'

वह अनन्तके द्वारा अभिमन्त्रित रेखा—श्रीजानकीके अतिरिक्त दूसरा कोई उसका उल्लंघन करनेका प्रयत्न करते ही भस्म हो जाता; किन्तु लक्ष्मणके अग्रज अनन्त-लीला-विहारी हैं । अपने आश्रितका अपराध क्षमा करना वे जानते ही नहीं । लक्ष्मणका अपमान किया सीताने और सर्वेश्वरने उनके लिए भी अपहरण, राक्षसपुरीके उत्पीडनकी व्यवस्था स्वीकार कर ली ।

लक्ष्मण चले तभी अपशकुन हुए । उन्होंने लौटकर पर्णकुटीकी ओर देखा तो व्याकुल होकर वैदेही चीत्कार कर उठीं । अपने करोंसे उदरपर आघात करने लगीं । लक्ष्मणने विवश होकर भूमिमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया और उन्हें पर्णशालाके दाहिने करके बड़े भाईकी ओर रोते हुए चल पड़े ।

लक्ष्मण पर्णशालासे थोड़ी ही दूर गये थे कि छिपकर सब कुछ देखता

दशग्रीव प्रकट हुआ। उसने त्रिदण्डी साधुका वेश बनाया था। उज्ज्वल चमकता कौशेय-गैरिकवस्त्र, शिखा, यज्ञोपवीत, छाता और पादत्राण भी। बायें कन्धेपर दण्ड, वामहस्तमें कमण्डलु, भस्मका त्रिपुण्ड, रुद्राक्षकी माला कण्ठमें, भुजाओंमें। कोई भी तनिक ध्यान देता तो समझ लेता कि कौशेयगैरिकवस्त्र, छाता, उपानहधारी साधु नहीं हो सकता—त्रेतामें तो नहीं ही। त्रिदण्डके साथ भस्म त्रिपुण्ड, रुद्राक्षकी मालाओंका क्या मेल ? लेकिन दशग्रीव जानता था कि नारीके लिए कैसा भी साधुवेश पर्याप्त है। वह श्रद्धामयी वेशका विवेचन नहीं जानती।

रावणको देखते ही वृक्ष-लताएँ काँपने लगीं। वनदेवका साहस दशग्रीवके सम्मुख कुछ करनेका नहीं था। वायु स्तब्ध होकर शान्त हो गया। पर्णशालाके भीतर अग्निने स्वतः प्रज्वलित होकर केवल अपनी उपस्थिति प्रकट की। पशु भागे। पक्षिवृन्द चिल्लाकर उड़ता दूर चला गया।

'भवती भिक्षां देहि।' रावणने पर्णशालाके समीप पहुँचकर पुकार की। पुकारनेके पश्चात् सस्वर वेदमन्त्रोंका पाठ करने लगा।

'भगवन्! मैं आपकी वन्दना करती हूँ।' श्रीमैथिलीने पर्णशालाके द्वारपर आकर अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'आप कुछ देर विश्राम करें। उस सम्मुखकी पर्णकुटीमें मेरे स्वामी अनुजके साथ आखेट करने गये हैं। अब आते ही होंगे। आकर वे आपको सविधि अर्घ्य अर्पित करेंगे। आपका सत्कार करेंगे।'

'देवि! आपका कल्याण हो। मैं पर्णशाला देखकर भिक्षाकी आशासे चला आया था।' उस कपट साधुने कहा—'गृहस्थके द्वारपर साधुको प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिये। मैं जा रहा हूँ।'

'आप एक क्षण रुकें! मैं ही आपको भिक्षा देती हूँ।' श्रीजानकीने प्रार्थना की—'गृहस्थके द्वारसे अतिथि निराश लौट जाय तो गृहपतिके समस्त पुण्य नष्ट हो जाते हैं। आप हमारे पुण्य प्रारब्धसे पधारे हैं तो कृपा करके हमें पाप-भागी बनाकर मत जाइये।'

'जैसी तुम्हारी श्रद्धा!' रावण झोली फैलाये खड़ा हो गया। लेकिन जब श्रीवैदेही फल, कन्द, मूल लेकर द्वारपर आयीं और भिक्षा देनेके लिए हाथ बढ़ाया तो दशग्रीव चार पद पीछे हट गया। उसकी दृष्टि नीचे रेखापर लगी

थी । वह वेद एवं तन्त्रोंका, मन्त्रशास्त्रका महापण्डित—उससे उस रेखाका प्रभाव छिपा रहता ? उसने कहा—'देवि ! किसीने इस पर्णशालाको वेष्टित कर दिया है । मैं बद्ध भिक्षा नहीं स्वीकार कर सकता । जो मुक्ति-मार्गका पथिक है, बद्ध आहार उसके लिए आग्रह्य है ।'

धर्म-संकट उपस्थित होगया । इस वनमें इतने दिनोंके अनन्तर एक साधु अतिथि आया, वह क्षुधातुर है और निराश लौटा जा रहा है । इससे तो पतिके धर्मका ही नाश हो जायगा । यह सोचकर श्रीवैदेही भिक्षा लिये पर्णशालासे बाहर रेखाका उल्लंघन करके आयीं—भगवन् ! भिक्षा लें ।'

'तुम स्वर्णिम पद्मिनी-सी सुन्दरी कौन हो ? कौन हैं तुम्हारे निष्ठुर पति जो इस राक्षसोंसे घिरे वनमें तुम्हें ले आये ?' रावणने झोली नहीं फैलायी । वह एकटक श्रीजानकीको देखता खड़ा रहा ।

'मैं मिथिला-नरेशकी पुत्री सीता हूँ । मेरे पति अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के ज्येष्ठ पुत्र हैं । पिताकी आज्ञा मानकर चौदह वर्षके लिए वन आये थे । अब तो वनवासके अधिक वर्ष व्यतीत हो चुके ।' सीताजीने संकोचपूर्वक दृष्टि झुका रखी थी । वे देख नहीं सकती थीं कि दशग्रीव सशंक बार-बार पीछे और इधर-उधर देखता है । उन्होंने आग्रह किया—'आप भिक्षा ग्रहण करें ।'

'तुम जैसी सौन्दर्य-मूर्त्ति, सुकुमारी, रमणी-शिरोमणि क्या वनवासियोंके साथ यहाँ वनमें रहने, वल्कल पहिनने योग्य है !' रावणने बिना झोली आगे बढ़ाये कहा—'तुम तो स्वर्ण-सौधमें सेविकाओंसे घिरी सेवा पाने योग्य हो । तुम स्वयं मुझे स्वीकार करो ।'

'तुम कौन हो ? साधु होकर अकेली अबलासे एकान्तमें ऐसी बात कहते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?' श्रीमैथिलीका स्वर कठोर हो गया—'तुम्हें भिक्षा लेनी है ?'

'मैं भिक्षा लेने ही आया हूँ; किन्तु मेरी भिक्षा तुम स्वयं बनो !' खुलकर अट्टहास किया दशग्रीवने—'देख लो कि मैं कौन हूँ । स्वर्णपुरी लंकाका त्रिभुवन-विजयी राक्षसेश्वर रावण स्वयं तुमसे याचना करता है ।'

साधु-वेश तो माया-वेश था । वह सहसा लुप्त हो गया । दशमौलि,

बीस भुजावाला, रत्नमुकुटी, रत्नाभरणोंसे सजा दशग्रीव सम्मुख खड़ा था । अब उसका सारथि छिपे रथको पर्णशालाके द्वारपर ले आया । रावणने दुष्टतापूर्वक हाथ बढ़ाया— 'विदेह-नन्दिनी ! अब चलो, रथमें बैठो । लंकाका साम्राज्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है । साम्राज्ञी बनकर उसे और मुझे भी सनाथ करो ।'

'दुष्ट ! सानुज स्वामी नहीं हैं, इसलिए तू कुटिल शृगालके समान यहाँ प्रविष्ट होगया है और मुझे प्रलोभन देता है ? सिंहकी वधूकी कामना तू शशक करता है ?' श्रीजानकीके अधर फड़कने लगे यद्यपि मनमें वे सभय सशंक हो उठी थीं; किन्तु स्वर कठोर बनाकर डाँटा उन्होंने—'तू त्रिभुवनजयी बनता है ? दो क्षण खड़ा रह यहाँ । अभी स्वामी सानुज आये जाते हैं । वे तेरा दर्प दलित कर देंगे । मैं तुझे शाप देकर भस्म कर सकती हूँ; किन्तु-

दशग्रीव काँपकर दो पद पीछे हट गया । उसे सन्देह नहीं था कि इन सती-शिरोमणिने शाप दे दिया तो ब्रह्माका कोई वरदान उसकी रक्षा नहीं कर सकेगा । लेकिन सीताके 'किन्तु' ने उसे साहस दिया ।

'किन्तु समर्थ स्वामीके रहते नारी अपनी रक्षाका स्वयं उद्योग करे, यह स्वामीके पौरुषपर अविश्वास है ।' वैदेहीने यह कहा और दशग्रीवको मानों अभय-दान मिला । अब उसे इन तेजोमयीके द्वारा प्रशप्त होनेका कोई भय नहीं रह गया । उसे शीघ्रता करनी चाहिये । श्रीराम-लक्ष्मण आ पहुँचे, इससे पूर्व उसे अपना अभीष्ट पूर्ण करके पर्याप्त दूर पहुँचना चाहिए ।

'धन्य सतीत्व !' दशग्रीवने मनमें सम्मुख खड़ी श्रीसीताकी चरण-वन्दना की । वे मिथिलेश-नन्दिनी पर्णकुटीमें जानेको लौट पड़ी थीं । रेखाके भीतर होनेसे पूर्व ही रावणने पीछेसे पकड़कर उठाकर रथमें डाला । उसके बैठते ही रथ आकाशमें उड़ चला ।

●●●

जटायुका आत्मोसर्ग

'अरे दुष्ट ! तू क्यों अपना विनाश आमन्त्रित करता है । मैं अजेय, जितेन्द्रिय यशस्वी रघुवंश-भूषणकी अनुव्रता हूँ ।' सीताने पहिले डाँटा—'तू सिंहके मुखमें सिर डाल रहा है ! महासर्पकी मणिका हरण करके सकुशल रहनेकी कामना मत कर !'

'मैं कुबेरका भाई हूँ । देवता भी मेरे भयसे काँपते हैं । त्रिलोकजयी रावणकी स्वर्णपुरी लंकामें पहुँचकर तुम मर्त्यधर्मा रामको भूल जाओगी ।' रावणने कहा—'तुम मेरी सर्वप्रधान महाराज्ञी बनो । पाँच सहस्र दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी । समुद्रसे घिरी लंका अजेय है । राम वहाँ पहुँच भी नहीं सकते ।'

'तू दुर्बुद्धि ! तेरे दोषसे समस्त राक्षस कुलका संहार होगा ।' सीताने फिर डाँटा—'भले तू रसातल या पातालमें छिपे; किन्तु राघवके शरानलमें भस्म होकर रहेगा । भले प्रभा सूर्यके बिना रहे, ज्योत्सना-चन्द्रको त्याग दे, यह जनकपुत्री रामके अतिरिक्त दूसरेकी हो नहीं सकती ।'

रावण मौन हो गया । सारथिको उसने संकेत किया, रथ पूरे वेगसे ले चलनेको ।

'वनदेव ! वृक्षो ! देवी गोदावरी !' श्रीमैथिलीने अञ्जलि बाँधकर कातरकण्ठ प्रार्थना की—मेरे स्वामीके लौटनेपर उन्हें बतलाना कि मुझे अधम राक्षस दशग्रीव बलात् ले गया है ।

'हा लक्ष्मण ! हतभागिनी सीताने तुमपर विश्वास नहीं किया ! तुम्हें असहनीय कठोर वचन कहे—इस मूर्खा, विपद्ग्रस्ताको क्षमा कर देना !' आर्तकण्ठसे पुकार निकली—'लक्ष्मण ! कहाँ हो तुम ? दौड़ो ! राक्षस मुझे लिए जा रहा है । स्वामी ! आर्यपुत्र ! आप कहाँ हैं ?'

मिथिलेशनन्दिनी अत्यन्त व्याकुल इधर-उधर ऊपर-नीचे देख रही थीं—कोई स्वामीको पुकार दे । कोई देवर लक्ष्मणको कह दे । कोई दो क्षण इस दुष्ट राक्षसको रोक दे ।

'आर्य ! यह दुष्ट मेरा अपहरण कर रहा है ।' महावटके ऊपर बैठे जटायुपर दृष्टि पड़ी । करुण कण्ठसे चीत्कार निकली—'आप अत्यन्त वृद्ध हैं । असमर्थ हैं इस राक्षसको रोकनेमें; किन्तु आर्यपुत्रसे, लक्ष्मणसे कह दें...... ।'

'पुत्री सीता !' बात पूरी होनेसे पहिले ही जटायुका स्वर गूँजा—'भय मत कर ! मैं इस राक्षसको नष्ट कर दूँगा ।'

जटायुकी दृष्टि तबसे श्रीरामपर लगी थी, जबसे वे मायामृगके पीछे दौड़े थे । जटायुको अवसर ही नहीं मिला था कि रामको सावधान कर दें । वे सतर्क देख रहे थे कि मायावी राक्षस मृग बनकर अपने पीछे रामको लिये जा रहा है । सचिन्त हुए जटायु—'यह दुष्ट क्या करेगा ?'

श्रीरामने जब मारीचको मार दिया, जटायु प्रसन्न हुए । अभी वे श्रम-विन्दु शोभित रामके कमलमुखकी शोभा देखनेमें तन्मय थे कि श्रीसीताका कातर स्वर श्रवणमें पड़ा । जटायु चौंके और पंख फैलाकर टूट पड़े । समीपका पूरा वन हिल उठा । अनेक शाखाएँ टूट गिरीं । मानों भयानक अन्धड़ आ गया हो । रावण भी चौंका । एक पूरा पर्वत ही उसकी ओर उड़ा आ रहा था—'यह गरुड़ है या मैनाक ? किन्तु गरुड़को साहस होगा मुझसे सामना करनेका ? मैनाक इन्द्रके भयसे समुद्रमें छिपा है । इन्द्रजितके पिताके पास आवेगा ?'

'रावण ! मैं जटायु गीधोंका राजा बोलता हूँ ।' जटायुने पुकारा—'सीताको छोड़ दो । तुम राजा होकर इतना नीच कर्म करने चले ! पर-स्त्रीपर कुदृष्टि अनुचित है । पौलस्त्य ! इतना ऐश्वर्य पाकर भी ऐसा अपकर्म ? मर्यादा विरुद्ध भोग लिप्सा महान् शक्तिशालीको भी विनष्ट कर देती है ।'

जटायु जानते थे कि रावणको युद्धमें वे पराजित नहीं कर सकते । वे रावणके रथके सम्मुख आ गये थे । रथका वेग अवरुद्ध होगया था । जटायुका प्रथम प्रयास यही था कि राक्षसको यथासम्भव तब तक रोका जाय, जबतक राम यहाँ नहीं आ जाते ।

'श्रीराम निरपराध हैं । वे किसीका अपराध नहीं करते । तुम्हारी बहिन सूर्पणखाका ही दोष है । सुनना चाहो तो सीताको त्यागकर मुझ प्रत्यक्षदर्शीसे पूरी बात सुनो ।' जटायुने धमकाया भी—'यह ठीक है कि मैं साठ सहस्र वर्षका हो चुका । वृद्ध हूँ; किन्तु पक्षियोंका युवराज हूँ, तुम सशस्त्र

हो, तरुण हो, फिर भी मेरे जीवित रहते जानकीको लेकर सकुशल नहीं जा सकते ।'

दशग्रीवके बीसों नेत्र अग्निवर्ण हो गये । उसने अपने दसों हाथोंमें पाँच धनुष चढ़ाये और वाणोंकी झड़ी लगा दी; किन्तु जटायुका वेग प्रचण्ड था । अपने पंखोंके झटकेसे उन्होंने बाणोंको व्यर्थ कर दिया । पञ्जेके प्रथमाघातमें ही रावणका सारथी समाप्त होगया । उसके रथको, अश्वोंको चोंचमें पकड़ कर जटायुने ऐसे झिंझोड़ फेंका जैसे बगुला नन्हें मत्स्यको झिंझोड़े । पञ्जे और चोंचके प्रहारसे रावणका शरीर लथपथ होगया । रथ अश्व, सारथी रहित धरापर गिरकर ध्वस्त होगया ।

रावणका धनुष गीधराजने पहिले ही झपाटेमें नोच फेंका था । जब दशग्रीवका अश्व-सारथिहीन रथ गिरने लगा, उन्होंने झपटकर जानकीको पञ्जोंमें उठा लिया; किन्तु दूर जानेका समय नहीं था । जानते थे कि दुष्ट राक्षस अवसर मिलते ही दिव्यास्त्रका भी प्रयोग करनेमें हिचकेगा नहीं । तब सीताके भी प्राण संकटमें पड़ सकते हैं । अतः मैथिलीको थोड़ी दूरीपर भूमिपर धीरेसे धरकर लौटे और रावणपर टूटे । पञ्जे, पंख, चोंचके अनवरत प्रहार—रावणको हाथ उठानेका भी अवकाश नहीं मिला । उसका मुख, भुजाएँ, मस्तक, वक्ष, उदर, पीठ—पूरा शरीर क्षत-विक्षत हो गया । वह घूमकर गिरा और मूर्च्छित होगया ।

मूर्छित शत्रुपर प्रहार क्रूरता होती । जटायुने अब श्रीजानकीकी ओर ध्यान दिया । वे इतने युद्धमें श्रान्त होचुके थे । इस समय सीताको उठाकर पर्णशाला तक पहुँचानेमें भय भी था । दशग्रीव किसी क्षण सचेत हो सकता था । सचमुच दशग्रीव सचेत होगया । जटायुको सीताको आश्वासन देनेका भी अवकाश नहीं मिला ।

श्रीवैदेही अब तक स्तब्ध गीधराज और रावणके युद्धको देख रही थीं । वृद्ध स्वसुरके समान सम्मान्य जटायु उनके लिए दुर्धर्ष राक्षससे भिड़े थे । जानकीका हृदय वेगपूर्वक धड़क रहा था । कुछ क्षण ही तो लगे थे । रावण मूर्छित होकर गिरा । गीधराज समीप आये और तत्काल उन्हें लौटना पड़ा । राक्षसको इतना अवकाश नहीं देना था कि वह दौड़कर अपने ध्वस्त रथमें-से दूसरा अस्त्र उठा सके ।

जटायुके शीघ्रता करनेपर भी दशग्रीव अवसर प्राप्त कर चुका था। उसने अपनी कटिमें लटकती तलवार निकाल ली थी। गीधराजने आक्रमण किया तो राक्षसने तलवारसे उनका एक पंख काट दिया। एक पंख कटते ही असन्तुलित होकर वे लड़खड़ाये, तब तक रावणने उनके दोनों पैर काट दिये और गिरनेसे पहिले ही दूसरा पंख भी काट दिया।

जटायु भूमिपर गिरे। मूर्छित होगये। केवल उनका हृदय धड़कता रहा! चीत्कार मारकर श्रीजानकी दौड़ीं और ऐसे जटायुसे लिपट पड़ीं जैसे पुत्री पितासे लिपट जाय। उन्होंने आर्तस्वरमें पुकारा—'आर्यपुत्र दौड़ो! दौड़ो लक्ष्मण!'

दशग्रीवको लगा कि उसे विलम्ब होगया है। किसी क्षण सानुज श्रीराम आ सकते हैं। उसने तत्काल मायामय रथ प्रकट किया। उसे अपनी ओर आते देख श्रीमैथिली भागीं। उन्होंने एक लताका आश्रय लिया, उसे पकड़ा; किन्तु दुष्ट दशग्रीवसे ऐसे कैसे बचा जा सकता था। रावणने अपने संकल्प-बलसे ही उन्हें मायामय रथमें१ डाला और स्वयं सारथी बनकर रथको आकाश-मार्गसे ले चला। दशग्रीवको लंका पहुँचनेकी शीघ्रता थी। राम पर्णकुटी पहुँचकर किसी दिव्यास्त्रका प्रयोग करें, इससे पूर्व उसे लंका पहुँचना था।

●●●

---

१. मायामय रथ अर्थात् रथ होता नहीं, केवल दीखता है। व्यक्ति दूसरेके संकल्प-बलसे आकाशमें उसके पीछे उड़ा जा रहा है, और उसे तथा दूसरोंको भी दीखता है कि उसे रथमें डालकर ले जाया जा रहा है।

अशोक वाटिका

अधोदृष्टि, आर्तक्रन्दन करतीं श्रीसीता विवशा जा रही थीं— 'हा राघवेन्द्र ! हा रघुनाथ !'

कोई दीख जाय ! वर्णनसे बाहर वेदना— 'इस भाग्यहीनाके कारण वृद्ध गीधराजके प्राण गये !'

अत्यन्त व्याकुल दृष्टि, कहीं नीचे कोई दीख जाय। स्वामी तक सन्देश पहुँचानेका कोई सूत्र मिले। सहसा नीचे पर्वत-शिखरपर पाँच विशालकाय वानर बैठे दीखे—उपदेव वर्गके वानर। श्रीजानकीने अपना उत्तरीय फाड़ा और शरीरके आभरण उतारकर उसमें बाँधे। जैसे ही दशग्रीव शिखरके ऊपर पहुँचा, सीताने वस्त्रमें बँधा आभूषण नीचे फेंककर पुकारा— 'मुझ असहाया जनक-पुत्री सीताके धर्मभाई बनना। स्वामी आवें तो इन्हें देकर समाचार देना।'

अधिक कहनेका अवसर नहीं था। वानरोंमें एकने दौड़कर वह ऊपरसे गिरी वस्त्रमें बँधे आभूषणोंकी गठरी उठा ली, यह दीख गया। दशग्रीवने भी नीचे देख लिया। वह मनमें हँसा— 'यह ऋष्यमूकका शिखर पञ्चवटीसे कितनी दूर है, गगन पथसे इस वेगमें आती सीता क्या समझेगी और नीचे ये वानर—बालिके भयसे यहाँ प्राण बचानेको छिपे ये—कदाचित् राम यहाँ पहुँच भी जायँ तो ये उनका क्या उपकार कर सकते हैं ?'

'दुष्ट ! कापुरुष ! डरपोक ! तूने मृग भेजकर मेरे पतिको दूर किया और तब मेरा हरण किया।' सीताजी रावणको धिक्कारती, डाँटती ही जा रही थी— 'मेरे स्वसुरके सखा गीधराजको मारा तूने। तू चाहे जहाँ छिप ! मेरे स्वामीके कोपसे अब कोई तेरी रक्षा नहीं कर सकता।'

रावण मौन बना रहा। उसका रथ, उसका वेग सब उसके संकल्पका निर्माण था। इस समय उसे दूसरी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं था। सीधे लंकाके अन्तःपुरमें जाकर उतरा वह। राक्षसियोंने उठकर उसको प्रणाम किया। रावणने उन्हें आदेश दिया— 'इसे समझाओ। इसकी अच्छी सेवा करो। रत्न, मणि, वस्त्र जो चाहे, इसे अविलम्ब देना।'

'तुम लोग तत्काल जनस्थान चले जाओ ।' सीताको राक्षसियोंको देकर दशग्रीव पहिले अपने मिलन-कक्षमें आया । वहाँ उसने लंकाके आठ विख्यात मायावी, पराक्रमी दुर्दान्त राक्षस बुलवाये और उन्हें आदेश दिया—'खर-दूषण-त्रिशिराकी राजधानी सूनी पड़ी है । उसे अपना निवास बना सकते हो । वहाँ तुम्हें आहार तथा अन्य सब आवश्यक सामग्री प्राप्त हो जायगी; किन्तु ऐसे छिपकर रहना कि तुम्हारी उपस्थिति किसीको ज्ञात न हो ।'

'पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनाकर अयोध्याके दो राजकुमार तपस्वी वेशमें रहने लगे थे । उनपर निरन्तर दृष्टि रखनी है । तुममें-से कम-से-कम दो रात-दिन उनको देखते रहो ।' दशग्रीवने कार्य बतलाया—'वे किधर जाते हैं, क्या करते हैं, किनसे मिलते हैं, यह सब समाचार सुविधा देखकर मेरे पास भेजते रहो ।'

'वे दिव्यास्त्र ज्ञाता हैं । उनको तुम्हारी उपस्थिति ज्ञात नहीं होनी चाहिये ।' रावणने सावधान करके कहा—'वैसे छिपकर उन दोनोंमें-से एकको भी मार दे सको तो मैं बहुत पुरस्कार दूँगा । स्मरण रखना, एक श्यामवर्ण है, एक गौर है । दोनों पञ्चवटीसे अब किसी ओर चलते भी मिल सकते हैं ।'

इस बार भी दशग्रीव इन चरोंको भेजते समय अपनी उतावलीमें कबन्धका स्थान बतलाकर उससे बचे रहनेको कहना विस्मृत होगया । पहिले भेजे गये राक्षसोंके समान ये भी जनस्थानसे अपरिचित थे । कबन्धके सम्बन्धमें सुना अवश्य था इन्होंने; किन्तु कबन्ध कहाँ रहता है, इसका इन्हें पता नहीं था । अतः ये जनस्थान पहुँचकर पञ्चवटीकी ओर चले तो कबन्धकी योजनभर लम्बी भुजाओंकी पकड़में आगये । कबन्धकी पकड़में आये प्राणीकी एक ही गति होनी थी, उसके उदरमें पहुँचकर पच जाय । दशग्रीवको अपने इन दूतोंका कोई समाचार कभी नहीं मिला ।

जनस्थान दूत भेजकर रावण सीताके समीप पहुँचा । वे घुटनोंमें सिर दिये रुदन करती बैठी थीं । राक्षसियोंने निवेदन किया—'यह कोई बात नहीं सुनती । किसी पदार्थकी ओर नहीं देखती । ऐसी ही बैठी रो रही है ।'

'मेरे साथ चलो ! राजसदन देख तो लो कि यहाँ कितना वैभव है ।

कैसे अलभ्य रत्न, मणि, मृग, पक्षी हैं ।' रावणने विस्तारसे अपने वैभवका वर्णन किया—'मैं बत्तीस करोड़ राक्षसोंका स्वामी हूँ । मुझे प्रसन्न करनेसे यह सब वैभव तुम्हारा हो जायगा । सब राजसदनकी स्त्रियाँ, मेरी पट्टमहिषी मन्दोदरी भी तुम्हारी सेवा करेगी । अब रामको देखनेकी आशा छोड़ दो । त्रिलोकीमें यहाँ पहुँचनेमें कोई समर्थ नहीं है ।'

श्रीवैदेहीने इधर-उधर देखकर एक तृण उठाया—'राक्षस ! तू और तेरा वैभव इस तृणके समान मेरे लिए तुच्छ है । मैं धर्मके सेतु अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्की पुत्रवधू हूँ । मेरे स्वामीके सामने तुमने मेरा हरण करनेका साहस किया होता तो लंका जीवित नहीं लौटते । वे तुम्हें छोड़ेंगे, यह दुराशा त्याग दो । अब तुम्हारे जीवनके थोड़े दिन रह गये । वे क्रोध करें तो समुद्रको शुष्क होते क्षणभर लगेगा । सृष्टिको प्रलयगर्भमें उनका एक शर फेंक सकता है । तुमको मेरे शरीरका लोभ है तो इसे भक्षण कर लो; किन्तु सीता अपने स्वामीको छोड़कर किसी और की ओर दृष्टि नहीं उठावेगी ।'

'सीता ! मैं राक्षस हूँ । मेरी प्रतिज्ञा भी सुन ले !' रावणने कठोर स्वरमें कहा—'मैं केवल बारह महीने प्रतीक्षा करूँगा । इस अवधिमें तूने मेरा प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया तो राक्षसियाँ तुझे काटकर मेरा प्रातराश प्रस्तुत करेंगी ।'

'इसे अशोक वाटिकामें रखो ।' रावण श्रीवैदेहीका उत्तर सुने बिना हट गया वहाँसे । उसने राक्षसियोंको संकेतसे समीप बुलाकर आज्ञा दी—'कोई इसे समझाओ, प्रलोभन दो और कोई भयभीत करो, धमकाओ । लेकिन सावधान ! यह मर गयी तो मैं तुम सबको मार दूँगा । यह आत्महत्या न कर ले, सरोवरमें कूद न पड़े या अपनेको चोट न पहुँचा ले । बहुत अधिक व्याकुल हो, मूर्छित हो जाय तो थोड़ी दूर हटकर छिपकर दृष्टि रखो !'

दशग्रीव प्रशप्त था । रम्भा और पुञ्जिक स्थली अप्सराओंने उसे तब शाप दिया था, जब उसने बलपूर्वक उन्हें धर्षित किया । 'तू किसी नारीके साथ उसकी स्वीकृतिके बिना अनाचार करेगा तो तत्काल मर जायगा ।'[1] इस

---

१. इस शापकी कथा 'राक्षसराज' में दी गयी है ।

शापके कारण रावण कोई धृष्टता करनेका साहस नहीं कर सकता था । वह वहाँसे चला गया ।

'तुझे महारानी नहीं बनना तो उठ यहाँसे ।' राक्षसियाँ गुर्रायीं । श्रीजानकी विवशा उनके साथ अशोक वाटिका चली गयीं । नरेशोंके अन्तःपुरसे लगे पुष्प एवं फलोंके उद्यान प्रायः होते थे । राजभवनकी स्त्रियाँ वहाँ क्रीड़ा-विनोदके लिए जाया करती थीं । ऐसी ही अन्तःपुरका उद्यान थी अशोक वाटिका । उसमें रावणके अपने पुत्रोंका भी प्रवेश नहीं था ।

'अबसे अन्तःपुरकी कोई रानी अशोक वाटिकामें नहीं जायँगी ।' दशग्रीवने उसी दिन आदेश दे दिया—'केवल वाटिका रक्षक रहेंगे वहाँ और वे भी सीतासे दूर रहेंगे । सीताकी रक्षिकाएँ ही उसके समीप जायँगी ।'

'देवि, आपके श्रीचरणोंमें काश्यप अदिति पुत्र पुरन्दर प्रणाम करता है ।' दूसरे ही दिन प्रथम प्रहरमें अचानक देवराज इन्द्र श्रीवैदेहीके सम्मुख प्रकट हुए । निशाचरोंको तो मध्याह्न तक निद्रा आती है । इन्द्रकी मायासे भी राक्षसियाँ सुप्त थीं । श्रीजानकीके समीप कोई नहीं था । देवराजने रत्नपात्रसे दिव्यपायस एक कमलपत्रपर रखकर सामने उपस्थित किया—भगवान ब्रह्माने इसे मेरे द्वारा भेजा है । लोकपितामह द्वारा प्रेषित यह प्रसाद आप ग्रहण कर लें । इससे आपको वर्षभर क्षुधा-पिपासाका कष्ट नहीं होगा ।'

'लोकपितामह पूज्य हैं और आप भी मेरे स्वसुरके सखा हैं ।' श्रीजानकीने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'आप दोनोंका आदेश मुझे मानना चाहिये । यहाँ राक्षसियोंसे स्पृष्ट जल भी मैं ग्रहण नहीं कर सकती । आर्यपुत्र अवश्य आवेंगे और सीता उससे पूर्व मर गयी तो उन्हें असीम पीड़ा होगी । अतः मुझे चाहे जितने कष्ट हों, जीवन तो रखना ही है ।'

श्रीवैदेहीने देवताओंका, पक्षियोंका भाग पृथक करके शेष पायस स्वयं ग्रहण कर लिया । देवराजने ही जल दिया आचमन करनेको । देवभाग एवं उच्छिष्ट पद्मपत्र वे उठा ले गये । पक्षियोंने अपना भाग उसी क्षण स्वच्छ कर दिया ।

'सीता केवल रुदन करती है । वह न जल पीती, न कोई फल ही ग्रहण करती ।' राक्षसियोंने घबड़ाकर रावणसे कहा—'ऐसे वह अवश्य मर

जायगी ।'

रावणने आदेश दिया—'विभीषणकी पत्नीको वहाँ जाना चाहिये । वह जाय तो तुम सब दूर चली जाया करो । वह सीताको कुछ खिला सकती है ।' तबसे विभीषण-पत्नी सरमा वहाँ जाने लगीं ।

●●●

वियोग-विलाप

'अकेली सीताको छोड़कर लक्ष्मण यहाँ ?' श्रीराम दूरसे ही अनुजको अपनी ओर आते देखकर चौंके । मारीचने मरते समय उनके स्वरमें सीता और लक्ष्मणको पुकारा था । इससे सशंक वे तीव्रगतिसे लौटे थे । अनुज उनके आदेशकी उपेक्षा करके आरहे थे, यह असाधारण बात थी । किसी सामान्य कारणसे लक्ष्मण उनके आदेशकी अवज्ञा नहीं कर सकते । अवश्य कुछ अघटनीय घटित हुआ ।

श्रीरामने आगे बढ़कर अनुजका बायाँ कर पकड़ लिया—'लक्ष्मण ! तुम जानकीको एकाकिनी छोड़ आये ? वे सकुशल हैं ? मुझे लगता है कि उनका कुछ अनिष्ट हुआ है । अवश्य इसमें मायावी राक्षसोंका षड्यंत्र है ।'

'आर्य !' रोते हुए लक्ष्मण अग्रजके पैरोंपर गिर पड़े ।

'भाई ! एक पलके विलम्बका अवसर नहीं है ।' श्रीरामने भाईको उठाया—'हम दोनों शीघ्रतापूर्वक पर्णशाला चलें । तुम चलते हुए बतलाओ क्या हुआ ?'

'हा लक्ष्मण हतोऽस्मि !' यह ध्वनि सुनायी पड़ी । तीन बार आपके स्वरमें किसीने मुझे कातर कण्ठसे पुकारा ।' लक्ष्मणने कहा ।

श्रीरामने कह दिया—'वह तो मायावी मारीचका स्वर था । मरते-मरते वह यह छल कर गया ।'

'मैं समझ गया था कि यह कोई कपटी राक्षस पुकारता है; किन्तु उसे सुनकर आर्या व्याकुल होगयीं। मैंने बहुत कहा कि आप सुरासुर सबके लिए अजेय हैं; किन्तु उन्होंने मेरी बातको दुर्भावना माना।' लक्ष्मणने रोते-रोते कहा— 'उन पूजनीयाने जो कुछ मुझे कहा, मैं अपने मुखसे वह सब नहीं कह सकता। वे आक्षेप भी सुन लेता, पर वे अपनेपर ही आघात करने लगी थीं। आत्मघातको उद्यत होगयी थीं। मुझे विवश होकर उनके आदेशसे आपके समीप आना पड़ा।'

'अवश्य इसमें किसी राक्षसका छल है। हम दोनोंको सीताके समीपसे दूर करनेमें वह सफल होगया। श्रीरामने कहा—'लक्ष्मण ! मेरा वाम नेत्र, वाम भुजा फड़क रही है। लगता है कि जनक-नन्दिनी आश्रममें नहीं हैं।'

लक्ष्मण हतप्रभ मौन चले आरहे थे। श्रीरामने कहा—'तुमने अच्छा नहीं किया। उनका क्रोध देखा, मेरा आदेश नहीं देखा। वे हम दोनोंके भरोसे ही वनमें आयी थीं। राक्षस उन्हें खा ले सकते हैं। उनका अपहरण कर सकते हैं।'

लक्ष्मण क्या कहते। वे मस्तक झुकाये मौन चले आरहे थे। उनके नेत्रोंसे बिन्दु टपक रहे थे। जितनी शीघ्रतापूर्वक चलना सम्भव था, दोनों भाई उतनी शीघ्रतासे दौड़ रहे थे। दूरसे ही श्रीरामने पुकारा—'सीते ! वैदेही ! परिहास मत करो प्रिये ! रामके प्राण व्याकुल हो रहे हैं। जानकी ! तुम कहींसे भी सुन रही हो तो उत्तर दो !'

उत्तर कौन देता ? लताओंके पत्र और पुष्प म्लान होगये थे। अग्निकुण्डमें अग्निदेव थे ही नहीं। दुःखके कारण शान्त होगये थे। वृक्षोंके पत्र पीताभ होकर गिर रहे थे, जैसे वे रुदन करते हों। मृगगण एक ओर जाते थे, करुण शब्द करते थे। पक्षी चीखते आकाशमें उड़ते थे। मूक प्राणी संकेत ही तो कर सकते हैं; किन्तु इस समय श्रीराम कोई संकेत समझनेकी स्थितिमें नहीं थे।

'सीता कहाँ गयीं ? कहीं पुष्पचयन करने ?' श्रीरामने भाईकी ओर देखा। लक्ष्मणने सिर हिला दिया कि इसकी सम्भावना नहीं है। रामका आर्तनाद गूँजा—'कोई उनका अपहरण कर ले गया ? कोई खा गया उन्हें ?'

'गिरिवर ! गजगामिनी जनकसुता कहाँ हैं ? अश्वत्थ, न्यग्रोध ! प्लक्ष !

पद्मपाणिनी मिथिलेशनन्दिनीको कहीं देखते हो ? आम्र, विल्व, आँवले ! जिन्होंने तुम्हें पुत्रोंके समान सींच-सींचकर पाला, वे सीता कहाँ गयीं ?' श्रीरामने प्रेमके आवेशमें उन्मत्तप्राय इधर-उधर दौड़ने और वृक्षोंसे, लताओंसे पूछने लगे— 'मल्लिके ! माधवी ! यूथिके ! चम्पकवर्णी जानकीको तुमने देखा ?'

'शशक ! कपि ! मृगो ! मेरी मृगलोचनी प्रिया कहाँ छिपी है ?' श्रीरामको ये पशु-पक्षी संकेत ही तो कर सकते हैं; किन्तु ये तो पूछ रहे हैं, एकसे दूसरेकी ओर दौड़ते पूछ रहे हैं—'काक ! कपोत ! कोकिले ! कोकिलास्वरा सीता कहाँ हैं ? कहाँ हैं हंसगामिनी मेरी प्रिया ?'

'सीता ! सीता ! हा सीते ! कहाँ हो तुम ? श्रीराम मूर्छित होकर गिर पड़े। लक्ष्मण व्याकुल होकर अग्रजके पीछे लगे थे। उन्होंने अब अग्रजका भी एक त्रोण, कुल्हाड़ी, खन्ती सम्हालकर पीठपर बाँध लिये थे। अग्रजके मृगचर्मका उत्तरीय गिरा तो उसे भी उठा लिया। अब इस पर्णशालामें रहा नहीं जा सकता। भगवती मैथिलीको ढूँढ़ना है, यह वे समझ चुके और अग्रज अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्हें भी सम्हालना है। श्रीराम मूर्छित होकर गिरे तब लक्ष्मणको जलपात्रका स्मरण हुआ। दौड़कर उसे उठा लाये। अग्रजके मुखपर जल छिड़का।

'तुम कौन हो ?' संज्ञा लौटनेपर भी श्रीराम पूरे सचेत नहीं हुए थे। समीप व्याकुल अनुजको देखकर उन्होंने अपरिचितके समान पूछा।

'मैं आपका दास लक्ष्मण !' अग्रजके उन्मत्तके समान नेत्र फटे एकटक देखते देखकर जैसे लक्ष्मणका हृदय विदीर्ण होगया हो। रुदन करते हुए उन्होंने श्रीरामके दोनों चरण पकड़ लिये।

'मैं कौन हूँ ?' अपनी-अपने नामकी भी स्मृति नहीं रही हो, इस प्रकार श्रीरामने अपने शरीरको देखा।

'अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ राजकुमार।' लक्ष्मणने वैसे ही रुदन करते कहा—'मेरे स्वामी ! रघुवंश-भूषण।'

'राजकुमार ? रघुवंश-भूषण ? स्वामी ?' जैसे कोई बहुत विस्मृत बात मस्तिष्कपर बल देकर सोची जा रही हो, ऐसा स्वर। आस-पास देखा और पूछा—'इस वनमें हम क्यों आये ? क्या कर रहे हैं यहाँ ?'

'भगवती मैथिलीको ढूँढ़ रहे हैं ।' लक्ष्मणने कहा ।

'हा मैथिली ! हा सीते ! कहाँ हो तुम ?' श्रीराम उन्मत्तके समान उठकर दौड़ने लगे । विलाप करने लगे—'लक्ष्मण ! वे सब सुख त्यागकर मेरे पीछे वनमें चली आयी थीं । मैं उनके बिना अयोध्यामें कैसे मुख दिखलाऊँगा । क्या कहूँ महाराज जनकसे ? क्या कहूँगा अपनी तपस्विनी मातासे ? जनकपुरके लोग क्या कहेंगे मुझे ? अयोध्याके लोग रामको कापुरुष समझकर उपहास करेंगे !'

'मेरे स्वामी ! हम अवश्य उन अम्बाको पावेंगे; किन्तु उनका अन्वेषण आवश्यक है ।' लक्ष्मणने कहा—'आप शोक त्यागकर धैर्य धारण करें । अपनेको स्थिर करें तो हम अन्वेषण करें ।

'तुम ठीक कहते हो । चलो, इस गोदावरीसे पूछें ।' श्रीराम उठ खड़े हुए; किन्तु वही उन्मत्त भाव—'ये पुष्प, ये वृक्ष, ये पशु-पक्षी मुझे मेरी पत्नीका पता क्यों नहीं बतलाते ? कैसे हो सकता है कि इनमें किसीने सीताको न देखा हो ? मैं इन सबको भस्म कर दूँगा । सीता नहीं हैं, उन्हें किसीने खा लिया ? तब यह उनसे रहित सृष्टि किस कामकी ? संसारके रहनेका प्रयोजन ? मैं प्रलय करूँगा । यह सृष्टि समाप्त हो जाय !'

प्रचण्ड क्रोधसे शरीर काँपने लगा । अभी तक धनुष करमें ही था और मारीच-वधके पश्चात् प्रत्यञ्चा उतारी नहीं गयी थी । पीठपर एक त्रोण कसा था । अंगारसे जलते नेत्र, कठोर भृकुटि । दक्षिण कर बाण निकालने बढ़ा । श्रीराम उठकर खड़े हो गये थे । सुरोंमें भी किसीका साहस उस समय उनके श्रीमुखकी ओर देखनेका नहीं था ।

'मेरे स्वामी !' लक्ष्मणने वह दाहिना हाथ पकड़ लिया—'किसी एकने अपराध किया है । आप अनन्त दयामय हो । उस एकके दोषसे निरपराध सृष्टिके अनन्त जीवोंका संहार आप नहीं कर सकते ।'

श्रीरामके क्रोधसे पर्वतोंके शिखर टूटने लगे थे । पृथ्वीमें भूकम्प आ गया था । लक्ष्मणकी ओर देखकर तनिक शान्त हुए—'अच्छा, चलो, ढूँढ़ो । कौन है वह जो सीताको ले गया ?'

महावटकी ओर बढ़ते ही भूमिपर टूटा रथ, पड़े धनुष, मरा सारथी, मृत पिशाच मुख गर्दभ मिले। रक्तके बिन्दु थे, जहाँ-तहाँ। स्पष्ट था कि कोई युद्ध वहाँ हुआ था। श्रीराम फिर क्रुद्ध हुए—'यदि ये पर्वत, वृक्ष, प्राणी, सीता नहीं लौटाते तो मैं आज ही अवश्य प्रलय कर दूँगा।'

'यह आपके अनुरूप नहीं होगा। आप आज्ञा दें, प्रलय तो आपका दास यह लक्ष्मण पल भरमें कर देगा।' लक्ष्मणने हाथ जोड़ा—'लेकिन यहाँ पृथ्वीपर केवल एक ही रथीके चिह्न हैं। दोके चिह्न नहीं और दोके बिना युद्ध सम्भव नहीं। यह रथ किसका टूटा है, यह जान लेना पहिले आवश्यक है।' श्रीरामका ध्यान बँट गया। क्रोधका स्थान अन्वेषणने ले लिया। दोनों भाई रथ, धनुष, बाण आदिको ध्यानपूर्वक देखने लगे।

●●●

जटायुकी अन्त्येष्टि

'आप शरणागत-वत्सल हैं। सब प्राणियोंके शरण्य हैं। आपका कोई अप्रिय नहीं कर सकता।' लक्ष्मणने देखा कि अग्रजका आवेश शान्त हुआ है तो समझाना प्रारम्भ किया। आवेशके समय तो समझाना शक्य नहीं होता—'हम अम्बाका अपहरण करनेवालेका अन्वेषण करेंगे। सम्पूर्ण पृथ्वी, समुद्र और आवश्यक हुआ तो सभी लोकोंको मैं देख आऊँगा। संसारका चप्पा-चप्पा हम ढूँढ़ेगे। यदि हमारा प्रयत्न असफल हो जाय, यदि निश्चय हो जाय कि भगवती धरात्मजा जीवित नहीं हैं, तब आप त्रिलोकीके प्रलयकी आज्ञा इस सेवकको दे सकते हैं। अभी महासंहार करनेसे तो उन देवीका भी अनिष्ट अवश्यम्भावी हो जायगा।'

'आपका स्वरूप अभयप्रद है। आपके स्मरणसे प्राणी समस्त भयोंसे परित्राण पा लेता है। आपके द्वारा त्रिभुवनको भय नहीं प्राप्त होना चाहिये।' टूटे रथ, धनुष आदिको ध्यानपूर्वक देखनेमें लगे अग्रजको लक्ष्मण समझाते रहे—

'आप ही यदि दुःख-सहनका आदर्श नहीं स्थापित करोगे तो सामान्य जीव कैसे दुःख सह सकेंगे । किसीके जीवनमें कष्ट-आपत्ति आवे ही नहीं, यह तो आपके विधानने ही असम्भव बना दिया है । अपने कुलगुरुके ही सौ पुत्र एक दिनमें राक्षसने मार दिये थे । पृथ्वीमें भूकम्प आते हैं । सूर्य-चन्द्रपर ग्रहण लगता है । दुःख-दुर्दैव किसीको छोड़ते नहीं । अतः प्राकृत पुरुषके समान आपको शोकातुर नहीं होना चाहिये ।'

'देव ! मैं तो आपका दास हूँ ।' लक्ष्मणने चरण पकड़े—'आपने ही मुझे जो उपदेश किया था, उसकी मैंने आवृत्तिकी है । मेरी इस धृष्टताको क्षमा करें । आपको उपदेश करनेका साहस तो सुरगुरु, सृष्टिकर्ता और साक्षात् भगवान् शिव भी नहीं कर सकते । सबके संहारसे कोई लाभ भी नहीं है । हमको पहिले शत्रुका पता लगाना चाहिये ।'

'लक्ष्मण ! तुम उचित कहते हो । जानकीके वियोगने मुझे उद्भ्रान्त बना दिया है ।' श्रीरामने गम्भीर होकर धनुष उतार दिया । बोले—'अतः तुम्हीं बतलाओ कि अब हम कहाँ चलें ? क्या करें ?'

'वस्तु जहाँ खोती है, अन्वेषण वहींसे आरम्भ होता है ।' लक्ष्मणने कहा—'पहिले यह जनस्थान ही हमें ढूँढ़ना है । इसमें राक्षस रहते हैं तो महात्मा भी रहते हैं । कहींसे अवश्य कोई शोध-सूत्र मिलेगा । हम इस युद्ध-स्थलीको ही पहिले देखें । पता नहीं, यहाँ किसका किससे युद्ध हुआ । पता नहीं क्यों हुआ ।'

'वह—वह कोई पर्वतका प्राणी भूमिमें पड़ा है ।' श्रीरामने युद्ध-स्थलीपर दृष्टि घुमायी और सम्मुख देखकर हाथ उठाकर संकेत किया—'वह रक्तसे लथपथ दीखता है । अवश्य राक्षस होगा । वैदेहीको खाकर सो रहा है । इसे मार देना चाहिये ।'

कन्धेसे धनुष उतारकर श्रीराम प्रत्यञ्चा चढ़ाने लगे तो पक्षियोंका समूह चीत्कार कर उठा । आसपासके सभी पक्षी एक साथ उड़कर जटायुके चारों ओर उन्हें घेरकर एकत्र हो गये । यह देखकर श्रीराम चौंके—'यह पक्षियोंका प्रिय ! पक्षिराज जटायु तो नहीं ?'

'आयुष्मन् ! मुझे तो राक्षसने पहिले ही मार डाला है, तुम धनुष क्यों

उठाते हो ?' क्षीण स्वर सुनायी पड़ा जटायुका—'जिसे तुम इस जन-स्थानमें औषधिके समान अन्वेषण कर रहे हो, उन श्रीजनक-नन्दिनीका रक्षक करनेमें यह गीध जटायु अक्षम रहा। बलवान राक्षस दशग्रीवने उनका हरण किया। उसीका रथ, धनुष, गधे, सारथि यहाँ मृत-ध्वस्त पड़े हैं; किन्तु मैं वृद्ध उस दुर्दमसे जीत नहीं सका। उसने तलवारसे मेरे पंख और पैर काट दिये।'

'पितृव्य जटायु ! तात !' श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंने धनुष फेंक दिया और दौड़े। समीपके दूसरे पक्षी उड़कर दूर जा बैठे। दोनों भाई लिपट गये जटायुसे। श्रीरामने अंकमें जटायुका मस्तक ले लिया। अपनी जटाओंसे वे उन गीधराजके रुधिरको पोंछने लगे। श्रीरामका शरीर पक्षीके रक्तसे लथपथ हो गया। उन कमललोचनके नेत्रोंकी अश्रुधारा गीधके मस्तकका अभिषेक करने लगी।

'राज्य गया, वनमें रहना पड़ा, पत्नीका हरण हो गया और अब इस अभागे रामके ये आश्रयदाता पिता भी मारे गये !' श्रीराम रुदन करते-करते, गीधके रक्तसे सनी अलकें हाथमें लिए आवेशमें आ गये—'तात ! आपके पक्ष और पद अभी उगेंगे। आप स्वस्थ, तरुणके समान शक्तिशाली हो जायँगे। यह आपका पुत्र राम आपके समीप रहकर सदा आपकी सेवा करेगा। इसे पिताके स्नेहका, सेवाका सौभाग्य दें और इससे पुत्र-सेवाका सुख प्राप्त करें ! राम अपने समस्त पुण्य आपको ।'

'रुको—रुको वत्स रामभद्र !' जटायुने वाक्य नहीं पूरा होने दिया। उन्होंने किसी प्रकार गर्दन उठायी—'तुम क्यों चाहते हो कि जटायु इस मुनीन्द्र-दुर्लभ महामरणसे वञ्चित हो जाय और मृत प्राणियोंका मांसभक्षी गीध बना रहे ? जन्म-जन्मके साधनोंका परम फल योगीन्द्र-वृन्द चाहते हैं कि मरते समय तुम्हारा नाम उनके मुखसे निकले। तुम्हारी स्मृति मानसमें किसीके कदाचित् आती है तो परमपद उसका स्वत्व हो जाता है। वह तुम मेरे समीप हो। तुम्हारे अंकमें सिर रखकर देहत्यागका सौभाग्य सृष्टिमें दूसरे किसीको कभी मिला है ? मेरे मित्र दशरथके आत्मज होकर जो अवसर उन्हें तुम नहीं दे सके, वह मुझे सुलभ है, अतः रोको मत !'

'तात ! राम भी आपके सम्मुख कंगाल है। आपको कुछ देनेमें राम भी समर्थ नहीं।' श्रीराघवेन्द्र भरित कण्ठ बोले—'परार्थमें प्राणोत्सर्ग करनेवाले

प्राणियोंका परमपद स्वतः स्वत्व हो जाता है । राम तो उनका वशवर्ती बन जाता है, जो प्रेमपूत हृदयसे दो दूर्वादल एवं एक चुल्लू जल इसे देते हैं, आपने तो रामसे अभिन्न इसकी भार्याके रक्षणमें अपनी आहुति दे दी । राम आपको क्या देगा—आपका सदा ऋणी रहेगा यह आपका पुत्र ।'

'तात ! रावणने क्यों जानकीका हरण किया ?' अपनेको सम्हालकर सामान्यभाव धारण करके श्रीरामने पूछा—'सीताने कुछ कहा आपसे ? रावण किधर गया ?'

'वत्स ! विश्रवाका पुत्र रावण आकाशमार्गसे पुत्री सीताको लेकर दक्षिण गया । वे अत्यन्त व्याकुल थीं ।' जटायुका स्वर क्षीण होता जा रहा था—'वत्स ! मैं अब बोल नहीं पा रहा हूँ; किन्तु तुम व्याकुल मत हो । दशग्रीवने जब सीताका हरण किया, विन्द नामका मुहूर्त था । देवता साक्षी हैं, इस मुहूर्त्तमें खोयी, चोरी गयी वस्तु अवश्य प्राप्त हो जाती है । शत्रुको मारकर तुम अवश्य वैदेहीको प्राप्त करोगे ।'

'राम !' जटायुके मुखसे निकाला । साथ ही मुखसे रक्त गिरा और उनकी गर्दन श्रीरामके अंकमें ढुलक गयी ।

'तात ! आप परमधाम पधारो !' अत्यन्त गम्भीर श्रीरामका स्वर गूँजा । सहसा जटायुके शरीरसे एक ज्योति प्रकट हुई—स्निग्ध नीलोज्वल ज्योति । वह घनीभूत होकर चतुर्भुज, वनमाली, पीताम्बरधारी, रत्नमुकुटी पुरुष बन गयी ।

'पिता आपके सखा हैं । आप वैकुण्ठमें पधारें; किन्तु मार्गमें, स्वर्गमें पिताजीसे मिलनेपर उनसे सीताहरणका यह समाचार न कहें । वे वहाँ भी दुःखी हो जायँगे ।' श्रीरामने कहा—'यह समाचार उनको स्वयं रावण शीघ्र देगा, जब कुलके साथ वहाँ पहुँचेगा ।'

श्रीरामकी प्रदक्षिणा करके, स्तवन करके, वे दिव्य पुरुष जब आकाशमें जाकर अदृश्य हो गये, श्रीराम सामान्य पुत्रके समान मृत गीधके शरीरसे लिपटकर रुदन करने लगे—'लक्ष्मण ! सब योनियोंमें साधु, धर्मात्मा होते हैं । इन्होंने हमारे पिताकी प्राण-रक्षा की । हम यहाँ आये, तबसे हमारी रक्षा करते रहे हैं । सीताकी रक्षामें अपनी आहुति देनेवाले गीधराजकी मृत्युसे जितना

दुःख मुझे हुआ है, उतना सीता-हरणसे भी नहीं हुआ था । तुम काष्ठ-चयन करो । मैं इनकी सविधि अन्त्येष्टि करूँगा ।'

लक्ष्मणने आसपाससे सूखी लकड़ियाँ एकत्र करके गोदावरीके तटपर चिताका निर्माण किया । दोनों भाइयोंने जटायुका शरीर उठाया । गोदावरीमें स्नान कराके उसे चितापर स्थापित किया । श्रीरामके आदेशसे लक्ष्मण पर्णशालासे अग्नि ले आये । सबका शरीर दक्षिणाग्निकी आहुति बनता है; किन्तु चिताकी परिक्रमा करके श्रीरामने अपने करोंसे उसमें अपने द्वारा स्थापित, पूजित अग्नि अर्पित की ।

जटायु तो प्रत्यक्ष पार्षद-देह प्राप्त करके परमधाम पधारे थे । उन्हें वैसे भी किसी और्ध्वदैहिक कृत्यकी आवश्यकता नहीं थी । पशु-पक्षीके लिए अन्त्येष्टि संस्कारका विधान नहीं है; किन्तु श्रीरामके करोंकी अग्नि महाराज दशरथको नहीं मिल सकी, जटायुको प्राप्त हुई ।

चिताग्नि शान्त होजानेपर श्रीरामने भाईके साथ गोदावरी-स्नान करके अञ्जलिके जलसे भस्मका सरित प्रवाह किया । तर्पण किया जटायुका और आखेट करके गीधके उपयुक्त पिण्डदान किया और इस प्रकार अपनेको उपयुक्त पुत्र सिद्ध किया ।

देरतक दोनों भाई बैठे रहे वहाँ । श्रीरामको जैसे सीता भूल ही गयी । उनके मुखपर केवल जटायुके स्नेह, शौर्य, सद्‌गुणकी प्रशंसा थी ।

●●●

कबन्ध-मोक्ष

अकथ्य दारुण स्थिति—जिसने कभी कष्ट सहा है, कभी निर्जन अथवा शत्रुओंके प्रदेशमें एकाकी पड़ा है, वह भी कठिनाईसे ही कल्पना कर सकता है। घोर वन, कहीं मुनियोंके आश्रम भी समीप नहीं। मायावी राक्षसोंका प्रदेश और अपहृता भार्याका अन्वेषण करना था। श्रीराम बार-बार वियोग विह्वल होते थे।

कहीं भी वृक्षके नीचे रात्रि काट देनी थी। श्रीराम अब पत्र-शैया भी देखकर 'हा सीते! हा सीते!' पुकारने लगते थे। रात्रिमें निद्रा नहीं लेते थे। दिनमें विश्रामका नाम नहीं। लक्ष्मण किसी प्रकार भी अग्रजको कन्द-मूल या फल खिला नहीं सके। स्वयं लक्ष्मण तो वनमें आये तबसे निद्रा, क्षुधाजयी हो गये थे, किन्तु अपने आराध्य अग्रजका अनाहार उनके हृदयको मथे डालता था।

जटायुने कहा था—'श्रीजानकीको दशग्रीव आकाश-मार्गसे दक्षिण ले गया है।' यह कोई पता था? कोई चोर कुछ चुरा ले जाय, वह अपने घर ही ले जाकर रखेगा, यह क्या निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है? रावण समुद्रके मध्य स्वर्णपुरी लंकामें रहता है; किन्तु उस राक्षसाधिपके अनुचर, साथी, सहानुभूति रखनेवाले तो संसारमें भरे पड़े हैं। पातालमें दैत्य, दानव हैं। पृथ्वीपर ही अनेक राक्षस हैं। कौन कह सकता है कि रावणने सीताको कहाँ ले जाकर छिपाया है। दक्षिण गया वह जनस्थानसे; किन्तु कहाँ दक्षिण? कितनी दूर दक्षिण? पञ्चवटीसे दक्षिण तो भारतका पूरा दक्षिणी प्रदेश पड़ा है और उसमें बहुत पर्वत हैं। सघन अरण्य हैं। आगे जाकर रावण आकाश-मार्गसे कहीं किसी ओर मुड़ा या नहीं? वह कहीं उतरकर किसी वनमें, किसी गुफामें, किसी अपने मित्रके समीप सीताको छोड़ गया या नहीं? इन प्रश्नोंका उत्तर कौन देगा?

इसी दशग्रीवने विवाहसे पूर्व ही श्रीराम-माता कौशल्याका अपहरण किया था। तब तो वह उन्हें लंका नहीं ले गया। एक पेटिकामें बन्द करके

महामत्स्यको दे गया था ।[१] अब वह ऐसा कुछ नहीं करेगा, इसका कोई आश्वासन है ?

कहीं समीप ही रावणने सीताको न छिपाया हो । कोई सर्वज्ञ ऋषि मिल जाय तो कदाचित् जानकीका पता दे सके । अगस्त्यजीका आश्रम पञ्चवटीसे उत्तर था । दशग्रीव दक्षिण गया था, अतः दोनों भाई दक्षिण जा रहे थे । अब दक्षिण केवल मतंगाश्रम था । उसी ओर बढ़ रहे थे । कदाचित् कोई ऋषि कुछ बता सकें । वैसे मायावी रावणकी चेष्टा जान लेना ऋषि-मुनियोंके लिए कठिन था । वह ध्यानके लिए अगम्य कर देना जाननेवाला तन्त्रशास्त्रका प्रकाण्ड पण्डित—लेकिन आशाके बिना प्रयत्न कैसे चले । दोनों भाई चलते जा रहे थे ।

दण्डकारण्यकी सीमा समाप्त होगयी । क्रौञ्चारण्य भी पार हुआ । मतंग-आश्रमसे पूर्वका अत्यन्त दुर्गम, जनहीन-प्राणिहीन प्रदेश । पशु-पक्षी ही नहीं, राक्षस भी इसमें प्रवेशका साहस नहीं करते थे लेकिन दुर्गम प्रदेशमें सीताके मिलनेकी सम्भावना अधिक हो सकती है । दोनों भाइयोंने उस अरण्यमें प्रवेश किया ।

एक ओरसे अन्धड़ चलनेका शब्द आया । वृक्ष जैसे टूट रहे हों । दीर्घाकार, भयानकमुखी, लम्बोदरी, मुक्तकेशा, कटिमें व्याघ्रचर्म लपेटे एक राक्षसी दौड़ती आयी । उसने दोनों करोंमें मृग, व्याघ्र पकड़ रखे थे । उन्हें कच्चा ही चबा रही थी । उसका मुख, शरीर रक्तसे लथपथ था । दोनों भाइयोंको देखते ही दाहिने हाथका मृग मुखमें डाला उसने और अन्धड़के समान दौड़कर लक्ष्मणको उठा लिया मुट्ठीमें ।

'प्रियतम ! डरो मत ! मेरा नाम अयोमुखी है ।' उसने रक्त टपकते भयानक दाढ़ोंवाले मुखको मटकाया—'इस काननमें मेरे साथ विहार करो । केवल यहाँसे आगे दक्षिण मत जाना । मैं भी नहीं जाती । मेरा कबन्ध पकड़ पावे तो मुझे भी मुखमें डाले ले ।'

लक्ष्मणने अविलम्ब खड्ग खींच लिया । उस भयानका, लौहकृष्णवर्णा

---

१. इसी चरितके प्रथम खण्डमें यह कथा गयी है ।

अयोमुखीकी नासिका, कर्ण और पयोधर काट दिये। लक्ष्मणको छोड़कर चिल्लाते हुए वह भाग गयी।

'लक्ष्मण ! मेरी वामभुजा, वामनेत्र फड़क रहे हैं।' श्रीरामने अनुजसे कहा—'कोई अनिष्ट आसन्न है। धनुष ज्यासज्ज करो शीघ्र।'

अभी श्रीरामका वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि पक्षी उच्च स्वरसे चीत्कार करते वृक्षोंपरसे उड़े। एक अकल्पित विशाल हाथ आया और उसने लक्ष्मणको मुट्ठीमें पकड़कर उठा लिया। वह हाथ जैसे किसी बहुत बड़े वट-वृक्षकी शाखा अथवा अजगरका शरीर हो।

'आर्य ! आप मेरी बलि देकर शीघ्र दूर भागें !' लक्ष्मणने पुकार कहा—चिल्लाकर अग्रजसे कहा; क्योंकि वह हाथ उठाकर लिये जा रहा था—'आप अवश्य श्रीविदेहनन्दिनी और राज्यको पावेंगे !'

'लक्ष्मण ! खड्ग' श्रीराम झपटे। उन्होंने छोटे भाईके हाथोंसे खड्ग झपट लिया। इन्द्रने जो खड्ग महर्षि अगस्त्यके यहाँ रखा था और वहाँसे श्रीरामने लिया था, वह लक्ष्मणके समीप ही रहता था। राक्षसी अयोमुखीके नाक-कान काटकर अभी लक्ष्मण उस खड्गको स्वच्छ करके कोशमें रखनेका अवसर नहीं पा सके थे। थोड़ी ही दूर अभी दक्षिण बढ़े थे कि यह विपत्ति आ गयी। लेकिन खड्ग लेते-न-लेते वैसे ही दूसरे हाथने श्रीरामको भी पकड़ लिया था।

'इसकी बाहु काट दो !' श्रीरामने उस हाथको कलाईके कुछ ऊपरसे काट दिया और दौड़कर खड्ग लक्ष्मणको पकड़ाया किसी प्रकार, क्योंकि दूसरा हाथ इतना ऊपर उठ गया था कि उसे वे स्वयं नहीं काट सकते थे। लक्ष्मणने भी वैसे ही हाथको काटकर अपनेको मुक्त किया।

'तुम दोनों कौन हो ?' अब मेघ-गर्जनाके समान शब्द सुनायी पड़ा। दोनों भाइयोंने आश्चर्यसे देखा कि दूर, वृक्षोंके मध्य, सभी वृक्षोंसे बहुत ऊँचा पर्वताकार कबन्ध (मस्तकहीन धड़) खड़ा है। शब्द उसके उदरसे आ रहा है; क्योंकि उसका मुख उसके पेटमें है। इतना विशाल होनेपर भी उसकी भुजाएँ इतनी बड़ी हैं कि वह उन्हें मोड़कर मस्तकपर रखे, तब भी उसकी कुहनी उसके पैरोंके समीप पृथ्वीसे लगती है। अब कलाइयोंके पाससे हाथ कट जानेपर

उसने अपने बाहु मस्तकपर रख लिये हैं और अपने ही रक्तमें स्नान कर रहा है ।

'मैं अयोध्याके चक्रवर्ती नरेश महाराज दशरथका पुत्र राम ।' श्रीरामने उच्चस्वरमें उत्तर दिया—'मेरे साथ मेरे अनुज ये लक्ष्मण ।'

'ओह ! मेरे उद्धारकर्त्ता आ गये ?' कबन्धने मानों प्रसन्न होकर कहा—'आप दोनों समीप आ जाओ, मैं गन्धर्वराज उपवर्हण हूँ ।'

'तुम्हारी यह अवस्था ?' दोनों भाई उसके समीप तीव्रगतिसे जाते हुए बोले । वे देख रहे थे कि उसने अपनी बाहुओंसे आघातका कोई प्रयत्न नहीं किया है । स्थिर खड़ा है वह ।

'मेरे संगीतसे सन्तुष्ट होकर सृष्टिकर्ताने मुझे समस्त प्राणियोंसे अवध्य होनेका वरदान दिया ।' उसने आत्मकथा सुनायी—'इस वरदानने मुझे मदान्ध बना दिया । महर्षि स्थूलशिरा अतिशय दयालु हैं । सम्भवतः इसीलिए उन्होंने इतना कुरूप अंगीकार किया है । अनेकोंका अहंकार मिटाया है उन्होंने । वे एक दिन देवराजकी सभामें पधारे । मैं उनका शरीर तथा उचककर अटपटे ढंगसे उनका चलना देखकर खुलकर हँस पड़ा ।'

'अवशिष्ट ! तू सुरसभामें आसन पाने योग्य नहीं है ।' क्रुद्ध ऋषिने शाप दे दिया—'अभी राक्षस हो जा ।'

मैं तत्काल राक्षस होगया । राक्षस देह ही नहीं हुआ, बुद्धि भी राक्षसी होगयी ।' 'कबन्धने बतलाया—'देवराज इन्द्रको पकड़कर निगल लेने झपट पड़ा । देवराजको दोष नहीं दिया जा सकता । उन्होंने अपनी रक्षाके लिए मेरे मस्तकपर व्रजसे प्रहार किया । इससे मैं कबन्ध बन गया । मेरा मस्तक मेरे धड़के भीतर प्रविष्ट होगया ।'

'सृष्टिकर्ताका वरदान मेरे लिए शाप बन गया । मैं मर सकता नहीं था और अब मस्तक धड़में चले जानेसे देखने, सुनने, बोलने सबमें असमर्थ दयनीय हो गया ।' कबन्धने कहा—'देवराज ऐसे प्राणीको अमरावतीमें कहाँ रखते ? मैं स्वयं कहीं जाता कैसे ? अतः उन्होंने कह दिया कि मेरे उदरमें मेरा मुख प्रकट हो जाय ।'

'आप इतने निष्करुण नहीं हो सकते देवराज !' कबन्ध कह रहा था- 'मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि मेरे आहारकी कोई व्यवस्था कर दें । अन्यथा अनन्तकालतक क्षुधार्थ रहूँगा ।'

जैसे ही तुम पृथ्वीपर पहुँचोगे, तुम्हारी भुजाएँ एक योजन विशाल हो जायँगी ।' इन्द्रने स्वर्गकी सुरक्षा रखते हुए वरदान दिया—'अपनी भुजाओंकी परिधिमें आये प्राणियोंको तुम पचा सकोगे ।'

'देव ! इस अधमका कभी उद्धार भी होगा ? मैंने महर्षिजीसे प्रार्थना की ।

'जब त्रेतामें परात्पर पुरुष श्रीराम अवतीर्ण होंगे, वे अनुजके साथ वनमें स्वयं तुम्हारे समीप आवेंगे ।' महर्षिने कृपा की—'वे जब तुम्हारे हाथ काट देंगे, तुमको अपना गन्धर्व-शरीर प्राप्त हो जायगा । तब तक तुम दक्षिण भारतमें क्रौञ्चारण्यसे कुछ दक्षिण निवास करो ।'

'महर्षिका अनुग्रह—वे शाप न देते, एक गन्धर्वको आपका स्पर्श प्राप्त होता ?' कबन्ध करुण स्वरमें कह रहा था—'अब तक मेरा सिर मेरे उदरमें है । मैं प्राणियोंको कठिनाईसे पकड़ पाता था; क्योंकि लेटे बिना ऊपर नहीं देख सकता । पूरा घूमे बिना मैं नहीं देख सकता; किन्तु आप देख सकते हैं । मेरे पीछे कहीं समीप ही एक गर्त है । उसमें काष्ठ डालकर मुझे जला दें । मेरे कटे हाथ भी उसीमें फेंक दें तो मैं इस अधमरूपसे परित्राण पाऊँ ।'

अब यह प्राणी अत्यन्त दयनीय हो गया था । हाथ कट जानेसे अब आहार भी पकड़ नहीं सकता था । ब्रह्माके वरदानसे अस्त्र-शस्त्रसे अवध्य था । अतः इसे जीवित जला देना स्वयं इसीपर दया करना था—आवश्यक था ।

'मैं अवश्य तुम्हारा दाह-कर्म कर दूँगा ।' श्रीरामने आश्वासन दिया । अग्रजका संकेत पाते ही लक्ष्मण कबन्धके पीछे थोड़ी दूरीपर जो महागर्त था, उसमें आस-पाससे काष्ठ डालने लगे । श्रीरामने कबन्धसे पूछा—'रावण वनमेंसे मेरी पत्नीको अपहरण कर ले गया । उसने वैदेहीको कहाँ रखा ? स्वयं वह कहाँ होगा ?'

'शाप-दोषसे मेरी बुद्धि भ्रष्ट होगयी है । मैं भोजनके अतिरिक्त, कुछ सोच नहीं सकता हूँ ।' कबन्धने कहा—'जब आप मुझे दग्ध कर देंगे, मुझे अपना गन्धर्व-देह प्राप्त हो जायगा । तब मैं आपकी जो सहायता कर सकूंगा,

अवश्य करूँगा ।'

लक्ष्मणने काष्ठ एकत्र कर दिया उस गर्तमें । काष्ठ-मन्थन करके ही अग्नि प्रकट की । केवल कबन्धके कटे हाथ दोनों भाइयोंको अग्निमें डालने पड़े । वह तो स्वयं जाकर उस ज्वालामें कूद पड़ा । आश्चर्य— न दुर्गन्धि, न चिटखनेका कोई शब्द, कबन्धका शरीर ऐसे जलने लगा जैसे वह प्राणिभक्षी राक्षसका देह न होकर घृतपिण्ड हो । अन्ततः वह गन्धर्व था । क्षणोंमें राक्षस-देह भस्म हो गया और उस ज्वालासे दिव्य देहधारी, परम सुन्दर रत्नाभरण-भूषित गन्धर्व प्रकट हुआ ।

दोनों भाइयोंको प्रणाम करके, दोनोंकी परिक्रमा करके गन्धर्व आकाशमें कुछ और ऊपर उठ गया । पृथ्वीका स्पर्श तो इस देव-शरीरसे वह कर नहीं सकता था । आकाशसे ही बोला—'मर्यादा-पुरुषोत्तम ! आपको मानवकी मर्यादा ही रखनी है तो सुनें । देव, गन्धर्व किसीमें दशग्रीवका विरोध करनेकी शक्ति नहीं है । मैं कोई सक्रिय सहायता करनेमें असमर्थ हूँ । केवल सम्मति दे सकता हूँ ।'

'मनुष्य ६ उपायोंसे अभीष्ट प्राप्त कर सकता है—१. साहस २. सन्धि, ३. विग्रह, ४. दुर्ग, ५. सहायक और ६. आश्रय । साहस आप दोनोंमें असीम है; किन्तु इस संकटके अवसरपर आपको एक मित्र—सहायक बनाना चाहिये । समानसे ही सन्धि करके उसे मित्र बनाया जा सकता है ।' गन्धर्वने सुझाव दिया—'वानरराज बालिने अपने अनुज सुग्रीवको निर्वासित कर दिया है । वे चार मन्त्रियोंके साथ आगे पर्वतपर रहते हैं । वे ऋक्षरजाके पुत्र कृतज्ञ हैं । उन्हें राक्षसोंका पूरा पता है । उनसे मित्रता कर लो । वानरोंको भेजकर वे सीताका अन्वेषण करा सकते हैं ।'

'आगे जो पुष्पित वृक्ष है, उनसे पश्चिम जाओ । वहाँ अत्यन्त सुन्दर सरोवर है । स्नान करके मेरे राक्षस-शरीरके रक्तसे दूषित गात्र स्वच्छ कर लो ।' गन्धर्वने अन्तमें कहा—'वहाँ समीप ही तुम्हारी दीर्घकालसे प्रतीक्षा करती परम तपस्विनी शबरीका आश्रम है । उसे अपने दर्शनसे अवश्य कृतार्थ करो । ऋष्यमूक पर्वतका एक प्रभाव है, वहाँ स्वप्नमें जो वस्तु मिलती है, जागने पर वह अवश्य मिल जाती है ।'

इतना कहकर गन्धर्व अन्तरिक्षमें अदृश्य होगया ।

●●●

शवरीके बेर

अहेतुक कृपालु, अनन्त करुणावरुणालय, सर्वेश्वरकी कृपाका अधिकारी कौन नहीं है । उन सर्वरूपके लिए भी कोई पराया हो सकता है ? उनकी दया भी क्या वर्ण, आश्रम, जाति या स्त्री-पुरुषका भेद देखती है ? उसके लिए तो पशु-पक्षी, वृक्ष-लता, पानी-पाषाण, चर-अचर सब समान हैं । सबपर उसका अवतरण सदा सम्भव है ।

पुण्यप्राण प्राणी उत्तमकुलमें अथवा सभ्य सम्पन्न समाजमें ही जन्म लेंगे, ऐसा भी कोई नियम नहीं है । वह शबर-भील कन्या थी । अरण्यवासी, अशिक्षित, असभ्य, आखेट-जीवी भील सरदारकी कुमारी । जनपदमें ही अनेकोंके बालकोंको शिक्षा नहीं प्राप्त होती, वन्य जातिकी कन्याको भला शिक्षा कैसी । कोई सत्संग, सदुपदेश प्राप्त होनेका अवसर नहीं । पशुप्राय वन्य-मानव—उनके यहाँ एक ही चर्चा, परस्परके विवादकी अथवा आखेटकी—हिंसाकी चर्चा या परनिन्दा ।

ऐसे कुलमें, ऐसे वातावरणमें, ऐसे विकट स्थानमें उसका जन्म हुआ; किन्तु कीचड़से कमल भी तो उत्पन्न होता है । वह उस कीचमें उत्पन्न होनेवाले कीड़ोंमें नहीं थी, कमलिनी थी वह । शैशवसे ही उसे अरुचि थी मांससे-मांसकी गन्धसे । पिता-सरदार थे । वन्य जातियोंका अग्रणीका अर्थ ही होता है कि उनमें सबसे बलवान, सबसे अधिक लक्ष्यवेध निपुण, सबसे निर्भीक आखेटक । उसकी पर्णकुटीमें प्रतिदिन प्रायः आखेटमें मारे गये पशुओंका रन्धन होता था । वह शिशु थी तो रुदन करती थी । तनिक चलने योग्य हुई तो वृक्षोंके नीचे भाग जाती थी । कन्द-फल, मूल ही उसे खिलाया जा सकता था ।

'यह कोई मुनि-पत्नी बनेगी ।' व्यंग करती थीं उसकी मातासे भील-पत्नियाँ—'इसके लिए कोई ब्राह्मण ढूँढ़ना होगा ।'

अकेली पुत्री—पिताको विवाहकी चिन्ता होनी ही थी । वन्य जातियोंमें अत्यल्प वयमें—दूध पीते बच्चोंके विवाह हो जाते हैं । पुत्रीके स्नेहवश शैशवमें विवाह नहीं हुआ । वह पदों चलने लगी तो उसके स्वभावकी बात प्रसिद्ध

होगयी । कोई भील उसे अपनी पुत्रवधू कैसे बनाना स्वीकार करे जो मांस-रन्धन ही नहीं करेगी । इस कठिनाईके कारण वह बड़ी होती गयी ।

वह युवती हुई । किसी प्रकार पिताने दूर भील-पल्लीके एक विधुर युवकको अपनी पुत्रीसे विवाहके लिए प्रस्तुत किया । उन लोगोंने मान लिया— 'पतिगृह पहुँचकर विवश होगी तब अपना अभ्यास परिवर्तित कर लेगी ।'

भील-कन्याके विवाहमें स्वागतकी सामग्री मांस और सुरा । पिताने सुराके कुम्भ स्वयं बना रखे थे । मृग, अज आदि पशु एकत्र होने लगे । उसने अपनी एक सहेलीसे पूछ लिया—'मेरे पिता इतने पशु क्यों पालने लगे हैं ? ये दूध भी तो नहीं देते ।'

'तेरा विवाह नहीं होना है क्या ?' विवाहिता सहेली उसके भोलेपनपर हँसी—'तेरा वर और बाराती आवेंगे तो क्या तेरे समान कन्द-मूल खायेंगे ?'

'तब क्या वे इन पशुओंको मारेंगे ?' उसने पूछा ।

'वे क्यों मारेंगे ?' सहेलीने कहा—'इन्हें मारेंगे तेरे पिता । बाराती इनका भोजन करेंगे ।'

'मेरे विवाहमें—मेरे निमित्त इतने प्राणी मारे जायँगे ?' वह तो सुनते ही अधमरी हो गयी । अन्तमें मनमें निश्चय किया—'मैं विवाह करूँगी ही नहीं ।'

'यह तेरे वशकी बात है ?' सहेलीने कहा—'कोई पिता कन्याको कुमारी रहने दे सकता है । पिता पकड़कर वरके हाथमें तेरा हाथ देंगे तो तू विरोध कर सकेगी ?'

गुरुजनोंका—माता-पिताका विरोध उसके स्वभावमें नहीं । रुदनके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं था । एकान्तमें ऊपर आकाशकी ओर नेत्र उठाकर कातर प्रार्थना—'देवता ! मेरी सहायता करो ।'

देवता कम ही किसीकी प्रत्यक्ष सहायता करते हैं । वे जिसकी सहायता करना चाहते हैं, उसे सद्बुद्धि दे देते हैं । उसे भी प्रेरणा प्राप्त हुई । रात्रिमें जब सब सो गये, उठी । पशुओंके बाड़ेका द्वार खोलकर उन्हें वनमें जानेको मुक्त कर दिया और स्वयं माता-पिता, स्वजनोंका मोह त्यागकर मुक्त होगयी

स्नेह-बन्धनसे । अकेली वनमें भाग चली । शबर-कन्या थी, वनमें उसे भय कैसा । वन-पथ परिचित था । बहुत दूर था मतंगाश्रम; किन्तु वही आश्रय था । बीचमें कबन्ध था । वह भक्षण कर ले, इसका भय नहीं था उसे, लेकिन जिसकी रक्षा सर्वेश करें, उसे कबन्ध मार पाता ? वह चलती रही, दौड़ती रही पूरी रात्रि, दिन होनेपर भी और कबन्ध सो रहा था जब उसका अरण्य पार कर रही थी वह ।

मुनियोंके आश्रम दीखे पम्पा सरोवरके पास पहुँचकर । उसके पद रुके— काँटोंसे छिदे पद; किन्तु प्राण आश्वस्त होगये— अब पिता या कोई स्वजन कबन्धके भयसे यहाँ तक पकड़ने नहीं आ सकते ।'

'ये ऋषि-मुनि असन्तुष्ट होंगे ।' दूसरी शंका हुई । वह अस्पृश्य शवर कन्या है । उसकी छाया भी पड़ी तो कोई मुनि रुष्ट होकर शाप दे देगा । बचपनेसे लोगोंने बहुत डराया है मुनियोंसे ।

उसने एक बहुत सघन झाड़ी ढूँढ़ ली । निश्चय कर लिया कि दिनभर उसमें छिपी रहेगी । भील-कन्याको उदर-पूर्तिकी क्या चिन्ता । कन्द, मूल, फल, शाक उसके अत्यन्त परीचित हैं और इधर तो झरबेरीकी झाड़ियाँ भरी पड़ी हैं । वह बेर खाकर वर्षों रह सकती है ।

उसने सुना है कि ऋषि-मुनियोंकी सेवा श्रेष्ठ कर्म है । उसने दूसरे दिनसे ही यह सेवा प्रारम्भ कर दी । रात्रिमें ही मुनियोंके सरोवर तक पहुँचनेका मार्ग स्वच्छ करके दूर वनमें चली जाती । अपने लिए कन्द, मूल, फल और बहुत-सी सूखी लकड़ियाँ एकत्र करती । वहीं कन्द-मूल खाकर किसी झाड़ीमें पड़ी रहती । रात्रिका अन्धकार होनेपर लौटती । अर्धरात्रिके पीछे, उठकर सूखी लकड़ियाँ ऋषियोंके आश्रममें उनकी अग्निशालाके द्वारपर रखकर आश्रम भूमि और सरोवरका पथ स्वच्छ करती । ब्राह्ममुहूर्तमें कोई उठे, इससे पहिले अपनी झाड़ीमें जा छिपती ।

'यह मार्ग कौन स्वच्छ करता है ? कौन रख जाता है प्रतिदिन ये समिधाएँ ?' जो सबसे अधिक सावधान है, उसी तपस्वीको दूसरेकी सेवा सबसे पहिले सतर्क करती है । महर्षि मतंगने पूछताछ प्रारम्भ की— 'इस प्रकार सेवा करके कौन हमारी तपस्या चुरानेकी चेष्टा कर रहा है ?'

वहाँ राक्षसोंसे घिरे उस प्रदेशमें किसीके समीप कोई तरुण शिष्य नहीं था । सब वृद्धप्राय तपस्वी थे । सब अकेले अपनी पर्णकुटी बनाकर रहते थे । सबके यहाँ समिधाएँ रखी जा रही थीं । सभीके आश्रम रात्रिमें स्वच्छ हो रहे थे । प्रश्न ही था कि यह कौन करता है ? तपस्वियोंकी तपस्या नष्ट करनेका यह कोई देवराज इन्द्रका अद्भुत प्रयत्न है या नहीं ।

'कौन हो तुम ? रुको ?' महर्षि मतंगने इस तपःचोरको पकड़नेका निश्चय किया । रात्रि-जागरण तपस्वीके लिए कोई समस्या नहीं थी । ज्योत्स्ना धवल रजनी, शबरीने जैसे ही काष्ठ यज्ञशालाके द्वारपर रखा, महर्षि अपने उटजसे बाहर आगये । कुछ कठोर स्वरमें डाँटा उन्होंने ।

'एक अपावन शवर कन्या है ।' शवरीने भूमिपर मस्तक रखा । भागनेका अवसर होता तो भाग गयी होती । भयसे काँपते हुए, ऋषि उसका स्पर्श न कर लें, इस प्रकार सावधान करके बोले—'आप सब महात्माओंकी शरण आयी हूँ ।'

'क्यों आयी हो ? क्या चाहती हो ?' उसके कातर कण्ठसे, भय कम्पित गात्रको देखकर महर्षिका स्वर मृदु होगया ।

'अपना उद्धार चाहती हूँ ।' शबरीने अपनी कथा सुना दी ।

'अपना उद्धार ? और कुछ ?' महर्षि गम्भीर होगये ।

'और कुछ नहीं देव ।' शबरी गिड़गिड़ायी ।

'शबरी ! तुम अस्पृश्य कुलमें उत्पन्न होकर भी परमपावन हो । धर्मका निवास है तुम्हारे हृदयमें ।' महर्षि दयार्द्र हो गये—'सच्चे अधिकारीकी अवज्ञा करनेवालेको सर्वेश क्षमा नहीं करते । तुम प्रातःकाल स्नान करके आ जाना ।'

शबरी कृतार्थ होगयी । प्रातःकाल महर्षिने उसे राम-नामकी दीक्षा दी । ऋषि-आश्रमोंसे कुछ दूर पर्णशाला बना लेनेकी अनुमति दे दी ।

एक अस्पृश्य भील कन्याको महर्षिने शिष्य बना लिया, यह दूसरे किसी तपस्वीको अच्छा नहीं लगा । महर्षियोंने भी उसे मना कर दिया कि वह किसीके आश्रममें समिधा रखने न जाया करे । गुरुके लिए काष्ठ चयन और पर्णशाला प्रांगणकी स्वच्छताकी आज्ञा मिल गयी उसे । सरोवरके समीपका स्थान वह

रात्रिमें स्वच्छ करती रही ।

अब दिनभर और रात्रिमें निद्रा आनेतक उसका जप चलने लगा । कन्द-मूल-फलपर उसने जीवन बिताया था । इस प्रकार दिन बीते, महीने बीते, वर्ष बीतते गये । शबरी युवा आयी, वृद्धा हो गयी । उसके केश श्वेत हो गये । शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं । इस कालमें महर्षिने दूर बैठकर ऋषियोंके साथकी चर्चा सुननेका उसे अधिकार दे दिया था । स्वयं उसे दूर बैठाकर उपदेश करते थे । भगवत्कथा सुनाते थे ।

'वत्से ! परात्पर पुरुष श्रीराम पृथ्वीपर प्रकट हो चुके । वे अब अनुजके साथ चित्रकूट आ गये हैं ।' एक दिन महर्षिने शबरीको बुलाकर कहा—'लेकिन सबके शरीरकी अवधि होती है । मेरे शरीरका प्रारब्ध पूरा हो गया । तू व्याकुल मत होना । राम स्वयं तेरे यहाँ आवेंगे । उनका आतिथ्य करना ।'

महर्षि मतंगने सब तपस्वियोंको एकत्र करके उनसे विदा ली । स्नान करके आसन लगाया । उनका शरीर योगाग्निसे भस्म होगया । भस्म होगयी । उसी अग्निसे उनकी पर्णशाला । वह पावन भस्म वायुदेव उड़ा ले गये ।

तपस्वियोंमें देहासक्ति नहीं हुआ करती । वे लोग अपनी पर्णशालाओंमें चले गये; किन्तु शबरीकी तो वह तीर्थभूमि थी । वह प्रतिदिन उसे स्वच्छ करके गोमयोपलिप्त करती । वहाँ किसीके यहाँ गौ भी नहीं थी । वनके भैंसोंका गोबर ही उसे लाना पड़ता था ।

'राम मेरी पर्णकुटीमें आवेंगे !' गुरुके वाक्योंने शबरीके अन्तरमें अद्भुत उत्साह भर दिया । वह दूसरे दिनसे ही अपने उन रामके सत्कारकी प्रस्तुतिमें लग गयी । उसे कहाँ पता था कि चित्रकूट कितनी दूर है । गुरुदेवने भी कहाँ कहा था कि राम कब आवेंगे । उसे लगता था, राम आज ही आवेंगे । अभी ही आनेवाले हैं राम ।

शबरीकी रात्रिमें निद्रा समाप्त होगयी । वह वनमें दूरतक अब जा नहीं सकती; क्योंकि दूर जाय और राम आ जायँ तो ? सरोवर तकका पथ दिनमें बार-बार स्वच्छ करती है । उसके राम आवेंगे उस पथसे । सरोवर तक पता नहीं किस पथसे आवें; किन्तु सरोवरसे पर्णकुटी तकके पथमें शबरीको एक शुष्क पत्र सहन नहीं । ब्राह्ममुहूर्तसे पूर्व वह पूरा पथ लीप डालती है ।

राम आवेंगे—उनके लिए पुष्प, जल तो चाहिये । शबरी पता नहीं, दिनमें कितनी बार पुष्प-चयन करती है । पुष्प शीघ्र म्लान होते हैं । जल शीघ्र उष्ण हो उठता है । बार-बार पुष्प और जल परिवर्तित करने होते हैं ।

राम आवेंगे—अभी आते होंगे राम । शबरी कन्द, मूल, फल एकत्र करती है रामके लिए । एकत्र करती है और बार-बार अपनी पर्णशालाकी ओर भागती है—राम आ गये ।

'राम आवेंगे तो इस अस्पृश्याके यहाँ आवेंगे ?' तपस्वी व्यंग करते हैं; किन्तु शबरी कहाँ किसीकी सुनती है । गुरुदेवने कहा है कि राम उसके यहाँ आवेंगे—अवश्य आवेंगे । शबरीकी आस्था अमर है । उसकी आकुल प्रतीक्षा अनथक है ।

'राम आये ? राम आ रहे हैं ?' कोई मृग कूदता है, कोई पक्षी उड़ता है, कोई आहाट—शबरी तो उन्मादिनी हो गयी है । वायुके चलनेके शब्दमें भी उसे रामके आगमनकी आहटका भ्रम होता है । वह बार-बार बिना आहट भी ऊँचे चढ़कर दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाती है—'राम आ रहे हैं ?'

दूर्वादल श्याम, कमल लोचन, आजानुबाहु, जटामुकुटी, वल्कलवसन राम और उनके समान वेशवाले स्वर्ण-गौर लक्ष्मण । दोनों भाई धनुषधारी । शबरीने श्रीरामको देखा नहीं है; किन्तु गुरुमुखसे उनका वर्णन सुना है । अपने हृदयमें तो उसे दोनों भाई प्रत्यक्ष लगते हैं । युग-युगके पहिचाने । श्रवण मार्गसे ही तो सदा वे मनुष्यके हृदयमें आते हैं । शबरीके हृदयमें पता नहीं कबसे विराजमान हैं और वह अब उनके प्रत्यक्ष आगमनकी प्रतीक्षा कर रही है ।

ग्रीष्म, वर्षा, शीतकाल आता गया—बीतता गया । ऋतुएँ परिवर्तित होती गयीं । वृक्षोंमें पत्र आते, पुष्प आते, फल आते, फल पकते, पतझड़ होता । महीने बीतते गये, ऋतुएँ बीतती गयीं, वर्ष बीतते गये । श्रीरामको चित्रकूटसे पञ्चवटी पहुँचकर वहाँसे प्रस्थान करनेमें लगभग बारह वर्ष लगे थे और शबरीकी अनथक प्रतीक्षा चलती रही थी । केवल उसके पुष्प, कन्द, मूल, फल ऋतुओंके अनुसार परिवर्तित होते थे । उसकी प्रतीक्षामें, उसकी आस्थामें, उत्सुकतामें कोई परिवर्तन, कोई क्लान्ति कभी नहीं आयी ।

ग्रीष्मकी प्रचण्ड धूप उसे रोक नहीं सकी । वर्षाका प्रबल वेग और

शिशिरकी कठोर ठण्ड उस वृद्धाको विरमित करनेमें असमर्थ थी। उसका ध्यान ही कहाँ था अपने शरीरकी ओर। वह जर्जर काया एक धुनसे सञ्चालित थी—'राम आ रहे हैं।'

ऐसी उत्कण्ठा, ऐसी प्राणोंमें जागी प्रतीक्षा—उस सर्वेशकी प्रतीक्षा यदि असफल हो जाय, सृष्टि टिकेगी ? आधि-व्याधि, संकट या यमका साहस था रामकी प्रतीक्षामें पागल उस वृद्धाका स्पर्श करनेका ?'

शबरीकी प्रतीक्षा—शबरीके उत्सुक प्राणोंकी प्रतीक्षाको सफल तो होना ही था; किन्तु कब ? बड़ा दुर्दिन होता है पावस प्रारम्भ होनेसे कुछ पूर्वका दिन। कन्द अंकुरित हो जाते हैं। मूल उगने लगते हैं। वृक्षोंमें फल होते हैं; किन्तु अभी सुपक्व नहीं होते। शबरीको इन दिनों बहुत असंतुष्ट रहना पड़ता था प्रतिवर्ष। कोई कन्द, मूल, आहार योग्य नहीं। एक ही वृक्षके फलोंमें कौन अम्ल, कौन मधुर, कुछ ठिकाना नहीं। केवल झरवेरीमें फल मिलते थे। सूखे-से फल; किन्तु कुछ मधुर मिलते थे वे। बिना चखे कैसे पता लगे कि कौन मधुर, कौन अम्ल। वह फल चखकर मधुर एकत्र करती थी। इस चखनेमें अम्ल, कटु उसकी उदरपूर्ति करते थे। मधुर एकत्र कर लिया करती थी।

शबरीने जनपद देखा ही नहीं था। वह भील कन्या थी। बचपनमें जैसे फल चखकर सहेलियाँ परस्पर देती थीं, वही जानती थी। जीवन भले ऋषि आश्रममें, ऋषियोंके समीप बीता; किन्तु महर्षि मतंग भी उसे दूर बैठकर श्रवणका अधिकार मात्र दे सके। उनकी यह उदारता भी दूसरे तापस कठिनाईसे सहते थे। अतः ऋषि-मुनियोंके आचार-व्यवहारको देखनेका शबरीको अवसर ही नहीं मिला था।

शबरीको यह भी पता नहीं था कि ऋषि-मुनियोंके अतिरिक्त भी क्षत्रिय, वैश्य वर्णके लोग उसे अस्पृश्य मानेंगे। उसने केवल तपस्वियोंके लिए अपनेको अस्पृश्य जाना था और राम उसके मनमें कहाँ तपस्वी थे। वे धनुर्धर थे, शबरीके अपने स्वजन पिता आदि भी धनुर्धर थे, अतः राम उसे अपने लगे थे—अपने थे।

शबरी अपने रामके लिए फल एकत्र करती थी। 'उसके राम आवेंगे—अवश्य आवेंगे। आते होंगे।' शबरीके प्राण प्रतीक्षा कर रहे थे। राम आये—

सचमुच सानुज आये, किन्तु प्रावृट् प्रारम्भ होनेसे पूर्वके विषम दिनोंमें आये जब शबरीको उनके लिए कन्द-मूल संग्रहमें सबसे अधिक कठिनाई होती थी। कन्द-मूल अंकुरित होकर अखाद्य हो जाते थे। फल अपक्व थे। झरबेरीके बेर चखकर ही जाने जा सकते थे कि मधुर हैं या नहीं। शबरीने उन्हें तनिक-तनिक चखकर एकत्र किया था।

कुछ मधुर फल भी मिले शबरीको चार[1] तेंदू[2] जैसे। कुछ कन्द भी अनंकुरित मिले मिश्री कन्द जैसे। खाद्य अंकुर वर्षासे पूर्व नहीं मिल सकते थे। शबरी जानती ही नहीं थी कि चखनेसे फल उच्छिष्ट हो जाता है तो दूसरे फल जिन्हें चखना नहीं था, हाथ धोकर संग्रह करती? उसे अपने रामके लिए फल एकत्र करने थे—मधुरतम फल, स्वादिष्ट कन्द, उत्तम गुणवाले कन्द। राम उसके थे।

राम जो सबके हृदयमें रहते हैं उनके लिए कोई अस्पृश्य होता है? सर्वव्यापी राम—आपके मुखमें वे नहीं हैं? उनके लिए उच्छिष्ट? राम किसके? जो सच्चे मनसे उन्हें अपना मान ले। तब शबरीके अपने—सगे स्वजन ही तो थे राम।

राम आये—सानुज आये। पम्पा सरोवरमें स्नान करके आये। सरोवरके तटपर ही ऋषियोंने, तपस्वियोंने उनका स्वागत किया। उनसे अपनी पर्णशाला पधारनेकी प्रार्थना प्रायः सबनेकी; किन्तु राम तो उस पगदण्डीसे चल पड़े जो उनके लिए प्रतिदिन उपलिप्त होती थी। जो उनके लिए दिनमें कई बार स्वच्छ होती थी। जो उनकी प्रतीक्षारत शबरीकी पर्णकुटी जाती थी। उस पर्णकुटी जाती थी जिसे राम अपनी कह सकते थे।

राम आये—शबरीकी पर्णकुटीके द्वारपर स्वयं आये। अनिमन्त्रित आये। तपस्वियोंके निमन्त्रणकी उपेक्षा करके आये। इसकी उपेक्षा करके आये कि तपस्वी रुष्ट होकर चले गये जब वे सानुज इस पर्णशालाकी ओर बढ़े।

राम आये। इन्दीवर सुन्दर, कमललोचन, जटामुकुटी, वल्कलवसन,

---

१. इसका बीज चिरौंजी होता है।

२. इसीके पत्तोंसे अब बीड़ी बनती है।

आजानुबाहु, धनुर्धर राम सानुज आये । शबरीने देखा—इतने सुकुमार, इतने सौन्दर्यघन राम ! हृदयमें जो मूर्त्ति आती थी उससे अनन्त-अनन्त गुणित सौन्दर्य, माधुर्यघन राम; किन्तु जैसे युग-युगके, जन्म-जन्मके परिचित अपने अत्यन्त स्वजन राम आये । शबरीको कुछ सूझा नहीं । वह रामके चरणोंमें लिपट गयी । दोनों भुजाओंमें भर लिए उसने रामके पद ।

रामने शबरीको उठाया । स्वयं आसन देखकर बैठ गये । अब शबरी तनिक सचेत हुई । उसे कहाँ अर्घ्य, पाद्य, आचमन देना आता था । वह कहाँ श्रुति मन्त्रोंसे स्तवन कर सकती थी । उसके नेत्रोंसे झरती वारिधाराने रामके चरण धोये । थर-थर काँपता शरीर, किसी प्रकार अपने वल्कलके अञ्चलसे ही उस वृद्धाने रामके चरण पोंछ दिये ।

न चन्दन, न धूप, न दीपक । कदली तन्तुमें कण्टकके द्वारा पिरोयी पुष्पमाल शबरीने रामके कण्ठमें समर्पित की और उनकी जटामें पुष्प सजाने लगी, तबतक स्वयं रामने कहा—'शबरी ! मैं बहुत भूखा हूँ ।'

संकोचीनाथ श्रीराम; किन्तु शबरीसे संकोच कैसा ? यहाँ आकर तो रामको सीताका वियोग विस्मृत होगया था । सचमुच राम बहुत भूखे थे । राम सदा प्यासे प्राणोंका प्रेम पानेके भूखे रहते हैं और यहाँ आकर बहुत भूखे हो गये थे । लक्ष्मणके बार-बार आग्रहपर भी जिन्होंने फल या कन्द मुखमें नहीं लिया था, वे राम भूखे तो थे ही । पञ्चवटीसे चले तबसे निराहार राम भूखे नहीं होंगे ? शबरीकी पर्णशालामें आकर रामकी क्षुधा एक साथ जाग उठी थी ।

शबरी अपने सब संगृहीत फल, कन्द उठा लायी । अब राम कुछ स्वयं उठाकर खाने लगे, कुछ शबरी उनके मुखमें स्वयं देने लगी । शबरी फल उठाती थी, मिश्री कन्द उठाती थी । राम मुख खोलकर ले लेते थे; किन्तु बार-बार माँगते थे—'शबरी ! तुम्हारे बेर बहुत स्वादिष्ट हैं ।'

रामको कब क्या स्वादिष्ट लगेगा, कोई कह सकता है ? इन्हींको आगे द्वापरमें केलेके गूदेसे छिलका अधिक स्वादिष्ट लगा था । त्रेतामें तो शबरीके इन बेरोंका स्वाद कभी भूला ही नहीं—

'मातृ स्वजन गुरु सदन सासुरे, भइ जब-जब पहुनाई ।
तब-तब कही शबरीके फलनकी रुचि माधुरी न पाई ॥
-गीतावली

रामने खाया—माँग-माँगकर खाया । शबरीने पुलक पूरित खिलाया । इस खिलाने और खानेमें दोनोंमें एकको भी स्मरण नहीं आया कि लक्ष्मण वहीं हैं, खड़े हैं, आनन्दाश्रु भरे पुलकित अपने अग्रजका यह सत्कार देख-देखकर तृप्त हो रहे हैं ।

रामने तृप्त होकर भोजन करके आचमन किया । अब शबरी बोल सकने योग्य हुई—'राम ! तुम आये । आज गुरुदेवका आशीर्वाद सफल हुआ । आज मेरा तप, मेरी गुरु सेवा सफल हुई । गुरुदेव तब अक्षय लोक चले गये, जब तुम चित्रकूट पहुँचे थे । तबसे मैं तुम्हारी राह देख रही थी । मेरे गुरुदेवके स्थानका दर्शन करोगे ?'

'करेंगे देवि !' राम उठ खड़े हुए । शबरीको अब लकड़ी टेककर चलना पड़ता था । वह आगे चली ।

'यह गुरुदेवका आश्रम है ।' शबरी दिखा रही थी—'इस वेदीपर वे शयन करते थे । वहाँ हवन करते थे । उनके तपः प्रभावसे तुम्हारे दर्शन हुए । ये वृक्ष स्वयं वल्कल देते थे । अब भी लताएँ यहाँ अम्लान पुष्पोंसे लदी हैं ।'

शबरी भाव-विभोर कह रही थी । राम-लक्ष्मणने वेदीको प्रणिपात किया । हवन कुण्डकी भस्म मस्तकमें लगायी । शबरीका जो तीर्थ है, रामके लिए वह परमतीर्थ था । अनुजसे बोले—'लक्ष्मण ! महर्षि मतंगका यह तपः प्रभाव अब भी प्रत्यक्ष है कि यहाँके पशु-पक्षी मनुष्योंका विश्वास करके इतने समीप आ गये हैं । यहाँ मृग और सिंह साथ खेलते, बैठते दीख रहे हैं ।'

'शबरी ! तुम्हारे समीप हमें कबन्धने भेजा ।' रामने अब कहा—'तुम तपस्विनी हो । सीताका पता हमें बताओ ।'

'राम ! एक अस्पृश्या भीलनीका क्या तप, क्या शक्ति ।' शबरीने कहा—'गुरु कृपासे जानती हूँ कि तुम लीलामय हो । सामने पम्पासर है । उसके दक्षिण तटपर चले जाओ । वहाँ सुग्रीवसे मिलनेका मार्ग प्राप्त हो जायगा ।

वे तुम्हारा कार्य करेंगे ।'

यह चर्चा चल ही रही थी कि तपस्वियोंका समूह आ गया । सबने पुकारकी—'मर्यादा पुरुषोत्तम ! कृपासिन्धु ! कृपा करो ! हमारे धर्मको नष्ट होनेसे बचाओ !'

श्रीराम जब सानुज शबरीके आश्रम चले थे पम्पासरोवरके समीप से, सब तपस्वियोंको बुरा लगा था । वे रुष्ट होकर चले गये थे । उनमें चर्चा ही यह थी—'महर्षि मतंगने उस अस्पृश्य, भीलनीको आश्रय दे दिया और अब ये राजकुमार होकर भी उसी आचारहीनाकी झोंपड़ीपर गये हैं ।'

शबरीका वहाँ रहना उन लोगोंको सदा अखरता रहा था । महर्षि मतंगका प्रतिकार कर नहीं सकते थे और राक्षसोंके भयसे मतंगाश्रमसे दूर भी नहीं जा सकते थे । अब श्रीरामने उनके आश्रम पधारनेका आमंत्रण अस्वीकार किया तो सबको अपमानका अनुभव हुआ । सब रोषमें शबरीको ही बुरा-भला कहते लौटे ।

सब अपने-अपने आश्रम पहुँचकर चौंके । हवन कुण्डमें अग्नि बुझ गया था । वल्कल चूहोंने कुतर डाला था । पर्णकुटीमें कीड़े-पतंगोंका राज्य । अनेक स्थानोंपर चुहियोंने बच्चे दे रखे । लताएँ मुरझायी दीखीं ।

तपस्वी प्राणि-हिंसा कर नहीं सकते और पतंगोंने, चूहोंने पर्णकुटी रहने योग्य नहीं रहने दी । परस्पर एक दूसरेके यहाँ दौड़े । सब कहीं एक-सी विपत्ति । निश्चय हो गया—'यह आधिदैविक उपद्रव है । श्रीराम ही इससे रक्षा कर सकते हैं ।'

'लगता है, आप सबने परम तपस्विनी, भक्ति-मूर्ति शबरीजीकी निन्दाकी है ।' तपस्वियोंकी बात सुनकर श्रीरामने कहा तो सबके मस्तक झुक गये । 'राम भी इस अपराधका मार्जन करनेमें असमर्थ है । इन देवीसे ही आप क्षमा याचना करें । इनकी चरण रज पड़े तो आप सबके आश्रम निरुपद्रव हों ।'

राम भक्तवत्सल हैं तो गर्वहारी भी हैं । भक्तापराध क्षमा करना ही इन्हें नहीं आता । तपस्वियोंका गर्व नष्ट होगया । शबरीसे क्षमा माँगी और

उस वृद्धाके रोकने, गिड़गिड़ाने पर भी उसके चरणोंके चिन्होंसे अंकित रज लेकर लौटे।

तपस्वियोंके आश्रममें जैसे ही वह रज पड़ी—पतंगे, कीड़े, चूहे अदृश्य होगये। वल्कल तो नवीन जुटाने ही थे। अग्नि भी अरणि-मन्थन करके प्रज्वलित करनी पड़ी।

'राम ! तुमने यह क्या किया ?' अत्यन्त ग्लानिसे शबरीने कहा—'यह अस्पृश्या भीलनी तुम्हारा स्मरण करती एक ओर पड़ी थी, अब ये पूज्य तपस्वी इसका सम्मान करेंगे, यह कैसे सहा जायगा ? शरीर जर्जर होगया है। अबतक तुम्हारे दर्शनकी आशामें गुरुदेवका वियोग सहती रही। अब मुझे आज्ञा दो।'

'देवि ! आप जैसे प्रसन्न हों, करें।' लक्ष्मणने कहा। शबरीने अपने गुरुदेवका देहत्याग देखा था। वह वहीं बैठ गयी वैसे ही आसन लगाकर। भले उसे अग्नि-धारणा न आती हो, संकल्प करते ही उसके शरीरसे अग्नि प्रकट हुई। उस ज्वालामें वह वृद्धकाया भस्म होगयी। ज्वालासे दिव्यवस्त्राभरणा ज्योतिर्मयी देवी प्रकट हुई। श्रीरामकी स्तुति करके, सानुज उनकी प्रदक्षिणा करके वह परमधाम चली गयी।

श्रीराम सानुज वहाँसे पम्पासरोवर आये। दोनों भाइयोंने स्नान किया और शबरीको इस श्रद्धासे जलाञ्जलि दी जैसे सत्पुत्र परलोकगता माताको देते हैं।

●●●

पम्पासरोवर

आज जहाँ हास्पेट नगर है, बहुत करके यहीं पम्पासरोवर होगा। आकाशसे देखनेपर हास्पेट एक बहुत बड़े कटोरेमें बसा लगता है। ऋष्यमूक पर्वतका विस्तार बड़ा होगा। मतंगाश्रम ऋष्यमूककी तलहटीमें ही था।

स्नान करके, श्रीराम जब सरोवरके समीप बैठ गये, सरोवरका निर्मल जल, उसमें खिले अनेक रंगोंके कमलोंकी शोभा, जल-पक्षियोंकी क्रीड़ा, सबने मिलकर श्रीरामको पुनः श्रीवैदेही-वियोगमें व्याकुल कर दिया। मनका स्वभाव ही है कि दारुण दिनोंमें और सुरम्य स्थानपर, सुखके समय भी वह अपने अतिशय प्रियका स्मरण करता है।

'लक्ष्मण ! इस सरोवरके समीप जो आगे पर्वत है, वही ऋष्यमूक है। उसीपर कहीं सुग्रीव रहते हैं। तुम उनके समीप जाओ; किन्तु क्या वे मुझ राज्यभ्रष्टकी सुनेंगे ?' श्रीराम व्याकुल होकर बोले—'सीताके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता; मैं कामको जीत लेता यदि मलयानिल, यह वसन्त मुझे व्याकुल न बनाता।'

वियोग-व्याकुल श्रीराम कहाँ स्मरण करते हैं कि 'यह वसन्त नहीं प्रावृट्के प्रारम्भसे पूर्वका ग्रीष्म है। वे अनुजसे कह रहे थे—'ये पत्ते मुझे संकेत करके बुला रहे हैं। ये जल-पक्षी मुझे पुकार रहे हैं। मैं जल-प्रवेश कर लूँगा। तुम अयोध्या लौट जाओ।'

'आर्य ! आप पुरुषोत्तम हैं। अपने इस दासकी क्यों परीक्षा ले रहे हैं ? लक्ष्मण शिथिलोत्साह नहीं है। मैं जानता हूँ कि उत्साहके बिना उद्योग नहीं बनता।' लक्ष्मणने कहा—'उत्साहीके लिए कुछ अलभ्य नहीं है। आपका यह सेवक दशग्रीवको पातालमें छिप जानेपर भी नहीं छोड़ेगा। आप सर्व-समर्थ हैं। सुग्रीवका सौभाग्य उदय होगा, यदि वह आपकी सेवा स्वीकार करता है।'

श्रीरामने समीप गिरते निर्झरको देखा—'लक्ष्मण ! यह अहर्निशि पर्वतके अन्तरसे झरती जल-धारा, हर-हरका अखण्ड कीर्तन प्राणियोंकी पिपासा शान्त

करने बढ़ी जा रही है । धन्य है यह पानीका पवित्र आत्मोत्सर्ग ।'

'देव ! आपकी ऐसी ही अकारण करुणा संसारके त्रयतापतप्त प्राणियोंको परम पावन करने अहर्निशि झर रही है ।' लक्ष्मणने भावक्षुब्ध कण्ठसे कहा—'किन्तु अपनी ही छुद्रतामें सिमटा प्राणी पाषाण बन गया है । प्रवाहमें पड़े रहनेपर भी उसका अन्तर आर्द्र नहीं हो पाता ।'

'यह निर्मल जल, ये सरोवरके समीपकी झुककर पानीके दर्पणमें अपना मुख देखतीं लताएँ, ये विहंग-मिथुन ।' श्रीराम अपनी धुनमें कह रहे थे—'कहाँ होगी वैदेही ? उनके समीप भी कोई सरोवर होगा ? मेरे वियोगमें उन्हें सरोवरकी शोभा दृष्टि पड़ेगी ? कितने उत्साहसे वे मेरे साथ बन आयी थी ? हंससे वियुक्त हंसिनीके समान उनका क्रन्दन ही तो गूँजता होगा । जैसे यह निर्झर अखण्ड क्रन्दन कर रहा है ।'

'आर्य ! निर्झरकी गति अविराम है । इसका उत्साह थकता नहीं । अतः यह वारिधिको पाता ही है ।' लक्ष्मण अग्रजका ध्यान दूसरी ओर करनेके सतत प्रयत्नमें लगे थे ।

श्रीराम आज अधिक ही उद्विगन थे । सरोवरकी शोभा इस उद्वेगको बढ़ा ही रही थी, अतः आवश्यक था कि सरोवरसे शीघ्र कुछ दूर निकल जाया जाय ।

श्रीरामने लक्ष्मणको ऋष्यमूकपर सुग्रीवके समीप जानेको कहा अवश्य, किन्तु स्वयं उन्हें भाईका अपनेसे दूर जाना इस समय अच्छा नहीं लगा । वे अनुजके साथ ही ऋष्यमूककी ओर ही चल रहे थे ।

विराध दिनके प्रथम प्रहरमें ही मारा गया था । शबरीके आश्रम श्रीराम मध्याह्न-स्नान करके पहुँचे थे । अब दिनका चतुर्थ प्रहर चल रहा था, जब दोनों भाई पम्पासरोवरके तटपर ही किनारे-किनारे आगे बढ़ रहे थे । विशाल सरोवर, ग्रीष्ममें भी उसके किनारे हरे-भरे फलभारसे लदे वृक्ष थे । पुष्पोंसे झूमती लताएँ थीं और वहाँ ग्रीष्मके तापका नाम नहीं था । इस सबके कारण ही श्रीरामको वहाँ वसन्तका आभास हुआ था ।

श्रीलक्ष्मण चाहते थे कि सरोवरका तट छोड़ दिया जाय, किन्तु उन्हें अग्रजका अनुगमन करना था । शवरीने सरोवरके ही दूसरे तटपर सुग्रीवसे

मिलनेका सूत्र पानेकी बात कही थी । इसलिए भी सरोवरका तट छोड़कर सीधे पर्वतकी ओर चलना उपयुक्त नहीं लगता था, किन्तु सरोवरकी शोभाने जो अग्रजके मनस्तापको भड़का रखा था ? सुरम्य स्थान भी तो अनेक बार उद्वेगके कारण बन जाते हैं ।

●●●

हनुमान-मिलन

अकारण भी शंकित-भीत व्यक्ति डरता है । अपने अन्तरका भाव ही व्यक्तिको बाहर सर्वत्र दीखता रहता है । सुग्रीव अपने बड़े भाई बालिसे भयभीत थे । यह भय उनके हृदयमें ऐसा बैठ गया था कि वे सदा सशंक रहते थे । भले जबसे सुग्रीव ऋष्यमूकपर रहने लगे, बालिने उनकी उपेक्षा कर दी, उन्हें मारनेका कोई प्रयत्न नहीं किया, किन्तु सुग्रीव को कैसे भरोसा हो कि बालिने अबतक उन्हें मारनेका यत्न नहीं किया तो आगे भी नहीं करेगा ।

सुग्रीव उपदेवता था— वानर-उपदेवता । बड़े भाईने भवन, पत्नी सब छीन लिया । प्राण लेकर भागे । चार मन्त्री विपत्तिके दिनोंके साथी बने रहे— रीछराज जाम्बवन्त, हनुमान, नल और नील । इनके साथ ऋष्यमूकके शिखरपर शरण ली; क्योंकि शापके भयसे बालि यहाँ नहीं आ सकता था । अन्यत्र कहीं जा नहीं सकते थे । इसी पर्वतपर घूमकर और पम्पा सरोवरको देखकर मन बहलाना था ।

प्रकृतिकी गोदमें जैसे दर्पण पड़ा हो, ऐसा पम्पा सरोवर । हरे-भरे वृक्ष, पुष्प, लताएँ, गुञ्जार करते भ्रमर, कूजते पक्षी जैसे किसीके स्वागतका सम्भार बनदेवताने सजा रखा हो । भले पत्ते हिलकर बुलावें, पक्षी कूककर आह्वान करें, सुग्रीव बालिके भयसे वहाँ जा नहीं सकते थे । दूरसे सरोवरकी शोभा ही देख सकते थे ।

'जाम्बवान ! हनुमान आप सब यहाँ आवें ।' सुग्रीव शिखरपर घूमने निकले थे । पम्पासरोवरकी ओर दृष्टि गयी और चौंके । मन्त्रियोंको बुलाकर दिखलाया—'वे दो श्याम-गौर धनुर्धर सरोवरसे इधर ही आ रहे हैं । कहाँसे आये होंगे ? उत्तरमें कबन्ध है । किष्किन्धामें मनुष्य रहते नहीं; किन्तु बालि रावणका मित्र है । राक्षस और वानर भी कामरूप होते हैं । इनमें कोई मनुष्य-रूप बना सकता है । बालिने इन्हें मुझे मारनेको भेजा हो तो ?'

सुग्रीवकी शंकाको निराधार नहीं कहा जा सकता । उन्हें पता नहीं था कि कबन्ध या खर-दूषण मारे जा चुके हैं । इस राक्षसोंसे भरे प्रदेशमें तपस्वी मुनियोंको छोड़कर सामान्य मनुष्यके आनेकी सम्भावना ही नहीं थी । दूर-दूर तक कोई जनपद नहीं था और जो आ रहे थे वे वन्य भील तो किसी प्रकार कहे नहीं जा सकते थे । उनका वेश भले तपस्वी-जैसा हो, धनुर्धर थे । राक्षसोंके प्रदेशमें घूम रहे हैं तो असाधाराण शूर होंगे ही ।

'हनुमान ! तुम ब्रह्मचारीका वेश बनाकर उनके समीप जाओ ।' सुग्रीवने आदेश नहीं दिया, अनुरोध किया—'पता लगाओ कि वे बालिके मित्र हैं या नहीं ? बालिने मुझे मारने उनको भेजा हो तो हाथ हिलाकर संकेत कर देना, मैं यह पर्वत छोड़कर तत्काल भागूँगा ।'

सुग्रीव बालिसे तीव्र गतिसे भाग सकते थे । पहिले भी बालि उन्हें पकड़ नहीं सका था । इन दोनों शूरोंके सामनेसे भाग चलेंगे । भले बालि आवे तो फिर यहाँ आना पड़े ।

बालि धार्मिक है । ये उसके मित्र देवता या कोई अपरिचित वानर हुए तो ब्रह्मचारीका सम्मान करेंगे । ब्रह्मचारीसे झूठ बोलनेका प्रयोजन नहीं होगा । कोई दशग्रीवके योधा हुए तो ब्रह्मचारीके प्रति उनका व्यवहार उनको सूचित कर देगा । किसी भी दशामें एकाकी ब्रह्मचारीसे कोई दुराव नहीं करता ।

'आप मेरे संकेतकी प्रतीक्षा करें ।' हनुमानने वहीं सामान्य ब्रह्मचारीका वेश धारण किया । सुग्रीवको समझाया—'आप सम्भ्रम त्याग दो । बालि यहाँ आ नहीं सकता और दूसरोंसे सहायता लेना उसके स्वभावमें नहीं है । फिर भी मैं इनके समीप जाता हूँ ।'

कन्धेपर मूञ्जका यज्ञोपवीत, कक्षमें पलाशदण्ड और अश्वाजिन, हाथमें

कमण्डलु, गलेमें रुद्राक्षकी माला, घुटा मस्तक, बँधी शिखा, भालपर भस्म-तिलक, एक युवक ब्रह्मचारीके वेशमें हनुमान ऋष्यमूकके शिखरसे एक ओर कूदे और श्रीरामके समीप ऐसे आये जैसे वनमें-से— मतंगाश्रमकी ओरसे ही आये हों।

'आप दोनोंका मंगल हो !' ब्रह्मचारीने प्रथम हाथ जोड़कर प्रणाम किया—'आप दोनों विशालबाहु, कमललोचन, देवोपम तेजस्वी— अपने इन अरुण-मृदुल चरणोंसे वनकी कण्टकाकीर्ण भूमिमें क्यों विचरण कर रहे हैं ? आपने वल्कल, जटा धारण किया है; किन्तु धनुर्धर हैं । सिंहस्कन्ध, बलिष्ठ बाहु, चन्द्र-सूर्यके समान तेजस्वी आप वनमें क्यों आये ? आप भगवान् नर-नारायण हैं तो धनुष-बाण, खड्ग क्यों आपके पास ? ब्रह्मा, विष्णु, महेशमें कोई दो हैं तो अनुग्रह करके इस रूपका प्रयोजन बतला दें । परात्पर परमपुरुष ही इन दो रूपोंमें तो मुझे सनाथ करने मेरे सम्मुख प्रकट नहीं हुए हैं ? कृपा करके मुझे बतलावें कि आप कौन हैं ?'

'लक्ष्मण ! आश्चर्यकी बात है कि इस घोर वनमें इतना अल्पवयस्क और ऐसा विद्वान् ब्रह्मचारी आगया है !' श्रीरामने अनुजसे कहा—'यह व्याकरण-शास्त्रका प्रकाण्ड पण्डित लगता है । इसे अपने वाक्योंमें एक भी शब्द अशुद्ध, अनुपयुक्त नहीं कहा । इसका उच्चारण शुद्ध है, स्पष्ट है और शब्दोंका प्रयोग विद्वत्तापूर्ण है । यह कहीं बोलनेमें अटकता नहीं ।

ब्रह्मचारीके ब्राह्मण होनेकी सूचना उसका यज्ञोपवीत देता था । उसने आयुमें अपनेसे बड़ेको सायुध देखकर भी तपस्वी-वेशके कारण पहिले प्रणाम किया, यह उसकी विनम्रता थी । वह अपने भाषणसे विद्वान् सिद्ध हुआ । इस वनमें उसकी उपस्थिति कहती थी कि वह अत्यन्त निर्भय है । विरक्त है । किसी ऋषिका शरणापन्न होने आया हो सकता है ।

'मैं इक्ष्वाकुगोत्रीय अयोध्या-नरेश महाराज दशरथका ज्येष्ठ पुत्र राम हूँ और ये मेरे छोटे भाई लक्ष्मण हैं ।' श्रीरामने संक्षिप्त परिचय दिया—पिताकी आज्ञासे मैं पत्नीके साथ वनमें आया था । पञ्चवटीमें मेरी पत्नी जनकराजनन्दिनी सीताका राक्षसने हरण कर लिया । हम दोनों उन्हींको ढूँढ़ रहे हैं । आप कौन हैं ? इस वनमें आप कैसे पधारे !'

'मेरे स्वामी !' हनुमानजी साष्टांग पड़े पृथ्वीपर और श्रीरामके चरणोंपर

मस्तक रखकर रुदन करने लगे—'मैं अज्ञानी आपको न पहिचान सकूँ, यह स्वाभाविक है; किन्तु शरणागत-वत्सल ! आप अनजानके समान क्यों पूछ रहे हैं ?'

श्रीहनुमानजी अयोध्या रहे थे१ तब श्रीराम बालक थे । राजकुमारके वेशमें रहते थे । इस तापस-वेशमें यहाँ उनके दर्शन होनेकी सम्भावना नहीं थी ।

'आप ब्रह्मचारी..... ।' श्रीरामने कहा ।

'ब्रह्मचारी नहीं स्वामी ! आपका दास पवनपुत्र हनुमान । एक क्षणमें ब्रह्मचारी-वेश लुप्त होगया । श्रीहनुमानजी अपने वेशमें प्रकट हुए । श्रीरामने उठाकर हृदयसे लगाया । लक्ष्मणजीको हनुमानने प्रणाम किया तो उन्होंने भी अंकमाल दी ।

'पवननन्दन ! आप यहाँ ?' श्रीरामने पूछा ।

'प्रभु ! आपके आदेशसे ही मैं अयोध्यासे चला आया था ।' हनुमानजीने बतलाया—'पिताने किष्किन्धा भेजा तो वानरेन्द्र बालिके अनुज सुग्रीवने मुझे अपनी सेवामें स्वीकार कर लिया । मैं उनके ही साथ रहता हूँ । वे आपके सेवक हैं । बड़े भाईने उन्हें निर्वासित कर दिया है, अतः इस सम्मुखके पर्वत-शिखरपर ही अपने चार मन्त्रियोंके साथ रहते हैं । वे आपका सान्निध्य पाकर प्रसन्न होंगे ।'

'केशरी-कुमार ! हम तो स्वयं सुग्रीवसे मिलनेको समुत्सुक हैं ।' श्रीरामने कहा—'कबन्धने हमें उनसे मिलनेकी सम्मति दी है ।'

'कबन्धने ?' हनुमानजी चौंके नहीं । वे अपने इन आराध्यको जानते हैं । ये असम्भवको सहज सम्भव करनेवाले अवश्य कबन्धका उद्धार कर आये होंगे ।

'वह अपने राक्षस-शरीरसे परित्राण पाकर गन्धर्वलोक चला गया ।' लक्ष्मणजीने बतला दिया ।

---

१. यह कथा और हनुमानजीका पूरा चरित 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' में दिया गया है ।

'प्रभु ! आपका यह दास सुग्रीवका इस समय सचिव है ।' हनुमानजीने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'सुग्रीव आपसे मैत्रीकी कामना करते हैं ।'

'लक्ष्मण ! तुम देख ही रहे हो ये कपीन्द्र सुग्रीवके सचिव विद्वान है । वेदज्ञके बिना ऐसी शुद्ध वाणी दूसरेके कण्ठसे प्रकट नहीं होती ।' श्रीरामने पुनः प्रशंसा की—ये मध्यम स्वरमें, बिना विस्तारके असन्दिग्ध स्थिर स्वरसे शुद्ध, स्पष्ट, संस्कारित भाषा बोलते हैं । इनके मुख, नेत्र, भ्रूपर बोलते समय कहीं विकार नहीं आता । न शीघ्रता, न अटकना । ऐसी वाणी सुनकर कौन मुग्ध नहीं होगा । जिनके ऐसे योग्य सचिव हैं, वे सुग्रीव अवश्य मित्रता करने योग्य हैं ।'

'हनुमान ! हम भी सुग्रीवसे मिलना चाहते हैं । उनकी मैत्री हमें भी अभीष्ट है ।' लक्ष्मणजीने कहा—'हम उनके समीप चलेंगे ।'

'आप दोनों मेरे कन्धोंपर विराजमान होनेकी कृपा करें !' हनुमानजी एक घुटना मोड़कर वीरासनसे सामने बैठ गये—'नाराणका वाहन गरुड़ भी आज इस वानरके सौभाग्यकी स्पृहा करे !'

श्रीरामने सस्मित अनुजकी ओर देखा । स्वयं पवनकुमारके दाहिने स्कन्धपर बैठ गये तब अनुज भी वाम स्कन्धपर बैठे । जब दोनों भाइयोंके आगेके चरणोंको भुजाओंसे घेरकर हनुमान खड़े हुए, पर्वतपर खड़े, इसी ओर दृष्टि लगाये सुग्रीवको किसी संकेतकी आवश्यकता नहीं रह गयी ।

●●●

सुग्रीव-मैत्री

'आप भय न करें ! हम आपकी मित्रता चाहते हैं ।' हनुमानने राम-लक्ष्मणको शिखरपर एक वृक्षकी छायामें उतार दिया, तब समीप आये सुग्रीवसे श्रीरामने कहा ।

'आप दोनों कौन हैं ? यहाँ वनमें क्यों हैं ?' सुग्रीवने पूछा ।

'सब प्राणियोंको शरण देनेवाले ये मेरे अग्रज अयोध्या-नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र हैं । पिताकी आज्ञा स्वीकार करके ये वन आये हैं ।' लक्ष्मणने परिचय दिया—'इनके गुणोंके कारण मैं इनका दास लक्ष्मण हूँ । पञ्चवटीमें राक्षसने इनकी पत्नीका हरण कर लिया । दानववंशी कबन्धने आपका परिचय देकर हमें भेजा है कि 'सुग्रीव सहायता करेंगे ।' सर्वलोकोंको शरण देनेमें समर्थ, सबकी कामना पूर्ण करने वाले, सबके विपत्तिके परमाश्रय श्रीराम आपसे शोकार्त होनेके कारण सहायताकी कामना करते हैं ।'

अग्रजके सम्बन्धमें इतना कहना भी लक्ष्मणको असह्य होगया । उनके नेत्र भर आये । कण्ठ गद्गद् होगया । स्वयं समर्थ रहते किसीसे सहायताकी याचना—'लेकिन सेवकको तो स्वामीके संकेतका अनुगमन करना पड़ता है ।'

'मैं भी भाईके द्वारा हृतदार, निर्वासित, दीन बानर हूँ ।' सुग्रीवने हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रतापूर्वक श्रीरामसे कहा—'आप पराक्रमी हैं; फिर भी मुझ वानरसे मैत्री चाहते हैं, यह मेरा परम सौभाग्य है । आपकी मैत्रीकी आवश्यकता मुझे अधिक है । वह मेरा गौरव है । सचमुच आप यदि इस तुच्छ वानरको मित्र स्वीकार करना चाहते हैं तो मैंने ये हाथ फैलाये, आप इन्हें पकड़कर मैत्रीकी मर्यादा बना दो । मेरे ये हाथ—मेरी समस्त क्रियाशक्ति आपके सम्मुख है । आप इसे अपनाओ, इसे ग्रहण करो ।'

श्रीरामने अपने सम्मुख फैले सुग्रीवके दोनों हाथ पकड़ लिये और ऐसे प्रसन्न हुए जैसे उन्हें अकल्पित लाभ हुआ । श्रीरामका स्वभाव ही ऐसा है । इनके सामने जो हाथ फैलाता है, उसका हाथ पकड़कर उसे उठा लेते हैं, अपना लेते हैं । यह करके भी मानते हैं कि उपकार इन्होंने नहीं किया, हाथ फैलाने

वालेने किया । किसीको भी अपनाकर राम अत्यन्त प्रसन्न हुआ करते हैं ।

'आर्योंमें अग्निकी साक्षीमें पाणि-ग्रहणकी प्रथा है । एक बार अग्निकी साक्षीमें सत्पुरुष जिसका कर-ग्रहण करते हैं, कैसा भी वह हो, उसका जीवनभर निर्वाह करते हैं ।' हनुमानजीने इतनी देरमें थोड़ी सूखी टहनियाँ एकत्र करके समीप अग्नि प्रज्वलित कर दी और बोले—'हम उपदेवता भी अग्निको श्रेष्ठतम साक्षी मानते हैं । अतः आप दोनों इन हव्यवाहकी साक्षीमें अपनी मैत्रीको पुष्ट कर दें ।'

'हनुमान ! तुम बुद्धिमानोंमें मुकुटमणि हो !' श्रीरामने कहा । हनुमानने ही पुष्पोंके द्वारा अग्निका पूजन कर दिया । हाथ पकड़े हुए ही श्रीरामने सुग्रीवके साथ अग्निकी प्रदक्षिणा की ।

'आप मेरे सखा, सुहृद, मित्र हुए ।' सुग्रीवने गद्गद स्वरमें कहा—'हमारे सुख-दुःख, स्वार्थ एक होगये । आपका शत्रु मेरा शत्रु और आपका मित्र मेरा मित्र रहेगा । मैं अपने पिता भगवान भुवन-भास्करको भी साक्षी करता हूँ ।'

'मित्र सुग्रीव ! भगवान सूर्य हम इक्ष्वाकुवंशीयोंके कुलपुरुष हैं ।' श्रीराम मेघ-गम्भीर स्वरमें बोले—'रामको कभी कोई बात दो बार नहीं कहनी पड़ती । तुम्हारी मैत्री रामको स्वीकार है ।'

अब सुग्रीवने इधर-उधर देखकर एक नवपल्लव तथा पुष्पोंसे भरी शाखा तोड़कर श्रीरामके सम्मुख रखी—'यह आसन स्वीकार करें । हम वानर ऐसा आसन अत्युत्तम तथा श्रद्धेयको देने योग्य मानते हैं ।'

'आप यह आसन स्वीकार करें ।' लक्ष्मणने वैसी ही दूसरी पल्लव-पुष्पोंसे लदी शाखा तोड़कर सुग्रीवके लिए आसन प्रस्तुत किया ।

'आप भी विराजें ।' हनुमानजीने चन्दन-तरुकी पल्लवोंसे परिपूर्ण शाखा तोड़कर लक्ष्मणको आसन दिया ।

'बन्धुके द्वारा मेरा सर्वस्वापहरण एवं निर्वासन भी सार्थक हुआ ।' श्रीरामके आसन-ग्रहण कर लेनेपर स्वयं भी बैठते हुए सुग्रीव बोले—'आप परम समर्थको मैं उसके फलस्वरूप ही मित्रके रूपमें पा सका । आज मेरे

सौभाग्यका सूर्य उदय हुआ ।'

लक्ष्मण दोनोंसे कुछ पीछे उस चन्दन-शाखापर बैठ गये थे । उनके समीप हनुमान हाथ जोड़े खड़े थे ।

●●●

सीताजीके वस्त्राभरण

'आजके समान ही मैं पर्वतके इसी शिखरपर बैठा था ।' सुग्रीवने शाखापर बैठकर सुनाया—'आकाशसे किसी नारीकी क्रन्दन ध्वनि सुनायी पड़ी । हम सब चौंककर ऊपर देखने लगे । दसमुख, बीसभुजा, कज्जल वर्ण राक्षसेश्वर रावण उस अवलाको बलात् रथमें पीछे बैठाये ले जारहा था । वह विद्युल्लेखाके समान ज्योतिर्मयी जैसे अत्यन्त काले मेघके बन्धनमें पड़ गयी हो ।'

'मुझ असहाया जनकपुत्री सीताके धर्मभाई बनना ।' उस देवीने पुकारकर कहा । उत्तरीय खण्डमें बाँधकर कुछ दिव्याभरण नीचे फेंके—'स्वामी आवें तो इन्हें देकर समाचार देना ।'

'कहाँ है वह वस्त्र ?' श्रीरामने आतुरकी भाँति पूछा—'वे आभरण कहाँ हैं ? वे मेरी पत्नीके ही हैं ।'

'मैंने उन्हें गुहामें सुरक्षित रखवा दिया है ।' सुग्रीवने संकेत किया । हनुमान कूद गये गुहातक और दो क्षणमें वह पोटली ले आये ।

'हा सीते ! हा जनक-नन्दिनी !' पोटली हृदयसे लगाकर श्रीराम क्रन्दन करने लगे ।

'आर्य ! अब आपको ये वानर श्रेष्ठ सहायक प्राप्त हो गये हैं ।' लक्ष्मणने सम्मुख आकर हाथ जोड़े ।

'मेरे सम्मान्य मित्र ! आप विद्वान हो, बुद्धिमान हो । मैं तो वानर हूँ; किन्तु-' सुग्रीव साश्रुलोचन बोले—'मेरी पत्नी बालिने छीन ली है । अपमान

करके मुझे निकाल दिया है । लेकिन मैं किसी प्रकार यहाँ दिवस व्यतीतकर ही रहा हूँ ।'

'तुम्हारी पत्नीके हर्ताको मैं मार दूँगा !' श्रीरामने सुग्रीवकी ओर देखा और दृढ़ स्वरमें कहा ।

'आपकी पत्नी तो परम पतिव्रता हैं । उन विषम विषज्वालासमाको कोई पचा नहीं सकता !' सुग्रीवने भी प्रतिज्ञा की—'मैं उनका पता लगाऊँगा और उसके अपहर्ताको यमलोक भेजनेका प्राणपणसे उद्योग करूँगा ।'

श्रीरामने वह पोटली खोल ली । वस्त्रखण्ड ही परम सुन्दर निर्मल सुकोमल था । रत्नाभरणोंकी ज्योतिसे दिशाएँ जगमगा उठीं । ये आभरण अनुसूयाजीने श्रीवैदेहीको दिये थे । सुरांगनाओंके लिए भी अत्यन्त दुर्लभ आभरण— उनकी शोभाका, कलाका वर्णन सम्भव नहीं । उनके धारण करनेवालेको जरा, म्लानता स्पर्श नहीं करपाती थी । लेकिन पति वियुक्ता पतिव्रताओंकी भी परमाराध्या श्रीवैदेहीके लिए अपने स्वामीसे पृथक होनेपर वे व्यर्थ भार थे । उन्हें उन्होंने उतार तो तभी दिया था जब दशग्रीव जटायुको पराभूत करके उन्हें मायामय रथमें लेकर चला था ।

कंकण, कुण्डल, केयूर (अंगद) ग्रैवेयक (हार) और नूपूर थे उन आभूषणोंमें । श्रीराम एक-एकको उठाकर हृदयसे लगाते हुए अश्रु-वर्षा कर रहे थे—'लक्ष्मण ! तुम पहिचानते ही हो कि ये वैदेहीके कंकण, कुण्डल, केयूर, नूपुरादि हैं ।'

'आर्य ! मैंने कभी अम्बाके श्रीमुख अथवा करोंकी ओर दृष्टि उठानेकी धृष्टता नहीं की ।' हाथ जोड़कर लक्ष्मणने कहा—'अत: मैं उनके कुण्डल, कण्कण अथवा केयूरको नहीं पहिचानता ।'

सुग्रीवने, जाम्बवन्तने, नल-नीलने चौंककर लक्ष्मणकी ओर देखा । हनुमानजीने हाथ जोड़कर उन्हें मस्तक झुकाया—'जो जीवोंके परमाचार्य हैं, इतना संयम उन्हींके उपयुक्त है ।

वनमें सदा साथ रहना । सदा सेवामें लगे रहना । सदा आदेशका पालन; किन्तु दृष्टि कभी मुख तो दूर, करोंके कंकण तक भी नहीं गयी । दृष्टि नित्य नीची रही, चरणों तक ही सीमित रही ।

'तुम कुछ नहीं पहिचानते ?' श्रीरामने भी चौंककर अनुजकी ओर देखा ।

'पहिचानता हूँ आर्य !' लक्ष्मणने अञ्जलि बाँधकर नूपुरोंको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया—'इन नूपुरोंको मैं पहिचानता हूँ । आर्याके श्रीचरण मेरे आराध्य हैं । उनमें नित्य-नित्य प्रणाम करनेके कारण मैं उन श्रीचरणोंके आभरण इन नूपुरोंसे भली प्रकार परिचित हूँ । आर्या अम्बाके चरणोंसे पृथक होकर मुझे तो ये कान्ति हीन रुदन करते-से प्रतीत हो रहे हैं ।'

श्रीरामने सम्हालकर उन आभरणोंको पुनः उसी वस्त्र खण्डमें बाँधा और कृपणके धनके समान हृदयसे लगाया । सुग्रीवने कहा—'ये आभरण जिनके हैं उनके ही श्रीअंगपर सुशोभित हों, इसके लिए सुग्रीव कोई चेष्टा उठा नहीं रखेगा ।

●●●

सुग्रीवकी कथा

'अग्रजने ही तुम्हारी पत्नीको क्यों छीन लिया तुमसे ?' श्रीरामने सुग्रीवसे पूछा—'उसके अपनी पत्नी नहीं है ? अनुजसे उसकी शत्रुताका कारण ?'

'आदिपुरुष भगवान नारायणकी नाभिकमलसे उत्पन्न भगवान् ब्रह्माने एक वानर उपदेवता अपने संकल्पसे उत्पन्न किया । रीछ और वानर दोनों उपदेव-वर्गका अधिपति बनाया उन्हें । उनका नाम रखा ऋक्षरजा ।' सुग्रीवने प्रारम्भसे अपना परिचय प्रारम्भ किया—'उन स्रष्टाके संकल्प-जन्मा ऋक्षरजाका शरीर पीछे नारी-रूपमें परिवर्तित होगया । वह सर्वमनोहरा नारी—देखकर देवराज इन्द्र और भगवान भास्कर इतने मुग्ध हुए कि दोनोंका तेजस्खलन होगया । उस नारीके बालोंपर देवराज इन्द्रका शुक्र पड़नेसे बालिकी उत्पत्ति हुई और ग्रीवापर सूर्य-शुक्र पड़नेसे मैं सुग्रीव उत्पन्न हुआ ।'

'हम दोनोंको जन्म देकर ऋक्षरजा पुनः पुरुष हो गये । अपने ज्येष्ठ पुत्र बालिको रीछ-वानरोंका अधिपति बनाकर वे ब्रह्मलोक चले गये ।' सुग्रीवने कहा—'हम दोनों भाइयोंमें अत्यन्त प्रीति थी । बालिने नित्य कन्या परम सुन्दरी ताराका पाणिग्रहण किया । मेरा परिणय बानरराज सुषेणकी पुत्री रुमाके साथ हुआ ।'

'बालि बहुत धार्मिक है; किन्तु अत्यन्त असहिष्णु और अहंकारी है । उसके बलकी भी सीमा नहीं है । वह प्रतिदिन चारों दिशाओंके समुद्रोंपर जाकर सन्ध्या तर्पण करता है ।' सुग्रीव सुना रहे थे—'अपनी दिग्विजय यात्रामें लंकाका राजा रावण किष्किन्धा आया तो बालि पूर्व समुद्र तटपर सन्ध्या करने गया था । रावणने बालिको वहाँ जाकर युद्धके लिए ललकारा । बालिको बुरा लगा । उसने रावणको थोड़ी देर प्रतीक्षा करनेको कहा; किन्तु रावण गर्जना ही करता है, यह देखकर बालिने उसे पकड़कर छुद्र पशुके समान अपने कक्षमें दबा लिया । दशग्रीवको ऐसे दबाये ही वह चारों समुद्रोंपर सन्ध्या कर आया । भूल ही गया कि कोई कक्षमें दबा है । छः महीने पीछे स्मरण आया कक्ष कण्डू होनेपर, तब उसे अपने पुत्रके पलनेमें बाँध दिया । बालि पत्नी तारा उस दसमौलिके मस्तकोंपर दीपक जलाया करती थी । महर्षि पुलस्त्य आकर छुड़ा न देते तो पता नहीं कब तक बालि उसे बाँधे रहता ।'१

'मुक्त होकर दशग्रीवने बालिसे मैत्रीकी याचना की । बालिने इसे स्वीकार कर लिया ।' स्पष्ट होगया कि रावणके विरुद्ध बालिसे सहायताकी आशा नहीं की जा सकती । सुग्रीवने कहा—'यद्यपि इस मित्रकाका अभी तक इतना ही अर्थ रहा है कि बालि लंकापर आक्रमण नहीं करेगा और दशग्रीव अथवा उसको कोई अनुचर किष्किन्धाका बानर राज्यमें उत्पात करने नहीं आवेगा; किन्तु बालि अहंकारी है । वह कब क्या करेगा, कहा नहीं जा सकता । संकटमें पड़नेपर दशग्रीव यदि सहायताकी पुकार करे, बालि अपनी मैत्रीके वचनको विस्मृत नहीं कर सकेगा । जब तक रावण बालिका ही कोई अपराध न करे, बालि रावणके विरुद्ध कुछ नहीं करेगा ।'

'ऐसे पराक्रमी, अपने वचनपर— मित्रतापर दृढ़ रहने वाले बालिने

---

१. रावणके पूरे चरितको जाननेके लिए 'राक्षसराज' देखना चाहिए ।

अपने सगे भाईसे शत्रुता कर ली ?' श्रीरामने सुग्रीवकी ओर देखा ।

'इसका भी इतिहास है । दानवेन्द्र दुन्दुभिका पुत्र मायावी क्रोधमें भरा रात्रिमें हमारे नगर-द्वारपर आकर गर्जना करने लगा । बालिको दुर्वचन कहकर युद्धके लिए ललकारने लगा । बालिने उसके पिता दुन्दुभिको मार दिया था, अतः वह पिताका प्रतिशोध लेने आया था ।' सुग्रीवने कहा—'बालिको ही वह ललकार रहा था । अतः बालि रात्रिमें ही द्वन्द्व युद्ध करने दौड़ पड़ा । मैं बड़े भाईके प्रेमवश पीछे दौड़ा ।'

'मायावी समझता था कि खुले मैदानमें बालिने पिताकी जो गति की, पुत्रकी वह गति पल भरमें बना देगा । वह तो बालिको उत्तेजित करके अपने अनुकूल स्थानपर ले जाना चाहता था । अतः बालिको देखते ही भाग खड़ा हुआ ।' सुग्रीवने बतलाया—'रात्रिमें जगाये जानेसे क्रुद्ध बालि उस दुष्ट दानवको पकड़ने दौड़ा । दूर तक दोनों आगे-पीछे दौड़ते गये । बहुत दूर जाकर दानव एक पर्वतकी गम्भीर गुफामें प्रविष्ट होगया ।'

'बालिका स्वभाव इस प्रकार शत्रुको छोड़ देना नहीं है । जिसपर उसे क्रोध आता है, उसको मारकर ही बालि शान्त होता है । दानवके गुफामें जानेपर बालिने मेरी ओर मुख किया—'सुग्रीव ! तुम यहाँ एक पक्ष तक मेरी प्रतीक्षा करना । पता नहीं गुफा कितनी गम्भीर है और दानव माया युद्ध तो करेगा ही; किन्तु इस अवधिमें मैं उसे अवश्य मार दूँगा ।'

'बालि गुफाके भीतर चला गया । मैं द्वारके समीप बैठा रहा । कुछ क्षणोंके पीछे ही गुफाके भीतरसे भयानक शब्द आने लगा । गर्जना और प्रहारके शब्द गुफामें गूँजकर बहुत भयानक बन गये थे । यह शब्द कभी किञ्चित् मन्द पड़ता था और कभी बहुत तीव्र हो जाता ।' सुग्रीवने कहा—'मैं उस भयानक शब्दको सुनता वहाँ एक महीने रहा । समीपके स्रोतसे जल पी लेता था । वनके समीपके तरुओंके फलोंसे क्षुधा मिटा लेता था । भाईकी प्रतीक्षा करता बैठा रहा वहाँ ।'

'एक महीने पीछे बहुत असाधारण धमाका हुआ गुफामें । कोई अस्पष्ट चीत्कार गूँजी । तनिक देर पीछे गुफाके द्वारसे भल-भलाती रक्त धारा उबल पड़ी ।' सुग्रीवने खिन्न स्वरमें कहा—'मुझसे भूल यही हुई कि मैं भयभीत हो

उठा था । पन्द्रह दिनके स्थानपर महीना भर बीता तभी मुझे भाईकी विजयमें सन्देह हो गया था । रक्तधारा देखकर मेरा धैर्य समाप्त होगया । मुझे लगा कि दानवने मेरे भाईको मार दिया है और अब बाहर निकलेगा तो मुझे भी मार देगा । मुझसे जितनी भारी शिला उठ सकती थी, उतनी भारी शिला उठाकर मैंने गुहा-द्वार बन्द कर दिया और नगरमें भाग आया ।'

'बालि नगरमें-से आते समय कह आया था कि उसका अन्वेषण अनावश्यक है; किन्तु सब उसके लौटनेकी आतुर प्रतीक्षा कर रहे थे । मैंने पहुँचकर गुफामें-से रक्त निकलनेकी बात सुनाकर अपना अनुमान सुना दिया ।' सुग्रीव पश्चात्तापके स्वरमें बोल रहे थे—'मन्त्रियोंने मेरे अनुमानको सत्य मान लिया और आपात्कालीन राजसभा बुलाकर मुझे हठ करके सिंहासनपर बैठा दिया ।'

'सिंहासन दो घड़ी भी सूना नहीं रहना चाहिये ।' मन्त्रियोंका कहना था—'इस समय जब दानवके आक्रमणकी सम्भावना है, राजाकी हमें अत्यन्त आवश्यकता है । राजाके नेतृत्वमें ही हम शत्रुका संगठित होकर सामना कर सकते हैं ।'

'सबका अनुमान व्यर्थ था । बालि दो घड़ीमें ही आ पहुँचा । वह अत्यन्त क्रुद्ध था । शिलासे गुहा-द्वार बन्द पाकर वह मुझपर सन्देह कर बैठा था कि मैंने उसे मार देनेका प्रयत्न किया है । वह समझता था कि मैं पहिले ही दिन गुफा-द्वार रुद्ध करके नगरमें आगया । मुझे सिंहासनपर बैठा देखकर उसका सन्देह पुष्ट होगया ।' सुग्रीव सखेद बोले—'बालिको देखते ही मन्त्रीगण उसकी जयध्वनि करने लगे । मैं सिंहासनसे भाईकी पदवन्दना करने उठा ही था कि उसने मुझे पकड़कर पटक दिया । मुझे घूसोंसे मारने लगा । मैं भागता नहीं तो बालि उस दिन मुझे मार डालता ।'

'मैं भागा; किन्तु बालि तो जिसे शत्रु मान ले, उसे जीवित छोड़ना जानता ही नहीं । वह मेरे पीछे दौड़ा । भागते-भागते मैंने क्रुद्ध बालिका स्वर सुन लिया । वह मन्त्रियोंको आदेश दे रहा था—'इस लोभी, भ्रातृद्रोहीकी सब सम्पत्ति राजभवन पहुँचा दो । इसकी पत्नीको भी मेरे अन्तःपुरमें पहुँचा दो । इसका भवन अधिकृत कर लो । मैं इसे मार दूँगा ।'

'प्राण-बचानेके प्रयत्नमें मैं पूरे देशमें चारों ओर भागता फिरा । वनोंमें, पर्वतोंमें, द्वीपोंमें मैं दौड़ता रहा । जनपदोंसे मैं दूर-दूर रहा । वहाँ लोगोंकी भीड़, भवन मेरी गति मन्द कर सकते थे । कोई भी मुझे पकड़ ले सकते थे । मैं जानता था, इस बार पकड़नेपर बालि मुझे मार ही डालेगा ।' सुग्रीव वर्णनके समय भी सशंक होकर इधर-उधर देखने लगे—'यही सृष्टिकर्त्ताकी कृपा थी कि दौड़नेमें बालिसे मेरा वेग अधिक था । लेकिन जैसे प्राणीके पीछे मृत्यु पड़ी रहती है, बालि मेरे पीछे पड़ा था । कहीं भी मुझे बैठनेका अवकाश नहीं था ।'

'मैं थककर गिर जाता यदि ऐसे ही और अधिक दौड़ना पड़ता । इस भाग-दौड़में व्याकुल मैं सब कहींसे निराश घूमकर किष्किन्धाकी ओर ही इस ऋष्यमूक पर्वतपर पहुँचा तो मुझे मानो प्राणदान मिला ।' सुग्रीवने कहा—'मैं भयके कारण भूल ही गया था कि बालि इस पर्वतपर शापके कारण नहीं आ सकता । मैं आश्वस्त होकर खड़ा होगया जब पर्वतपर मेरे पहुँचते ही बालिका क्रुद्ध स्वर सुन पड़ा—'देखूँगा कि तू कब तक इसी पर्वतपर दुबका रहता है ।'

'मुझे स्मरण आगया कि बालिके लिए यह पर्वत प्रशप्त है । मुझे एक सुरक्षित स्थान मिला । तबसे मैं इसी पर्वतपर हूँ । मेरे विपत्तिके बन्धु ये चारों मन्त्री मेरे समीप आ गये यहाँ और मेरे साथ ही रहते हैं । इनका सौहार्द्र—अन्यथा निर्वासित सुग्रीव इन्हें क्या दे सकता है ।' सुग्रीवने कृतज्ञतापूर्वक मन्त्रियोंकी ओर देखा—'लेकिन यहाँ भी मैं सर्वदा सशंक रहता हूँ । बालि शत्रुता भूला नहीं करता । वह कभी किसीको मुझे मारने भेज सकता है ।'

'आप इसीलिए हम दोनोंको देखकर सशंक हो उठे थे ।' लक्ष्मणने तनिक स्मितपूर्वक कहा—'बालिको किसके शापने इस पर्वतपर आना कैसे वर्जित किया है ?'

'मैंने जिस मायावी दानवका वृत्त सुनाया था, उसका पिता दुन्दभि अत्यन्त बलवान था । वह महिषके रूपमें रहता था । समुद्रमें प्रवेश करके सागरको नन्हें सरोवरके समान मथ डालता था । सींगोंसे पर्वत उठाकर फेंक देता था । वह हिमालयसे युद्ध करने पहुँचा । पर्वताधिराजने यह कहाकर पिण्ड छुड़ाया—'मुझमें तपस्वियोंका निवास है । मैं चञ्चल होऊँगा तो वे मुझे और तुम्हें भी शाप दे देंगे । अतः तुम वानरेन्द्र बालिसे युद्ध करने किष्किन्धा

चले जाओ । वे तुम्हारे समबल शूर हैं ।'

'दानव दुन्दुभि किष्किन्धा महिषके वेशमें दौड़ता आया । बालिको युद्धके लिए ललकारता, फुंकारता विषाणोंसे पुर-द्वार गिराने लगा ।' सुग्रीवने कहा— 'बालि ललकार सुनते ही रक्तनेत्र दौड़ा । उसने सींग पकड़कर दानवको पटक दिया । उसे घुमाकर फेंका तो वह इसी ऋष्यमूक पर्वतपर उस भागमें गिरा, जहाँ नीचे महर्षि मतंगका आश्रम है । पर्वतपर गिरनेसे दानवका शरीर फटकर चिथड़े हो गया । उसके शरीरसे रक्तधारा तो निकली ही, रक्तके जो विन्दु उड़े, उससे ऋषिका सम्पूर्ण आश्रम दूषित होगया ।'

महर्षि मतंगको क्रोध आना ही था । पूछनेपर पता भी लग गया कि आश्रममें रक्तविन्दु कैसे आये । अतः ऋषिने शाप दे दिया—'अबसे यदि बालि इस पर्वतके ऊपर अथवा एक योजन क्षेत्रमें प्रवेश करेगा तो तत्काल प्राणहीन हो जायगा । उसके जो पक्षधर इतने क्षेत्रमें प्रवेश करेंगे वे पाषाण हो जायँगे ।'

'महर्षिने उदारतापूर्वक एक तपस्वीको भेजकर बालिको अपने शापकी सूचना दे दी थी । तबसे बालि अथवा उसका कोई पक्षधर इतने क्षेत्रमें प्रवेश नहीं करता ।' सुग्रीवने कहा—'इतना होनेपर भी मुझे विश्वास नहीं होता कि बालि मुझे मारनेका प्रयत्न त्याग देगा । मैं इस पर्वतके नीचे नहीं उतराता हूँ । सदा, सब समय सशंक रहता हूँ ।'

'मैं राज्य नहीं चाहता था । अग्रजका मैं अनुगामी था । मैंने भ्रमवश ही गुहा-द्वारपर शिला रखी थी । मन्त्रियोंने मुझे बलात् सिंहासनपर बैठाया था । बालिको सकुशल आया देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई थी । राज्य तो बालिका था ही । मैं जीवन-भर उसका सेवक होकर रहना चाहता था ।' सुग्रीवने फिर कहा—'लेकिन बालिने मुझे दो शब्द भी कहनेका अवसर ही नहीं दिया । वह मेरे प्राणका शत्रु हो गया ।'

'इन हनुमानने ही पीछे बालिको समझानेका प्रयत्न किया । इन्होंने कहा—आपके अनुज निर्दोष हैं ।'

'मैं उसका नाम नहीं रहने दूँगा संसारमें ।' बालि अंगार नेत्र करके दाँत पीसकर बोला—'देखूँगा कि वह मूषकके समान कब तक ऋष्यमूकपर छिपा रहता है । उसके सम्बन्धकी कोई चर्चा मैं सुनना नहीं चाहता ।'

'हनुमान रुष्ट होकर मेरे समीप आ गये । दूसरे किसीने फिर बालिसे कुछ कहनेका साहस नहीं किया ।' सुग्रीव अत्यन्त दयनीय स्वरमें बोले—'ऐसे असहिष्णु, अपनी धारणाके विरुद्ध विनम्र बात भी सुननेको अप्रस्तुतका भ्रम कोई कैसे दूरकर सकता है । कोई मन्त्री या दूसरा क्यों निर्वासित सुग्रीवके लिए बालिका कोप-भाजन बने ।'

'मैं आपका अनुगृहीत हूँ । आप धीरे-धीरे समझ लोगे कि मैं आपके अयोग्य मित्र नहीं हूँ । आप-से सत्पुरुषकी मैत्री स्थायी होती है । बालिके जीवित रहते इस पर्वतपर भी मैं उद्विग्न रहता हूँ । मैं भले इसे त्यागकर कहीं न जा सकूँ, मेरे विपत्तिके साथी ये चारों मन्त्री आपकी भार्याका पता लगावेंगे ।' सुग्रीवने शिथिल स्वरमें कहा—'आप तो परम बुद्धिमान, धीर, विद्वान महत्पुरुष हो । मैं वानर हूँ, स्वभाव चञ्चल हूँ । मेरी पत्नी छीन ली गयी है । मेरा सर्वस्व हरण करके मुझे निर्वासित कर दिया गया है । शत्रु सदा मुझे मार देनेके प्रयत्नमें है । मेरी अवस्था आप स्वयं समझ सकते हैं ।'

●●●

बल-परीक्षण

'अब आप निर्भय हो जायँ । मेरे इन अग्रजका स्वरूप ही अभय है । इनके आश्रितके लिए त्रिभुवनमें कहीं किसीसे भय नहीं रह जाता ।' लक्ष्मणने सुग्रीवको समझाया—'इनके पादपद्मों के प्रपन्नका सभी अभीष्ट अवश्य पूर्ण होता है ।'

'मैं तुम्हारे शत्रुको मार दूँगा ।' श्रीरामने भी आश्वासन दिया—'मेरे वाण अमोघ हैं ।'

'आप दोनों ठीक ही कहते हैं; किन्तु सुग्रीवमें कोई उत्साह नहीं आया । वे वैसे ही शिथिल स्वरमें बोले—'मैं रावणका निवास स्थान नहीं जानता ।

केवल सुना है कि समुद्रके मध्य कहीं उसकी स्वर्णपुरी लंका है। उसके पराक्रमको भी नहीं जानता। लेकिन श्रीजनक-नन्दिनीकी शोधका पूरा प्रयत्न करूँगा। रावणको बालिने शशकके समान कक्षमें दबा रखा था। अकल्पनीय बल है बालिमें। सूर्योदयसे पूर्व वह पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र और वहाँसे उत्तर तथा दक्षिण समुद्र भी कूद जाता है। पर्वतोंको उठाकर कन्दुक क्रीड़ा करता है।'

'आप मुझे क्षमा करें। मैं आपकी शरण हूँ। आपका अपमान करनेका मैं साहस नहीं कर सकता। आपको भयभीत भी नहीं कर रहा हूँ। मैं बालिके पराक्रमका स्मरण करके भयभीत हूँ।' सुग्रीवने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा— 'यह जो सामने श्वेत पर्वत दीखता है यह पर्वत नहीं है। यह दुन्दुभि दानवकी अस्थियाँ हैं। बालिने दुन्दुभिको उठाकर दो सौ धनुष दूर फेंक दिया था। इन अस्थियोंको कोई थोड़ा भी हटा पाता तो मैं समझता कि वह शक्तिशाली है।'

श्रीराम बिना एक शब्द बोले उठे। उस अस्थि-पर्वतके समीप गये। अपने वाम पादाङ्गुष्ठसे उन्होंने उस अस्थि-समूहको उठाकर फेंक दिया। यह तो हनुमानने उछलकर देखा और लौटकर बतलाया—'अस्थियाँ दस जोजन दूर वनमें स्थित निर्जन स्थानमें गिरीं और चूर-चूर हो गयीं।

'देव! आप समर्थ हैं। शक्तिशाली हैं। मुझ भयभीत वानरके अपराधको क्षमा करें। मैं आपके बलकी परीक्षा नहीं लेता हूँ; किन्तु मेरे प्राण बालिके भयसे व्याकुल हैं।' सुग्रीवने हाथ जोड़कर बहुत ही दीन वाणीमें कहा—'जब बालिने दुन्दुभिको फेंका था, बहुत मांस, रक्त, मेद था उस दानवके शरीरमें। बहुत मोटा था वह दानव महिष। अब तो उसकी अस्थियाँ रह गयी थीं और वह भी सूख चुकी थीं।'

सुग्रीवने इसपर ध्यान ही नहीं दिया कि दोनों हाथोंसे बालिने दानवको फेंका था। पदाङ्गुष्ठसे बालि भी इन अस्थियोंको हिला पाता, इसमें सन्देह था। लेकिन सुग्रीवने सम्मुखके सात तालवृक्षोंकी ओर संकेत करके एक कथा सुनाना प्रारम्भ किया—

'महर्षि मतंगने बालिको शाप दिया, उससे पहिलेकी बात है। बालि पावसमें सात सुपक्व ताल फल ले आया। यहाँ उन फलोंको रखकर स्नान

करने चला गया। लौटनेपर उसने देखा कि एक सर्प उसके फलोंके ऊपर लेटा हुआ है।'

'तूने मेरे फल दूषित कर दिए, जब कि तू इन्हें खा नहीं सकता।' बालिने क्रोधमें आकर उस सर्पको शाप दिया—'अतः ये फल तेरा शरीर फोड़कर उगेंगे और वृक्ष बनेंगे!'

'मैं इनकी गन्धसे आकृष्ट होकर आया। इनका स्पर्श सुखद लगा, इसलिए इनपर लेट गया। मैंने इनको मुख नहीं लगाया है। तूने मुझ निरपराधको शाप दिया है।' सर्पने भी बालिको शाप दिया—'अतः इन फलोंसे उगे वृक्षोंको जो नष्ट कर देगा, उसीके द्वारा तू मारा जायगा।'

'ताड़के वृक्ष वैसे भी बहुत सुदृढ़ होते हैं। ये तो एक ही सर्पके देहपर उगे, परस्पर उलझी मूल वाले वृक्ष हैं। कितना भी प्रबल अन्धड़ चले, ताड़तरु गिर भले जाय, उसके पत्र नहीं टूटते।' सुग्रीव कह रहे थे—'शापसे पूर्व जब बालि यहाँ आता था, इन तरुओंको एक साथ हिलाकर निष्पत्र कर देता था।'

सुग्रीवके इस वाक्यके समाप्त होनेके पूर्व श्रीराम अपने वामस्कन्धसे धनुष उतारकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा चुके थे। अब उन्होंने त्रोणसे एक बाण निकालकर धनुषपर चढ़ाया और धीरेसे छोड़ दिया। प्रत्यञ्चा आधी भी खींची नहीं गयी थी, लेकिन बाण छूटा। सातों ताल सर्पके शरीरपर उगे थे। एक सीधमें न होकर सर्पाकार पंक्तिमें थे। वाणने सातोंको भूमिके समीपसे काट दिया। वे वृक्ष भयानक शब्द करते, गिरे। बाण वृक्ष काटकर घूमा और श्रीरामके त्रोणमें प्रविष्ट होगया।

'स्वामी!' सुग्रीवके नेत्र आश्चर्यसे खुले रह गये। देरतक वे बोलनेमें ही समर्थ नहीं हुए। जब बोल सके, श्रीरामको सखा सम्बोधनका साहस समाप्त हो चुका था। उन्हें लग रहा था कि इन सर्व-समर्थकी अकल्पनीय उदारता—ये एक तुच्छ वानरको मित्र कहते हैं; किन्तु मेरी अक्षम्य धृष्टता है कि मैं इनको सखा कहता रहा हूँ। इनके श्रीचरणोंका सेवक-दास होना भी सुग्रीवका परम सौभाग्य है।

जब श्रीराम-लक्ष्मण आये थे, दोनोंके तूणीर देखकर सुग्रीव मनमें हँसे थे—'इतने हल्के तूणीर!' छोटे और बड़े भाईके भी त्रोणोंमें केवल पाँच-पाँच

वाण थे । दो तूणीर हुए तो भी क्या हुआ । दोनों भाइयोंके समीप कुल बीस वाण और एक खड्ग । इतने अल्प अस्त्रको लेकर ये वनमें आगये । कितने भी कुशल लक्ष्यवेधी हों, आखेट भले करलें, बीस वाणोंके बलपर युद्ध तो नहीं किया अथवा जीता जा सकता ।

सुग्रीवने देखा कि श्रीरामका वाण लक्ष्यवेध करके स्वतः उनके त्रोणमें लौट आया । अद्‍भुत अस्त्री—जब प्रत्येक शरको पुनः लौट आना है, ऐसा अक्षय तूणीर—बीस वाणतो बहुत अधिक होते हैं । ऐसे अस्त्र रखने वाला तो एक ही वाणके पुनः पुनः प्रयोगसे विश्व-विजय कर सकता है । ये इतने छोटे त्रोण भी बाँधते हैं, यह इनकी क्रीड़ा ही है ।

'स्वामी ! मेरे समर्थ स्वामी ! मैंने अपनी अल्पज्ञताके कारण अबतक जो अवशिष्टता की है, उसे एक अल्पज्ञ चपल वानरकी छुद्रता समझकर क्षमा कर दें ।' सुग्रीव सीधे श्रीरामके चरणोंपर गिरे । श्रीरामने बीचमें ही उन्हें भुजाओंमें ले लिया ।

'आप सर्वसमर्थ हैं । इस अधम वानरको अपने इन चारुचरणोंका किंकर स्वीकार करें !' श्रीरामका आलिंगन प्राप्त करके सुग्रीवकी बुद्धि निर्मल होगयी । उनके मनका कलुष-द्वेष विनष्ट होगया । वे भरे कण्ठ कहते जा रहे थे—'मेरा अज्ञान, मेरा भ्रम कि मैं अबतक अपने अग्रज बालिको अपना शत्रु मानता रहा । वह तो मेरा अतिशय उपकार करन वाला है, मेरा समुद्धारक है । मैं मोहवश ऐन्द्रियक भोगोंमें लिप्त था । बालिने मुझे निर्वासित करके अकिञ्चन बना दिया । इस पर्वतपर शरण लेनेको विवश किया । उसीकी कृपाका सुपरिणाम है कि आप अनाश्रयाश्रय अनाथनाथके श्रीचरणोंकी प्राप्ति आज मुझे सुगम हुई ।'

'बालिका मंगल हो । वह सकुशल वानरेन्द्र बना रहे । मैं उसका कृतज्ञ हूँ ।' सुग्रीव भरे स्वरमें कहते गये—'मेरे मनमें अब बालिसे कोई द्वेष नहीं । आप अपने पादपद्मोंका मुझे सेवक बनाकर अपने साथ मुझे ले लें, यही अब मेरी एकमात्र प्रार्थना है ।'

मनुष्य आवेशमें जो उद्‍गार प्रकट करता है, वे स्थायी नहीं होते । उस समयकी उसकी भावनाओंको सत्य मानकर जो व्यवहार करेगा, उसे

पश्चात्ताप करना पड़ेगा । श्मशान वैराग्य क्षण-स्थायी होता है । अत्यन्त भयभीत, बहुत दिनोंसे दुःखी सुग्रीवने श्रीरामका प्रभाव देखा तो उनके अन्तरको आश्वासन मिला । फलतः उनकी भावना उमड़ पड़ी थी ।

'अपने साथ मुझे ले लें ।' इस प्रार्थनाका अर्थ ? श्रीराम सदा ऋष्यमूकपर बने रहने वाले हैं ? ऋष्यमूक त्यागकर सुग्रीव रामके साथ कहीं रहें तो उनपर आक्रमण न करनेका बालिने कोई व्रत लिया है ? बालि इस पर्वतसे सुग्रीवके हटनेपर उसपर आक्रमण करे तो सुग्रीवकी रक्षा रामको करनी पड़ेगी या नहीं ? जब बालिको सुग्रीवकी रक्षाके लिए मारना अनिवार्य है, तब समय व्यतीत करनेसे लाभ ? बालिके रहते तो सुग्रीव खुलकर सीतान्वेषणका भी कोई कार्य नहीं कर सकते ।

श्रीराम—प्रत्येक अन्तरमें जो अन्तर्यामी बने बैठे हैं, उन रामसे सुग्रीवके हृदयकी वास्तविक स्थिति छिपी थी ? लेकिन सत्पुरुष किसीका तिरस्कार नहीं करते । किसीकी दुर्बलता दूसरोंके सम्मुख प्रकट नहीं करते । दूसरे भले अपनेमें क्षणिक आवेश अथवा दम्भसे सद्‌गुण प्रकट करें, सत्पुरुषोंको उसे सत्यमान लेनेमें तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती ।

'मित्र ! तुम्हारा अन्तःकरण निर्मल है, तुम्हारे हृदयमें राज्यलिप्सा, लोभ अथवा द्वेष सर्वथा नहीं है ।' श्रीरामने सुग्रीवकी प्रशंसा की—'किन्तु तुमने रामको मित्र स्वीकार किया है, अतः रामके सत्यकी रक्षा तुम्हें करनी चाहिये । मैंने तुम्हारे विरोधीको मार देनेकी प्रतिज्ञा की है । मेरी प्रतिज्ञाको सत्य होने दो और रामके कार्यको सम्पन्न करनेके लिए बालिके मरनेपर वानरेन्द्र पद स्वीकार करो !'

●●●

बालि-वध

'अचानक किसी अपरिचितपर आक्रमण उचित नहीं है ।' श्रीरामने सुग्रीवको समझाया—'मित्र सुग्रीव, तुम बालिको द्वन्द्व युद्धके लिए पुकारो । वह तुमसे युद्ध करने आवेगा, तब उसे हम मार देंगे ।'

सुग्रीवकी समझमें बात आगयी । किष्किन्धापर श्रीराम-लक्ष्मण आक्रमण करें, यह सुग्रीवको भी अभीष्ट नहीं था । इससे तो उनके अपने नगरकी हानि होती । किष्किन्धामें दूसरे किसीसे सुग्रीवकी शत्रुता भी नहीं थी ।

'तुम आगे चलो !' श्रीरामने सुग्रीवसे कहा—'मैं अनुजके साथ पीछे आ रहा हूँ ।'

सुग्रीवने देख लिया कि श्रीरामने धनुष चढ़ा लिया है और लक्ष्मण, हनुमान, आदिके साथ पीछे चल पड़े हैं, तब ऋष्यमूकके शिखरसे उतरकर किष्किन्धाके द्वारपर पहुँचकर उन्होंने गर्जनाकी—'मैं सुग्रीव युद्धके लिए आया हूँ ! आओ और मुझसे युद्ध करो !'

'अच्छा ! आज इस सुग्रीवको भी साहस होगया है ?' दिनका प्रथम प्रहर ही था । बालि चारों समुद्रोंपर अपनी दैनिक संध्या करके लौटा था । सुग्रीवकी ललकार सुनकर क्रोधावेशमें दौड़ा । शत्रुकी ललकार सुनकर सोचने अथवा सहायक लेनेका बालिको अभ्यास नहीं था ।

सुग्रीव गदा लेकर आये थे । बालिने गदा छीनकर फेंक दी । बहुत थोड़ी देर द्वन्द्व-युद्ध हुआ । बालिके वज्रके समान घूसोंके प्रहारसे व्याकुल सुग्रीव भाग खड़े हुए । बालिने उनका पीछा नहीं किया । सच बात यह है कि पहिले क्रोधके आवेगमें बालिने अवश्य सुग्रीवको मार देनेके लिए खदेड़ा था; किन्तु जब सुग्रीवने ऋष्यमूकपर शरण ले ली, बालिने उसकी उपेक्षा कर दी थी । सुग्रीव अपने मनके भयसे ही सदा भीत रहते थे । बालिने कभी सुग्रीवको मारनेकी बात भी नहीं सोची थी । आज भी सुग्रीव भागे तो वह हँसता लौट गया अपने भवन—'अब इसे फिर उत्पात करनेका साहस नहीं होगा ।'

'आप सत्यवादी हैं, भक्तवत्सल हैं !' सुग्रीव अत्यन्त व्याकुल श्रीरामके समीप भागे आये—'मेरा मरण ही आपको अभीष्ट था तो स्वयं मार देते। मुझे शत्रुके द्वारा पिटवाकर आपको क्या मिला ?'

'मित्र ! मुझसे भूल हुई ।' श्रीरामने सुग्रीवको हृदयसे लगा लिया। सुग्रीवको बहुत चोट लगी थी और आशाके विपरीत पीटे गये थे वे, अतः हृदयपर भी चोट लगी थी। उनका आक्रोश उचित था। उनका मुख तमतमाया था। उनके नेत्र अश्रुपूरित थे। श्रीरामने स्नेहपूर्वक उनके शरीरपर हाथ फेरा तो एक नवीन अनुभव हुआ सुग्रीवको। उनके शरीरकी पीड़ा तत्काल लुप्त होगयी। उनके भीतर मानों स्फूर्तिका स्रोत फूट पड़ा। इस अनुभवके कारण उनके मनका आक्रोश मिट गया। वे चौंककर श्रीरामके मुखकी ओर देखने लगे।

'तुमने भी बतलाया नहीं था कि रूप-रंग, आकार और वेशमें तुम दोनों भाई सर्वथा एक जैसे हो।' श्रीरामने कहा—'मैं समझता था कि बालि आकारमें भी तुमसे बड़ा, अधिक पुष्ट होगा और अलंकार, मुकुट आदि धारण करता होगा। लेकिन जब तुम दोनों भाई भिड़ गये, पहिचानना कठिन होगया कि दोनोंमें कौन बालि और कौन सुग्रीव। मैं बाण छोड़ देता और कहीं भूलसे वह मेरे मित्रको लग जाता—रामका बाण व्यर्थ नहीं जाता। भूल मेरी है, मुझे पहिले तुमसे बालिकी पहिचान पूछ लेनी थी।'

सुग्रीव सिहर उठे। सचमुच कहीं बाण उन्हें लग गया होता ? वे बोले—'पहिचान तो कुछ भी नहीं है। बालिका आकार, रूप, केश, वेश, चलने-बोलनेका सब ढंग मेरे जैसा है। मुकुटादि पहिनात ही नहीं। हम दोनों भाई साथ रहते थे तब भी मन्त्रियोंको, नगर-जनोंको हमें पहिचाननेमें भ्रम हुआ करता था।'

'लक्ष्मण ! सुग्रीवको चिन्हित करो !' श्रीरामने अनुजको पर्वतकी तलहटीमें उत्पन्न गजपुष्पी लताकी ओर संकेत किया। लक्ष्मणने उस लताके ही रेशेमें उसके पुष्पोंको पिरोकर माला बना दी। सुग्रीवके कण्ठमें वह माला पड़ी। मानों खिलौनेके छोटे-छोटे गजोंको कण्ठमें पहिन लिया गया हो।

'अब कोई भ्रम नहीं होगा।' श्रीरामने सुग्रीवसे कहा—'अब एक बार

तुम फिर बालिको पुकारो । इस बारकी तुम्हारी पुकार उसके लिए मरणकी पुकार बनेगी ।'

पर्वतके निचले भागमें उत्पन्न होने वाली अत्यन्त दुर्लभ यह लता निश्चय बालिको मिलने वाली नहीं थी । बालि पुष्पमाला धारणका व्यसनी नहीं था और गजपुष्पोंके इतने बड़े, बेढंगे, निर्गन्ध प्राय पुष्पोंकी माला कोई भी पहिनता नहीं । अतः सुग्रीवको भी अब रूप सादृश्यसे होने वाले भ्रमका भय नहीं रहा ।

सुग्रीवके साथ श्रीराम अनुज एवं हनुमानादिके साथ आगे तक आये । आगे वृक्षोंका एक सघन झुरमुट मिला । सुग्रीवने हाथ जोड़कर वहाँ मस्तक झुकाया । श्रीरामने पूछा—'यह किसका उद्यान है ?'

सुग्रीव—'सप्तजन नामके मुनि यहाँ तपस्या करते हैं । वे अधोसिर जलमें डूबे रहते हैं । सात दिनपर जलसे निकलकर आहार ग्रहण करते हैं । वृक्षोंके मध्यस्थित जलाशयमें अब भी होंगे । मैंने उनको ही प्रणाम किया है ।'

भाईके साथ श्रीरामने भी हाथ जोड़कर उन मुनिके निमित्त मस्तक झुकाया—'मित्र ! मैं यहीं खड़ा हूँ । तुम बालिको सम्मुखके मैदानमें युद्धके लिए पुकारो !'

'आपके द्वारा अर्पित करायी यह माला मेरे कण्ठमें है । आप इस चिन्हको स्मरण रखना ।' सुग्रीवने आतुरकी भाँति प्रार्थना की—'इस बार विलम्ब मत करना । बालि अब बहुत क्रोधमें भरा आवेगा । वह मुझे मार ही देगा यदि आपने बिलम्ब किया और ऐसा कोई दिव्यास्त्र मत प्रयोग करना कि किष्किन्धाकी सुरक्षा नष्ट हो ।'

सुग्रीवने बहुत आगे जानेका साहस नहीं किया । उन्होंने थोड़ी ही दूर जाकर—गर्जना करते हुए बालिको पुकारा—'मैं सुग्रीव पुनः युद्ध माँगता हूँ ।'

'यह इतनी शीघ्र भूल गया अपनी पिटायी ?' बालि अभी अंतःपुरमें प्रातराश करने बैठा ही था । सुग्रीवकी ललकार सुनकर क्रोधसे काँपता उठ खड़ा हुआ ।

स्वामी ! मेरी प्रार्थना सुन लें ! ताराने पतिके पैर पकड़े—'आपसे

पिटकर आपके छोटे भाई अभी भाग गये थे। यह स्पष्ट है कि बिना किसी प्रबल सहायकके वे इतनी शीघ्र लौटनेका साहस नहीं कर सकते। आप क्रोध त्यागकर विचार कर लो। युद्ध ही करना हो तो कल युद्ध करनेका सन्देश भेज दो। सुग्रीवका पुनः लौटना शंकाका कारण है।'

'मैं उसे सहायकके साथ मार दूँगा।' बालिने गर्जना की। शत्रुकी ललकार सहन करना उसके स्वभावमें नहीं था।

'शत्रुको निर्बल मानना समझदारी नहीं होती। इस बार सुग्रीवके स्वरमें जो दर्प है, वह प्रकट करता है कि वह बड़े सहायकके बिना नहीं आया है। आप जानते हैं कि सुग्रीव जन्मसे चतुर है। अपरीक्षित पराक्रमकी सहायताके भरोसे वह नहीं आया होगा।' अब ताराने स्पष्ट कहा—'अंगदको गुप्तचरके द्वारा सम्वाद मिला है कि सुग्रीवने दशरथ-नन्दन श्रीरामसे मैत्री कर ली है। रामने तुम्हारे वधकी प्रतिज्ञा की है। वे साधु तथा आर्तोंके आश्रय हैं। सब सद्‌गुण श्रीराममें निवास करते हैं। वे सबकी परमगति है। उन कबन्धको मारनेवालेसे विरोध मत करो। वे अप्रमेय-पराक्रम दुर्जय हैं।'

'सुग्रीवको बुलाकर आप युवराज बना लें। वे अब दुर्बल नहीं हैं। छोटे भाई होनेसे वे आपके स्नेह-पात्र हैं। उनको अपनाकर आप श्रीरामका सौहार्द्र प्राप्त करेंगे।' ताराने प्रार्थनाकी—'छोटे भाईको कुछ देकर समीप रख लेनेमें आपकी शोभा है। अब दूसरा मार्ग नहीं है। मैं आपके चरणोंमें यह भिक्षा माँगती हूँ। आप मुझपर प्रसन्न हों। मुझे अपनी हितैषिणी मानते हों तो क्रोध त्याग दें। मैं तथ्यकी बात कहती हूँ, रामसे विरोध मत करें। सुग्रीवको रामका आश्रय है।'

'मुझे डराओ मत! मेरे शौर्यका अपमान मत करो। अन्तःपुरमें जाओ।' बालिने ताराको डाँट दिया—'श्रीराम धर्मज्ञ हैं। वे सुग्रीवके कारण मुझे नहीं मारेंगे। वे आये होंगे तो मैं उन्हें चरण पकड़कर सन्तुष्ट करके ले जाऊँगा। श्रीराम दीन-रक्षक हैं। कदाचित् मार ही दें मुझे—तुम्हारी आशंका सत्य भी हो तो क्या बालि कभी मरेगा नहीं? इससे अधिक उत्तम मृत्युका अवसर पुनः मिलेगा? मैं सुग्रीवको मारूँगा नहीं। केवल उसका गर्व नष्ट करूँगा।'

ताराने पतिकी प्रदक्षिणा की। स्वस्त्ययन किया—तिलक लगाया।

रुदन करती लौटी । पतिसे यह अन्तिम मिलन है, इसे वह समझ चुकी थी ।

बालिने कोई शस्त्र नहीं लिया था । सुग्रीव भी शस्त्रहीन थे । दोनोंमें मुष्टि-युद्ध होने लगा । सुग्रीवमें इस बार कुछ अधिक स्फूर्ति थी । अधिक साहस था; किन्तु वे बार-बार मुख घुमाकर उस कुञ्जकी ओर देखते थे, जिसमें श्रीराम खड़े थे ।

सुग्रीवके कण्ठमें गजपुष्पीके फूलोंकी माला थी । ताराने बालिको स्वर्णमाला पहिनायी थी । मुष्टि-प्रहारसे दोनोंके शरीर स्थान-स्थानपर फट गये । दोनों रक्तसे सन गये । सुग्रीवने पूरी शक्ति लगा रखी थी । वे उछल-कूदके सब दाँव-पेंच प्रयोग करके भी अपनेको बचा नहीं पा रहे थे । अन्तमें अत्यन्त व्याकुल होकर कातरभावसे पीछे कुञ्जकी ओर देखा । तभी कानतक खींचे श्रीरामके धनुषसे छूटा बाण आकर बालिके मध्य वक्षमें लगा । बाण लगनेसे बालि घूमकर भूमिपर गिर पड़ा । उसके वक्षसे रक्तकी धारा चलने लगी ।

बालिके गिरते ही श्रीराम कुञ्जसे निकलकर बालिके समीप आये । लक्ष्मण उनके पीछे आये । अब भी श्रीरामके वाम करमें चढ़ा हुआ धनुष था । उन जटामुकुटी, कमल-लोचन, विशाल-भुजा, वल्कलवसन, दुर्वादल-श्याम श्रीरामका देखते ही बालिने मस्तक उठाया ।

'राम ! आप राजपुत्र हैं, कुलीन हैं, अपने व्रतका पालन करनेवाले विख्यात हैं, अन्य युद्ध-लग्न मुझे मारकर आपको क्या मिला ?' बालिकी वाणी तनिक भी शिथिल नहीं हुई थी । वह पूरी तेजस्विताके साथ बोल रहा था— 'मैंने तो सुना था कि राममें दम-शम, धृति, पराक्रम आदि सभी सद्‌गुण हैं । आपके सद्‌गुणोंपर विश्वास करके ताराके मना करनेपर भी मैं सुग्रीवसे लड़ने आगया । मुझे पता नहीं था कि आपकी धर्मबुद्धि मर चुकी है । केवल धर्मात्माका वेश धारण किया है आपने । मैंने आपके देशमें कभी कोई उत्पात किया था ? राजा लोग पृथ्वीके लिए, स्त्रीके लिए या धर्मार्थ लड़ते हैं, मुझ वनचारीपर प्रहारका प्रयोजन क्या आ पड़ा था ?'

'आप धर्मज्ञ हैं धर्मका बोध है आपको ? आपने मुझे छिपकर मारा है, जैसे व्याध आखेट-पशुको मारता है । ठीक है, मैं पशु हूँ, पर आप मेरा मांस खायेंगे ? वानरका मांस मांसाहारी मानव भी त्याज्य मानते हैं ।' जिसके

हृदयमें बाण लगा हो, उससे प्रिय, मधुर भाषणकी आशा नहीं करनी चाहिये। बालि व्यंग कर रहा था। कठोर वाणीमें भर्त्सना कर रहा था—'सुग्रीवकी सहायता करनी थी तो सम्मुख आकर युद्ध करते। तब मैं सीधे यमलोक भेज देता। सुग्रीवसे मित्रता क्यों ? सीताको पाना चाहते थे तो किष्किन्धा आनेमें किसीने रोका था ? आकर मुझसे कहते, मैं लंका जाकर गला घोटकर रावणको मार देता और सीताको ला देता। मेरे मरनेपर सुग्रीवको राज्य मिलेगा; किन्तु आपने मुझे अधर्मपूर्वक मारा।'

बहुत अधिक रक्त निकल जानेसे बालिका कण्ठ सूखने लगा था। उसका बोलना विरमित हुआ तो श्रीराम बोले—'तुमने गुरु या वृद्धोंकी सेवा नहीं की है, अतः तुम्हारी बाल-बुद्धि गयी नहीं। तुम धर्मको जानते ही नहीं। इस समय समस्त पृथ्वीके शासक इक्ष्वाकुवंशी, नीतिज्ञ, सत्यपराक्रम भरत हैं। वे धर्मवत्सल हैं। हम सब क्षत्रिय उनके अनुगत हैं। धर्मभ्रष्टको दण्ड देना राजाका कर्तव्य है और राज-प्रतिनिधिको यह कर्तव्य पूरा करना चाहिये। आवश्यक नहीं है कि अपराधीको दण्ड देनेके लिए राजा या राज प्रतिनिधि उसके सामने ही जाय। सामने जाकर युद्ध तो किया ही नहीं जाता।'

'अच्छा, तो आपने मुझ अपराधीको प्राण दण्ड दिया है ?' बालिने व्यंग्य किया—'न्यायमूर्ति ! मेरा अपराध ?'

'तुम कर्मसे निन्दित हो। अविद्यादि पञ्चक्लेशयुक्त हो। अर्थ तथा धर्मसे अनभिज्ञ हो।' श्रीरामने डाँटा—'पुत्र, शिष्य और अनुज समान होते हैं। ज्येष्ठ भ्राता पिताके समान होता है, तुमने छोटे भाईकी पत्नीको अन्तःपुरमें डाल लिया, अतः तुम वध्य हो।'

'बालि ! तुमको पशु मानकर तुम्हारा आखेट नहीं किया गया। तुम मेरा अपमान करते हो, यह योग्य नहीं है। तुम्हें प्राण-दण्ड दिया गया है।' श्रीराम गम्भीर स्वरमें बोले—'तुम अपनेको वानर-पशु कहकर अपने अपराधका समर्थन नहीं कर सकते। तुम पशु नहीं हो। उपदेवता पशु नहीं हुआ करते। तुम सन्ध्या करते हो, यज्ञोपवीत धारण करते हो, वेदपाठ करते हो। इतनेपर भी पुत्री तथा पुत्रवधूके समान अनुजकी पत्नीको तुमने अपने अन्तःपुरमें डाला, अतः वध्य हो। मैं क्षत्रिय ऐसा पास सहन नहीं कर सकता। वन, पर्वत

सहित समस्त पृथ्वी अयोध्याके शासनके अन्तर्गत है, इसे जानते हो ?'

'राजाके द्वारा दण्डित या क्षमा-प्राप्त अपराधी पाप-मुक्त हो जाता है। वह नरक नहीं जाता। लेकिन राजा पापीको दण्ड न दे तो स्वयं पापका भागी होता है। तुम्हें दण्ड देकर मैंने अपने क्षात्र धर्मका पालन किया है। तुम्हें निष्पाप बनाया है।' श्रीरामने बहुत गम्भीर होकर कहा—'सीताको तो हमें अपने पराक्रमसे प्राप्त करना है। इस समय मरण-पीड़ाग्रस्त तुम्हारा प्रलाप विश्वास करने योग्य है ? रावणसे तुम्हारी मित्रता नहीं है ? तुम स्वस्थ, अपने पदपर होते तो अपनी मैत्री-धर्मसे भ्रष्ट होते या नहीं ? राम अनुज-स्त्रीके अपहर्तासे उसे मैत्री-धर्मसे भ्रष्ट करके सहायता लेगा, यह आशा करते हो तुम मुझसे ?'

'तुम अपनेको पशु कहते हो तो ऐसा ही सही। लेकिन तब सुग्रीव तुम्हारे सहधर्मी हैं या नहीं। अपने प्रिय पशुके ऊपर आक्रमण करनेवाला पशु वध्य होता है।' अब रामने स्पष्ट मुख्य तथ्य प्रकट किया—'रामकी सुग्रीवसे मैत्री है, यह तुम जानते थे। तब सुग्रीवपर आक्रमणका साहस तुमने कैसे किया। राम अपने आश्रितका रक्षक है और अपना अपराध भले क्षमा कर दे, भक्तापराध कभी क्षमा नहीं किया करता—यह रामका व्रत है।

'मुझसे भक्तापराध तो हुआ।' बालिका मस्तक गिर गया भूमिपर। उसका मानस व्यंगकी तीक्ष्णता मिटनेसे निर्मल हो गया। उसने हाथ जोड़ लिये—'राजराजेश्वर ! सर्वेश्वर ! आप ठीक कहते हैं। मैंने प्रमादवश जो कुछ कहा, उसे क्षमा कर दें। आपसे वाद-विवाद करके विजय कौन पा सकता है। आप प्रजा-पालक हो। यह पापी पशु वानर भी आपकी प्रजा ही है। लोकतत्त्वज्ञ ! धर्मज्ञ ! अब मुझे क्षमा कर दें। मैं आपके बाणसे शुद्ध होगया। आपके सम्मुख यह शरीर छूटेगा, यह मेरा परम सौभाग्य।'

'अभी तुम कुछ और कहना चाहते हो, निर्भय कहो। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगा।' बालि कुछ कहते-कहते अटक रहा है, यह देखकर श्रीराम समीप आगये। उन्होंने उसके वक्षमें-से बाण निकाल लिया। उसके मस्तकको अपने कमल-करसे स्पर्श किया।

'मुझे अब अपनी कोई चिन्ता नहीं। आपका अमृत-स्पर्श पाकर मैं

आपके अभयपद चला। पत्नी तारा तत्त्वज्ञा है। आपके चरणोंमें उसकी अनुरक्ति है। अतः उसकी भी मुझे कोई चिन्ता नहीं है। 'बालि अब शांत स्थिर, स्वस्थ स्वरमें बोल रहा था—'लेकिन अपने पुत्र अंगदका मैंने बचपनसे बहुत प्यारसे पालन किया है। वह बल-बुद्धिमें मेरे समान ही है। आप उसकी रक्षा करें। सुग्रीवके समान ही उसे अपना स्नेहभाजन स्वीकार करें। आप शास्ता हैं, गोप्ता हैं, अतः भरत तथा लक्ष्मण जैसा स्नेह करते हैं, वैसा ही सुग्रीव तथा अंगदसे भी करें! स्वामिहीना ताराका सुग्रीव अपमान न करें, यह भी अब आपका ही दायित्व बन गया है।'

'ताराने मुझे आज युद्धमें आनेसे मना किया था।' बालिने अब अपने हृदयकी बात प्रकट की—'मैं जानता था कि आप अवश्य मित्रकी रक्षा करेंगे; किन्तु मैं आपके शरसे शरीर त्याग करना चाहता था।'

'अब तुम निष्पाप होगये!' बालिके मस्तकपर अपना कर रखे हुए ही श्रीरामने कहा—'तुम अब निश्चिन्त परमपद प्रस्थान करो। अंगद सुग्रीवके अनुकूल रहेंगे और सुग्रीव भी उनसे स्नेह करेंगे।'

बालि मूर्छित होगया। उधर वानरोंमें भगदड़ पड़ी थी। बालिके मन्त्रियोंने तारासे जाकर कहा—'हम नगर-द्वार बन्द किये देते हैं। युवराज अंगदका अविलम्ब अभिषेक कर दो।'

'जिन्होंने एक बाणसे अंगदके पिताको मार दिया, उनके बाणोंसे द्वार बन्द करके अंगद बच जायेगा?' ताराने झिड़क दिया सबको। वह अंगदको साथ लेकर श्रीरामके समीप पहुँची।

'श्रीराम! वानरेन्द्र मेरे बिना स्वर्ग में भी सुखी नहीं होंगे।' तारा आकर चरणोंपर गिरी—'आपके तूणीरमें अभी बहुत वाण हैं। एक बाणसे मुझे भी मार दें! इससे आपको पत्नी-दानका पुण्य होगा। यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो मैं वानरेन्द्रके साथ सती होने आयी हूँ।'

'तुम ऐसा नहीं कर सकती हो।' श्रीरामने समझाया—'अंगदके लिए तुम्हें जीवित रहना चाहिये। वैसे भी एक तत्वज्ञा नारीका शरीरके प्रति यह मोह उचित नहीं है।'

'सुग्रीव! यहाँ समीप आओ भाई।' इसी समय बालि सचेत हुआ।

यह बुझते दीपककी अन्तिम लौ थी । सुग्रीव समीप आ गये तो बालिने स्नेह-स्निग्ध स्वरमें कहा—'मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी । मेरा सौहार्द्र नष्ट होगया । मुझसे भूल हुई । अब मुझे क्षमा कर दो । तुम आज ही अपना अभिषेक करा लो । मैं परलोक चला, तुम मेरे प्राणप्रिय पुत्र अंगदका ध्यान रखना । इस पितृहीनके अब तुम्हीं रक्षक हो । यह युद्धमें तुम्हारे आगे-आगे चलेगा । एक बात और—सुषेणकी पुत्री तारा अत्यन्त बुद्धिमती है । बहुत गम्भीर निश्चय करती है । वह जिसे ठीक कहे, उसे ठीक मान लेना । श्रीरामका कार्य करना । इसमें प्रमाद करोगे तो बहुत अधर्म होगा ।'

'यह मुझे देवराज इन्द्रने दी थी ।' बालिने अपने कण्ठसे उतारकर स्वर्णमाला सुग्रीवके गलेमें डाल दी—'अब इसे तुम धारण करो ।'

'मेरे समान स्नेह तुम्हें अपने पितृव्य सुग्रीवसे न मिले तो भी खिन्न मत होना !' बालिने अंगदको समीप बुलाकर कहा—'सबके जीवनमें सुख-दुःख आते हैं, उन्हें साहससे सहन करना पौरुष है । सुग्रीवके शत्रुओंसे मेल मत करना । सुग्रीवका हित करना । स्मरण रखना कि श्रीराम ही सबके परमाश्रय और सच्चे स्वजन हैं ।'

'श्रीराम ' कहते-कहते बालि का सिर एक ओर ढुलक गया । वह महामनस्वी श्रीरामके सम्मुख शरीर-त्यागकर परमधाम चला गया । वानर फूट-फूटकर रोने लगे । तारा पतिके शरीरसे लिपटकर क्रन्दन करने लगी । इस शोकमें भी उसने पुत्रसे कहा—'अंगद ! मेरा हृदय वज्रका है जो मैं भर्त्ताको इस रूपमें देखकर भी जीवित हूँ; किन्तु पिताका यह रूप देख लो । सुग्रीवके साथ शत्रुताका यह परिणाम है । श्रीरामके स्वजनोंका—श्रीरामने जिन्हें अपनाया, उनका विरोध करनेवालेकी यही अन्तिम परिणति है ।'

'देवि ! आप जानती हैं कि जन्म-मृत्यु, सुख-दुःख कर्मानुसार प्राप्त होते हैं । आप शोकका त्याग करें । अंगद बालक है । आप व्याकुल होंगी तो वह देह ही त्याग देगा ।' श्रीहनुमानजी आगे आ गये—'प्राणी पानीसे उत्पन्न, पानीके बुलबुले-जैसा है । उसकी मृत्यु निश्चित है । अतः जन्म-मरणकी चिन्ता न करके कर्तव्यकी चिन्ता करना उचित है ।'

'धर्मज्ञे ! तुम किसके लिए शोक करती हो, शरीरके लिए या चेतनके

लिए ?' श्रीरामका गम्भीर स्वर गूँजा—'शरीर सम्मुख पड़ा है तुम्हारे । इसे तुम सड़नेसे बचा सकोगी ? चेतन मरा करता है क्या ? तुम्हारा पति कौन था, जड़ शरीर या चेतन ?'

'आपकी माया अचिन्त्य है ।' तारा जैसी तत्वज्ञाके लिए इतना उपदेश पर्याप्त था । उसने बालिके शरीरको छोड़कर श्रीरामके सम्मुख पृथ्वीपर मस्तक रखा—'आपकी अनुकम्पाके बिना जीव स्वयं अविद्याके अन्धकारसे निकल नहीं पाता । अतः दया करो दयामय !'

'सुग्रीव ! अग्रजकी सविधि अन्त्येष्टि करवाओ अंगदके द्वारा ।' ताराको समझाकर नगरमें भेजकर श्रीरामने सुग्रीवको आदेश दिया—'लक्ष्मण तुम्हारे साथ रहेंगे ।'

'पहिले मेरे मनमें बालिसे शत्रुता थी; परन्तु ताराको रोते देखकर मेरा मन राज्य स्वीकार करनेको अब प्रस्तुत नहीं है ।' सुग्रीवने श्रीरामसे कहा—'मुझे धिक्कार है कि मेरे कारण मेरा बड़ा भाई मारा गया । मैं पूर्ववत् ऋष्यमूकपर रहूँगा । आप अंगदको राजा बना दें ।'

'हम सब रुदन करें तो उससे बालिका कुछ हित होगा ?' श्रीरामने समझाया—'अश्रुपात हो चुका, अब आवश्यक कर्तव्य करना चाहिये । काल दुरतिक्रम है । काल ही सबका कारण है । कालका अतिक्रम कोई कर नहीं सकता । बालि तो उत्तम लोक गया ।'

'सुग्रीव उठो ! अंगदको लेकर अब अपने अग्रजकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न करो !' लक्ष्मणने सुग्रीवको हाथ पकड़कर उठाया ।

तार नामक वानरने अर्थी बनायी । तारा अन्तःपुरमें न जाकर पुनः लौट आयी । बालि-का शव उठने लगा तो वह उससे लिपटकर रुदन करने लगी ।

'देवि ! मुझे बहुत दुःख है कि मैं वानरेन्द्रकी मृत्युका निमित्त बना ।' सहज स्नेहशील परमोदार श्रीरामका स्वर आर्द्र होगया—'बालिकी मृत्युका समय आ गया था; किन्तु रामका अभाग्य इसे निमित्त बनाने यहाँ ले आया ।'

'कमललोचन ! करुणासागर ! आपकी उदारता असीम है ।' श्रीरामके नेत्रोंमें अश्रु देखते ही तारा पतिका शव छोड़कर उठी—'वानरेन्द्रका सौभाग्य—

उन्हें अपने शरसे परिपूत करके, परमधाम देकर भी आप दुःखी होरहे है ? धन्य हैं आप। इसीसे सन्त-सत्पुरुष आपके श्रीचरणोंमें स्थिर प्रीतिकी कामना करते हैं।'

सुग्रीवको लक्ष्मणने समझाया। बालि-का शव सम्मानके साथ पम्पा-सरोवरके तटपर चितापर चढ़ाया गया। अंगदने पिताके शरीरकी चितामें अग्नि अर्पितकी। सबने सरोवरमें स्नान किया। उपदेव-वर्गमें उत्तर क्रिया शवदाहसे सम्पूर्ण हो जाती है। उपदेवताओंको मरणाशौच शवदाहके पश्चात् समाप्त होजाता है स्नान मात्रसे, अतः सब उत्तर क्रिया इस स्नानसे सम्पूर्ण होगयी।

●●●

वानरराज सुग्रीव

'आपके अनुग्रहसे सुग्रीवको राज्य प्राप्त हुआ। अब आप इन्हें नगरमें जानेकी आज्ञा दें।' हनुमानने प्रार्थना की—'ये बहुत दिनों तक निर्वासित रहे हैं। नगरमें ये आपकी रत्नमालासे अर्चा करेंगे।'

'मैं चौदह वर्ष व्यतीत होनेतक नगरमें नहीं जा सकता।' श्रीरामने अनुजको आदेश दिया—'लक्ष्मण ! सुग्रीवके साथ किष्किन्धा जाकर इनका वानरराज-पदपर अभिषेक कर दो। अंगदको इनका युवराज बना देना।'

'आप ?' सुग्रीवका उत्साह शिथिल होगया यह सुनकर कि श्रीराम नगरमें नहीं जायँगे।

'मैं तुमसे दूर नहीं हूँ।' श्रीरामने समझाया—'अभी वर्षाका प्रथम मास प्रारम्भ हुआ है। मैं चार मास इस पर्वतपर ही रहूँगा। यहाँ यह गिरिगुहा वायु-सञ्चार-युक्त है और इसमें भीतर ही जल भी उपलब्ध है। तुम धर्मपूर्वक अपनी प्रजाका पालन करो। यह स्मरण रखना कि वर्षा व्यतीत होनेपर सीताकी खोज करनी है।'

हनुमान आदिके साथ लक्ष्मण सुग्रीवको लेकर किष्किन्धा पहुँचे। अब

बालिके समर्थक भी सुग्रीवका जयघोष कर रहे थे । तारा और अंगद जब सुग्रीवके समर्थक होगये, दूसरों को विरोधका अवसर ही नहीं रहा बहुत शीघ्रतामें वानरोंने उस गुहा-नगरको सजाया ।

लक्ष्मणने सुग्रीवको सिंहासनपर बैठाकर उनका तिलक कर दिया । ताराका मन विरक्त हो रहा था; किन्तु लक्ष्मणने समझाया—'देवि आप मानवी तो हैं नहीं, उपदेवता हैं । वैसे भी सामान्या न होकर नित्य कन्या है । आप तत्वज्ञा हैं, अतः शरीरका मोह आपमें नहीं होना चाहिए ।'

'वानर बालिके प्रति निष्ठावान रहे हैं । सुग्रीवका शासन सहज ही वे स्वीकार नहीं करेंगे और युवराज-पद पानेपर भी अंगद अभी बालक हैं ।' हनुमानने समझाया—'सुग्रीव दीर्घकालतक निर्वासित रहे हैं । अतः वानरोंकी वर्तमान स्थिति, वर्तमान समस्या तथा तात्कालिक रुचियोंसे अनभिज्ञ हैं । वानर-राज्य व्यवस्थित बना रहेगा, अंगदको ठीक स्नेह, शिक्षण एवं स्वत्व बना रहेगा, यदि आप साम्राज्ञी बनी रहती हैं । हम वानरोंमें इसे बुरा नहीं माना जाता । आप वानर-राज्यपर, प्रजापर कृपा करके अपने पदपर बनी रहें । इसके लिए सुग्रीव आपका आभार मानेंगे ।'

ताराने मस्तक झुका लिया । उस मनस्विनीने दो क्षणमें निश्चय कर लिया—'हनुमान ! मैं समझती हूँ कि वानर-प्रजाको और सुग्रीवको भी मेरी सेवाकी आवश्यकता है; किन्तु मुझे रुमाका स्वत्व नहीं लेना है ।'

'जीजी ! मैं सदा आपकी स्नेह-भाजना रही हूँ ।' रुमाने ताराके चरण पकड़े—'आप जानती हैं कि मैं शासनके सम्बन्धमें कुछ नहीं जानती । आपकी सुरक्षाके बिना मैं असहाय हूँ । आप मुझे इस शासनके दायित्वसे मुक्त करके मुझपर कृपा करेंगी ।'

सौन्दर्यमें भी अन्तर होता है । तारा परम सुन्दरी; किन्तु महिमामयी थी । वह स्वभावसे साम्राज्ञी थी । रुमा भी सुन्दर, किन्तु जैसे छुई-मुई, भोली, व्यवहारसे अनजान बालिका हो । वालिने क्रोधमें सुग्रीवको अपमानित करनेके लिए रुमाको अपने अन्तःपुरमें डाल लिया; किन्तु उस प्रथम दिनके पश्चात् वह रुमाको भूल ही गया । रुमाको तो ताराने अपनी अनुजाके समान सम्हाल लिया था ।

अब स्थिति परिवर्तित होगयी। तारा सुग्रीवके साथ सिंहासनपर बैठने वाली साम्राज्ञी होगयी। शासन-व्यवस्थामें सुग्रीवकी सहधर्मिणी तारा। व्यवस्था ताराके करोंमें; किन्तु अन्तःपुरके एकान्तमें सुग्रीवकी पत्नी रुमा। ताराकी अब अन्तःपुरके विलासमें कोई अभिरुचि नहीं रही थी। वह अन्तःपुरमें अंगदकी माता थी और व्यवस्थामें सुग्रीवको मन्त्रणादायिनी।

लक्ष्मणने अंगदका युवराज-पदपर अभिषेक कर दिया। उपदेवताओंमें जन्मते ही शिशु युवाके आकारका तथा सुपुष्ट होजाता था; किन्तु विद्या-बुद्धि तो शिक्षा तथा संगसे धीरे-धीरे आते हैं। अंगदको हनुमानका स्नेह एवं शिक्षण सुलभ हुआ। अंगद भी हनुमानके साथ ही लगे रहने लगे।

सुग्रीव-अंगदका अभिषेक करके लक्ष्मण निकले नगरसे तो सुग्रीव तारा तथा रुमाको लेकर मन्त्रियोंके साथ लक्ष्मणके साथ श्रीरामके समीप आये। श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करके उन्होंने स्तुति की। श्रीरामने उन्हें विदा करते कहा—'मैंने वही किया, जो मित्रको करना चाहिये था।'

●●●

ऋष्यमूक-निवास

अतिशय रमणीय थी वह गुहा, जिसे श्रीरामने अपना निवास बनाया था। ऋष्यमूक पर्वतका यह माल्यवान शिखर बहुत सुन्दर था और इसमें इतने निर्झर थे कि इसका नाम ही प्रस्रवण पर्वत पड़ गया था।

पर्वतमें लाल, काली आदि अनेक रंगोंकी शिलाएँ थीं; किन्तु जिस गुफामें श्रीरामने निवास किया, वह स्वच्छ, उज्ज्वल मर्मर पाषाण की थी। गुहा विस्तृत थी। उसके भीतर ही एक छोटा जल-स्रोत था। इसके कारण वर्षाके मिट्टी-मिले निर्झरोंके जलको स्वच्छ करनेके प्रयत्न अथवा उनके स्वच्छ होनेकी प्रतीक्षा आवश्यक नहीं थी।

गुफाके बाहर चारों ओर मल्लिका, मालती, यूथिका, वृन्दका (बेला)

की लताएँ लहरा रही थीं । उनके उज्ज्वल पुष्पोंकी सुरभिसे दिशाएँ सुरभित रहती थीं ।

वर्षारम्भमें ही आम्र, जामुन, कटहल पक गये । भाद्रके अन्ततक इन फलोंको सुलभ रहना था । अनेक सुस्वादु अंकुर उग आये थे । भाद्रके व्यतीत होनेसे पूर्व ही अनेक कन्द आहार-योग्य हो जाते थे । आम्रके समाप्त होते ही अमरूदने उसका स्थान ले लिया ।

लक्ष्मण आकाश निर्मल होते ही निकल जाते थे और कई दिनों तक चल सकें, इतने फल, अंकुर आदि एकत्र कर लाते थे । आकाश खुला हो तो अनुजके साथ श्रीराम पर्वतपर ही कुछ दूर घूम आते थे अथवा गुहासे बाहर किसी भी शिलापर विराजमान होते थे ।

पावस प्रकृतिका पालक, पोषक एवं शृंगारकर्ता है । वर्षासे धुली शिलाएँ, स्नान-शुद्ध, वृक्ष-लताएँ, चञ्चल शिशुओंके समान कल-कल छल-छल करते भागते निर्झर और मयूर, चातक, कोकिल प्रभृति पक्षियोंका श्रवण-मधुर स्वर । भ्रमरोंका गुञ्जन ही नहीं, भेक (मेंढ़क) की टर्राहट भी पावसमें मनको प्रफुल्ल करती है ।

सम्पूर्ण धरा-शिखरतक पर्वत जैसे हरित वस्त्र धारण करके किसीके स्वागतमें सजे खड़े हों । पुष्पोंके साथ वीरवहूटी—पृथ्वीकी हरी साड़ीकी शोभामयी लाल बूँदें । मृग, शशक, वृषभ, गायें और दूसरे भी पशु अच्छे स्वस्थ, प्रसन्न, उछलते-कूदते ।

कभी आनन्द देनेवाले वायुके शीतल झकोरे, कभी उमस और कभी वर्षाकी झड़ी । गगनमें घटाओंका भेरी-घोष एवं चपलाका चपल नृत्य ।

इस सबमें श्रीरामका मन अत्यन्त व्याकुल—'सीते ! सीते !' मेघ गर्जना करें, बिजली चमके, वर्षा वेगसे हो या बन्द रहे, श्रीरामको प्रत्येक अवस्थामें अपनी प्राण-प्रियाकी सुधि विक्षिप्त बनाती है । पिक 'कुहू-कुहू' करे, मयूरोंकी केका-ध्वनि उठे, पपीहा 'पी कहाँ' पुकारे या जागरण पक्षी—'उठो सोते लोग' की रट लगावे, श्रीरामको केवल—'हा जानकी' कहना है । निर्झरोंका नृत्य, मृगोंकी मुग्ध विलोकन, लताका झुक झूमना, भ्रमरोंकी गुञ्जार सब श्रीजनक-नन्दिनीका स्मरण कराते हैं ।

'आर्य ! क्रियायोग क्या होता है ?' लक्ष्मणको कुछ-न-कुछ पूछना रहता है । वे कुछ पूछ लेते हैं तो उनके आराध्य अग्रज थोड़ी देर उन्हें समझानेमें अपनी व्यथा विस्मृत किये रहते हैं । अतः लक्ष्मणको समय मिलते ही अवश्य कुछ पूछना रहता है ।

'जब कोई भाव जीवको ईश्वरसे मिलानेवाला बनता है तो उसकी संज्ञा योग होती है ।' श्रीराम स्नेहपूर्वक अनुजको समझाने लगते हैं—'कर्म—कोई क्रियायोग नहीं है, वह भगवान्के लिए हो तो क्रियायोग है । जैसे संसारमें जो प्रीति है वह योग नहीं है । संसारमें भौतिक विषयोंका जो ज्ञान है, वह योग नहीं है । भगवानमें प्रीति प्रेमयोग या भक्तियोग है । भगवत्तत्वका ज्ञान ज्ञानयोग है ।'

'भगवदुपासना— भगवन्मूर्तियोंकी अर्चाके विधि-विधानका नाम क्रियायोग है ।' श्रीरामने मूर्त्ति-प्रतिष्ठा, मूर्त्ति-निर्माण-विधि, न्यास, कवच, स्तोत्र, पूजा-प्रकार, पूजाके उपकरण, मुद्राएँ, पर्व-आदि पर होने वाले उत्सवोंकी विधि, सकाम-निष्काम अनुष्ठान, जप, मन्त्रोंके ऋणी-धनी आदि भेद, मन्त्रोंके ताडन-प्लावनादि संस्कार, दीक्षाका समय, विधि, भेद आदि सम्पूर्ण क्रियायोगका विस्तारसे वर्णन किया ।

चार महीनेका समय था । एकान्त था । लक्ष्मण-जैसे सेवा-तत्पर अधिकारी जिज्ञासु थे, अतः श्रीरामने क्रियायोगके सब रहस्य समझाये । भक्तियोग, ज्ञानयोगका भी पूरा वर्णन किया । क्रियायोगके वर्णनमें लगनेके कारण लीला सूझी तो शारदीय नवरात्रमें व्रत करके नौ दिनोंतक नौदुर्गाकी आराधनामें लगे रहे । प्रत्येक दिन उस तिथिकी अधिदेवता दुर्गाकी पूरी पूजा । जैसे प्रथम दिन शैलपुत्रीकी तो दूसरे दिन ब्रह्मचारिणी एवं तीसरे दिन चन्द्रघण्टाकी । नौ दिनों यह आराधना-क्रम चलता रहा ।

●●●

पवन-पुत्रकी सावधानी

'आपको जिनके अनुग्रहसे राज्य प्राप्त हुआ, जिनके पराक्रमके बलपर आप विपत्ति-विमुक्त हुए, उनका कार्य आपने किया नहीं है।' हनुमानने अवसर देखकर सुग्रीवको प्रसन्न पाकर कहा—'जो समयानुसार मित्रसे व्यवहार नहीं करता, उसका सर्वस्व छिन जाता है।'

'आप सदाचारी हैं, सन्मार्गपर स्थित हैं, यही समझकर श्रीरामने आपकी सहायताकी। अतः आपको उनके विश्वासका अधिकारी सिद्ध करना चाहिये। उनके साथ की गयी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये।' हनुमानने समझाया—समय व्यतीत हो जानेपर किया गया कार्य अपना महत्व खो देता है। श्रीरामके लिए सीताके अन्वेषणका समय बीत रहा है।'

हनुमानका हृदय श्रीरामके समीप ही रहनेको अत्यन्त उत्सुक था; किन्तु सत्पुरुष जिसे अपनाते हैं, उसका अचानक त्याग नहीं करते। सुग्रीवको नवीन राज्य मिला था। वे शासनसे तथा प्रजाकी वर्तमान स्थितिसे भी अपरिचित थे। बहुत दिनोंतक निर्वासनका कष्ट भोगनेके पीछे वैभव मिला तो भोगोंमें लिप्त होगये थे। उन्हें कुछ स्मरण ही नहीं आता था। सुग्रीवके शासनको सम्हालकर सुस्थिर कर देना आवश्यक था। अंगदका प्रशिक्षण भी हनुमानजीको ही करना था और राम-कार्य भी किष्किन्धा रहकर अच्छी प्रकार कराया जा सकता था। अतः हनुमान सुग्रीवके समीप ही रहते थे।

'श्रीराम बिना किसीकी सहायताके अपना कार्य करनेमें समर्थ हैं। लेकिन आपका उन्होंने बहुत बड़ा उपकार किया है। समर्थ पुरुष अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते हैं तो अपने साथकी गयी प्रतिज्ञा पूरी कराना भी जानते हैं।' हनुमान साम और भय दोनों प्रकारसे समझा रहे थे—'उनके कहनेपर आप काम करेंगे तो उसका महत्व नष्ट हो जायगा। उनसे आपने प्रतिज्ञा की है सीताकी खोज करानेकी। आप अनुपकारीका भी काम कर देते हैं। श्रीरामका आपपर असीम उपकार है और वे समर्थ हैं। वे धनुष चढ़ा लें, क्रोध करें, इससे पहिले उनके साथ की गयी प्रतिज्ञाका पालन किया जाना चाहिए। आपकी आज्ञा हो तो

हम सब वानर पृथ्वी, जल, आकाशमें अब सीतान्वेषणके लिए निकल पड़ें ।'

'हनुमान ! तुम सदा मेरी विपत्तिके सहायक रहे हो !' सुग्रीवने प्रशंसाकी हनुमानकी—'तुमने समयपर उचित सम्मति दी है । वर्षा व्यतीत हो चुकी । आकाशमें न मेघ हैं, न विद्युत । गगन निर्मल होकर सूचित करता है कि पृथ्वीके पथ यात्राके योग्य हो गये हैं ।'

'हनुमान ! अवश्य मुझसे प्रमाद हुआ है । इस समयसे पूर्व ही मुझे प्रयत्न प्रारम्भ कर देना था; किन्तु अब शीघ्रता करो ।' सुग्रीव मनमें कुछ भयभीत, चिन्तित हुए । उन्होंने नल-नीलको भी बुला लिया—'रावण मायावी है, दुष्ट है और पृथ्वीमें कहाँ-कहाँ उसके कितने सहायक हैं, यह पता नहीं है । यद्यपि वह ऋष्यमूकसे सीता-सहित दक्षिण जाता देखा गया था; किन्तु मायावी राक्षस मार्गमें किधर मुड़कर कितनी दूर गया होगा, कुछ पता नहीं है । सीताको वह कहीं अरण्यमें, गिरिगह्वरमें, जलमें या पातालमें छिपा सकता है ।'

'रावणकी राजधानी लंका दक्षिण समुद्रमें कहीं द्वीपमें है; किन्तु सीताको उसने कहाँ रखा होगा, कुछ कहा नहीं जा सकता ।' सुग्रीवका मस्तिष्क सक्रिय होगया था—'पहिले सीताका पता लगाना चाहिए । पहिले रावणसे उलझनेपर सीताकी सुरक्षा संकटमें पड़ सकती है । सीताको पहिले समूची पृथ्वीमें—पृथ्वीके पर्वतों, अरण्यों एवं असुर-आवासोंमें अन्वेषण करना है । पानीके भीतर अथवा पातालमें ढूँढ़नेकी बात पीछे । पृथ्वीपर ही कोई सूत्र सीतातक पहुँचनेका अवश्य पाया जा सकता है ।'

'पृथ्वी छोटी तो नहीं है । किष्किन्धाके सब वानर बहुत अपर्याप्त हैं सीतान्वेषणके लिए ।' सुग्रीवने आज्ञा दी—'पहिला कार्य यह कि तुम स्वयं जाओ, दूसरे वानरोंको भी भेजो पृथ्वीके विभिन्न वानर-आवासोंमें । सबको मेरा आदेश सुना दो कि सभी वानर पुरुषोंको पन्द्रह दिनके भीतर यहाँ अवश्य उपस्थित हो जाना चाहिए । जो भी इस आदेशकी अवज्ञा करेगा, उसे प्राणदण्ड प्राप्त होगा ।'

हनुमानने प्रसन्नता प्रकट की । बहुत अधिक वानरोंको दान-मानसे सन्तुष्ट करके दिशाओंमें भेजा । स्वयं तथा नल-नील भी वानरोंको आमन्त्रित करने चल पड़े । जो वानर जिन प्रदेशोंसे परिचित थे, वे वहाँ भेजे गये । जो अत्यन्त दुर्गम, दूरस्थ प्रदेश थे, वहाँकी यात्रा स्वयं हनुमानको करनी थी ।

●●●

रोष-नाट्य

‘अब वर्षा तो बीत गयी लक्ष्मण ! दिशाएँ कासके पुष्पोंसे उज्ज्वल हँसती लगती हैं और रजनी शारदी ज्योत्स्नासे धवल हो गयी है । सीताके बिना मेरे दिन युगों-जैसे व्यतीत होते हैं ।’ श्रीरामने चारों ओर फूले कासको देखकर कहा—‘मैं सरिताओंके जलके उतर जाने और सुग्रीवकी प्रतीक्षा करता हुआ किसी प्रकार समय व्यतीत कर रहा था । सरिताओंका जल स्वच्छ हो गया । मार्ग यात्रा-योग्य होगये; किन्तु सुग्रीवको मुझपर दया नहीं आयी !’

‘सुग्रीव सोचता है कि उसका शत्रु नष्ट होगया, राज्य मिल गया, अब वह क्यों निर्वासित, वनवासी रामके लिए व्यर्थमें कोई बखेड़ा करे ।’ वाणोंमें रोष आया—‘उस मूर्खको पता नहीं कि रामके तूणीरमें वह वाण अभी वैसा ही धरा है, जिसने बालिको स्वर्ग भेज दिया । सुग्रीव मेरा वही बालि-वध वाला रूप देखना चाहता है ?’

‘सुग्रीव बुद्धि-भ्रष्ट है । कृतघ्न है यह वानर, और कृतघ्नका मांस तो राक्षस भी नहीं खाते ।’ लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे—‘आपकी कृपाको उसने विस्मृत कर दिया । ऐसा अकृतज्ञ राज्य पानेका अधिकारी नहीं है । उसे और उसके नगरको भस्म कर दूँगा ।’

‘लक्ष्मण ! रुको ।’ अनुजको धनुष चढ़ाते देखकर श्रीरामने गम्भीर स्वरमें कहा—‘तुम जानते हो कि राम किसीको अपनाकर छोड़ना नहीं जानता । सुग्रीव अकृतज्ञ, लम्पट, ग्राम्य-सुख-लीन हो सकता है, जीव तो सदासे ही दुर्बल है; किन्तु रामने जिसे अपना स्वीकार किया, उसपर संकट आवे, यह तो उचित नहीं है ।’

‘आर्य ?’ लक्ष्मण अग्रजका मुख देखते रह गये ।

‘रोष मत करो, रोषका नाट्य करो । पथ-भटके शिशुको जैसे माता नेत्र कड़े करके सम्हालती है, अन्तरमें अनन्त वात्सल्य प्राणियोंपर बनाये रखना है, इसे विस्मृत मत करो ।’ श्रीरामने अनुजको आदेश दिया—‘बुराईको बुराईसे मिटाना योग्य नहीं है । बुराईका प्रतिकार अच्छाईसे किया जाना चाहिये ।

सुग्रीवको मैंने अग्निकी साक्षीमें मित्र बनाया है । वह वध्य नहीं, रक्षणीय है; किन्तु उस अज्ञको किष्किन्धा जाकर धमकाकर जगा दो, सावधान कर दो । उससे कहो कि बालि जिस मार्गसे गया, वह मार्ग न सँकरा हो गया, न रुद्ध हुआ । उस मार्गकी ओर मुख करना है उसे ?'

x x x x

'कहाँ है कृतघ्न सुग्रीव ? बहुत गर्व हो गया है उसे वानरोंका राजा बनकर ? मैं उसे और उसके नगरको अभी जलाकर भस्म बना दूँगा ।' लक्ष्मणने धनुषकी प्रत्यञ्चा उतारी नहीं । अग्रजकी आज्ञासे वे वैसे ही किष्किन्धा पहुँचे । वाण चढ़ाना अनावश्यक था । केवल ज्याघोष करके द्वारपालोंको, सामने दीखते वानरोंको सुनाकर गर्जना की ।

लक्ष्मणने द्वारपालोंकी उपेक्षा कर दी थी । वे नगरमें प्रविष्ट हुए तो कुछ वानरोंको उनका व्यवहार भी अच्छा नहीं लगा था । कुछने रोकनेके उत्साहमें पेड़-पत्थर भी उठा लिए थे; किन्तु जैसे ही लक्ष्मणने ज्याघोष किया, सब भयभीत होकर भाग खड़े हुए ।

जैसे शत-शत वज्रपात साथ हो रहे हों, लक्ष्मणके धनुषकी प्रत्यञ्चाका भुवन-भेदी नाद घहरा रहा था । लक्ष्मण बराबर ज्याघोष कर रहे थे । वानरोंको लगता था, उनके कर्ण और मस्तिष्क फट जायँगे । पूरी किष्किन्धामें सब अस्त-व्यस्त भाग रहे थे ।

'आपके द्वारा पालित, आपका चरणाश्रित बालि-पुत्र बानर अंगद आपके चरणोंमें प्रणाम करता है ।' अंगद दौड़े आये । लक्ष्मणने अपने पदोंमें प्रणत उन्हें उठाया ।

'श्रीरामका आश्रित सदा अभय है !' लक्ष्मणने उठाकर अंगदसे कहा—'सुग्रीवको समाचार दो । उसे मेरी बात माननी हो तो मिले ।'

x x x x

'देव ! कुमार लक्ष्मण क्रोधमें भरे नगरमें पधारे हैं ।' अंगद दौड़े सुग्रीवके अन्तःपुर पहुँचे । सुग्रीव तथा रुमाके चरण-स्पर्श करके उन्होंने कहा—'यह उनके धनुषका ज्याघोष भी गूँजता रहा तो थोड़े क्षणोंमें वानरोंके हृदयकी गति बन्द हो जायगी ।'

'हनुमान ! इस समय क्या उचित है, यह मैं सोच नहीं पाता' व्याकुल सुग्रीवके लिए यही कुशल थी कि वानरोंको किष्किन्धा आनेका आमन्त्रण देकर हनुमान लौट आये थे । वे इस समय सुग्रीवके समीप थे । सुग्रीव भयकातर स्वर कह रहे थे—'मैंने तो उनका कोई अहित नहीं किया है लगता है, मेरे शत्रुओंने उन्हें भड़का दिया है । श्रीरामने मेरे साथ जो उपकार किया, उसका मैं प्रत्युपकार करनेमें असमर्थ हूँ । वे मुझे मित्र बनाकर कोप क्यों करते हैं ?'

'वानरेन्द्र ! स्पष्ट है कि यह शत्रुपर होने वाला क्रोध नहीं है । लक्ष्मणको सचमुच क्रोध आवे तो अपने स्थानपर खड़े ही वे समस्त सृष्टिके विध्वंसमें समर्थ हैं ।' हनुमानने आश्वासन दिया—'वे पुरीमें आये हैं । धनुषपर वाण चढ़ाये बिना केवल ज्याघोष कर रहे हैं । इसका अर्थ है कि यह स्वजनपर होनेवाला प्रणय-कोप है । आप श्रीरामके उपकार तो नहीं भूलते, यह तो आपके लिए स्वाभाविक है; किन्तु सीताकी शोधका उद्योग करनेका यह समय है । इसमें आपसे प्रमाद हुआ है, इसलिए उनका क्रोध करना अनुचित नहीं है । आप उन्हें प्रसन्न करें ।'

'हनुमान ! मैं क्रोधमें भरे लक्ष्मणके सम्मुख जानेका साहस नहीं कर सकता ।' सुग्रीवने कहा—'तुम तारा और अंगदको लेकर उनके समीप जाओ । उनको समझाकर शान्त करके ले आओ ।'

x x x x

'कुमार ! आप इस बालक अंगदपर और उसकी इस मातापर प्रसन्न हों, जिन्हें आपने ही आश्रय दिया है ।' ताराने अंगदको आगे करके प्रणाम किया और कहा—'आप अपने वानरेन्द्र मित्रपर भी प्रसन्न हों । वे तो आपके आज्ञानुवर्ती हैं । आपके कार्यमें ही लगे हैं । आप पधारें हमारी गुहामें । वानरेन्द्र आपके चरणार्चनको उत्सुक हैं ।'

किष्किन्धा, पर्वतोंसे घिरी, सरिताके समीप उपदेवता वानरोंकी पुरी थी । वानरोंके उत्तम भवन थे उसमें । सुसज्ज थी पुरी । स्वभावसे फलाशन वानरोंकी नगरी बड़े-बडे फलशाली वृक्षोंसे भरी थी । कोई सेवक भी अतृप्त नहीं था । कोई व्यग्र-उद्धत नहीं था । सब शिष्ट थे । स्त्रियाँ सुन्दरी थीं । आभरण-भूषिता थीं । लेकिन इस समय लक्ष्मणको क्रुद्ध देखकर द्वारपाल हाथ

जोड़ काँप रहे थे । वानर उद्विग्न भागनेमें लगे थे । भवन त्यागकर वनमें ।

'सत्पुरुष अपने आश्रितपर, स्त्रीपर, बालकपर क्रोध नहीं करते ।' सुग्रीवका यह अनुमान ठीक था । तारा सामने आयीं तो लक्ष्मणने दृष्टि नीचे कर ली । धनुष कन्धेपर चला गया ।

'कुमार ! आपके क्रोधका कारण ?' ताराने विनयके साथ कहा—'यह तो आपके मित्रका नगर है । कौन यहाँ मरनेको उद्यत है ? उसे तो मैं ही प्राणदण्ड दिला दूँगी ।'

'सुग्रीव राज्य पाकर प्रमत्त होगया है ।' लक्ष्मणके स्वरमें अभी रोष-नाट्य था—'चार महीनेसे अधिक होगये, मित्रको दिये गये वचनके पालनका उन्हें स्मरण ही नहीं हो रहा है । सुग्रीवके धर्मका ही नहीं, अर्थका भी लोप आसन्न है; किन्तु यह चर्चा मैं उनसे ही करने आया हूँ ।'

'वे आपके स्वजन हैं, आश्रित हैं, उनपर अत्यन्त कोप उचित नहीं है कुमार !' ताराने शान्त स्वरमें अनुनय की—'उनसे प्रमाद हुआ, किन्तु वे तो वानर हैं । आप महापुरुष मित्रको क्षमा नहीं करेंगे तो कौन करेगा । वे तो स्वभावसे चपल हैं । उन्होंने आपके कार्यको विस्मृत भी नहीं किया है । आप चलकर देखें, कितने वानर उन्होंने बुला लिये हैं इस कार्यमें नियुक्त करनेके लिए ।'

अब क्रोधका कारण ही नहीं था । तारा आगे हो गयी । अंगद और हनुमानने अनुगमन किया । माल्याभरण-सज्जित सुग्रीव रुमाके साथ सिंहासनपर बैठे थे । श्रीरामानुजको देखते ही कूदे । वहाँ अन्तःपुरकी स्त्रियाँ हाथ जोड़े खड़ी हो गयीं ।

'सत्यवादी, धर्मात्मा राजा ही संसारमें सत्कार पाता है ।' लक्ष्मणने पहुँचते ही कहा—'मित्रके साथ वचन-भंग करनेवाला कृतघ्न मार देने योग्य है । तुमने श्रीरामको कुछ वचन दिया था, इसका स्मरण है तुम्हें ? उसके पालनका समय अभी नहीं हुआ ?'

'कुमार ! आपको ऐसे कठोर वचन नहीं कहने चाहिये ।' ताराने लक्ष्मणको क्रोधसे अरुणमुख होते देखकर नम्रतापूर्वक कहा—'ये वानरेन्द्र कृतघ्न, कठोर अथवा दारुण नहीं हैं । श्रीरामका उपकार ये भूले नहीं हैं । ये ऐसा

प्रत्युपकार करेंगे, जो अन्य कोई कर नहीं सकता । इन्हें निर्वासित होकर कितना भटकना पड़ा, कितना दुःख उठाना पड़ा दीर्घकाल तक, अब थोड़ा सुख मिला तो उसमें भूल जाना अस्वाभाविक नहीं है । मैं क्षमा माँगती हूँ, क्रोध न करके इन्हें क्षमा करें । आप जैसेको इस प्रकार क्रोध नहीं करना चाहिये । मैं अनुभव करती हूँ कि ये श्रीरामके लिए राज्य तथा हम सबका त्याग कर सकते हैं । अभी तो पता ही नहीं है कि श्रीजनकनन्दिनीको रावणने कहाँ रखा है । लंकामें ही रखा हो तो भी वहाँ असंख्य कामरूप राक्षस हैं । उन्हें मारना होगा । यह सब सोचकर इन वानरेन्द्रने बहुत अधिक दूत भेजकर पृथ्वीके सब बलवान वानरोंको बुलवाया है । वे सब अब आते ही होंगे ।'

ताराकी बात सुनकर लक्ष्मण शान्त हुए । उनके मुखपर रोषका चिन्ह नहीं है, यह देखकर सुग्रीवने कण्ठकी माला उतार दी और समीप आकर, हाथ जोड़कर बोले—'श्रीरामकी कृपासे मुझे राज्य तथा पत्नी प्राप्त हुई । मैं आपके अग्रजसे उऋण नहीं हो सकता । मैं तो उनका छुद्र सेवक हूँ । जानता हूँ कि श्रीजानकजाको वे अपने पराक्रमसे ही प्राप्त करेंगे । इस वानरको तो वे सहायक होनेका गौरव दे रहे हैं । यदि मुझसे कुछ प्रमाद, समयका अतिक्रम हुआ है तो उनकी प्रीतिपर असीम विश्वासके कारण हुआ है । मुझे क्षमा करें ।'

'तुम मेरे अग्रजके उपयुक्त मित्र हो !' लक्ष्मणने नम्रतापूर्वक कहा—'तुममें विनय है । अपने दोषको समझ लेने, समर्थ होकर भी अपना दोष स्वीकार कर लेनेका सद्गुण मेरे सम्मान्य अग्रजमें और तुममें भी है । लेकिन अब शीघ्र श्रीरामके समीप चलो । वे बहुत दुःखी हैं । मैंने जो कड़ी बातें कही हैं, वे उनके वचनोंको दुहरायी मात्र हैं । मुझे क्षमा करो ।'

'वानरेन्द्र ! अपराध हम लोगोंसे हुआ है ।' हनुमानजीको रुचा नहीं कि लक्ष्मण क्षमा माँगें । वे बोल उठे—'अतः उचित उपाय यह है कि आप कुमार लक्ष्मणको प्रसन्न करें ।'

'हनुमान ! जितने भी वानर हैं, वे वनमें, गुफाओंमें पर्वतोंपर, जहाँ कहीं भी हों, सबको शीघ्र बुलानेके लिए दूत भेजो !' सुग्रीवने श्रीलक्ष्मणको सिंहासनपर बैठाकर अर्चा करते हुए ही हनुमानजीसे कहा—'पहिले भेजे दूतोंको त्वरा करनेका सन्देश लेकर और दूत जावें । भोग लिप्त, दीर्घसूत्री वानरोंको

भी वे ले आवें। जो मेरी आज्ञा सुनकर भी दस दिनके भीतर न आ जायँ, उन्हें मार दो। आकाश, पातालमें कहीं भी वे छिपकर भागने न पावें।'

इस आज्ञाके पालनका अवसर नहीं आया। आज्ञा हुए अभी दो घड़ी भी नहीं हुई थी, लक्ष्मणको सुग्रीव स्थिति समझा ही रहे थे कि दिशाओंसे असंख्य वानर आने लगे। दिशाएँ गूँजने लगीं—'वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय !'

वानर, फल, मूल, कन्द, औषधि उपहार ले-लेकर आये थे। हिमालयपर जहाँ माहेश्वर महायज्ञ पूर्व युगमें हुआ था, वहाँ उत्पन्न महातरुका फल, उस यज्ञके हविष्यसे उत्पन्न फल, मूल, जैसे दुर्लभ पदार्थ थे उपहारोंमें, जिन्हें खाकर महीने-भर क्षुधा-पिपासा लगती ही नहीं। सुग्रीवने ऐसे दुर्लभ उपहार श्रीरामके लिए एकत्र किये। सब वानरोंको उचित आवास देनेका अंगदको आदेश दिया।

'अब हम यहींसे चलें।' श्रीलक्ष्मण उठ खड़े हुए।

'आगत वानर सीधे श्रीरामके चरणोंमें प्रणाम करने माल्यवान शिखर पहुँचे।' सुग्रीवने अंगदको समझाया और वे भी हनुमानको लेकर लक्ष्मणके साथ चल पड़े।

●●●

वानर-प्रेषण

'असमयपर किया कार्य भी अर्थहीन हो जाता है। जो अवसरोचित धर्म एवं अर्थके उद्योगको भूलकर काममें ही लिप्त रहता है, वह वृक्षपर चढ़कर सोनेवालेके समान गिर पड़ता है।' सुग्रीवने समीप आकर चरणोंपर सिर रखकर प्रणाम किया, तब श्रीरामने उठाकर उन्हें हृदयसे लगाया। शिलापर अपने समीप ही बैठाकर बोले—'अतः अब सीतान्वेषणका प्रयत्न होना चाहिये।'

'आपके उपकारका प्रत्युपकार कर पानेमें मैं सदा असमर्थ रहूँगा; किन्तु आपके चरणोंकी सेवा मेरा सौभाग्य बनी रहे।' सुग्रीव उठ खड़े हुए—'आप यहाँ आते इन असंख्य वानरोंको देखें। ये सब कामरूप हैं। नाना द्वीपों, वन-

पर्वतोंसे आ रहे हैं । ये दलके-दल आते सब वानर फल-मूलाशन हैं और अनुशासित हैं । ये सब आपके लिए प्राण देनेको प्रस्तुत हैं ।'

'मित्र ! मेघके द्वारा वृष्टि होना, सूर्यका प्रकाशन देना जैसे आश्चर्यकी बात नहीं है, तुम्हारे जैसे मित्रके लिए मित्रका उपकार वैसे ही स्वाभाविक है ।' श्रीराम भी सुग्रीवके साथ उठकर वानरोंके आते दल देखने लगे ।

जैसे प्रलयकी घटा उमड़ी आ रही हो, गगन चारों ओर धूलिसे भर गया । वायु उष्ण हो गयी । वानरोंके कण्ठका जयघोष सुनायी पड़ने लगा— 'कौशल-किशोरकी जय ! वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय !'

श्वेत, पीले, काले, लाल, कपिश, कर्बुर, कपोतरोमा, गोपुच्छ—अनेक-अनेक रंगोंके वानरोंके यूथोंके साथ पर्वताकार अत्यन्त काले तथा हिमश्वेत केशों वाले रीछोंका दल भी उमड़ा आ रहा था ।

'रीछराज जाम्बवन्तसे आप परिचित हैं । ये कृष्ण और श्वेत दोनों रीछ-दल इनके अनुगत हैं ।' सुग्रीवने प्रमुख-प्रमुखका परिचय देना प्रारम्भ किया—'ये स्वर्ण पर्वतके समान ताराके पिता सुषेण हैं और ये रूमाके पिता शतबलि । ये असंख्य वानरोंके अग्रणी सुमेरुके समान स्वर्णाभ हनुमानके पिता केसरी हैं ।'

'नल-नील, द्विविद-मयन्द, गय-गवाक्ष, धूम्रकेश; सुग्रीवके लिए प्रधानोंकी भी नाम-गणना सम्भव नहीं थी । पर्वतपर इतना स्थान नहीं था कि सब यूथपति भी वहाँ पहुँच पाते । सहसा सब वानर जहाँके-तहाँ खड़े रह गये । सबके कण्ठोंसे प्रेम-गद्गद जयघोष गूँजा—'करुणामय कौशलेशकी जय !'

सुग्रीव भी कुछ समझ नहीं सके । सब मूर्तिके समान स्थिर खड़े हो गये । सबके नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चलने लगा । पीछे सबमें एक ही चर्चा—'धन्य श्रीराम ! मुझ जैसे तुच्छ कपिके समीप स्वयं आये । अपने चरणोंपर पड़ते मुझे उन विशाल-बाहुने उठाकर हृदयसे लगाया । अपने यूथपति भी मेरे जैसे क्षुद्र सेवककी उपस्थितिपर ध्यान नहीं देते और वानरेन्द्र जिनके चरणोंके पास करबद्ध खड़े थे, उन नवघनसुन्दरने पूछा इस कपिसे कि इसके परिवारमें कौन-कौन हैं । उनकी क्या व्यवस्था वानरेन्द्र अथवा यूथपतिने की है । क्या स्थिति

हैं उसके आवास-स्थानकी । वहाँ जल, फल, मूल प्रचुर हैं या नहीं ? कोई विशेष व्यवस्था आवश्यक हो तो वह बिना संकोच सूचित कर दे ।'

प्रत्येक कपि—असंख्य कपि-दलके एक-एकका अनुभव यही थी कि श्रीराम स्वयं उससे मिले । उसका स्वागत किया, उसका आभार माना सहायतार्थ आनेके लिए । जैसे वह वानरेन्द्र तथा यूथपतिका अनुचर न होकर स्वयं सहायता करने आया हो । उसकी कुशल पूछी ।

'इन सबको आप अपने सेवकके रूपमें स्वीकार करें ।' सुग्रीवने श्रीरामसे अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की ।

'आप सब पर्वतोंमें जल तथा फलकी सुविधा देखकर अपने दलको ठहरावें ।' यूथपतियोंको वानरेन्द्रने आदेश दिया—'यहाँ केवल वे आवेंगे, जिन्हें बुलाया जायगा ।'

असंख्य कपि-दल—किन्तु अत्यन्त अनुशासित । ऐसी सेना कि जो शिविर एवं आहारके सम्बन्धमें निरपेक्ष थी । पर्वतोंपर, शिलाओंपर, वृक्षोंपर, सरोवर, निर्झर, सरिताके तटोंपर वानरोंने अपना डेरा जमाया । ऋष्यमूक तथा कई योजन चारों ओरकी भूमि वानरोंसे भर गयी । सब अपना आहार स्वयं ढूँढ़ लेनेवाले थे ।

'ये सब आपके किंकर हैं । आपके वशवर्ती हैं ।' सुग्रीवने श्रीरामसे कहा—'आप इन्हें आज्ञा दें ।'

'मैं जानना चाहता हूँ कि जनक-नन्दिनी सीता जीवित भी हैं या नहीं और जीवित हैं तो कहाँ हैं ?' श्रीरामने सुग्रीवका आलिंगन करके उनसे कहा—'वानरोंको केवल वानरेन्द्र आदेश दे सकते हैं । यह कार्य न मैं कर सकता, न लक्ष्मण । तुम मेरा काम समझते हो । हमारे हितेच्छु हो, अतः तुम्हीं वानरोंको आदेश दो ।'

'वानरपति विनत !' सुग्रीवने अविलम्ब कार्य सम्हाल लिया । अब वे अत्युच्च स्वरमें स्वयं यूथपतियोंका नाम लेकर पुकारने लगे । जैसे विनत आया, सुग्रीवने आदेश दिया—'सीताका पता लगाना है । वे सुरक्षित मिलनी चाहिये । अपनी पूरी सेनाके साथ पूर्व दिशामें जाओ । वन, पर्वत, खड्ड, गुहा, शून्य भग्न भवन या देवालय, उजड़े नगर, उदयाचल तक कोई स्थान बिना

देखे बचना नहीं चाहिये ।'

'किसी ऋषि-मुनिका अपमान मत करना ।' यह आदेश सुग्रीव सभीको सुनाते गये— 'लेकिन तपस्वियोंसे, परिव्राजकोंसे नाट्य-संगीत-जीवी घूमने वालोंसे, भिक्षुकोंसे नम्रतापूर्वक सीताका पता पूछना । कोई राक्षस मिले तो तुम उससे यथेच्छ व्यवहार कर सकते हो; किन्तु जहाँ तक सम्भव हो, दशग्रीव तक तुम्हारे उद्योगका समाचार न पहुँचे, यह उत्तम होगा ।'

वानरोंने इस आदेशके पालनका सीधा उपाय अपने अन्वेषण-क्रममें निकाल लिया था । वन-पर्वतमें जहाँ कहीं उन्हें कोई राक्षस मिला, एक-एक चपत लगा दी उसे । अब यह दूसरी बात है कि इस अत्यल्प सत्कारको भी कोई राक्षस सहन नहीं कर सका । कई लाख चपतें—लंकाके अतिरिक्त प्रायः पृथ्वीके राक्षसोंसे रिक्त होगयी ।

'किसी धार्मिक जनोंके जनपदमें जाना आवश्यक नहीं है ।' सुग्रीवने काम कम किया—'नगरोंसे भी दूर रहो । राक्षस किसी आर्य नगर या ग्राममें वैदेहीको छिपाने नहीं जायगा ? अतः सघन मानव-जनपद जहाँ हैं, उस प्रदेशके अन्वेषणका व्यर्थ श्रम करके समय मत नष्ट करना ।'

सुग्रीवने प्रत्येद दिशामें जानेवाले यूथपतिके साथ अनेक दूसरे यूथप सहायक दिये सेनाके साथ । सबको मार्गमें पड़ने वाले पर्वत, वन, नदियोंका विस्तारपूर्वक परिचय दिया । वहाँके विशिष्ट भयदायक प्राणियोंसे सावधान किया । सचेत किया कि सुरम्य प्रदेशोंमें, सुस्वादु फलोंके स्थानोंमें किसीको अटकना नहीं चाहिये ।

'वानरराज शतबलि !' सुग्रीवने रुमाके पिता— अपने स्वसुरको पुकारा । उनके साथ जाने वालोंके नाम सूचित करके कहा—'आपको हिमालय पार करके उत्तरके प्राणि-विहीन हिमप्रदेश तक जाना है । आर्योंके नगर, ग्राम, प्रदेश छोड़ दीजिये । देवताओंके भी विहार-स्थान देखने नहीं हैं; किन्तु भगवान् शंकरके कैलासके सम्बन्धमें यक्षराज कुबेरसे अवश्य पूछ लीजिये । उन भूतनाथके लिए कोई पराया नहीं है । रावण उनका भक्त है । यद्यपि आशा नहीं है कि वह कोई अपहृता वहाँ छिपानेका दुस्साहस करे; किन्तु कुछ ऐसा करे तो यक्षराज कुबेरसे अज्ञात नहीं रहेगा । वे दशग्रीवके अग्रज होकर भी उसके मित्र नहीं हैं ।'

ताराके पिता सुषेणको सुग्रीवने पश्चिम भेजा । उन्हें भी अनेक सहायक दिये । उनको सौराष्ट्र तक ही नहीं, पश्चिमकी पूरी सीमातक— मेरुसावर्णिके समीप तक (सम्भवतः इनका आश्रम वर्तमान अफ्रिकाके किसी पश्चिमी तटपर होगा) जाकर उनसे भी सीताका पता पूछना था ।

सुग्रीवने जिसको भी भेजा जिस ओर, उसे मार्गके प्रदेशोंका परिचय दिया । जैसे उत्तर भेजते समय शतबलिको काम्बोज, चीन, परमचीन, नीहार (कुहरेमे ढके रहनेवाला प्रदेश) दरद, कालपर्वत (उत्तरी ध्रुव) तक जानेको कहा । मार्गमें स्त्री-राज्यमें वहाँके नृत्य, गायन, सौन्दर्यसे सावधान किया ।

'अमुक स्थानके फलोंको भूलकर भी मत खाना ।' सुग्रीवने प्रायः सब दलोंको विशेष स्थानोंके सम्बन्धमें सचेत किया—'अमुक स्थानपर एक पत्र भी मत छूना ! अमुक स्थानके मधुछत्रक अत्यन्त मादक या विषैले हैं । अमुक पर्वतकी शिलाएँ अस्पृश्य हैं । अमुक शिखर या स्थान किसीके निवास या तपःप्रभावसे अनुल्लंघनीय है । अमुक स्थानमें भयानक अजगर, सिंह अथवा क्षुद्र मशक, यूका (जोंक) जैसी बाधाएँ हैं । अमुक स्रोतों, सरोवरोंके जल पीने योग्य नहीं । अमुक स्थानोंपर अदृश्य तापस रहते हैं । वहाँ मल-मूत्र त्यागसे विपत्तिमें पड़ना पड़ सकता है ।' ऐसी सूचनाएँ अत्यन्त आवश्यक थीं । सुग्रीवने सब दलपतियोंको समझा दिया कि अपने यूथके प्रत्येक सदस्यको ये बातें बतला दें ।

'जाम्बवान ! अंगद ! पवन-पुत्र हनुमान ! अग्नि-पुत्र नील-नल ! सुहोत्र गव-गवाक्ष ! मैन्द द्विविद ! तार !' अन्तमें सुग्रीवने अपने सबसे प्रमुख एवं अत्यन्त विश्वनीय लोगोंको पुकारा । दशग्रीव वैदेहीको लेकर दक्षिण जाते देखा गया था । उसकी राजधानी लंका दक्षिण थी । अतः सर्वश्रेष्ठ दलको दक्षिण भेजना उचित ही था ।

'आप सबको दक्षिण जाना है । आप यहाँसे कुछ उत्तर जाकर वहाँसे अन्वेषण प्रारम्भ करें, जहाँसे सीताका अपहरण हुआ । विन्ध्य गिरिके दक्षिणी भागको देख लेना । गोदावरीका उद्‌गम देखना और जनस्थानमें अन्वेषणसे पूर्व महर्षि अगस्त्यसे अनुमति लेना ।' सुग्रीवने यह कहा तो श्रीरामने उनकी ओर साभिप्राय देखा ।

'देव यह ठीक है कि मैंने रावणको गगनमार्गमें सीताको ले जाते देखा है और उन विदेह-नन्दिनीने जो आभूषण गिराये थे उन्हींके थे, यह आपने पहिचाने लिये; किन्तु' सुग्रीवने गम्भीर होकर कहा—'दशग्रीव मायावी है। यह भी तो सम्भव है कि आभूषण छीनकर वह भगवती सीताको जनस्थानमें या कहीं अन्यत्र छिपा आया हो। हमने जिसे उस माय़ावीको ले जाते देखा, वह माया हो—उस माया नारीको दिखाकर, श्रीमैथिलीके आभरण गिराकर राक्षस आपको तथा हम सबको भ्रममें डालकर भटकाना चाहता हो।'

सुग्रीव इतने बुद्धिमान हैं, यह अनुमान तो लक्ष्मणने भी नहीं किया था। श्रीरामने सानुज प्रशंसा-भरी दृष्टिसे देखा उनकी ओर। वानरेन्द्र होनेकी उचित योग्यता सुग्रीवने प्रकट की। वे दक्षिण जाने वाले दलको समझा रहे थे—'ग्राहोंसे भरी ताम्रपर्णी पारकर तुम्हें जो भारतका दक्षिणी अरण्य-पर्वतीय प्रदेश मिलेगा, वह दशग्रीवका प्रभाव-क्षेत्र है। रावण असाधारण प्रतापी है। अतः बहुत सावधान रहना। समुद्रके मध्य उसकी राजधानी लंका त्रिकूट पर्वतके शिखरपर है। उसका एक शृंग रजतका और एक स्वर्णका है, यह मैंने तारासे सुना है। आवश्यक हो तो आगे वैद्युत गिरि तथा श्वेतकुञ्जर गिरि (दक्षिण ध्रुव) तक जाना है तुम्हें।'

'जो एक महीनेमें निर्दिष्ट स्थलोंको देखकर नहीं लौट आवेगा, मैं अपने हाथों उसका वध करूँगा!' अन्तमें सुग्रीवने सबको सुना दिया—'जो इस अवधिमें सीताका दर्शन कर आवेगा, उसे वानरोंके मध्य मेरे समान पद प्राप्त होगा। मेरे निर्दिष्ट तथा अनिर्दिष्ट स्थल भी ढूँढ़ना। जैसे सीता मिलें, वह करना।'

'वायुनन्दन! तुम्हारी गति भूमि, जल, वायु तथा अन्तरिक्षमें भी अनिरुद्ध है। तुम देवलोक तथा पाताल भी जानेमें समर्थ हो। तुम्हारा वेग अपने पिता पवनसे भी तीव्र है। अन्तमें सुग्रीवने हनुमानको समीप बुलाकर कहा—'बल, बुद्धि, पराक्रममें तुम्हारी कोई समता नहीं है। देश—कालानुसार व्यवहारके तुम मर्मज्ञ हो। अतः ऐसा करना कि हम वानरोंका परिश्रम सार्थक हो। सीताको अवश्य ढूँढ़ना है तुम्हें।'

'हनुमान! इसे सीताको दिखलाकर अपना परिचय देना!' जब सुग्रीवसे आज्ञा लेकर सबसे अन्तमें पवनपुत्रने श्रीरामके पदोंमें मस्तक रखा तो अपने

करसे अपनी नामांकित मुद्रिका उतारकर उन्हें देते हुए श्रीरामने कहा—'तुम्हें सफलता मिलेगी । मुद्रिका देखकर सीता तुमसे अनुद्विग्नमना मिलेंगी । तुम्हारा पथ निर्विघ्न हो ।'

हनुमानजीका शरीर पुलकित होगया । अञ्जलि फैलाकर उन्होंने मुद्रिका ली और मस्तकके केशोंमें (जटामें) रख ली । साश्रुलोचन पुनः श्रीरामके चरणोंपर मस्तक रखा ।

'सबको मेरी सूचनाओंका और अवधिका ध्यान रखना चाहिए !' सुग्रीवने एक बार फिर सबको सावधान करके विदा किया ।

'मित्र ! तुम्हें पृथ्वीके भूगोलका इतना विशद ज्ञान है ?' श्रीरामने वानरोंके प्रस्थान करते ही सुग्रीवकी ओर मुख किया—'इतना विशद परिचय है तुम्हें सभी दिशाओंके प्रदेशोंका ।

'बालि मुझे मार देनेके लिए मेरे पीछे पड़ गया था ।' सुग्रीवने कहा—'प्राण बचानेके लिए पूरी पृथ्वीमें मैं भागता फिरा हूँ । दौड़नेमें बालिसे पर्याप्त तीव्र गति होनेके कारण मुझे कुछ रुकने देखने विश्राम ले लेनेका भी समय मिल जाता था । इस प्रकार पूरी पृथ्वी मुझे देखनी पड़ी है ।'

अब तो सबको प्रतीक्षा ही करनी थी । पूर्व, उत्तर, पश्चिम भेजे गये दलोंके वानर निर्दिष्ट सीमातक जाकर लौट आये । उनमें-से कुछ मुख्य यूथपति दूसरोंको लौटाकर स्वयं दक्षिण जाने वाले दलमें सम्मिलित हो गये । दूसरी दिशाओंमें जाने वाले दलोंको कोई बड़ी बाधा नहीं मिली । इन सभी दलोंको आधेसे अधिक प्रदेशोंमें जनपद मिले जो उन्हें छोड़ देने थे । अतः ये दल अवधिसे पर्याप्त पूर्व लौट आये थे । अब इन्हें भी दक्षिण जाने वाले दलके लौटनेकी प्रतीक्षा करनी थी ।

●●●

सीतान्वेषण

आरम्भसे ही अरण्यमें अन्वेषण करना था दक्षिण जाने वाले दलको। सबसे वृद्ध एवं सम्मानित होनेके कारण दलका निर्देशन स्वयं जाम्बवन्त करने लगे। वैसे युवराज अंगद साथ थे, अतः वे स्वतःसिद्ध दल नायक थे।

पञ्चवटी पहुँचकर इस दलने महर्षि अगस्त्यको प्रणाम किया—'दक्षिणारण्यके अन्वेषणकी आपसे अनुमति लेने हम सब आये हैं। हम वानरेन्द्र सुग्रीवके चर हैं।'

'यथेच्छ विचरण करो।' अमित तेजा महर्षिने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे दिया—'विश्वास रखो, श्रीरामकी सेवामें लगे प्राणीको सदा सफलता प्राप्त होती है।'

विन्ध्य गिरिका यह दक्षिणी भाग बहुत विकट था, फलहीन कण्टक वृक्ष और उनमें भी अभीसे पतझड़ हो चुका था। सरिताएँ सूखी पड़ी थीं। उनके भीतर पाषाण और रेतके अतिरिक्त कुछ नहीं था।

वर्षाके अन्तमें शरद ऋतु प्रारम्भ होनेपर हनुमानजीके उद्बोधनके पश्चात् तो सुग्रीवने वानरोंको बुलानेके लिए चर भेजा था। एक पक्षका विलम्ब सुग्रीवने चर भेजनेमें न किया होता तो श्रीरामको रोष क्यों आता। वानरोंको आनेमें एक पक्ष लग गया। इस प्रकार हेमन्तके प्रथम मास मार्गशीर्षमें वानर सीतान्वेषण करने निकले। उन्हें अन्वेषणकी अवधि एक मासकी वानरेन्द्रने दी थी; किन्तु शुष्क भूमिके कण्टक तरुओंमें तो अभी पतझड़ हो चुका था।

गहन वनमें वैसे ही चलना कठिन और उसमें भी सब गुफाएँ, खड्ड, सघन कुञ्ज देखने थे। सिंह-व्याघ्रोंकी आवास गुफाएँ, रीछोंके निवास, बाँसोंके झुरमुट-सब ढूँढ़े जा रहे थे। कोई किरात, भील, शबर भी नहीं मिला कि उससे कुछ पूछा जाय।

'यहाँ कहीं पहिले कण्डू मुनिका आश्रम था।' जाम्बवन्तजीने बतलाया—'उनके एक मात्र पुत्रको राक्षसने खा लिया। इससे क्रोधमें आकर इस वनको निर्जन हो जानेका शाप देकर मुनि यहाँसे चले गये।'

'यही रावण है !' सहसा वानर चिल्लाये । उस घोर अरण्यमें एक अत्यन्त भयंकर राक्षस मिला । पता नहीं किस गुफा या कुञ्जसे निकला और घूंसा तानकर सीधे युवराज अंगदकी ओर दौड़ा । लेकिन किसीको समीप आनेका अवकाश नहीं मिला । अंगदने उसे पकड़कर पटक दिया । उनके एक ही पदाघातसे जब वह तड़पकर शान्त होगया, सबने कहा—'इतना अल्पप्राण रावण नहीं हो सकता ।'

अत्यन्त सघन अरण्य, बहुत विकट पर्वतीय प्रदेश—इस कठिनाईने सबको थका दिया । सब सघन वृक्ष मिला तो एकत्र होकर बैठे तनिक विश्राम करने । जाम्बवन्तने सबको सावधान किया—'वानरेन्द्र सुग्रीव अत्यन्त उग्रदण्ड हैं । हमारे अन्वेषणकी गति बहुत शिथिल है । अतः तन्द्रा, निद्रा त्यागकर सबको पूरी शक्तिसे लगना चाहिये ।'

'इस प्रकारके अन्वेषणमें बहुत काल लगेगा ।' अब जाम्बवन्तने ही योजना बनायी—'हम सबको बिखर जाना चाहिये ।' पूरे पूर्व समुद्रसे पश्चिम समुद्र-तटके भागमें बिखरकर लगभग एक पंक्ति बना लें हम सब । हमारे यूथप अपने-अपने दलोंके साथ रहें । कोई वानर कभी एकाकी नहीं चले । कम-से-कम दो सदा साथ रहें । ऐसे दो-दोके दल भी इतनी ही दूर रहें कि सामान्य पुकारपर भी दूसरे दल तक शीघ्र पहुँच सकें ।'

'संकटकी सम्भावना होते ही साहस करनेसे पूर्व पुकारकर समीपके दलोंको सूचना अवश्य दी जानी चाहिये । वे भी सहायताको दौड़नेसे पूर्व समीपस्थोंको पुकार देंगे ।' जाम्बवान अनुभवी वृद्ध थे । उन्होंने दलको बिखेरकर भी ऐसी व्यवस्था की, जिससे किसीपर संकट आते ही पूरा दल क्षणोंमें वहाँ पहुँच सके ।

'आहार, जल आदिके लिए भी कोई अकेला नहीं जायगा । अन्तमें आदेश दिया—'जनपदोंमें नहीं जाना है । ऋषि-आश्रम मिले तो केवल यूथपतियोंको वहाँ जाकर पूछना चाहिये । अपरिचित फल, मूल, कन्द कोई मुखमें न डाले ।'

'हम सब सूर्यास्तके पश्चात् एकत्र ही विश्राम करेंगे ।' रात्रिमें अन्वेषण वनमें अशक्य था—'सूर्योदयसे पूर्व ही प्रातःकालीन प्रकाश प्रारम्भ हो तो सबको

अन्वेषणमें लग जाना चाहिये ।'

जैसे-जैसे यह दल दक्षिण बढ़ता गया, अन्वेषणका क्षेत्र संकीर्ण होता जा रहा था । अतः वानरोंके दो-दोके दल अधिक समीप होते गये ।

यह अविराम-अन्वेषणका क्रम अशक्त होता लगने लगा । ऐसा वन जिसमें फल नहीं, कन्द नहीं, खाने योग्य पत्ते और तृण भी नहीं । क्षुधा सहकर प्राणी कुछ दिन भी रह सकता है; किन्तु तृषा तो असह्य है । जल जीवका जीवन है । जलके बिना कैसे रहा जा सकता है । उस अरण्यमें जलका नाम नहीं था । वानरोंने कई दिन बिना कुछ खाये काट दिये; किन्तु जब जल नहीं मिला, सब जीवनसे ही निराश हो गये । कण्ठ सूखने लगा । तालुमें काँटे उठ आये । सब समीप आ गये । सबकी एक ही समस्या—जल ?

दक्षिण भारतमें बहुत व्यापक जलहीन क्षेत्र अब भी है । यदि नहर न हों, जीवन-शून्य हो जाय वह प्रदेश । अनेक वर्षोंके अवर्षणके कारण सरोवरोंके तले दरारोंसे भरे थे । सरिताओंमें रेत उड़ रही थी । पूर्व और पश्चिम भी अथाह असीम उदधि था; किन्तु सागरका जल, तृषा शान्त करेगा ? नारिकेलके वृक्ष थे किन्तु फल-रहित ।

किसीको कोई उपाय नहीं सूझ रहा था । वानर व्याकुल यूथपतियोंका मुख देखते; किन्तु यूथपोंकी स्वयं वही दशा थी । अपने लोगोंकी यह दशा देखकर हनुमानजी एक ऊँचे वृक्ष-पर जा चढ़े और इधर-उधर देखने लगे ।

अकालसे सूखे, निष्पत्र वनमें एक पर्वतके समीप हरे वृक्षोंका छोटा-सा झुरमुट दीख पड़ा । हरियाली है तो वहाँ जल भी होना चाहिये । दृष्टि जम गयी उस स्थलपर । सहसा चौंके—'सारस, हंस, क्रौञ्च जलकाक ? ये सब तो जलपक्षी हैं ! ये उस झुरमुटसे निकलते हैं तो वहाँ जलाशय होना चाहिये ।'

जल है—समीप ही जल है !' हनुमानकी पुकारने वानरोंको प्राणदान दिया । अंगद, जाम्ववान, अनेक दूसरोंने उस निर्दिष्ट झुरमुटको वृक्षोंपर चढ़कर देखा । स्पष्ट हो गया कि वहाँ कोई गुहा है पर्वतमें ।

पक्षी उसीमें जाते हैं और उसीमें-से निकलते हैं । ध्यानसे देखो तो भीगे निकलते दीखते हैं । इसका अर्थ है कि उस गुहाके भीतर जलाशय है ।

सब वानर उछलते-कूदते उस गुहातक पहुँच गये । वृक्षोंके झुरमुटमें गुफा तो मिल गयी; किन्तु पता नहीं कितनी गहरी और अन्धकारसे भरी । सब अत्यन्त प्यासे थे । अधिक सोचने-समझनेका समय नहीं था हनुमान आगे हुए । एक दूसरेकी पूँछ पकड़ ली उन्होंने और गुफामें चल पड़े । बड़ी लम्बी पंक्ति थी । केवल एक ही कठिनाईसे टटोलते जा सकता था ।

भीतर पहुँचकर तो वानरोंको लगा कि वे सशरीर स्वर्ग पहुँच गये हैं । अकल्पनीय सुन्दर बहुत विस्तीर्ण उद्यान था और उसके मध्य स्वच्छ जलसे भरा, कमलोंसे पूर्ण सरोवर था । चारों ओर फलभारसे झुके स्वर्णिम वृक्ष खड़े थे ।

वानर बहुत प्यासे थे । अधिकांश सीधे दौड़े और सरोवरका सुस्वादु जल पीने लगे । प्यास शान्त हुई तो परिपक्व फलोंने पेटकी स्मृति करायी । वे वृक्षोंपर चढ़ गये और कूद-कूदकर फल खाने लगे ।

हनुमान, जाम्बवान, अंगद तथा दूसरे थोड़े-से यूथनायकोंने अपनेको संयत रखा । उन्होंने देखा कि उद्यानमें एक ओर एक मणि-भवन है । भवनसे बाहर पुष्पवाटिकामें कोई तपस्विनी-वेशमें देवी विराजमान हैं । उनका पीतवस्त्र, उनका तेजोमय शरीर ही कहता था कि वे यदि देवता नहीं भी हों तो उपदेवताओंमें किसी उत्कृष्ट वर्गकी होंगी । उन्हें देखकर हनुमानादि उनके समीप गये और नम्रतापूर्वक प्रणाम किया ।

'तुम लोग कौन हो ? यहाँ कैसे आ गये ? इस उद्यानको क्यों नष्ट कर रहे हो ?' उस तपस्विनीके स्वरमें रोष तो नहीं था; किन्तु खीझ थी । बहुत वर्षोंसे वह इस एकान्तमें तपोलीन थी । अचानक वानरोंने आकर कोलाहलसे उसका एकान्त भंग किया था ।

'हम कई दिनोंसे भूखे हैं । प्याससे हमारे प्राण व्याकुल हो रहे थे । जल ढूँढ़ते आपके इस आश्रम आ पहुँचे ।' हनुमानजीके स्वरमें भी प्यासकी शिथिलता थी । उन्होंने परिचय देना चाहा—'हम ।'

'तुम लोग पहिले सरोवरमें स्नान करो, जल पिओ ।' तपस्विनी सदय होगयी—'यथेच्छ फल खाओ । अपनी क्षुधा-पिपासा शान्त करके मेरे समीप आना, तब परिचय सुनूँगी ।'

'देवि ! हम अयोध्याके अधीश्वर श्रीरामके दूत हैं । वनमें उनकी भार्याका राक्षसने हरण कर लिया । उन्हीं श्रीवैदेहीका पता लगाने हमें वानरेन्द्र सुग्रीवने भेजा है ।' जल पीकर, स्नान करके, फल खाकर, पूर्ण परितृप्त होकर हनुमान, जाम्ववान, अंगद आदि वानर-यूथप उस तपस्विनीके समीप पहुँचे । अपना परिचय देकर पूछा—'आप कौन हैं ? यहाँ एकाकिनी क्यों रहती हैं ? भूमिके भीतर यह अनुपम उद्यान कैसे लगा ? यह किसका स्थान है ?'

'दानव विश्वकर्मा मयका नाम तुमने सुना होगा । यह वन उसने अपनी मायासे निर्मित किया है । वह हेमा नामकी अप्सरापर आसक्त होकर यहाँ उसके साथ रहने लगा था ।' उस चीरवल्कल तथा कृष्णमृगचर्मधारिणी तपस्विनीने बतलाया—'इन्द्र तो वज्र-प्रहारसे मय तथा हेमाको मार ही देना चाहते थे; किन्तु सृष्टिकर्ताने उन्हें मना कर दिया । मय भी हेमाको यह वन देकर रसातल चला गया । मैं मेरु सावर्णी की पुत्री स्वयम्प्रभा हेमाकी सखी हूँ । मेरी सखी हेमा ब्रह्मलोक जाने लगी तो यह स्थान मुझे दे गयी । यहाँ मैं दीर्घकालसे श्रीरामके दर्शनके लिए तप कर रही हूँ । मेरे वे आराध्य कहाँ हैं ? मैं उनके श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहती हूँ ।'

'हम श्रान्त थे, क्षुधित-तृषित थे । जल-पक्षियोंको देखकर यहाँ आये । तुमने आतिथ्य धर्मका पालन किया । हमारे सब लोगोंको मरनेसे बचा लिया ।' हनुमानजीनें नम्रतापूर्वक कहा—'हम तुम्हारा क्या प्रत्युपकार करें ?'

'मुझे तुम लोगोंसे कुछ नहीं लेना है ।' उसने कहा—'मैं तो इस स्थानका त्यागकर आराध्यके समीप जा रही हूँ । यहाँका जल, फल तुम लोगोंके काम आ गया, आता रहे तो मुझे प्रसन्नता ही है ।'

'हम सब तुम्हारी शरण हैं ।' हनुमानजीने हाथ जोड़ा—'सुग्रीवने हमें जो समय दिया था, सीतान्वेषण के लिए, लगता है कि वह समाप्त हो गया । आप यहाँसे निकलनेका मार्ग बतादें तो हम सीताके अन्वेषणमें लगें ।

'निकलनेका मार्ग ?' वह दो क्षण नेत्र बन्द करके मौन हो गयी—'यह भूगर्भ स्थान दानवोंके द्वारा रक्षित है । यहाँ आकर केवल पक्षी यहाँसे निकल पाते थे । पक्षियोंके प्रवेश-मार्गसे ही तुम लोग यहाँ पहुँच सके । वह मार्ग तो तुम लोगोंके प्रवेशके पश्चात् तत्काल बन्द होगया । इस मायामय

भूगर्भमें समय भी पृथ्वीके समान्य समयसे भिन्न है । लेकिन तुम लोग सब नेत्र बन्द कर लो तो मैं संकल्पबलसे तुम्हें यहाँसे बाहर वहाँ समुद्रतटपर पहुँचा दूँगी, जहाँसे तुम सीताका पता पा सको । इस संकल्पसे बने लोकसे बाहर केवल इसके मर्मसे परिचितका संकल्प ही पहुँचा सकता है ।'

'सब वानर नेत्र बन्द करके शान्त बैठ जायँ । श्रीहनुमानजीने पुकारा सबको । सबके साथ स्वयं भी नेत्र बन्द करके बैठ गये । कुछ ही क्षणोंमें समुद्रका गर्जन सुनायी देने लगा । तब सबने नेत्र खोले ।

वानरोंके साथ ही स्वयम्प्रभा भी उस स्थानसे निकली । वह योगिनी अप्सरा थी । गगन-मार्गसे ऋष्यमूकपर पहुँचकर श्रीरामके चरणोंमें उसने प्रणाम किया । श्रीराम-लक्ष्मणकी प्रदक्षिणा करके स्तुति करने लगी ।

'देवि ! तुम क्या चाहती हो ?' श्रीरामने पूछा ।

'मैं तो आपके श्रीचरणोंकी किंकरी हूँ इन पादपद्मोंके दर्शनके लिए दीर्घकालसे तप कर रही थी । आज मेरा जीवन सफल हो गया । उसने माँगा 'अब आप सुप्रसन्न हैं तो वरदान दें कि मेरी जिह्वापर आपका नाम ही रहे । जहाँ, जिस योनिमें भी जन्म हो, आपके भक्तोंका ही संग प्राप्त हो और मेरे मनमें सीता-लक्ष्मणके साथ आप सदा विराजमान रहो । लेकिन इस वनवासी वेशमें नहीं, मुकटोज्ज्वल मस्तक— राजाधिराजके रूपमें ।'

'अच्छा देवि !' श्रीरामने स्वीकार करके कहा—'अब शेष जीवन वदरीवनमें व्यतीत करो । मेरा नाम-स्मरण करते समय पर अलकनन्दाम शरीर त्याग करके मेरे नित्य धाममें निवास करोगी ।'

वह तो श्रीरामको प्रणाम करके दोनों भाइयोंकी प्रदक्षिणा करके वदरीवन चली गयी । दूसरी ओर वानरोंने जब नेत्र खोला, उनके सम्मुख उत्ताल तरंगोंसे उद्वेलित अनन्त उदधि था ।

'क्या—कितना समय व्यतीत होगया हम सबको उस भूगर्भमें ?' वानर एक साथ चौंके । समुद्रतटके पर्वतोंपर जो वृक्ष थे, उनमें पुष्ट पत्ते लहरा रहे थे । बसन्तागम से पूर्व आने वाले पुष्पोंसे लदे थे वे वृक्ष । अब स्वयम्प्रभाकी बात स्मरण आयी । उसने कहा था कि उस मायामय भूगर्भमें पृथ्वीसे भिन्न समयकी गति है । पतझड़के समय उस गुफामें गये थे और वृक्षोंमें वसन्तागमके पुष्प खिले थे । इसका अर्थ था कि उस भूगर्भमें बहुत समय बीत गया था ।

●●●

सम्पाती-संवाद

अरण्य वसन्तागमके पुष्पोंसे परिपूर्ण है, यह देखकर वानर बहुत व्याकुल हुए। सब एक स्थानपर ही निकले थे। वहीं बैठ गये। अंगदने कहा—'स्पष्ट है कि हम सबको भूगर्भमें समय बहुत बीत गया। सुग्रीवका दिया समय बीत चुका। अब वे मुझे कदापि क्षमा नहीं करेंगे।'

'सुग्रीवने मुझे युवराज प्रसन्नतापूर्वक नहीं बनाया। श्रीरामके आदेशसे उन्हें यह स्वीकार करना पड़ा था।' दुःखमें व्यक्तिके मनमें असंगत आशंकाएँ जागती ही हैं। अंगद कहने लगे—'मैं उनके शत्रु बालिका पुत्र हूँ। मुझे तो वे तभी मार देते; किन्तु अब किसी प्रकार नहीं छोड़ेंगे। लौटकर उनके हाथोंमें मरनेसे यहीं प्राण त्याग देना मैं अच्छा मानता हूँ।'

'अब किष्किन्धा लौटनेसे तो सभीको मरना पड़ेगा।' वानरोंमें बहुतोंने कहा—'युवराज! आप दुःखी मत हों। हम जिस भूगर्भसे अभी निकले, वह पर्याप्त बड़ी है। उसमें जल और फल भरपूर हैं। वह तपस्विनी गुफा त्यागकर चली गयी। आपके साथ हम सब उस गुफामें आजीवन रहकर आपकी सेवा करेंगे! गुफा तो देवपुरीके समान सुन्दर, सुखद है।'

'युवराज! यह दुर्विचार है कि सुग्रीव तुमसे स्नेह नहीं करते।' हनुमानजीने अंगदको हृदयसे लगाकर समझाया—'तारासे सुग्रीवकी प्रीति है। वे ताराको अप्रसन्न नहीं करना चाहेंगे और न श्रीरामको या मुझे अप्रसन्न करना चाहेंगे। श्रीरामका तुमपर बहुत स्नेह है। तुम जानते हो कि तुमपर मेरी प्रीति है।'

'पहिले तो इस मायामय गुफामें प्रवेशका अब मार्ग ही नहीं है, यदि मार्ग किसी प्रकार मिल भी जाय तो क्या समझते हो कि श्रीरामके बाणोंके लिए वह अभेद्य है?' चारों बल (बाहुवल, मनोबल, बुद्धिबल, निश्चयबल) तथा दृढ़ता, उर्जस्विता, शौर्य, कृतज्ञता, गाम्भीर्यादि चतुर्दश गुणोंसे सम्पन्न, पवनकुमार सामसे समझाकर दण्ड, भय दिखाते बोले—'श्रीरामके बाण पातालमें जानेपर भी किसीको नहीं छोड़ेंगे। अतः उन समर्थकी सेवा त्यागकर छिपे रहनेकी

बात सोचना ही अज्ञता होगी ।'

'ये वानर भले अभी कुछ कहें; किन्तु अपने पुत्र-स्त्री भवनको छोड़कर ये तुम्हारा साथ नहीं देंगे । तुम वानरोंके पालनेमें समर्थ बालिपुत्र हो; परन्तु ये बहुत शीघ्र तुम्हें छोड़कर चले जायँगे ।' हनुमानने भेद-नीति अपनायी— 'ये रीछपति जाम्बबान, नील और मैं हम तीनों श्रीरामसे पृथक नहीं रह सकते । तुम समझते हो कि हममें किसीको भी तुम लोभ देकर या भय दिखाकर श्रीरामकी सेवाके कर्तव्यसे च्युत नहीं कर सकते हो ।'

'वानर तो चपल बुद्धि है; किन्तु समझो, इन्द्र जिस भूगर्भका भेदन कर सकते थे, वह केवल तबतक सुरक्षित है, जबतक लक्ष्मण क्रोधमें आकर धनुष नहीं चढ़ा लेते ।' हनुमानने स्नेहपूर्वक कहा—'भय त्याग दो । तुम ताराके एकमात्र पुत्र हो । सुग्रीव ताराको अप्रसन्न नहीं करेंगे ।'

'हनुमानजी ! आप ठीक कहते हैं कि गुफामें जानेका मार्ग नहीं है और हो भी तो वह लक्ष्मणके बाणोंसे अभेद्य नहीं है । ये वानर भी अधिक दिनों तक मेरा साथ नहीं देंगे । मैं आपको, जाम्वबान्तजीको, नीलको या किसीको श्रीरामकी सेवासे पृथक नहीं करना चाहता ।' अंगदने लगभग रुदन-भरे कण्ठसे कहा—'लेकिन मैं सुग्रीवपर विश्वास नहीं कर सकता । उनमें चपलता है, क्रूरता है । उन्हें भागते रहना पड़ा है मेरे पिताके भयसे । मेरे पिताने उनसे अन्याय किया था । अब वे मुझसे प्रतिशोध लेनेका अवसर पा गये हैं ।'

'आप जाकर सुग्रीवसे तथा रुमासे भी मेरा प्रणाम कह देना । मेरी माता ताराको समझाना, जिससे मेरी मृत्यु सुनकर वह मर न जाय ।' अंगदने दृढ़ स्वरमें कहा—'मैं न वानरोंको साथ लेकर गुफामें बसने जाऊँगा और न किष्किन्धा लौटकर सुग्रीवके द्वारा मारे जानेका मुझमें उत्साह है । मैं यहाँ प्रायोपवेश करके प्राणत्यागका निश्चय कर चुका हूँ ।'

'हमारा सौभाग्य है कि हम परात्पर पुरुष श्रीरामकी सेवामें लगे हैं ।' हनुमानजीने समझानेका पुनः प्रयास किया ।

'वह सेवा भी हमसे कहाँ हुई ? दक्षिण समुद्रतटतक तो हमने देख लिया, सीताका पता कहाँ मिला हमें ?' अंगदने स्वयं आसपाससे कुश उखाड़े, उन्हें पूर्वाग्र बिछाकर बैठ गये—'उन समर्थ स्वामीकी सेवाके अयोग्य इस

शरीरको अंगद नहीं रखेगा । अनशन करके इसे यहीं, इसी आसनपर मैं त्याग दूँगा ।'

'हम सब यहीं अनशन करके देह त्याग करेंगे !' वानरोंने रोते-रोते कहा और सब कुश बिछाकर आचमन करके बैठ गये । अंगदके वचनोंने हनुमानके भी हृदयको स्पर्श किया था । वे भी मौन हो गये । उन्होंने भी कुश उखाड़ा, पूर्वाग्र बिछाया, आचमन किया और बैठ गये । सचमुच सीताका पता कहाँ मिला ? तब श्रीरामकी सेवामें असमर्थ शरीरको रखनेका प्रयोजन ?

'अहा ! इतने अधिक वानर हैं ।' समीपके पर्वतकी भयानक कन्दरासे एक काला, झुलसे शरीरका, देखनेमें अत्यन्त भयंकर गीध निकलकर उस गुफाके द्वारपर खड़ा होगया । वह अपना कुरूप सिर इधर-उधर घुमाकर देख रहा था । इतने अधिक वानरोंका रुदन तथा अनशन करके देह त्यागका निश्चय गुफामें-से ही सुनकर वह निकला था । कर्कश स्वरमें मानो चीखता प्रसन्नता प्रकट कर रहा था—'विश्वका विधायक भी विचित्र दयालु है । कितने दीर्घकालसे मैं क्षुधा-पीड़ित हूँ । अब इतने असंख्य वानर उसने एक साथ मेरे आहारके लिए भेज दिये । ये उपवास करके जैसे-जैसे मरते जायँगे, मैं इन्हें खाता जाऊँगा । अब थोड़े दिनों ही प्रतीक्षा करनी पड़ेगी । फिर तो बहुत दिनों तकके लिए भोजनकी व्यवस्था हो गयी ।'

'ये उपवास करके अधमरे, असमर्थ होंगे तभी मैं आहार प्रारम्भ कर सकता हूँ ।' मेघ गर्जनके समान भयानक शब्द था उसका—'हम गीध मरे और मरणासन्नमें भेद करें, ऐसी तो कोई मर्यादा मानते नहीं ।'

'हाय ! हमें गीध नोच-नोचकर खायेगा !' वानरोंमें भय, मनोवेदनाके कारण क्रन्दनध्वनि उठी—'एक गीध ही तो था जटायु, जिसने श्रीरामके लिए प्राण दे दिये । एक गीध यह है कि हम राम-कार्यमें लगे लोगोंके मरनेकी प्रतीक्षा कर रहा है ।'

'जटायु धन्य था ! उसने श्रीराम-भार्याकी रक्षाके लिए शरीर त्यागा ।' अंगद बोले—'हम भी रामके लिए ही शरीर त्यागने बैठे हैं; किन्तु जटायु-जैसा सौभाग्य हमारा कहाँ । जटायुका श्रीरामके अंकमें शरीर त्यागका अकल्पनीय अवसर मिला । रावणने जटायुको मार भले दिया; किन्तु उन

महभागको परमगति प्राप्त हुई ।'

'तुम लोग बार-बार मेरे भाई जटायुका नाम क्यों ले रहे हो ?' सम्पातीने अब वानरोंको पुकारा—'मैंने दीर्घकालके अनन्तर भाईका नाम सुना है । मेरे भाईका क्या हुआ, जाननेको बहुत उत्सुक हूँ । मुझे यहाँसे उतारलो । मैं तुम लोगोंकी कोई हानि नहीं करूँगा । स्वयं मैं इतने ऊँचेसे उतरनेमें असमर्थ हूँ ।'

'उसे वहीं रहने दो । वह उतरकर हमें जीवित ही भक्षण करना चाहता है ।' वानरोंने भयभीत होकर कहा ।

'हम तो मरने ही बैठे हैं । वह भक्षण भी करेगा तो दीर्घकालके उपवासके कष्टसे बचेंगे ही ।' अंगद उठ खड़े हुए—'वह अपनेको जटायुका भाई कहता है । उसके पंख हैं ही नहीं, जैसे जल गये हों । हमसे एक पंखहीन पक्षी सहायता चाहता है तो मरते-मरते इतना पुण्य हम क्यों परित्याग करें ।'

अंगदने जाकर सम्पातीको उठाया और नीचे ला रखा । उसने पूछा—'तुम लोग जटायुको कैसे जानते हो ? वह मेरा अनुज है । उसका क्या हुआ ?'

'आप अपने अनुजसे दूर क्यों रहे ? किसने आपके पंख जलाये ?' अंगदने जटायुका बड़ा भाई जानकर सम्मानपूर्वक सम्पातीको श्रीरामका वनवास, पञ्चवटीमें रावण द्वारा सीताहरण, जटायुका रावणको रोकना, रावणका जटायुके पंख-पद काटना तथा श्रीरामके द्वारा जटायुकी अन्त्येष्टि-कथा सुनाकर पूछा ।

'हम दोनों सगे भाई थे । बचपनमें भगवान भास्करके सारथि अरुणदेवके दर्शनके उत्साहमें ऊपर उड़े; क्योंकि अरुणजी हमारे पिता हैं ।' सम्पातीने कहा—'जटायु सूर्यका ताप सहन करनेमें असमर्थ होगया तो मैंने उसे अपनी छायामें ले लिया । वह कब नीचे लौट गया, मुझे पता नहीं लगा । मैं अपने गर्वमें ऊपर उठता गया । अन्तमें उग्रतेजा मार्तण्डकी किरणज्वालासे मेरे पंख भस्म होगये । मैं यहाँ सागर-तटपर गिरा और मूर्छित होगया । उस समय एक चन्द्रमा नामके परम दयालु तपस्वी मुनि यहाँ रहते थे । उन परमोदारने मुझ अमंगल, मरणासन्न पक्षीपर कृपाकी । जल डालकर मुझे सचेत किया । मुझे उठाकर पर्वतकी उस गुफामें रख गये । उन्होंने ही कहा था—'त्रेतामें श्रीरामके दूत आवेंगे, तब उनके स्पर्शसे तुम्हारे पंख फिर उग आवेंगे ।'

'वह काल था जब पुरन्दरने वृत्रको मारा ही था । तबसे मैं पंखहीन

उस गुफामें पड़ा था। मेरे अनुज जटायुका क्या हुआ, यह जाननेका कोई उपाय नहीं था मेरे पास।' सम्पातीने शोकपूर्ण स्वरमें कहा—'आज तुम लोगोंसे सुना, वह अनुज होकर भी पहले परमपद पा गया। अब तुम मुझे समुद्र-तटपर रख दो तो मैं भाईको जल दे लूँ। इसके अनन्तर सीताके सम्बन्धमें जो जानता हूँ, तुमको बताकर कुछ सेवा करूगा। बहुत वृद्ध हो गया हूँ, कोई पराक्रम करने योग्य नहीं रहा, अन्यथा रावणको मैं ही मार देता। अब तो वाणीसे ही सहायता कर सकता हूँ।

अंगद सम्पातीको उठाकर समुद्रतटपर ले गये। उसे करोंमें सम्हाले रहे, जिससे समुद्रकी लहरें उठाकर भूमिपर उस पंखहीनको फेंक न दें। लगभग कटिपर्यन्त जलमें अंगदने जब सम्पातीको जलके समीप किया, जटायुका नाम लेकर अपने पंखहीन डैनोंसे पक्षीने जल उछाला। भाईका तर्पण वह ऐसे ही कर सकता था। सम्पातीके कहनेपर अंगद उसे ऊपर वानरोंके समीप ले आये।

'महाकारुणिकमुनि चन्द्रमाकी वाणी सफल हुई।' सम्पाती प्रसन्न होकर बोला—'श्रीरामके दूतोंका यह स्पर्श-प्रभाव—आप सब देख ही रहे हैं कि पंख झुलसनेसे कालिमायुक्त मांसके लोथड़े जैसा दीखता मेरा शरीर अब रोमोंसे ढकने लगा है। मेरे पंख किस गतिसे उगते-बढ़ते जा रहे हैं।'

मैं पंखहीन जब इस गुफामें पड़ा था, मेरा पुत्र सुपार्श्व मुझे सदा भोजन लाकर देता था। तुम सब जानते होंगे कि गन्धर्व सदा क़ामी होते हैं, सर्प क्रोधी होते हैं, मृग भीरु होते हैं, ऐसे ही गीध सदा भूखे होते हैं। सम्पातीने अपनी कथा सुनायी—'मैं दुःखी था। एक दिन पुत्र बहुत देर-से बिना कुछ लिए आया तो मैंने उसे बहुत डाँटा। वह अपने रिक्त लौटनेका कारण बतलाकर मुझसे रूठकर चला गया। तबसे फिर मेरे पास नहीं आया। वस्तुतः मैंने ही उसे त्याग दिया उस दिन।'

मेरे पुत्र सुपार्श्वने कहा था—'दशग्रीव एक परम सुन्दरीको हरण करके लिए जा रहा था। वे क्रन्दन कर रही थी। मैं झपटा तो रावणने हाथ जोड़ लिये। हम गीध जीवित राक्षस खाते, नहीं, अतः मैंने उसे छोड़ दिया। 'राम राम' कहकर रुदन करती उस परम सुन्दरीको वह लंका ले गया। मुझे इस झमेलेमें कोई आहार नहीं मिला।'

'चला जा यहाँसे । मुझे फिर मुख मत दिखलाना ।' मैंने पुत्रको कह दिया 'एक आर्त नारीकी रक्षा समर्थ होकर भी तूने नहीं की, अतः मैं तेरा त्याग करता हूँ । तू मेरा पुत्र नहीं है ।'

'मेरे पंख आ रहे हैं । मैं उड़ने योग्य होता जा रहा हूँ । किन्तु इतना वृद्ध हो गया हूँ कि रावण तथा उसके राक्षसोंसे युद्ध करके सीताको ले आनेकी शक्ति मुझमें नहीं है । सम्पातीने बतलाया—'गीधकी दृष्टि बहुत दूरकी वस्तु देख लेनी है । सौभाग्यवश सीता यहाँसे ऐसे स्थानपर हैं कि मेरी दृष्टि-पथ में कोई पर्वत, पेड़, भवन बाधक नहीं है । मैं उनको देख रहा हूँ ।'

'आप श्रीवैदेहीको देख रहे हैं ?' उत्साहमें आकर अंगद बोले—वे कहाँ हैं ? कितनी दूर हैं ? क्या कर रही हैं ?'

'यहाँसे सौ योजन दूर समुद्रके मध्य त्रिकूट पर्वतके मध्य शिखरपर विश्रवाके पुत्र रावणकी स्वर्णपुरी लंका है । वह राक्षसोंसे भरी है । उस स्वर्णपुरीके मध्य रावणके राजभवनसे लगे उद्यानमें राक्षसियोंसे घिरी, पीतवस्त्रधारिणी सीता अधोमुखी बैठी रुदन कर रही हैं ।'

'मैं यहाँसे सीताको स्पष्ट देख रहा हूँ ।' सम्पातीने कहा—'गौरैया जैसे छोटे पक्षी भी मनुष्यसे अधिक दूरकी वस्तु देख लेते हैं । उनसे अधिक दूरदृष्टि कपोत जैसे फलभक्षी पक्षियोंकी, उनसे सतेज चील, क्रौञ्च और बाजकी और उनसे भी दूरतक देखनेकी शक्ति गीधकी दृष्टिमें है । गीधसे अधिक हंस देख सकते हैं । मैं गीध होकर भी अरुण-पुत्र हूँ । मुझसे अधिक केवल गरुड़ देख सकते हैं । मैं जानकीको समीप बैठीके समान देख रहा हूँ । उनके कपोलोंपर अखण्ड अश्रुधारा चल रही है । वे शोक-कृशा हैं । राक्षसियाँ उन्हें डरा-धमका रही हैं ।'

'मैं ही सीताको देख सकता हूँ, ऐसा नहीं है । तुममें-से कोई भी उनके दर्शन कर सकता है, जो इस सौ योजन समुद्रको कूद जा सके ।' सम्पातीने उत्साह दिलाया—'तुम अवश्य उसपार जाओ और दुष्ट दशग्रीवसे मेरे भाई जटायुका प्रतिशोध लो । तुम तो सर्वसमर्थ श्रीरामके दूत हो । तुम्हारे स्पर्शसे देखते ही हो कि मेरे जले पंख इतने ही क्षणोंमें उगकर इतने बढ़ गये कि मैं उड़ सकता हूँ ।'

'आश्चर्य है कि तुम लोग हताश होकर अनशन करने बैठे थे । यह अवसाद तुम्हारे योग्य नहीं है । तुम लोग उठो, उद्योग करो । अवश्य सफलता तुम्हें प्राप्त होगी ।' सम्पातीने अब अपने पंख फैलाकर फड़-फड़ाये—'मुझे अनुमति दो । मैं बहुत दिनोंसे भूखा हूँ । अब कहीं जाकर आहारका अन्वेषण करूँ । वैसे भी तुम सब जानते हो कि किसी उद्योगके समय गीधकी उपस्थिति और उसकी छाया अशुभ-सूचक है । अतः मुझे तुम्हारे उद्योग-प्रारम्भसे पूर्व ही दूर चले जाना चाहिये ।'

सम्पातीने पंख पूरे फैलाये, उन्हें वेगपूर्वक हिलाया और आकाशमें मण्डल बनाता ऊपर उठा । सभी वानर मुख ऊपर उठाये तबतक देखते रहे, जबतक सम्पाती उनकी दृष्टिसे ओझल नहीं हो गया ।

●●●

जाम्बवानकी प्रेरणा

अनन्त उत्ताल तरंगायित महोदधि मकर, तिमिंगलादिसे परिपूर्ण सम्मुख देखकर वानरोंका साहस समाप्त हो गया था । इस सागरके ऊपर जो सौ योजन कूद सके वह श्रीजनक-नन्दिनीके चरण-दर्शनका सौभाग्य प्राप्त करे ।

'मैं केवल दस योजन कूद सकता हूँ ।' सम्पाती जब गगनमें अदृश्य हो गया, वानर यूथपतियोंने परस्पर एक दूसरेकी ओर देखा । उनमें-से प्रमुखोंने अपनी शक्ति स्पष्ट करना प्रारम्भ किया—'मैं बीस योजन, मैं तीस, मैं चालीस, मैं पचास, मैं साठ, मैं सत्तर ।'

'मैं अस्सी योजन तक कूद सकता हूँ ।' अन्तमें ताराके पिता सुषेणने कहा ।

'जब भगवान्‌ने वामनावतार लिया था, तब मैं युवा था । बलिसे तीन पद भूमि-दान लेकर जब वे विराट बने और एक पदसे पूरी पृथ्वी तथा

दूसरेसे द्युलोक उन्होंने नाप लिया, तब मैंने उन विश्वकायकी सात प्रदक्षिणा दौड़ते हुए की थी ।' रीछराज जाम्बवन्त शिथिल स्वरमें बोले—'किन्तु अब मैं वृद्ध हो चुका हूँ । शरीरकी शक्ति प्रायः समाप्त होगयी है । इतने पर भी मैं अभी नब्बे योजनकी छलाँग लगा सकता हूँ ।'

सबके नेत्रोंमें प्रशंसाके भाव आये । सृष्टिकर्ताके मानसपुत्र रीछराज वृद्ध होनेपर भी सब यूथपतियोंसे अधिक सशक्त थे । लेकिन इससे तो इस समय सफलता सम्भव नहीं थी ।

जहाँ तक समुद्र कूद जानेका प्रश्न है, मैं सौ योजन समुद्र कूदकर लंका पहुँच सकता हूँ ।' युवराज अंगदके स्वरमें भी उत्साह नहीं था—'लेकिन केवल वहाँ पहुँचना ही नहीं है । श्रीवैदेहीको देखकर लौटना भी है । उनके समीप जानेके प्रयत्नमें रावणके अनुचरों तथा रावणसे संघर्षकी भी सम्भावना है । यह सब करके मैं सकुशल लौट सकूँगा, इतनी शक्ति मुझमें है इसमें मुझे सन्देह है ।'

'अप्रमेय पराक्रम वानरेन्द्र बालिके पुत्रकी असीम शक्तिमें हमें सन्देह नहीं है । निश्चय तुम सब कार्य करके लौटनेमें समर्थ हो !' जाम्बवानने अंगदके कन्धेपर कर रखा—'किन्तु युवराज ! तुम हम सबके अग्रणी हो । हम अपने नायकको दूत बनाकर नहीं भेज सकते ।'

'दूसरा कोई समुद्र पार जानेमें समर्थ नहीं है और मुझे आप जाने नहीं दे सकते । अंगदके स्वरमें झुँझलाहट आयी—'इसका अर्थ है कि वही आमरण अनशन ही एकमात्र मार्ग हमारे लिए शेष है । जब मृत्युका पथ ही चुनना है, आप अंगदको उद्योग-कर लेनेकी अनुमति क्यों नहीं देते !'

'वानरलोकैक महावीर, सर्वशास्त्र-विशारद ! अप्रमेय पराक्रम पवनपुत्र ! तुम क्यों चुप बैठे हो ?' जाम्बवानने अंगदकी बातका उत्तर देना अनावश्यक माना । एक ओर चुपचाप बैठे हनुमानकी ओर मुख किया उन्होंने—'उत्पन्न होते ही जो सूर्य तक छलाँग लेकर पहुँच गया, उसके लिए सौ योजन समुद्र कूद जाना कोई समस्या है ? सृष्टिमें ऐसा भी कोई कार्य है, जो तुम्हारे लिए भी अशक्य अथवा श्रमसाध्य हो ?'

'इस सागरपर गरुड़ बार-बार आते जाते हैं । तेज, बल, वेगमें तो

गरुड़ तुम्हारी समता करनेमें समर्थ नहीं हैं । तुम अपना वेग, पराक्रम विस्मृत किये बैठे हो ? 'जाम्बवन्तने हनुमानको उद्‌बोधित किया—'तुम पवनके पुत्र हो । वायुदेवने तुम्हारी माताको वरदान दिया है कि उनका पुत्र गतिमें, प्लवनमें, पराक्रममें उनके समान होगा । तुम कौन हो, यह क्यों विस्मृत हुए बैठे हो ? शम्भु-शुक्र-सम्भव शिवांशके लिए राक्षसोंसे कोई शंका सम्भव है ? तुम तो प्रकट ही हुए हो श्रीरामका कार्य करनेके लिए, अतः उठो ! अपने पराक्रमको प्रकट करो !'

ऋषियोंके द्वारा शैशवमें मिले १शापके प्रभावसे अपनी शक्तिको विस्मृत किये शान्त सिर झुकाये बैठे हनुमानको रीछराजके वचनोंने अपनी शक्तिका स्मरण दिला दिया । वे झटकेसे उठ खड़ हुए ।

'तुम्हारा प्राकट्य ही श्रीरामके कार्यके लिए हुआ है ।' यह सुनते ही उठकर खड़े होकर हनुमानने सिंह-गर्जन किया । जैसे भगवान वामन सबके देखते-देखते विराट् बन गये थे, हनुमानका शरीर बढ़ा और सुमेरुके समान विशाल होगया । वे अरुणमुख, तेजोदीप्त काञ्चनगिरिके समान प्रचण्ड हो उठे । उन्होंने लांगूल ऊपर उठाकर हिलायी तो लगा कि सूर्य-मण्डल अस्त-व्यस्त हो जायगा ।

'श्रीपवनपुत्रकी जय ! अमित-विक्रम हनुमानकी जय !' वानर प्रसन्न होकर कूदने और जयनाद करने लगे । आदि-सतयुगके महाकाय जाम्बवान भी हनुमानकी केवल कटि-पर्यन्त रह गये । दूसरे वानर तो अत्यन्त क्षुद्राकार लगने लगे ।

'मेरे पिता वायु अग्निके मित्र हैं । मैं वेगमें पिताके समान हूँ । इस सौर जगतको मैं एक छलाँगमें पार कर सकता हूँ । पूरे समुद्रको कूदकर, बिना पृथ्वीपर पद रखे पुनः लौट आ सकता हूँ । सूर्योदयसे सूर्यास्त तक गरुड़का अथवा सूर्यका पीछा कर सकता हूँ ।' हनुमानने हाथ जोड़कर जाम्बवानको प्रणाम करके नम्रतापूर्वक कहा; किन्तु उनका स्वर प्रलय मेघके समान गूँज रहा था—'रीछराज ! आप आदेश दें, मुझे करना क्या है ?'

---

१. 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' में हनुमानजीका पूरा चरित गया है । यह शाप कथा, जन्मादि वहीं देखना चाहिये ।

'आप सब लंका चलना चाहें तो मैं इस सागरको पीकर सुखा दे सकता हूँ । पर्वतोंको उखाड़कर इसे पाट दे सकता हूँ । इन्द्रका वज्र छीन ला सकता हूँ अथवा उसके बिना भी केवल घूँसेसे रावणको मार दे सकता हूँ ।' हनुमान आवेशमें आ गये—'लंकाको उखाड़कर यहाँ ले आऊँ या समुद्रमें डुबा दूँ ? रावणको गर्दन पकड़कर लाकर आपके पदोंमें पटक दूँ या श्रीरामके समीप ले चलना है ? श्रीसीताजीको उठा लाऊँ और श्रीरामके समीप पहुँचा दूँ ? आप बिना हिचके आदेश दें कि मुझे क्या करना है ?'

'अमित विक्रम आञ्जनेय ! तुम सब कुछ करनेमें समर्थ हो । भगवान प्रलयंकरके अंशके लिए असम्भव कुछ नहीं है । तुमने हम सबका शोक दूर कर दिया; किन्तु सेवककी एक सीमा होती है । हम सब श्रीरामके सेवक हैं । हम सबको साथ लेकर हमारे स्वामी आवें और लंकाको रौंदकर, दशग्रीवका दर्पदलन करके सीताको स्वयं प्राप्त करें, इसमें उनकी शोभा—उनका सुयश है ।' जाम्बवानने शान्त स्वरमें कहा—'रावणको मारने, पराजित करनेका यश हमें नहीं लेना है । स्वामीके सुयशको सीमित नहीं, उज्ज्वल करना है हमें ।'

'हम सब तुम्हारी मंगल कामना करते हैं । हम यहीं तुम्हारे लौटनेकी प्रतीक्षा करेंगे ।' जाम्बवन्तने अन्तमें कहा—'तुम केवल इतना करो कि यह सौ योजनका समुद्र कूदकर लंका चले जाओ । वहाँ सीताका दर्शन करके लौट आओ । अवश्य ही इस कार्यमें यदि कोई तुमपर आघात करता है, तुम्हें लौटनेसे रोकना चाहता है, तुमपर कोई भी संकट आता है तो उसका प्रतिकार अपनी शक्ति एवं बुद्धिके अनुसार करनेमें तुम स्वतन्त्र हो ।'

'यदि मैं यहींसे छलाँग लगाता हूँ तो पृथ्वी मेरा वेग धारण नहीं कर सकेगी ।' हनुमानके लिए एक समस्या उपस्थित हुई । कूदनेके लिए सुदृढ़ आधार-भूमि चाहिये । वे जिस शिखरपर खड़े होकर तनिक चरण दबाते थे, वही टूटने-धसकने लगता था । अन्तमें वे महेन्द्राचलके शिखरपर जाकर खड़े हुए ।

गणेश, सूर्य, इन्द्र, वायु, ब्रह्माको स्मरण करके, श्रीरामको मन-ही-मन प्रणाम करके पूर्वाभिमुख खड़े वायुनन्दन दक्षिणमुख हुए । उन्होंने घुटने सिकोड़े, गर्दन सिकोड़ी, सिर तनिक पीछे किया । दोनों हाथ आकाशकी ओर उठाये ।

कूदनेके उपक्रममें ही पर्वत धसकने-फटने लगा । शिलाएँ टूट-टूटकर

गिरने लगीं। जहाँ-तहाँसे निर्झर फूट पड़े। पर्वतके प्राणी चीत्कार करते भागने लगे। पक्षी आकाशमें उड़कर मण्डल लेने लगे।

हनुमानका रोम-रोम उत्थित था। इससे उनका शरीर बहुत मोटा-भयानक दीखता था। उनकी तेजसे प्रज्वलित पूँछ आकाशमें लहरा रही थी। उन्होंने एक बार आकाशकी ओर देखा। वानरोंसे बोले—'मैं श्रीरामके बाणके समान वेगसे समुद्र पार जाऊँगा। सीता न मिलीं तो रावणको बाँधकर ले आऊँगा। मैं सफल होकर ही लौटूँगा।'

हनुमानने कान सिकोड़े, श्वासका वेग रोका और कूदते गर्जनाकी—जय श्रीराम!'

'श्रीपवन-नन्दनकी जय!' वानरोंके साथ गगनसे देवता भी पुकार उठे। वेग के कारण वृक्ष उखड़कर साथ दूर तक उड़ते चले गये। आकाशमें मानो इन्द्र-धनुष प्रकट हुआ। समुद्रमें उत्ताल तरंग उठने लगीं। उदधिका अन्तराल मथ उठा। गगनमें मेघ उस प्रचण्ड वेगसे उत्पन्न आँधीसे उड़ गये। दूरतक समुद्र उखड़े वृक्षों, टूटी शाखाओं, पत्रो-पुष्पोंसे भर उठा।

'शुभस्ते पन्थानः सन्तु' आकाशमें दिव्य ऋषिगणोंका आशीर्वाद गूँजा। गन्धर्व हनुमानका स्तवन, गुणगान करने लगे। विशाल ज्वालमालाके समान तेजकी रेखा बनाते श्रीमारुति समुद्रके ऊपर उड़ चले।

●●●

मार्गके विघ्न

आध्यात्मिक अर्थमें भी ये साधनमार्गके विघ्न समझने ही योग्य हैं; क्योंकि—'मोह दसमौलि'—अज्ञानके दशमुखने दुस्तर भवसागरके मध्य सत्व, रज, तमगुणके सुदृढ़ त्रिकूट शिखरपर अपनी लंका बसायी है और वहाँ शान्तिरूपिणी सीताको उसने बन्दी बना रखा है। विक्षिप्त, दुःखी भटक रहा है जीवात्मा उस शान्तिके अपहृत हो जानेसे। सीताका समाचार सामान्य वानर

नहीं ला सकते । साधारण साधनोंके द्वारा भवसागर पार नहीं होता । 'प्रबल वैराग्य दारुण प्रभञ्जन-तनय' ही इसे कर सकते हैं और वे भी अपर्याप्त है, यदि राम-नामकी मुद्रिका उनके पास न हो ।

'भवसागर अति अपार' को पार करने प्रबल-वैराग्य पवनपुत्र चले तो पहिला विघ्न मैनाक—भोगोंका प्रलोभन । माया कहती है—'अब तुम्हें उपार्जनका श्रम नहीं करना । विश्राम करो, भोगो ।'

दूसरा विघ्न सुरसा—सिद्धियाँ पहिलेकी उपेक्षा कर दी जा सकती है; किन्तु सुरसा लोकमाता है । इसे मारा नहीं जा सकता और इसके पेटमें भी नहीं जाना । बुद्धिपूर्वक बचना पड़ता है इससे । बचना पड़ता है—स्वीकार किये बिना छूकर निकल जाना पड़ता है ।

तीसरा विघ्न सिंहिका— इस सागरमें— भवसागरमें ही छिपी छायाग्रहिणी राक्षसी यशेच्छा । यह लोकैषणा छाया ही पकड़ती है और खींचकर खा लेती है । जीवन ही नष्ट कर देती है । इसे मार ही देना है । इसका पूरा विनाश-परित्याग ।

अन्तिम चौथा विघ्न लंकिनी—यह भी देवता है । इसे भी मार नहीं सकते; किन्तु एक प्रहार अत्यावश्यक है इसपर । यह है देहासक्ति—'शरीर रखनेके लिए तो यह आवश्यक ही है ।' साधक इस प्रलोभनमें पड़ा और गया । शरीर रहे या जाय—एक कड़ा घूँसा और तब यह द्वार छोड़ देगी—'लंकामें तुम्हारे मनमें आवे सो करो ।'

शान्ति-सीताके दर्शनसे पूर्व वैराग्यको छिपे रहना है । साधकको अपनेको छिपाये रखना है । उन पराशक्तिके पादपद्मोंका दर्शन मिल जाय, फिर तो अशोकवनके फल खाओ और लंकामें आग लगा दो । रावणकी लंका प्रभञ्जनपुत्र फूँक ही देंगे ।

x x x x

'इक्ष्वाकुवंशीय सगरके पुत्रोंने भूमि खोदकर मेरा विस्तार किया । मेरी श्रीवृद्धिकी ।' हनुमानजीको अपने ऊपरसे जाते देख समुद्रके देवताने अपने भीतर छिपे मैनाक पर्वतसे कहा—'इक्ष्वाकुवंशके परम गौरव श्रीरामके दूत हनुमान हमारे ऊपर जा रहे हैं । इनके पिता पवनने तुम्हारी सहायता न की

होती तो शक्र तुम्हें भी दूसरे पर्वतोंके समान पक्षहीन बना देते । अतः मुझे और तुम्हें भी इन पवनपुत्रका सत्कार करना चाहिये ।'

'तुम जलसे ऊपर उठो । अपने शिखरपर मानव-रूप धारण करके पुकारो इन्हें ।' समुद्रने कहा—'यह वानर अतिथि हमारा पूज्य है । यह शिखरपर विश्राम करके आगे बढ़े ।'

तप्त जाम्बूनदके समान मैनाकका शिखर ऊपर उठने लगा । नील जलधिसे ऊपर उठते उस रत्नमण्डित स्वर्ण-शिखरको महावीर हनुमानने देखा । मनमें आया—'यह मेरा मार्ग रोकनेको सागरमें-से उठ रहा है । विघ्न है ।'

'पवनकुमार ! मैं तुम्हारा पथ-रोधक विघ्न नहीं हूँ ।' पर्वतके अधिदेवता मैनाकने देखा कि ये तो अपने वज्र-वक्षसे धक्का देकर शिखरको ध्वस्त करने जा रहे हैं, अतः मानव-रूप धारण करके अपने शिखरपर खड़े होकर पुकारा—'तुम्हारे पिताने मेरी इन्द्रके वज्रसे रक्षा की है । तुम मेरे आदरणीय अतिथि हो । मेरे शिखरपर उतरकर विश्राम कर लो । मेरा आतिथ्य ग्रहण करो । फिर आनन्दसे आगे जाना ।'

'मैं प्रसन्न हूँ तुमपर । मैंने तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार कर लिया ।' हनुमानजीने दाहिना हाथ झुकाकर पर्वत-शिखरका स्पर्श किया । उन्होंने देखा कि शिखरपर मधुर जलके स्रोत प्रकट होगये हैं । समुद्रगर्भमें होनेवाली सुन्दर लताओं तथा सुस्वादु जलीय दुर्लभ फलोंकी राशियाँ शिखरपर सजी हैं । लेकिन केवल दृष्टिपात करके हाथ उठाकर आगे बढ़ते बोले—'अपने आराध्यका कार्य पूरा किये बिना विश्राम मैं कर नहीं सकता । इस समय मैं स्वामीकी सेवा-यात्रामें हूँ । शरीरकी ओर ध्यान देनेका यह समय नहीं है । अतः मुझे क्षमा करना ।'

'मैनाक ! अब तुम्हें मेरे वज्रसे कभी भय नहीं होगा ।' हनुमानके आगे बढ़ते ही गगनमें ऐरावतपर बैठे इन्द्र प्रकट हुए—'तुमने श्रीरामके दूतके सत्कारका प्रयत्न किया है । उन अखिलेशके सेवककी सेवाका प्रयत्न भी अपने आपमें महान है । इसका पुरस्कार तो वही दे सकते हैं । मुझे तो अबसे अपना मित्र मानो । तुम श्रीरामके दासानुदास हो गये । इन्द्र अब तुम्हारा अपराध करनेका साहस नहीं कर सकता ।'

'असीम शक्ति है पवनपुत्रमें ।' मैनाकको अभय देकर इन्द्रने देवताओंसे कहा—'ये अपने वेगके भी वशमें नहीं हैं । गतिपर इस आकाशमें भी इनका नियन्त्रण है । मैनाकका स्पर्श करते समय वेग शिथिल करके धीरेसे स्पर्श किया और अब ऊपर उठ गये हैं ।'

'वेग और बल तो इनमें निःसन्देह असीम है; किन्तु'—एक देवताने शंकाकी—'ये लंका जा रहे हैं । रावण-मेघनाद आदि महामायावी हैं । वहाँ केवल बल कृतकार्य होगा ?'

'अवश्य ही परीक्षण होना चाहिये कि इनमें बुद्धि कितनी है ।' देवराजने देखा कि नागमाता प्रजापति कश्यपकी पत्नी देवी सुरसा वहीं हैं । उनसे देवेन्द्रने अनुरोध किया—'माता ! यह परीक्षण आप करो ।'

'वानर ! मेरी उपेक्षा करके जाना चाहता है ? मेरे मुखमें प्रवेश कर !' शक्रका अनुरोध स्वीकार करके सुरसा अपना अत्यन्त भयंकर राक्षसीके समान रूप प्रकट करके हनुमानजीके सामने मुख फाड़े आयी और गर्जना करते मेघके समान बोली ।

'अम्ब ! मैं अञ्जनाका पुत्र वानर हनुमान आप लोकमाताको प्रणाम करता हूँ ।' हनुमानजीने हाथ जोड़ लिया—'मैं श्रीरामकी पत्नी सीताका पता लगाने जा रहा हूँ । श्रीराम सुरोंके सहायक हैं । अतः आपका अनुग्रह मिलना चाहिए मुझ रामदूतको । यदि आप मुझे भक्षण कर लेंगी तो श्रीरामको सीताका पता कौन देगा ?'

'मैं यह सब सुनना नहीं चाहती ।' सुरसा मार्ग रोके गगनमें सामने अड़ी थी ।

'देवि ! दशग्रीवने आपकी सन्तानोंको कम नहीं सताया है । उसने नागलोकमें अनेक नागोंका वध किया । नागकन्याओंको लंकामें बन्दी बना रखा है ।' हनुमानजीने फिर प्रयत्न किया—'दशग्रीवके दलनमें श्रीराम प्रवृत्त तब होंगे, जब मैं उन्हें लौटकर सीताका समाचार दूँगा । अतः मुझपर दया करें ।'

'बातें मत बना !' सुरसाने डाँटा—'नागोंमें दया नहीं ही होती, मुझ नागमातासे दयाकी आशा मत कर । मेरे मुखमें प्रवेश कर ।'

'आप इस समय मुझे चले जाने दें !' हनुमानजीने हाथ जोड़े अनुनय

कर रहे थे—'मैं सीताको देखकर लौटकर उनका समाचार श्रीरामको दूँगा और तब अविलम्ब आकर आपके मुखमें प्रवेश करूँगा । मैं आपको सत्यकी शपथ खाकर वचन देता हूँ ।'

'बहुत सत्यवादी है ।' सुरसा अट्टहास करके हँसी—'तू सच भी बोलता हो तो भी मैं प्रतीक्षा करनेको प्रस्तुत नहीं हूँ । अब और बात नहीं, मेरे मुखमें आ !'

'जब आपको मेरी बात माननी ही नहीं है तो मुझे खा लीजिये !' हनुमानजीके स्वरमें तनिक भी भय या दैन्य नहीं आया ।

यह भी कोई बात है कि कोई स्वयं अपने भक्षकके मुखमें प्रवेश करे । जिसे भक्षण करना है, उसे भक्ष्यको मुखमें लेना चाहिये । अभी तक सुरसाने जितना मुख फैला रखा था, हनुमानका आकार उससे बड़ा था । अब सुरसाने अपना मुख एक योजनका फैलाया । अविलम्ब हनुमान दो योजन विशाल होगये । सुरसाने अपने मुखका विस्तार चार योजन किया । हनुमान आठ योजनके बन गये । सुरसाका मुख सोलह योजन फैला तो हनुमानका आकार बत्तीस योजनका बन गया । झल्लाकर सुरसाने अपने मुखका विस्तार सौ योजन किया ।

'अम्ब ! अब आप मुझे अनुमति दें । कोई सत्पुरुष अपने मुखसे गिरे उच्छिष्ट ग्रासको पुनः मुखमें नहीं डालता ।' सुरसाका मुख सौ योजन फैलते ही हनुमान फैलनेके स्थानपर छोटे हुए—अंगूठेके बराबर छोटे । सौ योजनके मुखमें अंगूठेके बराबरका आकारका क्या पता लगना था । जैसे जम्हाई लेते मनुष्यके मुखमें जाकर मच्छर बाहर निकल जाय, हनुमान सुरसाके मुखमें गये और फिर बाहर कूदकर हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर प्रार्थना की ।

'देवताओंने मुझे तुम्हारी बुद्धिकी परीक्षा करने भेजा था ।' सुरसा सौम्यरूप बनाकर सुप्रसन्न बोली—'तुम बल और बुद्धि दोनोंमें अप्रमेय हो । अवश्य तुम श्रीरामका कार्य कर सकोगे । प्रस्थान करो ! सफल होकर लौटो !'

सुरसा आशीर्वाद देकर गगनमें अदृश्य होगयी । हनुमानजीको प्रसन्नता हुई । वे सुरसाके आनेसे असमंजसमें पड़ गये थे । महर्षि कश्यपकी पत्नी, नागमाताका अपमान किया नहीं जा सकता था । प्रार्थना करनेसे वह मान

नहीं रही थी । उसके जानेसे एक बड़ी बाधा टली । अब पूरे वेगसे उड़ने लगे ।

रावणने लंकाकी सुरक्षाके अनेक उपाय कर रखे थे । लंका दूसरे सब ओरसे तो अनन्त समुद्रसे घिरी थी, केवल उत्तरकी ओर लंकासे सौ योजनपर भारत था । अतः सुरक्षाकी आवश्यकता उत्तरकी ओर ही थी । इस उत्तर समुद्रमें उसने राहुकी माता सिंहिकाको नियुक्त कर रखा था । सिंहका दैत्यकुलकी—रावणके नानाके कुलकी थी और दैत्य विप्रचित्तिकी पत्नी थी । इसमें छायाको पकड़कर प्राणीको खींच लेनेकी शक्ति थी ।

कोई प्राणी समुद्रके भीतर तैरे, पानीके ऊपर तैरे या आकाशमें उड़े, सिंहिकाको दौड़कर, झपटकर अपने आखेट तक जानेकी आवश्यकता नहीं थी । वह अपने स्थानपर ही बैठे-बैठे जलमें पड़ने वाली उस प्राणीकी छायाको पकड़कर प्राणीको अपने पास खींचकर भक्षण कर जाती थी ।

'बहुत दिनोंपर आज पेट भरेगा !' सिंहिकाने जलमें हनुमानजीके विशाल आकारकी छायाको देखा तो प्रसन्न हो गयी । रावणने राक्षसोंको जहाँ सिंहिका थी, उधर आनेसे मना कर रखा था । समुद्र-जीव और पक्षी भी इस स्थानके भयसे परिचित हो गये । उन्होंने अपना मार्ग-परिवर्तन कर लिया था । इससे बहुत घूमने-फिरनेमें असमर्था वृद्धा सिंहिकाको प्रायः भूखे रहना पड़ता था । कोई भूला-भटका पक्षी या मत्स्य ही उसे मिलता था ।

हनुमान पूरे वेगसे जा रहे थे । छाया पकड़े जानेसे उन्हें झटका लगा । जैसे रस्सीमें बँधा बछड़ा दौड़ता है तो झटका लगता है । बड़ा आश्चर्य हुआ—'मेरी गतिको रोकने वाला कौन ?'

ऊपर कोई था नहीं । दिशाओंमें भी कोई दीखा नहीं । नीचे देखनेपर समुद्रके जलमें नीचे एक कोई विशाल काला आकार दीख पड़ा । यह भी दीख गया कि उसी आकारने हाथ फैलाकर उनकी छाया पकड़ रखी है ।

'श्रीराम !' एक हुंकारकी हनुमानजीने और समुद्रके भीतर दीखते सिंहिकाके शरीरपर ही कूद पड़े । एक तो हनुमानजीका वेग, दूसरे सिंहिका भी उन्हें पूरी शक्ति लगाकर नीचे अपनी ओर ही खींच रही थी । इतने वेगसे हनुमानजीके पद उसके ऊपर पड़े कि उसकी तो पसलियाँ भी पिस गयीं ।

समुद्र उसके रक्तसे लाल होगया । दूसरे प्राणियोंको खानेवाली उस दैत्याके शरीरको समुद्री प्राणियोंने शीघ्र समाप्त कर दिया ।

देवता आकाशमें अदृश्य रहकर हनुमानपर दृष्टि रखे थे । वे आवश्यक हो तो कुछ सहायता भी करनेको उद्यत थे । सिंहिका-वधमें जो मति, दृष्टि, दाक्षिण्य, धैर्य पवन-पुत्रने प्रकट किया, उसे देखकर सुरोंको विश्वास होगया कि ये अवश्य सफल होंगे । सिंहिकासे सुर भी डरते थे । वे भी वहाँ समुद्रके ऊपर अपने विमान नहीं लाते थे । उस छाया-ग्राहिणीके मरनेसे अब भारतसे लंका तकका समुद्र निर्विघ्न होगया था ।

गगनसे हनुमानजीको सागरका दक्षिणतट—लंकाका उत्तरीतट दीख पड़ा । दृष्टि पड़ी स्वर्णपुरी लंका । हनुमानने अपना वेग शिथिल किया । आवश्यक था कि उतरनेसे पहिले उतरनेके योग्य सुरक्षित स्थान देख लिया जावे ।

'बहुत वेगसे उतरनेपर शब्द होगा । धक्केसे द्वीप हिल उठेगा । इससे राक्षस सावधान हो जायेंगे । वे दौड़ पड़ेंगे । संघर्ष पहिले ही अनिवार्य हो जायगा । आकाशमें असाधारण आकार देखकर भी वे चौंकेगे ।' श्रीहनुमान सोच रहे थे—'भगवती सीताके दर्शनसे पूर्व राक्षसोंको सचेत करना अच्छा नहीं ।'

बहुत ऊपर गगनमें अपना वेग कम कर लिया उन्होंने । अपना आकार भी एक बड़े पक्षी—चीलके बराबर बना लिया । मांसाहारी राक्षसोंकी पुरीपर चीलें मँडराती ही रहती थी । अतः अब किसीके ध्यान देनेका भय नहीं रहा ।

'त्रिकूटके तीन शिखर हैं । दक्षिणका शिखर रजतका है । सीधा ऊपर जाता है । खड़े ढालका है । उसके ऊपर रावणका अखाड़ा लगता है । वहाँ सशस्त्र प्रहरी हैं । उस शिखरपर कहीं उतरनेसे ऊपरके प्रहरी देख सकते हैं ।' हनुमानजी गगनसे मण्डल लेते एक बार पूरा द्वीप देख गये ।

मध्यका शिखर स्वर्णका था । सपाट था । उसीपर स्वर्णपुरी बसी थी । सुदृढ़ परिखासे घिरी पुरीके चारों ओर बहुत स्थान था; किन्तु वहाँ भी राक्षसोंका आवागमन बहुत अधिक था । दिनमें पुरीमें अथवा उसके बाहरके मैदानमें उतरनेपर राक्षस देख सकते थे ।

'यह शिखर इतना निर्जन क्यों है ?' हनुमानजी जिधरसे आये थे, लंकाके उत्तरका वह लौह-जैसा पाषाण-शिखर सुबेल मध्य शिखरसे कुछ ऊँचा था । सपाट था । वनसे— फलवाले वृक्षोंसे भी भरा था । उसपर सरोवर, निर्झर भी थे; किन्तु प्राणिहीन प्राय दीखता था । उसी पुष्पोंसे भरे पर्वतपर हनुमान धीरेसे उतर गये । इस यात्रासे वे तनिक भी श्रान्त नहीं हुए थे । उनके श्वासकी गति बढ़ी नहीं थी । उन्होंने भूतलपर पद रखा— 'जय श्रीराम !'

●●●

सुबेल शिखरपर

अतर्कित अनुकूलता शत्रुके स्थानपर शंकाका कारण होना ही चाहिये । सुबेल-शिखरपर पुष्पोंसे लदी लताएँ थीं, फलभारसे झुके वृक्ष थे, स्थान-स्थानपर निर्झर थे स्वच्छ जलके, विस्तृत भूमि थी, सब कुछ तो था— जैसे किसीके स्वागतकी पूरी सज्जाकी गयी हो; किन्तु राक्षस कोई नहीं था । रावणकी लंकाके इतने समीप किसी ऋषि-आश्रम जैसी शान्ति ? हनुमानजीका ध्यान शीघ्र गया कि इतने मनोरम स्थानपर कोई पक्षी या वनपशु नहीं है । यदि राक्षस उनको खा गये तो वे इस समय क्यों नहीं हैं ?

'दशग्रीव अथवा उसके सेवकोंने मुझे गगनसे उतरते देख लिया है ?' प्रश्न उठा मनमें— 'मुझे किसी प्रकार चौंकाये बिना पकड़नेका यह जाल है ?'

भगवदाश्रितको भय तो कभी कहीं हुआ नहीं करता, किन्तु जिस कामसे आये थे, उसमें विघ्न न पड़े, इसके लिए सतर्क रहना आवश्यक था । पूरे सुबेल-शिखरको देख लेनेका अवसर था । अभी पर्याप्त समय था सूर्यास्त होनेमें । लंकामें रात्रिके अन्धकारमें ही प्रवेश करना उचित था । तब तक लंकाके बहिर्भागका निरीक्षण कर लेना चाहिये । इस स्वर्णपुरीके दुर्दम अधिपतिसे युद्ध अनिवार्य लगता था । तब आराध्य आवेंगे, उनके शिविरके योग्य स्थान यह सुबेल-शिखर ही लगता है तो इसे भली प्रकार देखा जाना चाहिये । लंकाका

बहिर्भाग—भावी संग्रामकी भूमि और पुरीपर आक्रमणके उपयुक्त स्थल भी देख ही लेने उचित हैं ।

पवनपुत्र ! किसी ओरसे बहुत विनीत पुकार आयी । यद्यपि स्वर बहुत कर्कश था; किन्तु वह तो पुकारनेवालेकी विवशता थी— .आप यहाँ आगये हैं तो मुझपर कृपा नहीं करेंगे ?

कौन ? हनुमान चौंके । इधर-उधर देखने लगे । समीपकी भारी कन्दरापर दृष्टि गयी— कालदेव आप ? यहाँ इस प्रकार ?

'दुरात्मा दशग्रीवने मुझे यहाँ बन्दी बना रखा है ।' सम्पूर्ण प्राणियोंके महासंहारकके रूपकी भयानकता कल्पनासे परे है । उस कोटरस्थ आग्नेय लोचन, कुटिल दंष्ट्रा, कन्दरासे मुख वाले, घोर कृष्ण वर्ण, कंकालप्राय काय, कालके केशोंके रूपमें सर्प ही फूत्कार कर रहे थे । नृमुण्डमाली, चर्मवसन, कपाली काल इस समय अत्यन्त दयनीय हो रहा था— 'दशग्रीव तन्त्रशास्त्रका प्रकाण्ड पण्डित है । उसके द्वारा अभिमन्त्रित ये अष्टधातुकी शृंखलाएँ तोड़नेकी शक्ति मुझमें नहीं है; किन्तु आपको तो कोई मन्त्र-तन्त्र विवश नहीं करता । आप सम्पूर्ण मन्त्र-जालको छिन्न करनेमें समर्थ हैं । मैं आपकी शरण हूँ । मुझे इस बन्धनसे मुक्त कर दें ।'

'श्रीराम तथा उनके सेवककी शरण पुकारनेपर भव-बन्धन भस्म हो जाता है ।' हनुमानजीने उन शृंखलाओंको कच्चे सूतके समान तोड़ फेंका । 'आप स्वतन्त्र हैं !'

'मुझे यहाँ बन्दी बनाकर दशग्रीवने कह दिया था कि इस शिखरपर आने वाले प्राणीको दृष्टिके द्वारा आकर्षित करके मैं आहार बना लिया करूँ ।' कालने दीन स्वरमें कहा—'किन्तु उस दुरात्माने अपने राक्षसोंको सावधान कर दिया । दूसरे किसीको यहाँ आना नहीं था ।'

'अच्छा ! इसीलिए यह शिखर प्राणि-शून्य है !' हनुमानजी हँसे—'आप पधारे । दशग्रीवको पता नहीं लगेगा कि उसकी राजधानीके पार्श्वका यह शिखर अब अरक्षित होगया है । कल प्रातःके पश्चात् इसे अपनी, अपने नगरकी चिन्तासे ही अवकाश नहीं मिलना है । लेकिन श्रीरामका स्मरण करनेवाले आपसे अभय रहेंगे, यह स्मरण रखें !'

'आपका स्मरण करने वाले भी मुझसे अभय रहेंगे । प्रणाम करके, प्रदक्षिणापूर्वक विदा होनेसे पूर्व कालने वचन दिया— 'रावण, मेघनाद प्रभृति दस-पाँच ही लंकामें वर-प्राप्त हैं । उनके अतिरिक्त जिनको भी आप युद्धमें मारना चाहेंगे, मैं उनकी आयु समाप्त करनेकी सेवा अदृश्य रहकर आपके साथ रहते हुए किया करूँगा ।'

'यहाँ ऐसी भयानक गुफाएँ भी हैं ।' हनुमानजीका ध्यान गया इस ओर— उनको अवश्य देख लेना है । किसी और गुफामें भी कोई बन्दी हो सकता है । आराध्यको यहाँ शिविर बनाना है तो इस स्थानको अभीसे निरापद बना देना आवश्यक है ।

आप भगवान् भास्करके पुत्र भी यहाँ हैं ? हनुमानजीके एक दूसरी गुहामें शनैश्चर बन्दी मिले । काला वर्ण; किन्तु काल जैसा नहीं । सुदृढ़ शरीर, नील वस्त्र, आकृति बहुत भयानक नहीं, पर कठोर । विषदृष्टि शनैश्चरके दोनों पैर बँधे थे और वे गुफामें उलटे लटक रहे थे— पैर ऊपर, सिर नीचे ।

दशग्रीव जब दिग्विजय करने निकला, उस समय उसपर मेरी साढ़ेसाती दशा थी । अनेक स्थानोंपर उसे पराजित होना पड़ा । बालि और सहस्रबाहुने बन्दी बना रखा उसे । इसका कारण जानकर वह चिढ़ गया । शनैश्चरने बतलाया— उसने मुझे बन्दी बनाकर यहाँ इस प्रकार बाँध दिया । उसका कहना था— लंकामें अब किसीपर शनि-दशा नहीं आवेगी ।

आप अब अपने स्थान जानेको स्वतन्त्र हैं । हनुमानजीने शनैश्चरका पद-बन्धन तोड़कर उन्हें सीधा खड़ा कर दिया ।

अभी मैं कहीं नहीं जाऊँगा । शनैश्चर नीची दृष्टि किये बोले— जब तक तुम लंकामें हो, तभीतक यह स्वर्णपुरी है । तुम्हारे जाते ही मैं इसे देखूँगा । शनिकी विष-दृष्टि इसके स्वर्णको पाषाण बना देगी । तब मैं अपने लोक जाऊँगा । तुम जाते समय गर्जना करके मुझे सूचित करते जाना कि जा रहे हो ।

सुबेलपर और कोई बन्दी नहीं मिला । रावणको कैसे पता लगता कि वहाँ काल या शनैश्चर नहीं है । कोई राक्षस उस ओर आनेका कभी साहस ही नहीं करता था । अतः सुबेल-शिखर श्रीरामके आनेपर उनके उतरनेका सबसे

अधिक सुविधापूर्ण, सुरक्षित निरापद शिविर-स्थान सिद्ध हुआ ।

हनुमानजीने वह पूरा शिखर भली प्रकार देख लिया । आनेपर प्रभु कहाँ उतरेंगे, यह भी निश्चय कर लिया । बाहर प्रशस्त शिला, वर्षा आवे तो समीप सुविस्तृत गुफा, निर्मल जलका निर्झर, पुष्पित लताएँ, मधुर फलके वृक्ष—साथ ही वहाँसे लंकापुरीकी गतिविधिपर दृष्टि रखी जा सकती थी ।

छोटा रूप बनाकर लंकाके रजत-शिखरतक भी हो आये । राक्षस निःशंक थे । बिडाल जितना छोटा वानर कहीं दौड़कर निकल गया पुरीसे बाहर इसकी ओर कोई ध्यान देने वाला नहीं था ।

त्रिकूटके तीनों शिखर एक पंक्तिमें नहीं थे । लेकिन वे सम-त्रिबाहु त्रिभुज भी नहीं बनाते थे । मध्यका स्वर्ण-शिखर बहुत विस्तृत था । द्वीपका अधिकांश भाग उसीने ढक रखा था । उसके मध्यमें रत्नजटित परिखासे घिरी राक्षस-राजधानी थी । पुरीके बाहर चारों ओर पर्याप्त भूमि थी ।

मध्यके स्वर्ण-शिखरके एक ओर तनिक कोण बनाता सुबेल शिखर था । यह शिखर सघन वनसे परिपूर्ण था । मध्य शिखरके दूसरी ओर रजत शिखर था । यहाँ पुरीके बाहर कोई समतल भूमि नहीं थी । पुरीकी परिखासे सटा यह शिखर चारों ओरसे सीधे ऊपर उठता चला गया था । इसके पदप्रान्तमें तीन ओर उदधिकी उत्ताल तरंगें टकराती थीं । केवल एक ओर भूमि थी और वह भाग पुरीसे सटा था । यह शिखर ऐसे कोणपर था कि उसके ऊपरसे सम्पूर्ण लंकापुरी दीख सकती थी । सुबेलसे यह शिखर दीखता था ।

सीधा खड़ा पर्वत, उसपर केवल कण्टकतरु, चिकनी चमकती शिलाएँ—इस सबसे ऊँचे पर्वतके शिखरका शिरोभाग बहुत सँकरा था । उस पूरे भागको भित्तिसे घेरकर रावणने अपनी मल्लशाला बनवायी थी । वहाँतक पहुँचनेका मार्ग केवल उस छोटे द्वारसे प्रारम्भ होता था, जो पुरीसे उस पर्वततक जानेके लिए ही बना था ।

उस पर्वतपर चढ़ना अनावश्यक था । उसपर घूमना निरापद नहीं था । मल्लशालाके सशस्त्र सावधान रक्षकोंकी दृष्टि कभी भी पड़ सकती थी । मल्लशालामें रावण श्रीजानकीको रख नहीं सकता था । युद्धकी दृष्टिसे भी वह स्थान अनुपयोगी था । उसपर स्थित राक्षस चढ़नेवाले पर शिलाएँ सरलतासे

लुढ़का सकते थे । लंकापुरीके भीतरसे खुलने वाले द्वारके अतिरिक्त उसपर चढ़नेका मार्ग नहीं था । उसपर कोई बड़ा दल रखा जाय, इतना स्थान नहीं था । वहाँसे केवल निरीक्षण किया जा सकता था । लंकापर आक्रमण करनेके लिए वह स्थान उपयुक्त नहीं था । अतः हनुमानजीने उसकी उपेक्षा कर दी । उसके समीप जाकर भी उसपर चढ़े नहीं ।

लंकाके बहिर्भागकी एक परिक्रमा करके, बाहरसे पुरीको और पुरीके चारों ओरके भू-भागको, खाईको देखकर वे उत्तर द्वारपर पहुँचे ।

नगरके चारों ओर चौड़ी, गम्भीर, जलसे भरी खाई थी । उस खाईमें मकर, अष्टपद आदि भयानक जीव भरे पड़े थे । दशग्रीवने उनको आहार देकर पाला था । खाईके बाद अत्युच्च, सुदृढ़ रत्नखचित स्वर्णसे बनी परिखा थी । नगरके अत्युच्च स्वर्ण भवन और उनके रजत-शिखर बाहरसे दीख रहे थे । नगरके चारों ओर चार कैलास पर्वतके समान ऊँचे महाद्वार थे । खाई पार करनेके लिए द्वारोंके सम्मुख सेतु बने थे, जो यंत्रोंके द्वारा क्षणोंमें उठा लिये जा सकते थे ।

द्वारोंपर अनेक विशालकाय यन्त्र लगे थे । उनसे शिलाएँ तथा विस्फोटक अस्त्र-शस्त्र फेंके जा सकते थे । द्वारोंपर सशस्त्र, कवच-शिरस्त्राण पहिने महाकाय प्रहरी सावधान खड़े रहते थे । द्वारोंसे देखनेपर ही पता लग जाता था कि पुरी असंख्य बलवान राक्षसोंसे भरी है ।

इस दुर्धर्ष पुरीतक किसी प्रकार वानर पहुँच भी जायें तो वे कौन-सा पराक्रम प्रकट करेंगे ? उत्तर द्वारसे थोड़ी दूर सघन वृक्षोंके मध्य छिपे हनुमान सोचने लगे— इतने वैभव एवं शक्तिसे सम्पन्न दशग्रीवसे सन्धि सम्भव नहीं है । इस स्वर्णपुरीके स्वामीको कोई लोभ क्या देगा ? वह वेदोंका विशिष्ट विद्वान है । सामनीतिसे समझाना भी सम्भव नहीं । इन राक्षसोंमें भेद-फूट डाली नहीं जा सकती । अंगद, नील, जाम्बवान, सुग्रीव जैसे थोड़े ही वानर इस पुरीमें प्रवेश करनेमें समर्थ है ।

दिनमें तो इस नगरमें राक्षसोंकी दृष्टि बचाकर एक मच्छर भी प्रवेश नहीं कर सकता । इसमें प्रवेश तो रात्रिके अन्धकारमें ही करना पड़ेगा ।. हनुमानजी खड़े-खड़े सोच रहे थे— मैं अकेला हूँ । पूरा नगर बहुत बड़ा है ।

तनिक भी असावधानी हुई और मैं देख लिया गया तो कार्य ही नष्ट हो सकता है । मेरा समुद्र-लंघन निष्फल नहीं होना चाहिये ।.

वहाँ खड़े-खड़े ही जब अन्धकार हो गया सूर्यास्तके पश्चात् तब हनुमानजीने अपना आकार अंगुष्ठ के बराबर बना लिया और द्वारकी ओर बढ़े । द्वारमें प्रवेश करके पुरी देखकर चकित हो रहे थे, तब तक एक भयंकराकृति राक्षसी मार्ग रोककर आगे आ खड़ी हुई ।

तू अपनेको बहुत चतुर समझता है ? जानता नहीं कि इस पुरीमें चोरीसे प्रविष्ट होनेवाले ही मेरे आहार हैं । उसने डाँटा और पकड़नेको हाथ नीचे झुकाया— इस पुरीके सभी राक्षस कामरूप हैं । इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हमींको तू धोखा देने चला है ! कौन हो तुम ? क्यों आये यहाँ ? सचमुच वानर ही हो ? जीवित हो, तभी तक बतला दो । पुरीमें प्रवेश सम्भव नहीं है ।

'अच्छी उलझन—इससे लड़ने लगे तो राक्षस दौड़ पड़ेंगे । अभी अपनेको प्रकट करना नहीं है ।' हनुमानजीने उसे मार देना ही ठीक माना । पलक झपकते बड़े हुए और एक भरपूर घूँसा धर दिया । वह रक्तवमन करती भूमिपर गिरीं; किन्तु सामान्य राक्षसी तो नहीं थी कि मर जाती । हनुमान भी चकित हो गये—उनके वामकरका घूँसा सहकर भी यह जीवित है ? दूसरा घूँसा बाँधते बोले— 'तू विरूप तमोमयी कौन है ?'

'मुझपर प्रसन्न हो ! मुझे मारो मत !' वह हाथ जोड़कर गिड़गिड़ायी— 'मैं इस पुरीकी अधिदेवता लंकिनी हूँ । राक्षसपुरीकी अधिदेवता राक्षसीके रूपकी ही तो होगी । तुमने मुझे जीत लिया तो पुरीपर ही विजय प्राप्त कर ली । मेरी रक्षा करो । मैं तुम्हारे कार्यमें बाधक नहीं बनूँगी ।'

'जब शरीर बनता है, जीव आ जाता है उसमें । तुम्हें यह नही बतलाना है कि कोई नगर बसता है तो उसका अधिदेवता उसमें रहने लगता है । सृष्टिके प्रारम्भमें जब यह पुरी सृष्टिकर्त्ताने बनायी, मुझे इसका अधिदेवता बनाया ।' लंकिनीने कहा— 'बड़ा दुःख हुआ, मैं अधर्मी राक्षसोंकी पुरीकी अधिदेवता बनी ।'

'जब किसी वानरके प्रहारसे व्याकुल हो जाय, समझ लेना कि राक्षसोंका

विनाशकाल आ गया।' ब्रह्मलोकसे मुझे दुःखी जाते देख सृष्टिकर्त्ताने दया करके कहा—'उसके पश्चात् तू भगवद्‌भक्तोंकी राजधानीकी अधिदेवता हो जायेगी।'

'दुरात्मा दशग्रीवका सकुल विनाश सन्निकट है।' लंकिनी उठकर मार्गसे हटते बोली— 'तुम पुरीमें प्रवेश करो ! तुम्हारा उद्देश्य सफल हो।'

उस असुरपुरीके अधिदेवताके अदृश्य होते ही मानों रावणके मस्तक पर रखा गया हो, इस प्रकार हनुमानने पुरीमें वामपाद प्रथम रखा।

●●●

अन्वेषण

अध्ययन भी लंकामें होता था, पूजा-पाठ जप एवं यज्ञ भी। हनुमानजजीने सायंकाल अन्धकार होनेपर लंकामें प्रवेश किया था। उन्हें राक्षस जप, पाठ, पूजन, हवन, स्तुति करते बहुत मिले; किन्तु—बात किन्तु की ही है। उनमें बहुतसे तो रावणके नामका जप, रावणकी स्तुति का पाठ कर रहे थे। कुछ तामस यज्ञ करनेमें, शक्तिके उग्रतम रूपोंकी आराधनामें लगे थे। वहाँ उन्मत्त भैरव, उग्रतारा, चामुण्डा, कंकालीकी आराधना चल रही थी। कोई महिष-बलि दे रहा था तो कोई सुराकी आहुति देनेमें लगा था। नाना प्रकारके मण्डल, यन्त्र, मुद्राएँ और विचित्र-विचित्र अनुष्ठान-आराधनाएँ—गीध, काक, कृकलास तककी बलि देकर कामनापूर्ति अथवा पौरुष-वृद्धिके प्रयत्न चल रहे थे।

महावीरके प्रवेश करते ही उग्र आराधनाएँ स्वतः निष्प्रभाव हो गयीं। अग्निसे नाना प्रकारकी रंगीन लपटें उठनेके स्थानमें दुर्गन्धि उठने लगी। उन अभिचार-पटु तामस आराधनाके मर्मज्ञोंको प्रतिकूल लक्षण प्राप्त होने लगे। उनमें अधिकांशने विघ्न-निवारणके उपाय किये; किन्तु आहुतियोंकी—रक्तमांसादि आहुतियोंकी दुर्गन्धि दूर नहीं हुई, तब मान लिया कि इष्ट आज किसी कारण असन्तुष्ट अथवा उग्रतर हो गया है अथवा कोई अज्ञात विघ्न

उपस्थित हुआ है । किसी प्रकार अपने अभिचार कर्म उस दिन पूरे करके वे सब शीघ्र उठ गये ।

हनुमानजीने अंगुष्टके बराबर रूप बनाया था— छोटी चुहियासे भी छोटा रूप । विशालकाय राक्षसोंका ध्यान ही नहीं जा सकता था कि इतना क्षुद्र प्राणी वानराकार है । फिर भी जहाँ प्रकाश अधिक हो, वहाँ राक्षसोंके सम्मुख जानेसे हनुमान बचते थे । वे ऐसे स्थानोंपर-से निकलते थे तो पूरे वेगसे दौड़ जाते थे । प्रायः राक्षसोंके पीछेसे अथवा खड़े लोगोंके पैरोंके बीचसे निकलते थे ।

शीघ्र ही चन्द्रोदय हो गया । राक्षस अभिचारानुष्ठानों तथा रावणके स्तवनसे उठे तो नृत्य-गीत आदिमें लग गये । मदिरालयोंमें भीड़ बढ़ने लगी । सुरापान करके वे उन्मत्त नाचने-गाने लगे । बहुत थोड़े वृद्ध मिले जो एकत्र बैठकर कुछ गम्भीर विचार करते हों । इन विद्वान वृद्धोंके भी विचारका विषय प्रायः यही था कि दशग्रीवको कहाँ आक्रमणके लिए उत्तेजित करना चाहिये । कहाँ कौन जप, तप, वेदपाठ या सुरोंको सन्तुष्ट करनेमें लगा है और उसका उच्छेद कैसे होगा ।

हनुमानजीको राजपथ, गलियाँ, भवन, बन्दीगृह, भवनोंके गुप्त स्थान, भोजनालय, मदिरालय, नृत्यशालाएँ, मल्लशालाएँ सब देखनी थीं । कहीं श्रीजानकीकी चर्चा करते कोई स्त्री-पुरुष मिल जायँ । कहीं श्रीसीता किसी स्थानपर मिल जायँ । सम्पातीने दिनमें उन श्रीजनकनन्दिनीको राक्षसियोंसे घिरी देखा था । वे रावणके अन्तःपुरसे लगे किसी उद्यानमें उस समय थीं । अब रात्रिको पता नहीं, वे कहाँ रखी गयी होंगी ।

इस अन्वेषणमें रावणके अस्त्रागार, अश्व, गज आदिके स्थान, अन्नागार, सैनिक-शिविर तथा दूसरे भी वे आवश्यक स्थान देख लेने थे जो युद्धके समय दशग्रीवकी शक्तिके आधार थे । युद्ध होनेपर लंकाके किन स्थानोंपर प्रथम प्रहार आवश्यक है, वहाँ पहुँचनेके मार्ग क्या हैं, यह भी इसी समय देखना था ।

लंकामें वृद्ध मिले; किन्तु कोई रोगी नहीं मिला । हनुमानजी स्वयं उपदेवता थे । वे जानते थे कि राक्षस उपदेवताओंका एक वर्ग है । इनके शिशु उत्पन्न होते ही युवाके समान आकार वाले हो जाते हैं । वृद्ध भी तरुणोंके

समान सशक्त रहते हैं । रोग तथा वार्धक्यकी अशक्ति उपदेवताओंमें आती नहीं । लेकिन लंकामें कोई उदास, हताश नहीं मिला । कोई स्त्री भी रुदन करती नहीं दीखी । सब प्रसन्न, सब प्रफुल्ल, सब उत्साहमें भरे; किन्तु सब भोगोंमें लिप्त । मद्यपान, मांसाहार, उन्मत्त नृत्य, गायन मिला सब कहीं । रावणका अद्‌भुत वैभव—प्रभाव । विषयोन्मुख प्राणी अतृप्त, विषण्ण नहीं थे । वे उन्मत्त थे । उन्हें भोगोंका उन्मद आवेश विस्मृत बनाये थे ।

कुम्भकर्णकी गुफा अवश्य कोलाहल-शून्य मिली । वह महाकाय लंकाके बहिर्भागसे रजत-शिखरके नीचे तक गयी गुफामें सो रहा था । उसमें उसके खर्राटोंका घन-गर्जन गूँज रहा था और श्वासोच्छ्‌वाससे अन्धड़ चल रहा था । वहाँ उसकी वैसी ही पर्वताकार पत्नीके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं था ।

माली, सुमाली, माल्यवान, ये तीनों प्रसिद्ध दैत्य अपने पुत्र-पौत्रोंके साथ अपने दौहित्र दशग्रीवके पुरमें रहने लगे थे । सुमालीका पुत्र प्रहस्त तो रावणका प्रधानमंत्री हो गया था । इन सबके भवन हनुमानजीने देखे । मेघनाद, अतिकाय, अकम्पन, शुक-सारण प्रभृतिके भी भवन, अन्तःपुर, भवनोंके गुप्त स्थान देखें । 'पता नहीं श्रीवैदेही कहाँ हों । कहीं भी तो मदिरामत्त राक्षस उनकी चर्चा करें ।'

उद्यान, कुञ्ज, देवालय—अधिकांश उग्रतम उपासनाओंके स्थान और उनमें मध्यरात्रिमें ही भीड़ होनी थी । आपान गृहोंमें भी भीड़ बढ़ती गयी । बड़ा वीभत्स दृश्य—राक्षस पूरे भुने या तले भैंसे, गर्दभ, खच्चर खा रहे थे । कुछ कच्चा मांस खानेके अभ्यस्त थे । मदिरा ही नहीं, पशुओंका उष्ण शोणित वे पानीकी भाँति पीकर नृत्य करते थे । उन अतिभोजियोंके चबाने, निगलनेका दृश्य बहुत घृणास्पद था । उनके वस्त्र, शरीर उनके उस घिनौने आहारसे सनते जा रहे थे । इस ओर कोई ध्यान नहीं देता था । अपने शरीर या वस्त्र से ही वे मुख, हाथ पोंछ लेते थे ।

राक्षसोंके—प्रधान राक्षसोंके गृहोंमें सुन्दरी, सुकुलोद्‌भवा, सुशीला कुलवधुएँ थीं; किन्तु राक्षसोंने देवता, नाग, गन्धर्वादि असंख्य कन्याओंका अपहरण करके गणिका बना डाला था उन्हें । विवशताने उन्हें लज्जाहीना कर दिया था । वे विवस्त्रा या अत्यल्पवस्त्रा नृत्यालयोंमें उन्मद नृत्य कर रही थीं

अथवा मदिरालयोंमें, भोजनालयोंमें राक्षसोंको मद्य-मांसादि देकर स्वयं उनके साथ पीने-खाने और निर्लज्ज विनोदमें लगी थीं ।

कला—नृत्य, वाद्य, संगीतकी उत्कृष्टतम कला थी लंकामें । त्रिभुवनके प्रख्यात कलाकार, नर्तकियाँ, गायक दशग्रीव ले आया था । रात्रिमें रावणके यहाँ, मेघनादके सदनमें अथवा लंकाके सार्वजनिक समारोह सदनोंमें वह कला भी मूर्तिमान हो रही थी—मध्य रात्रिके पश्चात् राक्षसोंका महाभोज समाप्त होनेपर ही उसका प्रारम्भ होना था । लेकिन हनुमानजीको यदि राक्षसोंका जुगुप्सित आहार, सुरापान विचलित नहीं कर सका तो लंकाकी सुरदुर्लभ सौन्दर्य प्रतिमाओंका नृत्य, संगीत और वाद्य भी आकर्षित नहीं कर सका । उनके कर्ण सीताकी चर्चा सुननेको उत्कर्ण थे । उनकी दृष्टि वैदेही-दर्शनकी भूखी थी । वे एकसे दूसरे स्थानपर अपने उस क्षुद्र रूपसे दौड़ते प्रायः घूम रहे थे ।

उस पीतवर्ण क्षुद्र प्राणीसे दीखने वाले पर अनेकोंकी दृष्टि पड़ी । किसीका ध्यान नहीं गया । सर्रसे दौड़ता वह प्राणी निकल जाता था । उसके आकारका पता ही नहीं लगता था । दशग्रीवके दारुण प्रतापसे निर्भय, शंकाहीन राक्षस, राक्षसियोंको इतने छोटे प्राणीकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं थी । वे सब खाने-पीने, नृत्य-संगीतमें, विनोद-विलासमें मग्न थे ।

दशग्रीवका दारुण आतंक—सीताकी चर्चा ही वर्जित थी । मद्यपानके उन्मादमें भी वह किसीके मुखपर नहीं आती थी । लंकाके प्रायः सब गृहों, स्थानोंको देखनेके पश्चात् हनुमानने दशग्रीवके राजसदनमें रात्रिके तृतीय प्रहरके उत्तरार्धमें प्रवेश किया । सतर्क प्रहरियोंसे अत्यन्त सुरक्षित, प्रकाशसे पूर्ण राजसदनमें इससे पूर्व प्रवेश अशक्य था । जब राक्षस नृत्य-गीत-सभाओंसे उठकर अपने गृहोंमें चले गये, अपनी विलास-क्रीड़ाओंसे श्रान्त सोने लगे, तब राजसदनके प्रहरी भी उनींदे हो उठे थे । उनके तन्द्रिल क्षणोंका लाभ उठाकर हनुमान उनके समीपसे राजसदनमें प्रविष्ट हुए ।

राजसदनके भीतर भी नाना प्रकारके यान थे, पालकीसे लेकर पुष्पक विमान तक । अश्वशाला, गजशाला, आहारके लिए पालित पशु-पक्षियोंका स्थान, अन्नादिका भण्डार, शस्त्रागार, भोजनालय, आपानक-गृह, नृत्यशाला—सब देखा हनुमानने । नृत्यशालामें नग्न, अर्धनग्न सुन्दरियाँ श्रान्त होकर वाद्योंको गोदमें

लिये जहाँ-तहाँ सो गयी थीं । निद्रामें उनका अस्त-व्यस्त शृंगार, मुखसे गिरी सुरा-लार— वे घृणास्पद लगती थीं । सुरागन्धसे परिपूर्ण वह नृत्यशाला और उसकी सुन्दरियाँ— स्वर्गकी अप्सराएँ तुच्छ थीं उनके सम्मुख । दशग्रीवके सदनमें त्रिभुवनकी श्रेष्ठतम सुन्दरियाँ वह दुर्दान्त राक्षसाधिप ले आया था ।

सीता-सीता-सीता ! हनुमानकी दृष्टि एकको देखनेको आतुर थी । स्त्रियोंको विशेष रूपसे देखना था; किन्तु— 'यह वैदेही नहीं हो सकतीं ।' दृष्टि क्षणार्धमें अन्यत्र दौड़ती थी । कोई आकर्षण नहीं, कहीं पुनः लौटना नहीं दृष्टिको । जैसे नग्न, अर्धनग्न स्त्रियाँ नहीं (सुन्दर-असुन्दरका प्रश्न ही नहीं) भेड़ोंके रेवड़ कोई देखता भटक रहा हो ।

स्पष्ट था उन नारियोंके मुखसे, भंगीसे कि वे सन्तुष्ट हैं । वे दशग्रीवको पाकर परम सन्तुष्ट हैं । उनमें कोई अन्यमनोलग्ना नहीं थी । लंकामें केवल श्रीवैदेही परस्त्री थीं, असन्तुष्टा थीं, दुःखिनी थीं और वही कहीं दीख नहीं रही थीं ।

दशग्रीवका अन्तःपुरका सिंहासन— उसकी ज्योति, उसके महामणियोंकी प्रभा; किन्तु हनुमानको यह सब देखनेका अवकाश कहाँ था । दशानन दीखा अपने कक्षमें शयन करता । उनके प्रचण्ड शरीर, प्रशस्त भाल, विशाल भुजाओंको देखकर हनुमानके मनमें आया— 'त्रिभुवनविदित पराक्रमी, विख्यात वेदज्ञ विद्वान— कहीं यह धर्मात्मा होता, कहीं भगवद्भक्त होता, निश्चय त्रिभुवनका शासक होने योग्य था यह । सुरेन्द्र इसके सेवक होकर भी तब गौरवान्वित होते; किन्तु यह अधर्मी, वेद-विप्रविरोधी !'

जिसके भ्रूके कुटिल होनेसे लोकपाल काँपते थे, उसके एकान्त कक्षमें अभय, अशंक हनुमान उसके समीप खड़े दो क्षण देखते रहे । बहुत दया आयी उन्हें दशग्रीवपर ।

उसी कक्षमें पृथक शय्यापर शयन करती मन्दोदरीको देखकर हनुमान चौंके— 'यह अनिन्द्य सुन्दरी ! इतना सौन्दर्य तो लंकामें कहीं दीखा नहीं । स्वर्गमें भी सम्भव नहीं है । यही श्रीजनक-नन्दिनी हैं ?'

'यह सीता हैं, यह बात मनमें आते ही हनुमान हर्षातिरेकमें समीपके स्तम्भपर चढ़ने-उतरने लगे । उन्होंने अपनी पूँछ चूम ली । कई बार उछले-

कूदे; किन्तु यह उत्साह टिका नहीं । हृदयने कहा—'व्यर्थ प्रसन्न मत हो । यह वैदेही नहीं हैं ।'

'श्रीरामके वियोगमें सीता आभूषण धारण नहीं कर सकतीं । अंगराग, अलक्तक, ताम्बूल उन्हें किसी प्रकार स्वीकार नहीं होगा ।' स्मरण आया कि कल ही सम्पातीने उन्हें अन्यत्र देखा है । 'यह सुप्रसन्न है । इसके मुखपर बीते दुःखका भी चिह्न नहीं । इसने आभूषण, अंगरागादि धारण किये हैं । षोडश शृंगार-सज्जिता यह दशग्रीवकी पट्टमहिषी होगी ।'

बड़ी निराशा हुई । पशुशाला, पक्षीशाला तक देख चुके थे । रावणके राजसदनसे निकले तो अत्यन्त निराश, एक ओर खिन्न चल पड़े । लगता था कि समुद्र-लंघन व्यर्थ चला गया । इसी निराशामें मनमें एक शंकाने सिर उठाया—'हनुमान ! तूने नैष्ठिक ब्रह्मचर्यका व्रत लिया है । कहाँ गया तेरा व्रत ? आज राक्षसोंके भवनोंमें तू स्त्रियोंको—केवल स्त्रियोंको ही तो ध्यानसे देखता घूमा है । अर्धनग्न, सम्पूर्ण विवस्त्रा स्त्रियोंको—कितनी स्त्रियोंको देखा तूने, कुछ गणना है ? इसका प्रायश्चित्त ?'

'ठीक बात है कि मैंने प्रसुप्त नग्न स्त्रियोंको देखा है । भोगरताओंको देखा है । ध्यानसे देखा है; किन्तु मैं उनमें अम्बा वैदेहीको ढूँढ़ रहा था । प्रयोजनवश देखा मैंने । मेरे मनमें विकार तो नहीं आया ?' विशुद्ध अन्तःकरणमें प्रबुद्ध विवेकका वास होता है । प्रभञ्जन-तनयकी प्रज्ञा प्रदीप्त हो उठी । जैसे हृदयसे अन्तर्यामी हृषीकेश ही बोलते हों—'मन ही इन्द्रियोंका नियन्ता है । मन निर्मल है तो इन्द्रियोंमें विकास सम्भव कैसे है । तुम्हारे व्रतके भंग होनेका प्रश्न कहाँ उठता है । श्रीजनकनन्दिनीको ढूँढ़ना है तो स्त्रियाँ नहीं देखोगे, क्या पशु-पक्षियोंमें पाओगे उन्हें ? इन्द्रियके सामने शुभ या अशुभ कुछ आवे, मन निर्विकार है तो तुम निर्विकार हो ।'

एक बड़ी मानसिक ग्लानि मिट गयी । कठोर संयमी ही समझ सकता है कि ऐसी ग्लानि किसी दृढ़व्रतीको कितनी पीड़ा देती है ।

'सीताने देहत्याग तो नहीं कर दिया ?' दूसरी शंका उठी । राक्षसियोंके उत्पीडनसे, रावणके व्यवहारसे दुःखी, निराश होकर वे ऐसा कर लें, असम्भव तो नहीं है । 'दुष्ट रावणने या राक्षसियोंने ही उन्हें मारकर खा लिया हो ?'

बड़ी भयावह शंका। 'मैं उन्हें देखे बिना क्या मुख लेकर लौटूँगा ?' एक बार फिर नगरमें ढूँढ़ने लगे। बड़े वेगसे दौड़ने लगे। अब प्रहरी भी उनीदे, असावधान थे। राक्षस सो गये थे। मदिरालय, निकुञ्ज, विमान, रखी पालकियाँ, रथ, गुफाएँ, भूगर्भगृह, बावली, उद्यान सब घूम आये। अपनी समझसे कोई स्थान नहीं छोड़ा, जहाँ न गये हों। रावणके द्वारा अपहृता कन्याएँ देखीं; किन्तु वे सब तो अब प्रसन्न, सन्तुष्ट थीं।

'सम्पातीने कल ही कहा था कि वह श्रीसीताको रुदन करती देख रहा है।' बड़ी चिन्ता, बड़ी वेदना। रावण उन्हें आज ही कहीं अन्यत्र तो नहीं रख आया ? अब क्या करूँ ?'

'मैं रावणको मार दूँ ?' निराशाकी प्रतिक्रिया प्रचण्ड क्रोधके रूपमें प्रकट हुई—'नहीं, इसे पकड़ ले चलूँगा। इसे श्रीरामके पदोंमें पटक दूँगा और वही इससे वैदेहीका पता पूँछेंगे।'

'नमोऽस्तु रामाय स लक्ष्मणाय।'

पवनपुत्रने हृदयमें ध्यान किया आराध्यका कुछ भयानक पौरुष प्रकट करनेसे पूर्व। सहसा जैसे प्रकाश प्राप्त हुआ। चौंके—'अरे ! यह भवन तो अबतक मैंने देखा ही नहीं था। लंकामें यह भवन ? तुलसीकानन, पृथक मन्दिर चक्रमण्डित और द्वारपर राम-नाम ? कौन रहता है इसमें ?'

●●●

विभीषण-मिलन

अद्भुत भवन था वह लंकाकी दृष्टिसे । आञ्जनेय उसे देखकर विस्मयमें पड़े सोचने लगे—'सम्भव है श्रीजनक-नन्दिनी यहाँ हों । उनको प्रसन्न करनेके लिए दशग्रीवने उनके निवासकी अनुकूल व्यवस्था कर दी हो ।'

'रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥'

यह शब्द कानमें पड़े और हनुमान अधिक चौंके । इस लंकामें कोई सत्पुरुष वैष्णव ? इस ब्रह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें जब कि सब राक्षस सो रहे हैं, निद्रासे उठते ही स्वाभाविक रूपसे श्रीरामका स्मरण करनेवाला कोई सत्पुरुष ही तो होगा ।

'इनसे परिचय करना चाहिये ।' हनुमानजीने निश्चय किया—'जो प्रभातमें—जागरणके प्रथम क्षणमें श्रीरामका स्मरण कर रहे हैं—वे राम-कार्यमें सहायता न भी कर सकें तो बाधक नहीं बनेंगे । कुछ सूचना इनसे मिल सकती है ।'

'जय श्रीसीताराम' हनुमानजीने ब्रह्मचारी ब्राह्मणका वेश बनाया और द्वारके समीप जाकर स्वरमें पुकारा । उच्चध्वनि करना यहाँ असामयिक होता ।

विभीषण चौंके—'रावणकी जय-जयकार जहाँ गूँजती है, उस लंकामें श्रीसीतारामकी जय करनेवाला कौन ?' वे उठकर शीघ्रतापूर्वक द्वारपर आये । एक अपरिचित ब्रह्मचारी ब्राह्मणको देखकर समझ गये कि ये कोई असाधारण पुरुष हैं । यह वेश कृत्रिम हो सकता है । जहाँ सुर भी आनेका साहस नहीं कर सकते, समुद्रसे घिरी उस लंकामें कोई सामान्य ब्राह्मण आवे, असम्भव बात ! केवल दिव्य लोकोंके कोई तपःसिद्ध हों तो लेकिन दशग्रीवसे वे लोग भी डरते हैं ।

'दशग्रीवका कनिष्ठ अनुज विभीषण श्रीचरणोंमें प्रणाम करता है ।' विभीषणने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'विप्रवर ! आप कौन हैं ? कैसे

अनुकम्पा की आपने इस सेवकपर ? मैं कोई सेवा कर सकूँ तो अपना सौभाग्य मानूँगा । थोड़े ही समयमें यह स्थान असुरक्षित हो जायगा । आप भीतर पधारनेकी कृपा करें !'

ऐसे विकट स्थानपर आनेवाला अत्यन्त आवश्यक कार्यसे ही आया होगा । आतिथ्यमें समय नष्ट करके उसकी सुरक्षा, संदिग्ध नहीं बनानी थी । अतः विभीषणने आतिथ्य स्वीकार करनेका आग्रह अधिक नहीं किया ।

'आप जिनका स्मरण करते रहते हैं (निद्रा त्यागते ही जिनका स्मरण किया, उनका स्मरण जीवनका अभिन्न अंग न वन गया होता तो निद्रा टूटते ही स्वयं नहीं आता ।) मैं उन्हीं श्रीदशरथ-नन्दन श्रीरामका दूत, पवनपुत्र हनुमान हूँ ।' हनुमानजीने भी विप्रवेश त्यागकर अपना रूप धारण कर लिया—'आपके अग्रज श्रीजनक-नन्दिनीका अपहरण कर लाये हैं । मैं अपने स्वामीकी आज्ञासे उनका पता लगाने आया हूँ । मुझे उनके दर्शन करने हैं । वे कहाँ हैं ? कैसे उन तक पहुँचा जा सकता है ? आप कुछ सहायता कर सकते हैं ? एक बात और, इस पुरीमें आपकी यह सात्त्विकता, संयम, भगवद्भक्ति चल कैसे पाती है ?'

'आप अपने आराध्यकी अपार शक्ति, अहैतुकी कृपाका प्रभाव जानते हैं ।' विभीषणने विनयपूर्वक कहा—'राक्षसेन्द्रका मैं अनुज हूँ, अतः दूसरा कोई मुझे छेड़ने, सतानेका साहस नहीं कर सकता । आपके सर्व-उर-प्रेरक आराध्यने दुर्दान्त दशग्रीवको सुझा दिया कि उसे अपनी पुरीकी, परिवारकी व्यवस्थाके लिए भी एक शान्त, निष्पक्ष, संयमी, स्वार्थरहित व्यक्तिकी आवश्यकता है । मैं इन गुणोंसे युक्त तो नहीं हूँ; किन्तु लंकापतिको और दूसरोंको भी ऐसा लगता है । अतः वे रहन-सहनेको सह लेते हैं । मैं भी यथाशक्ति उनकी सेवा करता हूँ । मेरी स्थिति वैसी है, जैसे दाँतोंके मध्य जीभ । मुझे सावधान रहना पड़ता है और वे प्रयत्न करके मुझे सताते नहीं ।'

'हनुमानजी ! मुझ अधम असुरपर भी कभी श्रीरघुनाथ कृपा करेंगे ? यह राक्षस भी कभी उनका चरण-दर्शन पा सकेगा ?' विभीषणका कण्ठ भर आया ।

'वे अनन्त कृपापारावार हैं । कृपा करना ही उनका स्वरूप है ।

शरणागतकी उपेक्षा उनके द्वारा सम्भव नहीं ।' हनुमानजीने भी श्रद्धाशिथिल स्वरमें कहा—'वे कहाँ अपनाते समय किसीकी जाति, कुल, वर्ण, विद्या, वैभव या सद्गुण, सदाचार, जप-तपादि साधन देखते हैं। मैं ही कौन-सा कुलीन हूँ । चपल वानर, शौच-शीलहीन; किन्तु उन्होंने तो एक क्षण भी अपनानेमें नहीं लगाया ।'

'अब मुझे भरोसा हो गया; क्योंकि आप मिले मुझे ।' विभीषण बोले— 'उनकी महती कृपाके बिना उनके निजजन नहीं मिला करते । यदि मुझ राक्षसको अपनाना न होता तो वे सर्वसमर्थ आपको यहाँ क्यों भेजते !'

'मैं आया हूँ अम्बा सीताका समाचार लेने ।' हनुमानजी सावधान हुए । यहाँ सत्संग चल पड़ा तो समयका पता ही नहीं लगेगा । 'मैंने पूरी लंका देख ली; किन्तु उन श्रीमैथिलीके दर्शन नहीं कर सका ।'

'मैं भी साथ चलकर आपको वहाँ तक पहुँचानेमें असमर्थ हूँ । वहाँ कभी-कभी मेरी पत्नी जाती है ।' विभीषणने पता बतलाया— 'दशग्रीवके अन्तःपुरसे लगा अशोकोपवन है । वहाँ पहुँचनेका एक मार्ग राक्षसेन्द्रके अन्तःपुरसे है और दूसरा मार्ग राजसदनके वाह्य परकोटेके भीतरसे है । अशोकोपवन उच्च सुदृढ़ परिखासे घिरा है । सशस्त्र प्रहरी तथा राक्षसियाँ उसकी सावधानीसे रक्षा करती हैं । उसका दूसरा द्वार जो उसकी परिखामें है, प्रहरियों, सेविका राक्षसियोंके आवागमनके लिए है । लेकिन वह भी राजसदनके परकोटे भीतर है । राजसदनके मुख्य द्वारमें प्रवेश किये बिना वहाँ तक पहुँचा नहीं जा सकता । राजसदनका मुख्य द्वार बहुत अधिक सुरक्षित है ।'

'मैं उसमें प्रवेश कर चुका हूँ ।' हनुमानजीने कहा—'आप मुझे इतना बता दें कि मुख्य द्वारमें प्रवेश करके अशोकोपवनकी परिखा तक किधर जाकर पहुँचा जा सकता है । उस परिखापर मैं चढ़ जाऊँ तो किधर जानेसे श्रीजानकीके दर्शन कर सकूँगा ।'

'बहुत कठिन है, असम्भवप्राय ।' विभीषणके स्वरमें वेदना थी । 'उस स्वर्णकी सुचिक्कन परिखापर चढ़ना दुर्गम है । उसके द्वारपर आप प्रतीक्षा कर सकते हैं । भीतरसे कोई बाहर आना चाहेगा तो द्वार रात्रिमें खुलेगा, अन्यथा प्रभातसे पूर्व नहीं खुलेगा । उद्यानके मध्य सरोवर है । एक देवीका मन्दिर

है । उससे थोड़ी दूरीपर विशाल शिंशुपा-वृक्ष है । समीप कई अशोक-तरु हैं । सीता उन्हींमें-से किसी तरुके मूलमें बैठी रहती हैं । वे रात्रिमें भी शयन नहीं करतीं । यद्यपि उनके लिए वहाँ एक उत्तम पर्णकुटी दशग्रीवने बनवा दी है; किन्तु उसमें उन्होंने कभी प्रवेश नहीं किया ।'

'पत्नी कहती है कि सूर्य उनपर कभी प्रखर आतप नहीं डालता । वर्षाके मेघ उन्हें आर्द्र नहीं करते । शीतकालमें वायु उनके समीप उष्ण बना रहता है ।' विभीषणने बतलाया—'दशग्रीव इसे अपना प्रताप मानता है । सुरोंको उसने सेवक बना रखा है । लेकिन पत्नी उन देवीके तपका प्रभाव मानती है इसे ।'

'जय श्रीसीताराम !' हनुमानजीने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया । उनके लिए अब समय बहुत कम था । जब वे अंगुष्ठ बराबर बनकर दौड़ चले, विभीषण विश्वस्त हो गये—'अवश्य ये महाप्राण सफल होंगे । इनके इस आकारपर वहाँ कौन ध्यान देने चला है ।'

मन-ही-मन उन्होंने हनुमानजीकी मंगल-कामना की । लेकिन विभीषण भी अनुमान नहीं लगा सकते थे कि हनुमानजी कितनी सरलतासे सफल होनेवाले हैं ।

'तुम राक्षसेन्द्रके द्वारपर शीघ्र चले जाओ ।' विभीषणने लौटते ही अपने विश्वस्त अनुचरको आदेश किया—'वहाँ यदि कोई नवीन सन्देश आवे, कोई अपरिचित आ जाय या किसी वाह्य व्यक्तिकी कोई चर्चा हो तो मुझे तत्काल सूचना देना ।'

अपने स्नान-पूजनादि दैनिक कृत्य भी विभीषणने शीघ्र सम्पन्न किये; किन्तु राजसभामें वे शीघ्र नहीं जा सकते थे । या तो दशग्रीव बुलाये अथवा अपने नित्यके समयपर जाया जाय । शीघ्रता करनेसे उनपर सन्देह किया जा सकता था ।

अपने सदनमें पत्नी तकसे भी उन्होंने कोई चर्चा नहीं की । लेकिन हनुमानकी सुरक्षाके सम्बन्धमें उनका मन तबतक सशंक रहा, जबतक उन्होंने सुन नहीं लिया कि अशोकोपवनमें कोई कपि आया है और उत्पात मचा रहा है ।

'उत्पात मचा रहा है !' सुनकर विभीषण प्रसन्न भी हुए—सचिन्त भी हुए—'इसका अर्थ है कि हनुमानने अपना कार्य पूरा कर लिया। वे सीताजीसे मिल चुके। लेकिन अब उत्पात करके यह दशग्रीवको सतर्क करना क्यों ?'

'क्या कोई और कपि आया है उनके साथ ? सीताका समाचार उसके द्वारा श्रीरामके समीप भेजकर हनुमान उसकी ओरसे राक्षसों और रावणका ध्यान दूसरी ओर आकर्षित करनेके लिए स्वयंको विपत्तिमें डाल रहे हैं ?' विभीषण रावणकी लंकाके व्यवस्थापक, वास्तविक प्रशासक थे। उनपर व्यवस्था छोड़कर दशग्रीव, मेघनाद आदि या तो दिग्विजय करते घूमते थे या अपनी विलास-क्रीड़ाओंमें लगे रहते थे। अतः परम नीतिज्ञ विभीषण अपनी नीतिज्ञताके अनुसार अनुमान कर रहे थे—'अथवा हनुमानका बल-पराक्रम इतना अनुमानसे परे है कि अपने आराध्यको युद्ध करने ले आनेसे पूर्व वे दशग्रीव तथा उसके समस्त सहायकोंकी शक्तिका अनुमान कर लेना चाहते हैं। ऐसा हो तो भी आश्चर्य नहीं, क्योंकि दशग्रीवकी पुरीमें कोई अल्पशक्ति एकाकी आनेका साहस ही कैसे कर सकता था।'

हनुमानके बन्दी होनेका समाचार मिलते ही विभीषण अपने मंत्रियोंके साथ दशग्रीवकी सभाके लिए चल पड़े थे।

●●●

वैदेही-दर्शन

अशोकोपवनमें प्रवेश करनेके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ा हनुमानजीको। वे राजभवनके द्वारमें—से पहिलेकी ही भाँति भीतर चले गये। राक्षस प्रहरी भी उनींदे हो रहे थे। भवनके मध्यम कक्षमें गये बिना वाह्य कक्षसे अन्तःपुरकी ओर घूमे तो उद्यानकी परिखा आ गयी। उसपर कूदकर पहुँचनेमें उन्हें क्या कठिनाई थी कि द्वार खुलनेकी प्रतीक्षा करते। स्वर्ण परिखापर एक कोई अंगुष्ठ प्रमाण स्वर्णिम प्राणी भी है, इसे कोई भी लक्षित नहीं कर

सकता था ।

त्रिकूटके रजत— शिखरसे निकली एक छोटी सरिता नगरमें— से राजसदनमें आयी है, यह हनुमानजी पहिले देख चुके थे । नगरमें सरिताके दोनों तटोंपर मणि— सोपान थे । सीतान्वेषणमें लगे होनेसे यह ध्यान नहीं गया था कि वह सरिता राजसदनमें नहीं दीखी । अब पता लगा कि वह इस उद्यानमें आयी है । उसके जलको इस प्रकार पहुँचाया गया है कि उद्यानमें बहुत सुन्दर सरोवर, वापी, अनेकों फुहारे स्थान— स्थानपर बन गये हैं ।

त्रिभुवनजयी दशग्रीवका वह अत्यन्त प्रिय उद्यान था । वायुदेव उसकी स्वच्छता रखते थे । मेघोंको ठीक समयपर उसकी सिंचाई करते रहना था । उसमें स्वर्गीय उद्यानके पुष्पतरु, लताओंके कुञ्ज और स्वर्णिम पत्रोंके वृक्ष लगे थे । सुस्वादु फलोंके वृक्षोंमें सब ऋतुओंमें पक्व फल मिलते थे । उसके सरोवरमें, वापियोंमें नाना रंगोंके कमल थे और रात्रिमें अनेक रंगोंकी कुमुदनियाँ खिली थीं । जल— पक्षी सरोवरमें क्रीड़ा कर रहे थे । क्रौञ्च, चक्रवाक, चकोर, हंस सभी थे । उद्यानके वृक्षोंपर अब कोकिल कुहकने लगी थी । मयूरोंकी केकाध्वनि उठती थी । पपीहे बोल रहे थे । इन्द्रका नन्दन वन भी इतना सुन्दर नहीं था ।

दशग्रीवके अन्तःपुरकी रमणियोंका, रावणका यह क्रोडोपवन था । सशस्त्र राक्षसियाँ ही उसकी देखभाल करती थीं; किन्तु उद्यानके बाहर प्रथम परिखामें बहुतसे राक्षस उद्यान— रक्षक थे । उन्हें चाहे जब पुकारा जा सकता था द्वार खोलकर । सामान्यतः किसी पुरुषका—' रावणके पुत्रोंका भी इसमें प्रवेश वर्जित था ।

उद्यानके मध्य सरोवरके समीप विशाल मन्दिर था देवीका । उसके तोरण, स्तम्भ, भित्तियाँ— सब मणिजटित स्वर्णसे बनी थीं । सरोवरसे कुछ दूर, उद्यानके एक ओर एक सुन्दर पर्णकुटी भी दीखी और पर्याप्त विशाल शिंशुपा— वृक्ष दीख गया । उस ज्योत्स्ना— धवल रजनीमें उद्यानका सौन्दर्य देखनेका अवकाश नहीं था । शिंशुपा— मूलमें राक्षसियोंसे घिरी श्रीवैदेहीको ज्योति— रेखाके समान देखते ही हनुमान परिखापर— से उद्यानमें कूद गये ।

हनुमान एक ओरसे नन्हीं गिलहरीके समान दौड़ते गये और उस

शिंशुपा— वृक्षपर चढ़ गये । ऊपरसे ही उन्होंने श्रीजनक— नन्दिनीके पावन पदोंमें मन— ही— मन प्रणाम किया । बहुत कठिनाईसे अपने हर्षके वेगको रोक सके । फिर भी अनेक बार अपनी पूँछ चूमी उन्होंने ।

'यही श्रीसीता हैं । इन्हींके लिए श्रीराम व्याकुल रहते हैं ।' पूरा निश्चय होगया । वही फटा उत्तरीय, कृशगात्र, अविरल अश्रुधारा, नेत्रकमल अपने ही पदनखोंपर लगे और पल्लव— अधर हिलते— सम्भवतः आराध्यका नाम जपते । मनमें आया— 'धन्य हैं श्रीराम जो इनके बिना जीवित हैं ! सृष्टिमें इतना भी सौन्दर्य सम्भव है, यह कल्पनासे परेकी बात है ।'

दशग्रीवपर दया आयी । उसकी पट्टमहिषी मन्दोदरी भी इनकी सेविका होने योग्य नहीं; किन्तु वह राक्षसाधिप इन अग्नि— शिखामें पतंग होकर भस्म ही हो सकता है । हनुमानने ताराका सौन्दर्य देखा था, जिसमें गरिमा थी, जैसे वह शासनके लिए ही उत्पन्न हुई हो । रूमाका सौन्दर्य, सुकुमार वीरवधूटी जैसा और मन्दोदरीका सौन्दर्य मानों अत्यन्त मादक मदिरा हो; किन्तु ये निखिल सृष्टि— सौन्दर्यैकमूर्त्ति— इनके श्रीविग्रहकी ओर तो दृष्टि ही नहीं उठती । इन्हें देखकर मन, शान्त, निर्विकार हो जाता है । दौड़कर इनके श्रीचरणोंमें सिर रख देनेको हृदय आतुर होता है । ये तो आराध्या हैं । दशग्रीव देख कैसे पाता है इनकी ओर ? रामकी शराग्नि अवश्य लंकाके राक्षसोंकी आहुति चाहती है ।

हनुमानको अवसर अपेक्षित था । राक्षसियाँ हटें कहीं तो वे इन आराध्यको प्रणाम करें । इन्हें अपने स्वामीका सन्देश दें । राक्षसियाँ अनेकों थीं— सैकड़ों और सब भयंकरा । कोई कलंकिनी और कोई घटोदरी । भयानकमुखी, विकराल दंष्ट्रा, कोई बड़े— बड़े गोल नेत्रों वाली, कोई एक छोटे, एक बड़े नेत्रकी, कोई ऐंचातानी, सब प्राय लाल, रूक्ष नेत्रा, उन्मुक्तकेशा, नरकपाल एवं अस्थिके आभूषण पहिने ।

'तू राक्षसेश्वरको स्वीकार नहीं करती ! मैं अभी तुझे निगल लूँगी ।' कोई मुख फाड़कर जैसे निगलने ही जा रही हो । कोई तलवार नासिकापर रखने लगती थी और कोई भाला या त्रिशूल वक्षसे लगाती थी । बड़ा क्रोध आया यह देखकर हनुमानको । जी चाहता था, कूद पड़ें और एक— एकको

उठाकर समुद्रमें फेंक दें ।

'रुको सब ! एक उनमें भी सौम्याकृति थी । तीन चोटियाँ बना रखी थीं उसने । काली थी, दीर्घाकार थी, सुपुष्ट थी; किन्तु कुरूपा नहीं कही जा सकती थी । लगता था कि दूसरी राक्षसियाँ उसका तनिक सम्मान करती थीं । उसने केवल हाथका संकेत किया राक्षसेन्द्रके अन्तःपुरकी ओर । सबने उधर देखा और सहमकर दूर चली गयीं । उस त्रिजटाने भी दूर जाते—जाते झुककर श्रीवैदेहीके कानके समीप मुख ले जाकर धीरेसे कहा— 'महाराज दशग्रीव आ रहे हैं ।'

रावण आ रहा है, यह सुनते ही श्रीमैथिली अपने शरीरको सिकोड़कर बैठ गयीं— भयसे काँपने लगा उनका श्रीअंग । हनुमानने भी अन्तःपुरके द्वारकी ओर देखा । दशग्रीव निद्रासे उठकर चला आ रहा था । उसने मुकुट नहीं धारण किया था । केवल कटिमें खड्ग लगा रखा था । उसके पीछे मन्दोदरी तथा दूसरी अनेक रानियाँ चली आ रही थीं । अनेकों राक्षसियाँ हाथोंमें मशाल लिये दोनों ओर चल रही थीं ।

'दशग्रीवसे व्यर्थ डरा मत करो !' त्रिजटाने जाते—जाते फुसफुसाकर कहा था— 'वह तुम्हें कभी मार नहीं सकता । उसका हाथ तुमपर नहीं उठेगा और उस अप्सराके शापके कारण किसी नारीपर बल—प्रयोग नहीं कर सकता । उसे अपनेपर ही विश्वास नहीं है, अतः तुम्हारे समीप कभी अकेले नहीं आता । आज भी बहुत—सी रानियोंको साथ लेकर आ रहा है ।'

हनुमानने भी त्रिजटाकी फुसफुसाहट सुन ली थी । सचमुच रावण इतनी रानियोंको जगाकर साथ ला रहा था तो कोई अशिष्टता नहीं कर सकता था । अतः उससे अभी यहाँ संघर्ष नहीं होगा । हनुमान पत्तोंमें छिपकर दृढ़तापूर्वक बैठ गये थे ।

'ये लक्ष्मणकी वन्दनीया श्रीराम—भार्या भी दुःखिनी हैं तो काल ही बलवान है ।' पत्तोंमें छिपे हनुमान सोच रहे थे— 'राम—लक्ष्मणके बल—विक्रमके विश्वासपर ही इनका जीवन बचा है । इनके लिए ही रामने विराध, कबन्ध एवं बालिका वध किया । इनके लिए वे समर्थ पृथ्वी भी पलट दें तो अनुपयुक्त नहीं होगा । सीताकी ममता त्रिलोकीका समस्त सौन्दर्य एवं शील

मिलकर भी नहीं कर सकता। यहाँ ये कितनी यातना सह रही हैं। राक्षसियोंका यह अहर्निशिका उत्पीडन, ये न पुष्प देखतीं, न फल, न पक्षी— निरन्तर राम—नाम—जप और वे मिलेंगे, इस आशामें जीवित हैं।'

चन्द्रमा पश्चिम चला गया। वे राक्षसियाँ दूर चली गयी थीं, जो सीताको डरा—धमका रही थीं। उनमें एक—कर्णा, कर्णहीना, केशहीना, ठुड्ढी तक लटकते होठवाली, ललाट—नासा, वाराह—कूर्म—सिंह—भैंसे—बकरे या श्वान जैसे मुखवाली थीं। वे वहीं सुरापान करतीं तथा कच्चा मांस खाती थीं। उनके मध्य बिना किसीकी ओर देखे वैदेहीके दारुण विपत्ति भरे समयकी कल्पना भी करनी सम्भव नहीं। वे चिल्लाती रहती थीं, शूल दिखाती थीं; किन्तु सीताका तेज अधर्षित था। लेकिन इस समय उनके हट जानेपर भी वे भयभीत हो गयी थीं।

रात्रिका अन्तिम प्रहर था। लंकामें भी ब्रह्मराक्षसोंके द्वारा वेदोच्चारणकी ध्वनि उठी। यद्यपि राक्षसोंको इससे निद्रा ही आती थी, लेकिन रावण उस ध्वनिसे जाग उठा था। वह अभी उनींदा था। बीस बाहु, दस सिर रावणके अंगोंमें अंगराग लगा था। उसकी रानियोंके नूपुर, किंकिणी, कंकणकी झंकार आ रही थी। वे सब सर्वाभरणभूषिता थीं। अञ्जन, अंगराग, ताम्बूल, पुष्पमाल्यादिसे सज्जिता थीं वे।

रावण समीप आया तो सीताने उरुसे उदर और भुजाओंसे वक्ष छिपा लिया। वे सिकुड़ी, दोनों घुटनोंको भुजाओंसे घेरे, मुख नीचे किये रुदन करती हुई भयसे काँप रही थीं। वे एक वेणी, उलझे केश, ऐसी दीखती थीं जैसे वृक्षसे छिन्न शाखा सूखती जा रही हो।

'सुन्दरि ! सर्वलोकमनोहरे ! मुझे देखकर तुमने अपने अंगोंको छिपा लिया है। यहाँसे भाग जाना चाहती हो। भय मत करो !' दशग्रीव समीप आ गया। हनुमानने देखा कि उस राक्षसाधिपका साहस भी सीधे श्रीजानकीकी ओर देखनेका नहीं हो रहा है। वह भी नीचे अथवा दिशाओंकी ओर देखता ही बोल रहा है— 'राक्षस—धर्म बलात्कारको वर्जनीय नहीं मानता; किन्तु मैंने तुम्हारे साथ कोई बल—प्रयोग कभी नहीं किया। यहाँ दूसरा कोई राक्षस आ नहीं सकता। तुम्हें अपनेसे विरक्ता देखकर मैं स्पर्श नहीं करता; किन्तु

मुझमें प्रबल काम है । मैंने अपनेको संयमित करना सीखा नहीं है । दशग्रीवने जो चाहा है, उसे प्राप्त किया है । मलिन वस्त्र धारण करना, पृथ्वीपर बिना आसन बैठना—सोना, संस्कारहीन शरीर रखना तुम्हारे योग्य नहीं है । तुम स्त्री—रत्न हो । तुम्हारी युवावस्था बीती जा रही है, यह फिर नहीं लौटेगी । त्रिभुवनजयी दशग्रीव तुमसे अनुनय करता है । इसे अपनाकर लंकाके सम्पूर्ण ऐश्वर्यकी स्वामिनी बनो ।'

'तुम्हारा सौन्दर्य त्रिभुवनमें दुर्लभ है । कौन ऐसा है जो तुम्हें देखकर धैर्य रख सके । मैं तो तुम्हारे करपल्लव अथवा पादांगुलियोंको देखकर वहाँसे दृष्टि नहीं हटा पाता हूँ ।' रावणने अनुनयके साथ प्रलोभन देना प्रारम्भ किया— 'तुम कहो तो तुम्हारे पिता जनकको मैं पूरी पृथ्वीका राज्य जीतकर दे दूँ । आज तुम अनुमति दो, ये मन्दोदरी आदि मेरी रानियाँ तुम्हारी सेविका बनकर तुम्हें उबटन लगाकर स्नान करावें । सुन्दर वस्त्राभरण एवं अंगरागसे तुम्हें सज्जित करें । जो कहो— वह पदार्थ, मणि—रत्न तुम्हारे लिए प्रस्तुत कर दूँ । तुम्हारे सब भाई—बन्धु सम्पन्न होकर पृथ्वीका राज्य भोगें !'

'तुम यहाँसे छूटकर जा सकोगी, यह आशा त्याग दो ।' रावणने डराया— 'देवता भी यहाँ आनेका साहस नहीं कर सकते । रामको तुम अब कभी नहीं देख सकोगी । वे सौ योजन समुद्र पार नहीं कर सकते, यह तुम्हें समझना चाहिये । राम तपस्वी हैं । पता नहीं, जीवित भी हैं या नहीं । जीवित भी हों तो अन्तमें उन्हें निराश ही होना है । तुम अब दुःख त्यागकर लंकाकी स्वामिनी बनो ।'

'तुम और तुम्हारा सब वैभव मेरे लिए इस तृणके समान तुच्छ है ।' सीताने एक तृण उठाकर अपने और रावणके मध्यमें रख दिया । उस विपत्तिमें भी उनका स्वर सुनकर हनुमान हर्षित हुए । पतिव्रता आर्यनारीके उपयुक्त स्वर— 'राक्षस ! एक अबलाके सामने डींग मारते तुम्हें लज्जा नहीं आती ? तुमने केवल राक्षसियाँ देखी हैं— सती नहीं देखी । मेरे पिता तथा श्वसुरके सदनमें भोगोंकी कमी थी कुछ ? मुझे भोगोंका लालच देनेकी धृष्टता करते हो ? भूलते हो कि अयोध्याके वैभवको ठुकराकर सीता स्वामीके साथ स्वेच्छासे बन आयी थी ।'

'तुम त्रिभुवनजयी हो ? ऐसा ही साहस और शौर्य था तो मेरे स्वामीके सामनेसे मुझे ले आये होते। उनकी अनुपस्थितिमें मुझे उठा लाये चोरके समान और अब सर्पकी भाँति मुझे घेर रखा है; किन्तु मेरे स्वामी गरुड़के समान हैं। वे तुम्हें मारकर मुझे ले जायेंगे। तुमने उन बृहद्बाहुके धनुषकी टंकार नहीं सुनी। यह सौ योजन सागर उनकी शराग्निमें पलक मारते सूख जायगा। उन नरसिंहकी गन्ध भी मिली तो तुम जैसे श्वानोंको भागनेका भी मार्ग नहीं मिलेगा।' सीताका स्वर उत्तरोत्तर ओजस्वी होता गया— 'राक्षस! इस स्वर्णपुरी और अपने स्वजनोंका शत्रु मत बन! जबतक वे कमललोचन क्रुद्ध नहीं होते, उनकी शरण ग्रहण कर। वे धनुष चढ़ा लेंगे, तब तेरे इन सिरों और भुजाओंको शृगाल ही नोचेंगे। अभी कुछ बिगड़ा नहीं, वे शरणागतवत्सल हैं।'

'मैं जैसे—जैसे समझानेका प्रयत्न करता हूँ, तुम उतनी ही उद्धत होती जा रही हो!' रावण चिल्लाया— 'बड़ा क्रोध आता है, तुम कटुभाषिणी वधके ही योग्य हो। उस मिथ्या तापससे प्रेम करती हो और मुझे कठोर शब्द सुनाती हो! कान खोलकर सुन लो कि अब केवल दो मासका समय और मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इस अवधिमें मेरी बात नहीं मानी तो मेरे रसोइये कलेऊ बनाकर तुम्हें मेरे सम्मुख प्रातराशमें परस देंगे।'

'रावण! तेरी इतनी रानियोंमें कोई तेरी हितैषिणी नहीं है ? तू दुरात्मा मुझ श्रीराम—भार्याका दुर्वचन कहनेका साहस करता है ?' सीताका स्वर कठोर हो गया। रावणकी गर्जना सुनकर गन्धर्व, सुर, नागकन्याएँ जो रानियोंमें थीं, उनके नेत्र सजल हो गये थे। अब मन्दोदरी आदि दैत्य, दानव—कन्याएँ काँप उठीं कि सीता कहीं शाप तो नहीं देने जा रही हैं। लेकिन श्रीजनकनन्दिनी सरोष बोलती गयीं— 'अब तेरी मृत्यु निश्चित है। शशकके समान तू तबतक सिंहिनीको कटुवचन कह ले, जबतक इसके स्वामीके शर तेरे सिरोंको इन विषवर्षिणी जीभोंके साथ गिरा नहीं देते। मैं तुझे अभी भस्म कर सकती हूँ। तू भस्म कर देने योग्य है; किन्तु तू स्वामीका आखेट है। तू मेरा हरण कर सकता था ? तू तुच्छ शृगाल ? लेकिन वे समर्थ तुझे मारना चाहते हैं, अतः उन्होंने यह बहाना बनाया है।

'मैं अभी तुझे मार देता हूँ।' रावणने खड्ग खींच लिया। उस

त्रिभुवनजयीको कोई इस प्रकार दुत्कार सकता है ? उसकी रानियोंके सम्मुख उसे इतने कठोर वचन कोई कहे ?

स्वामी ! आप मेरी ओर— मेरे सिन्दूरकी ओर देखें !' मन्दोदरीने रावणके दाहिने पैरको दोनों करोंसे पकड़ लिया । मयतनयाके नेत्रोंसे अश्रुधार चल पड़ी । भयसे उसका उत्तरीय गिर पड़ा था । ऊपर मुख उठाये कातर कण्ठ बोली— 'वह अत्यन्त भयंकरी है । उसे शाप देनेके लिए जलकी भी आवश्यकता नहीं होगी !'

'अच्छा, तुम उठो !' रावणका स्वर शान्त होगया । खड्ग कोशमें रखकर पट्टमहिषीको स्नेहपूर्वक उसने उठाया । दानव विश्वकर्मा, त्रिपुर— निर्माता, मायावी मुकुटमणि मयकी दुहिताका सम्मान करता था दशग्रीव । वह मंदोदरीकी उपेक्षा नहीं कर सकता था ।

'एकाक्षी ! एककर्णा, अश्वपादा ! हस्तिपादा, अपादिका ! शूकरमुखी ! अनासिका ! व्याघ्रमुखी !' रावणने राक्षसियोंको पुकारा । समीप आयीं वे दौड़ीं तो आदेश दिया— 'ऐसा प्रयास करो कि सीता शीघ्र मेरे वशमें हो जाय । जो सफल होगी, उसे प्रचुर पारितोषिक मिलेगा ।'

'उस कृशा, विवर्णा, विमुखा सीतामें धरा क्या है ।' रानियोंमें— से प्रगल्भा धान्यमालिनीने दशग्रीवके कण्ठमें भुजाएँ डाल दीं— 'वह आपके उपयुक्त नहीं है । आप मेरे साथ विहार करें ।'

दशग्रीवको हँसी आ गयी । वह रानियोंसे घिरा लौट पड़ा । उसके पीठ फेरते ही राक्षसियोंने सीताजीको घेर लिया । हरिजटा विडालाक्षी बोली— 'सृष्टिकर्त्ताके मानस— पुत्र महर्षि पुलस्त्यके यशस्वी पौत्र रावणको तुम अस्वीकार करती हो तो मार दी जाओगी ।'

'तुम लोग ऐसी बातें क्यों करती हो । मुझे मार डालो ।' सीताने रुदन करते कहा— 'मैं मानुषी राक्षसियोंकी सपत्नी नहीं बन सकती । तुम मुझे खा लो । मेरे पति जाहे जैसे हैं, मैं उनकी ही हूँ, जैसे अनुसूया अत्रि की ।'

राक्षसियाँ— 'हम फिर राक्षसेन्द्रको बुलाती हैं ।'

हनुमान पत्तोंमें छिपे क्रोधसे दाँत पीसने लगे । सीताजी खड़ी हो गयीं ।

उन्होंने शिंशुपाकी एक शाखा पकड़ ली । चण्डोदरी, प्रधसा, अजामुखी उन्हें डाँटने तथा समझाने लगीं— 'तेरी बुद्धि मारी गयी है ? राक्षसेन्द्रके अन्तःपुरका दास्य दुर्लभ है शचीको और वे तुझे साम्राज्ञी बनानेको उद्यत हैं !'

'मेरे स्वामी ! मेरे आराध्य ! मेरे जीवनको धिक्कार है कि मैं ऐसी बातें सुनकर भी मर नहीं जाती हूँ । मुझे मृत्यु दे दो ! 'श्रीजनकनन्दिनी भूमिपर पड़कर छटपटाने लगीं— 'मुझे रावण मार देता तो उत्तम था । मेरा हृदय वज्रका बना है जो ऐसे क्लेशमें भी फट नहीं जाता ।' राक्षसियो ! मुझे काटो, मारो या खा डालो, मैं बाएँ पैरसे भी रावणका स्पर्श नहीं करूँगी । मैं उस क्रूर, निर्दयको कभी स्वीकार नहीं करूँगी । तुम मुझे अग्निमें भूनकर या कच्ची ही खा लो । मेरे सर्वस्व श्रीराम हैं । वे दयालु हैं, समर्थ हैं, यह मेरा ही कोई दोष जिससे वे मेरी रक्षा करने नहीं आते ! विराधको जिन्होंने मार दिया, वे मेरे नाथ मेरी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ? मेरे स्वामी ! आप तो वहाँसे भी बाण चढ़ाकर लंकाको ध्वस्त कर सकते हैं, इस किंकरीको क्यों भूल गये ? अवश्य उन्हें पता नहीं है । वे मेरी दुर्दशा जानते तो शान्त बैठे नहीं रह सकते थे । तात गृद्धराजने इस हतभागिनीके लिए देहत्याग दिया । कोई श्रीरामसे मेरी दशा सुनाने वाला भी नहीं है । उन्हें पता हो जाय तो समुद्र सुखाकर वे अवश्य मेरा उद्धार करेंगे ।'

'हाय ! कोई मुझे विष देनेवाला भी नहीं मिलता । मैं मरना चाहती हूँ ।' श्रीवैदेहीकी व्याकुलताकी सीमा नहीं थी— 'मेरे स्वामीको कल्पना भी नहीं होगी कि उनके वियोगमें जानकी इतने दिनों जीवित रहेगी । कहीं मेरे वियोगमें उन्होंने शरीर न छोड़ दिया हो; किन्तु वे तो सर्वज्ञ हैं, परमपुरुष हैं । उन धर्मके परमाधारने मुझमें ही कोई दोष देखा, इसलिए मेरी ओरसे उदासीन हो गये हैं । उनके बिना मेरा मरना ही श्रेष्ठ है ।'

'मेरी ओरसे उदासीन होकर उन अक्लिष्ट कर्माने सन्यास तो नहीं स्वीकार कर लिया ? दारुण दशग्रीवने उन दोनों भाइयोंका कोई अनिष्ट किया ?' नाना प्रकारकी शंकाओंसे हृदय मथित होने लगा । 'जो प्रिय—अप्रियमें सुखी—दुःखी नहीं होते, उन महापुरुषोंको मेरा नमन । अब मेरा तो मरण ही श्रेयस्कर है ।'

'यह नहीं मानेगी ! इसे मार दो !' राक्षसियाँ क्रुद्ध हो गयीं । उन्हें भय भी लगा— 'यह मर गयी तो राक्षसेन्द्र हममें एकको भी जिवित नहीं छोड़ेंगे । उन्हें शीघ्र समाचार दो ! यह मरने जा रही है ।'

'मेरी बात सुनो !' तभी भूमिमें लेटी वृद्धा त्रिजटा घबड़ाकर उठी । उसने सबको पुकारा— 'मूर्खाओ ! तुम सीताको खा नहीं सकतीं । मैंने अभी—अभी स्वप्न देखा है, उसके अनुसार राक्षसोंका विनाश निश्चित है और सीताका कल्याण आसन्न है ।'

'स्वप्न ? अभी सबेरेके समयका स्वप्न ! इस समय देखा गया स्वप्न सत्य होकर रहता है ।' राक्षसियोंने त्रिजटाको घेर लिया— 'क्या देखा है तुमने ?'

'मैंने देखा है कि गजदन्त पालकीमें सहस्र हंस जुड़े हैं । उसमें श्वेत—वस्त्र, श्वेतमाल्यधारी श्रीराम—लक्ष्मण सीताके साथ बैठे हैं । वह पालकी श्वेत पर्वतपर उतरी ।' त्रिजटाने अपना स्वप्न सुनाया— 'आकाशसे चतुर्दन्त श्वेतगज उतरा । उसपर—से उतरकर रामने जानकीको उसपर बैठा लिया । सीताने पतिकी गोदसे उठकर अपने करोंसे सूर्य और चन्द्र दोनोंका मार्जन किया । श्रीरामने हाथसे पकड़कर सूर्य—चन्द्र दोनों सीताको दे दिये । श्वेत वृषभोंके रथपर बैठकर सीता राम—लक्ष्मणके साथ पुष्पक विमान तक गयी । तीनों उसपर बैठकर उत्तर चले गये ।'

'सीताका उद्धार निश्चित है । राम इसे अवश्य ले जायेंगे ।' सब राक्षसियाँ सशंक बोलीं— 'दशग्रीव भी दीखे स्वप्नमें तुम्हें ?'

'मुझे भूमिमें तेलसे भरे गड्ढेमें स्नान करता दशग्रीव दीखा । उसने लाल वस्त्र पहिने थे । रक्त कनेरके पुष्पोंकी माला थी गलेमें । सुरापान कर रहा था । मुण्डित मस्तक था ।' त्रिजटाने सुनाया— 'उसे काले वस्त्र पहिनाकर एक भयानक काली स्त्री भूमिमें घसीटने लगी । वह कूदा तो सिरके बल गिरा ।' गर्दभोंसे जुड़े रथमें बैठकर दक्षिण भागा । रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद अपने सब पुत्र—पौत्र—स्वजनोंके साथ चिल्ला रहे थे । उन्हें मकर, वाराह निगल रहे थे ।'

'मैंने केवल विभीषणको श्वेत गजपर श्वेत छत्र लगाये देखा ।' त्रिजटा उन भयातुरा राक्षसियोंको स्वप्नका शेषांश सुना गयी— 'सब राक्षसियोंको—

रावण, मेघनादादि सबकी पत्नियोंको मैंने मुण्डित मस्तक विधवा—वेशमें देखा। अन्तमें एक सुनहला वानर आया और वह लंकामें अग्नि लगा रहा था, तभी मैं चौंककर उठ गयी।'

'ओह ! अरुणोदय हो रहा है।' त्रिजटाने आकाशकी ओर देखा— 'इसका अर्थ है कि वह स्वप्नमें देखा वानर चार दिनके भीतर आवेगा और लंका जलाकर रहेगा।' त्रिजटाने भयसे मूक बनी राक्षसियोंसे कहा— 'भूल जाओ रावणको। अपनी कुशल चाहो तो सीताको प्रणाम करके इनकी शरण लो। इनसे क्षमा माँगो। विपत्ति सिरपर समझो। ये जानकी ही प्रसन्न हों तो तुम्हें महाभयमें बचा सकती हैं। देखो ! देखो ! इन श्रीराम—भार्याकी वाम भुजा फड़क रही है।'

'त्रिजटाने मुझे देख लिया है ?' श्रीहनुमान सोचने लगे— 'अथवा यह स्वप्न सुना रही है ? मैं सचमुच इन राक्षसियोंके लगभग सिरपर ही तो हूँ।'

'देवि ! आप हमें क्षमा करना। हम तो राक्षसाधिपकी दासियाँ हैं। उनके आदेशकी वशवर्तिनी दासियाँ।' राक्षसियोंने भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया— 'अब आप तनिक विश्राम कर लें ! हम सब भी शयन करने जाती हैं।'

'त्रिजटे ! तुम मेरी धर्ममाता हो। तुमने अनेक बार मुझे आश्वासन दिया है। मुझे समय—समयपर बचाया है।' सीताने हाथ जोड़कर त्रिजटासे अत्यन्त कातर होकर प्रार्थना की— 'थोड़ी और सहायता कर दो मेरी। मैं अब जीवन—धारणमें असमर्थ हो गयी हूँ। अब सहा नहीं जाता। तनिक—सा विष अथवा अग्नि मुझे दे दो। मैं देहत्याग करूँगी।'

'राजकुमारी ! विष तो लंकामें केवल हम राक्षसोंकी वाणी और हृदयमें है।' त्रिजटाने कहा— 'तुम नहीं जानती हो कि यह सूर्योदयका समय हमारा शयनकाल है। इस समय कहीं अग्नि सुलभ नहीं। अब तुम मुझे भी विश्राम करनेकी अनुमति दो।'

जाते—जाते दूरसे त्रिजटाने घूमकर सीताकी ओर देखा तो उसे लगा कि वृक्षपर कोई छोटा सुनहला पक्षी बैठा है। वह सीताको देख—देखकर प्रसन्न

हो रहा है और उन्हें मधुर स्वरमें आश्वासन दे रहा है । त्रिजटा इनसे प्रसन्न हुई और अपने घर चली गयी ।

'यह सीताका अभाग्य कि स्वर्णमृग देखकर मैं लुब्ध हुई और आर्यपुत्रको उसके पीछे भेजा !' सीताजीने भी मधुर वचन कहते हनुमानको वृक्षपर देखकर पहिले पक्षी ही समझा— 'अब यह स्वर्णिम पक्षी छलना बनकर आया है !'

'मेरी वेणी तो पर्याप्त बड़ी है । मैं इसीको कण्ठमें लपेटकर शाखासे लटकी जाती हूँ ।' हाथमें वेणी लेकर वे भुवन—वन्दनीया उठीं शाखामें लपेटने, तभी वाम भुजा और नेत्र फड़के— 'यह अंग—स्फुरण ! यह तो शुभ—सूचक है । मुझ भाग्यहीनाका क्या शुभ होने वाला है ?'

'मैं श्रीरामका दूत बनकर आया । अम्बा जानकीका दर्शन मैंने कर लिया; किन्तु इतनेसे मेरा कर्तव्य पूरा हो गया ?' वृक्षकी शाखापर बैठे हनुमान सोच रहे थे— 'इनको आश्वासन देना चाहिये । इन्होंने देह त्याग दिया तो सब प्रयत्न ही व्यर्थ हो जायगा । इनसे बात करके ही स्वामीको सन्देश दे सकूँगा । अब ये अत्यल्प क्षण ही शेष हैं, किन्तु मैं छोटा वानर हूँ । संस्कृत बोलूँ तो ये मुझे रावण समझकर भयभीत हो जायेंगी । वानर—भाषा ये जानती नहीं । मुझे ऐसा करना है कि ये डरें नहीं । इन्हें सुख हो । इन्हें मुझपर विश्वास हो ।'

'सूर्यवंशमें अयोध्या—नरेश महाराज दशरथ अत्यन्त प्रतापी हुए । लेकिन अपनी रानी कैकेयीके कहनेसे अपने ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामको उन्होंने चौदह वर्षके लिए वनमें भेज दिया ।' हनुमान इतने नीचे उतर आये, जहाँसे धीरे बोलनेपर भी श्रीजानकी सुन सकें । मधुरवाणीमें, मानव—प्राकृत भाषामें बोलने लगे— 'उनके प्रेमवश उनके अनुज लक्ष्मण तथा भार्या सीता भी साथ वनमें आयीं । चित्रकूटमें भाई भरतके आनेपर भी धर्मज्ञ राम अयोध्या नहीं लौटे । भार्या तथा अनुजके साथ दक्षिण बढ़े तो मार्गमें दानव विराधको उन्होंने मारा । अनेक वर्षों तक दण्डकारण्यके मुनियोंके आश्रमोंमें सत्कृत होते घूमते रहे ।'

'श्रीरामने गोदावरी—तटपर पञ्चवटीमें पर्णकुटी बनायी । तब दशग्रीवकी दुरात्मा बहिन शूर्पणखां वहाँ पहुँची । उसकी दुष्टताके कारण लक्ष्मणने उसकी नाक और कान काट दिये ।' श्रीजानकीके मानो प्राण श्रवणोंमें

आ गये थे । वे निस्पन्द सुन रही थीं । 'शूर्पणखाकी सहायता करने आकर खर— दूषण— त्रिशिरा चौदह सहस्र राक्षसोंके साथ रामकी शराग्निमें स्वाहा हो गये । लेकिन शूर्पणखाके उभाड़नेपर दशग्रीव मायावी मारीचको लेकर पञ्चवटी पहुँचा । स्वर्णमृग बनकर मारीच श्रीरामको दूर ले जानेमें सफल हो गया और उसने कातर कण्ठसे लक्ष्मणको भी पुकार लिया । दोनों भाइयोंकी अनुपस्थितिमें दशग्रीवने राम—भार्याका हरण किया । गीधराज जटायु सीताकी रक्षामें रावण द्वारा मार दिये गये ।'

'मारीचको मारकर श्रीराम लौटे । मार्गमें ही लक्ष्मण मिल गये । भार्या—रहित पर्णकुटी देखकर वियोग—व्याकुल राम भाईके साथ वनमें भटकने लगे ।' हनुमानजी मधुर स्वरमें संक्षिप्त कथा सुना रहे थे । इतनी कथा सीताजी भी जानती थी अथवा अनुमानमें आ सकती थी । वे अत्यन्त उत्सुक हो उठीं और बोल पड़ी— 'मेरे कर्णोंमें अमृत उँडेलनेवाले मेरे अदृश्य हितैषी ! आप कौन हैं जो इस भाग्यहीना विवशापर कृपा करने पधारे हैं ? सम्मुख क्यों नहीं आते ? मैं आपको देखने और आगेका वृत्त जाननेको उत्सुक हूँ ।'

सीता इधर—उधर देख रही थीं । वृक्षकी ओर ऊपर देखा तो हनुमान दीख गये । व्याकुल हो गयीं— 'हाय ! हाय ! मैं स्वप्नमें वानर देख रही हूँ ? स्वप्नमें वानर—दर्शन तो बड़ा अशुभ है । अनुजके सहित स्वामीका मंगल हो ! यदि मैं सत्य देख रही हूँ, सचमुच कोई वानर वृक्षपर है तो वह सामने आ जाय !'

मूँगेके समान लालमुख, स्वर्ण वर्ण, वद्ध—कच्छ हनुमान वृक्षसे उतरे । हाथ जोड़कर भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया— 'अम्ब ! मैं श्रीरामदूत, पवनपुत्र हनुमान आपके पादपद्मोंमें प्रणाम करता हूँ । आप तेजोमयी अपनी तपस्या, रुदनसे श्रीराम—भार्या ही लगती हैं ।'

'सचमुच यह भाग्यहीना महाराज दशरथकी पुत्रवधू, जनकपुत्री, राम भार्या सीता है ।' सशंक सीताने मुख दूसरी ओर करके कहा— 'लेकिन तुम सत्य कहो, कौन हो ? मुझ दुःखियाको माया करके ठगनेकी अपेक्षा अच्छा है कि मार ही डालो ।'

'मैं सत्यकी शपथ करके कहता हूँ कि मैं करुणा—निधान श्रीरामका

दूत हूँ ।' हनुमानने हाथ जोड़कर कहा— 'वानरेन्द्र सुग्रीवने आपका पता लगाने लक्ष—लक्ष वानर दिशाओंमें भेजे हैं । उनमें—से मैं हनुमान समुद्र पार कर यहाँ आया और आपके श्रीचरणोंके दर्शन करके आज मेरा जन्म सफल हो गया ।'

'वानरेन्द्र सुग्रीव— उन्होंने इतना कष्ट क्यों किया ?' सीताजीका सन्देह दूर नहीं हुआ— 'श्रीराम मानवोत्तम हैं । वानरेन्द्रसे उनका परिचय कैसे हुआ ?'

'आपका अन्वेषण करते वनमें भाईके साथ भटकते श्रीरामको आहत पक्षिराज जटायु मिले । उन्होंने श्रीरामके अंकमें ही शरीर छोड़ा । उनकी अन्त्येष्टि अपने हाथोंमें सम्पन्न करके कमल—लोचन श्रीराम आगे बढ़े ।' हनुमानने अधूरी छोड़ी कथा पूरी की— 'मार्गमें दानव कबन्ध मिला । उसे मारकर श्रीरामने शाप—मुक्त किया तो उसने उन्हें तपस्विनी शबरीके समीप भेजा । शबरीसे समाचार पाकर दोनों भाई पम्पासरोवर पहुँचे ।'

आपको स्मरण होगा कि आपने अपना यह उत्तरीय फाड़कर उसमें आभूषण बाँधकर ऋष्यमूक शिखरपर बैठे पाँच वानरोंको देखकर फेंका था ।' हनुमानने बतलाया— 'अपने अग्रज बालि द्वारा निर्वासित सुग्रीव वहाँ ऋष्यमूकपर उन दिनों रहते थे । मैं और अन्य तीन मंत्री उनके साथ वहाँ थे । श्रीराम—लक्ष्मणको देखकर पहिले सुग्रीव डरे । मैं दोनों भाइयोंका परिचय लेने गया । परिचय पाकर उन्हें शिखर पर ले आया । श्रीरामने अग्निकी साक्षीमें सुग्रीवको मित्र बनाया । इस मैत्रीके पुरस्कारमें बालिको मारकर उन्हें किष्किन्धाका राज्य दिया । सुग्रीव श्रीरामके बनानेसे वानरेन्द्र हुए । अब उन्होंने प्रत्युपकारमें आपका पता लगाने वानर भेजे हैं । जटायुके बड़े भाई सम्पातीने समुद्र—तटपर आपका पता दिया, इससे मैं यहाँ आ सका ।'

'ओह, सत्य है कि मनुष्य जीवित रहे तो सौ वर्ष पर भी उसे अभीष्ट मिलता है ।' सुप्रसन्ना जानकी तनिक आश्वस्त हुई । हनुमान चरण—स्पर्श करने बढ़े तो डरकर सशंक हो गयीं— 'तुम कहीं मायावी रावण तो नहीं हो ? लेकिन तुम्हें देखकर मेरा चित्त प्रसन्न होता है । तुमने श्रीरामको देखा है ? वे कैसे हैं ? कैसे रहते हैं ? उनके शरीर—चिह्न क्या हैं ?'

'अम्ब ! वे कमल—लोचन, विशाल—स्कन्ध, बृहद्—वक्ष, प्रलम्बबाहु,

क्षीण—कटि, कम्बु—कण्ठ, पद्म—पाद, अरुण—कर—नेत्र—अधर श्रीरामकी कुशल यह आपके श्रीचरणोंका सेवक क्या कहे ?' हनुमानने हाथ जोड़कर कहा— 'वे मत्त—गयन्द—गति, मेघ—गम्भीर—स्वर, परम—कृपालु, अमित—पराक्रम, परमोदार आपके वियोगमें व्याकुल अपने श्रीअंगपर बैठे दंश—मशक भी नहीं उड़ाते। उनको आपकी स्मृति निरन्तर व्याकुल रखती है। उन्होंने अपनी यह मुद्रिका आपको पहिचानके लिए प्रदान की है।'

हनुमानने मस्तकके केशोंमें—से निकालकर वह ज्योतिर्मयी मुद्रिका दोनों हाथोंमें लेकर आगे बढ़ा दी। श्रीजानकीने एक बार आश्चर्यसे मुद्रिकाकी ओर देखा और आतुरतापूर्वक उठा लिया। उस राम—नामांकित मुद्रिकाको उन्होंने नेत्रोंसे, मस्तकसे लगाकर वक्षपर दोनों करोंसे दबा लिया। उनका रोम—रोम पुलकित हो उठा। शरीरसे स्वेद—धारा और नेत्रोंसे अश्रुप्रवाह चलने लगा। उनका श्रीअंग काँपने लगा। अनेक क्षणों तक वे नेत्र बन्द किये निस्पन्द बनी रहीं।

'वत्स हनुमान ! तुम सचमुच मेरे स्वामीके दूत हो।' आर्द्रकण्ठ कुछ देरपर बोली— 'मैं क्या दूँ तुम्हें ? इस उपहार एवं सन्देशकी समता तो त्रिभुवनमें है नहीं। सीता सदा तुम्हारी ऋणी रहेगी। तुम अजर, अमर, समस्त सद्गुणोंके धाम हो जाओ !' वे आद्या महाशक्ति आशीर्वाद दिये चली जा रही थीं— 'समस्त सिद्धियाँ तुम्हारी सेवा करें। तुम जहाँ भी निवास करो, सदा—सर्वत्र सब भोग तुम्हारे समीप उपस्थित रहें। तुम्हारे स्मरणसे लोगोंके संकट—अरिष्ट शमित हों। श्रीराघवेन्द्र तुमपर सदा सानुकूल रहें। तुम दूसरोंको राम भक्ति सुलभ करनेमें समर्थ रहो।'

'अम्ब ! आज मेरा जीवन धन्य होगया।' हनुमान गद्गद साष्टांग पड़ गये उनके पादपद्मोंमें— 'आपके श्रीचरणोंके दर्शनसे आज मैं कृतकृत्य हो गया। अब आप अपनेको आश्वस्त करें।'

'वत्स ! दुष्ट दशग्रीवने केवल दो मास मेरी जीवनावधि निश्चित की है।' फिर व्याकुल हो गयीं वैदेही— 'मैं अपने आराध्यके श्रीचरण देख सकूँगी ? वे सकुशल भी हैं ? और उनके अनुजने मुझे अपराधिनीको क्षमा कर दिया है ?'

'मेरे अनन्त दयार्णव स्वामी श्रीराम सकुशल हैं । वे केवल आपके वियोगसे व्याकुल हैं । उनके अनुज लक्ष्मण सदा श्रद्धा—सहित आपका स्मरण करते हैं ।' हनुमान हाथ जोड़े कह रहे थे— 'अम्ब ! यदि आपका पता श्रीरामने पाया होता तो वे क्या विलम्ब करते ? अब वे वानरोंकी विपुल वाहिनी लेकर शीघ्र आवेंगे । दुष्ट दशग्रीवकी बात मैंने सुन ली है; किन्तु स्वयं उसका जीवनकाल अब दो मास नहीं रहा है ।'

'वत्स ! तुमने महाकाय राक्षसोंको देखा नहीं है ।' श्रीमिथिलाके मुखपर उस विपत्तिमें भी हनुमानके आकारको देखकर मन्दस्मित आया— 'तुम्हारा उत्साह प्रशंसनीय है; किन्तु सब वानर तो तुम्हारे समान ही आकारवाले होंगे ? वे यहाँ आकर राक्षसोंका क्या कर लेंगे ?'

'इन्हें आश्वस्त करके ही जाना उत्तम है ।' हनुमानने मनमें कहा और बोले— 'अम्ब ! यह मेरा वास्तविक आकार नहीं है । यह आकार तो मैंने आपका अन्वेषण करनेके लिए धारण किया है । आप मेरा वास्तविक आकार देख लें ।'

जैसे स्वयं सुमेरु उतर आया हो— प्रचण्ड गगनव्यापी आकार । भयंकर मुख, सूर्यमण्डलतक उठी लगती लांगूल, मानो समस्त लंका मुखमें डाल लेनेको उद्यत प्रलंयकर प्रकट हो गये हों । लंकामें कठिनाईसे कुम्भकर्ण उनके कन्धे तक आ सके इतने विशाल और उग्रतेजा पौरुषकी प्रत्यक्ष मूर्ति पवनात्मज दूसरे ही क्षण पुनः लघुकाय वानर बने हाथ जोड़े विनम्र खड़े बोले— 'सुग्रीवके सेवकोंमें यह क्षुद्र दूत आपके श्रीचरणोंमें पहुँचनेसे पूर्व प्रायः पूरी लंका देख चुका है । मैंने सभी प्रधान राक्षसोंको देखा है ।'

'पुत्र ! तुम समर्थ हो, बुद्धिमान हो; किन्तु श्रीजानकीके अश्रु बार—बार लौटते थे— 'तुमने मेरी दारुण दशा देखी है । मेरे लिए क्षण—क्षण मृत्यु तुल्य कष्ट देनेवाला है । तुम प्रभुसे प्रार्थना करना कि वे इस किंकरी पर कृपा करके शीघ्र पधारें ।'

'आप मेरे कन्धे पर बैठ जायँ ! मैं अभी आपको श्रीरामके समीप ले चलता हूँ ।' हनुमान कुछ बड़ा आकार बनाकर हाथ जोड़कर सम्मुख बैठ गये ।

'तुम बलवान हो, बुद्धिमान हों; किन्तु वानरबुद्धि हो । तुम मुझे लेकर चलोगे तो रावण तुम्हें ऐसे ही जाने देगा ! राक्षसोंसे— इन्द्रजित और दशाननसे युद्ध नहीं करना पड़ेगा तुम्हें ? युद्धके समय तुम संग्राम करोगे या मुझे सम्हालोगे ?' सीताजीने स्नेहपूर्वक कहा— 'तुम मेघनादके दिव्यास्त्रोंसे आधे क्षणको भी मूर्छित होगये या युद्धमें लगनेसे मेरी ओरसे ध्यान हटा तो मैं तो समुद्रमें डूब ही जाऊँगी ।'

'वत्स ! मान लो यह कुछ भी न हो, फिर भी मैं स्वेच्छासे तो परपुरुषका स्पर्श नहीं कर सकती । दशग्रीवने हरण किया तो मैं विवश थी । तुम्हारे स्कन्ध पर मैं स्वयं बैठूँ, यह उचित नहीं है । अत्यन्त स्निग्ध वात्सल्य—भरे स्वरमें सीताजीने समझाया— 'स्वामी स्वयं आकर मेरे अपहरणकर्ताको दण्ड दें और मेरा उद्धार करें, इसीमें उनकी शोभा और सुयश है । तुम्हें उनके यशको समुज्ज्वल करनेवाला बनना चाहिये !'

'धन्य अम्ब ! अन्ततः आप मेरे लोकराध्य स्वामीकी सहधर्मिणी हैं ।' हनुमानका स्वर श्रद्धा—विभोर हो उठा— 'इस दारुण दशामें, ऐसी असह्य विपत्तिमें भी अपने कष्टको भूलकर केवल स्वामीके सुयशकी चिन्ता करनेवाली आपके अतिरिक्त त्रिभुवनमें दूसरी कोई सती न कभी हुई न हो सकनेकी सम्भावना है ।'

सूर्योदय हो चुका था; किन्तु राक्षसोंके तो शयनका— प्रगाढ़ निद्राका यही काल था । अतः हनुमानके विशाल आकारको किसीने देखा नहीं था । श्रीजानकीसे वार्तालापका भी उन्हें समुचित समय मिल गया था ।

'हनुमान ! तुमने अद्भुत कार्य किया है । समुद्र—लंघन करके एकाकी राक्षसोंकी पुरीमें आये हो ।' सीताजीने प्रशंसाकी— 'मेरे स्वामी बिना बल—विक्रम जाने किसी अपरिचितको मेरे समीप नहीं भेज सकते । वे बहुत व्याकुल तो नहीं हैं ? पुरुषार्थ—तत्पर तो हैं ? अपने मित्रोंको प्रिय हैं ? तुम राक्षसोंके सिरपर पैर रखकर यहाँ आये हो । अयोध्याका कुछ समाचार है तुम्हें ? भरतको मेरे अपहरणका पता लगा ? वे सेना भेजेंगे ? राज्य त्यागनेपर भी जिनका धैर्य अभंग रहा, वे मेरे स्वामी परम धर्मात्मा हैं, उनका धैर्य भंग तो नहीं हुआ ?'

'अम्ब ! अयोध्या समाचार देना अनावश्यक है । श्रीरघुनाथ स्वयं समर्थ हैं और उनकी सेवामें वानरेन्द्र सुग्रीव असंख्य वानरोंको लिये हैं । सब उनके लिए प्राण देनेको प्रस्तुत हैं ।' हनुमानने बतलाया— 'अभी तक आपका समाचार मिला नहीं था । श्रीराम कभी भग्नोत्साह हो सकते हैं ? वे आपके लिए अत्यन्त व्याकुल हैं । उन्हें आया ही समझें । यह राक्षसपुरी विनष्ट होकर रहेगी ।'

'वत्स ! युद्ध अनिवार्य है; किन्तु तुम रावणके अनुज विभीषणका ध्यान रखना । उनकी पत्नी सरमा कभी—कभी मेरे समीप आती हैं । उनकी पुत्री अनलाने मुझे बतलाया कि विभीषण बार—बार रावणको समझाते हैं मुझे लौटा देनेको; किन्तु वह दुष्ट मानता नहीं ।' सीताने कहा— 'मेरे कारण विभीषण अनेक बार तिरस्कृत हुए हैं । वे सत्पुरुष हैं । युद्धमें उनका कोई अनिष्ट नहीं होना चाहिये ।

'अम्ब ! मैं उन महानुभावसे मिल चुका हूँ । मुझपर उनका असीम उपकार है ।' हनुमान भाव—भीने हो गये— 'उनकी अनुकम्पासे ही मुझे आपका पता प्राप्त हुआ । वे तो प्रभुके प्रियजन हैं ।'

'स्वामीको स्मरण दिलाना कि चित्रकूटमें मुझपर तनिक प्रहार करनेवाले काक बने शक्रसुतापर उन्होंने ब्रह्मास्त्रका का प्रयोग कर दिया था ।' विह्वल हो गयीं वैदेही— 'वह प्रीति क्यों विस्मृत हो गयी कि राक्षस मुझे उठा लाया, यन्त्रणा दे रहा है और आप उसे अबतक क्षमा कर रहे हैं ।'

'हनुमान ! कहना कि उन—सा नाथ पाकर भी सीता आज अनाथा हो रही है । इस राक्षसके बधार्थ क्या अब त्रोणमें बाण नहीं रहे ? सुरासुर, किन्नर, नाग किसीमें सामर्थ्य है कि आपके सरोष होनेपर समरमें सम्मुख ठहरे ।' सीता व्याकुल हो गयीं ।

'मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि श्रीराम आपको विस्मृत नहीं हुए हैं । आपके दुःखका कारण विस्मरण नहीं है ।' हनुमान उठ खड़े हुए— 'अब ववे इस विपत्तिका अन्त करने शीघ्र आवेंगे ।'

'हनुमान ! उन कौशल्यानन्दवर्धन लोकभर्ताके चरणोंमें मेरी ओरसे सिर रखकर प्रणाम करना ।' सीताजीने समझा कि हनुमान जा रहे हैं तो कहना

प्रारम्भ किया— 'परमोदार लक्ष्मणको भी मेरा प्रणाम करके कहना, वे इस कटुभाषिणी दीना, विपत्तिमें पड़ी अनाश्रयाके अपराधको क्षमा कर दें और इसके उद्धारके लिए सचेष्ट हों ।'

'आप विश्वास करें, मेरे पहुँचते ही प्रभु प्रस्थान करेंगे ।' हनुमानने आश्वासन दिया ।

'इसे मेरे स्वामीको देना ।' श्रीजानकीने चूड़ामणि उतारकर दी— 'मेरे सौभाग्य वे ही हैं । सीताका सर्वस्व, जीवन उनके करोंमें है । यदि वे अवधि रहते न आये तो इस दासीको जीवित नहीं पावेंगे ।'

हनुमानने चूड़ामणि अञ्जलि फैलाकर आदरपूर्वक ली और अपने केशोंमें वैसे ही सावधानीसे सुरक्षित कर ली जैसे पहिले आते समय मुद्रिकाको लाये थे ।

'वत्स ! तुम आये तो जैसे शुष्क होती कृषिको वर्षाका जल प्राप्त हुआ । मुझ मरणासन्नको अमृत बनकर तुमने उज्जीवित किया; किन्तु अब तुम भी जाना चाहते हो ।' अत्यन्त दुःखी होकर वैदेही बोल रही थीं— 'तुम्हें रोक नहीं सकती । दिनका प्रकाश फैल चुका है । थोड़ी देरमें राक्षस जाग जायेंगे । उनके जागनेसे पूर्व तुम प्रस्थान करो तो तुम्हारा मार्ग निर्विघ्न रहेगा ।'

'मेरे आराध्यको स्मरण कराना कि काकपर ब्रह्मास्त्र—प्रयोगसे पूर्व उन्होंने मेरे कपोलोंपर मनःशिलासे पत्र—रचना की थी ।' श्रीसीताने रुदन करते कहा— 'मैं उन्हीं स्नेहपूर्ण करोंका स्मरण करती किसी प्रकार एक मास और यहाँ इन राक्षसियोंकी दारुण यातना सह लूँगी । इस अवधिमें स्वामी नहीं आये तो मैं अवश्य शरीर त्याग दूँगी ।'

'इनके मनमें राक्षसोंका भय जमकर बैठ गया है । उसे दूर किये बिना जाना उचित नहीं है ।' हनुमान मस्तक झुकाये सोचने लगे— 'मैंने रात्रिमें लंका देखी अवश्य; किन्तु मेरा ध्यान तो इन अम्बाके अन्वेषणमें लगा था । इस पुरीको अच्छी प्रकार देखा जाना चाहिये ।' दशग्रीवकी शक्तिका भी अनुमान करना चाहिये मुझे और यदि सम्भव हो तो आगामी अवश्यम्भावी संग्राममें स्वामीको सुविधा हो, शत्रु आंतकित रहें, ऐसा भी कुछ करके ही जाना चाहिये ।'

●●●

वाटिका–विध्वन्स

'अम्ब ! मैं समुद्र पारसे चला, तब भी उपोषित ही था और आपके अन्वेषणमें पूरी रात इस पुरीमें भटकता रहा हूँ ।' हनुमानने छोटे बालकके समान उदास मुख बनाया— 'इस वाटिकामें इतने अधिक फल लगे हैं । इन मधुर पक्व फलोंको देखकर मेरी क्षुधा बहुत बढ़ गयी है ।'

'वत्स ! बड़े विकट बलवान् राक्षस इस वाटिकाकी रक्षा करते हैं ।' श्रीजानकीका मुख उदास हो गया । कौन माता पुत्रको भूखा सुनकर शान्त रह पाती है; किन्तु क्या करें वे ? 'रावणको यह वाटिका बहुत प्रिय है ।'

'आप उस दुष्टकी बात क्यों करती हैं ? मैं उसे और उसके रक्षकोंको देख लूँगा ।' हनुमानने आग्रहके स्वरमें कहा— 'आप इस वाटिकामें विराजमान हैं, अतः मुझे आपकी अनुमति चाहिये । आप प्रसन्न हों तो मुझे किसीकी चिन्ता नहीं ।'

'आराध्यका स्मरण करके भली प्रकार फल खाओ !' सीताजीने प्रसन्न मनसे अनुमति दे दी ।

'अम्ब ! मैं वानर हूँ । उछल—कूदकर खाये बिना मेरा पेट नहीं भरेगा ।' हनुमानने फिर कहा— 'इसमें कुछ शाखाएँ टूट सकती हैं, कुछ वृक्ष भी— आपको खेद तो नहीं होगा ?'

'मेरा कोई ममत्व इस वाटिकपर नहीं है । तुम यथेच्छ विचरण करो !' श्रीजनक—नन्दिनी समझ गयीं कि उनके स्वामीका यह पराक्रमी बुद्धिमान चर अब दशग्रीवका दर्प—दलन करना चाहता है । उन्होंने आज्ञा दे दी— 'मैंने इस वाटिकाको न देखा है, न देखना चाहती हूँ । केवल मेरे इस आश्रय— वृक्षपर मत कूदना ।'

क्षणार्धमें हनुमानका अपना स्वर्णशैलाभ शरीर प्रकट हो गया । वे उछले तो उनके वक्षके धक्केसे अनेक वृक्ष टूट गिरे । उन्हें देखते ही वाटिका— राक्षस राक्षसियाँ दौड़कर सीताके समीप आयीं— यह कौन है ? कहाँसे आया ? किसका है ? तुमसे इसने क्या बात की ?'

'तुम राक्षसोंकी माया तुम्ही जानो ।' श्रीजनक—नन्दिनीने रूखे स्वरमें कहा— 'मैंने तो इसे देखकर राक्षस ही समझा था । तुम सबके समान यह भी कामरूप है । उसीसे पूछो कि वह कौन है, कहाँसे आया है ।'

राक्षसियोंको पता था कि राक्षसाधिपको उद्यान कितना प्रिय है । वह विकट वानर वृक्ष तोड़ रहा था, उखाड़ रहा था । उसके पैर, हाथ वेगसे चल रहे थे । बड़े वृक्षोंको वक्षके धक्केसे धराशायी कर रहा था । छोटे वीरुध पैरोंसे कुचल रहा था । कुछ लताएँ, पुष्प वृक्ष उसने उखाड़ फेंके थे । लगता था कि पूरी वाटिका उजाड़ देनेपर तुला है । राक्षसियोंको सीताजीसे अधिक पूछनेका अवकाश नहीं था । वे दौड़ीं द्वारकी ओर । उन्होंने राक्षसोंको पुकारा ।

अधूरी नींदसे उठे, अस्त—व्यस्त, अत्यन्त क्रुद्ध रक्षक अस्त्र—शस्त्र लिए दौड़े । किसीने सोचा भी नहीं कि लंकामें वानर कहाँसे आ गया । लेकिन कोई वन्य कपि था कि पत्थर मारनेसे भाग जाता । हनुमानने वृक्ष उखाड़ा और उन रक्षकोंको एक ही झटकेमें मार दिया ।

'महाराज ! महाराज ! अशोकोद्यानमें विकट वानर आ गया है । उसने वाटिका—विध्वंस कर डाली । लगभग सब रक्षक मार दिये !' चीखती चिल्लाती राक्षसियाँ रावणके अन्तःपुरमें पहुँचीं ।

अत्यन्त विषम समाचार था । अन्तःपुरकी रक्षिकाओंने दशग्रीवको जगाया । वह झल्लाकर उठा और शयनकक्षसे बैठनेके कक्षमें वैसे ही आ गया । सुनकर उसकी भौहें चढ़ गयीं— 'किंकर क्या कर रहे हैं ? उन्हें कहो कि इस वानरको मार दें ।'

'वानर ? वानर आया है ? तब क्या बालिने अपनी मुझसे की गयी मैत्री—सन्धि भंग कर दी ?' रावण सचिन्त हो गया । स्वप्न देखता उठाया गया था । स्वप्नमें भी उसे एक विकट—मुख वानर नोच—नोचकर सता रहा था । दशग्रीवको अभी बालिके मारे जानेका पता नहीं था । वह सोचता था— 'वानरेन्द्र बालिकी अनुमतिके बिना उसके मित्रके नगरमें उत्पात् करने कोई वानर कैसे आया ? कहीं स्वयं बालि तो नहीं आया है ? दूसरा कौन है जो सौ योजन सागर कूदकर इतना साहस करे ?'

दशग्रीवको इतना सोचना नहीं पड़ा । जो सागर कूदकर आया था,

वह अपना परिचय स्वयं देने लगा था। उसकी वह वज्र—घोष गर्जना वाटिकासे पूरे नगरमें गूँजने लगी थी। जैसे ही दशग्रीवके भेजे अस्सी किंकर राक्षस उद्यानमें पहुंचे, उन्हें देखते ही हनुमानने अपनी पूँछ भूमिपर पटकी और वाटिकाके मध्यमें बने देवी—मन्दिरके शिखरपर चढ़कर गर्जना की—

'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ।।'
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनूमाञ्शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ।।
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ।।
अर्दयित्वा पुरीं लंकामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ।।

वा० सु० ४२ (३३-३६)

'अत्यन्त बलशाली श्रीरामकी जय हो ! महाबलशाली लक्ष्मणकी जय हो ! श्रीरामके द्वारा पालित वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय हो ! मैं उदारकर्मा कौशलेन्द्र रामका दास, शत्रु—सेनाका संहारक पवनपुत्र हनुमान हूँ। युद्धमें निरन्तर शिलाओं और वृक्षोंसे प्रहार करनेवाले मेरे सम्मुख टिकने योग्य सहस्रों रावण भी नहीं है। इस लंकापुरीको रौंदकर, जगदम्बा जानकीको प्रणाम करके, सब राक्षसोंके सम्मुख ही मैं सफल मनोरथ होकर जाऊँगा।'

'धन्य वत्स ! तुम सफल मनोरथ सकुशल जाओ !' उल्लासपूर्वक श्रीजानकीने मन—ही—मन आशीर्वाद दिया।

'ओह ! कितना विकट वानर है।' राक्षसियाँ—रक्षिकाएँ सशंक देखती रह गयी दूर भयभीत खड़ी— 'वह स्वयं अपना परिचय दे रहा है। पुरीमें उत्पात करनेकी घोषणा कर रहा है।'

'त्रिजटाका स्वप्न इतनी शीघ्र सत्य हो गया ?' सीताजीके समीप रहने

वाली भयंकरा राक्षसियाँ काँपने लगीं— 'वानर तो आ गया । यह अवश्य पुरी—प्रदाह करेगा । राक्षसोंका विनाश आसन्न है । अब तो सीता ही शरण दे सकती हैं ।'

'वानर ! विकट वानर ! उसकी गर्जना !' पूरी लंकामें भाग दौड़ पड़ गयी । दूरसे वानरको देखने ही सब दौड़े; किन्तु वह तो अशोक काननमें था ।

'वानरेन्द्र सुग्रीव ?' दशग्रीव सोचने लगा— 'तो रामने बालिको मार दिया और सुग्रीवको वानरेन्द्र बनाया ? यह आनेवाला कौन है ?'

हनुमानने तो उस विशाल चैत्यप्रासादका एक अनुष्ठान— भवन पदाघातसे ध्वस्त कर दिया और उसका एक स्वर्ण—स्तम्भ उखाड़कर आये राक्षसोंकी कपाल— क्रिया सम्पन्न कर दी । उनमें—से रक्त—स्नान, भग्नगात्र एक भाग सका । उसने रावणको समाचार दिया । इस बार दशग्रीवने अपने प्रमुख शूर, प्रधान योधा मामा और महामन्त्री प्रहस्तके पुत्र जम्बुमालीको सेनाके साथ भेजा ।

'उस क्रूर कपिने सबको मार दिया ।' जैसे वाटिका पहुँचकर फिर तत्काल दौड़ आया हो, ऐसे ही एक राक्षस दौड़ा आया; किन्तु वह भी रक्त—लथपथ, अत्यन्त आहत था । उसने सुनाया— 'वह उत्पाती वानर सम्पूर्ण प्रासाद ध्वस्त करके स्वर्ण—स्तम्भ लिए गोपुरपर बैठा है । पता नीं इतने श्रमसे थक गया है या कोई नवीन उत्पात सोचने लगा है ।'

'गोपुरपर बैठा है ?' दशग्रीव ऐसे चौंका मानों कपि यहाँ राजप्रासादके गोपुरपर पहुँच गया हो ।

'अभी तो वह वाटिकाके चैत्यप्रासादके गोपुरपर ही बैठा है ।' आगत राक्षसने कहा— 'किन्तु किसी क्षण यहाँ आ सकता है । उसे कौन रोकेगा ?'

रावणने एक साथ पाँच मन्त्री—पुत्र सेनाके साथ भेजे; किन्तु उनका भी वही समाचार । विरूपाक्ष, प्रघस आदि सात सेनापति भेजे गये । उन्हें आदेश था— 'वानर पकड़ ले आओ !'

साधारण वानर था वह कि उसे कोई पकड़ ले जाता ? उसके समीप जो पहुँचता था, वानरके करोंमें स्थित रक्तस्नात स्वर्ण—स्तम्भ उसीको मृत्युको पकड़ाता चला जा रहा था । ये सेनापति भी मारे गये तो रावणने अपने पुत्र

अक्षयकुमारको बुलाया— 'कोई बहुत पराक्रमी वानर आया है । तुम सावधान होकर पौरुष प्रकट करो ।'

अक्षयकुमार लंकामें मेघनादके पश्चात् सबसे पराक्रमी योधा था । वह ससैन्य चला तो सागर क्षुब्ध हो उठा । वायुका वेग शिथिल पड़ गया । सूर्यकी किरणें मन्द पड़ गयीं । स्वर्गमें सुर सशंक हो उठे लेकिन हनुमान तो आज प्रलयंकर बने बैठे थे । अक्षयकुमारके साथकी सेनाका संहार प्रथम वेगमें करके अक्षयकुमारके वक्षपर एक घूँसा धर दिया उन्होंने । रावण पुत्रको धनुष चढ़ानेका समय भी नहीं मिला । वक्षकी अस्थियाँ चूर—चूर हो गयीं । रक्त—वमन करता गिरा और शान्त हो गया । हनुमान फिर स्तम्भ लेकर तोरणपर जा बैठे ।

'अक्षयकुमार मारा गया !' सुनते ही रावण शोकसे मूर्छितप्राय हो गया । क्रोधोन्मत्त होकर पुकारा उसने— 'मेघनाद कहाँ है ?'

जब मेघनादने आकर पिताके पदोंमें प्रणाम किया, रावण अपने चित्तको स्थिर कर चुका था । उसने इन्द्रजितसे शान्त स्वरमें कहा— 'पुत्र ! तुम दिव्यास्त्र—ज्ञाता हो । मन्त्रज्ञोंमें श्रेष्ठ हो । सुरासुर—जयी हो । संग्राममें कभी श्रान्त नहीं होते । तप तथा वरदानसे रक्षित हो । तुम देश, कालको भली प्रकार समझते हो । अशोकोद्यानको उजाड़ करनेवाले इस वानरको पकड़ो । यह उसीका निष्ठुर निनाद गूँज रहा है । इसने अभी तुम्हारे अनुज अक्षयकुमारको मार दिया है । लेकिन उसे मारना मत । पता लगाना है कि उसका प्रेषक कौन है । कितनी शक्ति है इस वानरके पीछे ।'

'वह वायुके समान उछलता है । बहुत वेगवान है ।' दशग्रीवने पुत्रको सावधान किया— 'अपने सब दिव्यास्त्र ले जाओ । अक्षय त्रोण ले लो । बहुत प्रबल वानर है । सचेत रहकर संग्राम करना ।'

इन्द्रजित अपने दिव्य रथपर बैठा । पिताको उसने आश्वासन दे दिया । विचित्र धनुष लिये अशोक—वाटिका पहुँचा तो हनुमान देखते ही समझ गये कि इस बार बलवान वीर आया है । उन्होंने मेघनादकी उपेक्षा कर दी और स्तम्भ लिये उसकी सेनाका संहार करने लगे । मेघनादने वाणोंकी झड़ी लगा दी; किन्तु उसके बाण केशरी—किशोरकी वज्रकायासे टकराकर टूटते जा रहे

थे ।

मेघनादके साथ आये राक्षस सैनिकोंमें अधिकांश मारे गये । कुछ बचे, वे प्राण बचाकर दूर भाग गये और वहींसे युद्ध देखने लगे । अब हनुमान मेघनादपर टूटे । बड़े—बड़े वृक्ष तथा ध्वस्त चैत्यप्रासादके स्तम्भ शिखर, भित्ति—खण्ड फेंकने लगे । मेघनाद बाणोंके द्वारा उन सबको चूर्ण करता गया; किन्तु इस प्रकार बची—खुची वाटिकाका भी विनाश हो गया ।

साधारण शरोंसे वानरको अप्रभावित देखकर मेघनादने दिव्यास्त्र उठाये; किन्तु व्यर्थ । आग्नेयास्त्र, वायव्यास्त्र, पर्वतास्त्र, पार्जन्यास्त्र सब व्यर्थ । मेघनाद चकित था कि यह वानर कैसा है ? दिव्यास्त्र इसके समीप पहुँचते ही क्यों निष्प्रभाव हो जाते हैं ? वानर थकनेका नाम ही नहीं लेता, यह देखकर मेघनादने अन्तमें धनुषपर ब्रह्मास्त्र चढ़ाया ।

'ब्रह्माजीने तो अपने इस अस्त्रसे भी मुझे अभय दिया है; किन्तु इस अमोघ अस्त्रकी मर्यादा मान लेनी उचित है ।' हनुमानने तत्काल निश्चय कर लिया— 'अन्ततः मुझे दशग्रीवको भी तो देखना है । उसका दर्प—दलन करनेका अवसर इस बहाने मिल सकता है ।'

मेघनादने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया तो आञ्जनेय मूर्छित होकर गिरे और निश्चेष्ट पड़े रहे । बलवेगोद्दीप्त ही थे वे और तत्काल उठकर प्रहार करनेमें सक्षम थे । न पीड़ा, न भय; किन्तु ब्रह्मास्त्रकी मर्यादा मानकर हनुमान शिथिल नेत्र बन्द किये पड़े रहे ।

अब दूर खड़े राक्षस दौड़े और जिसे जहाँ भी मिल सकी मोटी—मोटी रस्सियाँ ले आये । मेघनाद उन्हें रोके, इससे पहिले ही वे जुट गये निश्चेष्ट हनुमानको भली प्रकार बाँधनेमें ।

'इन मूर्खोंने तो अनर्थ कर दिया ।' मेघनाद खिन्न हो गया । 'ब्रह्मास्त्र दूसरा बन्धन सह नहीं सकता । वह तो प्रथम रज्जुका वानरके शरीरसे स्पर्श कराते ही इसे त्याग गया होगा । अब वानरको यह पता न हो, यह भ्रमसे अपनेको ब्रह्मास्त्रमें बँधा बन्दी मानता रहे तभी कुशल है । अन्यथा इन रज्जुओंको तो यह तोड़ फेंकनेमें सहज समर्थ हैं ।'

मेघनाद कुछ बोलकर वानरको सावधान नहीं करना चाहता था ।

दुबारा ब्रह्मास्त्रका एक ही व्यक्तिपर प्रयोग करो तो वह प्रयोक्ताको नष्ट कर देगा । अतः अब मेघनादको विवश होकर मौन रहना था । वह समझता था वानर बन्धनके भ्रममें है और हनुमान जानबूझकर शान्त बने राक्षसोंका उत्पात सहन कर रहे थे ।

'इसे जला दो ! मार दो इसे ! कच्चा ही खा डालो इस वानरको ।' राक्षस उत्साहमें बकते जा रहे थे । बहुत—सी रस्सियोंसे कसकर बाँध रहे थे । घूसोंसे, पदसे भी प्रहार कर रहे थे ।

'उसे बहुत तंग मत करो !' मेघनादने डाँटा । वह डर रहा था कि कहीं पीड़ित होकर वानर छटपटाया तो बन्धन टूट जायँगे और ब्रह्मास्त्रके बन्धनका भय मिट जायगा— 'वह राक्षसेन्द्रका बन्दी है । मर गया तो राक्षसाधिप किसीको क्षमा नहीं करेंगे ।'

राक्षस मेघनादके धमकानेसे थोड़े शान्त हुए । वे पकड़कर पवनपुत्रको दशग्रीवके समीप ले चले ।

●●●

दशग्रीवके सम्मुख

अबतक हनुमानने रावणके पाँच सेनापति, आठ मन्त्री और रावणपुत्र अक्षयकुमारको मार दिया था । प्रज्ञा और प्राणके मूलतत्त्व उन अञ्जनीनन्ददनको बाँधककर राक्षस रावणकी सभामें ले आये । उनको सम्मुख खड़े करके मेघनादने पिताको प्रणाम किया । दशग्रीवने पुत्रको प्रशंसा—भरी दृष्टिसे देखा और विश्राम करनेकी अनुमति दे दी ।

आञ्जनेयने देखा— अञ्जन कृष्ण—वर्ण, बीज भुजा, दस मस्तक रावण रत्नजटित स्फटिक सिंहासनपर भारी नीलमेध छत्रके नीचे बैठा है । प्रहस्तादि मन्त्री उसके दोनों पार्श्वोंमें छोटे आसनोंपर विनम्र बैठे हैं । दिक्पाल, लोकपाल भी विनम्र हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये आते हैं और खड़े रहते हैं । वायु, अग्नि,

वरुण— सब रावणके भ्रू—कुञ्चनसे भयभीत खड़े हैं ।

रक्तनेत्र हनुमानको फिर दया आयी दशग्रीवको देखकर— 'इतना भव्य शरीर, इतना पराक्रम, ऐसा प्रकाण्ड पण्डित ! यदि यह अधर्मी न होता तो इन्द्रका भी रक्षक होने योग्य था ।'

'इतना निर्भय वानर !' दशग्रीवने देखा कि हनुमानने न मस्तक झुकाया, न कोई हिचक है उनमें । वे सीधे उसीकी ओर देख रहे हैं । मनमें सिहर उठा— 'कहीं ये भगवान नन्दीश्वर तो नहीं ? उन्होंने मुझे शाप दिया था । मैंने अपने दस मस्तक चढ़ाकर दस रुद्रोंको सन्तुष्ट किया; किन्तु ग्यारहवें रुद्र अपूजित रह गये । कहीं वे ही तो वानर बनकर नहीं आये ?'

'प्रहस्त ! पूछो इससे कि यह दुरात्मा कहाँसे आया ? क्यों आया ?' क्रुद्ध स्वरमें रावण बोला— 'वाटिका—विध्वंस क्यों किया इसने ? मेरे सेवकोंको क्यों मारा ? कौन है यह ?'

'तुम्हारा कल्याण हो, डरो मत !' प्रहस्त हनुमानकी अपेक्षा राक्षसोंपर अपना प्रभाव डालना चाहता था । साम नीतिका आश्रय लेकर बोला— 'इन्द्रने तुम्हें भेजा है ? तुम यदि सच—सच कहोगे तो हम तुम्हें छोड़ देंगे । राक्षसेश्वरके सम्मुख अन्याय नहीं होगा । तुम्हारा रूप ही वानरका है; किन्तु तुम वानर हो नहीं । यदि झूठ बोलोगे तो मार दिये जाओगे । तुमको किसने भेजा है ? तुमने वाटिका क्यों उजाड़ी ? देवजयी राक्षसोंको तुमने क्यों मारा ?'

'मैं वानरेन्द्र सुग्रीवकी आज्ञासे आया हूँ । सुग्रीवने तुमसे कुशल पूछी है । वे तुम्हारे मित्र हैं ।' हनुमानने प्रहस्तकी उपेक्षा कर दी । वे सीधे रावणकी ओर मुख करके उसीसे बोले— 'अयोध्या नरेश महाराज दशरथके लोकस्तुत्य ज्येष्ठ पुत्र पिताकी आज्ञासे अनुज तथा भार्याके साथ वनमें आये थे । दण्डकारण्यमें उनकी पत्नी खो गयी । उसे ढूँढ़ते वे ऋष्यमूक पहुँचे तो श्रीरामने एक ही बाणसे बालिको यमलोक भेजकर सुग्रीवको वानरेन्द्र बना दिया । बालिसे तुम भली प्रकार परिचित हो । श्रीरामकी शक्तिका अनुमान इसीसे कर लो ।'

'सुग्रीवने श्रीराम—भार्याको ढूँढ़ने सहस्रों वानर विभिन्न दिशाओंमें भेजे हैं । उनमें—से ही एक मैं हूँ, जो यहाँ आ गया हूँ ।' हनुमानजीने सहज स्वरमें कहा— 'मुझे भूख लगी थी, फलोंपर वानरोंका नैसर्गिक स्वत्व है । वाटिका

तुम्हारी है, यह देखनेकी मुझे आवश्यकता नहीं थी । वानर स्वभाववश मैंने उछल—कूदकर फल खाये । तुमने इतने दुर्बल वृक्ष क्यों लगाये कि वे मेरी तनिक उछल—कूदमें टूट गये ? जो राक्षस मुझे मारने आये, मैं उन्हें मारता नहीं तो छोड़ देता ? अपराध तो तुम्हारे पुत्रका है कि मैंने किसीको बांधा नहीं, पर वह मुझे बाँध लाया । इस युद्धमें तो केवल मारना—मरना चल रहा था । वह मुझे मार देता या मेरे हाथों मर जाता ।'

'अच्छा सुनो ! मैंने श्रीराम—भार्याको तुम्हारी वाटिकामें देखा है । बहुत बुरी बात है कि तुमने परस्त्रीका चोरकी भाँति अपहरण किया और उन्हें अपने यहाँ रोक रखा है ।' हनुमानका स्वर असाधारण गम्भीर हो गया— 'तुम वेदज्ञ हो, धर्म—अर्थके ज्ञाता हो, महाप्राज्ञ हो । तुम्हें परायी स्त्रीको रोक नहीं रखना चाहिये । श्रीरामको दुःख पहुँचाकर कौन सकुशल रह सकता है । श्रीराम—लक्ष्मण जब धनुष चढ़ा लेंगे, कोई उनके सम्मुख टिक नहीं सकता ।'

'मैंने देखा है, श्रीजनक—नन्दिनी बहुत दुःखीं हैं । राक्षसेन्द्र ! मैं तुम्हारे हितकी बात कहता हूँ, उन्हें जल्दी छोड़ दो । तुम जानते हो कि बालिके अनुज सुग्रीव अपने अग्रजके समान बलवान हैं । उनको कोई दैत्य—दानव मार नहीं सकता । वे शीघ्र करोड़ों वानर लेकर आनेवाले हैं यहाँ । अपने दान—पुण्य—तपका फल तुमने भोग लिया । अब तुमने जो अधर्म किया है, उसका फलोदय—काल आ गया है ।' पवनपुत्रने चुनौतीके स्वरमें कहा— 'देखते हो, मैं एकाकी, शस्त्रहीन तुम्हारी पुरीमें आया हूँ । मेरे स्वामी श्रीरामकी आज्ञा नहीं है, अन्यथा मैं तुम सबको मारकर, इस स्वर्णपुरीको वाटिकाके चैत्य प्रासादके समान ध्वस्त करके माता सीताको ले जाता ।'

'दशग्रीव ! भूल जाओ कि ये बन्धन या ब्रह्मास्त्र मुझे बाँध सकते हैं । मैं अपनी इच्छासे अनुकम्पा करके, तुम्हें सचेत करने, मृत्यु—मुखमें कूदनेसे बचाने आया हूँ ।' हनुमान उसी गम्भीर स्वरमें कह रहे थे— 'अभी कुछ बिगड़ा नहीं । क्रुद्ध श्रीरामसे तुम्हारी रक्षा चतुर्मुख सृष्टिकर्त्ता और शूलपाणि त्रिनयन शिव भी नहीं कर सकेंगे । लेकिन वे शरणागत—वत्सल हैं ! सीताको लेकर मेरे साथ उनकी शरण चलो !'

'वानर ! बकवाद बहुत हो चुकी ! मैं तेरी बड़बड़ाहट और नहीं सुन

सकता ।' रावण चिल्लाया । लाल—लाल नेत्र करके बोला— 'वानराधम ! मैं राम—लक्ष्मण, सुग्रीव सबको मार दूँगा ।'

'दुष्ट ! दुर्मुख ! तू सबको मार देगा ?' हनुमानने दाँत कटकटाये— 'तेरे जैसे सहस्रों रावण उनके इस दासका भी कुछ बिगाड़ नहीं सकते ।'

'मार दो इसे !' दशग्रीवने भी दाँत पीसकर आज्ञा दी ।

'लेकिन यह अवध्य है । दूत प्रायः कटुभाषी होते हैं; किन्तु उन्हें क्षमा कर देना ही शूरोंने उचित माना है ।' विभीषण अपने मन्त्रियोंके साथ राजसभामें आ गये थे । हनुमानको इन्द्रजितने बाँध लिया, यह सुनकर ही वे आये थे । दशग्रीवको प्रणाम करके उसके दाहिने अपने निश्चित आसनपर बैठ गये थे । अब उठे और हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक बोले— 'महाराज ! यह आपके यशके विरुद्ध होगा । आप धर्मज्ञ हैं, नीतिज्ञ हैं, आप जैसे विद्वान भी क्रोधवश नीति—विस्मरण कर देंगे तो अध्ययनका श्रम व्यर्थ गया ।'

'इस आततायी पापिष्ठाको मारनेमें मैं दोष नहीं देखता ।' दशग्रीवने विभीषणकी ओर देखा ।

'इसने आपका अप्रिय किया है, उद्धत है और कटुभाषी है; किन्तु दूत है ।' विभीषणने विनम्र स्वरमें कहा— 'यह दण्डनीय तो है, परन्तु मारने योग्य नहीं है । इसका सिर घुटा दें, कशाघातका दण्ड दें, अंग—भंग करा दें, ऐसा ही कुछ दण्ड दें ।'

'इसे मार देनेसे क्या लाभ होगा ?' रावणको अपनी ओर देखते देखकर विभीषणने कहा— 'यह नहीं लौटेगा तो जिन्होंने इसे भेजा है, वे और चर भेजेंगे । हम सबको सदा सशंक रहना पड़ेगा कि कब कोई आ जाय । यह लौट जायगा तो अपने स्वामीको ससैन्य ले आवेगा । उनसे एक साथ आप निबट ले सकेंगे ।'

प्रहस्तने सिर झुका दिया हाथ जोड़कर । दूसरे मन्त्रियोंकी भंगीमें भी विभीषणका समर्थन था । ऐसे विकट वानकर किसी क्षण आ सकते हैं, लंकामें कहीं कोई उत्पात कर सकते हैं, किसीको मार सकते हैं, कोई भवन नष्ट कर सकते हैं, इस आशंकामें रात—दिन रहनेकी अपेक्षा एक बार खुलकर युद्ध बुला लेना ही उत्तम लगा सबको । भय-आतंक—आशंकाका नारकीय जीवन

हो जायगा, यहि यह कपि मार दिया गया, यह सबने समझ लिया ।

'तुम ठीक कहते हो, दूत अवध्य होता है ।' दशग्रीवने शान्त स्वरमें कहा । उसने देख लिया था कि उसके सब मन्त्री विभीषणके पक्षमें हो गये हैं । सबको असन्तुष्ट करना वह नहीं चाहता था और वानरको छोड़ देना भी उसे अभीष्ट नहीं था । उसने युक्तिपूर्वक कहा— 'वानरको अपनी पूँछ बहुत प्रिय होती है, यद्यपि यह उसका अनावश्यक अंग है । इसकी पूँछमें वस्त्र लपेटकर तेलसे भिगाकर अग्नि लगा दो । इस प्रकार पूँछहीन कु रूप करके इसे यहाँसे भगा दो । पूँछ रहित होकर जायगा, तब अपने स्वामीको ले आवेगा । देखना है कि इसके स्वामीमें यहाँतक आनेका साहस है भी या नहीं ।'

विभीषण अब बोलनेकी स्थितिमें नहीं रह गये । उन्हें मौन रह जाना पड़ा । दशग्रीवके मनमें दुरभिसन्धि थी— 'स्वभावसे चञ्चल वानर पूँछमें अग्नि लगनेपर उछल—कूद करेगा और स्वयं अपने शरीरमें अग्नि लगा लेगा । इससे यह जल—भुनकर मर जायगा । मुझे दूत—वधका दोष भी कोई नहीं दे सकेगा ।'

'महाराजका सुझाव बहुत उपयुक्त है ।' चाटुकार राक्षसोंने प्रशंसा की । समर्थन किया— 'यह उत्पाती इसी दण्डके योग्य है । वैसे तो उदार महाराजने इसपर कृपा की है । इसे केवल कुरूप बनानेका दण्ड दिया है ।'

दशग्रीव आदेश देकर राजसभासे उठ गया । मन्त्रियोंको, विभीषणको भी अपने सदन जाना था । राक्षस पकड़कर हनुमानको राजसभासे बाहर ले आये और उनकी पूँछमें वस्त्र, रुई, सूखी लकड़ियाँ तक बाँधने लगे । हनुमानको भी कुतूहल सूझा । उन्होंने अपनी पूँछ बहुत लम्बी कर दी । राक्षस उत्साहमें थे । उन्होंने इसपर ध्यान ही नहीं दिया कि वानरकी पूँछ कितनी विशाल है । वे तो दौड़—दौड़कर घरोंसे रुई, वस्त्र, ईंधन ला रहे थे और पूँछमें भली प्रकार लपेटते जा रहे थे ।

'केवल कपड़ा रहेगा तो ठीक नहीं जलेगा ।' राक्षस बुद्धिमानी दिखा रहे थे— 'बीच—बीचमें रुई और सूखी लकड़ी लगाओ । पूरी पूँछ भली प्रकार लपेटो ।'

बड़ा कोलाहल, बड़ा उत्साह था राक्षसोंमें । उन्होंने प्रायः सभी घरोंसे अनुपयोगी, कुछ उपयोगी वस्त्र भी लाकर हनुमानकी लांगूलमें लपेट दिया ।

नगरके सामान्य घरोंमें अनुपयोगी वस्त्र, रुई, सूखा काष्ठ बचने नहीं दिया।

इतना लपेटो कि यह अपनी पूँछ हिला नहीं सके।' सबको यह शंका तो थी कि पूँछ हिला सका तो वानर समीपके भवनमें अग्नि लगा सकता है; किन्तु कोई नहीं समझता था कि यह बन्धनसे छूट भी जा सकता है।'

'मेरे आराध्यने अच्छा सुयोग दिया है।' हनुमान मनमें प्रसन्न हो रहे थे। उन्होंने पूरी योजना मनमें बना ली और हँसे— 'सरस्वतीने समयपर सहायता की है। राक्षसोंको ऐसी बुद्धि देकर वे वीणापाणि बधाई पाने योग्य हो गयी हैं।'

'इसे पूरे नगरमें घुमाओ। सब देख लें कि लंकामें चोरीसे घुसे गुप्तचरकी क्या दशा होती है।' किसीने कहा— 'तबतक खूब सारा घी, तैल, मेद (चर्बी) एकत्र कर लो यहाँ।'

राक्षसोंने पवित्र—अपवित्र सब प्रकारके वस्त्र हनुमानजीकी पूँछमें लपेटे थे। उसमें पुरुष—स्त्री, बालक सबके अनेक रंगोंके वस्त्र थे। पवनकुमारकी लांगूल वस्त्रादिसे लिपटी बहुत मोटी और इन्द्रधनुषके समान हो रही थी। वे भी उसे ऐसे सीधे किये थे, जैसे सचमुच पूँछ हिलानेमें असमर्थ होगये हों।

राक्षस उन्हें गालियाँ दे रहे थे। घूंसे, थप्पड़ तथा पाद—प्रहारसे ताड़ित कर रहे थे। राक्षस—बालक कूद रहे थे। ताली बजा रहे थे। दुर्वचन कह रहे थे। उनके कान या केश पकड़कर खींचते थे पाषाण या लगुडका प्रहार भी करते थे। बालकोंको कुछ डाँटते भी थे— 'अरे दूर रहो! इसके मुख या हाथोंके पास मत जाओ। यह बहुत दुष्ट है। अब भी किसीको नोच ले सकता है। काट खा सकता है। दूर रहो इससे।'

'हमने गुप्तचर पकड़ा है। यह चोर है।' राक्षस अनेक प्रकारके अपशब्द सुना रहे थे। वे रस्सियोंमें बँधे हनुमानको पकड़कर नगरमें घुमाने लगे। सहस्रों राक्षसोंने रस्सियाँ पकड़ रखी थीं।

'प्रभुने कैसा उत्तम सुयोग दिया। मैं लंका रात्रिमें अन्यमनस्क भावसे देखी थी। अब दिनके प्रकाशमें भली प्रकार देखनेका यह अच्छा अवसर मिला है।' राक्षसोंकी गालियाँ, घूंसे, थप्पड़ आदिकी ओर तो हनुमानका ऐसे ही ध्यान नहीं गया, जैसे भिनभिनाती मक्खियोंके शब्द और उनके शरीरपर बैठनेपर

कोई ध्यान नहीं देता । वे तो देख रहे थे— बहुत ध्यानपूर्वक देखते जा रहे थे लंकाके राजपथ, वीथियाँ, चतुरष्क । उनका ध्यान इस ओर था कि रावणका शस्त्रागार कहाँ है, उसका अन्न—भण्डार कहाँ है, गज—अश्वादि कहाँ हैं और कहाँ हैं उसके सैनिकोंके— सुरक्षित सैनिकोंके भी स्थान । युद्धके समय किन पथोंका उपयोग होना है, किन स्थानोंको पहिले ध्वस्त किया जाना चाहिये, इस ओर हनुमानका पूरा ध्यान था । शत्रु स्वयं उन्हें अपना पूरा नगर दिखला रहे थे ।

राक्षसियाँ भवनोंके ऊपरसे, पथपर आकर वानरको देख रही थीं । वे भी ताली बजाकर हँसती थीं । त्रिजटासे जिन्होंने उसका स्वप्न सुना था, केवल वे भयभीत सशंक थीं— 'अब यह पूँछ घुमाकर पूरी लंका जला देगा !' लेकिन उनकी कौन सुनता । राक्षस उत्साहमें थे । वे भेरी, डम रू, ढोल पीटते चिल्लाते हुए हनुमानजीको नगरमें घुमा रहे थे । अद्‌भुत थी हनुमानकी यह नगर— यात्रा ।

पूरा नगर घुमाकर राक्षस पवन—पुत्रको फिर नगरके पश्चिम द्वारके पास ले आये । अब उनकी लांगूलका घृत—तैलाभिषेक प्रारम्भ हुआ । सहस्त्रों चर्मकुप्पे तैल, घृत, वसाके एकत्र थे वहाँ । दौड़—दौड़कर राक्षस और ले आ रहे थे । दशग्रीवका राजकीय तैल—घृत भण्डार भी रिक्त कर दिया सबोंने उत्साहमें आकर ।

शत—शत राक्षसोंने हनुमानकी पूँछ पकड़ रखी थी । दूसरे बहुतोंने उन रस्सियोंको पकड़ रखा था, जिनमें वे बँधे थे । सैकड़ों घृत, तैल, वसाके कुप्पे उठाकर उनकी पूँछपर धारा गिरा रहे थे । बहुतसे पूंछको हाथोंसे थपथपाते थे, जिससे घृत या तैल, वस्त्र, रुईमें भीतर तक प्रवेश कर जाय । भूमिपर तैल— घृत न गिरे, इसकी वे सावधानी रख रहे थे ।

'अब आनन्द आवेगा !' राक्षस उछल रहे थे— 'यह कूदेगा और चिल्लायेगा ।'

'अब आनन्द आवेगा !' हनुमान भी मनमें प्रसन्न हो रहे थे— 'मैं कूदूँगा, चिल्लाऊँगा और सब राक्षस भागेंगे, चिल्लायेंगे ।

उनकी पूँछ पूरा तेल, घृत, वसा पाकर स्निग्ध हो चुकी थी ।

●●●

लंका-दहन

'अरी सीता ! वह वानर पकड़ लिया गया है, जिसने तुमसे बातें की थीं ।' राक्षसियाँ दौड़ी-दौड़ी अशोकोद्यान पहुँची । उनको अब त्रिजटाका स्वप्न सत्य होता दीखता था । श्रीजानकीकी सहानुभूति अपेक्षित थी उन्हें; किन्तु अपने स्वभाव, संस्कारका क्या करें । उनकी वाणी सहज रूक्ष । उन्होंने समाचार दिया—'उसे बाँधकर मारते-पीटते पूरे नगरमें घुमाया है । बड़ी दुर्गति की उसकी । उसकी पूँछमें वस्त्र लपेटकर उसे घृत-तैलादिसे भिगा रहे हैं । अब उसकी पूँछमें आग लगा देंगे । वह बन्दर जलनेसे कदाचित् ही बचे ।'

'अग्निदेव ! यदि मैं पतिव्रता हूँ तो आप हनुमानके लिए शीतल हो जायें !' उन जगद्धात्री सर्वेश्वरीने नेत्र बन्द करके मनमें संकल्प किया—'हव्यवाह ! भले आप क्रव्याद हों; किन्तु यदि श्रीरामका मुझपर स्नेह है तो आप पवनपुत्रके लिए शीतल रहें ! अनलदेव ! आपकी प्रलयंकरी विषमज्वाला रामदूतके लिए सुखद शीतल रहे यदि सीता सदाचारिणी है ।'

जिनके भ्रूभंगसे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति-प्रलय होती है, उनको इस प्रकार संकल्पकी आवश्यकता थी ? उनका इंगित पर्याप्त था अग्निदेवको; किन्तु माँका वात्सल्य—वे तो इतना संकल्प करके भी व्याकुल बनी थीं । लेकिन अग्नि उनके संकल्पका अतिक्रमण करें तो स्वयं उनकी सत्ता रहेगी ?

राक्षसोंने पश्चिम द्वारपर बँधे हनुमानकी घृत-तैलसिक्त विशाल लांगूलमें सैकड़ों उल्मुक लेकर एक साथ अग्नि लगा दी । अब हनुमानने सहसा अपना शरीर छोटा किया । केवल पूँछ विशाल बनी रही । शरीरको बाँधनेवाली रस्सियाँ ढीली होकर गिर पड़ीं । अब पवनपुत्र बन्धनसे स्वतंत्र हो गये । राक्षस भयसे भागे । उनका उत्साह भंग हो गया; किन्तु हनुमानने पूँछ घुमा दी । कूदकर पश्चिम द्वारसे एक स्तम्भ उखाड़ लिया । जो राक्षस बाँधने, पकड़नेवाले आसपास थे, वे पूँछकी लपटोंमें झुलस गये और स्तम्भके प्रहारसे मार दिये गये ।

'अग्निकी लपटें इतनी सुखद शीतल होती हैं ?' हनुमान भी चौंके ।

वे जानते थे कि अग्निदेवने शैशवमें ही उनको अपनेसे अभयका वरदान दिया है; किन्तु लपटें जलाती नहीं थी, तो भी उष्ण तो लग रही थीं । अचानक वे ऐसी शीतल हो गयीं जैसे शरीरको अंगराग लगाकर सहला रही हों । हनुमानको स्वभावसे लगा—'मेरे सर्वसमर्थ स्वामी श्रीरामकी असीम शक्ति अपने सेवककी रक्षार्थ सर्वत्र सतर्क रहती है । यह उसीका अचिन्त्य प्रभाव है ।

'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।'

हनुमानकी हुँकारके साथ उनका जयघोष गूँजने लगा । उनकी पूँछ घूमने लगी और वे लंकामें एकसे दूसरे भवनपर छलाँग लेने लगे । पश्चिम द्वार, उसपर लगे महायन्त्र प्रथम धक्केमें ध्वस्त हो गये । द्वार-रक्षक मारे गये ।

पवनपुत्रका शरीर पर्वताकार हो गया था । उनके असह्य तेजके सम्मुख देख पाना कठिन था । वे प्रलयंकर बने पल-पलपर विकट हुंकार कर रहे थे । उनकी पूँछ उठती थी तो लगता था कि सूर्य भी उसकी लपटोंमें झुलस जायेंगे । पवनदेव अपने पुत्रकी सहायतामें प्राणपणसे लगे, अपने उनचास रूपोंसे अग्निको प्रज्वलित, प्रसारित कर रहे थे ।

आञ्जनेय पाद-प्रहारसे भवन ध्वस्त कर रहे थे । करोंसे कंगूरे झटक देते थे । उनके वक्षके धक्केसे प्रासादोंके शिखर चूर हो रहे थे । पहिले उन्होंने चुन-चुनकर शस्त्रागार, धान्यागार, वाहनस्थान, सैन्यशिविर भस्म किये । इस प्रयासमें नगरके चारों द्वार गिरा दिये । पूरी परिखा पादाघातसे गिराकर खाई पाट दी । सब महायन्त्र नष्ट कर दिये । इतना करके एक ओरसे लंका-दहन करने लगे ।

लंकामें चारों ओर लपटें उठ रही थीं । राक्षस, राक्षसियाँ क्रन्दन कर रहे थे । गवाक्ष बन्द करो तो प्रतप्त स्वर्णका ताप असह्य था और गवाक्ष या द्वार खोलो तो प्रज्वलित पूँछ भीतर आकर पूरे कक्षमें आग लगा जाती थी । राक्षस अपनी स्त्रियों, बच्चोंको लेकर भाग रहे थे । वापी, सरोवर, सरिताके जलमें खड़े होनेपर भी परित्राण नहीं था । हनुमानकी जलती पूँछ वहाँ भी लोगोंको लपककर झुलसा जाती थी ।

'इस वानरको मार दो !' दशग्रीवने अपने सदनसे बाहर आनेका साहस नहीं किया । वहींसे उसने आज्ञा दी; किन्तु जो अस्त्र-शस्त्र लेकर निकले, उन्हें

प्रहारसे पहिले ही वानरकी प्रज्वलित पूँछने अपनी लपेटमें ले लिया । मेघनाद तक छिपा बैठा था । जीवित जलनेका उत्साह उसमें भी नहीं था ।

'वर्षा करके अग्नि बुझा दो और वानरको समुद्रमें बहा दो !' राक्षसेन्द्रने मेघोंको आज्ञा दी । आकाश काली घटाओंसे ढक गया । विद्युत कड़कने लगी । राक्षसोंको तनिक आशा हुई कि अब अग्नि बुझ जायेगी ।

यह क्या ? वर्षाकी धारा पड़ती है तो अग्नि ऐसी प्रचण्ड होती है, जैसे उसमें घृताहुति पड़ी हो । प्रतप्त स्वर्ण भवनोंका प्रबलतम ताप, पानी पड़ते ही विखण्डित होता है और विखण्डित जलकी दोनों वाष्पें तो अग्निको बढ़ाती ही हैं । वर्षाके धाराबद्ध वेगसे बढ़ी लपटें आकाश तक जा पहुँचीं । लंका लपटोंमें अदृश्यप्राय होगयी ।

'बचाओ ! कोई प्राण बचाओ ! इस दुष्ट दशग्रीवको घर बैठे मृत्यु बुलानी थी ।' जो पहिले वानरको गालियाँ दे रहे थे, हँस रहे थे, ताली बजा रहे थे, वही अब राक्षसेश्वरको कोस रहे थे—'हमने पहिले कहा था कि यह वानर नहीं है । वानरके रूपमें कोई देवता है । तब बीस लोचनके अन्धको कुछ दीखा ही नहीं । बार रे ! यह पानीसे प्रज्वलित होनेवाला प्रलयानल !'

'वर्षा बन्द करो ! कालको बुलाओ !' दशग्रीवको मेघोंको रोकना पड़ा और काल सुबेलपर बन्दी होता भी तो वहाँ तक हनुमानकी पूँछ किसीको पहुँचने देती ?

'दुहाई रामदूत ! तुम्हें अपने स्वामी श्रीरामकी दुहाई !' हनुमान कुम्भकर्णकी गुहा-द्वारपर पहुँचे । उन्होंने पूँछ भीतर डालना चाहा तो कुम्भकर्णकी पत्नी आँचल फैलाकर कातर कण्ठसे चिल्लायी—'मेरे पति निर्दोष हैं । सो रहे हैं । इन्हें जलाओ मत !'

हनुमान तत्काल उस गुहासे दूर कूद गये । इस प्रकार वह गुफा अग्नि-संस्कार शुद्ध होनेसे रह गयी । राक्षसोंके अनाचार, मद्यपान, मांसाहारसे अपवित्र लंकाको हनुमान अग्नि-संस्कार-शुद्ध करनेमें लगे थे । आगे उनके आराध्य यह पुरी विभीषणको देनेवाले हैं तो इसे शुद्ध कर देना ही उचित था ।

अब पुरीमें स्थान चुन-चुनकर अग्नि लगाना अनावश्यक हो गया था । समूची पुरी प्रज्वलित थी । जहाँ लपटें तनिक शिथिल होती थीं, हनुमानकी

पूँछ वहीं पहुँच जाती थी । पुरीमें प्रतिक्षण विस्फोटका भयंकर नाद हो रहा था । कहीं स्वर्ण पिघलनेसे भवन गिरते थे, कहीं कुप्पे अथवा कोई अस्त्र फटते थे ।

ताप— प्राणान्तक ताप और ऊपरसे गूँजती हृदय विदीर्ण करती पवनपुत्रकी हुंकार । उनकी जलती पूँछकी ज्वाला राक्षसोंको खदेड़-खदेड़कर जला रही थी । लोगोंके शरीरके वस्त्र जलने लगे तो उन्हें उन्होंने उतार फेंके । कुलवधुएँ तक नग्न भाग रही थीं और उनके केश भी झुलस गये थे । जो राक्षस इस प्रलयसे बचे भी, उनके भी श्मश्रु, केश जल गये थे लंका में झुलसे मुख-मस्तक, बिना श्मश्रु, केशके ही अधिकांश राक्षस-राक्षसियाँ पीछे बची थीं ।

आहारके लिए अथवा क्रीड़ाके लिए पाले गये पशु बहुत थे लंकामें । महिष, बकरे, गर्दभ, खच्चर, व्याघ्र, सिंह और अश्व-गज तो थे ही । ये पशु अपना आश्रय-स्थान ध्वस्त होनेसे मार्गोंसे ज्वालासे व्याकुल, जलते-झुलसते भाग रहे थे । ये राक्षसोंको कुचलते, घायल करते उन्मत्त होकर दौड़ रहे थे । इनमें-से अधिकांशको राक्षसोंने मार दिया । इसमें दशग्रीवकी आज्ञा भी अपेक्षित नहीं हुई । इनको न मारा जाता तो ये राक्षसोंको ही मारे दे रहे थे ।

क्रन्दन, चीत्कार, भाग-दौड़ और शवोंके जलनेकी दुर्गन्धि— लंका महाश्मशान भी कहने योग्य नहीं रह गयी थी । प्रलयके समय जब प्रलयंकर तृतीय नेत्र खोले उद्दाम ताण्डव करते हैं, कदाचित् ऐसा ही दृश्य होता होगा ।

दशग्रीवका नगर—दुर्दान्त सुरासुरजयी दशग्रीवकी राजधानी अनाथके झोंपड़ेके समान जल रही थी और वह स्वयं, उसका इन्द्रजित पुत्र, उसके दूसरे महाशूर अपने परिवारोंको, स्त्रियोंको लिये मूषकोंके समान भूगर्भ गृहोंमें दुबके थे । वहाँ भी प्रबलतम तापसे शुष्क कण्ठ व्याकुल हो रहे थे । किसीको कुछ करणीय सूझ नहीं रहा था ।

हनुमानने नगर परिखाका नाम नहीं छोड़ा । पूरी खाई पाट दी । खाईके मकरादि जन्तु मारे गये । नगरकी सरिताका, सरोवरोंका जल उबलने लगा । पक्षी पहिले ही भाग गये थे और सुबेल अथवा रजत शिखरपर मँडराते क्रन्दन करते थे । किसी सरोवरमें कमल, कुमुद कुछ नहीं रहा । मध्यके स्वर्ण-शिखरपर बसी पुरी वृक्ष-लताओंसे रहित हो गयी । अवश्य ही पिघलते स्वर्णका ताप

और ज्योति उधर दृष्टि नहीं टिकने देती थी ।

नीचे अधिकांश भवन ध्वस्त हो गये । राक्षस भूगर्भ गृहोंमें जा छिपे । भवनोंकी सामग्री, वस्त्र, खाद्य सबकी आहुति हो चुकी । एक नहीं, कई-कई बार हनुमानने घूम-घूमकर दशाननकी पुरीपर अपनी पूँछ फिरायी । इस सब समय उन्हें विभीषणका स्मरण बना रहा । वे विभीषणके भवनसे दूर रहे । उनकी पूँछ भूलसे भी उधर नहीं भटकी ।

विभीषणके उद्यानकी तुलसी तकको ताप नहीं पहुँचा । इस सुरक्षाके कारण विभीषणके भवनके दोनों ओरके दो भवन भी ज्वालासे अस्पृष्ट रहे । राम-भक्तके पड़ोसमें बसनेका पुरस्कार मिला यह उन्हें । संयोगकी बात थी कि उनमें-से एक भवन त्रिजटाका था और दूसरी ओर विभीषणके ही मन्त्रियोंका ।

विभीषणका भवन रावणके राजप्रासादसे दूर हटकर था; किन्तु राजप्रसादकी ओर मध्यमें कोई दूसरा भवन नहीं था । एकान्त-प्रिय विभीषणने भवन ऐसा चुना था कि उनके पीछे भी भवन नहीं थे । उधर सुबेल शिखर तथा समुद्र पड़ता था । केवल दोनों पार्श्वोंमें भवन थे और वे भी केवल दो । इसीलिए रात्रिमें सीतान्वेषणके समय हनुमान बहुत पीछे इधर पहुँचे थे । लंका-दहनके समय भी इस एक ओर बने भवनको सुरक्षित छोड़ देनेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई थी ।

'वानरने विभीषणका भवन छोड़ दिया ।' हनुमानजीके चले जानेपर लंकामें यह चर्चा चली ।

'विभीषणने उसे प्राणदण्ड पानेसे बचानेकी चेष्टा की थी । उन्होंने ही उसे दूत कहकर अबध्य कहा था ।' सबको ही यह समाधान प्राप्त था—'वानर अकृतज्ञ नहीं था । उसने अपने प्राण बचानेका प्रयत्न करने वालेका सदन उसे शत्रुका भाई जानते हुए भी छोड़ दिया ।'

विभीषणके सम्बन्धमें दशग्रीव सन्दिग्ध अवश्य हो उठा इस घटनासे; किन्तु स्पष्ट सन्देह व्यक्त करनेका कोई कारण उसे भी नहीं मिला ।

हनुमानने लंका-दहन पूरा कर लिया तब समुद्रमें कूद गये । उन्होंने पूँछ सागरजलमें बुझा दी । समुद्रकी लहरोंने उन्हें स्नान कराया और उनकी पूँछमें लिपटे जले, अधजले वस्त्रोंको, रुईको धोकर स्वच्छ कर दिया ।

'हाय ! मुझ मूर्खने तो सब कार्य ही नष्ट कर दिया ।' आवेश शान्त

होते ही स्मरण आया—'सीताजी भी जल गयी होंगी । वे तो रावणके अन्तःपुरसे सटी वाटिकामें ही थीं । मैंने क्रोधवश रावणके सदनमें बार-बार अग्नि लगाया है । इतने प्रचण्ड तापमें वे कैसे बची होंगी । क्रोधमें मैंने महापाप किया । मैं अधम दूत हूँ । क्या मुख दिखलाऊँगा किसीको । मेरा मरण ही अब उत्तम है ।'

इतने प्रचण्ड पौरुषके पश्चात् हतोत्साह, पश्चात्तापसे अत्यन्त पीड़ित पवनपुत्रने समुद्रमें ही अपना वक्ष विदीर्ण करनेका निश्चय करके आराध्यका स्मरण किया—'स्वामी ! दयामय ! इस अज्ञ अपराधी भृत्यको क्षमा करना । श्रीराम !'

सहसा हाथ रुक गया । 'सीता अपने तेजसे ही सुरक्षित नहीं होंगी ?' हृदयने कहा—'श्रीरामके प्रभावसे अग्नि तुम्हारे लिए शीतल हो गयी, तुम्हारी बालधिका एक बाल नहीं जला, तो अग्नि श्रीरामकी प्रियाको कैसे जला सकती है ?' तभी समुद्रतटसे भेरी-घोषके साथ होती घोषणा श्रवणमें पड़ी—'आश्चर्य है, सीता और वह शिंशुपा वृक्ष जिसके नीचे वह बैठी हैं, तनिक भी नहीं झुलसा । यह कालाग्नि ही कपि बनकर आया था । उसने विभीषणका भवन और सीताका वृक्ष बचा दिया है ।'

'राजसदन, शस्त्रागार, महाद्वार, प्रहस्त-महापार्श्वादिके गृह, प्रेक्षागार, गजशाला, उद्यान सब ध्वस्त हो गये !' भेरी-घोषसे घोषणा हो रही थी—'किन्तु अब भयकी बात नहीं है । उत्पाती वानर चला गया लगता है । वह कहीं दीखे भी तो राक्षसेन्द्रकी आज्ञा है, कोई उसके समीप न जाय । उसे जानेमें कोई बाधा न दी जाय ।'

'लोग अपने भवनोंको लौटें ! राक्षसेन्द्र शीघ्र भवनोंको पूर्ववत बनवा देंगे । सबके सदनोंमें आवश्यक सामग्री तत्काल पहुँचानेकी व्यवस्था कर दी गयी है ।' भेरी-घोष सुनकर हनुमानका मनस्ताप शान्त होगया । दशग्रीवकी तत्परताकी मनमें प्रशंसा की उन्होंने । घोषणा हो रही थी—'आहतोंकी चिकित्सा, व्रणरोपणादिमें वैद्य श्रेष्ठ सुषेण सहायकोंके साथ लग गये हैं । सुलगती अग्निको अब मेघ शान्त कर रहे हैं । भय त्याग दो ! मृत स्वजनोंका शव प्राप्त हो तो उसका संस्कार कर दो । नगरको स्वच्छ करने तथा इसके पुनर्निमाणमें शासनकी सहायता करो !'

●●●

प्रत्यावर्तन

'अम्ब ! आपके अनुग्रहसे और श्रीरघुनाथकी कृपासे दशग्रीव दलित-दर्प हो गया ।' हनुमानने समुद्र-स्नानके पश्चात् छलाँग लगायी और सीधे अशोकोपवनमें जाकर श्रीजानकीके सम्मुख प्रणिपात किया । अब उन्हें न छोटा रूप बनानेकी आवश्यकता थी, न छिपकर आनेकी । उन्हें देखते ही राक्षसियाँ भयके मारे दूर भाग गयीं । हाथ जोड़कर खड़े होकर बोले—'मैं आराध्यके आनेका पथ आपकी अनुकम्पासे प्रशस्त कर सका । यहाँ जो देखना था, सब देख चुका । अब आप मुझे अनुमति दें ।'

'वत्स ! तुम्हारा पराक्रम अद्भुत है । तुम अकेले ही स्वामीका कार्य करनेमें सक्षम हो ।' श्रीजानकीने हर्ष और स्नेहसे कहा—'किन्तु उनका सुयश इसमें है कि वे आवें, अपने बाणोंसे लंका ध्वस्त करके मुझे ले जायें । तुम बहुत श्रान्त हुए हो, एक दिन विश्राम करके तब जाना ठीक होता ।'

'आपके आशीर्वादसे मुझे तनिक भी श्रान्ति नहीं है ।' हनुमानने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'मेरा यहाँ रुकना अनुचित है । वहाँ श्रीराम अत्यन्त व्याकुल होंगे और यहाँ रावण मेरे रुकनेसे आपको अधिक तंग करेगा । मुझे भी शान्तिसे बैठने नहीं देगा ।'

'तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो !' श्रीवैदेहीने आशीर्वाद दिया—'स्वामी जैसे शीघ्र आवें, वही करना ।'

'आप आश्वस्त रहें ! वे मेरे पहुँचते ही प्रस्थान करेंगे ।' हनुमानने पुनः प्रणिपात किया और वहाँसे कूदकर अरिष्ट पर्वतपर—रजत-शिखरपर पहुँचे । वहाँसे उन्होंने कूदनेसे पूर्व जो गर्जना की, समूची लंका काँप उठी । बहुत अधिक लोग खड़ेसे गिर पड़े । राक्षस इधर-उधर भयसे भागने लगे ।

सुबेलपर शनिदेव इसी गर्जनाकी प्रतीक्षामें थे । अब अपने लोक प्रस्थानसे पूर्व उन्होंने दृष्टि उठाकर लंकाको देखा । लंकाका स्वर्ण-शिखर और भवनोंका सम्पूर्ण स्वर्ण, भित्तियाँ आदि तत्काल काले पत्थरमें परिवर्तित हो गयीं । अब भी लंकद्वीप समूह इन काले झुलसे पत्थरोंसे परिपूर्ण हैं ।

'क्या ? यह क्या हुआ ?' दशग्रीवके सभी मन्त्री चौंके । उन सबने देखा भवनोंकी भित्तियोंको, पिघले स्वर्णको काले पाषाणमें परिवर्तित होते । स्वर्ण भी पाषाण बन जाता है ?

'पाषाणके भवन स्वर्णसे अधिक सुखद होते हैं ।' दशग्रीवने अपने मन्त्रियोंका चौंकना देखा तो हँसकर बोला—'अब अग्नि लगनेपर ये न ताप देंगे, न पिघलकर बहेंगे । वह उत्पाती कपि चला गया, यह सूचना है । वह जाते-जाते हमारी यह सेवा कर गया ।'

'वानर चला गया !' इस बातसे सबको आश्वासन ही मिला; किन्तु सबके हृदयमें भय बैठ गया—'वह इतना प्रभावशाली कि जब तक रहा, लंकाका स्वर्ण, स्वर्ण बना रहा और उसने यह भूमि छोड़ी तो यहाँकी समस्त श्री समेटता गया ! यहाँके स्वर्णको झुलसे पत्थर बना गया ? वह कुछ सदाको तो गया नहीं । अब वह अपने स्वामीको और पता नहीं कितने अपने जैसे साथियोंको लेकर लौटेगा !'

'अब प्रथम कार्य है, ध्वस्त परिखा एवं भवनोंका शीघ्र पुनर्निर्माण !' दशग्रीवने सबको दूसरे कार्यमें अविलम्ब लगा देना ही इस आतंकके विस्मरणका उपाय समझा—'कोई बाहरी सहायता इस कार्यमें नहीं मिलेगी । किसीको भी आलस्य करते पाया गया तो क्षमा नहीं किया जायगा ।'

अन्न-भण्डार, शस्त्रागार, अश्व-गजादिके नष्ट होनेकी चिन्ता किसीको नहीं करनी थी । नवनिधियाँ दशग्रीवके समीप थीं । सभी सिद्धियाँ उसकी सेविका थीं । अतः सम्पत्ति, अन्न-धन तो तत्काल भर जाना था । बन तो जाती पुरी भी पूर्ववत् क्योंकि विश्वकर्मा रावणके आदेशकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे । दानव विश्वकर्मा मय स्वयं दशग्रीवके श्वसुर थे; किन्तु रावण नहीं चाहता था कि देवता अथवा दानव देखें कि अकेले वानरने उसकी पुरीकी कैसी दुर्गतिकी है । अतः पुरीका निर्माण करनेमें उसने किसी बाहरी व्यक्तिको बुलाना अस्वीकार कर दिया । यह कार्य, लंकाके ही शिल्पियोंको—वास्तु विशेषज्ञोंको करना था । स्वयं दशग्रीव इसकी देख-रेखमें लग गया ।

x x x x

'सन्देह नहीं कि पवनपुत्र कृत-कार्य हुए ।' समुद्रतटपर प्रतीक्षा करते

वानरोंसे जाम्बवानने कहा—'यह गर्जना उन्हीं की है । वह आकाशमें लहराती उनकी लांगूल दीख रही है ।'

वानर हर्षसे उछलने लगे । वे अपनी पूँछ हिलाने-चूमने लगे । वृक्षोंपर, पर्वतपर चढ़ने-उतरने, कूदने लगे । किसे आशा हो सकती थी कि कल प्रभातमें गये पवनकुमार आज सूर्यास्तसे पूर्व ही लौट आवेंगे ।

हनुमान महेन्द्र पर्वतपर धीरेसे उतरे । लंका-दहनके पश्चात् उन्होंने विश्राम नहीं किया था । लंकामें प्रातः अशोक वाटिकाके फल खाये थे; किन्तु कल प्रातःसे जल नहीं पिया था । उन्हें प्यास लगी थी । महेन्द्र पर्वतपर महर्षि लोमशका आश्रम था उस समय । उनके यहाँ जल पीने चले गये ।

'सरोवरमें स्नान कर लो । जल पी लो !' हनुमानके प्रणाम करनेपर महर्षिने कहा । हनुमानने सीताजीसे प्राप्त चूड़ामणि और मुद्रिका वहीं ऋषिके समीप धर दी और स्नान करने चले गये ।

'मुद्रिका ?' पवनकुमार लौटे तो चूड़ामणि रखी थी, पर मुद्रिका वहाँ नहीं थी ।

'वह तुम्हें चाहिये तो कमण्डलुमें-से निकाल लो ।' ऋषिने कहा—'मैंने तो उसे कमण्डलुमें डाल दिया है ।'

'भगवन् ! मेरी मुद्रिका ?' हनुमानने कमण्डलुमें हाथ डाला तो उसमें बहुत मुद्रिकाएँ लगीं । मुट्ठीभर निकाल लीं और देखकर चकित रह गये । सब मुद्रिकाएँ एक जैसी थीं ।

'उसीमें ढूँढ़ो ।' ऋषिके मुखपर स्मित आया ।

हनुमानजी हाथ डालकर मुट्ठी भर-भरकर मुद्रिकाएँ निकालते गये । कई मुट्ठी निकालकर चकित ऋषिकी ओर देखने लगे ।

'सब श्रीरामकी हैं । सब तुम्हीं यहाँ लाये हो ।' महर्षिने कहा—'प्रत्येक कल्पमें जब रामावतार होता है, हनुमान ऐसे ही लंकासे लौटते समय मुद्रिका यहाँ धर जाते हैं । चिन्मय श्रीरामके आभरण भी चिन्मय हैं । उनमें अन्तर नहीं हुआ करता । अब तुम्हें मुद्रिकाका प्रयोजन क्या है ? चूड़ामणि ले लो श्रीरामके लिए और उनके समीप जाओ ।'

'भगवन् ! आपकी आयु ? 'हनुमानने पूछा ।

'देखते ही हो कि तुम्हारे समान मेरा शरीर भी लोमसे भरा है ।' लोमशने कहा—'जब अपनी सौ वर्षकी आयु पूरी करके एक ब्रह्मा मरते हैं तो उनके सूतकसे शुद्ध होनेके लिए मैं एक रोम तोड़ देता हूँ । इतने रोम तो टूट गये । जब सब रोम टूट जायेंगे, तब मेरी आयु समाप्त हो जायेगी ।'

महर्षिके बाएँ घुटनेपर बहुत थोड़ी दूरीमें रोम नहीं रहे थे । हनुमानजीने उन्हें प्रणाम किया और चूड़ामणि उठाकर उठ खड़े हुए । उन्होंने अपूर्व पौरुष लंकामें प्रकट किया, यह बात मनसे निकल गयी । श्रीराम अपने जनमें अभिमानका लेश भी नहीं रहने देते, यह उन्हीं अनन्त करुणावरुणालयकी कृपा है, यह समझना आञ्जनेयको शेष नहीं था ।

वानर बड़ी व्यग्रतासे वृक्षोंपर, पर्वत-शिखरपर चढ़कर प्रतीक्षा कर रहे । हनुमानने अपना आकार सामान्य बना लिया था । उन्होंने आकर अपनेसे आयुमें बड़े जाम्बवान आदिको प्रणाम किया । अंगदको हृदयसे लगाया ।

'मैंने अम्बा सीताको देखा है ।' हनुमानने कहा—'सम्पातीने जो विवरण दिया था, वह अक्षरथः सत्य निकला ।'

'अब हम मार्गमें तुमसे यात्रा-वर्णन सुनेंगे ।' जाम्बवान उठ खड़े हुए— 'हमें शीघ्र वानरेन्द्र सुग्रीवके समीप पहुँचना चाहिये ।'

सभीको जाम्बवन्तकी बात अच्छी लगी । हनुमानजीने मार्गमें उन्हें अपनी यात्राका वर्णन सुनाया । अब तो सीधे ही किष्किन्धा लौटना था । सब पूरे वेगसे उछलते, दौड़ते चल रहे थे । सुग्रीवका दिया समय समाप्त हो गया, इसकी चिन्ता करनेकी अब आवश्यकता नहीं थी ।

किष्किन्धासे कुछ दूर दक्षिणकी ओर वानरेन्द्रका फलोद्यान मधुबन था । उसमें बहुत अधिक मधु-छत्रक लगे थे । पूरे मार्ग वानर उत्साहमें कूदते—नृत्य करते आये थे । वे बार-बार कूदकर पवनकुमारका स्पर्श करते, उनके कंधोंपर कूद जाते, उनका गुणगान करते । मार्गमें पर्वतपर, वृक्षोंपर वे उत्साहतिरेकमें चढ़ते रहे थे । अंगदने बार-बार भरे कण्ठ कहा था—'आञ्जनेय ! सत्व, बल, वीर्यमें तुम अतुलनीय हो । तुमने हम सबको जीवनदान दिया ।'

'युवराज ! हम भूखे हैं ।' अब वानरोंने मधुबनको देखकर कहा—

'हनुमानजीका भी सत्कार किया जाना चाहिए। ये कितना परिश्रम करके लौटे हैं।'

'यथेच्छ फल खाओ और मधु पियो !' युवराजने आज्ञा दे दी—'उद्यान अपना ही है।'

'अरे ! तुम सब क्या करते हो ?' उद्यान-रक्षक दौड़े—'यह वानरेन्द्र सुग्रीवका रक्षित उद्यान है। इसमें फल तोड़ना या मधु-छत्रक लेना वर्जित है।'

'वर्जित है ! तुम भी मधु पियो !' वानरोंने रक्षकोंका परिहास किया। उन्हें नोंचा भी और उनके मुखपर मधुछत्रक फेंके। अंगदने उपवन-रक्षकोंके प्रधान सुग्रीवके मामा दधिमुखका भी उपहास किया। वे भागे सुग्रीवके समीप पहुँचे।

'युवराज अंगदने आपका मधुबन उजाड़ दिया। वे सब वानरोंको लेकर उद्यानमें घुस आये। कच्चे फल तोड़ फेंके और मधुछत्रक तोड़-तोड़कर सब मधु पीनेमें लगे हैं।' दधिमुखने आक्रोश-भरे स्वरमें कहा—'युवराजने मेरा उपहास किया। मेरे रक्षकोंको वानरोंने मारा है। वे सब वहाँ उत्पात कर रहे हैं।'

'इसका अर्थ है कि वे श्रीजानकीका पता लगा आये। ऐसा न होता तो फल खाने, उत्पात करनेका साहस उन्हें नहीं होता। वह उद्यान तो युवराजका ही है।' सुग्रीवने प्रसन्न होकर कहा—'उनसे कहो कि मैं उनसे मिलनेको आतुर हूँ। वे शीघ्र यहाँ आवें।'

'वानरोंने भरपेट फल खाये। बहुत अधिक मधु पिया—इतना अधिक कि सब शिथिल होकर हनुमानजीको घेरकर बैठ गये थे। अब हनुमान उन्हें सुना रहे थे—'श्रीरामके प्रतापसे, वानरेन्द्र सुग्रीवके तेजसे, आप सबके आशीर्वादसे मैंने लंका जला दी। अब जो कार्य शेष रहा है, उसे आप सब पूर्ण करेंगे।'

'अम्बा सीताका शील और तप ऐसा है कि वे तीनों लोकोंको धारण करनेमें समर्थ हैं। उनको ले आनेके लिए लंकापर चढ़ायी करना सर्वथा उचित है।' हनुमानने बतलाया—'मैंने राक्षसोंके सब महायन्त्र नष्ट कर दिये हैं। भले समुद्र अपनी मर्यादा त्याग दें, हमारी विजय सुनिश्चित है। सुग्रीव,

जाम्बवान और अंगदके सम्मुख युद्धमें कौन टिक सकता है ।'

'पवनपुत्रने यह सब किया; किन्तु हम सबने तो कुछ भी नहीं किया है ।' युवराज अंगद खिन्न स्वरमें बोले—'हमें तो रावणको राक्षसोंके साथ मारकर सीताको ले आना था । अब हम क्या मुख लेकर श्रीरामके समीप चलेंगे ?'

'युवराज ! हम वह भी करेंगे । पवनपुत्र कहते ही हैं कि उन्होंने राक्षसियोंसे पीड़िता वैदेहीको देखा है । हम उन तपोमयीके प्रभावसे ही सफल होंगे ।' जाम्बवानने समझाया—'हम असमर्थ नहीं हैं; किन्तु हमें श्रीरामकी आज्ञानुसार चलना चाहिये । स्वामीके सुयशको समुज्वल करना चाहिये । अतः अब हम सब उनके समीप ही चलें ।'

'युवराज ! आप तो हमारे स्वामी हैं, हमारी अविनय क्षमा करें ।' दधिमुखने लौटकर अंगदसे नम्रतापूर्वक कहा—'वानरेन्द्रने कहा है कि उद्यान आपका ही है । वे तो यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुए कि आपने उद्यानके फलों, मधु-छत्रकोंका यथेच्छ उपयोग किया । क्या हुआ जो कुछ उद्यान नष्ट हो गया । अब वानरेन्द्र आप सबसे मिलनेको अत्यन्त उत्सुक हैं ।'

'हम यहाँ रुके, इसका तात्पर्य वानरेन्द्रने समझ लिया है ।' अंगदने हँसकर कहा—'यदि सब लोग भली प्रकार खा-पीकर तृप्त हो गये हों तो अब हम वानरेन्द्रके समीप चलें ।'

सब उठ खड़े हुए । वहींसे उछले और सीधे किष्किन्धामें राजसदनके सम्मुख भूमिपर उतरे । सुग्रीव स्वयं द्वारपर प्रतीक्षा करते मिले । अंगद और हनुमानने उन्हें प्रणाम किया । हनुमानने कहा—'नियम तपोलीना देवी सीताका दर्शन हमने किया है ।'

'अंगद ! तुमने युवराजके योग्य कार्य किया ।' सुग्रीवने अंगदके कन्धेपर हाथ रखा—'सब लोग मार्ग-श्रमसे श्रान्त, भूखे-प्यासे आये थे । कार्य सम्पन्न करके लौटे सहायकोंका सत्कार कर्तव्य होता है । अब यदि सब लोगोंकी श्रान्ति दूर हो गयी हो और सबने क्षुधा-पिपासा मिटा लिया हो तो हम सब ऋष्यमूकपर लक्ष्मणके समीप चलें । श्रीरामके साथ ही मैं श्रीवैदेहीका पूरा समाचार सुनूँगा ।'

जबसे वाननरोंको सीतान्वेषणके लिए भेजा गया था, सुग्रीवका दिनका अधिक समय श्रीरामके समीप ही व्यतीत करते थे । वानरोंके दल लौटने लगे ।

सबका एक ही समाचार—'कोई पता नहीं लगा ।'

'दक्षिण गया दल अभी आया नहीं ।' सुग्रीवको, श्रीरामको भी एक ही आशा थी—'लंका दक्षिण ही है । इस दलको अवश्य सफल होना चाहिये ।'

विलम्ब होता गया । विलम्बसे व्याकुलता बढ़ती गयी तो सम्भावना भी बढ़ती गयी । समाचार पानेकी आशा न होती तो वानर विलम्ब करनेका साहस नहीं करते !'

आज लक्ष्मणने सम्वाद दिया—'आर्य ! सुग्रीव दक्षिण गये दलके साथ आ रहे हैं । सब प्रसन्न लगते हैं ।'

श्रीराम उत्साहमें उठ खड़े हुए ।

●●●

सम्वाद-निवेदन

'आ गये तुम लोग, सीताको देखा ? वे कहाँ हैं ? कैसी हैं ? क्या करती हैं ?' श्रीरामने आगे आकर आतुरतापूर्वक पूछा—'जीवित हैं जनक-नन्दिनी ? क्या अवस्था है उनकी ?

सुग्रीवने और दूसरोंने भी प्रणाम किया । जाम्बवानने कहा—'पवनपुत्रने सीताजीका दर्शन किया है । ये स्वयं सुनावेंगे ।'

'देव ! अम्बा सीता जीवित हैं !' हनुमानने उठकर श्रीरामकी प्रदक्षिणा की । उनके चरणोंमें प्रणिपात किया । अबतक श्रीराम स्वयं सुग्रीवके साथ शिलापर बैठ गये थे । दूसरे सब नीचे बैठे थे । हाथ जोड़े खड़े हनुमान सम्वाद सुनाने लगे—'भारतभूमिके दक्षिण छोरसे सौ योजन दूर समुद्री द्वीपमें त्रिकूट पर्वतके मध्य शिखरपर रावणकी लंकापुरी है । रावणके अन्तःपुरसे लगे उद्यानमें मैंने उन तेजोमयी परम तपस्विनीके दर्शन किये ।'

'वे पर्णकुटीमें भी प्रवेश नहीं करतीं । शिंशुपाके वृक्षके नीचे बिना

आसन भूमिमें ही बैठी रहती हैं । 'राम-राम' का अखण्ड जप करती हैं । आपमें ही उनका जीवन है । आप उनका उद्धार करेंगे, इस आशापर ही जीवित हैं ।' हनुमानके नेत्र भर आये— 'देव ! उन्हें राक्षसियाँ रात-दिन डराती धमकाती रहती हैं । स्वयं रावण उन्हें मार देनेकी धमकी देता रहता है । उन्होंने तो मरनेका निश्चय कर लिया था । अपनी वेणी वृक्षमें उलझाकर कण्ठमें लपेट ली थी । सौभाग्यवश मैं उस समय पहुँच गया । उनसे इक्ष्वाकुवंशका यश बढ़ा है । आपकी चर्चा चलनेपर वे आनन्दमग्न हो गयीं ।'

'उन्होंने अभिज्ञान दिया है, कहा है— 'मेरे स्वामी ! आपने मेरे कपोलपर जो मनःशिलाका तिलक किया था, वह पुँछ गया है । आपने मेरे लिए एक वायसपर ब्रह्मास्त्र चला दिया था, अब इस अधम राक्षसको क्यों क्षमा कर रहे हैं ?' हनुमानने केशोमें-से चूड़ामणि निकालकर अञ्जलिमें लेकर आगे बढ़ाया— 'इसे देत कहा है कि इसकी मर्यादाकी सुरक्षा आपके करोंमें है ।'

'सीते !' श्रीरामने दाहिने हाथसे चूड़ामणि उठाकर हृदयसे लगाया और उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलने लगी । कुछ क्षणोंतक वे ध्यानस्थ बने रहे ।

'कुमार ! भगवती वैदेहीने आपको प्रणाम कहा है ।' हनुमान लक्ष्मणके समीप आये । सुनते ही लक्ष्मणने घुटने टेककर भूमिपर उन आराध्याके निमित्त मस्तक रखा ।

'उन्होंने कहा है कि कुमार इस कटुभाषिणी अज्ञा अपराधिनीको क्षमा कर दे !'

'मत कहो— मत कहो हनुमान !' लक्ष्मणने दोनों कानोंपर हाथ रखे और फूट-फूटकर रोने लगे— 'वे मेरी आराध्या हैं । अम्बा हैं । ये शब्द सुनने भी पाप हैं ।'

'देव ! अब शत्रुपर तत्काल आक्रमण करके उन आर्याके उद्धारका प्रयत्न करना उचित है ।' हनुमानने देखा कि श्रीराम तनिक स्वस्थ हुए हैं तो पुनः उनके सम्मुख आ गये ।

'जैसे मरणासन्न रोगी महौषधि पाकर जीवित हो जाता है ।' श्रीरामने कहा— 'आञ्जनेय ! इसी प्रकार सीता-समाचार देकर तुमने मुझे जीवित किया है ।'

'स्वामी ! अम्बाने काक-जयन्तका बार-बार स्मरण कराया है ।' हनुमान रुदन करते बोले—'उन्होंने कहा है कि मुझे प्राप्त करनेके लिए शीघ्र रावणको मार दें । कुमार लक्ष्मण ही क्यों मुझे छुड़ानेका यत्न नहीं करते ? अवश्य ही मेरा ही कुछ पाप है कि अग्रज एवं अनुज दोंनोंमें मेरी उपेक्षा कर दी है ।'

हनुमानने देख लिया कि लक्ष्मणके नेत्र अंगार हो उठे थे । वे क्रोध और दुःखसे रुदन करते हुए अपने दोनों त्रोण पीठपर बाँधने लगे थे । बिना एक शब्द बोले अग्रजके समीप उनके दोनों त्रोण उन्होंने लाकर रखे और धनुष तथा खड्ग ला रखा ।

'वे अत्यन्त दुःखी हैं । निरन्तर रुदन करती हैं । उन्होंने कहा है कि आप एक मासमें न आये तो प्राण त्याग देंगी ।' हनुमानने अनुरोध किया—'आप शीघ्र प्रस्थान करें ! मेरे आते समय वे बहुत व्याकुल थीं । मुझे एक दिन रुकनेको कहा; किन्तु इससे उनकी विपत्ति बढ़ जाती । मैंने आश्वासन दिया है कि मैं वानरेन्द्र सुग्रीवका सबसे तुच्छ अनुचर हूँ । सुग्रीव असंख्य वानर लेकर आवेंगे । वे अतुल पराक्रमी हैं । उन्होंने एक बारमें भू-परिक्रमा की है । शीघ्र आकार वे रावण तथा राक्षसोंका विनाश करेंगे ।'

प्रशंसा गुरुजनोंकी उनके सम्मुख की जाती है, मित्रकी पीठ पीछे की जाती है, पुत्रकी कभी नहीं की जाती और सेवककी तब की जाती है, जब वह कार्य सम्पन्न करके आता है । श्रीरामने मुक्तकण्ठसे हनुमानकी प्रशंसा की ।

'केवल वायु, गरुड़ और पवनपुत्र ही समुद्र पार कर सकते हैं । सुग्रीवका कार्य हनुमानने सम्पन्न किया है । बिना आज्ञा भी निर्दिष्ट कार्यसे अधिक कार्य किया । आगामी कार्यके लिए भूमिका प्रशस्त कर दी । हनुमान उत्तम सेवक है ।' श्रीराम आभार-गद्गद स्वर कहते गये—'मुझे, लक्ष्मणको, भरतको, माता कौशल्याको, रघुवंशको, पूरी अयोध्याको हनुमानने जीवनदान दिया है । सबकी पवनपुत्रने रक्षा की है ।'

'मेरे नाथ ! मेरे स्वामी !' हनुमानने व्याकुल होकर चरण पकड़ लिये ।

'इतना प्रिय सम्वाद लाने वालेको देने योग्य मेरे पास कुछ नहीं है । राम कंगाल है ।' श्रीराम उठ खड़े हुए—'मेरे पास मेरा हृदय ही है, अतः मैं आञ्जनेयको आलिंगन देता हूँ । यही मेरा सर्वस्व है । सब साक्षी रहें,

राम अपने आपको हनुमानको दे रहा है ।'

दोनो विशाल बाहु बढ़ाकर, झुककर श्रीरामने बलपूर्वक हनुमानको उठाकर हृदयसे लगाया और देरतक लगाये रहे ।

'यह अन्वेषण-कार्य तो पूरा हो गया ।' कुछ क्षणोंके पश्चात् श्रीराम जब स्वस्थ होकर बैठ गये, सुग्रीवकी ओर देखकर बोले—'अब समुद्र पार कैसे होगा ?'

'आप यहीं इस प्रकारकी बातें क्यों करते हैं ? आप लीलामय हैं, जानता हूँ; किन्तु यह असंगत लीला क्यों ?' सुग्रीव उठ खड़े हुए—श्रीजानकीका पता लग गया, अब उन्हें प्राप्त करनेकी युक्ति ढूँढ़नी है । हम निश्चय समुद्र पार करेंगे । वानर शूरवीर हैं । इनके मनमें आपके प्रति भक्ति है । हम पराक्रम करके समुद्रको पाट देंगे । रावणको मारकर श्रीजनक-नन्दिनीको लाना ही है । आप बुद्धिको व्याकुल मत बनावें । आप धनुष लेकर खड़े होंगे तो समुद्रको शुष्क कर देनेमें आपको विलम्ब होगा ? आप अब दशग्रीवपर क्रोध करें । मैं तो ऐसे शकुन स्पष्ट देख रहा हूँ कि आपकी विजय होगी ।'

'पवनपुत्र ! तुम सीताका पता लाये हो । हम कैसे भी समुद्र पार करेंगे ही ।' श्रीरामको तो सुग्रीवको प्रोत्साहित करना था । अब बोले—'तुमने लंका देखी है । उसकी स्थिति क्या है ? उसके द्वारादि कैसे हैं ?'

त्रिकूटके मध्य शिखरपर बसी लंका सब प्रकार समृद्ध है । उसके सभी निवासी रावणसे प्रेम करते हैं । राक्षस सुखी हैं । उसके चारों ओर चार द्वार थे । उनपर महायन्त्र लगे थे । अत्यन्त बलशाली राक्षस उन द्वारोंके रक्षक थे ।' हनुमानने विवरण दिया—'बहुत सुदृढ़ चिकनी परिखा नगरके चारों ओर थी, जिसपर चढ़नेको सहारा नहीं था । परिखाके बाहर चौड़ी खाई थी, उसमें ग्राह पले थे । स्वतःचालित यन्त्र बाहर और जलमें भी थे ।'

'लंका दुर्ग अत्यन्त दुर्धर्ष था । उसकी प्रत्येक दिशामें खाईसे बाहर भी सरिता, वन अथवा खड़े पर्वतकी सुरक्षा है । नौकाका मार्ग नहीं है ।' हनुमानने पूरा विवरण दिया—'लंका ऊँचाईपर बसी है । उसकी परिखापर यन्त्र लगे थे । सब ओर मुख किये शतघ्नी सजी थीं । पूर्व द्वारपर दस सहस्र योधा द्वार-रक्षक थे । दक्षिण, उत्तर, पश्चिमके द्वारोंपर इतने योधा थे कि मैं

अनुमान नहीं कर सका । नगरकी मध्य कक्षामें भी महायन्त्र लगे थे ।'

'हनुमान ! तुमने सब वर्णन 'थे' कहकर भूतकालके किये हैं ।' श्रीरामके मुखपर स्मित आया । 'अब लंकाकी क्या स्थिति है ?'

'देव ! मैंने पुरीकी प्रायः पूरी परिखा गिराकर खाई पाट दी है । द्वार ध्वस्त कर दिये । कह नहीं सकता कि दशग्रीव कितनी कैसी परिखा हमारे पहुँचने तक बना लेगा और द्वार कहाँ कैसे बनवायेगा ।' हनुमानने हाथ जोड़े निवेदन किया—'मैंने सब महायन्त्र तथा शतघ्नियाँ लात मारकर नष्ट कर दी हैं । शत्रु उनका पुनर्निर्माण बहुत शीघ्र नहीं कर सकता । मैं अनुमान लगानेकी स्थितिमें नहीं था; किन्तु मैंने राक्षसोंको कहते सुना कि इस उत्पाती वानरने लंकाकी चौथाई सेना मार दी ।'

'नगरके बहुत अधिक भवन नष्ट किये हैं मैंने ।' हनुमानने कहा—'शत्रुको सबसे पहिले नगर-परिखा और भवन बनानेमें व्यस्त होना पड़ेगा । वह महायन्त्रोंपर ध्यान अभी नहीं दे सकेगा ।' आञ्जनेयने विवरण पूरा किया—'नगरके बाहरकी सरिता भी अग्निके तापसे मकरादि रहित हो चुकी है । दशग्रीव अनुमान भी नहीं कर सकेगा कि उसका उत्तर शिखर सुबेल, काल तथा शनिश्चरको मुक्त करके अरक्षित कर दिया गया है ।'

'शत्रुको जितना अधिक समय मिलेगा, वह अपनी सुरक्षा उतनी दृढ़ कर सकेगा । अतः उसे समय नहीं देना चाहिए !' अब आञ्जनेयने प्रस्ताव किया—'आप अविलम्ब प्रस्थान करें । आपके प्रताप-प्रभावने ही इतना कार्य किया है । अन्यथा मुझ तुच्छ वानरमें तो केवल शाखाओंपर कूदनेकी शक्ति है । अम्बाका उस दारुण विपत्तिसे यथाशीघ्र परित्राण परमावश्यक है । दशग्रीवको समय नहीं मिलना चाहिये । अतः शेष कार्यको सम्पन्न करनेके लिए अब प्रभुको प्रयाण करना चाहिये ।'

●●●

विजय-यात्रा

'अभिजित—मध्याह्नका यह विजय-मुहूर्त है। वानरेन्द्र सुग्रीव! हम तत्काल यात्रा करें!' श्रीरामने देख लिया कि लक्ष्मणको पल-पल असह्य हो रहा है, अतः उठ खड़े हुए। अपने त्रोण कसते हुए ही कहा—'मेरा दाहिना नेत्र, दक्षिण भुजा फड़क रही है। हमारी विजय निश्चित है। सेनाके आगे वानरोंके साथ नील चलें।

'मार्गमें जल, फल, कन्द, मधु मिलेंगे। उन्हें तबतक कोई स्पर्श न करे, जबतक उनकी परीक्षा न कर ली जाय। दुरात्मा राक्षस उन्हें दूषित कर दे सकते हैं।' श्रीरामने सबको सावधान किया—'जलादिकी परीक्षा करनेवाले अग्रिम दलके साथ चलें।'

'आप चिन्ता न करें।' सुग्रीवने कहा—'हम उपदेवता सही; किन्तु वानर हैं। हमारे सब लोग दृष्टि पड़ते ही विष-मिश्रित पदार्थ पहिचान लेते हैं।'

'फिर भी सावधानी आवश्यक है।' श्रीरामने सूचित किया—'शत्रु महामायावी है। कहीं नीची भूमि पड़े तो कपि उछलकर पहिले देख लें कि शत्रु वहाँ छिपे तो नहीं हैं। गुफाओंके समीप पर्वत-शिखरोंपर चढ़नेसे पूर्व भी यह सावधानी रखी जाय। सेनाके निर्बल अंशको यहीं रक्षार्थ रखो।'

'आप हनुमानके कन्धेपर विराजें। कुमार लक्ष्मण अंगदके कन्धोंपर बैठेंगे।' सुग्रीवके कहते ही हनुमान और अंगद सम्मुख आकर वीरासनसे बैठ गये। सुग्रीवने शेष व्यवस्था सूचित की—'जाम्बवान और सुषेण दोनों अनुभवी वृद्ध आपके पार्श्वरक्षक होकर चलेंगे। मैं पृष्ठ रक्षक रहूँगा। आपके अनुग्रहसे हमारी राजधानी उत्तर, पूर्व और पश्चिमसे पूर्णतः रक्षित है। दूरतक कोई ऐसा नहीं जो विरोध करे। वानरोंके दल अभी दिशाओंमें जाकर देख आये हैं। दक्षिण हम चल रहे हैं। इधर भी केवल लंका है, जिसपर हमीं आक्रमण कर रहे हैं। कोई सेनाका अंश दुर्बल नहीं है। कोई आपकी सेवासे वञ्चित नहीं रहना चाहता।'

श्रीरामने गणपतिको मस्तक झुकाया । मनमें सिंहवाहिनीका स्मरण किया और गगनमें उन अष्टभुजा ज्योतिर्मयीको प्रत्यक्ष सानुकूल देखकर प्रसन्न हो गये । वे तो स्वतः सेवाको समुत्सुक थीं ।

'प्रचण्ड-पराक्रम श्रीरामकी जय !'

'अमित-विक्रम लक्ष्मणलालकी जय !'

'उग्रवीर्य वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय !'

गगन वानरोंके जयघोषसे गूँज उठा । इधर लंकामें भगवती वैदेहीका वाम नेत्र, वाम भुजा फड़की तो दशग्रीव और प्रायः सब राक्षसोंके भी वही अंग फड़कने लगे; किन्तु मन्दोदरी और राक्षसियोंके दक्षिण नेत्र, दक्षिण बाहु फड़के । रावणके भवनपर गीध आकर बैठा । वह उड़ानेपर भी बार-बार वहीं बैठता था । पता नहीं कहाँसे असंख्य काले काक आ गये । वे इतने धृष्ट कि राक्षसोंके ही नहीं, राक्षसेश्वर तकके मस्तकोंपर बैठकर ललाटपर चञ्चु प्रहार करते थे । लंकाके भवनोंपर, मन्दिरोंपर भी लगी ध्वजाएँ बिना वायु टूट गिरीं ।

यहाँ अंगदके कन्धेपर बैठे लक्ष्मणने आगे चलनेको उद्यत हनुमानके कन्धेपर बैठे अग्रजसे कहा—'आर्य ! हम लोग शीघ्र रावणको मारकर अम्बा मैथिलीको लेकर लौटेंगे । देवता हमारे अनुकूल हैं । देखिये, नीलकण्ठ और श्वेत चील बार-बार हमारे साथ आगे चलना चाहते हैं । वायु पीछेसे आगे गति दे रहे हैं । मृगमाला दाहिने आगे दौड़ती जा रही है । मैंने गत रात्रिमें गगन ध्यानसे देखा था । इस समयके लग्नके अनुसार मंगल हमारे षष्टम और शनि अष्टम हैं । शेषग्रह उच्चके या स्वगृही अनुकूल स्थानोंमें हैं । यह यायी-जयद योग चल रहा है ।'

सहसा सुग्रीवने सिंहनाद किया । गर्जना करते सूचना दी सम्पूर्ण सेनाको—'सब लोग जहाँ तक सम्भव होगा पृथ्वीपर कम पैर रखेंगे । आकाशमें उछलते ही चलेंगे । मार्गमें कहीं विश्राम नहीं । जल-फलका आहार सागर तटपर पहुँचकर होगा । हनुमान और अंगद इतनी मन्द गतिसे उछलेंगे कि हम सबके मध्य ही रहें, हमसे पहिले सागर तटपर न पहुँचें । नीलकी गतिको आगे रखना है । अब सब कूदें—'जय श्रीराम !'

श्रीरामने मुख पीछे करके प्रशंसाकी दृष्टिसे सुग्रीवकी ओर देखा। वानरेन्द्रने सुरक्षा, सावधानीके सब निर्देशोंको अनावश्यक बना दिया था। कपि सेनाको सर्वथा सुरक्षित रखनेकी निर्दोष योजना कर दी थी। गगनमें भी वे छायाकी भाँति अंगदके पीछे ही थे। वन, पर्वत, आकाशको घेरती वह असंख्य वानर-सेना उछलते समय भी इतनी व्यूहबद्ध रह सकती है, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। केवल सामान्य वानरोंने पृथ्वीपर मध्यमें पद टेके; किन्तु इतनी शीघ्र फिर कूदे कि उनका भूमिपर उतरना लक्षित करना कठिन था। सब गगनमें मानों उड़ रहे हों, ऐसे सीधे जाकर दक्षिण-सागर तटपर उतरे।

किसीका ध्यान नहीं गया कि नीचे अरण्यमें उड़ते जानेसे कितना अन्धकार हो गया था। कितने वृक्ष और शाखाएँ उनके वेगसे उठी आँधीने तोड़े-उखाड़े। वन पशुओं और पक्षियोंमें कितनी व्याकुलता, दौड़ा-दौड़ मची। सबकी दृष्टि आगे थे। सब लक्ष्यदर्शी थे। सबको नीलका पीछा करना था और नीलको सीधे वहाँ उतरना था, जहाँसे हनुमान लंकासे लौटकर उतरे थे। नीलका देखा था वह स्थान। नील वहीं उतरे तो पलोंमें पूरी वानर-सेना वहाँ उतर गयी।

वर्तमान भूगोलकी भाषामें बोलना हो तो दक्षिण भारतका वह पूरा भाग जो रामेश्वरसे तिरु-इन्द्रम तक सीधी रेखा खींचनेसे नीचे आवेगा, वानर-सेननासे भर गया। सम्भवतः पश्चिम समुद्रतटका और ऊपर तकका भाग।

'वानरेन्द्र ! अब सबको खाने-पीनेकी अनुमति दे दो।' श्रीरामने हनुमानके कन्धेसे उतरते ही कहा—'हम लोग यहाँ सागरके समीप ही अपना शिविर स्थापित करें।'

वानर पूँछ पटककर, उछलकर गर्जना कर रहे थे। बार-बार जयनाद गूँज रहा था। वे पर्वतोंपर चढ़ते थे, वृक्ष उखाड़ते तोड़ते थे। समीपमें सरोवर थे, सरिता थी। जलका सम्यक् सुयोग था। वन पक्व फलोंसे लदा था। कदाचित् उन मर्यादा पुरुषोत्तमका ही प्रभाव होगा कि उस प्रदेशमें (कन्याकुमारीके आसपास) अबतक सभी महीनोंमें पका आम मिलता है।

वनपशु व्याकुल होकर भाग खड़े हुए। पक्षी चिल्लातते दूर चले गये। वानर पर्वतपपर चढ़कर पानीमें कूदते थे। उनका सायंकालीन स्नान

चल रहा था ।

'सबको अपना-अपना दल सम्हाल लेना चाहिये ।' सुग्रीवने यूथपोंको आदेश दिया—'हम शत्रुके समीप हैं, अतः रात्रिमें भी हम सबको सावधान रहना है ।'

नीलने तत्काल सबकी व्यवस्था देखी । वानरोंको फल-कन्द ही आहार करना था । उसका यहाँ कोई अभाव नहीं था । नीलको केवल निर्देश करना था कि कौनसे यूथप अपने यूथको लेकर कहाँ रात्रिमें रहेंगे । सुरक्षाकी सबसे अधिक आवश्यकता समुद्रकी ओरसे थी । हनुमान, अंगद, सुग्रीव, जाम्बवान, सुषेण नील आदि प्रमुख यूथप श्रीराम-लक्ष्मणको घेरकर समुद्रकी ओरसे सावधान थे ।

श्रीराम-लक्ष्मणने स्नान करके सायं-सन्ध्या सम्पन्न की । स्वयं सुग्रीव पर्णपुटकमें जल और मधुर फल लेकर उपस्थित हुए । अंगद-हनुमानने कोमल पत्र तोड़कर श्रीरामके लिए पत्र-शय्या सजा दी ।

'कब सीताका समुद्धार होगा ! कब यह शोक दूर होगा !' श्रीराम सचिन्त हो उठे ।

लक्ष्मणने आश्वासन दिया—'आर्य ! अब आप दशग्रीवपर क्रोध करें, केवल इतना ही विलम्ब आर्या अम्बाके उद्धारमें है । अब तो शोकका नहीं, उत्साहका समय है ।'

'रात्रिमें सबको बहुत सावधान रहना चाहिये ।' श्रीरामने सुग्रीवको समीप बुलाया—'दशग्रीव और उसके अनुचर, निशाचर हैं । रात्रिमें उनका बल बढ़ जाता है ।'

'आपका प्रताप और अशोक वाटिकामें बैठी तपस्विनी अम्बाका आशीर्वाद आपके जनोंकी कैसी रक्षा करता है, मैं इसका प्रत्यक्ष अनुभव कर चुका हूँ ।' हनुमानने कहा । वे अंगदके साथ श्रीरामका चरण संवाहन करने आ बैठे थे ।

'मित्र सुग्रीव ! इस अपार उदधिको हम सब कैसे पार करेंगे ?' अधलेटे श्रीरामने अपने वाम भागमें बैठे सुग्रीवकी ओर देखा—'अब हम सागरतट

तक तो आ चुके हैं ।'

'देव ! हम वानर रात्रिको निष्क्रिय हो जाते हैं ।' सुग्रीवने सरलतापूर्वक कह दिया—'समुद्र आपके प्रतापसे सूख जायगा, यह मुझे विश्वास है । लेकिन इसपर विस्तारसे विचार कल प्रातः करना अच्छा है । अभी सब वानर यूथप भी श्रान्त हैं । सबको विश्राम करना चाहिये ।'

श्रीराम सदाके संकोचीनाथ हैं । उन्होंने शीघ्र लोचन बन्द कर लिये । लक्ष्मण धनुष चढ़ाये वीरासनसे बैठ ही गये थे । हनुमान, अंगद, जाम्बवान, नील और स्वयं सुग्रीव पूरी रात्रि सतर्क जागते रहे ।

●●●

दशग्रीवका दर्प

'अब क्या होने वाला है ?' लंकामें हनुमानजीके लौटनेके क्षणसे ही सब अत्यन्त आतंकग्रस्त हो गये थे । दूसरे तो सामान्य थे, मेघनाद तकका मन कोई समाधान नहीं पाता था । वह भी सोचता था—'मेरे सब दिव्यास्त्र उस वानरपर व्यर्थ हो गये । ब्रह्मास्त्रसे भी वह पूरा मूर्छित नहीं हुआ था । अब उसके स्वामी और उसके जैसे असंख्यों वानर आवेंगे ? उसके जैसे तो सम्भव नहीं । उसके स्वामीने अवश्य अपना सर्वश्रेष्ठ सेवक भेजा होगा; किन्तु वह फिर आवेगा । उसके असंख्य सहायक साथ होंगे और उसके स्वामी ? अब इस पुरीका विनाश निश्चित है ।

'इस पुरीका—राक्षस कुलका विनाश निश्चित है ।' इसमें अब किसीको सन्देह नहीं था; किन्तु सब जानते थे कि दशग्रीव विरोध सुननेका अभ्यासी नहीं है । अतः कोई कुछ कहनेका साहस नहीं करता था । राक्षसोंमें चाहे जितने दुर्गुण हों; किन्तु वे मनस्वी थे । स्वामिभक्त थे । उन्होंने दशाननके लिए प्राणदानका मनमें प्रण कर लिया—'जिनके संरक्षणमें हमने दीर्घकाल तक सब सुख भोगे, अब उनका साथ, उनका अनुगमन करनेमें यदि मृत्यु आती है तो आवे ।'

'हरि या हरिका भजन करके, इनकी शरण होकर अथवा ज्ञानी या योगी तो सदासे मुक्त होते आये हैं। धर्माचरण करनेवालोंकी सद्गति हो, इसमें किसीकी विशेषता क्या है ?' दशग्रीवको भी राक्षस कुलका विनाश सुनिश्चित दीखता था; किन्तु उसका दर्प था—'दशाननके भक्तोंका—रावणका अनुगमन करनेवालोंका उद्धार होगा ! जिन्होंने हठ पूर्वक सम्पूर्ण जीवन अधर्म किया है, गौ-ब्राह्मणोंकी हत्या तथा सुरापान-अनाचार, उत्पीड़नको व्यसन बनाया है, रावणका अनुगमन करके उनका उद्धार होगा। लंकामें केवल वे रह जायेंगे पीछेके लिए जो रामके अथवा उनमें अनुरक्त विभीषणके अनुगामी होंगे। दशग्रीव अपने अधर्मी, अत्याचारी, लोकोत्पीडक अनुयायियोंका उद्धार करा सकता है, यह त्रिभुवन देखेगा।'

'विभीषण ? इस विभीषणको यहाँसे हटाना होगा।' रावण अपने ढंगसे सोचता था—'अब इसके लिए यहाँ स्थान नहीं है। अन्ततः इस पुरीका कोई रक्षक भी तो रहना चाहिये; किन्तु अभी यहाँ नहीं। अभी यहाँ दशग्रीवका दर्प नृत्य करेगा और दर्पसे समुद्धार होता है, यह संसार देखेगा।'

'दर्पसे समुद्धार !' अपने एकान्त कक्षमें उसने अट्टहास किया। उस परम वेदज्ञ, सकल शास्त्र निष्णात तन्त्रोंके सर्वश्रेष्ठ विद्वानका दर्प हुंकार कर रहा था—'आगम और निगमोंके मार्ग ठीक हैं, उनसे उद्धार होता है; किन्तु ये हीनसत्व प्राणियोंके लिए हैं। दशग्रीवने सदा अपना मार्ग स्वयं बनाया है। अपने और अपने आश्रितोंके समुद्धारका स्वतन्त्र राजपथ प्रशस्त करेगा वह।'

राक्षसोंमें सबके सब विश्वसनीय और दशग्रीवके भक्त ही नहीं थे। उनमें भी दुर्बल हृदय थे। उनको जब विनाश सुनिश्चित दीखा तो उन्हें एकमात्र विभीषणसे कुछ आशा लगी। उन्होंने विभीषणसे चुपचाप मिलना और अपनी आशंका प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया।

विभीषणके स्वभावमें छल-कपट, षड्यन्त्र नहीं था। वे निश्छल, सरल हृदय थे। अग्रजके हृदयसे हितैषी थे और जब भाईने निकाल दिया, श्रीरामके शरणापन्न हुए तो सच्चे हृदयसे उनके हो गये। उस समय उनको लंकासे दो वर्गके राक्षसोंसे सहायता-सूचनाएँ मिलती रहीं। एक तो ये दुर्बल हृदय जो

अभी उनसे मिलते थे । दूसरे उनके स्वजन पत्नी, पुत्री, सेवक जो लंकामें छूट गये थे । क्योंकि लंकाके वे वास्तविक व्यवस्था नियन्त्रक रहे थे, उनके विश्वसनीय और उनमें आस्था रखने वाले लोग भी लंकामें पर्याप्त थे । वे भी इन दिनों बहुत व्याकुल थे ।

सबसे अधिक आतंकग्रस्त थीं वे राक्षसियाँ जिन्हें रावणने सीताजीको सन्त्रस्त करनेके लिए नियुक्त कर दिया था । उन्होंने त्रिजटा स्वप्न सुना और सबेरे ही उस स्वप्नको सत्य होते देखा था । वानर आ गया, यह सुनते ही वे सब स्वप्नके शेष भागको सत्य समझने लगी थीं । जब वानरको बाँधकर उसकी पूँछ जलानेका उद्योग राक्षस कर रहे थे तब भी वे भयभीत थीं । परस्पर कह रही थीं—'ये हमारे सब लोगोंकी मति मारी गयी । अब यह वानर अपनी पूँछ फिराकर पुरी भस्मकर देगा ।'

उनकी आशंका सत्य सिद्ध हो गयी थी । अतः राक्षसोंके विनाशमें, दशग्रीवके मारे जानेमें और विभीषणके राजा होनेमें अब उन्हें तनिक भी सन्देह नहीं रहा था । अब मनसे वे विभीषणकी सेविका हो गयी थीं । लुक-छिपकर विभीषणके घर चली जाती थीं और उनकी पत्नी सरमाके पदोंमें प्रणामकर आती थीं । अब वे बार-बार श्रीजानकीसे क्षमा माँगती थीं । उनसे कहती थीं—'देवि ! हम अब भी यदा-कदा अभिनयको विवशा हैं ।'

'कोई अशोकोद्यानकी ओर न जाय !' दशग्रीवने अपने अन्तःपुरमें कठोर निर्देश दे दिया था । उसकी कोई रानी उधर नहीं जाती थी । वाटिका ही नहीं थी और न इतनी शीघ्र लगायी जा सकती थी, अतः वाटिकाकी सेविकाएँ हटा ली गयी थीं । मध्यम कक्षमें रहने वाले वाटिका-रक्षकोंको हनुमानने मार ही दिया था । वाटिकाके अभावमें दूसरे रक्षक नियुक्त नहीं हुए । कहना यह चाहिये कि दशग्रीवको इधर ध्यान देनेका अवसर नहीं मिला ।

श्रीजनक-नन्दिनीने अपनी रक्षामें नियुक्त राक्षसियोंको अभय दे दिया था । अब यदा-कदा किसीके आगमनकी आशंका होनेपर चौंककर वे शस्त्र उठाकर भय दिखानेका अभिनय करती थीं । वे अपनेमें-से एक-दो-को नियुक्त रखती थीं यह देखनेको कि अन्तःपुरकी ओरसे कोई आता तो नहीं दीखता । हनुमानजी भले आकार चले गये थे, किन्तु उनके आतंकने भी वैदेहीका रात-

दिन सन्त्रस्त किया जाना समाप्त कर दिया था ।

'जो भी उपलब्ध पाषाण हों, उनसे ही परिखा और ध्वस्त भवन शीघ्र बना दिये जायें !' रावणने यह आदेश दिया था । उसके वास्तु शिल्पियोंकी प्रशंसा करनी होगी । अत्यल्प कालमें उन्होंने परिखा पूर्ववत् सुदृढ़ बना दी । ध्वस्त भवनोंको भी आवास योग्य बना दिया और ऐसा बना दिया कि भले वे स्वर्णके नहीं रहें, कम सुन्दर नहीं बने । उनमें और परिखामें भी आकर्षक कला व्यक्त हुई । महायन्त्रोंकी ओर ध्यान देनेका अवकाश नहीं मिला, क्योंकि छलांग लगाने वाले वानरोंके आनेकी ही सम्भावना थी, खाईको पुनः खोदना अनावश्यक मानकर छोड़ दिया गया ।

अवसर ही कितना मिला ? रात-दिन परिखा या भवन निर्माण वह कठिनाईसे पूरा भी नहीं हुआ था कि पता लगा, वानर सेना समुद्र पार आ पहुँची । दशग्रीवने आदेश दिया—'पुनर्निर्माण कार्य अत्यधिक गतिसे अहर्निश चलाते रहा जाय । उसे इसी सप्ताह पूरा करो ।'

'शत्रु सुना समुद्र पार आ गया । अब हमें क्या करना है ?' रावणने अपने सब मन्त्रियोंको बुलाया । संयोगवश कुम्भकर्णका जागरण दिन था । अतः उसे और मेघनादको भी बुला लिया गया मन्त्रणा सभामें । रावणने एक बार सबकी ओर देखा—'राम सम्भवतः हमपर घेरा डालना चाहते हैं ।'

'हम न नीति जानते, न शत्रु पक्षकी शक्ति । इसे जाननेकी हमें आवश्यकता भी नहीं है ।' सब हाथ जोड़कर बोले । वे जानते थे कि उनका अधीश्वर क्या सुनकर सन्तुष्ट होगा । उन्हें उसको सन्तुष्ट रखना था । परिणामकी चिन्ता करने बैठो तो दुर्दम दशग्रीव अभी मार दे सकता है । अतः उनका एक स्वर—'हमारे पास अमोघ अस्त्र हैं । हमने देवता-दैत्य सबको जीता है । लोकपाल कुवेरसे पुष्पक हमने छीना । दूसरे लोकपाल वरुणकी पुत्री छीनकर हम ले आये । हमारे सम्मुख ठहरे ऐसा त्रिलोकीमें है कौन ? वर प्राप्त सुरासुर अजेय युवराज इन्द्रजित शत्रुको सेना सहित अकेले मार सकते हैं । अतः इसमें विचार करने जैसी तो कोई बात नहीं है ।'

'कोई देवता, दानव, दैत्य आपको जीत नहीं सकता ।' महामन्त्री प्रहस्तने कहा—'हमने प्रमाद किया, उपेक्षाकी, इसलिए वह वानर बचकर चला

गया । अब या तो वे सागरसे इस ओर आवेंगे ही नहीं, या हम आनेपर सबको मार देंगे ।'

'मैं अकेले सबको मार आता हूँ ।' दुर्मुख उठ खड़ा हुआ । उसके साथ वज्रनख, यमदंष्ट्रा, महोदर, महापार्श्व, विरूपाक्ष, अग्निजिह्व भी अस्त्र-शस्त्र लेकर उठे—'आप हमें आज्ञा दे दें । हम उन्हें अभी मार आते हैं ।'

'ये सब भाग तो नहीं जाना चाहते ? अथवा शत्रुसे मिलनेका सुयोग चाहते हैं ?' दशग्रीवने सशंक सबकी ओर देखकर विभीषणकी ओर देखा । वह अनुमान करना चाहता था कि विभीषण इनसे मिलकर कोई षडयन्त्र तो नहीं कर रहे हैं ।

'शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिए साम-दाम और भेदसे काम न चले तब दण्ड अर्थात् युद्धकी घोषणा अनिवार्य होती है ।' विभीषण हाथ जोड़कर उठे और बोलने लगे—'शत्रु असावधान हो तब उसपर आक्रमण उचित होता है ।'

'परायी स्त्रीका अपहरण आयु और यशका नाशक होता है ।' विभीषणके स्वरमें रोष आया—'सब ये लोग वकवाद करने उठे हैं, आपके सम्मुख बातें बनाते हैं कि आप आज्ञा दे दो तो ये संसारमें एक भी वानर और मनुष्य जीवित नहीं छोड़ेगे; किन्तु एक अकेला वानर आया था, उसने पूरी पुरी जलादी, तब ये कहाँ गये थे ? इनके अपने भवन भस्म कर रहा था वह, तो ये सो रहे थे या प्रवासमें पधारे थे ?'

'राक्षसेश्वर ! इन सबकी बातें सुननेसे विपत्ति बढ़ेगी । इनकी वीरता केवल बातों तक है ।' विभीषणका स्वर गम्भीर हुआ—'जानकीके कारण ही यह भय आया है । उनकी सेनामें पता नहीं हनुमान जैसे और कितने होंगे । अतः जबतक राम समुद्र पार करके लंकापर चढ़ाई नहीं कर देते उससे पूर्व उनकी भार्याको छोड़ देना चाहिये । इसमें सबका हित है, सबका जीवन है । अत क्रोध त्यागकर आप हमपर प्रसन्न हों । ऐसा करें जिससे हमारे पुत्र तथा वन्धु-वान्धव जीवित रहें ।'

'यह बात क्या है ? मैं पुरीको दूसरे प्रकारकी देखता हूँ । तुमने रामकी पत्नीका हरण किया है ?' कुम्भकर्ण क्रुद्ध स्वरमें सीधे रावणकी ओर देखकर अपने घन गर्जन स्वरमें बोला 'यह काम ही अन्यायका हुआ । अनुचित हुआ ।

उस समय तो तुमने मुझसे पूछा नहीं । अपने मनसे सीताका हरण किया । सौभाग्यकी बात है कि उस हरणके समय ही रामने तुम्हें मार नहीं डाला । अवश्य वे वहाँ रहे नहीं होंगे । लेकिन जब सीताको ले ही आये हो तो पट्टमहिषी बना लो ।'

'सीता किसी प्रकार रामके अतिरिक्त दूसरेको स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं है ।' रावणने शान्त स्वरमें कहा ।

'उसकी स्वीकृतिकी प्रतीक्षा आपने बहुत कर ली ।' महापार्श्व उठा— 'आप ईश्वरोंके भी ईश्वर हो । एक स्त्रीकी इच्छाका इतना आदर आपकी उदारता है; किन्तु वह नहीं मानती तो बल प्रयोग राक्षसोंमें बुरा तो नहीं माना जाता और आपकी भुजाओंमें असीम शक्ति है ।'

'तुम कदाचित् नहीं जानते कि मैंने अप्सरा श्रेष्ठ पुञ्जिक स्थलीसे बलात्कार किया था ।' दशग्रीव वैसे ही शान्त बोल रहा था—'वह रोती ब्रह्माके समीप गयी तो सृष्टिकर्ताने शाप दे दिया कि रावण अब यदि दूसरी किसी स्त्रीको बलपूर्वक घर्षित करना चाहेगा तो उसके सिरके सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे ।'

'फिर भी तो कोई समस्या नहीं है । हम राक्षसोंमें छल भी कहाँ वर्जित है ?' कुम्भकर्ण बोला—'तुम रामका रूप भी तो बना सकते हो ।'

'मैंने प्रयत्न किया था ।' रावणने बताया—'जानते ही हो कि मायासे किसीका रूप धारण करनेके लिए उसके रूपका गाढ़ चिन्तन करना पड़ता है । दूर्वादल श्याम रामका चिन्तन करते ही चित्तसे सब अधर्म वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं । उस समय परस्त्री पानेकी तो कल्पना ही अत्यन्त घृणास्पद लगती है ।'

'धन्य श्रीराम !' विभीषणके मुखसे सहसा निकला ।

'धन्य राम !' कुम्भकर्णने भी कहा । फिर दो क्षण चुप रहकर बोला— 'तुमने काम तो बहुत बुरा किया; किन्तु अब चिन्ता मत करो । मैं तुम्हारे सब शत्रुओंको खा लूँगा । तुम निश्चिन्त सुरापान करो और मन माना भोग भोगो ।'

कुम्भकर्ण यह कहकर उठा और सभागृहसे बाहर गया तो रावणभी खुलकर हँसा । वह उठ खड़ा हुआ । सभा विसर्जित हो गयी । दशग्रीव ठीक समझ गया था कि अब सायंकाल कुम्भकर्ण सीधे अपनी गुफामें जायगा । वहाँ

उसके लिए महिष और मद्यघट हैं । खा-पीकर उसे सो जाना है । एक बार सो गया तो उसे आजकी कोई बात स्मरण भी आवे तो ६ महीने पीछे आवेगी ।

'राम कहाँ हैं ?' सभागृहसे निकलते ही कुम्भकर्णने द्वारपालसे पूछा ।

'सुना है—समुद्र पार हैं ।' द्वारपालने बतलाया ।

'अच्छा !' कुम्भकर्णको लगा कि समुद्रपार जानेसे पूर्व उसे अल्पाहार कर लेना चाहिये । वह उनीदा हो उठा था । अपनी गुफामें जाकर जो मिल सका, मुखमें डालकर तनिक लेटा । अब उसे निद्रा आ गयी तो उसका अपराध ?

दशग्रीव अपने अन्तःपुरमें पहुँचा तो मन्दोदरीने चरण पकड़ लिये—'मेरे स्वामी ! आप मुझपर कृपा करें ! जिनका दूत इतना समर्थ है, उनके आनेपर राक्षस कुलका क्या होगा ? सीता कालरात्रि होकर लंकामें आयी है । उसे शीघ्र विदा कर दें यहाँसे कि मेरा सौभाग्य सिन्दूर अम्लान रहे ।'

'सचमुच स्त्रियाँ बहुत भीरु होती हैं !' दशग्रीवने उठाकर पट्टमहिषीको हृदयसे लगाया—'तुम व्यर्थ मत डरो । अभी तो मैं अपने शूरोंसे मन्त्रणा कर रहा हूँ ।'

वह अन्तःपुरसे भवनके निजी मन्त्रणा कक्षमें आ गया । मेघनाद तथा दूसरे मन्त्रियोंको उसने बुलवा लिया । विभीषण अग्रजके हितकी चिन्तासे व्यस्त स्वयं दशग्रीवसे उसके सदनमें मिलना चाहते थे । उन्हें देखते ही दशग्रीवके मनमें आया—'कितना सरल, निश्च्छल है । इसे अब राक्षसोंके मध्य नहीं रहना चाहिये ।'

'आप जानते हैं कि मुझे साम नीति प्रिय है । अतः आप मेरी धृष्टता क्षमा करें ।' यद्यपि विभीषणकी रावणने उपेक्षा की थी, उन्हें सदाकी भाँति आसनपर बैठनेका संकेत नहीं किया था; किन्तु इस ओर ध्यान न देकर हाथ जोड़कर विभीषण स्वयं कहने लगे—'आप विद्वान हैं, अलक्ष्यके इगितको अच्छी प्रकार जानते हैं । जबसे जानकी लंका आयी हैं तबसे यहाँ अपशकुन आरम्भ हो गये हैं । अग्नि चिनगारियाँ फेंकते हैं । दूध फट जाता है और दही शीघ्र सड़ने लगता है । दिनमें गीध और रात्रिमें उलूक राजसदनपर बैठकर बोलते हैं । मोह या लोभवश आपको मेरी बात न रुचे तो मेरा अभाग्य । सबके लिए अनिष्टका समय आ गया है । मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि सीता रामको लौटा दें ।'

'विभीषण ठीक कहते हैं ।' रावणके नाना सुमालीके जयेष्ठभ्राता माल्यवन्तने कहा—'मुझे भी यही उचित लगता है कि एक नारीके लिए सबका विनाश बुलाना अच्छा नहीं ।'

'ये दोनों दुर्मुख मुझे भयभीत करना चाहते हैं । इन्हें किसने बुलाया ?' रावण क्रुद्ध हो उठा—'मुझे किसीका भय नहीं है । देवताओंको लेकर इन्द्रभी रामकी सहायता करने आता हो तो आ जाय । हमारा वे सब कुछ बिगाड़ नहीं सकते ।'

'तेरी मति भ्रष्ट हो गयी है । हमने समझा था कि तुझ दौहित्रके आश्रयसे हमें पृथ्वीपर रहना सुलभ होगा; किन्तु तू अपने विनाशपर उतर आया है ।' वयोवृद्ध दैत्य श्रेष्ठ माल्यवन्त उठे और जाते-जाते कहते गये—'हमने इसी प्रकार अनेक बार बरदर्पित दैत्य-दानवोंका विनाश देखा है । हमको फिर पातालमें ही जाना पड़ेगा ।'

'सब उद्यत हो जाओ ! सेनाको सन्नद्ध कर दो ! सब योधा सजग रहें । रामको समुद्रपार करते समय ही नष्टकर दो ।' रावणने आज्ञा दे दी ।

मन्त्रियोंको एक बार फिर जाना पड़ा । दशग्रीव फिर राजसभामें आगया । अब सेनाको सावधान करके प्रधान शूर तथा मन्त्री आकर नाम लेकर राक्षसेश्वरको प्रणाम करके अपने निर्दिष्ट स्थानपर बैठने लगे । सभी मन्त्री, प्रधान योधा आगये । पता लग गया कि कुम्भकर्ण सो चुका है । सबके बैठ जानेपर दशग्रीवने प्रधानमंत्री प्रहस्तकी ओर देखा—'मातुल ! तुम क्या ठीक समझते हो ?'

'राक्षसेश्वर मन उदास मत करें ।' प्रहस्त पुरान घाघ था । अपने इस प्रचण्ड भागिनेयका रुख समझकर इसे प्रसन्न रखते हुए ही प्रधानमंत्री बन सका था । बोला—'शत्रुपर आक्रमण करें । अवश्य हम विजयी होंगे ।'

'आप सब कृतविद्य हैं । आपकी सम्मतिसे किये गये कार्य सदा सफल हुए हैं । एक कपिने आकर लंकाका अपमान किया है, अतः सीताको देनेका प्रश्न ही नहीं उठता ।' दशग्रीवने सबकी ओर देखा—'हमें दशरथके पुत्रोंको मारना है, यह मानकर उचित सम्मति दें ।'

'मैं आपसे पुनः प्रार्थना करता हूँ ।' विभीषण हाथ जोड़कर अत्यन्त विनम्र होकर बोले—'सीता इस पुरीके लिए सर्पिणी सिद्ध हो चुकी है । उसे

लौटा दीजिये । ये आपके सम्मुख बड़ी डींगें हाँकनेवाले कोई रामके संग्राममें खड़े नहीं होंगे । रामके क्रुद्ध होनेपर त्रिभुवनमें भागकर भी बचना सम्भव नहीं होगा ।'

'आप हमारा अपमान कर रहे हैं । हमें भयभीत क्यों करते हैं ? प्रहस्त क्रोधपूर्वक बोला—'हम मानवोंसे डरते नहीं । वे हमारे आहार हैं ।

'आपके समीप भोगोंका अभाव तो नहीं है ।' विभीषणने प्रहस्तकी उपेक्षा कर दी । वे सीधे रावणसे बोले—'ये मित्र रूपी शत्रु आपको घेरे हैं । ये इतना भी नहीं समझते कि इस महा अनर्थसे स्वामीको बचाना चाहिये ।'

'ये छोटे चाचा सदाके स्त्रियों जैसे डरपोक हैं । इनमें सत्व, धैर्य, पराक्रम, तेज, वीर्य कुछ नहीं है ।' इस बार इन्द्रजितने उठकर आक्षेप किया—'ये सदा छोटी बातें करते हैं । इन्द्रभी मुझसे डरते हैं । मैंने ऐरावतके दाँत पकड़कर उखाड़ लिये, यहां केवल आप हैं जो मेरे पूज्य हैं और मैं आपका अनुशासन मानता हूँ ।'

'मेघनाद ! तुम अभी बालक हो । सम्मति देने योग्य परिपक्व बुद्धि, तुम्हारी नहीं हुई । तुम पिताको अनुपयुक्त सम्मति दे रहे हो ।' विभीषणने मेघनादको डाँट दिया । रावणसे बोले—'मैं आपका अनुज हूँ । आपसे याचना करता हूँ । मेरे स्नेहकी रक्षा करके सीतेको धन-रत्न-मणिके साथ अर्पित कर दें और सदाको शोक रहित हो जायें !'

'अर्थात् त्रिलोकजयी रावण एक अनाश्रित वनवासी तापससे भीत होकर उसे अर्थदण्ड देकर सन्धि करे ?' क्रोधसे काँपता चीत्कार करता दशग्रीव सिंहासनसे उठकर खड़ा हो गया । भयके मारे सब सभासद उठ खड़े हुए । विभीषणकी ओर पूरा हाथ फैलाकर आग्नेय नेत्रोंसे देखता बोला—'यह घरका सर्प है ! मित्रके रूपमें शत्रुका सेवक है यह । जातिको जातिसे ही भय होता है । हाथी ही हाथीके बन्धनका कारण बनते हैं । अपना कोई शत्रुसे मिला हो तो वह महान भयका कारण होता है । हमें अपने इस कुल कलंकसे ही भय है । तू जिनकी प्रशंसा करता है, उनको ही जाकर सम्मति दे । उनके समीप जा । अविलम्ब लंकासे मुख काला कर ।'

रावणने विभीषणके वक्षपर पाद-प्रहार किया । विभीषणने आसनके समीपसे अपनी गदा उठायी और सीधे आकाशमें उठ गये । उनके साथ उनके

चार मन्त्री भी गगनमें पहुँचे । वहींसे क्रुद्ध स्वरमें विभीषणने पुकारकर कहा— 'आप मेरे पिता तुल्य हैं । ज्येष्ठ भ्राता हैं । सम्मान्य हैं । मैं आपका पाद-प्रहार और कटु वचन क्षमा कर देता; किन्तु आप धर्मविमुख हैं, अधर्माचरणमें मैं आपका साथ नहीं दे सकता । अप्रिय सत्य बोलने और सुन लेनेवाले संसारमें कम मिलते हैं । सब बातोंका समर्थन करनेवाले चाटुकार बहुत हैं । आप मेरे बिना सुखी हो, निर्भय होते हो तो सुखी और निर्भय रहो । इस पुरी और राक्षसोंकी रक्षा करो । मरणासन्न व्यक्तिको हितकी बात सुहाती नहीं । अब आपको सच्ची बात कहनेवाला, पापसे रोकनेवाला यहाँ कोई नहीं रहा । अच्छी प्रकार सुन लो, तुम्हारा और तुम्हारे इन सब समर्थकोंका नाश निश्चित है । मैं रावणको सत्पथपर लानेके अपने प्रयत्नसे निराश होकर अब श्रीरामके समीप जारहा हूँ ।'

भवन, पत्नी, पुत्र, पुत्री, परिवार सब त्यागकर विभीषण लंकासे गगन मार्गसे चल पड़े । जीव सबका मोह त्यागे बिना कहीं उन परमपुरुषके सम्मुख हो पाता है ।

'उसे जाने दो !' प्रहस्तको अपनी ओर देखते दशाननने देखा तो कठोर स्वरमें आदेश दिया—'उसका यहाँसे जाना अच्छा हुआ । वह मुझसे मिलकर नहीं रह सकता तो जाय; किन्तु वह दशग्रीवका अनुज है । दूसरा कोई उसका शत्रुपक्षमें खड़े होनेसे पूर्व अपमान करे अथवा उसके परिवारको उत्पीड़ित करे, यह दशानन सह नहीं सकेगा । सबको इसका ध्यान रखना चाहिये ।'

'शुक-सारण ! तुम दोनों छिपकर, वानर बनकर इसके पीछे जाओ ।' दशग्रीवने दूसरी आज्ञा दी—'देखो कि यह वहाँ क्या करता है ? शत्रुकी सेनाका, बल पराक्रमका पता लगाकर लौटो, तब हम निर्णय करेंगे कि हमें क्या करना है ।'

सभा भंग करके दशग्रीव दर्पके साथ उठ गया । वह अब सब निर्णय स्वयं लेगा । उसके ये सब चाटुकार हैं यह वह भली प्रकार समझता है । उसे इनकी भीरुताका लाभ उठाना है इनके उद्धारमें ।

●●●

विभीषण-शरणागति

'आकाश मार्गसे अपनी ही ओर आते ये मेघकृष्ण पर्वताकार पाँच व्यक्ति कौन ?' विभीषण जैसे ही लंकाके गगनसे समुद्रपर आये, वानर चौंके।

'लंकासे पाँच सशस्त्र राक्षस आ रहे हैं।' वानरोंने आकृति बहुत दूरसे पहचानकर सुग्रीवको समाचार दिया।

'सावधान रहो।' सुग्रीवने आदेश दिया—'वे सशस्त्र हैं और अपने वेशमें ही आ रहे हैं, कृत्रिम माया वेश भी नहीं बनाये हैं तो आक्रमण करने ही आते होंगे।'

'आपकी आज्ञा हो तो हम उन्हें मार दें।' वानरोंमें बहुत अधिक उत्साह था।

'और निकट आने दो।' सुग्रीवने सचेत किया—'वे केवल पाँच चले हैं, हमारी इतनी विशाल सेना जानकर भी तो सामान्य नहीं होंगे। समुद्रके ऊपर उनसे संघर्ष करना उनके अनुकूल हो सकता है। उन्हें इस की आशा होगी; किन्तु शत्रु जो चाहता हो, चाह सकता हो, उसे नहीं करना चाहिये।'

रावणकी सभा प्रायः रात्रिभर चली थी। प्रभातमें ही विभीषणको तिरस्कार पूर्वक निकालकर वह सभासे उठा था। समुद्रके इस पार श्रीराम अनुजके साथ स्नान-सन्ध्या करके, सूर्यको अर्घ्य देनेके उपरान्त अभी बैठे ही थे। अब समुद्रपार करनेकी समस्यापर विचार करने सुग्रीव, जाम्बवान आदि श्रीरामके समीप आये थे, तभी यह समाचार वानरोंने दे दिया।

विभीषणने गगनसे देख लिया कि उनको देखकर वानरोंमें दौड़ धूप हुई है। श्रीरामके अत्यन्त समीप बैठे वानर श्रेष्ठ स्वयं उठकर समुद्रतटपर पर्वतके ऊपर आ गये हैं। वानरोंका उनके प्रति सम्मान देखकर समझ लिया—'ये वानरेन्द्र सुग्रीव होंगे।'

वानर वृक्ष-पर्वत उठाये युद्धोद्यत दीखे। सुग्रीवके समीप अनेक यूथप आ खड़े हुए थे। विभीषण समझ गये कि उन्हें शंकाकी दृष्टिसे देखा जा रहा

है । यह स्वाभाविक था । ऐसा न होता, तभी आश्चर्यकी बात थी ।

'आप सब महात्मा हैं ! आप श्रीरामके सेवक हैं ! आप मेरी प्रार्थना सुनें और मुझ दीन अशरणकी सहायता करें !' विभीषणने दूर गगनसे ही पुकारा—'आप शरणागत वत्सल, समस्त सृष्टिको शरण देनेमें समर्थ श्रीरामको मेरा निवेदन सुना दें ! जिसने उनकी भार्याका हरण किया है, जिसने पञ्चवटीमें गीधराज जटायुका वध किया है, जिसने सीताको लंकामें रोक रखा है, उसी त्रिलोक-कण्टक, सुर-साधु, विप्र-वेद शत्रु दशग्रीवका अधम अनुज राक्षस मैं विभीषण रावणसे तिरस्कृत, निष्कासित होकर उन अनाथ-नाथ, अशरण-शरणकी शरण आया हूँ ।'

'सब सावधान और सन्नद्ध रहें !' सुग्रीवने वानरोंको आदेश दिया । और स्वयं श्रीरामके समीप पहुँचे—'देव ! रावणका छोटा भाई आपकी शरण आया है । आपको बहुत सावधान रहना होगा । मन्त्रणा, नीति, गुप्तचर, योजनाके बिना युद्धमें सफलता नहीं मिला करती । राक्षस मायावी होते हैं, कामरूप होते हैं । यह गुप्तचर हो सकता है । हमारे बीचमें रहकर हममें भेद उत्पन्न करनेका यत्न करेगा । बुद्धिमान होगा तो विश्वासपात्र बनकर प्रहार करेगा । शत्रु-सेनाके लोगोंको सेनामें रखना ठीक नहीं है । इसे रावणने भेजा हो सकता है । उस कुटिल बुद्धिके सिखलानेसे आया होगा ।'

'मित्र ! तब इसके सम्बन्धमें तुम्हारी सम्मति क्या है ?' श्रीरामने सुग्रीवकी ओर देखा ।

'मुझे तो इन पाँचोंका वध भी अनुचित नहीं लगता ।' सुग्रीवने कहा—'कमसे कम जब तक हमारी युद्धमें विजय न हो जाय, तब तक तो इन्हें बन्दी बनाकर रखना ही चाहिये ।'

'हनुमान ! अंगद ! जाम्बवान ! सुग्रीवकी बात तुम सबने सुनली है ।' श्रीरामने गम्भीर मुखसे कहा—'बात तो सप्रयोजन है, युक्ति युक्त है । मैं संकट-ग्रस्त हूँ । आप सब मेरे हितैषी हैं । आप सबकी क्या सम्मति है ?'

हनुमान चौंके—'विभीषण शरण आये हैं और उन्हें बन्दी बनानेकी चर्चा ? आज मेरे स्वामी यह किस प्रकार बोल रहे हैं ? ये संकटग्रस्त हैं ? हम वानर इन्हें सम्मति देंगे ?

'आपसे कुछ अज्ञात नहीं है ।' जाम्बवानने दोनों हाथ जोड़े—'आप सब जानते हुए भी अपने शील सौहार्दके कारण पूछते हैं । हम आपको क्या सम्मति देंगे । वैसे यह शत्रुगृहसे आया है । उचित देश-कालमें नहीं आया, अतः शंका होती है ।'

'आप वानरेन्द्रकी बात मानें या न मानें; किन्तु पहिले इसकी परीक्षा अवश्य करलें ।' अंगदका कहना था—'सहसा विश्वास न करें । यदि हितैषी लगे तो साथ ले लें; अन्यथा त्याग करें ।'

'इसके साथ किसीको गुप्तचर नियुक्त कर दें ।' शरभकी सम्मति थी—'वह जैसी सूचना दे, वैसा किया जाय ।'

'सहसा त्याग तो उचित नहीं है ।' मैन्दका कहना था—'इसे बुलाकर पूछिये । बात करनेके पश्चात् निर्णय कीजिये ।'

'मेरे स्वामी ! आप जैसी बुद्धि हम वानरोंमें नहीं है । लेकिन आप पूछते ही हैं तो अपनी बुद्धिके अनुसार हमें कुछ बतलाना है ।' हनुमानकी मृदु, विनयपूर्ण स्वरमें अर्थयुक्त वाणी गूँजी—'देवगुरु भी आपको सम्मति देनेका साहस नहीं कर सकते । विवाद, संघर्ष, बड़प्पनमें सुर भी आपके समान नहीं हैं । इसके परीक्षाकी बात योग्य नहीं है । जब तक इसे कामकी आज्ञा नहीं दी जायगी, परीक्षा कैसे होगी ? कामकी आज्ञा देनेपर भी तो धोखा दे सकता है । गुप्तचर साथ भी लगा दें तो वह हृदयकी बात कैसे समझेगा ? विश्वासघात तो कोई एक ही समय—बहुत कठिन समय कर सकता है । इस युद्धमें किसीको दूर तो भेजना नहीं है । सब साथ रहेंगे । अतः गुप्तचर साथ लगानेका अर्थ क्या ? अदेश-कालकी बात भी ठीक नहीं है । किसीपर आपत्ति क्या देश-काल देखकर आती है ? आपत्तिग्रस्त होनेपर, अपमानित होनेपर आर्तप्राणी देश-काल देखकर शरण्यके समीप आवेगा ?'

'अधम पुरुष रावणका त्यागकर पुरुषोत्तम आपकी शरण यह आया है । आपके पराक्रमका, गुणका विचार करके आया है । आपने वानरेन्द्र सुग्रीवको शरण दी, यह सुनकर आया है ।' पवनपुत्रने दूसरी सब सम्मतियोंका युक्तिपूर्वक खण्डन कर दिया—'आप समीप बुलाकर पूछेंगे भी तो सशंक होगा । मित्र बननेवाला भी होगा तो सन्दिग्ध हो जायगा । इसने जो प्रार्थना की है, जैसे

की है, उसमें कोई कपट नहीं लगता। यह प्रसन्न नहीं है, दुःखी है। पूछताछ करके इसे सशंक बना लेना ठीक नहीं है। रावणका भाई सहायक मिल रहा है। शठ लगता नहीं है। अतः मैं तो इसे अपना लेनेके पक्षमें हूँ। यह भी राज्य चाहता होगा। सुग्रीवको आपने अपनाया, यह सुनकर इसे आशा हो गयी होगी। आपको, वानरेन्द्रको या हममें किसीको लंकापति होना नहीं है, अतः इसे शरणमें स्वीकार करें, यह मुझे अच्छा लगता है। स्वामीकी जो आज्ञा हो।'

'यह दुष्ट हो या शिष्ट, हम इसे स्वीकार करेंगे!' श्रीरामने मेघगम्भीर स्वरसे कहते हुए प्रफुल्ल नेत्रोंसे पवनकुमारकी ओर देखा—'जो मित्रभावसे मेरे समीप आवेगा, उसका दोष भी हो तो भी मैं उसका त्याग नहीं कर सकता। दुष्टसे दुष्टको भी शरण आनेपर मैं त्यागता नहीं।' सत्पुरुष शरणागत रक्षाकी प्रशंसा करते हैं, मेरा व्रत है कि जो भी शरणकी पुकार करता आवेगा, वह कैसा भी हो, मैं उसे शरण दूँगा।

'यह दुष्ट हो या अदुष्ट; किन्तु अपने भाई रावणको विपत्तिमें त्यागकर भाग आया है।' सुग्रीवने फिर आपत्ति की—'अतः हमें विपत्तिमें त्यागकर भाग नहीं जायगा, इसका क्या विश्वास?'

'सुग्रीवने उत्तम बात कही है। बिना वृद्धोंकी सेवाके समय पर ऐसी बात सूझती नहीं।' शीलसिन्धु श्रीरामने सुग्रीवको झिड़का नहीं कि आप शरणमें आये थे तो किसके विरुद्ध थे? सुग्रीवकी प्रशंसा करके बोले—'राजा लोग परिवारपर, उत्तराधिकारीपर शंका करते हैं, अतः रावण यदि विभीषणपर शंका करे तो उचित होगा। लेकिन हमारी हानिसे तो विभीषणको कोई लाभ नहीं होना है, यदि ये राज्य चाहते होंगे तो हमारी विजयसे मिलेगा या हमारी हानिसे? अतः यह अपनाने योग्य हैं। लंकामें इनपर शंका होगी, इन्होंने हनुमानको बचानेकी चेष्टा की थी। इन्हें वहाँ भय होगा। सुग्रीव! सब भाई भरत जैसे नहीं होते। सब पुत्र मेरे समान नहीं होते। सब मित्र तुम्हारे जैसे नहीं होते।'

'इसे रावणने गुप्तचर बनाकर भेजा होगा।' सुग्रीवने फिर शंका की—'इसे बन्दी कर लें, अन्यथा यह हम सबको विश्वासमें लेकर आपपर या लक्ष्मणपर

धोखेसे आघात करेगा ।'

'मित्र सुग्रीव ! तुम्हारी बात मान भी लें कि सच हो, तो भी वह हमारा अहित कर सकनेमें असमर्थ है ।' श्रीराम लक्ष्मण मौन रहकर अत्यन्त गम्भीर स्वरमें बोले—'मेरे अनुज लक्ष्मण क्रोध करें तो समस्त सृष्टिका संहार करनेके लिए इन्हें धनुषपर दो वाण नहीं चढ़ाने पड़ेंगे । मेरा प्रण है कि यक्ष, राक्षस, पिशाच कोई शरण आवे, मैं उसका त्याग नहीं करूँगा । शरणागतका त्याग भी अधर्म है । स्वयं रावण भी शरण आवे तो मैं उसे स्वीकार करूँगा । यह भयसे, कामनासे, मोहसे चाहे जैसे आया हो, उसे ले आओ । राम भय, स्वार्थ या मोहसे शरणागतका त्याग नहीं कर सकता । शरणागत-रक्षामें मरण भी श्रेयस्कर है । वधार्ह भी शरण आया हो तो उसकी रक्षा उचित है ।'

'एक बार भी जो पुकार लेता है कि मैं आपका हूँ, आपकी शरण हूँ, उसे मैं सम्पूर्ण प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ, यह मेरा व्रत है ।' श्रीरामने आदेशके स्वरमें कहा—'मैंने विभीषणको अभय दिया । उसे सादर ले आओ । दशग्रीव भी शरण आवे तो बिना पूछे ले आना ।'

'लोकनाथ ! धर्मज्ञ ! करुणामय ! आपके लिए यह आश्चर्यकी बात नहीं है । 'सुग्रीवनने हर्षमें भरकर कहा—'मैं नीतिकी बात कर रहा था; किन्तु मेरी अन्तरात्मा उसे विशुद्ध कहती है । वह मेरा मित्र बने ।'

'हनुमान और अंगद संकेत मिलते ही उठकर दौड़े । अभी विभीषण मन्त्रियों सहित समुद्रके ऊपर गगनमें प्रतीक्षाकर रहे थे । हनुमानको देखते ही प्रसन्न हो गये । हनुमानने तनिक दूरसे ही कहा—'पधारिये ! प्रभु आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।'

'यह रावणानुज अधम राक्षस विभीषण आपका सुयश सुनकर शरण आया है ।' विभीषणने दूरसे पुकारकी—'शरणागतवत्सल अनाश्रयाश्रय स्वामी ! पाहि ! पाहि ।'

मन्त्रियोंके सहित विभीषण थोड़ी दूर ही पृथ्वीपर साष्टांग प्रणिपात करते गिरे । श्रीरामने लगभग दौड़कर उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया । हाथ पकड़कर ले आये । विभीषणने लक्ष्मणके चरणोंमें प्रणाम किया । उनसे अंकमाल मिली । सुग्रीवने स्वयं अपना परिचय देकर हृदयसे लगाया उन्हें ।

'मैं समस्त प्राणियोंके शरणदाता आपकी शरण आया हूँ ।' विभीषण हाथ जोड़े गद्गद कण्ठ थे । उनके मन्त्री वैसे ही हाथ जोड़े पीछे खड़े थे । 'मैं परिवार, सदन सब त्यागकर आप परमाश्रयके पास आया हूँ ।'

'अभीष्ट वरदान माँग लो !' सुप्रसन्न श्रीरामने कहा ।

'स्वामी ! स्वीकार करता हूँ कि चला था तो हृदय निष्काम नहीं था । राक्षसका हृदय निष्कल्मष हो कैसे सकता था; किन्तु इन पतित-पावन पादारविन्दोंका दर्शन करनेके पश्चात् कोई कामना शेष रह सकती है ? विभीषण विह्वल बोल रहे थे—'अब आप प्रसन्न हैं तो वर दें कि आपके श्रीचरणोंमें मेरी अविचल भक्ति बनी रहे ।'

'एवमस्तु !' स्थिर स्वरमें स्वीकार करके श्रीरामने कहा—'मित्र तुम यद्यपि निष्काम हो; किन्तु मेरे समीप आनेका पुरस्कार तो तुम्हें स्वीकार ही करना चाहिये ।'

'लक्ष्मण ! सागर समस्त तीर्थमय है ।' अनुजकी ओर देखकर उन उदार चक्र-चूड़ामणिने कहा—'मुझे वह तीर्थोदक चाहिये ।'

लक्ष्मण समुद्र-जल लेने उठे तब श्रीरामने समीप बैठाकर विभीषणसे पूछा—'दशग्रीवकी क्या दशा है ? उसका बलाबल क्या है ? आश्चर्य है कि अधर्मरत राक्षसोंके मध्य रहते भी तुम अपने धर्मपर स्थिर रह सके ।'

'तामस कुलमें उत्पन्न राक्षस क्या धर्म जाने । यह तो आपका अपार वातसल्य है कि इसे अपने श्रीचरणोंके समीप बैठने योग्य मानते हैं । मैं प्रयत्न करूँगा शक्तिके अनुसार सेवा करनेकी ।' विभीषणने संक्षिप्त विवरण कर दिया—'दशग्रीव ब्रह्माके वरदानसे दर्पान्ध है । उसको अपने महाकाय भाई कुम्भकर्णका गर्व है । सेनापति प्रहस्तको मणिभद्रका आशीर्वाद प्राप्त हैं और इन्द्रजित तप तथा वरके प्रभावसे अन्तर्हित रहनेमें समर्थ है ।'

'हनुमानके लौटनेके पश्चात् दशग्रीव मुझपर सन्देह करने लगा था । उसने किसी कार्यमें फिर मेरी सम्मति नहीं ली ।' विभीषणने बतलाया—'परिखा सुदृढ़ बनवा ली है । भवन सब वन गये हैं । खाई अनावश्यक मानकर खोदी नहीं गयी । महायन्त्रोंकी ओर ध्यान देनेको समय नहीं मिला । नगरमें खाद्य तथा अस्त्र-शस्त्रका किञ्चित् भी अभाव नहीं है ।'

विभीषणने विस्तारसे दशग्रीवकी सेनाका वर्णन किया । इसी समय लक्ष्मण कमण्डलुमें सागर-जल ले आये । श्रीरामने हाथ पकड़कर विभीषणको शिलापर बैठाया और सागर-जलसे तिलक करके जयघोष किया—'लंकेश विभीषणकी जय ।'

वानरेन्द्र सुग्रीवने भी श्रीरामके संकेतपर तिलक किया । फिर जयनाद गूँजा—'राक्षेसन्द्र विभीषणकी जय ।'

'मैंने तुम्हें लंकाका राज्य दिया ।' श्रीरामका स्थिर स्वस्थ स्वर—'सहायकोंके साथ रावणको मारकर इसकी औपचारिकता अवश्य पूरी कर दूँगा । रावण पाताल या ब्रह्मलोक चाहे जहाँ भागे, चाहे जिसकी शरण जाय, अब वह बच नहीं सकता ।'

'यदि वह आपकी ही शरण आ जाय ततो ?' अंगदने शंका प्रकट की । उचित थी शंका । थोड़ी देर पहिले श्रीराम सुग्रीवको आज्ञा दे चुके थे—'रावण भी शरण आवे तो बिना पूछे ले आओ ।'

'लंकाका राज्य विभीषणका हो चुका ।' बिना हिचके श्रीरामने अंगदकी ओर देखा—'दशग्रीवको सद्‌बुद्धि आ जाय और वह शरणापन्न हो तो अयोध्याका राज्य उसका । रघुवंशी अपने धनुषके बलसे अरण्यमें दूसरा राज्य स्थापित कर लेंगे ।'

'भक्तवत्सल श्रीरामकी जय !' सुग्रीवने उछलकर जयनाद किया ।

'शरणागतवत्सल राघवेन्द्रकी जय !' विभीषण हर्ष-विह्वल बोले ।

'कृपापारावार श्रीरघुनाथकी जय !' हनुमान, अंगद, सभी वानर जयघोष करते उछलते-कूदते हर्षोन्मत हो गये । ऐसे उदार-शिरोमणि स्वामीकी सेवाका सौभाग्य मिलना क्या सहज सुलभ होता है ।

'हम सब इन परमपुरुष श्रीरामके किंकर हैं ।' सुग्रीवने विभीषणको हृदयसे लगाकर कहा—'अबसे तुम हममें प्रधान हुए ।'

'युवराज ! तुम वानरेन्द्र के युवराज हो, मैं भूल तो नहीं करता ?' विभीषणने अंगदकी ओर देखकर धीरेसे कहा—'तुम्हारी बात कदाचित् सत्य हो जाय तो विभीषणसे अधिक प्रसन्न दूसरा कोई नहीं होगा । मैं चरण पकड़कर

अपने इन अनन्त दयाधाम स्वामीको मना लूँगा। दशग्रीव लंकाका अधीश्वर बना रहेगा। लेकिन मैं अपने उस अभिमानी अग्रजको भली प्रकार जानता हूँ। वह दर्पकी पराकाष्ठा है। राक्षस-कुलका विनाशकाल आ गया है। झुकना दूर, वह अपनी इच्छाके विरुद्ध आधा वाक्य भी सुन नहीं सकता।'

'अभाग्य उसका।' अंगदका स्वर अत्यन्त खिन्न था—'ऐसे उदार शिरोमणि स्वामीकी शरण भी जिसे न सूझे, उसके जैसा भाग्यहीन दूसरा कौन होगा।'

अंगदको अपने पिताका स्मरण आ रहा था। दशग्रीव उनके पिताका मित्र बन चुका था। उसने अक्षम्य अपराध किया था; किन्तु अंगदको उसपर दया आ रही थी। उनके मनमें आता था—'एक बार उसे ठीक ढंगसे समझाया जा पाता! सम्भव है उसे सद्‌बुद्धि आ ही जाय। न भी आवे तो पिताके मित्रके प्रति कर्तव्य-पालन न करनेका खेद तो मनमें नहीं रहता।'

श्रीराम सर्वज्ञ हैं और भक्तवाञ्छा-कल्पतरु हैं। अंगदकी इस कामनाको भी मन-ही-मन उन्होंने 'एवमस्तु' कह दिया। अंगदको समझानेका अवसर मिलना उसी समय सुनिश्चित हो गया। यद्यपि उसकी चर्चा उस समय किसीके भी मुखपर नहीं आयी। उस चर्चाका अवसर तो सुबेलपर पहुँचनेपर आना था।

●●●

सागरपर रोष

'अब समुद्र कैसे पार किया जाय?' विभीषणको अभिषिक्त करके श्रीराम मूल प्रश्नपर आ गये। उन्होंने विभीषणकी ओर ही देखा।

'आपको सागरकी शरण लेनी चाहिये।' विभीषणने कहा—'आपके पूर्वज महाराज सगरके पुत्रोंने अभिवर्धन किया है। वैसे भी यह नारायणांग-समुद्‌भव है। अतः आपकी प्रार्थनापर उदधिके अधिदेवताको प्रकट होकर स्वयं

पार होनेका पथ बतलाना चाहिये ।'

'यह उत्तम सम्मति है ।' स्वभावसे शान्त, धर्मशील श्रीरामको विभीषणकी बात रुची । सुग्रीवने भी विभीषणकी सम्मति मानने योग्य माना । दूसरा कोई विकल्प भी उनके समीप नहीं था ।

'आप सर्वलोक-शरण्य समुद्रकी शरण लेंगे ? कुमार लक्ष्मणको यह बात बुरी लगी । उन्होंने विरोध किया—'धनुष उठाइये या इस सेवकको आज्ञा दीजिये । समुद्रको शुष्क करने-में कितने क्षण लगने वाले हैं ।'

'तुम ठीक कहते हो ।' श्रीरामने भाईकी ओर देखा—'लेकिन यह उपाय तब आवश्यक है, जब सौम्य उपाय असफल हो जाय । अतः तनिक धैर्य रखो ।'

आज्ञा पाकर हनुमान कुश उखाड़ लाये । उत्तराग्र कुश बिछाकर उसपर श्रीराम अपनी बाम भुजाका उपधान बनाकर लेट गये समुद्रकी बेलापर । उन्होंने मौन धारण कर लिया । आहार और जलका त्याग कर दिया । एक ही प्रकारसे समुद्रकी ओर देखते स्थिर लेटे रहे ।

x x x x

दशग्रीव प्रमत्त नहीं था । उसने जैसे ही सुना कि श्रीराम ससैन्य सागर-तटपर पहुँच गये हैं, बिना किसीको सूचित किये एक चर भेज दिया था । वह रावणका गुप्तचर शार्दूल अदृश्य रहकर आया था और शीघ्र लौट गया था । वानरोंके अपार समुदायको देखकर उसका साहस ही समीप आनेका नहीं हुआ था ।

'वानरी सेना समुद्रके समान असीम है । उसकी संख्या करना सम्भव नहीं है और उनमें-से एक भी इतना दुर्बल नहीं कि उससे द्वन्द्व युद्धका साहस कर सकूँ ।' शार्दूल बिना पूरा दल देखे लौट गया था तब जब विभीषण लंकामें ही थे । उसने विवरण देते कहा था—'राम और उनके अनुज भी दुरतिक्रम हैं । आप कोई अधिक निपुण दूत भेजिये । साम, दाम और भेदमें जो उचित लगे कीजिये; किन्तु दण्डकी—युद्धकी कल्पना भी त्याग दीजिये । इससे विनाश निश्चित है ।'

दशग्रीवने इस सन्देशके पश्चात् ही मन्त्रियोंको मन्त्रणाके लिए बुलाया था । जब विभीषण लंकासे चले, तब उनके पीछे ही उसने शुक-सारणको भेज

दिया था । दोनों कामरूप राक्षस वानर बनकर सुग्रीवके दलमें मिल गये । वे जहाँ जाते थे, उसी यूथके वानर उन्हें अपने दलके किसी दूसरे यूथका समझ लेते थे । इस प्रकार वे वानर-यूथोमें घूमते, वानरी सेना देखनेमें लगे थे ।

प्राणी अपनी भावनापर कब तक नियन्त्रण रख सकता है । दोनोंने श्रीरामका अत्यन्त उदार स्वभाव देखा । उन शरणागत-वत्सलने विभीषणको अपनाया ही नहीं, लंकेश्वर कहकर अभिषिक्त कर दिया । उदारताकी सीमा टूट गयी जब उन्होंने कह दिया—'रावण शरण आवे तो अयोध्याका राज्य उसका ।'

अब जब श्रीराम विभीषणकी सम्मति मानकर समुद्रके तटपर अनशन करने लेट गये, शुक-सारण विभोर हो गये । विस्मृत हो गये कि वे शत्रु-सेनामें है और वानर नहीं हैं । शुक बोल उठा—'धन्यशील ! असीम शक्ति, अकल्पनीय औदार्य और इतना सरल स्वभाव आजसे पूर्व सोचा भी नहीं था कि सृष्टिमें सम्भव है ।'

'अभागा दशग्रीव इनसे शत्रुता करता है ?' सारण बोल पड़ा—'इनके समीप रहस्य क्या है कि कोई छिपकर देखेगा ।'

'ये वानर नहीं हैं । ये गुप्तचर हैं—शत्रुके गुप्तचर ।' समीपके वानरोंने सुना तो चौंक गये—'पकड़ो इन्हें !'

सारण पकड़ लिया गया । पकड़ तो शुक भी लिया गया; किन्तु उसी क्षण शुक (तोता) बनकर हाथसे छूट निकला और सुग्रीवके समीप जाकर आकाशमें उड़ते-उड़ते बोला—'राक्षसेश्वर दशग्रीवने आपसे कहा है कि सुग्रीव तो मेरे भाई हैं । बालिने मुझे बन्धु स्वीकार कर लिया था । मैंने राजकुमारकी पत्नीका हरण किया, इससे सुग्रीवकी तो कोई हानि हुई नहीं । वे क्यों अकारण विपत्ति मोल लेते हैं ? वानरेन्द्र ससैन्य लौट जायें । मैं वचन देता हूँ कि बालिसे की गयी सन्धिका पालन करूँगा । लंका और किष्किन्धाकी मैत्री बनी रहे ।'

'उस मूर्खसे कहना कि सुग्रीवने अपने सगे भाई बालिका वध करवा दिया है ।' सुग्रीव सरोष बोले—अब बालिके दूसरे भाई तेरा वध करवाने आया हूँ ।'

इस सन्देश देने-सुननेमें शुक तनिक असावधान हुआ। इतनेमें वानरोंने उसे कूदकर पकड़ लिया। उसे अपना स्वरूप धारण करना पड़ा; क्योंकि वानरोंने पक्ष नोंच फेंके। अब उसपर थप्पड़ घूंसे पड़ने लगे। किसीने पुकारा—'दोनोंके नाक-कान काट लो! दूतके अंग-भंगकी परम्परा दशग्रीवने ही प्रचलितकी है।'

'आप सबको अपने स्वामी श्रीरामकी दुहाई।' दोनों राक्षस चिल्लाये—'हमारे नाक-कान मत काटिये। हम श्रीरामकी शरण हैं।'

'इन्हें यहाँ लाओ! कुमार लक्ष्मणने समीप बुलाया। दोनोंको आश्वस्त किया। एक पत्र वाणकी नोकसे तालपत्रपर लिखकर दिया—'इसे दशग्रीवको दे देना।'

'देव! ये गुप्तचर हैं।' इतनेमें विभीषण समीप आ गये और हाथ जोड़कर बोले—'समुद्रपार जब तक सम्पूर्ण सेना न पहुँच जाय, इन्हें बन्दी बनाकर रखना चाहिये। इनसे समाचार पाकर दशग्रीव सागरपार होनेमें बाधा उपस्थित कर सकता है।'

'लंकाके चरोंके सम्बन्धमें लंकेशका निर्देश सम्मान्य है।' लक्ष्मणने हँसकर कह दिया। दोनों बन्दी बना लिये गये। उनके ऊपर दृष्टि रखनेको वानर नियुक्त हो गये।

x x x x

'लक्ष्मण! मेरा धनुष दो मुझे!' चौथे दिन सूर्योदयके पश्चात् श्रीराम उठे। वे तीन दिन-रात्रि पश्चिम पाद किये, वामभुजाके उपधानपर दक्षिणाभिमुख लेटे रहे थे। इस मध्य केवल स्नान-सन्ध्याको वे उठे थे। अब उनके स्वरमें रोष था—'सत्पुरुषके सद्गुण शान्ति, क्षमा सरलताको हीनसत्व उसकी दुर्बलता मानते हैं। यह मूढ़ सागर मेरी क्षमाको मेरी विवशता समझता है। मैं इसे शुष्क कर दूँगा।'

उन अखिलेश्वरकी भृकुटिका कुटिल होना पर्याप्त था। उनके धनुषपर ज्या चढ़ाते ही प्रचण्ड पवन चलने लगा। धनुषपर आग्नेयास्त्र चढ़ा और सागरका अतलजल खौल उठा। मत्स्य, कच्छपोंकी चर्चा व्यर्थ है, मकर, तिमिंगल तक व्याकुल होकर उछलने लगे। गगनमें सुर 'त्राहि! त्राहि!' पुकार उठे।

'पाहि पुरुषोत्तम प्रणतबन्धु!' समुद्रकी उत्ताल तरंगोंने श्रीरामके चारु

चरण धोये और उनपर मौक्तिक राशि बिखेर दी । तरंगवसन, नीलकाय, फेनिलकेश, मुक्ताभरण सागराधिदेव करबद्ध, कटिपर्यन्त जलमें खड़े काँप रहे थे—'अपराध क्षमा करो क्षमाधाम ! आपने ही पृथ्वी, जल, वायु आदिको स्वभावसे जड़ बनाया है । मेरी जड़ता आपका ही निर्माण है । आप मर्यादा पुरुषोत्तमने जो मर्यादा-मेरी निश्चित कर दी है, मैं उसे मानता रहा यही तो मेरा अपराध है ? आप निग्रह-अनुग्रह समर्थकी मैं शरण हूँ ।'

'मेरा शर अमोघ है । इसका लक्ष्य बतलाओ ।' श्रीरामका स्वर शान्त हो गया था । वाण चढ़ा भी रहता तो उसके प्रभावसे जलजीव समाप्त हो जाते । असंख्य दुर्बल जीव अब तक जलकी ऊष्मासे मर चुके थे ।

'मेरे उत्तर तटपर द्रुमुकुल्य प्रदेश दारुण दस्युओंका वास बना है । आप उसे इस वाणका लक्ष्य बना लें ।' सागरने कहा—'इससे लोकोत्पीडकोंका विनाश कर दें ।'

श्रीरघुनाथका वाण धनुषसे छूटकर जहाँ गिरा, वह पूरा प्रदेश मरुस्थल बन गया सदाके लिए । आरव्य देशोंका वह दुर्गम मरुस्थल आज वहाँके अनेक राज्योंमें विस्तीर्ण है । दस्यु ही नहीं, वनस्पति भी वहाँ भस्म हो गयी ।' वह धराका व्रण बन गया ।

'इस सम्पूर्ण सेनाको लंका पहुँचना है ।' वह वाण जब लक्ष्य भस्म करके त्रोणमें लौट आया, श्रीरामने समुद्रके अधिदेवतासे आदेशके स्वरमें कहा—'हमें मार्ग दो ।'

'आपके प्रभावसे मैं सूख जा सकता हूँ और सेना उस पार चली जायगी; किन्तु' समुद्रदेव अत्यन्त नम्र स्वरमें बोले—'देव ! आप मर्यादा-पुरुषोत्तम मेरी मर्यादा मिटाकर प्रसन्न हों तो मैं यही करूँ ।'

'तुम्हारी मर्यादा रक्षित रहते कोई और सुगम मार्ग है ?' श्रीरामने पूछ लिया ।

'है प्रभु ! आपका सुयश अनन्तकाल तक प्राणियोंको पवित्र करता रहेगा, यदि आप मुझपर सेतु-निर्माण करके सेनाको पार ले जाते हैं ।' समुद्र वैसे ही करबद्ध प्रार्थना कर रहे थे—'मैं अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करूँगा ।'

'सेतु-निर्माण ?' सुप्रसन्न श्रीरामने सागरकी ओर देखा ।

'आपकी सेनामें विश्वकर्माके पुत्र नल-नील महाशिल्पी हैं ।' सागरने सूचना दी—'उनके करसे स्पृष्ट भारी पर्वत भी जलमें तैरते हैं ।'

'अच्छा !' श्रीरामने स्वीकार कर लिया । समुद्राधिदेव अपने जलमें अन्तर्हित हो गये ।

•••

सेतु बन्ध

'अपनी यह विशेषता तबतक प्रकट मत करना, जबतक कोई दूसरा ही तुमसे न कहे ।' सुग्रीवके पूछनेपर नल-नील दोनों भाइयोंने स्वीकार किया— 'बचपनमें हम दोनों भाई अत्यन्त चञ्चल थे । आस-पास ऋषियोंके आश्रम बहुत थे । हम दोनों अवसर पाते ही उनके आराध्य शालिग्राम अथवा शिवलिंग उठाकर सरोवरमें डाल देते और हँसते—'अब ये भली प्रकार स्नान करेंगे ।'

ऋषिगणोंने दुःखी होकर शाप दिया—'इन दोनों वानरोके करसे स्पृष्ट शिलाएँ जलमें डूबेंगी ही नहीं ।'

'उन कृपालु क्षमाशील महात्माओंने हम दोनोंका कोई अहित नहीं किया । केवल अपने आराध्य विग्रहको प्राप्त करने, सुरक्षित रखनेका उपाय किया ।' नीलने कहा—'लेकिन वह उपाय हमारे लिए इतना सौभाग्यदायी वरदान बनेगा, यह तो हम जानते ही नहीं थे । अपने कुलवृद्धोंके आदेशानुसार मैं अबतक मौन था । आप वानरोंको शिलाएँ पर्वत ले आनेका आदेश दें । हम दोनों सेतु-निर्माणका श्रीगणेश करते हैं ।'

'हम लंका पहुँचनेके लिए समुद्रपर सेतु-निर्माण करेंगे । वानर-विश्वकर्मा नल-नील इसमें समर्थ हैं ।' सुग्रीवने घोषणाकी—'सब वानरोंको पर्वत, शिलाएँ और विशाल वृक्ष लाकर नल-नीलको देना चाहिये । सब अविलम्ब उद्योगमें लग जायें ।'

'हम सेतु-निर्माण करेंगे ।' वानरोंमें अपार उत्साह जागा । समुद्रकी विशालता देखकर उत्पन्न निराशा समाप्त हो गयी । नल-नीलने तनिक घूमकर स्थान देखा । श्रीरामके द्वारा गणपति-पूजन, नवग्रह-पूजनादि स्थापत्यवेदमें वर्णित आरम्भिक कार्य सम्पन्न कराये और सागर-बेलाके समीप एक भाई एक ओर, दूसरे भाई दूसरी ओर एक दूसरेकी ओर मुख करके बैठ गये । उन्हें दस योजन चौड़ा सेतु बनाना था । वर्तमान रामेश्वरके समीपसे लेकर कन्याकुमारी तक सेतुकी चौड़ाई उन्होंने निश्चित की थी ।

आरम्भमें ही एक समस्या उपस्थित हो गयी । दो शिलाओंको परस्पर आबद्ध करनेका कोई साधन नहीं था । प्रथम पर्वत सागरके पानीपर रखकर जबतक दूसरा पर्वत लिया दोनों भाइयोंने, दोनों भाइयोंके द्वारा जलपर रखें दोनों पर्वत समुद्रकी उत्ताल तरेंगोंके थपेड़े खाकर दूर चले गये ।

'हम सेतु-निर्माण कर सकते हैं ।' दोनों भाइयोंका गर्व गलित हो गया । नीलने नलको पुकारा—'भाई ! सेतु बनेगा तो श्रीरामके प्रतापसे ही बनेगा । हमारे नामको अमर करनेका अनुग्रह किया इन समर्थ स्वामीने; किन्तु हम निमित्त मात्र हैं । इनके नामको ही शिला-संयोजनका साधन बनाओ ।'

'इनके नामको साधन ?' नलने पुकारकर पूछा ।

'हाँ !' नीलने हाथके पर्वतपर नखसे रा' लिखा और उसे जलपर रख दिया । वह तैरता रहा, स्थिर बना रहा । दूसरा पर्वत लिया, उसपर 'म' लिखा । जलपर रखते ही वह पहिले पर्वतसे स्वतः सट गया । नलने भी यह प्रक्रिया सीख ली । चल पड़ा अब यह क्रम । सागरकी तरेंगे अब पर्वत-शिलाओंको ऊपर-नीचे तो हिलाती थीं; किन्तु स्थानान्तरित नहीं कर पाती थीं । एक शिलापर 'रा' दूसरी पर 'म' यह दो अक्षर शिला संयोजक बन गये ।

हनुमान, अंगद, जाम्बवान, मैन्द, द्विविद, गय, गवाक्ष, शरभ आदि बलवान यूथपोंने निर्णय किया—'समीपके पर्वत सामान्य वानरोंको लानेके लिए छोड़ दो । हम सबको दूरसे पर्वत लाने चाहिये ।'

सभी वानर उत्साहमें थे । वे अपनी शक्तिके अनुसार भारीसे भारी शिला या पूरा शिखर उठा लाते थे । नल-नील सामान्य ईंटकी भाँति लेते थे और नखसे 'रा' या 'म' लिखकर जलपर पहिली शिलासे सटाकर रख देते

थे । वृक्ष—विशाल वृक्ष भी लाये जा रहे थे; किन्तु केवल नल या नीलके कहनेपर जब उन्हें दो शिलाओंके मध्यकी विषमता पाटनेकी आवश्यकता हो। वे स्वयं भी भारी पर्वतोंको पटककर आवश्यकतानुसार समतल करते जा रहे थे ।

श्रीरामने सुग्रीव तथा विभीषणको रोक दिया था इस उद्योगमें लगनेसे—'आप दोनों केवल निर्माणको देखें और वानरोंको प्रोत्साहित करते रहें ।'

विभीषण के चारों मन्त्री पर्वत ढोनेमें स्वयं लग गये थे । अनुजके साथ श्रीराम यह कौतुक कुछ देर खड़े देखते रहे । पवनपुत्रकी दृष्टि पड़ी कि प्रभु अचानक चुपचाप एक ओर चल पड़े तो वे पर्वत लाना छोड़कर अपनी उपस्थिति बिना सूचित किये अनुगमन करने लगे । इस समय स्वामीको अकेले अरक्षित छोड़ना उचित नहीं था ।

श्रीराम सागरतटके सहारे नीलके समीपसे टहलते पर्याप्त उत्तर चले गये । अब वे रुके, इधर-उधर देखा । पीछे दूर छिपे खड़े आञ्जनेय दृष्टि नहीं पड़े । श्रीरामने समीपसे एक छोटा पाषाण उठाया । समुद्रके समीप आये । उसे धीरेसे जलपर रखा; किन्तु वह जलमें डूब गया । श्रीराम उठ खड़े हुए । उनका कमलमुख उदास हो गया था ।

'मेरे नाथ ! आपका नाम भव-सागरसे सबका समुद्धारक है ।' अब पवनपुत्र हाथ जोड़े सम्मुख आ गये—'लेकिन आपके ये अभयपद कर जिसका त्याग कर देंगे, वह तो डूबेगा ही । उसके तैरनेकी सम्भावना कहाँ रह जाती है ?'

'हनुमान तुम ?' श्रीराम हँस पड़े—'तुम्हारी मतिको कभी कहीं अविद्याका स्पर्श नहीं होगा । तुम आश्रितोंका अविद्यान्धकार दूर करनेमें समर्थ रहोगे ।'

श्रीराम जब अनुज तथा सुग्रीवके समीप आ गये, हनुमान पुनः पर्वत उठाने, लानेमें लगे । वे पर्वत लेकर नीलको देने चले तो देखा कि एक अत्यन्त छुद्र प्राणी अबतक बने सेतुपर चढ़ आया है । वह एक गिलहरी थी । हनुमानने डाँटा—'सेतुपर मत आओ ! दीखता नहीं है कि वानर पर्वत लिये दौड़ते आते हैं । किसीका भी पैर तुमपर पड़ सकता है । अपने रक्तसे सेतुको अपवित्र

करना है तुम्हें ?'

नन्ही गिलहरीने पूँछ हिलायी, केश फुलाये, पूँछकेबल बैठकर दो पदोंपर आधी खड़ी होकर हनुमानजीको ही डाँट दिया—'तुम अकेलेने परम पुरुषोत्तमकी सेवाका ठेका लिया है ? जिसमें बल नहीं, उसे अपनी क्षुद्र शक्तिके अनुसार उनकी सेवाका स्वत्व नहीं है ?'

'तुमसे उनकी क्या सेवा इस समय सम्भव है ?' हनुमान चकित रह गये ।

'तुम्हें दीखता नहीं कि सेतुपर दो शिलाओंके मध्य कितनी सन्धि है ।' गिलहरीने उसी रोष-भरे स्वरमें कहा—'इसपरसे उन सर्वेशको चलना है । उनके सुकुमार चरण पड़ेंगे यहाँ । मैं शक्तिभर इन सन्धियोंको मिटा देनेमें लगी हूँ । मेरे तुम्हारे समान शक्तिशाली हाथ तो नहीं हैं । सागर-जलमें शरीर भिगाकर, पुलिनपर लोट-पोट होकर थोड़ी रेत अपने केशोंमें ला पाती हूँ । केश हिलाकर यहाँ डाल जाती हूँ । प्राणी अपनी शक्तिके अनुसार ही तो उन परमप्रभुकी सेवा कर सकता है ।'

'तुमने सेवा कर ली । तुम्हें चलो प्रभुके पास पहुंचा दूँ ।' पवनकुमारने प्रेमसे कहा—'अन्यथा किसीके पैरसे कुचल जा सकती हो ।'

'तो क्या हो जायेगा ? किसी रामभक्तके चरणों तले आ जाऊँगी तो मेरी मृत्यु धन्य हो जायगी । जो सर्वव्यापक हैं, जिनका स्मरण अपवित्र को पवित्र करता है, उनका सेतु कहीं गिलहरीके तनिकसे शरीरसे अपवित्र हो सकता है ।' गिलहरीने झिड़क दिया—'तुम अपना काम करो । मुझे अपना काम करने दो । मुझे तुम्हारी सहायता अपेक्षित नहीं है । उन दीनबन्धु तक पहुँचने-में किसी क्षुद्र प्राणीपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है । कोई दुर्बल असमर्थ भी हो जाय तो उसके समीप आकर उसे उठा लेना उन दयासिन्धुको आता है ।'

हनुमानजीको इस हठी गिलहरीपर दया आरही थी । इसके कुचल जानेकी पूरी सम्भावना थी । वे चाहते थे कि यह डरकर हट जाय । उन्होंने पादांगुष्ठसे उसकी पूँछ तनिक दबा दी । पीड़ासे गिलहरी तड़प उठी—'चीं चीं' पूँछ खिंचकर लम्बी हो गयी । तनिक सी टूट गयी ।

'चीं चीं' करती घायल पूँछ लिये गिलहरी भागी और सीधे श्रीरामके

समीप गयी । उसने उन करुणा-वरुणालयके सम्मुख सिर उठाकर 'चीं चीं' को तो उन्होंने उसे उठाकर वाम करपर रख लिया । दक्षिण करकी अंगुलियोंसे उसे स्नेहपूर्वक थपथपा दिया । वे अंगुलीके चिन्ह उसकी पीठपर नित्य हो गये पूरी वंश-परम्परामें । हनुमानजी उसके पीछे आये थे । उनकी ओर गिलहरीने सगर्व देखा ।

'हनुमान ! तुमने सेवामें लगे इस क्षुद्र प्राणीको पीड़ा देकर अच्छा नहीं किया ।' प्रभुने उपालम्भ दिया । पवनपुत्रका मस्तक झुक गया । श्रीराम भक्तापराध क्षमा नहीं करते । आञ्जनेयका पुच्छ-भंग तो उसी समय अनकहा विधान बन गया ।

x x x x

पहिले दिन सेतु-निर्माण कुछ विलम्बसे प्रारम्भ हुआ था, अतः केवल चतुर्दश योजन ही बन सका । दूसरे दिन बीस योजन, तीसरे दिन इक्कीस योजन, चौथे दिन बाइस योजन और पाँचवे दिन तेइस योजन बनाकर नल-नीलने पूरे सौ योजन समुद्रको बाँध दिया । दस योजन चौड़ा वह सेतु सागरवक्षपर मनोहर हार लगता था ।

स्पष्ट है कि वानरोंका उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता गया था । यद्यपि उनकी कठिनाई, श्रम भी उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा था । आसपासका प्रदेश पर्वत-रहित होता गया और उन्हें अधिक दूरसे पर्वत ढोने पड़े लेकिन उनका वेग उत्साहतिरेकसे बढ़ता ही गया था ।

सेतु-निर्माणका अन्तिम दिन था । सायंकाल समीप था । पवनकुमारको प्रातःकालसे ही हिमालयके शिखर लाने पड़ रहे थे । विन्ध्यको उन्होंने दूसरे वानरोंके लिए छोड़ दिया था । अन्तिम बार उन्होंने हिमालयपर द्रोणाचलके शिखर गोवर्धनको उठानेका प्रयत्न किया । उन्हें आश्चर्य हुआ, सम्पूर्ण शक्ति लगा देनेपर भी वह सामान्य शिखर उनसे हिला तक नहीं ।

'तुम्हें पितृ स्थानसे इतना मोह है ?' पवनकुमारने पर्वतको झिड़की दी—'मैं तो तुम्हें परात्पर प्रभुके पादस्पर्शसे परिपूत होनेका अवसर देने ले जा रहा था ।'

'तुम सच कहते हो ?' पर्वतसे वाणी प्रकट हुई—'तुम उन सर्वेश्वरके

दर्शन करानेका वचन दो तो मैं भारहीन हुआ जाता हूँ । इस तपोभूमिको त्यागकर सामान्य मानवोंकी क्रीड़ा स्थलीमें जानेका उत्साह मुझमें नहीं है ।'

'मैं प्रभुके पादस्पर्शको सुलभ करानेकी प्रतिज्ञा करता हूँ ।' हनुमानने भी देख लिया कि वे सामान्य पर्वत नहीं उठाने लगे थे । वह तो समूचा ही चिन्मय, दिव्यगिरि है । तब उसे आराध्यकी सेवासे अवश्य सार्थक होना चाहिये ।

'तब ले चलो !' गोवर्धनने कहा । हनुमानने उठाया तो वह उनके करोंपर आ गया । भार हीन बन गया ।

सायंकाल समीप था । सेतु-निर्माण पूरा हो गया । नल-नील उठ खड़े हुए । श्रीरामने आज्ञा दी—'जो वानर जहाँ हैं, वहीं हाथकी शिला या पर्वत डालकर आ जायें । दूसरोंको भी दौड़कर सूचना दे दें ।

इस आदेशका परिणाम हुआ कि विन्ध्यसे दक्षिणका पूरा भारत पर्वतीय हो गया । अधिकांश प्रदेश श्रृंखला हीन जहाँ तहाँ अकेले-अकेले पड़े पर्वतोंसे भर गया । थोड़े ही स्थान ऐसे बने जहाँ बहुतसे वानरोंने हाथके पर्वत साथ साथ फेंके ।

'श्रीरामका आदेश है, जो वानर जहाँ हैं, हाथका पर्वत वहीं डालकर उनके समीप पहुँचे !' यह आदेश हनुमानने तब सुना, जब वे व्रजमें गोवर्धनको लिये पहुँचे । आराध्यकी आज्ञाके अनुसार पर्वतको पृथ्वीपर रखकर बोले—'मैं स्वामीसे अनुमति लेकर आता हूँ ।'

'मैंने उन पर्वत श्रेष्ठको श्रीचरणोंमें उपस्थित करनेका वचन दिया, तब वे उठनेको प्रस्तुत हुए ।' हनुमानजीने श्रीरघुनाथके समीप पहुँचकर प्रार्थना की ।

'तुम उन्हें माथुर-मण्डलमें ही तो छोड़ आये हो ?' वे लीलामय हंसे—'वे जहाँके हैं, वहीं तुमने उन्हें स्थापित किया है । उन्हें मेरा यह स्वरूप प्रिय नहीं लगेगा । वे गोलोकके क्रीड़ा गिरि—उनसे जाकर कहो कि धरापर आ गये हैं तो इस कल्पके अट्ठाइसवें द्वापरान्त तक प्रतीक्षा करलें । मैं अपने मित्रों और गायोंके साथ उनपर विहार करूँगा । उनको करपर रखूँगा और उनकी पूजा कराऊँगा । विश्वमें सर्वोपरि सम्मान भाजन बनेंगे वे ।'

हनुमानजीने जाकर गोवर्धनको अपने स्वामीका सन्देश सुनाया तो वे गिरिवर सन्तुष्ट हो गये । द्वापरमें उन्हें उठाकर ही तो मयूरमुकुटी नन्दनन्दनको गिरिधर कहलानेका गौरव प्राप्त होना था ।

x x x x

सेतु-सम्पूर्ण हो गया । श्रीराम-नामके प्रतापसे तैरती शिलाओंका सेतु । विश्वकर्माको भी विस्मयमें डाल दे ऐसा सेतु । भवसागर जिनके नामका आश्रय लेकर प्राणी प्रमोद पूर्वक पारकर जाता है, उन्हींके उसी नामसे अंकित शिलाओंका सेतु । अद्‍भुत शोभा थी उसकी ।

नाना रंगके पर्वतोंसे बना वह सेतु । पर्वतोंपर हरित, पुष्पित वृक्ष थे । नल-नीलने शिलाओंकी विषम सन्धिमें भी पूरे-पूरे विशाल वृक्ष जमाये थे । शाखा, पत्र, पुष्पों सहित वृक्ष वहाँ सम्पूर्ण समुद्र टूटे पत्तों, पुष्पों, फलों, टहनियोंसे भर उठा था और सागरकी लहरें वह सब दोनों तटोंपर दूरतक उसे सज्जित करनेमें लगी थीं । जैसे श्रीरामके स्वागतमें सागरहके दोनों तटोंपर लम्बी बन्दनवार बिछायी गयी हो और सेतु—वह तो समुद्र वक्षपर इन्द्रधनुषके समान सुशोभित था ।

●●●

रामेश्वर-स्थापन

'आशुतोष गंगाधर नीलकण्ठ महेश्वरके लिंग विग्रहकी स्थापना यहाँ की जानी चाहिये ।' सेतुको देखकर श्रीरामने कहा—'लंका-विजयके लिए उन उमाकान्तका अनुग्रह प्राप्त करना आवश्यक है ।'

'उनका लंका-विग्रह कहाँसे आवेगा ?' इस प्रश्नपर कोई विवाद नहीं उठा । नर्मदेश्वर लानेकी अपेक्षा सबको अच्छा लगा कि पवनकुमार कैलाश जाकर भगवान कृत्तिवाससे ही उनका लिंग-विग्रह माँग लावें । हनुमान उसी समय कैलाश चले गये ।

'इस अनुष्ठानका आचार्य कौन बनेगा ?' सबसे कठिन प्रश्न था। मतंग आश्रमके पश्चात् कोई ऋषि-मुनि नहीं थे। मतंगाश्रममें भी सब वैष्णव थे। वेदज्ञ ब्राह्मण आचार्य आवश्यक था और शिव-स्थापनामें यह भी आवश्यक था कि वह नैष्ठिक शैव हो।

पौलस्त्य दशग्रीव ब्राह्मण हैं, वेदज्ञ हैं और नैष्ठिक शैव हैं।' श्रीरामने सबको चौंका दिया—'हम आचार्यत्वके लिए उनको आमन्त्रित तो कर ही सकते हैं।'

'रावणको आप आचार्य बनावेंगे अपना ?' सुग्रीवने सशंक स्वरमें पूछा।

'क्या दोष है ?' श्रीरामने कहा—'दशग्रीव इतने छुद्र नहीं हैं कि आचार्य होकर आनेपर कोई कपटाचार करेंगे।'

'आपका अनुमान उचित है।' विभीषण बोले—'आनेपर मेरे अग्रज यहाँ कपटाचार नहीं करेंगे। आ गये तो अपने कर्तव्यमें किञ्चित् प्रमाद भी नहीं करेंगे। उनके जैसा वेदज्ञ विधि-विशेषज्ञ भी दूसरा नहीं है। वे नहीं ही आवेंगे, यह भी मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता। उनका स्वभाव अद्‍भुत है। वे कब किस विषयमें क्या निर्णय लेंगे कोई अनुमान नहीं कर सकता। आपकी इच्छा हो तो उन्हें आमन्त्रित करनेमें दोष मैं नहीं देखता।'

'दूत बनकर कौन जायगा ?' श्रीरामने सबकी ओर देखा। स्वयं बोले—'ऋक्षराज जाम्बवन्तजीको जाना चाहिये। सृष्टिकर्ताके ये मानसपुत्र दशग्रीवके भी सम्मान्य हैं। इनकी उपेक्षा वे भी सहसा नहीं कर सकेंगे।'

'इस बार रामने एक रीछ भेजा है !' लंकामें आतंक फैल गया। प्रथम कल्पके सतयुगमें— सृष्टिकी आदिमें उत्पन्न हुए जाम्बवन्तजी आकारमें कुम्भकर्णसे तनिक ही छोटे थे। पूरे नगरमें यह समाचार विद्युत वेगसे फैला। सबके हृदयकी धड़कनें बढ़ गयीं—'पहिले वानर और अब ऋक्ष ? ऋक्ष वानरसे अधिक ही भयावह होता है।'

जाम्बवन्तको किसीसे कुछ पूछना नहीं पड़ा। द्वारके प्रहरियोंने हाथ जोड़कर मार्ग दिखला दिया। बीचमें भी मार्ग प्रायः सुनसान मिला। कहीं कोई मिला भी तो भयके कारण बिना पूछे, एक शब्द बोले बिना ही संकेत

कर देता था पथका । इस प्रकार जाम्बवन्त सीधे राजसभाके द्वारपर पहुँचे ।

'दशग्रीवसे कहो कि महर्षि पुलस्त्यका भाई ऋक्ष जाम्बवन्त श्रीरामका दूत होकर आया है ।' जाम्बवन्तका समाचार द्वारपालने लगभग दौड़कर पहुँचाया । स्वयं दशग्रीव उन्हें द्वारतक लेने आया ।

'राक्षसेन्द्र ! मैं अर्घ्यका पात्र नहीं हूँ ।' दशग्रीवको अर्चाका उपक्रम करते देखकर जाम्बवन्तने हँसकर कहा—'मैं इक्ष्वाकु गोत्रीय अयोध्या नरेश महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामका दूत होकर आया हूँ । उन्होंने तुम्हें सादर प्रणाम कहा है ।'

'आप आसन ग्रहण करें ।' दशग्रीवने सविनय कहा—'आप हमारे पितामहके भाई हैं । हमारे पूज्य हैं । आप एक राक्षसकी अर्चा स्वीकार कर लेंगे तो मैं आपका सन्देश भी सावधान होकर सुन सकूँगा ।'

जाम्बवन्तने कोई आपत्ति नहीं की । उन्होंने अर्घ्यपाद्यादि स्वीकार कर लिये । अर्चाके अनन्तर दशग्रीव बैठ गया, तब जाम्बवन्तने फिर कहा—'ऐक्ष्वाकु गोत्रीय श्रीरामने तुम्हें प्रणाम कहा है । वे सागर-सेतु-बन्धपर भगवान् शंकरके लिंग-विग्रहकी स्थापना यथाशीघ्र करना चाहते हैं । इस अनुष्ठानको सम्पन्न करानेके लिए उन्होंने वेदज्ञ, परमशैव पौलस्त्य दशग्रीव को आचार्य पदपर वरण करनेकी इच्छा की है । मैं उनकी ओरसे आमन्त्रित करने आया हूँ ।'

'यह शिव-स्थापन लंका-विजयकी कामनासे किया जा रहा है ?' दशग्रीवने हँसते हुए पूछ लिया ।

'स्वाभाविक है ।' जाम्बवन्तने स्वीकार किया—'श्रीरामकी भगवान् शंकरके चरणोंमें भक्ति है ।'

'अत्यन्त धृष्टता ! नितान्त निर्लज्जता !' प्रहस्त चिल्लाया—'लंकेश्वर ऐसा प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकते ।'

'मातुल ! तुम्हें किसने मध्यमें पड़नेको कहा ?' दशग्रीवने कठोर स्वरमें डाँट दिया । 'जीवनमें प्रथम बार किसीने रावणको ब्राह्मण माना, आचार्य बनाने योग्य माना और दशग्रीव इतना कापुरुष निकलेगा कि वह भारतके परम प्रशंसित महर्षि पुलस्त्यके सगे भाई वशिष्ठके यजमानका आमन्त्रण—अपने आराध्यकी स्थापनाके आचार्यत्वका आमन्त्रण अस्वीकार कर देगा ?'

'ऋक्षेश्वर ! तपस्वी राजकुमारने जब इतना बड़ा आचार्य आमन्त्रित किया है, देखना होगा कि वह उचित अधिकारी यजमान भी है या नहीं !' दशग्रीवने जाम्बवन्तकी ओर देखा—'आप जानते ही हैं कि आप त्रिभुवनजयी अपने इस शत्रुकी पुरीमें पधारे हैं। हम यदि आपको यहाँ बन्दी कर लें, आपको लौटने ही न दें ?'

'उचित होगा !' प्रहस्त चुप नहीं रह सका। राक्षसोंको भी यह ठीक लगा। किसीने जाम्बवन्तके सेतुबन्ध शब्दपर ध्यान नहीं दिया था। दशग्रीव तकने समझा था कि राम शिव-स्थापन करके समुद्रपर सेतु-निर्माणका उपक्रम करनेवाले हैं।

'यह सम्भव नहीं है !' जाम्बवन्त खुलकर हँसे—'मुझे निरुद्ध करनेकी शक्ति लंकाके सब राक्षसोंके सम्मिलित प्रयासमें भी नहीं है; किन्तु मुझे कोई धृष्टता करनेकी न अनुमति है, न आवश्यकता। मैं जब चलने लगा था, तब रामानुज लक्ष्मण समुद्र-तटपर वीरासनसे बैठ गये थे। उन्होंने आचमन करके अपने त्रोणसे पाशुपत निकाल लिया था और मुझसे कहा था—'ऋक्षराज ! दशग्रीवसे कह देना कि यदि एक मुहूर्तमें आप सकुशल मेरे दृष्टिपथमें नहीं आ गये तो यह अस्त्र सम्पूर्ण राक्षस-कुलके संहारका संकल्प लेकर छूट जायेगा !'

राक्षसोंके मुख भयपीत हो गये। प्रहस्तका शरीर स्वेदसे लथपथ हो गया। दशग्रीव तक काँप उठा। पाशुपतास्त्र—महेश्वरका यह अमोघास्त्र तो सृष्टिमें एक साथ दो पुरुष प्रयोग नहीं कर सकते। अब भले वह दशग्रीव तथा इन्द्रजितके भी त्रोणमें हो, जब लक्ष्मणने उसे निकाल लिया, स्वयं भगवान शिव भी अब उसे उठा नहीं सकते। उसका तो कोई प्रतिकार नहीं।

'आप पधारें !' दशग्रीवने अपनेको सम्हालकर कहा—'यजमान उचित अधिकारी है। उसे अपने दूतको संरक्षण देना आता है। रामसे कहिये, मैंने उनका आचार्यत्व स्वीकार कर लिया। आवश्यक उपकरण जो यजमान उपलब्ध न कर सके, जुटा देना आचार्यका कर्तव्य होता है। मैं उनको लेकर आ रहा हूँ; क्योंकि जानता हूँ कि अरण्यवासी राजकुमारके समीप क्या हो सकता है ?'

जाम्बवन्तको विदा देकर दशग्रीवने आवश्यक सामग्री संग्रह करनेकी आज्ञा दे दी और स्वयं सीधे अशोकोद्यान पहुँचा। उसने सीतासे कहा—'इस

ममय रावण तुम्हारे सामने रामके आचार्यके रूपमें आया है । वे शिव-स्थापन करने जा रहे हैं और पौलस्त्यको उन्होंने आचार्य वरण किया है ।'

'सौभाग्यवती भव !' सुनते ही श्रीजनक-नन्दिनीने भूमिपर भाल रख दिया । स्वस्थ कण्ठसे, दक्षिण भुजा फैलाकर आशीर्वाद देनेके अनन्तर दशग्रीव बोला—'तुम जानती हो कि पत्नीके बिना गृहस्थके सब अनुष्ठान अपूर्ण रहते हैं । रामका अनुष्ठान पूर्ण हो, यह दायित्व उनके आचार्यका है । रथ आ रहा है, उसपर बैठ जाओ । लेकिन स्मरण रखना, तुम वहाँ रहकर भी रावणकी वन्दिनी रहोगी । कर्मान्तमें इसी प्रकार शान्त यहाँ आनेके लिए रथपर बैठ जाओगी ।'

स्वामीने योग्य आचार्यका वरण किया है !' श्रीजानकीने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया स्वीकृतिमें ।

रथपर बैठकर जब रावण समुद्र-तटपर पहुँचा, सेतु देखकर उसके नेत्र खुले रह गये । रथ और सीताको उसने वहीं छोड़ा । आदेश मिलनेपर आना' कहकर और स्वयं आकाश-मार्गसे अकेला आया । जाम्बवन्तसे समाचार पाकर श्रीराम भाईके साथ स्वागतको पहिलेसे प्रस्तुत थे । वानर-सेनाको समझा दिया गया था ।

'ऐक्ष्वाकु गोत्रीय दाशरथि राम प्रणिपात करता है !' दशग्रीवके तटपर उतरते ही श्रीरामने सानुज प्रणाम किया भूमिमें पड़कर ।

'आयुष्मान् भव ! समर-विजय भव !' पौलस्त्यके आशीर्वचनके स्वरने सबको चौंकाया । लेकिन दशग्रीवने सुग्रीव, विभीषण तककी उपेक्षा कर दी । जैसे वे वहाँ हों ही नहीं । किसीके प्रणामका प्रत्युत्तर नहीं दिया ।

'यजमान-पत्नी कहाँ है ?' भूमि-शोधनके अनन्तर रावणने कहा तो श्रीरामने मस्तक झुका लिया ।

'तुम सन्यासी नहीं हो । पत्नी-परिग्रह-हीन वानप्रस्थका भी तुमने व्रत नहीं लिया है ।' दशग्रीवने आचार्यके लिए उचित ढंगसे कहा—'तब पत्नी-रहित अनुष्ठान तुम कैसे कर सकते हो ?'

'यजमान असमर्थ हो तो श्रुति-तत्वज्ञ आचार्य उत्तम कल्पके अभावमें अन्य विधान भी तो कर सकते हैं ?' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर अत्यन्त नम्र

स्वरमें प्रार्थना की ।

'कर सकते हैं; किन्तु पौलस्त्य जैसा आचार्य प्रथम कल्पसे किंचिन्न्यून विधि भी स्वीकार नहीं करता ।' दशग्रीव हँसा—'किसीको भेज दो उसपार । रथ खड़ा है । यजमान जिन उपकरणोंको उपलब्ध करनेमें असमर्थ हो, उन्हें उपलब्ध कराना आचार्यका दायित्व होता है । लेकिन राम ! अनुष्ठानान्तमें वे उपकरण आचार्य लौटा ले जाया करता है ।'

श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाकर मौन भावसे यह उचित तथ्य स्वीकार कर लिया । दशग्रीवने सेतुकी चर्चा तक नहीं की । श्रीरामके संकेतपर विभीषणके एक मन्त्री गये और श्रीसीताके साथ रथ इस तटपर आया । उसमें अन्य आवश्यक सामग्री भी सजाकर रखी गयी थी । सामग्री दशग्रीवके समीप रखी गयी ।

'पतिके पार्श्वमें बैठो और अनुष्ठानमें आवश्यक सहयोग दो ।' हाथ जोड़े, मस्तक नीचे किये वैदेहीको दशग्रीवने ही आदेश दिया । उसीका आदेश आवश्यक था क्योंकि यहाँ भी वे उसकी बन्दिनी थीं ।

आवश्यक गणपति-पूजन, कलश-स्थापन, नवग्रह पूजनादिके अनन्तर रावणने पूछा—'लिंगविग्रह ?'

'उसे लेने गत रात्रिके प्रारम्भमें ही पवनपुत्र कैलाश गये ।' श्रीरामने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—'वे अभी तक लौटे नहीं हैं ।'

'विलम्ब नहीं किया जा सकता । उत्तम मुहूर्त उपस्थित है ।' दशग्रीवने आदेश दिया—'यजमान-पत्नीको बालुका-लिंग बना लेना चाहिये ।'

आचार्य ऐसा ही होना चाहिये जो कैसा भी यजमान हो, विधि सम्पन्न करानेमें उसका तनिक भी संकोच न करे । श्रीजनक-नन्दिनीने स्वकरसे समुद्रकी आर्द्र रेणुकासे बड़ी-सी लिंग-मूर्ति निर्मित की । दशग्रीव निर्देश देता गया । रेणुकाका ही आधार पीठ बना । श्रीरामने वही श्रीविग्रह स्थापित किया । दशग्रीवने सविधि अर्चा सम्पन्न करा दी ।

'आचार्यकी दक्षिणा !' विधिका निर्देश तो किया ही जाना था ।

'आप जो आज्ञा करें ?' श्रीराम अञ्जलि बाँधे प्रस्तुत थे । सम्पूर्ण

वानरदलका हृदय वेगसे धड़क रहा था—'राक्षसेश्वर क्या माँगेगा ?'

'राम ! स्वर्णपुरीके त्रिभुवनजयी स्वामीकी दक्षिणा सम्पत्ति नहीं हो सकती ।' दशग्रीवने कहा ।

'आचार्य जानते हैं कि उनका यजमान इस समय वनवासी है ।' श्रीरामका स्वर भी शान्त, स्वस्थ था—'फिर भी जो आज्ञा हो, राम उसे पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा करता है ।'

'दशग्रीव जब समर-शय्या ग्रहण करे, तुम सम्मुख उपस्थित रहोगे !' रावणने अपनी दक्षिणा माँगी ।

'अच्छा आचार्य !' श्रीरामके कमल-लोचन भर आये । अब लक्ष्मणने तथा दूसरे सबने सच्ची श्रद्धाके साथ इस अद्भुत आचार्यको भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया ।

श्रीजनक-नन्दिनी संकेत पाकर रथपर बैठ गयीं । दशग्रीवने सेतुपर पद नहीं रखा । वह गगन-मार्गसे ही गया । श्रीजानकी रथपर बैठकर लंका लौट गयीं ।

लंकासे गया रथ लौटा और पवनकुमार शिवलिंग लेकर पहुँचे । वे दोनों कन्धोंपर दो लिंग-विग्रह लिये आये थे । यहाँ स्थापना हो चुकी, यह देखकर बहुत दुःख हुआ । कुछ प्रणय-रोषसे लिंग-विग्रहको रखकर प्रभुसे बोले—'मैं वहाँ गया तो भगवान् शंकरके दर्शन नहीं हुए । देर तक स्तुति करनेपर वे प्रकट हुए । उनके द्वारा प्राप्त ही लिंग-मूर्ति लानी थी । इसमें विलम्ब मेरा अपराध तो नहीं है ?'

'बात अपराधकी नहीं है । मुहूर्त व्यतीत हो रहा था, अतः आचार्यके आदेशसे सीताने रेणुका विग्रह बना दिया । उसीकी स्थापना करके मैंने पूजा कर दी । श्रीरामने थोड़े शब्दोंमें रावणके आचार्य होने तथा सीताको लाने, लौटा ले जानेका समाचार देकर कहा—'तुमको बहुत क्षोभ हो तो इस स्थापित विग्रहको हटा दो । मैं तुम्हारे द्वारा लाये विग्रहोंमें-से एककी स्थापना कर दूँगा ।'

'तुमको बहुत क्षोभ हो तो' श्रीरामके इन शब्दोंपर ध्यान देनेकी मनःस्थिति हनुमानकी नहीं थी । यह संकेत था कि स्वामीके कार्यसे क्षुब्ध होना सेवकको शोभा नहीं देता । उसे स्वामीके निर्णयसे सन्तुष्ट होना चाहिये ।

लेकिन हनुमानको बहुत क्षोभ था । रावण आचार्य बना, इसलिए भी । रावणपर तो वे अत्यन्त रुष्ट थे । अशोकोद्यानमें श्रीवैदेहीके प्रति उसका व्यवहार उनका देखा था । अम्बा सीता उन्हीं दारुण राक्षसियोंमें लौट गयीं, इसलिए भी ।

हनुमानको लगा कि उन्होंने लंका जलाया है, इसलिए रावणने जानबूझकर उनको अपमानित किया । उनके लाये श्रीविग्रहको स्थापनाका अवसर नहीं दिया । रावणके ऊपर जो रोष था, वह उसके द्वारा स्थापित शिव-लिंगपर उमड़ा । उसे उठाकर फेंक देनेके लिए पहिले अवज्ञापूर्वक वामहस्तसे प्रयत्न किया । असफल होनेपर दोनों हाथ लगाये । दूध, दधि, घृतादिसे अभिषिक्त स्निग्ध शिव-लिंगसे हाथ सरक जाते थे । अन्तमें लांगूल लपेटकर पूरी शक्ति लगायी । शिव-लिंग तो हिला नहीं, पूँछका कुछ भाग टूट गया और हनुमान दूर मुखके बल जा गिरे । मुखसे रक्त आने लगा । मूर्छित हो गये ।

श्रीराम आतुरतापूर्वक उठे । उन्होंने हनुमानके मुखपर जल छिड़का । उन्हें उठाया । अपने कर-स्पर्शसे उनकी पीड़ा, व्रण दूर करके स्नेहपूर्वक समीप बैठाकर समझाया—'पवनपुत्र ! तुमने आते ही क्रोधपूर्वक पैर पटके थे, इससे तुम्हारे पैर पृथ्वीमें धँस गये थे । अब यह लांगूल छिन्न हो गयी । अतः यहाँ तुम पादगुप्त छिन्नपुच्छ विग्रहके रूपमें सदा पूजित रहो ।'

'हनुमान ! तुम्हें सोचना चाहिये था कि निखिल विश्व-विधायिका सीताने जिसका स्वकरोंसे निर्माण किया, जिसका मैंने सविधि स्थापन करके पूजन किया, उस लिंग-विग्रहको हिलाया-उखाड़ा कैसे जा सकता है ?' श्रीरामने आदेश दिया—'अब तुम अपने लाये विग्रहोंमें-से एककी स्थापना कर दो । उसका नाम हनुमदीश्वर होगा । उसका दर्शन किये बिना मेरे द्वारा स्थापित रामेश्वरके दर्शन-पूजनका फल नहीं होगा । दूसरा लिंग-विग्रह अपूजित रहने दो । उसकी स्थापना मैं अगले कल्पमें कर दूँगा ।'

श्रीहनुमानजीने आज्ञा पालन किया । हनुमदीश्वर लिंग स्थापित कर दिया । दूसरा लिंग-विग्रह, जो विश्वेश्वर कहा जाता है, अब भी अपूजित है । इसके पश्चात् श्रीराम सेतुपर आकर खड़े हुए ।

'ये लीलामय ! इन्होंने तो हमें सुयश देनेके लिए ही सेतु-निर्माण कराया । इन्हें कहाँ इसकी आवश्यकता थी ।' नीलने अपने भाई नलकी ओर

देखा और समुद्रकी ओर संकेत किया । अब सेतुका कोई अर्थ नहीं रह गया था । श्रीरामके वहाँ खड़े होते ही समुद्रके महाकाय, योजन-शरीरी जलचरोंका समुदाय ऊपर आ गया था । सेतुके दोनों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती थी, केवल जलचर, एकके ऊपर एक लदे-से जल-जीव । वे केवल सिर ऊपर किये एकटक श्रीरामको देख रहे थे । स्थिर—शिलाके समान स्थिर देख रहे थे । उनके शरीरोंके कारण सागरका जल दीखता ही नहीं था ।

सुग्रीवकी प्रार्थनापर श्रीराम हनुमानके कन्धेपर बैठे और लक्ष्मण अंगदके कन्धेपर । सौ योजनकी यात्रा थी समुद्रके ऊपर । गदा लेकर विभीषण मन्त्रियोंके साथ आगे चले । जाम्बवन्त और सुषेणने पार्श्व-रक्षा पकड़ी । सुग्रीवको पीछे चलना था ।

वानरोंमें कम ही सेतुका सहारा लेते थे । बहुत-से गगनमें कूदते थे और जलचरोंमें किसीकी पीठपर उतरकर फिर छलाँग लगा देते थे । बहुत अधिक थे जिन्हें जलचरोंकी पीठपर चलना एक विनोद प्रतीत हो रहा था । अनेक तो पादक्षेपके साथ गिनते जा रहे थे कि कितने जलचरोंकी पीठपर वे पैर रख सके ।

जलचर स्थिर, अविचल पानीके ऊपर पड़े थे । उन्हें जैसे पता तक न हो कि उनकी पीठपर कौन चल रहे हैं, कौन कूद रहे हैं । केवल उनके सिर हिलते, घूमते थे श्रीरामको देखनेके लिए । असंख्य वानर-सेना; किन्तु जलचरोंके शरीरोंसे बने सेतुका विस्तार भी बहुत बड़ा था । दस योजन चौड़े नल-नील द्वारा बनाये गये सेतुपर-से केवल यूथपोंमें कुछ प्रधान जा रहे थे । शेष सेना तो उछलते-कूदते, जलचरोंके शरीरोंसे बने इस सजीव सेतुसे सागर पार कर रही थी । श्रीरामके साथ ही उनके सम्पूर्ण कटकने समुद्रपार कर लिया । श्रीराम तब तक समुद्रतटपर हनुमानके कन्धेपर स्थित रहे, जब तक सेनाके वानरोंका अन्तिम यूथ सागर पार उतर नहीं गया ।

●●●

सुबेल-शिविर

'अपना सैन्य-शिविर कहाँ बनेगा ?' श्रीरामने विभीषणसे पूछा ।

'इसी सुबेल-शिखरपर ।' उत्तर हनुमानने दिया ।

'सुबेलपर ?' विभीषण चौंके ।

'मैं आपसे बतलाना भूल गया था कि इसपर हमारे जिन मित्रोंको रावणने बन्दी किया था, मैंने अपनी यात्रामें उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया है ।' पवनकुमार बोले—'शिविरके उपयुक्त स्थान तो है यह ?'

'श्रीरामके सेवकोंका स्वभाव ही बद्ध प्राणणीको परित्राण देना है ।' विभीषणने हनुमानजीकी ओर आदरके भावसे देखा—'आप इसे निरापद कर गये हैं तो इससे अधिक उपयुक्त स्थान दूसरा त्रिकूटपर नहीं है ।'

'लक्ष्मण ! इस शिखरपर प्रचुर शीतल जलके निर्झर हैं । सुपक्व फलोंसे लदे वृक्ष हैं । इसे घेरेमें ले लो ।' श्रीरामने शिखर देखकर प्रसन्न मन अनुजसे कहा—'सेनाको व्यूहबद्ध विश्राम दो । शकुनोंसे प्रकट हो रहा है कि युद्ध होगा । लंकाका नाश निश्चित है । अब उन रावणके चरोंको मुक्त कर देना चाहिये । उन्हें सेना दिखला दो ।'

विभीषणने भी स्वीकृति दे दी । घुमाकर सेना दिखला दी । शुकसारण छोड़ दिये गये । वे श्रीरामकी प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम करके लंका पहुँचे । दशग्रीव प्रतीक्षा ही कर रहा था । उसने देखते ही शुकसे पूछा—'तेरे पंख अब तक बँधे क्यों हैं ? ये इतने छोटे क्यों हैं ?'

'राक्षसेन्द्र ! वानरोंने मुझे पकड़ लिया था । मैं आपको सावधान किये देता हूँ । श्रीराम क्षमासिन्धु हैं; किन्तु वानर बहुत क्रोधी हैं ।' शुकने सुनाना प्रारम्भ किया—'मैं तो समुद्र-पार गया था; किन्तु अब श्रीराम सागरपर सेतु बनाकर त्रिकूटपर उतर आये हैं । उन्होंने सुबेलपर शिविर स्थापित किया है ।

'सुबेलपर ?' रावण चौंका ।

'श्रीराम धरापर प्राणियोंको कालसे अभय करने ही आये हैं ।

शनैश्चरको भी हनुमान मुक्त कर गये थे ।' शुकने कहा—'अब कुशल इसीमें है कि आप सीताको उन्हें लौटा दें ।'

'उपदेश करनेकी आज्ञा तुझे किसने दी ?' रक्तनेत्र रावणने ऐसा शुककी ओर देखा जैसे उसे भस्म कर देगा—'चाहे सब देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष रामकी सहायताको आ जायें, मैं उन्हें सीता नहीं दूँगा । चल, उनका दल देखें । उनकी शक्तिकी सूचना लाने तुझे भेजा गया था ।'

''रामने समुद्रपर अभूतपूर्व सेतु-निर्माण करके सागर पार किया है । विभीषणने हमें पहिचान लिया था । उनके बतलानेसे हम बन्दी बना लिये गये । अब अनुग्रह करके रामने मुक्त कर दिया ।' सारणने विवरण देना आरम्भ किया, जब दोनोंको लेकर दशग्रीव दुर्गके उच्च भागपर चढ़कर सुबेल-शिखरकी ओर देखने लगा—'वे श्रीरामके समीप आपके अनुजसे सटे वानरेन्द्र सुग्रीव बैठे हैं । उनका पराक्रम असीम है । वे हाथ उठाये बालिपुत्र अंगद इधर ही देख रहे हैं । उन स्वर्णवर्ण हनुमानसे आप परिचित हैं । वे नीलवर्ण विश्वकर्माके पुत्र नल हैं । वह हिमश्वेत वानर शरभ है ।'

'ये सब वानर राक्षसोंके समान ही कामरूप हैं । इनसे युद्ध करना सरल नहीं है । जीवनका मोह त्यागकर ये श्रीरामके लिए युद्ध करेंगे ।' सारणने दिखलाया—'समुद्रके समान यह असीम वानरी सेना है । इनमें श्वेत, पीत, नील, धूम्रवर्ण, गोपुच्छ सभी प्रकारके हैं । काले सचल पर्वतोंके समान वह रीछोंकी सेना है, जिनके यूथपति जाम्बवन्त हैं ।'

'वह मत्तगजके समान चलता मैन्द है । दैत्य-दानव किसीको युद्धमें कुछ गिनता नहीं । उसके समीप उसका भाई द्विविद है ।' शुकने थोड़ा परिचय देकर कहा—'हनुमानके पराक्रमको आपने देखा है । इस समस्त सेनाके प्राण इन्दीवरसुन्दर वे श्रीराम हैं, जिन्हें छोड़कर धर्म कहीं नहीं जाता । कोई दिव्यास्त्र नहीं, जो ये न जानते हों । लेकिन शरणागतवत्सल हैं । उदार-शिरोमणि हैं । आपके भाई विभीषणको जाते ही लंकाके राज्यका तिलक कर दिया ।'

रावण हँसा । शुकने दिखलाया—'श्रीरामके पार्श्वमें अरुणनेत्र गौरवर्ण, असह्यतेजा उनके भाई लक्ष्मण हैं । ये सर्वास्त्रविशारद श्रीरामके दाहिने हाथ हैं और उन्हींके लिए अपना जीवन मानते हैं । वह मूर्ख है जो इस असीम

वानरसेनाकी गणना करना चाहे । इनका पराक्रम अचिन्त्य है । आप देख ही रहे हैं कि वानर लंकामें बजती भेरियोंकी ध्वनिपर नृत्य कर रहे हैं । गर्जना कर रहे हैं । आपकी नगर-परिखाके भीतर उनके फेंके पर्वत, वृक्ष गिर रहे हैं ।'

'तुम लोग मूर्ख हो ।' वानरोंने तुम्हें बहुत मारा-पीटा लगता है । भयभीत हो गये हो ।' दशग्रीवने शुक-सारणकी भर्त्सना की—'हमारा अन्न खाते हो और शत्रुकी प्रशंसा करते हो । मैं अभी तुमको मार देता; किन्तु तुम दोनोंने पहिले मेरी बहुत सेवाकी है, अतः क्षमा करता हूँ ।'

'आप असन्तुष्ट न हों !' दशग्रीव आकर अपनी सभामें बैठ गया, तब शुकने नम्रतापूर्वक लक्ष्मणका दिया पत्र निकाला—'इसे रामके छोटे भाईने आपको देनेके लिए दिया है ।'

'प्रहस्त ! पढ़ो इसे ।' दशग्रीवने तीन घेरेके सूत्रसे आवेष्टित वह पत्र वाम हस्तसे लेकर मन्त्री प्रहस्तको पकड़ा दिया । प्रहस्तने खोला, देखा और दशग्रीवको पुनः देते बोला—'मै इस अशिष्टतापूर्ण पत्रको पढ़नेका साहस नहीं कर सकता ।'

'अज्ञ ! व्यर्थ तूने विद्याका भार ढोया । तुझे चार श्री भी लिखना सम्मान ही देना है । अब भी अभिमान त्याग और श्रीजनक-नन्दिनीको देकर श्रीरामके चरण पकड़ । अन्यथा तेरा और तेरे वंशका विनाश आ पहुँचा है । तेरे संहारके लिए मुझ लक्ष्मणके त्रोणमें ही पर्याप्त बाण विद्यमान हैं ।'

दशग्रीवने पत्र देखा और फाड़कर अग्निमें डालनेको दे दिया । शुकने हाथ जोड़े—'आप सचमुच पत्रकी बात मानकर सीताको दे दें तो आपका मंगल होगा ।'

'तुम दोनों कृतघ्न हो !' रावण क्रुद्ध गर्जना कर उठा—'अभी लंकासे निकल जाओ ।'

भयके मारे दोनों ऊपर उछले । आश्चर्य ! गगनमें पहुंचते ही दोनोंका राक्षस शरीर मुनि रूपमें बदल गया । वस्तुतः शुक वेदपाठी ब्राह्मण था । भाई सारणके साथ वानप्रस्थाश्रम स्वीकार करके वनमें तपस्या करने आ गया था । राक्षस कैसे सह लेते कि मतंगाश्रमसे दक्षिण भी कोई आश्रम बना ले । लेकिन

तपःतेजके सम्मुख तो राक्षसोंका वश चला नहीं करता । शुक-सारण संयमी तपस्वी थे ।

मायावी वज्रदंष्ट्र महर्षि अगस्त्यको सारणका रूप धारण करके आमन्त्रित कर आया । फिर अगस्त्यका रूप धारण कर इनके आश्रम आया । दोनों भाइयोंने स्वागत किया, पूजन किया । पूछा—'आपने असमय कैसे कृपा की ?'

'तुम लोग जानते ही हो कि मुझे वातापि राक्षसने अपने भाई आतापिका मांस धोखेसे खिला दिया था ।' मायावी राक्षसने कहा—'फलतः मांसाहारकी वासना पुनः जाग गयी है । तुम्हारे यहाँ इसीलिए आया हूँ । थोड़ देरमें स्नान करके आता हूँ ।'

दोनों भाई बड़े संकोचमें पड़े । संयोगसे व्याघ्र द्वारा मारा मृग उन्हें अपने आश्रमके बाहर मिल गया । दोनोंने उसे महर्षिका प्रभाव समझा । उस मृग-मांसका रन्धन किया ।

धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म है । किसीके भी आदेशसे, किसी भी निमित्त धर्मका उल्लंघन अनर्थकारी होता है । महर्षि अगस्त्यको तो वज्रदंष्ट्र आमन्त्रित कर ही आया था । वे पधारे तो अपने सम्मुख मांस परोसा गया देखकर क्रुद्ध हो उठे । शाप दे दिया—'तुम दोनों मुझे मांस खिलाना चाहते हो ? राक्षस हो जाओ ।'

'भगवन् ! यह अपराध तो आपकी आज्ञासे ही हुआ है ।' दोनों चरणोंपर गिर पड़े ।

'तुम्हारे साथ छल हुआ ।' अगस्त्यने ध्यान करके स्थितिको समझ लिया—'अनजानमें तुमने अपराध किया; किन्तु मेरा शाप मिथ्या नहीं हो सकता । राक्षस होकर लंकामें रहो । श्रीरामका दर्शन करके रावण द्वारा निष्कासित होनेपर शापमुक्त हो जाओगे ।'

आज दोनों शापमुक्त हुए । सुबेलपर श्रीरामकी प्रदक्षिणा करके, उन्हें प्रणाम करके अपने आश्रम चले गये ।

'ये राक्षस नहीं थे ?' शुक-सारणका मुनि-वेश रावणने देखा । 'इनकी सूचनापर विश्वास नहीं किया जा सकता ।'

उसने महोदरको आज्ञा देकर दूसरे चर बुलवाये। आज्ञा दी—'रामकी सेनामें जाकर उसका पूरा पता लगाओ।'

शार्दूल पहिले चर बनकर गया था। वही अग्रणी बना; किन्तु शीघ्र रोता-चिल्लाता लौट आया। रावणने पूछा—'शत्रुने तुझे पकड़ लिया था ?'

'आप गुप्तचर भेजनेका व्यर्थ प्रयास मत करें। सब मार्ग वानरोंने घेर लिये हैं।' शार्दूलने कहा—'मैं अन्योंके साथ वानर बनकर गगन मार्गसे चला; किन्तु विभीषणने शरीरगन्धसे हम सबको पहिचान लिया। हम पकड़ लिये गये। वानर हमें मार ही देते, यदि दयामय श्रीरामने रक्षा न की होती। श्रीरामने गरुड़-व्यूह बनाया है। अब आप युद्ध करें, अथवा शीघ्र सीता उन्हें लौटा दें।'

'तुझे सम्मति देनेको नियुक्त नहीं किया गया है।' दशग्रीवने डाँटा—'शत्रुकी सेनाका वर्णन कर।'

'वानर देवपुत्र हैं। उनकी गणना और उनके बल-पराक्रमका अनुमान कर पाना असम्भव है।' शार्दूल बोला—'इसी प्रकार राम-लक्ष्मणकी शक्ति एवं सद्गुणोंका भी अनुमान नहीं किया जा सकता।'

'शत्रुकी स्तुति करता है ?' रावणने भर्त्सना की। शार्दूल चुप हो गया। सायंकाल हो चुका था। दशग्रीव उठा, वह आज राजसदनमें नहीं गया। उसने सन्देश भेज दिया मन्दोदरीको—'राक्षसेश्वरी रजत-शिखरपर मल्लयुद्ध देखने पधारें।'

लंकाके तीसरे शिखरपर—रजत-शिखरपर रावणकी मल्लयुद्ध-भूमि (अखाड़ा) थी। सम्पूर्ण शिखर घेरकर प्रेक्षागार बनाया गया था। चारों ओर बैठनेके स्थान सीढ़ियोंकी भाँति और मध्यमें मल्लयुद्ध भूमि। दशग्रीवके वहाँ पहुँचते ही दुन्दुभियाँ बजने लगीं।

अत्यन्त विशाल मेघवर्ण महाछत्रके नीचे सिंहासनपर दशग्रीव मन्दोदरीके साथ बैठ गया। वाद्योंकी गम्भीर ध्वनि होने लगी। मल्लयुद्ध भूमिमें राक्षस मल्ल उतरनेको प्रस्तुत हुए। उन्होंने उस रंगशालाका पूजन किया। दशग्रीव राक्षसोंको, लंकाके लोगोंको दिखलाना चाहता था कि वह कितना निश्चिन्त है। सुबेलपर उतरी वानर-सेनाकी अवगणना करके वह सहज

मनोरञ्जनमें सम्मिलित रह सकता है ।

पूर्णिमाकी उज्ज्वल ज्योत्सनासे धवल रजनी । श्रीराम सुबेलके शिखरपर पल्लव-शय्यापर विश्राम करने पधारे थे । अंगद और हनुमानने दोनों चरण अंकमें ले लिये थे और उनका बहुत कोमलतासे संवाहन कर रहे थे । विभीषण और सुग्रीव मस्तकके समीप दोनों ओर बैठे थे । लक्ष्मण तनिक पीछे अभी खड़े थे । जाम्बवन्त, नल-नील प्रभृति वानरोंको व्यूह-बद्ध करनेमें लगे थे । असंख्य वानरोंका पूरा दल फलाहार कर चुका था । अब सब रात्रि-विश्राम करना चाहते थे ।

'मित्र ! लगता है कि हम सबको गुहामें रात्रि-विश्राम करना होगा ।' श्रीरामने गम्भीर वाद्य-ध्वनि सुनकर सिर उठाया और दक्षिण देखा—'उधर दक्षिण घटा उठती दीखती है । किञ्चित् विद्युल्लेखा भी झलकने लगी है ।'

'देव ! वह उठते मेघ नहीं है ।' विभीषणने विनम्र स्वरमें निवेदन किया—'वहाँ रजत-शिखरपर दशग्रीवकी मल्लशाला है । लगता है, वह वहाँ पहुँच गया है । यह मेघ-गर्जनके समान वाद्य-ध्वनि गूँज रही है । वह उठती घटाके वर्णका उसका महाछत्र है और विद्युतके समान महारानी मयसुताके कर्णकुण्डल झलमला रहे हैं ।

'दशग्रीवका यह दर्प-प्रदर्शन है ।' लक्ष्मणने तनिक आगे आकर श्रीरामके करोंमें उनका धनुष दे दिया—'आर्यके करोंकी लक्ष्यवेध कुशलता भी नैकषेयोंको देखनी चाहिये ।'

'अच्छा !' श्रीरामने अनुजके मुखकी ओर देखा । पल्लवतल्पपर तनिक बैठ गये । धनुष ज्यासज्ज हो गया और त्रोणमें-से एक बाण निकालकर चढ़ाकर उस रजत-शिखरकी ओर छोड़ दिया ।

श्रीरामने धनुषको प्रत्यञ्चा उतारनेके लिए सहज भावसे भाईके करोंमें जब दिया, रजत-शिखरसे उठती वाद्य-ध्वनि बन्द हो चुकी थी । वह घटाकार महाछत्र और बिजलीकी चमक अदृश्य हो गयी थी । सबने देखा वह बाण लौटकर स्वयं त्रोणमें प्रवेश कर गया ।

उस रजत-शिखरकी मल्लशालामें बैठे लंकाके मन्त्री शूर सेनापति आदि किसीकी समझमें नहीं आया कि हुआ क्या । दशग्रीवका महाछत्र, दसों मुकुट

कटकर भूमिमें गिरे । साथ ही महारानी मन्दोदरीके दोनों ज्योतिर्मय मणि-कुण्डल कर्णपल्लियोंसे गिरे ।

'क्या हुआ ? अशुभ शकुन ?' मन्दोदरी पहिले चौंकी । उसके कर कर्णपल्लियोंपर गये । एक मन्त्रीने ही कुण्डल उठाकर महारानीको सादर दिये; किन्तु वे अब पहिननेके अयोग्य थे । उनका आधार छिन्न हो चुका था । छत्र-दण्ड कट गया था और महाछत्र भूमिमें पड़ा था । दशग्रीवने अपने मुकुट स्वयं झुककर उठाये ।

'आशंका व्यर्थ है !' सबको भयभीत देखकर रावणने अट्टाहास किया— 'मस्तकोंका गिरना जिसको वरदान दिलानेवाला बनता है, मुकुटका गिरना भी तो उसका शुभ-सूचक होगा !'

बाण किसीने देखा नहीं था । भूकम्प, आँधी कुछ कारण था नहीं । सबको—महारानी मन्दोदरीको भी दशग्रीवके दर्प-भरे वचनसे कोई आश्वासन नहीं मिला । वाद्य स्वतः बन्द हो गये थे ।

'मैं इस असुरक्षित स्थानपर और नहीं बैठ सकती ।' महारानी उठीं तो दूसरे सबको उनके सम्मानमें उठकर खड़ा होना पड़ा ।

'आज इस क्रीड़ाको विरमित रहने दो !' विवश होकर दशग्रीव भी उठा । उसे अपनी महारानीका साथ देना पड़ा । वे भयभीत थीं । अन्तःपुर तक उनके साथ जाना इस समय आवश्यक हो गया था ।

●●●

अंगदका दौत्य

'अभी वहाँ उस शिखरपर लोग आनन्द-उल्लास मग्न थे और अब वहाँ श्मशान जैसी शान्ति है ।' श्रीरामको दशग्रीवका दर्प-भंग करके सुख नहीं मिला । वे उठ बैठे, खड़े हो गये । कुछ देर लंकाकी ओर देखते रहे । इसके पश्चात् बैठे तो उनका स्वर अत्यन्त खिन्न था । अतिशय कोमल, सहज उदार स्वभाव वे बोले—'कल या कुछ दिनोंके अनन्तर इस वैभवशालिनी पुरीकी यही दशा होगी । यहाँ कुलवधुएँ विधवा बनकर, केश खोले रुदन करेंगी । इन स्वर्गोपम सदनोंमें श्मशान जैसी नीरवता रहेगी । दशग्रीवका दर्प, उसका अधर्म रामको यह क्रूर कर्म करनेको विवश कर रहा है ।'

'सुग्रीव ! विभीषण ! जाम्बवन्त ! इस पुरीको बचाया नहीं जा सकता ?' श्रीरामका हृदय व्याकुल हो उठा था—'सीताको तो आश्वाससन है कि मैं मिलूँगा; किन्तु जब वीर राक्षस मार दिये जायेंगे, उनकी विधवाओंको वह आश्वासन भी नहीं होगा ।'

'देव ! हमारे यहाँ नारीका पुनर्विवाह अधर्म नहीं माना जाता ।' विभीषणने कुछ दबे स्वरमें ही कहा—'किन्तु कुछ अवश्य ऐसी सतियाँ निकलेंगी जो सहमरण स्वीकार करेंगी ।'

'हमको एक प्रयत्न और करना चाहिये । दशग्रीव किसी भी प्रकार यदि समझ सके ।' श्रीरामका स्वभाव ही शत्रुका संकट सह पाना नहीं है । वह दूसरेका दुःख देखकर व्याकुल हो जाते हैं—'यदि वह अधर्मका पथ छोड़ दे, उसे क्षमा कर देना सहज है ।'

'बालि-तनयको दूत बनाकर उसके पास भेज देखिये ।' जाम्बवन्तने प्रस्ताव किया—'ये बुद्धिमान हैं । बालिसे मैत्री हो गयी थी राक्षसेन्द्रकी । अतः ये उसके स्नेहभाजन भी हो सकते हैं । इनकी बात सुनेगा वह ।'

'अंगद ! तुम्हें कुछ समझाना नहीं है ।' श्रीरामने अविलम्ब जाम्बवन्तका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया—'तुम स्वयं नीतिज्ञ हो । साम, दाम, भेद, दण्ड सबको अपना सकते हो । मेरा काम केवल सीताको पाना नहीं है । श्रुति,

साधु, सुरोंकी सुरक्षा संकटापन्न न बनी रहे, यह भी ध्यान रखना और उसका हित हो, ऐसा ही प्रयत्न करना ।'

सुबेल-शिखरपर रात्रि-विश्रामसे पूर्व ही यह निश्चय हो गया। अंगदको भेजनेकी यह योजना लक्ष्मणको, सुग्रीवको अच्छी नहीं लगी । इससे सीताके समुद्धारमें एक दिनकी और देर हो रही थी; किन्तु किसीने विरोध नहीं किया। श्रीरामके आदेशका ही सबको पालन करना था । अवश्य जब प्रातः प्रभुके चरणोंमें प्रणाम करके अंगद चले, सुग्रीवने उन्हें समझा दिया कि उनपर कोई संकट आ ही जाय तो वे किसी भी प्रकार संकेत कर दें । स्वयं सुग्रीव दशग्रीवकी राजसभापर दृष्टि लगाये प्रतीक्षा करेंगे संकेतकी ।

'इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी ।' अंगदने हँसकर कहा—'पवनकुमार भी लंका अकेले ही गये थे ।'

अंगदने श्रीरामकी, लक्ष्मणकी, सुग्रीवकी पद-वन्दना की । प्रदक्षिणा करके इन सबकी प्रस्थान किया । वे परिखा कूद जा सकते थे; किन्तु दूतको द्वारसे ही प्रवेश करना चाहिये । रामदूत शब्द सुनते ही द्वारपालोंने द्वार खोल दिये । अंगदने देखा कि राक्षस प्रमत्त नहीं हैं । पूरी लंका आक्रमणका सामना करनेको सन्नद्ध है ।

द्वारसे प्रवेश करते ही एक दुर्घटना हुई । रावणका एक पुत्र अक्षमाली अपने साथी—सखाओंके साथ क्रीड़ा करता द्वारके समीप आ गया था । उसने अंगदको देखा तो क्रोधसे चिल्लाया—'यह क्रूर कपि फिर आ गया ?'

अंगदको पाद-प्रहार करके वह अपमानित करना चाहता था; किन्तु अंगदने उसका वह उठा पैर पकड़ा और घुमाकर उसे वहीं भूमिपर पटक दिया । उसके सिरकी अस्थि टुकड़े-टुकड़े हो गयी । बेचारेके शवमें तड़पन भी नहीं हुई ।

'जिसने नगर जलाया था, वह उत्पाती वानर पुनः आ गया ।' राक्षसोंमें भगदड़ पड़ गयी । भाग-भागकर सब भवनोंमें छिपने लगे । भवन द्वार भड़ाभड़ बन्द हो गये । राक्षस-नारियाँ ही नहीं, शूर राक्षस-सैनिक तक गृह-सामग्री भवनके भीतरी भूगर्भमें पहुँचाने लगे—'वह फिर नगर भस्म करेगा !'

अंगदको राजपथ सूने मिले । केवल चतुरष्क रक्षक—पथ-प्रहरी भाग

नहीं सकते थे । वे पहिलेसे हाथ जोड़े काँपते खड़े हो जाते थे और समीप पहुँचनेसे पूर्व ही राजसभाकी ओरका पथ-प्रदर्शन करने लगते थे ।

'मैं श्रीरामका दूत दशग्रीवको देखना चाहता हूँ ।' राजसभाके द्वारपालसे अंगदने कहा तो वह सूचना देने दौड़ गया ।

'आने दो !' दशग्रीवने अनुमति दे दी । आज वह सबेरे ही राजसभामें आ बैठा था । उसके सब मन्त्री, सभी सेनानायक उपस्थित थे । सम्भवतः युद्धकी मन्त्रणा ही प्रारम्भ होने जा रही थी ।

अंगदने प्रवेश किया तो आतंकके कारण दशग्रीवके सब सभासद उठ खड़े हुए । क्रोधसे जलकर रावणने हुंकार की । सब भयभीत होकर बैठ गये । दूतको आसन देनेकी आवश्यकता नहीं थी । दशग्रीव चाहता था कि दूत खड़े-खड़े अपनी बात कहे । अंगदने देखा कि उनके उपयुक्त कोई आसन नहीं है तो उन्होंने अपनी पूँछ बढ़ायी और उसे इतना मोड़ते गये कि जब वे उस लांगूलसे बने आसनपर बैठे, रावणके सिंहासनसे कुछ ऊँचे ही थे और रावणके ठीक सम्मुख तो थे ही ।

'वानर ! तू कौन है ?' अंगदके इस प्रकार बैठनेसे कुछ चिढ़कर स्वयं रावणने ही पूछा । वह हनुमानसे पूछताछको प्रहस्तको नियुक्त करके देख चुका था कि ऐसा करनेसे उसके मन्त्रीकी अवज्ञा होती है ।

'राक्षस ! मैं श्रीरामका दूत हूँ ।' अंगदने वैसे ही स्वरमें उत्तर दिया— 'मेरे पितासे तेरी मित्रता थी, अतः तेरे भलेकी बात करने आ गया हूँ ।'

'तुम्हारे पिताका और तुम्हारा नाम ?' अब रावणने जानबूझकर अनजान बनते पूछा । अवश्य ही उसका स्वर कुछ परिवर्तित हो गया था— 'त्रिभुवनजयी दशग्रीवसे अपने पिताकी मित्रता किस सम्बन्धसे मानते हो ?'

'मैं वानरेन्द्र बालिका पुत्र अंगद हूँ ।' अंगदको रावणका अनजान बनना अच्छा नहीं लगा । उन्होंने भी व्यंग किया— 'कभी बालिसे तुम्हारी भेंट हुई है ? स्मरण है तुम्हें ?'

'अच्छा किष्किन्धाके वानर बालिके पुत्र अंगद तुम्ही हो । अपने कुलमें कुलांगार उत्पन्न हुए तुम ।' रावणने भी व्यंग्यपूर्वक कहा— 'अब बतलाओ, बालि कहाँ है ? कुशलपूर्वक तो है ?'

'बहुत विलम्ब नहीं है तुम्हारे बालिके समीप पहुँचनेमें । श्रीरामने जिस मार्गसे उसे जहाँ भेजा है, उसी मार्गसे तुम्हें भी शीघ्र वहीं भेज देंगे । स्वयं मित्रसे मिलकर कुशल पूछ लेना । वह तुम्हें समझा देगा कि श्रीरामका विरोध करनेसे कुशल कैसी होती है ।' अंगदने कठोर स्वरमें कहा—'मूर्खता मत करो ! श्रीरामने अत्यन्त दया करके, तुम्हारे कल्याणके लिए मुझे भेजा है । उन सर्वसमर्थसे विरोध करके किसीकी कुशल सम्भव नहीं । अभी कुछ नहीं बिगड़ा । अधर्म-पथ त्याग दो और सीताको देकर उन शरणागतवत्सलकी शरण लो ! तुम्हारा राज्य, सुख ऐश्वर्य अखण्ड बना रहेगा ।'

'अंगद ! तुम वानरेन्द्र बालिके पुत्र हो ! किष्किन्धाका राज्य तुम्हारा है ।' अंगदकी ओर सीधे देखकर दशग्रीवने कहा—'तुम्हें अपने मुखसे निर्वासित तपस्वीका दूत कहनेमें लज्जा आनी चाहिये । वानरोंमें तुम्हारा सम्मान है और न भी हो तो तुम मेरे मित्रके पुत्र हो । तुम्हें सहायकोंका अभाव नहीं है ।'

बात आरम्भ ही इस ढंगसे हुई कि उसमें प्रारम्भसे उग्रता आ गयी थी । अब दशग्रीवकी कुटिलता—उसकी भेद नीतिका आश्रय लेते देखकर अंगदको क्रोध आ गया । उन्होंने समझ लिया कि इसे समझाया नहीं जा सकता ।

'दुर्मते ! तू यह किससे कह रहा है ? उससे जो तुझपर दया करके तुझे सत्पथ दिखलाने आया है ?' अंगदका स्वर कठोर हो गया—'जिनको श्रीरामके श्रीचरणोंका सान्निध्य नहीं मिला, उनकी ही बुद्धिको स्वार्थका प्रलोभन विकृत करनेमें समर्थ है । ये दुष्प्रयत्न त्याग और सीधा मार्ग अपना । अन्यथा मृत्यु अब तेरे मस्तकपर मँडराने लगी है ।'

'अंगद ! तुम किसे बार-बार डराना चाहते हो ? त्रिभुवनजयी दशग्रीव बन्दरघुड़कीमें आवेगा ?' रावणने खिल्ली उड़ायी—'तुम्हारी दलमें है कौन जो मेरे सम्मुख समरमें खड़ा होगा ? तुम्हारा स्वामी पत्नी-वियोगमें अधमरा हो चुका है और उसका भाई अपने अग्रजके दुःखसे दुर्बल हो गया है । तुम और सुग्रीव लड़ोगे ? तुम दोनों तो स्वतः अन्तमें परस्पर सन्देह करके लड़ मरोगे । जाम्बवन्त वृद्ध है । नल-नील शिल्पी हैं । वानरोंमें कभी धैर्य रहा है कि अभी आवेगा ? एक बलवान् वानर है तुम्हारे दलमें, जो पहिले यहाँ आया था । जिसने लंका जलायी; किन्तु वह किस-किससे लड़ेगा ? उसे अकेले इन्द्रजितने

बाँध लिया था ।'

'सचमुच हमारे दलमें कोई ऐसा नहीं जो तुमसे समर करके शोभित हो, सुयश पावे ।' अंगद अट्टहास करके हँसे—'पाप-रत-प्राणी अपने अधर्मसे ही मृतकप्रायः होता है । तुम और तुम्हारे सब राक्षस पापहत हो । लेकिन रावण ! क्षत्रियका क्रोध बहुत विकट होता है । अपना कुल बचाना है तो अब भी वैदेहीको देकर क्षमा माँग लो !'

'मैं क्षमा माँगूंगा उस तपस्वीसे जिसे अयोग्य मानकर उसके पिताने निर्वासित कर दिया ?' रावणने भी अट्टहास किया ।

'अभागे ! तू उन दूर्वादल श्याम लोकाभिराम श्रीरामकी निन्दा करता है !' आराध्यपर आक्षेप सुनते ही अंगद अत्यन्त उग्र हो उठे । दाँत कट कटाकर उन्होंने दोनों भुजाएँ पूरी उठायीं और पृथ्वीपर दोनों हाथ पटक दिये । जैसे भूकम्प आ गया हो, समूची लंका हिल उठी इस प्रकार जैसे जलमें नन्हीं नौकाको सहसा बड़ी हिलोरका थपेड़ा लग जाय । दशग्रीवकी सभामें सबके-सब अपने आसनोंसे मुखके बल गिरे । स्वयं रावण गिरते-गिरते बचा; किन्तु उसके सब मुकुट भूमिपर गिर पड़े ।

अंगदने झपटकर चार मुकुट उठा लिये, यह देखकर रावणने भी शीघ्रतामें शेष मुकुट अपने बीसों हाथोंसे समेटे और सिरपर रखे । उसके चार मस्तक मुकुटहीन रह गये । अंगदने चारों मुकुट सुबेल-शिखरकी ओर पूरे वेगसे झटक दिये ।

'दिनमें ही उल्कापात !' रावणके ज्योतिर्मय रत्न-मुकुट सूर्यकी रश्मियोंसे चमकते वेगसे आते दीखे तो वानरोंमें भय व्याप्त हो गया—'दशग्रीवने कोई चार दिव्यास्त्र तो नहीं चलाये !'

पवनकुमारने कूदकर चारोंको पकड़ लिया और लाकर श्रीरामके चरणोंके समीप रख दिया । वानरोंका समूह उन अत्यन्त प्रकाश पुञ्ज मुकुटोंको देखने कुतूहलवश घिर आया । श्रीरामके संकेतपर उन्हें हाथमें उठाकर सुग्रीवने सबको दिखलाया—'ये दशग्रीवके मुकुट हैं । लगता है, अपने युवराजने छीनकर फेंके हैं ।'

'युवराज अंगदकी जय !' वानर जयघोष करते कूदने लगे ।

पकड़ लो इस वानरको ! मार दो इसे !' रावण सम्हलते ही चिल्लाया— 'राक्षस दौड़ जायें और जहाँ भी वानर मिलें, सबको पकड़-पकड़कर खा लें ! पृथ्वीको वानरहीन बना दो !'

'तुझे बकवाद करते लज्जा नहीं आती ?' अंगदने डाँटा । सचमुच वहाँसे अधिकांश सेनापति, मन्त्री, सभासद जब गिरे थे, उठकर सीधे द्वारकी ओर भागे थे । अब रावणके भयसे चुपचाप आकर अपने आसनोंपर बैठ रहे थे; किन्तु अंगदके समीप जानेका साहस उनमें-से किसीमें नहीं था ।

'ऐसा क्रोध आता है कि तेरे इन बकवादी दसों सिरोंको तोड़ दूं और तेरी लंका उठाकर समुद्रमें फेंक दूँ; किन्तु क्या करू, स्वामीने आज्ञा नहीं दी है ।' अंगदने वेगसे अपना दक्षिण पाद भूमिपर पटका—'तू बड़ी डींगे बैठा-बैठा हाँकता है ? तू और तेरे ये दिखावटी शूरोंमें कोई मेरे इस पैरको भूमिसे छुड़ा सके तो श्रीराम लौट जायेंगे । सीताको मैं हार चुका—यह मान लिया जायेगा ।'

'पैर पकड़कर इस बन्दरको समुद्रमें फेंक दो !' दशग्रीवने आवेशमें आज्ञा दी ।

'तू स्वयं क्यों नहीं उठता । तू भी अपनी शक्ति देख ले !' राक्षस एक-एक करके उठे । पूरी शक्ति लगानेपर भी अंगदका पैर नहीं हिला तो स्वेद लथपथ सिर लटकाये, लज्जित अपने आसनोंपर जा बैठे । कोई शेष नहीं रहा तो अंगदने रावणको ललकारा—'तू बड़ी डींग मारता है कैलास उठानेकी । उसके नीचे दबे-कुचले रहनेकी चर्चा भी नहीं करता । आज श्रीराम दूतका चरण ही उठा देख ।'

'धन्य राक्षसेन्द्र !' रावणने उठकर जैसे ही अंगदके पैरको पकड़ा, अंगदने हँसकर व्यंग्य किया—'श्रीराम दूतके पैर पकड़ते तुम्हें लज्जा नहीं आती और उन सर्वेश्वरके चरण पकड़ते छोटे हुए जाते हो ? तुम्हारा उद्धार मेरे पैर पकड़नेसे होनेवाला नहीं है । यह सद्बुद्धि आयी है तो मेरे स्वामीके चरण चलकर पकड़ो ।'

झल्लाकर रावणने अंगदका पैर छोड़ दिया । उसे लज्जा आयी । इस वानरने उसे प्रलोभित करके अपना पैर पकड़नेपर विवश कर दिया ।

'असीम पराक्रम श्रीरामकी जय ।'

'असह्य तेजा लक्ष्मणलालकी जय !'

'विपुल विक्रम वानरेन्द्र सुग्रीवकी जय !'

बालि-तनयने शत्रुकी उस सभामें स्थिरकण्ठ जयनाद किया । वहाँसे निकलकर सीधे गगनमें उठे । किसका साहस था जो उन्हें रोके या उनका पीछा करे ।

'अंगद ! दुर्दान्त दशग्रीवके चार मुकुट तुम कैसे पा सके ?' सुबेल-शिखरपर श्रीरामको प्रणिपात करके, लंकाका समाचार जब अंगद दे चुके, शत्रुकी शक्ति और दुर्गका वर्णन कर चुके, तब श्रीरामने पूछा ।

'स्वामी ! वे मुकुट नहीं हैं । वे तो भूपतिमें रहनेवाले चार सहज सद्‌गुण हैं—१. ऐश्वर्य, २. औदार्य, ३. शौर्य, ४. न्याय ।' अंगदने नम्रतापूर्वक कहा—'मरणासन्न रावणको त्यागकर वे सकल सद्‌गुणैकधाम इन श्रीचरणोंमें आश्रय लेने आये हैं ।'

●●●

युद्धारम्भ

अंगदसे लंका दुर्गके समाचार पाकर श्रीराम उठ खड़े हुए—'आज इस अभिजित मुहूर्तमें ही लंकापर चढ़ायी करनी है । चारों ओरसे नगरको घेरकर आक्रमण करना है ।'

'अमित विक्रम श्रीरामकी जय !' लंकाकी ओर श्रीराम चार पद चले । वानरोंने जयनाद किया । लंकामें बजती भेरियोंके तालपर ही वानर उछलने, नृत्य करने लगे ।'

'लक्ष्मण ! लंका इतनी बड़ी है । इसमें अनेक विमान हैं । अतः हमें शास्त्रसम्मत व्यूह बनाना है ।' श्रीरामने गरुड़ व्यूहका निर्देश किया—'अंगद और नील व्यूह-वक्ष रहेंगे । दक्षिण पक्ष ऋषभ और वाम पक्ष गन्धमादन ।

मैं मस्तकके स्थानपर । जाम्बवान और सुषेण कुक्षि, सुग्रीव जघन रक्षक रहेंगे । सम्पूर्ण वानर सेना व्यूहका शरीर है ।'

उधर अंगदके लंकासे प्रस्थान करते ही रावण राजसभासे उठकर अपने अन्तःपुरमें पहुँचा । मन्दोदरीने फिर पतिके चरण पकड़े—'मेरे स्वामी ! अब भी आप सीताको देकर रामसे सन्धि कर लो ! उनके इस दूसरे दूतका भी पराक्रम आप देख चुके । यह भी मेरा एक पुत्र मार गया । आपके सब शूर जिसका पद नहीं हिला सके, उसके स्वामीके साथ संग्राम करके विजयकी आशा है ? ये दोनों दूत हनुमान-अंगद लंका उखाड़कर स्थानान्तरित कर सकते हैं । आप हठ त्याग दें ।'

'मैंने युक्ति सोच ली है ।' दशग्रीवने हँसकर पत्नीसे कहा और मन्त्रणा कक्षमें पहुँचा गया । अपने महामायावी मन्त्री विद्युज्जिह्वको बुलाकर उसने कुछ समझाया और स्वयं सीधे अशोकोद्यान पहुँचा, जहाँ श्रीवैदेही अवनत मुखी बैठी थीं ।

'जनककुमारी ! हमने तुम्हें समझाया था; किन्तु तुमने मेरी बात स्वीकार नहीं की । जिनका तुम्हें बहुत भरोसा था, उन रामको मैंने युद्धमें मार दिया ।' दशग्रीवने समीप जाकर कहा; किन्तु श्रीमैथिलीने मस्तक नहीं उठाया । वह कहता गया—'वे वानरोंको लेकर समुद्र तक आ गये थे । अर्धरात्रिमें श्रान्त सोते रामको ससैन्य मार डाल गया । प्रहस्तने रामकी भुजा छिन्न कर दी । लक्ष्मण भयके कारण भाग गये । सुग्रीवकी ग्रीवा टूट गयी ।'

'उसी समय विद्युज्जिह्व रामका माया निर्मित मस्तक और धनुष लिये आया । उसने रावणको प्रणाम किया । दशग्रीवके संकेतके अनुसार वह सिर और धनुष सीताके सम्मुख रखकर, रावणको पुनः प्रणाम करके चला गया ।

'ज्योतिषियोंने—ऋषियोंने भी कहा था कि सीताको वैधव्य योग नहीं है । वे सब भविष्यवाणियाँ असत्य हो गयीं !' श्रीजानकीके अश्रु सहसा सूख गये—'मैं तो इस मस्तकको अंकमें लेकर अभी देहत्याग कर दूँगी; किन्तु इस समाचारके पहुँचते ही अयोध्या नष्ट हो जायगी ।'

'आप अविलम्ब राजसभामें पधारें ! अत्यन्त आवश्यक कार्य है ।' प्रहस्त अस्त-व्यस्त प्रायः दौड़ता आया था । उसके मुखकी ओर देखकर दशग्रीव

लौट पड़ा ।

श्रीजानकीने अपने स्वामीका मस्तक अंकमें उठानेके लिए हाथ बढ़ाया; किन्तु वह मायामय मस्तक और धनुष तो रावणके पीठ फेरते ही अदृश्य हो गये थे ।

'राजनन्दिनी ! आप इतनी चकित, आर्त क्यों हैं ? हम राक्षसोंकी मायासे सावधान रहें ।' विभीषणकी पत्नी सरमा उद्यानमें आ गयी थी । दूरसे, छिपकर दशग्रीवकी दुष्टता देख ली थी उसने । रावणके जानेपर समीप आकर उसने पद-वन्दना करके कहा—'मैं अभी दर्शन करके आयी हूँ रजत शिखरसे । मेरे स्वामीके साथ वे आपके सर्वेश्वर आराध्य सकुशल हैं । समुद्रके इस पार सुबेल-शिखरपर उनका सैन्य शिविर है । आपने ध्यान दिया कि राक्षसेश्वर यहाँसे उतावला लौटा है ।'

'आप भी राक्षसोंकी असत्य बातोंमें आ जाती हैं ? श्रीरामपर सोते समय आक्रमण सम्भव है ? आपने ही तो मुझसे कहा है कि लक्ष्मण कभी निद्रा नहीं लेते ।' सरमाने तनिक स्मितपूर्वक कहा—'यह आपने जो देखा था, वह मायासे निर्मित था । भयका कारण तो लंकेश्वरके लिए उपस्थित है । वे अपने सेनापतियोंके बुलानेसे भागे गये हैं यहाँसे ।'

'अच्छा, यदि श्रीराम, सुग्रीव, हनुमान मार ही दिये गये हैं तो लंकामें यह किससे युद्धका उद्योग हो रहा है ?' सरमाने उसी समय पुरीमें उठते कोलाहलकी ओर ध्यान दिलाया—'यह भेरी घोष, गज घण्टोंकी ध्वनि, रथोंका घर्घरनाद और सैनिकोंका कोलाहल इस पुरीमें इतना क्यों है ? आप आज्ञा दो तो मैं अदृश्य रहकर आपके आराध्यका दर्शन करके आपको लौटकर समाचार दे सकती हूँ ।'

'सखि ! यदि तुममें शक्ति है, अपनेपर विश्वास है तो मुझे यह देखकर समाचार दो कि रावण क्या कर रहा है ।' श्रीजानकीने कहा—'यह दुष्ट मुझे धमकाता है, अनेक प्रकारकी यातनाएँ देता है ।'

श्रीजानकीको सन्देह था कि सरमाने उन्हें आश्वस्त करनेकी झूठी बातें कही होंगी । यदि श्रीराम ससैन्य समुद्र पार हुए तो इसे जाकर लौटनेमें बहुत विलम्ब होगा । दशग्रीव उतावला गया था । वह अवश्य किसी अत्यन्त आवश्यक

कार्यसे गया होगा। उसका समाचार मिलनेपर अनुमान करना सरल हो सकता है ।

सरमा प्रणाम करके चली गयी । वह बहुत थोड़ी देरमें लौटी-तो श्रीजानकीने उठकर उसे हृदयसे लगाकर समीप बैठा लिया ।

'माता कैकसी अन्तःपुरीमें बैठी थीं । दशग्रीवको रोककर समझा रही थीं । वे कह रह थीं कि सीता श्रीरामको लौटा दे ।' सरमाने समाचार दिया— 'मन्त्री अविद्धने भी उनका समर्थन किया; किन्तु दशग्रीव बिना उत्तर दिये राजसभा चला गया । वह आपको छोड़ना नहीं चाहता । अब तो श्रीराम उसका वध करके ही आपको छुड़ावेंगे ।'

'रामने समुद्र पार कर लिया है । उनके साथ असंख्य वानरी सेना है । राम पराक्रमी हैं ।' राजसभामें मन्त्रियोंको बुलाकर प्रथम बार दशग्रीवने स्वीकार करके कहा—'तुम सब यह जानते हो, देखते हो; किन्तु चुप क्यों हो ?'

'राजन् ! जो राजनीति और विनयका त्याग नहीं करता, वह स्थिर ऐश्वर्य पाता है ।' माल्यवान्ने कहा—'राजनीति है कि समयपर शत्रुसे सन्धि करना उचित है । अतः आप सीताको लौटाकर रामसे सन्धि कर लें तो संग्रामका कारण नहीं रह जायगा । स्पष्ट है कि सब देवता, गन्धर्व आपकी पराजय चाहते हैं । देवता और दैत्य ये दो पक्ष हैं । सतयुगमें धर्मके द्वारा अधर्मग्रस्त रहता है । धर्मका पक्ष देवपक्ष है । कलियुगमें अधर्मके द्वारा धर्म ग्रस्त होता है । दैत्य पक्ष प्रबल होता है । अभी त्रेता ही है । तुमने धर्मका विनाश करके अधर्मका पक्ष लिया है, पर यह अधर्मके अभ्युदयका काल नहीं है । अतः शत्रु बलवान् है । तुमने ऋषियोंका उत्पीड़न किया है । राम ऋषियोंके तप, यज्ञके प्रभावसे बलवान हैं । तुमको मनुष्य, वानर, ऋक्ष, गोलांगूलोंसे अभयका वरदान प्राप्त नहीं है । मुझे इस युद्धमें राक्षस कुलका विनाश दीखता है । मेघोंसे बार-बार रक्तवर्षा होती है । ध्वजाएँ अकारण टूटती हैं । वाहन रोते हैं । बहुत उत्पात इस पुरीमें हो रहे हैं । जो सृष्टिमें सर्वोत्तम है, उससे तुम्हारा काम पड़ा है । अतः बहुत सोचकर कुछ करो ।

'माता यह माल्यवान मेरे हित चिन्तक कहे जाते हैं; किन्तु शत्रुकी प्रशंसा कर रहे हैं ।' क्रोध भरे स्वरमें रावण बोला—'पितासे निर्वासित, दीन

मनुष्य शत्रु है और शाखामृग उसके सहायक हैं । उसे ये सृष्टिका सर्वोत्तम मानते हैं । मुझ सुरासुरजयीको छोटा समझते हैं ।'

'तुम वृद्ध हो, सम्मान्य हो, अतः चाहे जो बोलते हो ? तुमको शत्रुने उत्कोच किया है ?' दशग्रीवने सीधे माल्यवन्तपर आक्षेप किया—'मैं अज्ञ नहीं हूँ । सीताको मैं सोच समझकर लाया हूँ । अब भयसे उसे लौटा दूँ ? दशग्रीवका सहज दोष है कि यह टूट जायगा, झुक नहीं सकता । ये राक्षस अब तुम्हारे उपदेशसे धर्मात्मा बन जायेंगे ? इनका स्वभाव परिवर्तित कर दोगे या इनके ऐसे ही धर्मघातक रहते केवल सीताको देकर रामको लौटा सकोगे ?'

युगदर्शी अत्यन्त दीर्घकालानुभवी दैत्य माल्यवन्तने मस्तक झुका दिया । उसे भी अपने इस दुर्दान्त दौहित्रकी दीर्घदर्शिताके सम्मुख मौन होना पड़ा । वह भी समझ गया कि अब युद्ध ही एकमात्र उपाय है । परिणामका विचार व्यर्थ है । वह चुपचाप मन्त्रणा सभासे उठ गया ।

'मातुल प्रहस्त पूर्व द्वारकी सुरक्षा सम्हालेंगे । दशग्रीवने अविलम्ब व्यूह-निर्देश देना प्रारम्भ किया—'महापार्श्वको दक्षिण द्वार देखना चाहिये । मेघनाद पश्चिम द्वारपर रहेगा । मैं स्वयं उत्तर द्वारपर जाता हूँ । राम उत्तर द्वारपर ही हैं । विरूपाक्ष नगरमें रहकर नगरकी सुरक्षाका ध्यान रखे । कभी भी कोई वानर यहाँ कूद आ सकता है ।'

x x x x

'अनल, शरभ, सम्पाती और प्रघस—ये चारों मेरे मन्त्री अदृश्य रहकर लंका गये थे । वहाँ अनेक अपने विश्वास-भाजन हैं जो हमें सूचना देते रहेंगे ।' विभीषणने श्रीरामसे कहा—'मेरे इन मन्त्रियोंने शत्रु-व्यूह देखा है । रावणकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये ।'

'पूर्व द्वारपर नील आक्रमण करेंगे ।' श्रीरामने विभीषणसे रावणके व्यूहका वर्णन सुनकर अपने यूथपोंको आदेश दिया—'पश्चिम द्वारपर हनुमान, दक्षिण द्वारपर अंगद और उत्तर द्वारपर लक्ष्मणके साथ मैं प्रहार करता हूँ कोई वानर या ऋक्ष युद्धकालमें अब मनुष्यका रूप न धारण करे । मनुष्य रूपमें मेरे और लक्ष्मणके अतिरिक्त कोई मिले तो उसे राक्षस समझा जाय । परस्पर पहिचानके सूचक वाक्य प्रतिदिन परिवर्तित हुआ करेंगे ।'

इस व्यूह-सज्जामें सायंकाल हो गया । सूर्यास्त हुआ, चन्द्रदेव प्रकट

हुए । श्रीराम हनुमानके स्कन्धारूपढ़ हुए । अंगदने लक्ष्मणको उठाया । सुबेलके उच्चतम शिखरपर आज श्रीराम प्रधान यूथपोंके साथ चढ़ गये । समुद्र-स्तरसे दो योजन ऊँचाईपर चढ़कर लंकाको, लंकामें राक्षसोंके उद्योगको देखने लगे ।

'कोई शब्द न करे ।' श्रीरामने आदेश दिया—'वानर यूथप शिखरके पृथक-पृथक स्थानोंसे पूरी लंका देख लें । कलके समरमें नगरपर आक्रमणकी अपनी योजना निश्चित कर लें ।

दशग्रीव भी यही कर रहा था । वह भी अपने थोड़ेसे मन्त्रियोंको साथ लिये रजत-शिखरकी मल्लशालासे नगरका निरीक्षण कर रहा था । नगरकी सुरक्षाके सम्बन्धमें मन्त्रियोंको आदेश दे रहा था । श्रीरामके पार्श्वमें खड़े सुग्रीवकी दृष्टि दशग्रीवपर पड़ी तो उन्होंने छलांग लगा दी ।

श्रीराम, विभीषण, हनुमान, अंगदादि सब चकित रह गये । उधर रावण और उसके मन्त्री भी हक्के-बक्के रह गये—'मैं श्रीरामका सखा—श्रीरामका दास सुग्रीव !' इस गर्जनाके साथ सुग्रीव सीधे रावणके सिरपर ही पहुँचे थे । उन्होंने लात मारकर उसके मुकुट फेंक दिये । कन्धेसे सामने कूदे और उस दुर्दम राक्षसको पृथ्वीपर पटक दिया । जबतक मन्त्री सम्हलें, रावण उठकर पकड़नेका प्रयत्न करे, तबतक तो सुग्रीवने फिर उसके मस्तकपर पाद-प्रहार किया और सुबेलकी ओर कूद गये-

'अनन्त विक्रम श्रीरामकी जय !'

सब राक्षस चकित रह गये । दशग्रीव तक स्तब्ध रह गया, उसे इस प्रकार कोई रौंदकर, अपमानित करके चला जा सकता है ? सुबेलपर सुग्रीवके पहुँचते ही श्रीरामने उन्हें हृदयसे लगा लिया । सुग्रीव श्रान्त थे, स्वेद सने थे । श्रीरामने स्नेहपूर्वक झिड़की दी—'मित्र ! तुमने अति साहस करके मुझे सन्देहमें डाल दिया था । सभी आकुल हो उठे थे । तुमपर विपत्ति आवे तो मैं सीताको लेकर क्या करूँगा फिर ऐसा साहस मत करना मैं रावणका वध करूँगा, विभीषणको लंकाका राज्य दूंगा; किन्तु तुम्हारे प्राणोंपर संकट आया तो भरतको राज्य देकर स्वयं तुम्हारे साथ देह-त्याग करूँगा !'

'मेरे स्वामी !' सुग्रीव विह्वल हो गये । चरण पकड़े उन्होंने—'मुझे क्षमा करें ! आपकी पत्नीके हर्त्ताको देखकर मैं सहन नहीं कर सका । अब इस आदेशको स्मरण रखूँगा ।'

'लक्ष्मण ! आजसे तुम स्वयं दिनान्तमें देख लिया करो कि सब वानर आहार पा चुके या नहीं । सबको जल प्राप्त हुआ ।' श्रीरामने सबको भाव-विह्वल देखकर प्रसंगान्तर किया—'एक-एक वानरकी सुविधा प्रतिदिन देख लिया करो । जो आहत हों, उनकी तत्काल चिकित्सा की जाय । किसीको कोई असुविधा न हो ।'

'प्रातःकाल जब सुबेल-शिखरसे सेना सहित श्रीराम उतरने लगे, शुभ शकुनोंको मानो स्वागतका सुअवसर मिला । गगनसे सुरोंने पुष्पवर्षा की । श्वेत चील मँडराती दीखी । नीलकण्ठ दाहिने आ बैठा ।

श्रीरामने स्वयं सबको ठीक स्थानोंपर नियुक्त किया । पूर्वमें नील, मैन्द, द्विविद । पश्चिममें हनुमान । दक्षिण अंगद, गय, गवाक्ष । उत्तर स्वयं श्रीराम । सुग्रीव, जाम्बवन्त, विभीषण सबको सहायता करने, पृष्ठ रक्षाको स्वतन्त्र रखे गये । पर्वत शिखर, वृक्ष उठाये जयघोष करते वानरोंने लंकाके द्वार घेर लिये । श्रीरामने घूमकर व्यूहका निरीक्षण करके आक्रमणकी आज्ञा दे दी ।

'वानरोंके तुमुल जयघोषसे गगन गूँजने लगा । वे परिखा ध्वस्त करने लगे । नगरपर पर्वत फेंकने लगे । उच्च परिखापर चढ़ गये—श्रीराम अनुजके साथ उत्तर द्वारपर खड़े थे । सुग्रीवने वहींसे आक्रमण आरम्भ किया—'अमित विक्रम श्रीरामकी जय ! असह्य पराक्रम लक्ष्मणकी जय !'

दशग्रीवने भी युद्धकी घोषणा की । अपने सैनिकोंको आज्ञा दी—'इन वानरोंको मार दो ! समुद्रमें फेंक दो ! खा डालो !'

राक्षस दुर्गपर अस्त्र-शस्त्र लेकर पहुँचे । वानरोंने उन्हें उछलकर पैर पकड़कर नीचे पटकना प्रारम्भ किया । वे महाबली वानर राक्षसोंको छातीसे दबा पीस देते थे, नखोंसे नोचते थे, दाँतोंसे काटते थे, घुमाकर समुद्रमें फेंक देते थे । अंगदके साथ इन्द्रजित, हनुमानके साथ जम्बुमाली जूझ रहा था । रावणके छः मन्त्री श्रीरामपर टूटे—यमशत्रु, महापार्श्व, वज्रदंष्ट्र, महोदर, महाकाय, उग्रकेश; किन्तु श्रीरामने जब धनुष चढ़ाया, उनकी शरवर्षाके सम्मुख वे खड़े हुए । युद्ध भूमिका आकाश रामनामांकित वाणोंसे व्याप्त हो गया ।

सूर्यास्त हो गया । इस प्रथम दिनके संघर्षमें लंकाकी एक चतुर्थांश सेना समाप्त होगयी ।

●●●

मायावी मेघनाद

अंगदने युद्धमें इन्द्रजितका रथ, अश्व, सारथि नष्ट कर दिया सायंकाल। अब अन्धकार फैलने लगा तो निशाचरका बल बढ़ गया। अभी चन्द्रोदय हुआ नहीं था। मायायुद्धके लिए रात्रि ही सबसे उपयुक्त अवसर है। मेघनाद मायासे अन्तर्धान हो गया।

अदृश्य रहकर मेघनादने बाण वर्षा प्रारम्भ की। उसने सभी वानरोंको और विभीषणको भी व्याकुल कर दिया। वह अन्तरिक्षमें ही श्रीरामके समीप आया और नागास्त्रका प्रयोग करके ऐसे बाण मारे कि वे सर्प होकर श्रीराम-लक्ष्मणके शरीरोंसे लिपट गये। दोनों भाई नागपाशमें बद्ध मूर्छित होकर गिर पड़े।

'मैंने राम-लक्ष्मणको मार दिया!' मेघनादने गर्वपूर्वक लंकामें लौटकर पिताके पदोंमें प्रणाम करके कहा। राक्षस प्रसन्न हो गये। लंकामें विजयोत्सव प्रारम्भ हो गया।

'शोक मत करो! दोनों भाई केवल मूर्छित हैं।' विभीषणने अपने वस्त्रसे रुदन करते सुग्रीवके नेत्र पोंछे। सभी वानर व्याकुल क्रन्दन कर रहे थे। विभीषणने धैर्य दिलाया—'इनकी मुखश्री म्लान नहीं हुई है। हतोत्साह होनेके स्थानपर इस विपत्तिको दूर करनेका प्रयत्न किया जाना चाहिये। अपने चिकित्सकको बुलाओ।'

सुग्रीवके स्वसुर सुषेण निपुण चिकित्सक थे। उन्होंने दोनों भाइयोंको तनिक समीपसे देखा। शरीरसे लिपटे सर्पोंके कारण स्पर्श सम्भव नहीं था। परीक्षा करके, लक्षण देखकर समझाया—'ये मूर्छित मात्र हैं।'

वानर इतने भयत्रस्त हो गये थे कि विभीषणको देखकर भागने लगे थे-'मेघनाद आ गया!'

'मैं आपका मित्र विभीषण हूँ। वानरोंको आश्वस्त करना पड़ा।'

श्रीराम यद्यपि नागपाशमें बँधे थे, उनकी मूर्छा दूर हो गयी। चेतना

प्राप्त करते ही समीप आहत, नागपाश बद्ध, मूर्छित लक्ष्मणको देखकर व्याकुल हो गये—'युद्धमें यदि भाई नहीं रहा तो पत्नी प्राप्त करके भी क्या करूँगा ? अनुजसे रहित मेरा जीवन व्यर्थ है । लक्ष्मणके समान भाई संसारमें अलभ्य है । लक्ष्मणके बिना अयोध्या लौटकर मैं माता सुमित्राको क्या मुख दिखलाऊँगा । मुझे धिक्कार है ! जो सर्वस्व त्यागकर मेरे पीछे वनमें चला आया, उस छायाके समान साथ लगे रहने वाले भाईकी मैं रक्षा नहीं कर सका ।'

'सुग्रीव ! वानरोंकी सेनाके साथ तुम लौट जाओ !' श्रीराम क्रन्दन कर उठे—'विभीषणको राज्य देनेकी रामकी प्रतिज्ञा झूठी हो गयी । मेरा एक बारमें पाँच सौ बाण चलानेमें समर्थ भाई मारा गया । मैं लक्ष्मणके बिना शरीर धारण नहीं कर सकता ।'

'देव ! कुमार लक्ष्मण केवल मूर्छित हैं ।' सुग्रीवने आश्वासन दिया ।' मेरे स्वसुर भिषक् श्रेष्ठ सुषेण औषधि लेने गये हैं । वे अभी आते ही होंगे ।'

सुषेण क्षीरसागारमें स्थित चन्द्र तथा द्रोण पर्वतसे अमृत सिञ्चित औषधियाँ विशल्यकरणी, संजीवनी, व्रणरोपिणी, संरोहिणी लेकर लौटे । उन औषधियोंकी गन्धसे दोनों भाइयों तथा सब वानरोंके शरीरोंमें जो टूटे वाणाग्र बच गये थे, स्वतः निकल गये । व्रण अपने आप भर गये । जो अंग छिन्न हो गये थे, वे पुनः उग आये । मूर्छित, मरणासन्न वानर भी जीवित हो गये । लक्ष्मण सचेत हो गये । श्रीरामके समान उनका शरीर भी स्वस्थ, व्रणहीन हो गया ।

जब संग्राम भूमिमें श्रीराम-लक्ष्मण मूर्छित पड़े थे, अधिकांश वानर सेना मृतप्राय थी, शेष क्रन्दन कर रहे थे, लंकामें विजयोत्सव चल रहा था । उसी समय रावणने आदेश दिया—'राक्षसियाँ सीताको पुष्पकपर बैठाकर संग्राम भूमि ऊपरसे दिखा लावें ।'

चन्द्रोदय हो चुका था । वन्दिनी, विवशा वैदेहीको राक्षसियोंके कहनेसे पुष्पकपर बैठना पड़ा । विमान समर भूमिके ऊपर बहुत समीप होकर मण्डलाकार उड़ने लगा । अपने स्वामी तथा देवर लक्ष्मणको श्रीजानकीने देखा । दोनों भाई मूर्छित पड़े थे । शरीर रक्त लथपथ, वाणोंसे विद्ध था । कहीं कोई चेष्टा न थी शरीरमें ।

'मुझे प्रख्यात तपस्वी ज्योतिर्विदोंने अविधवा तथा पुत्रवती होनेकी भविष्यवाणी की थी। मेरे किसी अंगमें ऐसा कोई दोष नहीं कि मुझे वैधव्य प्राप्त हो; किन्तु दैव बलवान है। सबकी भविष्यवाणियाँ मिथ्या हो गयीं ! सतियोंका आशीर्वाद झूठा हो गया !' अत्यन्त शोकार्ता श्रीवैदेहीका स्वर सहसा स्वस्थ हो गया—'स्वामी ! आपकी यह चरण-सेविका अभी सेवामें उपस्थित होती है।'

श्रीजानकी जैसे ही आसन लगाकर बैठीं, विमान अस्त-व्यस्त हो उठा। जैसे वह प्रचण्ड अन्धड़में पड़ गया हो। त्रिजटाने घबड़ाकर श्रीजानकीको हिलाया—'आप क्या करने जा रही हो ? श्रीराम-लक्ष्मण दोनों जीवित हैं !'

'आर्य पुत्र जीवित हैं ?' श्रीजनकनन्दिनीने नेत्र खोलकर त्रिजटाकी ओर देखा।

'आप विमानपर-से, रात्रिमें देख रही हो मूर्छाको आप नहीं पहिचान सकतीं तो भी देख सकती हैं कि वानरोंने रुदन बन्द कर दिया है। वे क्रुद्ध हैं, हर्षित हैं।' त्रिजटाने नीचे संकेत किया—'मैंने कभी तुमसे झूठी बात कही है ? तुम्हारी पतिनिष्ठाके कारण मेरी श्रद्धा है तुमपर। देखो, वानर रामको ही देख रहे हैं। पूरी वानरी सेना दोनों भाइयोंकी रक्षाके लिए सतर्क है। दोनों भाइयोंके मुखपर कान्ति है। एक रहस्य सुन लो। यह पुष्पक दिव्य विमान है। यह किसी सूतक लगे व्यक्तिका वहन नहीं करता। तुम्हें मृत-सूतक होता तो यह उड़ता ही नहीं।'

'सखि ! तुम्हारी बात सत्य हो।' श्रीवैदेहीने आसन त्यागा। पुष्पक लंका लौट गया।

अचानक आकाशमें मेघ घिर आये। इतना प्रचण्ड पवन कि वृक्ष टूटकर गिरने लगे। वानर आशंका व्याकुल हुए—'रात्रिमें कोई और राक्षसी माया ?'

इतनेमें दिशाएँ आलोकित हो उठीं। सस्वर सामगान गूँजने लगा गगनमें। प्रतप्त स्वर्ण कान्ति विनता-नन्दन गरुड़के पक्ष चालनका प्रभाव था यह प्रचण्ड पवन। उनके पंखोंकी गतिसे ही श्रुतिके स्वर उठ रहे थे। उन्हें देवर्षि नारदने भेजा था। अपने पंख समेटे वे समर भूमिमें उतर पड़े। उनके उतरते ही श्रीराम-लक्ष्मणके शरीरोंमें लिपटे सर्प उन्हें छोड़कर अदृश्य हो गये।

श्रीराम प्रसन्न होकर गरुड़का स्वागत करने उठे । उन नारायणके वाहनने अपने दक्षिण पक्षसे लक्ष्मणका स्पर्श कर दिया । बल, तेज स्मृति, उत्साह द्विगुण हो उठा दोनों भाइयोंमें ।

'मैं दाशरथि राम आपको नमस्कार करता हूँ ।' मर्यादा पुरुषोत्तमने मस्तक झुकाया—'आप पक्षधर, दिव्याभरण, दिव्यवस्त्र, दिव्यदेह । हम विपन्नोंपर अनुग्रह करनेवाले आप कौन हैं ?'

'लीलामय ! यह आपका सेवक है । नरलीलाको ही मानना है तो मैं आपका मित्र गरुत्मान हूँ ।' गरुड़ने नम्रतापूर्वक कहा—'इन्द्रजितने आप दोनोंको नागपाशमें बाँध दिया है, यह समाचार देवर्षिसे पाकर मैं शीघ्रतापूर्वक आया हूँ । ये कद्रूके पुत्र नाग बहुत विषैले हैं । इनका विष बहुत दाह उत्पन्न करता है । ये मन्त्र-प्रभावसे आह्वान करनेपर आ जाते हैं । अब इस युद्धमें इनको इन्द्रजित पुनः नहीं बुला सकता । लेकिन राक्षस कूट युद्ध करते हैं । उनपर विश्वास मत करना ।'

'अब आप मुझे अनुमति दें ।' गरुड़ने श्रीरामकी प्रदक्षिणा की और गगनमें उसी समय उड़ गये । वानर प्रसन्न हो गये । वे उछलने-कूदने लगे । उनकी गर्जना और जयनादसे आकाश गूँजने लगा ।

'जयत्यति बलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयतु सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥'

यह महाघोष गूँजा तो लंकाके बजते वाद्य बन्द हो गये । रावण चकित रह गया—'यह जय ध्वनि कैसी ? वानर इस ध्वनिसे प्रसन्न लगते हैं ? राम-लक्ष्मणको तो मार दिया था मेरे पुत्रने, फिर वानरोंके उत्साहका कारण ?'

'पता लगाइये !' एक वृद्धने कहा—'कहीं हमारी प्रसन्नता पानीका बुलबुला ही तो नहीं था ।'

'प्रहस्त ! अविलम्ब चर भेजो !' रावणने आदेश दिया—'वे अदृश्य रहकर केवल यह देखकर लौटें कि दोनों तपस्वियोंकी क्या दशा है ।'

'वे दोनों राजकुमार स्वस्थ है ।' चरोंने लौटकर कहा—'उन्हें तो कुछ भी नहीं हुआ है । उनके और वानरोंके शरीरोंमें भी कोई व्रण-चिन्ह नहीं है ।'

'औषधिसे बाण शरीरसे निकल जा सकते हैं, व्रण भर सकते हैं, मूर्छित चेतनता पा सकते हैं, कटे अंग रोपित हो सकते हैं; किन्तु—'दशग्रीव चिन्तित हो उठा—'नागास्त्रके द्वारा आहूत कद्रू पुत्र नाग और उनका विष ?'

'वहाँ किसी नागका कोई चिन्ह नहीं ।' चरोंने कहा—'न विषका उन दोनों भाइयोंपर कोई प्रभाव दीखा ।'

'उनपर नाग-विष भी निष्प्रभाव हुआ ? इन्द्रजितका पराक्रम, अस्त्र-प्रयोग व्यर्थ गया ?' दशग्रीवका मस्तक झुक गया । वह चिन्तित हो उठा । दो क्षण पश्चात् उसने सिर उठाया—'धूम्राक्ष ! प्रातःसे पूर्व ही सेना लेकर उत्तर द्वारपर पहुँच जाओ । रामको मारनेमें प्रमाद मत करना !'

धूम्राक्षका काल अन्तरिक्षमें हँस रहा है, यह स्वर धूम्राक्ष समझ गया; किन्तु उसे इस मरण-युद्धमें जाना तो था ही ।

●●●

कुम्भकर्ण-कदन

अपनी शक्तिके अनुसार धूम्राक्षने बहुत पौरुष प्रकट किया; किन्तु वानर अत्यधिक उत्साहमें थे । वे राक्षसोंको जीवित भी समुद्रमें फेंक देते थे । वहाँ समर-भूमिके समीप सागरतटका जल, मकर, व्याघ्रमुखी, तिमिंगल आदि मांसाहारी जल जन्तुओंसे भर उठा था । जहाँ आहार मिलनेकी सम्भावना हो, जलचर वहाँ स्वभावसे एकत्र हो जाते हैं । वानर मानो सेतु बनकर समुद्रपार करानेका पुरस्कार देनेमें लगे थे । कोई राक्षसोंको अधमरा करके उन्हें रेतमें ही गाड़ देते थे । वानरोंने अपने दलका विकट संहार किया है, राक्षस भागने लगे हैं, यह देखकर धूम्राक्षने भी भयंकर आक्रमण किया; किन्तु पवनपुत्र पूरा पर्वत शिखर लेकर दौड़े और पटक दिया । धूम्राक्ष उसके नीचे पिस गया ।

रावण तक समाचार पहुँचा । क्रोध करके भारी सेनाके साथ उसने वज्रदंष्ट्रको भेजा । सेना वानरोंने समाप्तकर दी और वज्रदंष्ट्रको बालि-तनयने

पटककर मार दिया ।

'तुम तो सुरोंसे संग्राममें भी अकम्पित रहते हो;' इस प्रकार प्रशंसा करके सेनाके साथ रावणने अकम्पनको भेजा । अश्वकर्ण सहायक बनकर आया । उसका अभाग्य-पवनकुमार पर वाणवर्षा करने लगा । उन आञ्जनेयकी वज्र कायासे टकराकर वाण टूट ही तो सकते थे । आज पवनपुत्र पर्वत पटकनेमें लगे थे । अकम्पनकी काया भी इसी प्रकार पिस गयी । अश्वकर्ण हनुमानकी मुष्टिका पाकर मर गया । वानर कूदने लगे । हनुमानकी पूँछ चूमने लगे ।

अब रावण चिन्तित हुआ । उसने मन्त्रियोंसे मन्त्रणा की । अपने प्रधान मन्त्री प्रहस्तसे बोला—'मातुल ! वानरोंको हम लोग जैसा उपेक्षणीय मानते थे, बात उससे उलटी निकली । उन्होंने लंका घेर रखी है । उनको रोका न गया तो वे पुरीमें आ पहुँचेंगे । तुम सेनाको प्रिय हो । तुम्हीं वानरोंका वेग सम्हाल सकते हो । पहिले सेना भगा देना । राम-लक्ष्मण एकाकी हो जायें तब उन्हें पकड़ लेना । तुम चाहे जितनी सेना ले जाओ । चाहे जिस द्वारसे आक्रमण करो ।'

'पितृव्य माल्यवानने पहिले ही सम्मति दी थी कि सीताको लौटा देनेमें ही कल्याण है ।' प्रहस्तने शान्त स्वरमें कहा—'लेकिन अब तो युद्ध चलने लगा है । आपने मेरा बहुत सत्कार किया है । आपके लिए मैं आत्माहुति देनेको प्रस्तुत हूँ ।'

रोता जाये, मरेका समाचार लाये । प्रहस्त पहिले ही हतोत्साह था । वैसे उसने आडम्बर बहुत किया । सेनाको कहा—'वानरोंका रक्त पिओ ! उनके मांससे तृप्त हो । लंकामें तुम्हें और आहार नहीं मिलेगा ।'

राक्षस पुरोहितोंसे हवन कराकर अभिमन्त्रित मालाएँ प्रत्येक सैनिकको पहनायीं । नरान्तक, महाहनु, कुम्भहनु, महानाद प्रभृति दैत्य यूथपोंके साथ पूर्वद्वारसे निकला । लेकिन पहिला स्वागत अपशकुनोंने किया । मेघोंसे रक्त वर्षा हुई । रथकी ध्वजापर गीध आ बैठा । उसे उड़ानेके प्रयत्नमें सारथिके हाथसे कशा दूर जा गिरा । अश्व अकारण ठोकर खाकर गिरे ।

'यह मातामह सुमालीका पुत्र प्रहस्त आ रहा है !' विभीषणने श्रीरामको परिचय दिया—'रावणका प्रधान सेनापति । लंकाकी लगभग आधी सेना इसके

साथ है ।'

बड़ी सेना तो बड़ा संहार । द्विविद, जाम्बवान, नील, नल, गय, गवाक्ष सब एक साथ टूट पड़े राक्षसी सेनापर । प्रहस्तको तो युद्धका अवसर भी नहीं मिला । नीलने भारी शिला उसके ऊपर पटक दी । प्रहस्तका मस्तक सैकड़ों टुकड़े हो गया । राक्षसी सेनाका थोड़ा ही भाग बचकर भाग सका । शेष वानर यूथपोंने सागरके जीवोंको समर्पित कर दिया ।

शत्रुकी उपेक्षा कभी उचित नहीं । इन्द्रको समरमें विचलित करने वाला मेरा प्रधान सेनापति मारा गया ।' दशग्रीव प्रहस्तका मरण सुनकर अत्यन्त दुःखी हुआ । 'अब मैं स्वयं युद्ध करने जाऊँगा । पृथ्वी वानरोंके रक्तसे परितृप्त हो ।'

'वानर बलवान नहीं हैं ।' बातें बनाने वालोंके पास प्रत्येक परिस्थितिमें बातें विद्यमान रहती हैं । एक राक्षस बोला—'आप जानते हैं कि पेट भरनेपर हम राक्षसोंको सो जानेकी सूझती है । वे युद्धमें भी ऊँघते जाते हैं । आपके प्रबन्धक अत्यन्त उदार हैं । राक्षसोंको भरपेट आहार देते हैं ।'

'तुम कहना क्या चाहते हो ?' दशग्रीवने उसकी ओर देखा ।

'सब राक्षसोंका भोजन बन्द करा दीजिये !' उसने सुझाव दिया—'भूखे जायेंगे तो दस-बीस वानर प्रत्येक भक्षण करनेका प्रयत्न करेगा ।

'अच्छी बात ! अबसे लंकामें राक्षसोंको आहर नहीं मिलेगा ।' युक्ति रावणको भी उचित लगी । 'लेकिन तुम अभी मेरे साथ युद्धमें चलो ।'

'मुझे आज क्षमा करदें ।' वह गिड़गिड़ाया । उसे क्या पता था कि बोलनेके पुरस्कारमें उसीको बलि पशु बनना पड़ेगा ।' मैं अभी-अभी भरपेट तरुण भैंसे खाये हैं । भरपेट कर लेनेपर मुझे पूरे सप्ताह भूख नहीं लगती ।'

'बहाने बन्द ! हम सब आज शत्रु रक्तसे प्रहस्तका तर्पण करेंगे ।' रावणने गर्जनाकी । भेरी, पणव बजने लगे । राक्षस जयनाद करने लगे । रावण स्वयं रथारूढ़ निकला तो वानरोंने 'हूं-हूँ' करके एक साथ उसपर आक्रमणकर दिया ।

'नाना पताकाओंसे युक्त, गज सेनासे पूर्ण यह कौन आ रहा है ?

श्रीरामने विभीषणसे पूछा । वे दूर थे दशग्रीवके दलसे ।

'आप इसकी ओर ध्यान दें । स्वयं राक्षसेश्वर युद्ध करने आया है ।' विभीषणने विवरण दिया—'अकम्पन द्वितीय, अतिकाय, पिशाच महोदर, कुम्भ, निकुम्भ, नरान्तक और मेघनादसे घिरा मुकुट धारी, विन्ध्यके समान दीर्घकाय दशग्रीव समरांगणमें स्वयं आया है ।'

'विभीषण ! सभी राक्षस पर्वताकार होते हैं; किन्तु राक्षसेश्वरमें कितना तेज है ।' श्रीरामने शत्रुकी प्रशंसा करके कहा—'सौभाग्यसे सीताका हरणकर्ता मेरे सम्मुख आ गया है । लक्ष्मण ! धनुष उठाओ और तुम मेरे पीछे रहो ।'

'सब राक्षस यूथप गोपुरोंमें सावधान बैठे ।' रावणने भी द्वारसे निकलते-निकलते अपने यूथपोंको आज्ञा दी—'वानर आक्रमण करके पुरी ध्वंस न करें, इसके लिए सावधान रहो ।'

सुग्रीवने पर्वत उठाकर युद्धका श्रीगणेश किया; किन्तु दशग्रीवने वाणोंसे पर्वतको चूर-चूरकर दिया । उसके आघातसे आहत सुग्रीव चीत्कार करके मूर्छित हो गये ।

सुग्रीवको संकटमें देखकर गय, गवाक्षादि सब यूथप दौड़ पड़े । दशग्रीवने सबका सम्मिलित प्रहार सह लिया । उसके दसों धनुषोंकी अनवरत वाण-वर्षाने वानरोंको व्याकुलकर दिया । सब भागकर श्रीरामकी शरण गये ।

'निसन्देह आप राक्षस-नाशमें समर्थ हैं ।' अग्रजको धनुष उठाते देखकर लक्ष्मणने प्रार्थनाकी—'किन्तु अभी तक तो यह सेवक विद्यमान है ।'

'जाओ, किन्तु सावधान रहना !' श्रीरामने अनुजको आज्ञा दे दी—'रावण असाधारण पराक्रमी है । वह अपनी रक्षा नेत्रोंसे भी कर लेता है । उसकी पलकें भी प्रबलतम वाणोंको व्यर्थकर देती हैं ।'

लक्ष्मणने अग्रजको प्रणाम किया । उनकी परिक्रमाकी । तभी पवनकुमार रावणके समीप पहुँच गये । वाम हस्तसे उसका रथ-दण्ड पकड़कर दाहिना हाथ दिखाते धमकाया—'दशग्रीव ! तुमको सबसे अवध्यता प्राप्त है; किन्तु वानरसे तुम अवध्य नहीं हो । मेरे इस पाँच अंगुलियोंसे युक्त दक्षिण हस्तको देखलो ! यह तुम्हें प्राण मुक्तकर देगा ।'

'वानर ! शीघ्र प्रहार करके अपनी साध पूरी कर ले ! दशग्रीव क्रूरतापूर्वक हँसा—'अन्यथा मैं प्रहार करूगा तो तू मर ही जायगा ।'

'तू मुझे अवसर देता है ?' हनुमानने भी अट्टहास किया—'भूल गया, मैंने तेरे पुत्र अक्षयकुमारको मारा है ।'

क्रोधमें आकर रावणने हनुमानके वक्षपर घूंसा मारा । हनुमान विचलित हो गये । लेकिन भूमिपर घुटने टेककर पुनः उठ खड़े हुए । अब उनकी वज्रमुष्टिका रावणके वक्षपर पड़ी । जैसे कोई पर्वत ढह जाय डगमगाकर दशग्रीव गिर पड़ा । वानरोंने हर्षनाद किया 'पवनपुत्र' की जय !

'वानर ! तुम्हारा बल प्रशंसनीय है ।' रावण भी सम्हलकर उठ खड़ा हुआ । प्रशंसाकी उसने—'साधु ! साधु ! तुम सचमुच बलवान हो ।'

'मेरे बलको धिक्कार है कि तू जीवित उठ गया ।' हनुमानने ललकारा—'फिर प्रहारकर !

रावणने इस बार पूरी शक्ति लगाकर घूंसा मारा । हनुमान इस आघातसे कुछ विह्वल हुए तो दशग्रीव डर गया—'अबकी बार इसे सावधान होकर प्रहार करनेका अवसर प्राप्त होगा तो यह मुझे अवश्य मार डालेगा ।' वह नीलसे युद्ध करने लगा ।

'रावण ! अन्य युद्ध-लग्नको मैं नहीं मारता ।' पवनकुमारने सावधान होनेपर दशग्रीवको विमुख देखा तो छोड़ दिया । नील पर्वत, वृक्ष फेंकते गये, किन्तु राक्षसेश्वर उनको काटता गया । सहसा नील इतने छोटे बन गये कि कूदकर उसकी ध्वजापर, उसके मस्तकोंपर, उसके धनुषकी नोकपर उछलने लगे । नखोंसे उसकी नासिकापर, ललाटपर घावकर दिये उन्होंने । उनकी स्फूर्तिसे दशग्रीव भी विस्मित हो गया ।

'तू बहुत चंचल वानर है । अब अपना जीवन बचा !' झल्लाकर रावणने आग्नेयास्त्र चढ़ाया—'यह बाण तुझे भस्मकर देगा ।'

ज्वाला उगलता वाण आया । उसकी लपटोंसे नील मूर्छित होकर गिरे अवश्य; किन्तु अग्निदेव उन अपने पुत्रको जला तो नहीं सकते थे । पृथ्वीका स्पर्श करके वे पुनः उठ खड़े हुए । इस अल्प क्षणमें रावण लक्ष्मणकी ओर

दौड़ पड़ा था !

'राक्षसराज ! मुझसे संग्राम करो ! वानरोंसे समर तुम्हें शोभा नहीं देता !' धनुष चढ़ाकर चुनौती देते सौमित्रने ज्याघोष किया ! उस भुवनभेदी ध्वनिसे दशग्रीव भी एकबार काँप गया !

'तापस ! यह तेरा अन्तिम क्षण है ।' रावणने धमकी दी !

'प्रभावशाली डींग नहीं मारा करते !' लक्ष्मणने ललकारा—'तू परम पापिष्ट है । तेरा पौरुष-पराक्रम जानता हूँ मेरी उपस्थितिमें तुझे श्रीजनक-नन्दिनीके हरणका साहस नहीं हुआ था । मैं धनुष लिये तेरे सम्मुख हूँ, पराक्रम प्रकट कर !'

अब प्रचण्ड युद्ध प्रारम्भ हुआ । दोनों ओरसे अनवरत बाण वर्षा, दोनोंने दिव्यास्त्रोंकी झड़ी लगा दी । अन्तमें दशग्रीवका धनुष कट गया । लक्ष्मणके प्रहारोंसे व्याकुल होकर उसने ब्रह्मासे प्राप्त अमोघ शक्ति उठायी । वह निर्धूम अग्निके समान ज्वालमालावृता शक्ति चली तो लक्ष्मणने उसे भी काटनेका प्रयास किया; किन्तु वह ब्राह्मीशक्ति उनके वक्षमें लगी । मूर्छित होकर श्रीरामानुज गिर पड़े ।

रावणको अपने लिए एक सुयोग प्रतीत हुआ । यदि वह लक्ष्मणको उठाकर रथमें डाल लंका जा सके, रामपर लौट जानेका दबाव डाल सकेगा । वह रथसे कूदा; किन्तु भले उसने कैलास उठा लिया हो, बीसों भुजाएँ और पूरा बल लगानेपर भी लक्ष्मणको हिला तक नहीं सका ।

'दुष्ट ! पापिष्ठ !' अचानक पवनकुमारकी दृष्टि पड़ी । वे दौड़े और आते ही एक घूंसा क्रोधमें भरकर धमक दिया । दशग्रीवके नेत्रोंसे, कर्णोंसे रक्त प्रवाह चलने लगा । वह किसी प्रकार अपने रथपर चढ़ तो गया, पर गिरकर मूर्छित हो गया । सारथि उसे लंका ले गया ।

'तुम निखिल सृष्टि-धारक, कालके भी काल हो ! तुम्हें कोई शक्ति संज्ञाशून्य कर सकती है ! 'हनुमान जब लक्ष्मणको उठा ले आये श्रीरामने अपने अमृत स्यन्दी कर अनुजपर फेरते कहा । लक्ष्मण उठ बैठे । शक्ति उनको त्यागकर ब्रह्मलोक चली गयी ।

जब सचेत होकर रावण पुनः युद्धमें आया, श्रीरामने धनुषकी प्रत्यञ्चा

चढ़ा ली । पवनकुमारने प्रार्थनाकी—'जैसे विष्णु गरुड़को वाहन बनाकर युद्ध करते हैं, आप मेरे स्कन्धारूढ़ होनेकी कृपा करें ।'

'तूने मेरे साथ बहुत दुर्व्यवहार किया है । मेरे अनुजपर तूने आज ही शक्ति चलायी । अब मैं तुझे इस राक्षस शरीरसे छुटकारा दे दूँगा ।' पवनपुत्रके कन्धोंपर बैठे श्रीरामने रावणको फटकारा । रावण कालानलके समान वाणोंसे हनुमानपर प्रहार करने लगा; किन्तु पवनकुमारके वज्रदेह पर लगकर वे वाण टूटते गये । श्रीरामने रावणके रथकी ध्वजा काट दी । रथको ध्वस्तकर दिया । उसके अश्व तथा सारथिको मार दिया । स्वयं रावण इतना आहत हो गया कि उसके हाथोंसे धनुष छूट गिरा ।

'मैं श्रान्त शत्रुका वध नहीं करता ।' अर्धचन्द्र वाणसे दशग्रीवका किरीट काटनेके अनन्तर उसे शिथिल देखकर श्रीरामने कृपाकी—'मैं अनुमति देता हूँ, लंका लौट जाओ । स्वस्थ होनेपर लौटोगे तब मेरे पराक्रमका अवसर आवेगा ।'

'मेरी सब तपस्या व्यर्थ गयी । मुझ सुरासुरजयीको एक मनुष्ययने पराजित करके प्राणदान किया !' दशग्रीव लंका लौटा तो उसका दर्प चूर्ण हो चुका था । वह भयभीत था । रात्रि-विश्रामके पश्चात् अपने अवशिष्ट मन्त्रियोंके सम्मुख कह रहा था—'मुझे अनरण्यने और वेदवतीने भी शाप दिया है । कहीं वह वेदवती ही तो सीता होकर मेरे विनाशके लिए प्रकट नहीं हुई ?'

'कुम्भकर्णको जगाओ ! सृष्टिकर्ताने उसे ६ मास सोनेका शाप दिया है; किन्तु वह कभी सात-आठ या नौ मासपर स्वतः उठता है ।' इस समय दशग्रीवमें स्वयं समर भूमिमें जानेका साहस नहीं था । यह भाईपर भरोसा कर रहा था—'वह महाकाय राक्षसोंकी ध्वजा है । इस समय काम नहीं देगा, तब कब काम आवेगा; किन्तु स्वयं वह उठ नहीं सकता । अभी पिछले दिनों ही सम्मति देकर गया और सो गया । अतः उसे प्रयत्नपूर्वक जगाओ । उसके भोजन-पानकी व्यवस्था उसके समीप कर दो । अन्यथा उठनेपर वह अपना-पराया क्षुधाके कारण देख नहीं पाता ।'

राक्षसोंने कुम्भकर्णकी गुफामें मदिरा-कलशोंकी ढेरी लगा दी । भैसों और गजोंका समुदाय उपस्थित किया गुफामें । बहुत कठिन काम था यह । कुम्भकर्ण गुफाद्वारकी ओर मुख किये उत्तान पड़ा था । उसकी नासिका-वायुके

थपेड़े गुफासे बाहर फेंक देते थे प्रवेश करने वालेको । उसकी श्वास-वायुसे बचकर उसकी गुफामें भागकर जाना था । उसकी ग्रीवासे नीचेके भागके समीप सामग्री रखो या खड़े रहो ।

एक योजन चौड़ी उस गुफामें वह पर्वताकार महाप्राणी पड़ा था । उसके रोम सर्पोंके समूह प्रतीत होते थे । उसका कन्दराके समान मुख खुला था । महिषयूथ, मांसपर्वत, रक्त एवं सुरासे भरे सहस्रशः घट उसके आस-पास सजाकर राक्षसोंने उसके पूरे शरीरपर चन्दनका लेप किया । इससे तो उसके खुर्राटे उलटे बढ़ गये । तब शंख, नगाड़े बजाने लगे, चिल्लाने लगे ।

कुम्भकर्णको जगा देना सहज नहीं था । लंका शब्दसे गूँजने लगी, पर उसने हिलनेका नाम नहीं लिया । उसके शरीरपर राक्षस कूदने लगे । उसे मुशलसे, गदासे पीटने लगे । उसके केश या कान खींचे । कठिनाई यह थी कि जो उसकी श्वासके सम्मुख पड़ता था, उड़कर गुफासे टकराता या बाहर जा गिरता था । श्वास खींचनेसे कुछ नासामार्गसे पेटमें पहुँच गये सैकड़ों घड़े जल डाला उसपर । जब कोई उपाय सफल नहीं हुआ तो उसके शरीरपर हाथियोंको दौड़ाने लगे ।

अन्ततः गजोंकी दौड़ादौड़से जगा । अँगड़ाई ली तो सब गज गिर पड़े । पातालके समाम मुख खोलकर जम्हाई ली उसने । सब राक्षस भागकर एक ओर हटगये । वहींसे संकेत किया सबने सामग्रीकी ओर । कुम्भकर्ण हाथ बढ़ाकर हाथी, भैंसे, वाराह निगलने लगा । रक्त और मदिराके घट गटागट पी गया । जब यह अल्पाहार करके उसने डकार ली, राक्षस डरते-डरते उसके समीप आये ।

'तुम लोगोंने इतने आदरपूर्वक मुझे क्यों जगाया है ?' कुम्भकर्ण अपने प्रसन्न स्वरमें गर्जना करता लगता था—'मेरे अग्रज राक्षसेश्वर सकुशल तो हैं ? अवश्य उनपर कोई भय आया होगा । अन्यथा वे मुझे जगाने नहीं देते । मैं आज ही वह भय मिटा दूँगा ।'

'हमारे ऊपर भय तो आया है; किन्तु वह दैत्य-दानव या देवताओंसे नहीं है ।' दशग्रीवके मन्त्री यूपाक्षने निवेदन किया—'सीताहरणसे क्रुद्ध रामने वानरोंको लेकर पुरी घेर ली है । आपके अग्रज राक्षसेश्वरको भी रामने युद्धमें आज आहत, अपमानित करके मृत समझकर छोड़ दिया ।'

'मैं पहिले उन दोनों भाइयोंको मारकर तब अग्रजसे मिलूँगा ।' कुम्भकर्ण उठकर गुहासे निकलने लगा ।

'राक्षसेन्द्र आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।' महोदरने प्रार्थना की—'आप उनसे मिलकर किन-किनका वध तत्काल आवश्यक है, यह जानकर तब समरांगणमें पधारें ।'

'तुम समझदार हो । कुम्भकर्णने प्रशंसा की । उसने मुख धोया । राक्षसोंने सहस्रों घट जल डालकर उसे स्नान कराया । दो सहस्र घट सुरापान करके जब मुकुट पहिनकर गुफासे निकला, वानरोंने उसे देख लिया । श्रीरामने विभीषणसे पूछा—'त्रिविक्रमके समान गगनको छूता, मुकुटधारी यह लंकामें कौन दीखता है दैत्य है या राक्षस ?'

'यह रावणका भाई कुम्भकर्ण है ।' विभीषण अब दशग्रीवके स्वजनोंको अपना स्वजन नहीं मानते थे । उन्होंने परिचय दिया—'युद्धमें इन्द्र और यमको भी इसने जीता है । इन्द्रके वज्रप्रहारसे यह केवल एक बार चिल्लाया था । यह स्वभावसे ही तेजस्वी है । जन्मते ही सहस्रों प्राणियोंको खा गया था । ऐरावतके दाँत उखाड़कर इसने उसीसे इन्द्रको मारा तो इन्द्र भाग खड़े हुए । ब्रह्मा भी अपने इस प्रपौत्रको देखकर डर गये थे । उन्होंने इसे मृतकल्प सोते रहनेका शाप दे दिया । यह वहीं सो गया । रावणने बहुत प्रार्थना की सृष्टिकर्ताकी, तब उन्होंने निद्राकी मर्यादा बना दी ६ महीने सोकर एक दिन जागनेकी । लगता है, इसे दशग्रीवने जगाया है ।'

'यह राक्षस जैसा दीखता एक यन्त्र है, जिसे रावणने बनवाया है ।' वानर कुम्भकर्णको देखकर भयसे भागने लगे थे, अतः विभीषणके एक मन्त्रीने यह प्रचार प्रारम्भ कर दिया । विभीषण हँस गये । उन्होंने नीलको सचेत किया—'अपना व्यूह भली प्रकार सुदृढ़ कर लो ।'

कुम्भकर्णके चलनेपर पूरा त्रिकूट शिखर हिलने लगा था । रावणने आगे आकर उसका हाथ पकड़ा और अपने खुले प्रांगणमें सिंहासनपर समीप बैठाया । कुम्भकर्णने अग्रजको प्रणाम किया—'आपने मुझे इतने आदरपूर्वक क्यों जगाया है; मैं क्या सेवा करूँ ? आपको किसका भय है ? कौन मरनेको उत्सुक है !'

'तुम तो मुझे आश्वासन देकर गये और सो गये ।' रावणने उपालम्भ दिया—'मुझपर राम-लक्ष्मणने भय उपस्थित किया है । सुग्रीवने वानरोंके साथ समुद्र पर करके लंका घेर रखी है । युद्धमें वानर घटते ही नहीं है । मेरा कोष रिक्त हो गया है, सेना समाप्तप्राय है । मैंने पहिले तुमसे कुछ करनेको नहीं कहा । तुमसे मुझे बड़ी आशा है । तुम विश्वमें अतुलनीय हो । लंकाकी रक्षा कर लो । मुझे बचा लो !'

'मन्त्रणा-सभामें मैंने कहा था कि रामसे युद्ध करनेमें भला नहीं है । यह विपत्ति तुम्हारे पापसे आयी है । बलके दर्पमें तुमने पहिले कर्तव्यका निश्चय नहीं किया । देश-कालके विपरीत कार्य किया और उचित सम्मतिपर ध्यान नहीं दिया ।' कुम्भकर्णने हँसकर कहा—'फिर भी बड़े हो, अब जो कहो, वह करूँगा ।'

'मुझसे छोटे होकर विपत्तिमें पड़नेके कारण मुझे आचार्यके समान उपदेश करने लगे हो ?' दशग्रीवका स्वर दुःखी था—'यह उपदेशका नहीं, काम करनेका समय है । मैंने जो किया वह गर्वसे किया या मोहसे, इस विचारका समय नहीं है । मैंने अनुचित भी किया तो अब दोष दूर करो । मुझसे प्रेम है तो मेरी सहायता करो । विपत्तिमें सहायक ही भाई होता है ।'

'राजेन्द्र ! क्रोध मत करो । निराश मत हो । मैं तुम्हारी कठिनाई दूर कर दूँगा । सीता राम-लक्ष्मणको मृत देखेगी ।' महाप्राण कुम्भकर्ण अत्यन्त गम्भीर हो गया—'सम्भव है, मैं मारा जाऊँ, तो भी तुम्हारे मरणका दुःख मुझे नहीं देखना पड़ेगा । अतः अब मुझे आज्ञा दो । अस्त्र-शस्त्रकी आवश्यकता मुझे नहीं है । चिन्ता मत करना । हनुमान सुग्रीव तो क्या, मैं सारा स्वर्ग भी चबा डालूँ तो मेरा पेट नहीं भरेगा । मैं प्राण देकर भी तुम्हें सुखी करनेका प्रयत्न करूँगा । तुम सुरापान करके सो जाओ ।'

'कुम्भकर्ण ! तुम उच्च कुलोत्पन्न हो; किन्तु तुम्हारी दृष्टि साधारण है । तुम अभिमान-ग्रस्त होकर राक्षसेन्द्रको अन्यायी कहते हो । स्वयं सोते रहते हो, अतः महाराजको भी सो जानेको कहते हो । तुमने कभी बड़ोंकी सेवा नहीं की, अतः ऐसी ओछी बात करते हो ।' मन्त्री महोदर रुष्ट होकर बोला—'हम राक्षसेश्वरसे सहमत हैं कि अब शत्रुसे युद्धका समय है; किन्तु

तुम एकाकी युद्ध करने जाना चाहते हो, यह ठीक नहीं है । जिसने अकेले चौदह सहस्र राक्षस मार दिये, वे राम खिलौने नहीं हैं ।'

'आप नीतिसे काम क्यों नहीं लेते ?' महोदरने रावणसे कहा— 'वितर्दन, विजिह्व, संह्वादि, मैं और ये कुम्भकर्ण यहाँसे जाकर रक्त लथपथ बनकर लौट आवें । आपसे सीताके सम्मुख कहें—'हमने राम-लक्ष्मणका वध कर दिया । आप महोत्सव मनानेकी आज्ञा दे दें । तब सीताको विश्वास हो जायेगा । अपने उद्धारसे निराश होनेपर वह अन्तमें आपको स्वीकार कर लेगी । वह सुखमें पली है । सुखके सम्बन्धमें आश्वस्त होनेपर मान जायेगी ।'

'यह डरपोक है, कायर है, कुबुद्धि है, कुपुरुष है !' सहजशूर, स्वभावसे सरल कुम्भकर्ण महोदरकी छल-कपटकी बातें सुनकर क्रुद्ध हो उठा । उसने रावणको भी लताड़ा—'तुमने ऐसे मूर्ख, स्वार्थी मन्त्री बना रखे हैं ? यह चाटुकार मंदमति अपनेको बुद्धिमान मानता है । यह क्या समझता है कि विजयी वानर गर्जना नहीं करेंगे ? या सीताको उनका सिंहनाद सुनायी नहीं देगा ? वानर चुप रहेंगे या पुरीपर आक्रमण करेंगे । ये सब मित्रके रूपमें शत्रु हैं । इनके दोषसे स्वर्णपुरी लंकाका कोष रिक्त हो गया । इनके दोषसे सेना मारी गयी ।'

'सचमुच महोदर रामसे डर गया है ।' रावणने हँसकर भाईको झगड़ा करनेसे बचाया—'तुम अकेले जाकर वानरोंपर टूट पड़ो । हाथमें त्रिशूल ले जाओ । वानर तो तुम्हें देखकर ही भाग जायेंगे । राम-लक्ष्मणका भी भयके कारण हृदय फट जायेगा ।'

'वानर भी वीर हैं । वे समीप आकर तुम्हें तंग न करें, अतः सेनाको साथ जाने दो;' कुम्भकर्णने जब विशाल शूल ले लिया और कहा कि सेना यहीं रहे, तब रावणने स्नेहपूर्वक समझाया—'सेनाके राक्षस वानरोंको पीछेसे तुम्हारे पास नहीं आने देंगे ।'

दशग्रीवने स्वयं कुम्भकर्णके कण्ठमें विशेष रूपसे बनवायी माला डाली । उसे कवच पहिनाकर आलिंगन किया और आशीर्वाद दिया । राक्षस सिंह, गज, सर्प, पक्षी आदि वाहनोंपर बैठकर उसके पीछे चले ।

'आज भरपेट वानरोंके शरीरका भोजन प्राप्त होगा ।' कुम्भकर्णको यह आशा प्रमत्त तथा प्रसन्न किये थी । अपशकुनों-उत्पातोंका तांता लगा है,

इस ओर उसका ध्यान ही नहीं गया। सब नगर-द्वार उसके लिए बहुत छोटे थे। उसने पद उठाया और परिखा पार कर गया। उस सचल पर्वतको देखकर वानर भयके मारे भागे।

'भागकर कहाँ जाओगे ? चारों ओर समुद्र है। आज प्राणपणसे युद्ध करो!' अंगदने पुकारा। बहुत-से वानर लौटे। वृक्ष, पत्थर आदिसे कुम्भकर्णपर प्रहार करने लगे। कुम्भकर्णको प्रहारकी चिन्ता नहीं थी। वह वानरोंको समेटकर चबाने लगा था। कुछको पैरोंसे कुचलता जा रहा था। अंगदने फिर ललकारा वानरोंको। कुछ थोड़े शरभ, मैन्द, तार, पनसादि लौटे। श्रीरामके लिए प्राणत्यागका संकल्प करके कुम्भकर्णपर प्रहार करने लगे। कुम्भकर्णको प्रहारका पता ही नहीं लगता था। वह शूलको भी वानरोंको रोककर समेटनेके उपयोगमें ले रहा था। झुंडके झुंड वानर मुखमें डालता था। उनमें से वहुतसे उसके नासिका छिद्रसे निकलकर भाग रहे थे।

हनुमान उस महाकायके प्रहारसे घायल-विह्वल हो गये थे। नीलको उसने पकड़कर पटक दिया। वे मूर्छित हो गये। ऋषभको पकड़कर कक्षमें दबा लिया उसने। अंगद भी आहत हो गये। सुग्रीवको भी उसने पकड़ा— 'तुम प्रजापतिके प्रपौत्रसे पौरुष दिखलाओ!'

'अब आधा काम तो पूरा हो गया।' सुग्रीवको पकड़कर वह लंकाकी ओर लौटा।

'हमारा क्या कर्तव्य है ?' सुग्रीवको लेकर कुम्भकर्ण लंका जाने लगा तो पवनकुमार चिन्तित हुए—'यदि मैं छुड़ाता हूँ तो वानरेन्द्र बहुत लज्जित होंगे। अतः मुझे प्रतीक्षा करनी चाहिये।'

उत्तम सेवकको सेवा भी सोच-समझकर करनी पड़ती है। हनुमान वानरोंको व्यवस्थित करनेमें लग गये।

कुम्भकर्ण सुग्रीवको लेकर लंका लौटा। परिखाके भीतर प्रवेश करते ही वर्षा हुई। सुग्रीवकी मूर्छा दूर हो गयी। दो क्षण वे सोचते रहे। स्थिति समझमें आयी तो दाँतोंसे काटने और दोनों हाथोंसे नोचने लगे। कुम्भकर्ण इस अचानक आक्रमणसे चौंका तो छूट गये। तत्काल कूदकर श्रीरामके समीप आ गये।

'आप ही इस महादैत्यसे हमारी रक्षा करें ! 'वानर भागे दौड़े श्रीरामके समीप पुकारते पहुंचे। कुम्भकर्ण लौटा आ रहा था। उसके हाथमें आयी सफलता छिन गयी थी। बहुत क्रुद्ध था। कहींसे एक भारी मुद्‌गर उठा लिया था उसने। वानरोंको मुद्‌गरसे पीटता मुखमें डालता दौड़ता आ रहा था।

'श्रीरामने धनुष चढ़ाया। 'डरो मत ! शान्त खड़े समर देखो !' उन सबके शरणदने वानरोंको अभय दिया और आगे बढ़े। उनके पहिले वाणने ही कुम्भकर्णके हाथका मुद्‌गर काट फेंका और वह मुदगरधारी भुजा भी काट दी। दूसरे हाथसे उसने शिला उठायी। वह हाथ भी कट गया। अब मुख फाड़कर वह दौड़ा श्रीरामकी ओर। उन शारंगधन्वाने पैर काट दिये। इतनेपर भी धड़ लुढ़कता चला आ रहा था। श्रीरामके एक वाणने उसका हृदय बिद्ध कर दिया। दूसरे दिव्यास्त्रने जो अर्धचन्द्राकार था, पर्वतके समान मस्तक काट दिया।

'दो घड़ी तक लगा था कि कुम्भकर्ण विजयी होंगे; किन्तु-' बचे-खुचे राक्षस लंका भागे। उन्होंने डरते-डरते रावणसे निवेदन किया।

'किन्तु—किन्तु क्या ?' रावण व्याकुल बोला—'वह समरविमुख होकर फिर सोने चला गया ?'

'वे सदाके लिए समरभूमिमें सो गये।' राक्षस रोते-रोते बोले—'रामने उन महाप्राणको मार दिया। उनके शरीरसे निकली अद्‌भुत ज्योति भी रामके शरीरमें लीन हो गयी।'

दशग्रीव शोक-मूर्छित गिर पड़ा सिंहासनपर। देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा, अतिकाय, महोदर सब व्याकुल क्रन्दन करने लगे, रावणकी चेतना लौटी तो सिर पीटने लगा—'मेरे भाई ! तुम मुझे छोड़कर चले गये ? मुझे असहाय कर गये ! मेरा जीवन व्यर्थ हो गया ! मैं अब राज्य लेकर क्या करूँगा। मुझे भी अब तुम्हारे स्थानपर ही आना है।'

विभीषणकी बात ही सत्य थी। मैंने उसे स्वीकार नहीं किया। मैंने उस विनम्रको अपमानित किया। वह कुशल रहे !' विपत्तिमें बहुत बार बुद्धि जाग्रत होती है। बुद्धि-विपर्यय भी हो जाता है। आज राक्षसेन्द्र रो रहा था—'प्रहस्त और कुम्भकर्णके मरनेसे पूर्व मेरी समझमें यह बात नहीं आयी थी।

यह विभीषणकी बात न माननेका दुष्परिणाम है । मैंने धर्मशील अनुजको निर्वासित करके अनुचित किया ।'

'आप हम सबके अधीश्वर हैं । आप जैसे महत्पुरुष विलाप नहीं किया करते ।' त्रिशिराने साहस किया—'आपके समीप ब्रह्माका दिया अभेद्य कवच है, शक्ति है, एक सहस्र गर्दभ जुतें, ऐसा अपूर्व रथ है । आप निराश क्यों होते हैं ? अब तो शत्रुका सामना करना ही एकमात्र मार्ग है । आप भाईका प्रतिशोध लेनेका निश्चय करके उठ खड़े हों । अभी तो आपके पुत्र हम सब सेवाको समुद्यत हैं । आप हमें संग्राममें जानेकी आज्ञा दें ।'

'तुम लोग विजयी होओ ! महाकालिका तुम्हारे आगे-आगे प्रयाण करे !' रावणने त्रिशिरा, देवान्तक, नरान्तकादि अपने पुत्रोंको आशीर्वाद दिया—'मैं इस समय शोक-सन्तप्त हूँ । कुम्भकर्ण क्या गया, मेरी शक्ति, साहस सब चला गया । मुझे सम्हलनेमें समय लगेगा । मेरे दोषसे मेरा भाई मारा गया । उसे ब्रह्माने कहा था—'जब असमय जगा दिया जाय, समझ लेना कि अब मृत्यु तुझे अनन्त निद्रा देनेवाली है ।'

'हाय ! मुझ स्वार्थान्धने भाईको असमय जगाया !' आज दशग्रीव अत्यन्त व्याकुल था । उसे कुम्भकर्णपर गर्व था । इस सदा सोनेवाले भोले भाईसे असीम अनुराग था ।

'आप आकुलताका त्याग कर दें !' नरान्तकने आश्वासन दिया—'हम सब शत्रुपर विजय प्राप्त करके ही आपके सम्मुख आवेंगे । अन्यथा अब समरभूमि हमारी अनन्त शय्या होगी ।'

लंकासे जो यह प्रतिज्ञा करके गया, उसके भाग्यमें समर शय्या ही है—'इसे दशग्रीव समझता था । पुत्रोंको विदा करते उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था—पर कोई उपाय नहीं था । यह अग्नि उसने स्वयं लगायी थी । इस नरमेध यज्ञमें अपनोंकी आहुति देनेको अब वह विवश था ।

●●●

लक्ष्मण-शक्ति

अनवसर आये रावणके पुत्र युद्धभूमिमें । अपने पिताकी व्याकुलता देखकर आये थे । कुम्भकर्णकी मृत्युने उनको निराश कर दिया था । विजयकी अपेक्षा मरण उन्हें अधिक सन्निकट दीखता था ।

कुम्भकर्णकी मृत्युने वानरोंको विजयके प्रति असन्दिग्ध कर दिया था । यद्यपि असीम विनाश किया था कुम्भकर्णने वानर-सेनाका; किन्तु वानर अब अपनी विजयके प्रति पूर्ण आश्वस्त थे । उत्साहातिरेकमें थे । ऐसी सेना अपनेसे कई गुनी सशक्त शत्रु-शक्तिपर भी भारी पड़ती है ।

समरभूमि रक्तका दलदल बन चुकी थी । हनुमान गन्धमादन जाकर औषधि ले आये थे । उसकी गन्धसे वानरोंके व्रण भर गये थे । उनके छिन्नांग पुनः रोपित हो गये थे । उनमें जो अत्यन्त मरणासन्न थे, वे भी स्वस्थ, सबल हो गये थे ।

यह लाभ राक्षसोंको अप्राप्य था । रावण नहीं चाहता था कि लंकामें आतंक फैले । कितने राक्षस मारे गये, यह वह किसीको पता नहीं लगने देना चाहता था । अतः उसने आज्ञा दे रखी थी कि समरभूमिसे वानरोंके हटते ही राक्षसोंके शव समुद्रमें फेंक दिये जायें । जो अत्यन्त आहत हों, जिनके अंग-भंग हो गये हों, उन्हें भी समुद्रमें फेंक दो । केवल वे उपचारके लिए उठाकर नगरमें लाये जावें, जो सामान्य उपचारसे पुनः युद्धके योग्य हो सकते हों ।'

समरभूमि स्वच्छ करनेवाले राक्षसोंका दल पृथक था । वैसे वानर भी आहत, मूर्छित बहुत-से राक्षसोंको समुद्रमें फेंक देते थे । जो समुद्रमें गिरा उसे जलजीवोंने आहार बना लिया । फलतः युद्धभूमिमें मृत, आहत, मूर्छित बहुत-से राक्षस मिलते ही नहीं थे । औषधिका लाभ उन्हें कैसे मिलता ।

रावणके पुत्रोंके दुर्ग-द्वारसे बाहर आते ही वानर यूथप उनपर टूट पड़े । त्रिशिरा नीलके द्वारा मार दिया गया । अंगदने नरान्तकको यमलोक भेज दिया । महोदरका उदर भी बालितनयने फाड़ दिया । अतिकाय द्वितीय कुम्भकर्णके समान पर्वताकार था । अस्त्रज्ञ था । धनुषटंकार करता बढ़ा तो वानर भागकर श्रीरामके

समीप गये ।

'यह रावणकी पत्नी धान्यमालिनीका पुत्र महासेनापति है ।' विभीषणने श्रीरामको परिचय दिया—'इसका सूर्यके समान चमकता कवच अभेद्य है । ब्रह्मासे इसने वरदान पाया है । इसे शीघ्र मार दें ।'

'मैं सामान्य वानरोंसे युद्ध नहीं करता ।' वह वानरोंके प्रहारकी अवगणना करता श्रीरामके सम्मुख आया—'स्वयं युद्ध करो या कोई शूर तुम्हारी सेनामें हो तो उसे भेजो !'

'तू तो कलका बच्चा है ।' लक्ष्मणको धनुष चढ़ाये आते देखकर उसने आक्षेप किया ।

'मैं श्रीरामका बालक हूँ ।' लक्ष्मणने ललकारा—'तेरी तो मैं मृत्यु हूँ । सम्हाल !'

दोनों ओरसे दिव्यास्त्रोंकी वर्षा होने लगी । सहसा लक्ष्मणके श्रवणमें अदृश्य सरसुराते वायुदेवके शब्द पड़े—'कुमार ! सृष्टिकर्ताके वरदानसे इसका कवच अभेद्य है । केवल ब्रह्मास्त्र उसे तोड़ सकता है ।'

लक्ष्मणने ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया । अतिकायका अभेद्य कवच कट गया । लक्ष्मणने उसका सिर काट दिया । समाचार मिला तो रावण उद्विग्न हो उठा—'मेरे सब पुत्र मारे गये ? राम-लक्ष्मणके समीप कितने दिव्यास्त्र हैं ?'

'लगता है, लंकामें रामके गुप्तचर हैं । लक्ष्मणको कैसे पता लगा कि अतिकायका कवच ब्रह्मास्त्रसे ही कटेगा ?' रावण क्रोधोन्मत्त था—'कोई सीताके समीप छिपकर अशोकोद्यानमें आता है ? वानरोंके पद-चिन्ह पुरीमें कहीं मिलते हैं ? वानरोंकी उपेक्षा मत करो । मैं स्वयं युद्ध करने जाऊँगा ।'

'पिताजी ! आप अकारण व्याकुल हो रहे हैं । पुरीमें वानरोंके पद-चिन्ह कहाँ नहीं हैं ? प्रतिदिन ही तो वे दोनों उत्पाती वानर, जो दूत बनकर आये थे, परिखा कूदकर आ जाते हैं और यहाँ भवन ध्वस्त करते हैं । पुरीकी सुरक्षित सेना आपको स्वयं अनेक भागोंमें स्थानान्तरित करनी पड़ी है ।' इन्द्रजितने उठकर कहा—'आप अपने अवशिष्ट सेवकोंपर शंका और क्रोध मत करें । राक्षसोंका दोष नहीं है । रामको सूचना देनेके लिए छोटे चाचा पर्याप्त हैं ।'

'विभीषण !' रावणने अपने मस्तकोंपर हाथ पटके ।

'आप इतने खिन्न क्यों होते हैं ? अभी आपका पुत्र यह मेघनाद विद्यमान है ।' इन्द्रजित उठ खड़ा हुआ—'क्या हुआ जो दोनों तपस्वी एक बार मेरे नागास्त्रसे मुक्त हो गये । मेरी विद्या, मेरा पराक्रम निःशेष नहीं हुआ है । मैं आज ही दोनोंको मार देता हूँ ।'

वत्स इन्द्रजित ! दशग्रीवके कुलदीपक तुम्हीं शेष रहे हो ।' रावणने पुत्रको हृदयसे लगाया—'वे दोनों तपस्वी पता नहीं कितने दिव्यास्त्र प्राप्त हैं । सभी सुर उनके सहायक हैं । तुम बहुत सावधानीसे उनसे युद्ध करना । अपने मन्त्रज्ञानका पूरा उपयोग करो । तुम्हीरी यात्रा विजय यात्रा बने !'

पिताके चरणोंमें प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा करके इन्द्रजित पहिले अपने अनुष्ठान-स्थान निकुम्भिला मन्दिर गया । वहाँ उसने कवच उतारकर आचमन किया । अभिचार विधिसे अग्निमें आहुति देने लगा । हवन पूरा करके उसने काले पशुकी बलि दी । सविधि स्तवन करने लगा ।

प्रकृति त्रिगुणात्मिका है । अतः आराधना सात्त्विक-राजस-तामस तीनों प्रकारकी होती हैं । तीनमें कोई आराधना सम्यक् विधिसे हो तो वह सम्पूर्ण प्रकृतिको— आधिदैवत जगतको अवश्य प्रभावित करती है । मेघनादकी आराधना तामस थी; किन्तु सविधि थी । उसका संकल्प पूरा हुआ । अग्निकुण्डसे एक दिव्य रथ प्रकट हुआ सारथि तथा अश्वोंके साथ । वह रथ अपने आरोहीको लेकर अदृश्य रह सकता था ।

मेघनाद उस रथमें बैठा और अदृश्य हो गया । उसने राक्षसोंकी सेनाको अदृश्य रहकर ही आदेश दिया—'वानरोंपर आक्रमण करो ! उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करो । वे तुमपर प्रबल आघात आज नहीं कर सकेंगे । मैं तुम सबकी रक्षा करूँगा ।'

राक्षसोंका बल बढ़ गया । उनका सेनापति अदृश्य रहकर आक्रमण कर सकता है तो उनकी सुरक्षा सुनिश्चित है । मेघनादके लिए अब वानरसेनामें प्रवेश समस्या नहीं थी । वह अन्तरिक्षसे चुन-चुनकर वानर यूथपोंको अपने विषम बाणोंका लक्ष्य बनाने लगा ।

वानर पर्वत, वृक्ष लेकर दिशाओंमें दौड़ते थे, गगनमें कूदते थे; किन्तु

किसपर आघात करें ? उन्हें कोई आक्रान्ता दीखता नहीं था । मायावी शत्रु सबको देख रहा था और उसे कोई देख नहीं सकता था । फलतः वानर विफल होकर लौटते थे । उनके अंग उस अदृश्य आक्रमणकारीके वाणोंसे विद्ध होते जा रहे थे । वे व्याकुल होकर, तड़पकर भूमिपर गिरते गये ।

सम्पूर्ण वानर-सेनामें कोई नहीं बचा जो अत्यन्त आहत होकर मूर्छित नहीं हो गया । हनुमान, अंगद, नल, नील, गय, गवाक्ष, द्विविद, मैन्द, जाम्बवन्त, सुग्रीव कोई सचेत नहीं रहा ।

मेघनादने केवल विभीषणको छोड़ दिया । इसलिए नहीं कि उनको चाचा मानकर कृपा की । इसलिए कि उसके मनमें आया—'अपने अग्रजको त्यागकर अन्यकी शरण लेनेका परिणाम ये देखें । अकेले, अशरण भटकते फिरें । संसारमें कोई पद-रखनेको स्थान नहीं देगा, तब लंका-त्यागके परिणामका पता लगेगा ।'

मेघनाद जानता था कि राम-लक्ष्मण दोनों दिव्यास्त्र ज्ञाता हैं । दोनों ब्रह्मास्त्र, पाशुपत अथवा नारायणास्त्र उठा ले सकते हैं । इन अस्त्रोंके लिए शत्रु सम्मुख ही हो, यह आवश्यक नहीं है । ये अस्त्र प्रयोक्ताके संकल्पके अनुसार त्रिभुवनमें शत्रु जहाँ भी हो, दृश्य या अदृश्य, उसे अवश्य मार देंगे । अतः मेघनादने दोनों भाइयोंको धनुष उठानेका अवसर ही नहीं दिया । उसने अदृश्य रहकर दोनोंको सम्मोहनास्त्रसे सम्मोहित मूर्छित कर दिया और तब अन्यायपूर्वक अत्यन्त क्रूर—शूर-निन्दित कर्म किया उसने । दोनों मूर्छितोंपर विषम बाण चलाये । उनका अंग-प्रत्यंग विद्ध करके, अपनी समझसे उन्हें निष्प्राण करके तब लंका लौटा ।

जब मेघनाद युद्ध-भूमिसे गया, सम्पूर्ण वानर-सेनामें कोई जीवन चिन्ह लक्षित नहीं होता था । सूर्यास्त हो चुका था । रात्रिका अन्धकार फैलने लगा था और वानरोंकी सेनापर मृत्युकी काली छाया फैल चुकी थी ।[१]

●●●

---

१. 'श्रीरामचरित मानस' की कथासे आप परिचित हैं । मेघनादका केवल लक्ष्मणसे युद्ध हुआ और लक्ष्मण उसकी शक्ति लगनेसे मूर्छित हो गये । वह कथा पूरी आप 'आञ्जनेयकी आत्मकथा' में पढ़ सकते हैं । यहाँ महर्षि वाल्मीकिके वर्णनके अनुसार मुख्य कथा है । दोनों कथाएँ कल्पभेदसे सत्य हैं । वैसे दोनों कथाओंके मुख्यांश ले लिये गये हैं ।

सञ्जीवनी-आनयन

अकेले अरण्यमें—मरुस्थलमें भटक जानेसे भी भयावह है कि अपने चारों ओर असंख्य शव पड़े हों और रात्रिका अन्धकार हो गया हो । अपनी पुकार सुननेवाला कोई न हो । मरणसे भी भीषण यातना दे गया मेघनाद विभीषणको ।

विभीषणने उल्मुक (मशाल) प्रज्वलित की । वे उसे लेकर यह देखने चले कि कोई जीवित भी है या नहीं । श्रीराम-लक्ष्मणके शरीर सर्वथा निश्चेष्ट थे । हनुमानके समीप पहुँचे तो वे उठ बैठे । आञ्जनेय ब्रह्मास्त्रके द्वारा मूर्छित हो गये थे । अब वे भी विभीषणके साथ हो गये ।

मैन्द, द्विविद प्रभृति सब निष्प्राण पड़े थे । सबके शरीर शर-जर्जर, थे । ऋक्षराज जाम्बवन्त दीखे तो उन्हें विभीषणने पुकारा । उन्होंने बहुत कष्टके साथ किसी प्रकार पूछा—'मुझे कुछ दृष्टि नहीं पड़ता है । स्वरसे मैंने पहिचाना है कि आप विभीषण हो । पहिले यह बतलाओ कि हनुमान जीवित हैं ?'

'आपने श्रीरामको, लक्ष्मणको, सुग्रीवको, अंगदको नहीं पूछा ।' विभीषणने प्रश्न किया—'आपने पवनपुत्रको ही पहिले क्यों पूछा ।'

'हनुमान जीवित हैं तो सबके जीवनकी आशा है । वे सब मृतोंको भी सजीव कर सकते हैं ।' जाम्बवानने वैसे ही शिथिल स्वरमें कहा—'यदि वे केशरीकुमार जीवित नहीं हैं, तो जो जीवित हैं, वे भी मृतके समान हैं । उन्हें भी प्रातः मेघनाद मार सकता है ।'

'आप मुझे आज्ञा दें !' पवनकुमारने उन वृद्ध ऋक्षराजके पैर पकड़ लिए ।

'ओह ! तो हम सब बच गये ।' जाम्बवन्तके स्वरमें सन्तोष व्यक्त हुआ—'अब उपचारका उपाय सोचा जा सकता है ।'

'गन्धमादनपर अब औषधि बची नहीं है ।' हनुमानका स्वर शिथिल बना रहा । 'क्षीरोदधिकी औषधियाँ भी पहिले ही आ चुकीं ।'

'लंकामें भिषक्-श्रेष्ठ सुषेण१ रहते हैं ।' अब विभीषणका मस्तिष्क भी सक्रिय हो गया—'वे संसारमें कहाँ कौन-सी औषधि है, उसके ज्ञाता हैं ।'

'पवनपुत्र ! यह तुम्हारे पराक्रमका समय है । जाम्बवन्तने सुझाया—'सुन ही रहे हो कि लंकासे महोत्सव वाद्योंकी ध्वनि आ रही है । वहाँ सब उत्सवमें, विजयोल्लासमें प्रमत्त हैं । तुम वैद्यको ले आ सकते हो ।'

हनुमानजीको विभीषणने वैद्यके गृहका ठीक स्थान बतलाया । लंका पवनपुत्रकी देखी थी । सीधे सुषेणके गृहके समीप कूदकर पहुँचे । मनमें आया—'कुछ भी हो, यह शत्रु-पक्षका है । वहाँ जाकर पता नहीं क्या बहाना बनावेगा । इसके ग्रन्थ और औषधियाँ इसके गृहमें ही तो होंगी ।' लंका बसी ही त्रिकूटके शिखरपर थी । सुषेणका गृह जिस विशाल शिलापर था, उसे समूची उखाड़कर आञ्जनेयने गृह-सहित समरभूमिमें लाकर धर दिया ।

सुषेण एकाकी थे । परिवार उनके था नहीं । सेवक उत्सव मनाने चले गये थे । गृह उखाड़कर उठाया गया तो जाग गये । भूमिपर भवन उतरते ही द्वारसे निकले । विभीषण अञ्जलि बाँधे सामने मिले । सुषेणने गम्भीर स्वरमें कहा—'चिकित्सकका शत्रु-मित्र कोई नहीं होता । मुझे शीघ्र रुग्णके समीप पहुँचाओ ।'

यहाँ तो अधिकांश शर-जर्जर मृत पड़े हैं ।' विभीषणने अत्यन्त खिन्न स्वरमें कहा ।

'जिनके भी शरीर सुरक्षित हैं, वे मृत नहीं हो सकते ।' सुषेणका स्वर स्वस्थ था—'आघात-जर्जर प्राणीके शरीरमें प्राण एक रात्रि अवश्य रहते हैं । वह सम्पूर्ण मृत सूर्योदयके पश्चात् ही होता है ।'

'तुम्हीं यह कार्य कर सकते हो !' सुषेणने हनुमानकी ओर देखा—'हिमालयको लगभग पार करके कैलासके समीप द्रोणाचल शिखरपर मृत सञ्जीवनी, विशल्यकरिणी, व्रणरोपिणी और संरोहिणी औषधियाँ होती हैं । वे सब रात्रिमें प्रकाशित रहती हैं । उन्हें ले आओ । दो बातोंका ध्यान रखना—१. तुम्हें प्रभातसे पूर्व यहाँ पहुँच जाना चाहिये । २. पर्याप्त अधिक औषधिकी

---

१. सुग्रीवके स्वसुर वानर सुषेण इनसे भिन्न हैं ।

यहाँ आवश्यकता है ।'

पवनकुमारने उसी क्षण आकाशसे छलाँग लगा दी; किन्तु इस बार दशग्रीव असावधान नहीं था । इन्द्रजितने जब नागास्त्रका प्रयोग किया था, उसे पता नहीं लगा था कि राम-लक्ष्मण कैसे स्वस्थ हो गये । उसे आशंका थी कि इन्द्र अमृतके द्वारा अब भी दोनों भाइयोंको जीवित कर दे सकते हैं । उसने चर नियुक्त कर रखे थे—'युद्ध-भूमिमें कोई बाहरसे आवे या वहाँसे कोई कहीं जाने लगे तो मुझे अविलम्ब सूचना दो ।'

कोई सुर आनेका साहस न करे, इसके लिए रावण विशेष सावधान था । उसके चरोंने सूचना दी—'रात्रिके प्रारम्भमें ही वह वानर उठ बैठा, जिसने लंका जलायी थी । विभीषणसे कुछ मन्त्रणा करके परिखा कूदकर नगरमें आया और भिषक्-श्रेष्ठ सुषेणको गृह-सहित उठा ले गया । सुषेणने उसे कोई औषधि लानेको कहा है । वह अभी उत्तर दिशामें आकाश-मार्गसे जा रहा है । उसको रोकनेकी शक्ति हममें नहीं है ।'

'तुम शीघ्रता करो ! मायावियोंमें तुम श्रेष्ठ हो ।' रावण वहीं चरोंको छोड़कर कालनेमिके यहाँ पहुँचा । कालनेमिको उसने अपने सत्कारका भी समय नहीं दिया—'इस समय स्वागत-सत्कार नहीं । हनुमानको किसी प्रकार रोको !'

'आपकी उपस्थितिमें जिसने लंका जला दी, उसको रोकनेकी आशा आप मुझसे करते हैं ?' कालनेमि करबद्ध गिड़गिड़ाया—'राक्षसेन्द्र क्षमा करें ! यह सामर्थ्य मुझमें नहीं है ।'

'तुमको अभी मरना है ?' दशग्रीवने खड्ग खींच लिया—'अत्यन्त आवश्यक न होता तो मैं स्वयं तुम्हारे समीप आता ? किसी भी प्रकार उसे केवल आजकी रात्रि रोके रहना है तुम्हें ।'

'जो आज्ञा !' कालनेमि उठ खड़ा हुआ । मनमें उसने कहा—'अभी यहाँ मरनेसे रामदूतके हाथकी मृत्यु भली । कुछ क्षण और जीवन मिलता है इससे ।'

महामायावी असुर कालनेमि । वह पूरे वेगसे बढ़ा । पवनकुमारसे आगे जाकर वनमें मार्गमें पड़नेवाले एक प्राचीन सरोवरके समीप मायासे मनोहर उद्यान प्रकट किया उसने । पर्णकुटी प्रकट हो गयी मायासे । मायावी राक्षस

मायासे विशाल जटाधारी महामुनि बनकर वहाँ बैठ गया ।

हनुमान पूरे वेगसे उत्तर जा रहे थे । कालनेमिकी मायाका उनपर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हें तीव्र प्यास लगी । कण्ठ सूखने लगा । चन्द्रोदय हो रहा था । नीचे जल देखने लगे तो मुनिका आश्रम दीखा । मुनि दीखे खुले गगनके नीचे शिलापर बैठे । मनमें आया—'अवश्य समीप जल होगा । मुनिसे पूछकर जल पी लूँ तो आगेकी यात्रा सुगम हो जायेगी ।

'ओह हनुमान ! तुम्हारा कल्याण हो ! सफलकाम हो तुम !' प्रणाम करते ही मायावी मुनिने स्वयं कहा—'हम एकान्तवासियोंका मन तो इन्दीवरसुन्दर श्रीरामके समीप ही रहता है । गुरु-कृपासे मैं यहाँ बैठे भी उनकी भुवनपावनी लीलाका दर्शन करता रहता हूँ । उन पुरुषोत्तमने इस समय नरनाट्य करते हुए रावणके साथ युद्धकी क्रीड़ा प्रारम्भ की है । विजय तो उनकी सुनिश्चित है ।'

'मुझे तीव्र प्यास लगी है । कृपा करके यह बता दें कि जल कहाँ है ?' हनुमानजीने बीचमें ही हाथ जोड़कर प्रार्थना की । कालनेमि जानता था कि आञ्जनेय अत्यन्त रसिक हैं श्रीरामकथा-श्रवणके । उसने सोचा था कि कथा-श्रवणमें ये निमग्न हो जायेंगे तो रात्रि व्यतीत होनेका इन्हें पता नहीं लगेगा; किन्तु सेवामें लगनेपर पवनकुमारसे प्रमाद हो, यह सम्भव नहीं था । प्राणोंको परमप्रिय लगनेवाले श्रीरामके सुयश-श्रवणका लोभ भी उन्हें विचलित नहीं कर सका ।

'मैं तो भूल ही गया था । जल पी लो पहिले !' कालनेमिने अपना कमण्डलु आगे बढ़ा दिया । पहिलेसे कमण्डलुके जलमें उसने अत्यन्त तीक्ष्ण विष मिला दिया था । यही जल पिलानेके निमित्त तो उसने मायासे हनुमानमें पिपासा उत्पन्न की थी ।

'इस अल्प जलसे मेरा तालु भी आर्द्र नहीं होगा ।' हनुमानने हाथ जोड़ा—'आप मुझे जलाशयका पथ सूचित कर दें ।'

'तुमको औषधि लेने भी तो जाना है, वे दिव्यौषधियाँ बिना मन्त्र-ज्ञानके दर्शन ही नहीं देतीं ।' कालनेमिका जब विष पिलानेका प्रयत्न विफल हो गया, उसने दूसरी योजना मनमें बना ली—'इन वृक्षोंके पीछे ही सरोवर

है । जल पीकर, स्नान करके शीघ्र आ जाओ । मैं मन्त्रदीक्षा दे दूँगा, जिससे औषधियोंको पहिचाननेका ज्ञान तुम्हें प्राप्त हो जाये ।'

'आपका असीम अनुग्रह ।' हनुमानने प्रणाम किया और सरोवरकी ओर चल पड़े । कालनेमिने सोचा था कि दीक्षामें अंगन्यास, करन्यास, मातृका न्यासादि करवानेमें ही वह रात्रि पूरी कर देगा ।

हनुमानने सरोवरका जल पिया । स्नान करनेके लिए उसमें प्रवेश किया तो एक मादा मगरने उनका पैर पकड़ लिया । दूसरे पदसे एक भरपूर लात धमक दी पवनपुत्रने उसे । उसका मगर-देह तो उसे ऋषिके शापसे मिला था । श्रीरामदूतका चरणस्पर्श पाकर शापमुक्त हो वह पुनः अप्सरा होकर आकाशमें जाकर, हाथ जोड़कर बोली—'आपकी पदरज पाकर मैं पवित्र हुई । वह जो महामुनि बना बैठा है, आपको विलम्बित करनेके प्रयत्नमें लगा राक्षस कालनेमि है ।'

अप्सराके द्वारा इतनी सूचना मिलना पर्याप्त था । हनुमान सरोवरसे निकले । उस असुरके समीप आकर बोले—'मुनिराज ! आप मन्त्र पीछे देना मुझे । पहिले अपने उपयुक्त दक्षिणा स्वीकार करो ।'

कालनेमिको सम्हलने, सोचनेका अवसर नहीं मिला । हनुमानने उसके कण्ठमें लांगूल लपेटकर उसे शिलापर पटक दिया । मरते समय कालनेमिका अपना रूप प्रकट हो गया । उसके मुखसे निकला—'हा राम !'

x x x x

हनुमान अब पूरे वेगसे उड़ चले । द्रोणाचल तक कुछ क्षणोंमें पहुँचे । पूरा शिखर ज्योतिर्मय औषधियोंसे जगमगा रहा था । मनमें आया—'इनमें वे चार कौन जो वैद्यने बतलायी हैं । प्रत्येककी कितनी मात्रा ?'

'शत्रुपक्षीय वैद्य है । कोई बहाना कभी बना दे सकता है । उसे कोई अवसर नहीं मिलना चाहिए ।' यह सोचकर हनुमानने पूरा शिखर उखाड़कर बायें हाथपर उठाया और लौट पड़े ।

रात्रिका प्रथम प्रहर ही था । श्री भरतलाल नन्दिग्राममें पर्णकुटीमें पादुका-पूजन पूर्ण करके जप करने चाँदनीमें आ बैठे थे । लौटते समय हनुमानने सबसे छोटा आकाश-मार्ग पकड़ा था, अतः अयोध्याके ऊपरसे निकलना था

उन्हें । भरतने अचानक देखा कि गगनमें कोई महाकाय एक प्रज्वलित पर्वत लिए उड़ा चला आ रहा है । मनमें आशंका हुई—'कोई निशाचर है । अयोध्यापर हाथका पर्वत पटक दे सकता है । किसी मुनि-आश्रमको भी ध्वस्त कर सकता है । कहीं आक्रमण न करना होता तो पर्वत उठाये इतने वेगसे क्यों दौड़ा आता ?'

समीपसे धनुष उठाया । ज्यासज्ज किया । बिना नोकका बाण चढ़ाया । यह देखकर कि गगनचर ऐसे स्थानपर आ गया जहाँ नीचे गृह, उद्यानादि नहीं हैं, बाण छोड़ दिया । उस बाणके हृदयमें लगते ही हनुमानके मुखसे मूर्छित होते-होते निकला—'राम ! श्रीराम !'

'राम ! श्रीराम !' भरतने सुना । धनुष फेंका और दौड़े—'यह रामनाम लेकर गिरता प्राणी कौन ? मैंने किसे मार दिया ? मुझसे भक्तापराध हो गया ? कोई श्रीरामका सेवक आहत हुआ ?'

हनुमान हाथ-पैर फैलाये भूमिपर गिरे । पर्वत-शिखरको पवनदेवने गगनमें ही सम्हाल लिया । दौड़े भरत आये । हनुमानको मूर्छित देखते ही उनके प्राण छटपटा उठे । 'भरत ! तूने यह क्या किया ? तू वैसे ही श्रीराम-विमुख था और उसपर यह अपराध ?'

'यदि मैं सच्चे हृदयसे श्रीरामका सेवक हूँ तो यह वानर स्वस्थ हो जाय !' भरत साश्रुलोचन हनुमानके समीप घुटनोंके बल बैठे । उनके हृदयपर दक्षिण हस्त रखे बोले—'यदि इस जनपर उन सर्वेश श्रीरामका तनिक भी स्नेह हो तो यह वानर स्वस्थ हो जाय ।'

'श्रीराम !' हनुमानने नेत्र खोले और उठ बैठे । श्रीभरतलालको देखते ही सहसा बोले—'मेरे अनन्त दयाधाम स्वामी आप ?'

'भद्र ! मैं चक्रवर्ती महाराज दशरथका द्वितीयपुत्र श्रीरामका अनुज भरत हूँ ।' अपना परिचय देकर बोले—'मुझसे अनजानमें अपराध हुआ । यदि तुम मुझे क्षमा कर सकते हो तो अपना परिचय देकर मेरे श्रवण पवित्र कर दो ।'

'मैं श्रीरामका सेवक पवनपुत्र हनुमान आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करता हूँ ।' शीघ्रतापूर्वक उठकर आञ्जनेयने प्रणिपात किया—'आपके दर्शन करके यह वानर आज पवित्र हो गया ।'

'मेरे वे स्वामी कहाँ हैं ? कहाँ हैं हमारे छोटे भाई लक्ष्मण और अम्बा वैदेही ? वे सकुशल हैं ? क्या कर रहे हैं वे ?' हनुमानसे आतुरतापूर्वक भरतने पूछा—'तुम इस समय पर्वत लेकर कहाँ जा रहे थे ?'

हनुमानने थोड़े शब्दोंमें जो समाचार दिया, बहुत दारुण समाचार था वह । बहुत संक्षिप्त विवरण देकर हनुमानने कहा—'देव ! मुझे अनुमति दें । मुझे वहाँ प्रभातसे पूर्व पहुँच जाना चाहिये ।'

'तुम अयोध्याके आतुर प्राणोंको थोड़े क्षण दे सकते हो । अभी रात्रिका प्रथम प्रहर है । सूर्यास्तके पर्याप्त पश्चात् तुम चले हो और पूरा मार्ग पार करके, पर्वत लेकर लगभग एक तिहाई पथ लौट चुके हो ।' भरतने अनुनयके स्वरमें कहा—'माताएँ मुझे कैसे क्षमा करेंगी यदि मैं तुम्हें उनसे मिलाये बिना चले जाने दूँ ।'

'मैं भी उनके पूजनीय पदोंका वन्दन करके अपनेको कृतार्थ मानूँगा ।' हनुमानने स्वीकृति दे दी । चित्रकूटसे लौटनेके पश्चात् पहिली बार भरतने रथ स्वीकार किया । वे हनुमानके साथ अयोध्या आये । मार्गमें ही कुलगुरुको समाचार भेज दिया ।

अयोध्याकी राजसभा मणिदीपोंसे नित्य आलोकित—वह प्रज्वलित उल्मुकोंके प्रकाशसे जगमगा उठी । माताएँ पधारीं, राज-सदनकी तीनों पुत्रवधुएँ उनके साथ आयीं । महर्षि वशिष्ठ आये । शत्रुघ्नने समाचार देकर नगरके सम्मानित जनोंको, मन्त्रियोंको प्रजा प्रतिनिधियोंको बुला लिया । हनुमानने सबको प्रणाम किया । थोड़े शब्दोंमें श्रीरामका समाचार सीताहरणसे अबतकका सुनाकर अन्तमें कहा—'मैं चला तो मेरे आराध्यमें चेतना लौटने लगी थी; किन्तु छोटे कुमार सर्वथा निश्चेष्ट थे ।'

'हम दुर्दम दुष्ट दशग्रीवको और उसके राक्षसोंकी शक्तिको देख लेंगे !' महासेनापतिका सिंहनाद सर्वप्रथम गूँजा—'लंकाको समुद्रमें डुबाकर, अपनी साम्राज्ञीके अपमानका प्रतिशोध लेना है हमें । कुमार ! आप मुझे आज्ञा दें । हम अभी प्रयाण करेंगे ।'

महासेनापतिका शंख उनके अधरोंसे लगने ही वाला था । उन्होंने शत्रुघ्नकुमारकी ओर देखा । शत्रुघ्नने भरतकी ओर देखकर अनुमति चाही ।

गुरुदेवकी उपस्थितिमें भरत यह धृष्टता नहीं कर सकते थे। अयोध्याके परम सञ्चालक महर्षि वशिष्ठ स्वयं उपस्थित थे। स्वाभाविक था कि भरत अनुमतिकी उनसे अपेक्षा करें।'

'शत्रुघ्न ! तुम्हें किसकी अनुमति चाहिये ?' सहसा माता सुमित्राका ओजस्वी स्वर सुनायी पड़ा—'ये वानर-श्रेष्ठ पर्वत ले जा रहे हैं तो अवश्य तुमको भी ले जा सकेंगे। लंका समीप नहीं है। सेनाको पहुँचनेमें समय लगेगा। राम शत्रुके स्थानमें एकाकी हो गये हैं। तुम जाओ। उनसे मेरा सन्देश कहना—'लक्ष्मणकी चिन्ता छोड़ दें ! वह स्वामीकी सेवामें शरीर देकर धन्य हो गया। सच्चे सेवकका कर्तव्य पूर्ण किया उसने। सेवक कर्तव्य पूर्ण करके समर-शय्या ले लेते हैं तो स्वामीका उनके लिए रुदन शोभा नहीं देता। रामको शत्रुका शमन करके वधू सीताके साथ अयोध्या लौटना चाहिये।'

'हनुमान ! मेरे रामसे कहना कि वह सीता और लक्ष्मणके साथ लौट सके तो अयोध्या लौटे।' माता कौशल्याके स्वरमें कोई कातरता नहीं थी—'अन्यथा उसे अयोध्या नहीं लौटना चाहिए।'

'नहीं ! नहीं ! नहीं !' सुमित्राजीने उच्च स्वरमें कहा—'हनुमान मेरा आदेश है, तुम यह सन्देश नहीं कहोगे। शत्रुघ्नको साथ ले जाओ। यह भी यदि अपने अग्रजके समान समर-शय्या ले ले तो सुमित्रा पुत्रवती मानेगी अपनेको। रामको तब भी सीता-सहित लौटना है।'

'अम्ब ! आप सब मुझे लज्जाहीन होकर बोलनेके लिए क्षमा करें !' हनुमान भी चौंके। इतना मधुर, इतना ओजस्वी नारी-स्वर होता है ? उन्होंने देखा—जैसे भगवती सीताकी ही दूसरी मूर्ति तनिक अवगुण्ठनवती होकर अपने स्थान पर उठ खड़ी हुई थीं। पवनपुत्रने पृथ्वीमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। वह ओजस्वी स्वर—'मेरे स्वामी को कुछ नहीं हुआ है ! उन्हें कुछ नहीं हो सकता। आप देखते हैं, मेरी चूड़ियोंमें सब अभग्न हैं। मेरे ललाटका सिन्दूर-विन्दु समुज्वल है। उर्मिला स्वस्थ, जीवित है, तब तक इसके आराध्यको कुछ हो कैसे सकता है ?'

उर्मिलाने दोनों हाथ उठाकर चूड़ियाँ दिखला दीं और तनिक देर—क्षणार्धको अवगुण्ठन ललाटसे हटाया तो महर्षि वशिष्ठने दोनों हाथ जोड़कर

मस्तक झुका दिया—'देवि ! तुम महासती हो । तुम्हारे संकल्पको अन्यथा करनेकी शक्ति सृष्टिकर्तामें भी नहीं है । दूसरा कुछ भी न हो तो भी लक्ष्मण तुम्हारे सतीत्वके तेजसे ही सुरक्षित हैं । उनके ऊपर आघात करनेवाले अज्ञने अपनी आयु समाप्त कर ली । अब वह दूसरा सूर्यास्त नहीं देख सकेगा !'

'यहाँसे किसीको जानेकी आवश्यकता नहीं है । मुभूर्षु दशग्रीवकी विजयका सम्पूर्ण सुयश वत्स श्रीरामको प्राप्त करने दो !' महर्षिकी वाणी पर अयोध्यामें अविश्वास करनेवाला कोई नहीं था । हनुमानको भी स्पष्ट लगता था कि इन सृष्टिकर्ताके पुत्रने इन्द्रजितकी आयु तो समाप्त ही कर दी, रावणके जीवन-दिन भी अत्यल्प कर दिये । महर्षिका स्वर तनिक प्रसन्न हुआ—'यहाँ सब क्यों भूलते हैं कि श्रीरामकी वनवास-अवधि समाप्तप्राय है । हमें अयोध्यामें उनके स्वागतका समारम्भ करना है ।'

सचमुच इस अवधिकी ओर तो अब तक किसीका ध्यान गया ही नहीं था । महासेनापतिका शंखयुक्त कर नीचे आ गया । हनुमानने पृथ्वीमें मस्तक रखकर सब माताओंको, कुलवधुओंको, शत्रुघ्नको, भरतको भी प्रणाम करके महर्षिके पदोंमें मस्तक रखा तो उन्होंने पूरा दक्षिण हस्त फैलाकर आशीर्वाद दिया—'विजयी भव ! सफलकामो भव ! शुभस्ते पन्थानः सन्तु ।'

समय नहीं था । माताओंने संकेतसे अनुमति दे दी । श्रीभरतके साथ शत्रुघ्न भी हनुमानके पार्श्वमें रथमें बैठे । रथ नन्दिग्राम आया । अब भरतजीने कहा—'पवनकुमार ! हमने तुम्हारा पर्याप्त समय नष्ट कर दिया । तुम्हें बहुत दूर जाना है । पर्वतको लेकर मेरे वाणपर बैठ जाओ । मैं तुम्हें अभी लंका पहुँचा देता हूँ ।'

'मेरे भारको वाण कैसे सहन करेगा ?' एक बार हनुमानके मनमें आया । दूसरे ही क्षण सावधान बुद्धिने समझाया—जिनके शरके सन्धान करते ही सागर खौल उठा था, उनके अनुजकी शक्तिको अल्प समझनेकी भूल करते हो ? उनका वाण अयोध्याकी समस्त सेनाके सहित तुम्हारा वहन कर सकता है ।'

अब यह भी समझमें आ गया कि लगभग दो सौ योजन दूर लंका पर चढ़ाई करनेके लिए अयोध्याके महासेनापति किस बलपर शंखनाद करने जा रहे थे । हनुमानने हाथ जोड़े । विनम्र स्वरमें प्रार्थनाकी—'आप आज्ञा

दें । आपके अनुग्रहसे मैं पर्वत लेकर वाण-वेगसे ही जा सकूँगा ।'

'प्रभुसे मेरा प्रणाम कहना !' भरतने अंकमाल दी—'अब तुम प्रस्थान करो !'

हनुमानने भरतलालके पदोंमें प्रणिपात किया—उनकी प्रदक्षिणा की और गगनमें पहुँचकर वाम हस्तपर पर्वतको सम्हाला तो शब्दसे भी अधिक तीव्र वेगसे जाते उन पवनपुत्रका जयघोष नीचे सुनायी पड़ा—'जय श्रीराम !'

x x x x

लंकाकी समर-भूमिमें विभीषण प्रतीक्षा कर रहे थे । जाम्बवान प्रतीक्षा कर रहे थे; किन्तु उठनेकी शक्ति उनमें नहीं थी । श्रीराम सचेत हो गये थे; किन्तु उठ नहीं सकते थे । वे अनुजसे लिपट विलाप कर रहे थे—'लक्ष्मण ! अकेले मुझे इस शत्रुपुरीमें त्यागकर तुम चले गये ! तुम सब कुछ त्यागकर मेरे साथ वनमें आये । माता सुमित्राको मैं क्या मुख दिखाऊँगा ? वधू उर्मिलासे क्या कहेगा राम ? वह सती होगी और मैं देखूँगा उसे अग्नि-ज्वालामें बैठे ? नहीं, राम अब जीवित रहकर क्या करेगा ।'

सुषेण चिकित्सक थे । शान्त प्रतीक्षा कर रहे थे । विभीषण अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे । श्रीराम तनिक-तनिक देरपर पूछते थे—'रात्रि कितनी शेष है ? हनुमान आ रहे हैं ?'

'अर्धरात्रि बीत गयी ?' विभीषणसे सुनकर श्रीरामकी व्याकुलता इतनी बढ़ गयी कि वे प्रलाप करने लगे । तभी गगनमें जयघोष गूँजा—'जय श्रीराम !'

हनुमानने पर्वत भूमिपर रखा तो सबसे पहिले सुषेण उठे । वे उस शिखरपर चढ़कर कुछ औषधियाँ लेकर उतरे । श्रीराम-लक्ष्मणके समीप जाते हुए उन्होंने हनुमानको ही आदेश दिया—'भद्र ! पर्वतको पूरी सेनामें घुमा दो । औषधियोंकी गन्ध अपना काम पूरा कर देगी ।'

मृत सञ्जीवनीकी गन्धसे मृत भी जीवित हो गये । विशल्यकरिणीके प्रभावसे शरीरमें रह गये वाण स्वतः बाहर हो गये । व्रणरोपिणीने घाव ऐसे भर दिये कि उनका चिन्ह भी शेष नहीं रहा । संरोहिणीने छिन्नांग पुनः पूर्ण कर दिये । सुषेणको उनके गृह समेत लंकामें यथास्थान स्थापित करके जब पवनपुत्र लौटे, श्रीराम-लक्ष्मण पूर्ण स्वस्थ थे । वानरी सेना जयनाद करती कूद रही थी ।

●●●

मेघनाद-वध

'अभी—आज अभी आक्रमण कर दो लंकापर ।' सुग्रीव सबसे अधिक क्रुद्ध थे—'दुष्ट दशग्रीव ऐसे युद्धमें नहीं आवेगा । पुरीमें प्रवेश करके उसे केश पकड़कर खींच लाओ ।'

वानरेन्द्रका आदेश पाकर वानरोंने ब्राह्म मुहूर्तमें ही धावा बोल दिया । गगन गूँजने लगा—

'जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयतु सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥'

अभी राक्षस असावधान थे । वानरोंके प्रचण्ड आक्रमणका वेग उनके लिए असह्य हो गया । इस आक्रमणमें निकुम्भ, कुम्भ, यूपाक्ष, शोणिताक्ष आदि कुम्भकर्णके सब पुत्र मारे गये ।

दशग्रीव चकित रह गया । इन्द्रजितने कल सायंकाल सबको मार दिया था, यह प्रातःकाल सब जीवित होकर लड़ने कैसे आ गये ? लगता है, कालनेमि असफल हो गया । औषधि इनके समीप पहुँच गयी ।

अस्त्रप्रिय मकराक्षको उसने युद्ध करने भेजा और भिषक् सुषेणको बुलवाया । सुषेणने आकर प्रणाम किया तो क्रुद्ध रावण बोला—'केवल वानरोंको जीवित करना जानते हो ?'

'राक्षसेन्द्र ! आप क्रोधका त्याग करें । मैं चिकित्सक हूँ । मेरे सम्मुख रुग्ण होता है, राक्षस या वानर नहीं ।' सुषेणने निर्भीक उत्तर दिया—'मैंने कभी आपकी सेवा अस्वीकार की है ?'

'अभी संसारमें कहाँ-कहाँ तुम्हारी औषधियाँ हैं जो मृत को जीवित कर देती हैं ।' दशग्रीवने सबको नष्ट कर देनेका विचार कर लिया था ।

'केवल तीन स्थानोंपर वे प्राप्य थीं, क्षीरोदधि, गन्धमादन और द्रोणाचलपर ।' सुषेणने कहा—'तीनों स्थानोंकी वे लोग ले आये ।'

'इसका अर्थ कि औषधियाँ समाप्त हो गयी । सन्तोषसे दशग्रीव

बोला—'अब यदि उन्हें मार दिया जाता है तो फिर इसी प्रकार उन्हें कोई जीवित नहीं कर सकता ।'

'यदि देवता उन्हें अमृत देकर जीवित न कर दें ।' सुषेणने कहा—'जहाँ तक मैं जानता हूँ, अब औषधियाँ शेष नहीं हैं । एक बार उखाड़ देनेपर उनको उगनेमें पर्याप्त समय लगता है । वे रखी हुई निष्प्रभाव होती हैं ।'

सुषेणको रावणने विदा कर दिया । इस कर्तव्यनिष्ठ वैद्यके प्रति निष्ठुर होनेसे उसकी अपनी ही हानि थी । दूसरी ओर मकराक्षने जाकर सीधे श्रीरामको ललकारा—'वानरों और राक्षसोंका व्यर्थ वध करानेसे क्या लाभ ? तुममें शौर्य है तो मुझसे द्वन्द्व युद्ध करो । जो अस्त्र तुम्हें प्रिय हो, उसे चुन लो !'

'धन्यवाद !' श्रीराम हँसे । 'हम तो धनुर्धर हैं । तुम अस्त्र-प्रयोग करो ।'

मकराक्षके बाणको कट ही जाना था । स्वयं मकराक्षको श्रीरामके अमोघ शरने मस्तक काटकर मुक्त कर दिया ।

'बेटा ! तुम अमित पराक्रम हो । तुम्हारे अस्त्र-ज्ञानकी संसारमें समता नहीं है । एक बार राम-लक्ष्मणको फिर मार दो ।' रावणने इन्द्रजितको बुलाकर उसकी प्रशंसा करके कहा—'मैंने सुषेणसे पूछ लिया । अब कहीं औषधियाँ नहीं हैं । अब वे मार दिये जायें तो उन्हें जीवित नहीं किया जा सकेगा ।'

'आप आश्वस्त रहें ! मैं मिथ्या तापसोंको आज अवश्य मार दूँगा !' मेघनादने पिताको आश्वासन दिया ।

अपना वही सदाका क्रम मेघनाथको अपनाना था । वह निकुम्भिला मन्दिर गया । रक्तवस्त्रधारिणी स्त्रियाँ उपस्थित हुईं । अभिचार विधिसे हवन प्रारम्भ किया उसने । विभीतक (भल्लातक)-की आहुतिसे प्रसन्न अग्निदेवने सदाके समान उसे अदृश्य रहने वाला रथ दे दिया ।

'मेघनाद आ गया !' जैसे ही अन्तरिक्षसे अदृश्य मेघनादने बाण वर्षा आरम्भ की, वानरोंमें कोलाहल उठा । वे व्याकुल होकर श्रीरामके समीप भागे ।

'मैं इन मायावी राक्षसोंको मिटाकर आज पृथ्वीको पवित्र कर दूँगा ।' अनन्तपराक्रम लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे । उन्होंने धनुष चढ़ाया और ब्रह्मास्त्रके

प्रयोगका संकल्प करने चले ।

'सम्पूर्ण राक्षसकुलके संहारका संकल्प उचित नहीं है ।' श्रीरामने अनुजको रोका—'इससे तो भागते, युद्धविमुख, आहत और अपने आश्रित विभीषण भी मारे जायेंगे । तुम केवल इस मायावीको मारनेका संकल्प करो ।'

मेघनाद अस्त्रज्ञ था । वह इस बार भी अदृश्य रहकर राम-लक्ष्मणपर प्रथम प्रहार करके उन्हें धनुष उठानेका अवकाश नहीं देना चाहता था; किन्तु उसकी तनिक-सी त्रुटिसे यह अवसर हाथसे निकल चुका था । वह अपनी भूल समझ गया । वानरोंपर बाण-वर्षा करके उसने इन दोनों भाइयोंको सावधान कर दिया था और लक्ष्मण तो ब्रह्मास्त्रोंमें-से भी ब्रह्मशिरका प्रयोग करने जा रहे थे । यह वह अदृश्य रहकर देख रहा था । अतः युद्धभूमिसे भाग गया ।

'मेघनाद भाग गया !' वानरोंने कोलाहल किया । वह अन्तरिक्षमें दृश्य बनकर ही भागा था, जिससे उसे भागते सब देख लें । लक्ष्मण उसे पलायन करते देखकर अस्त्र प्रयोग न करें । उसका उद्देश्य पूरा हो गया । हँसकर रामानुजने प्रत्यञ्चा उतार ली । भागते शत्रुपर तो शूर प्रहार करते नहीं ।

'अब ?' मेघनाद समझ गया कि वह अदृश्य रहकर भी अब आघात करनेका लाभ नहीं उठा सकता । अब दोनोंमें कोई राजकुमार उसे पहिले ही प्रहारमें किसी अमोघास्त्रका प्रयोग करके मार देंगे । उसने माया-प्रयोगका निश्चय किया—'ये स्वयं शरीर त्याग करें, ऐसी स्थिति उत्पन्न करनी होगी ।'

'मेरे स्वामी ! मैंने कभी आपसे कोई प्रार्थना नहीं की । आपको कभी कोई क्लेश नहीं दिया । आपकी इच्छा ही मेरी इच्छा रही है !' मेघनाद चिन्तामग्न अपने सदन पहुँचा तो उसकी परमसती पत्नी प्रमिलाने उसका पैर पकड़ा—'आज इस अनुचरीका अनुरोध स्वीकार कर लें । आज मेरा दक्षिण नेत्र और भुजा स्फुरित हो रही है । आप समरभूमिमें आज मत जाइये ।'

'तुम सहज भीरु हो !' मेघनादने हँसकर पत्नीको उठाया—'शत्रु द्वारपर सिंहनाद कर रहा है । मैंने पिताको आश्वासन दिया है । अब प्राणभयसे भवनमें कैसे बैठा रहा जा सकता है ? तुम स्वयं कहती हो कि तुम्हारा सौभाग्य तुम्हारे सतीत्वसे सुरक्षित है ।'

'यह सत्य होनेपर भी अपूर्ण सत्य है स्वामी !' प्रमिला (सुलोचना)

ने रुद्ध कण्ठ कहा—'आज मेरा विश्वास विचलित हो रहा है । सबकी शक्ति-सीमा है । सीता महासती हैं और कोई और हैं—मेरा हृदय कहता है, कोई और हैं, सम्वतः रामके अनुजकी सहधर्मिणी । मेरे सतीत्वकी शक्ति उनकी अदृश्य शक्तिके सम्मुख कुण्ठित होती लगती है । आप आज मेरा अनुरोध मान लें । मुझे दिशाएँ अन्धकारसे ढकती लगती हैं । मेरे करोंके कंकणोंमें एक स्वतः भग्न हो गया ।'

'मैं युद्ध करने अभी नहीं जा रहा हूँ ।' इन्द्रजितने पत्नीको आश्वासन दिया । वह युद्ध करने नहीं, माया-प्रदर्शन करने जा रहा था । वह जब नगरके पश्चिम द्वारसे रथपर बैठा निकला, उसके रथपर रुदन करती माया-निर्मित सीता बैठी थीं । वे आर्तस्वरमें पुकार रही थीं—वानरों ! इस दुष्टसे मेरी रक्षा करो ! पवनपुत्र, बचाओ ! लक्ष्मण दौड़ो !'

'अम्बा !' हनुमानने दूरसे देखा । उनको भ्रम हो गया तो दूसरे वानरोंने तो वैदेहीको देखा ही नहीं था । मेघनादने केश पकड़ा—'मैं इसको मारे देता हूँ । यही सब विपत्तिका मूल है ।'

'हाय ! यह दुष्ट मुझे मार रहा है । कोई रक्षा करो !' वह माया-सीता चिल्ला उठी ।

हनुमान छीनने झपटे; किन्तु तबतक मेघनादने खड्गसे जनेऊ काट-काटकर (बायें कन्धेसे दाहिनी कुक्षि तक) उस सीताके दो टुकड़े कर दिये और गर्जना की—'अब तुम सबको यह युद्धोद्योग व्यर्थ हो गया ।'

'हम तुझे और दशग्रीवको मारकर इसका प्रतिशोध लेंगे ।' क्रुद्ध हनुमानने गर्जना की । उन्होंने भारी पर्वत-शिखर मेघनादपर फेंका । मेघनादने बाण मारकर उस पर्वतके टुकड़े कर दिये; किन्तु तत्काल रथ लौटाकर नगरके भीतर भाग गया । उसके साथ जो सेना आयी थी, वह पवनपुत्रके क्रोधानलमें भस्म हो गयी ।

'हनुमान दुष्कर कर्म कर रहे हैं । वे अकेले इन्द्रजितसे युद्धमें लगे हैं ।' श्रीरामने जाम्बवन्तसे कहा—'उनकी सहायता करनी चाहिये ।'

जाम्बवन्त आज्ञा पाकर चले तब तक मेघनाद भाग चुका था । वानर दुःखी लौट रहे थे । हनुमानके नेत्रोंकी अश्रुधारा रुकती नहीं थी । वे दौड़े

आये और श्रीरामके चरणोंपर गिर पड़े । बड़ी कठिनाईसे कह सके—'दुष्ट मेघनादने मेरे सामने श्रीजनक-नन्दिनीका वध कर दिया ।'

सीता ! वैदेही !' श्रीराम सुनते ही मूर्छित होकर गिरे । सब वानरोंने उन्हें घेर लिया । लक्ष्मण अग्रजका आलिंगन करके क्रन्दन करने लगे—'आपने धर्मका दृढ़ आचरण किया, वह क्या व्यर्थ चला गया ? क्या धर्म भी अपने रक्षककी रक्षा नहीं करता ?'

कोई भी अनर्थ सम्भव था । लक्ष्मण क्रोधमें आकर कुछ भी कर सकते थे; किन्तु इस क्षण विभीषण अपने मन्त्रियोंके साथ आ गये । वे यह पता लगाने गये थे कि इन्द्रिजत क्या करना चाहता है । युद्ध-भूमिसे विमुख सब वानर श्रीरामके समीप एकत्र हो गये हैं, यह देखकर किसी अनर्थकी आशंकासे वे दौड़े आये थे ।

'कुमार ! आप भी मायावी मेघनादकी मायासे भ्रान्त हो गये ?' वानरोंको रुदन करते देखकर विभीषणने हनुमानसे इस व्याकुलताका कारण पूछा । सुनते ही लक्ष्मणसे बोले—'मेघनाद तो सीताके समीप नहीं पहुँच सकता । वह उसका माया-दर्शन था ।'

'माया-दर्शन ?' अब श्रीराम चौंककर उठे । लक्ष्मण और सब वानर भी विभीषणका मुख देखने लगे ।

'यदि वे सचमुच श्रीसीता थीं तो उन्हें वह आप दोनोंके सम्मुख क्यों नहीं ले आया ? उस अदृश्य रहनेवालेके लिए ऐसा करना कठिन था ? 'विभीषणने दृढ़ स्वरमें कहा—'कहाँ हैं वैदेहीका शव ?'

'उसे तो वह रथमें ही ले गया !' हनुमान भी चौंके और अब ।

'वह उसका वहाँ अग्नि-संस्कार करेगा या समाधि बनाकर पूजेगा ?' विभीषणने स्पष्ट किया—'वास्तविक सीता होतीं तो शव वह यहीं छोड़ जाता । उस माया-शरीरसे गिरा रक्त भी वहाँ नहीं मिलेगा ।'

बहुतसे वानर दौड़े । दो क्षणमें आकर उन्होंने बतला दिया—'वहाँ तो भूमिपर दो बूँद रक्त भी नहीं है ।'

'वह निकुम्भिला मन्दिरमें जाकर राक्षस-मेध यज्ञ करने बैठा है ।'

विभीषणने बतलाया—'वहाँ बहुत धूम्र उठता आप देख रहे हैं । यदि यह यज्ञ पूरा हो गया तो मेघनाद लगभग अमर हो जायेगा । उसे मार देना आवश्यक हो गया है । मेरे साथ आप लक्ष्मणको भेजें । पूरी सेना वहाँ नहीं जा सकती । अन्यथा दशग्रीव प्रतिकार करने पहुँच जायेगा । चुने वीरोंको लेकर वहाँ पहुँचना पड़ेगा ।'

'लक्ष्मण ! मैं इन्द्रजितकी माया समझता हूँ । वह बलवान है । ब्रह्मास्त्र-वेत्ता है । अदृश्य रह सकता है ।' श्रीरामने अनुजको आदेश दिया—'अब वह अपने मन्त्र-ज्ञानका दुरुपयोग करनेपर उतर आया है । अतः इस सुर-साधु-उत्पीडकको आज मार दो । हनुमान, अंगद, जाम्बवान, नील तुम्हारे साथ जायेंगे । विभीषण मार्ग-दर्शन करेंगे ।'

आपके इन श्रीचरणोंकी शपथ !' लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध थे आज । अग्रजकी परिक्रमा करके, उनका पादस्पर्श करके प्रतिज्ञा की—'समस्त सुर-असुर भी सहायक होकर आ जायें तो भी मैं आज उस मायावीको अवश्य मार दूँगा ।'

अरुण नेत्र, धनुष चढ़ाये लक्ष्मण चले । विभीषण मार्ग-दर्शन कर रहे थे । परिखाकी लगभग आधि परिक्रमा करके लम्बा मार्ग पार करनेके पश्चात् रजत-शिखरके दूसरी ओर वे निकुम्भिला मन्दिर पहुँचे । हनुमान भी चकित रह गये । सबको लगा कि इतना दुर्गम, इतना गुप्त स्थान विभीषणके मार्ग-दर्शन बिना पाया नहीं जा सकता था ।

'हम तुझे और रावणको मारकर इसका प्रतिशोध लेंगे !' हनुमानका यह वाक्य सुनकर मेघनाद चौंक गया था । वह इसीसे युद्ध-भूमिसे तत्काल भागा था—'यह प्रतिशोधकी भावना लक्ष्मणमें, राममें भी जाग सकती है । उनके समीप ब्रह्मास्त्र है, पाशुपतास्त्र है, सम्भव है नारायणास्त्र भी हो । उनमें क्रोध जागे, इससे पूर्व अपनेको सुरक्षित अमरप्राय कर लेना आवश्यक है ।'

अनुष्ठान—एकमात्र उपाय अनुष्ठान था । अत्यन्त शीघ्र सिद्धि तो उग्रतर तामस अनुष्ठानोंसे ही प्राप्त होना सम्भव है । वैसे भी राक्षसोंकी आस्था राजस-तामस तन्त्रोंपर ही थी । मेघनाद महातान्त्रिक । वह अविलम्ब निकुम्भिला मन्दिर पहुँचा । उसने सैकड़ों राक्षस दौड़ाये । आवश्यक सामग्री क्षणोंमें एकत्र हो गयी । काले वस्त्र पहिनकर वह आचमन करके श्मशान-कालिकाको प्रसन्न

करने रक्षोमेध यज्ञ करने बैठ गया । विशाल सरोवरके समान महाकुण्डमें सम्पूर्ण भैसों, सुरा और रक्तकी आहुति देने लगा । गगन उठते धूम्रसे भर गया । दिशाओंमें रक्त-मांस जलनेकी दुर्गन्ध व्याप्त हो गयी ।

'यहाँ अभी स्वयं राक्षसेश्वर भी आवें तो प्रवेश मत करने देना ।' मेघनादने अपने विश्वस्त सैनिकोंकी पूरी सेनाको उस गुप्त गुहा-मन्दिरकी रक्षामें नियुक्त किया ।

'कुमार ! अपने समीप बिलम्बित होनेका तनिक भी अवकाश नहीं है ।' विभीषणने सावधान किया—'मेघनादका यह अनुष्ठान अल्पकालिक है । यह पूरा हो गया तो अवश्य उसे कुछ वर्षोंके लिए अवध्य बना देगा । सावधान ! वह यज्ञ करते हुए भी दिव्यास्त्र प्रयोग कर सकता है । इस मेघकृष्ण राक्षस-सेनाको अविलम्ब मार दो । इनका व्यूह भंग करके ही हमको इन्द्रजितके पास पहुँचना है ।'

'दम्भी दुष्ट ! युद्धसे भागकर यहाँ छिपा बैठा है ?' हनुमानने मेघनादको ललकारा । लक्ष्मणने सुरक्षापर नियुक्त सेनाका संहार एक ही वाणसे कर दिया था । विभीषणके साथ सब मन्दिर-प्रांगणमें पहुँच चुके थे । नील और जाम्बवन्तने महिषोंको बन्धन-मुक्त करके बाहर हाँक दिया । रक्त और सुराके पात्र पटककर फोड़ दिये । यज्ञ-पात्रोंको छीनकर तोड़ डाला ।

कुलघ्न ! कुल-कलंक ! तुम इन लोगोंको ले आये हो ? मेघनादने विभीषणकी भर्त्सना की 'जहाँ पालित हुए, जहाँके अन्न-जलसे जीवित रहे, उसीके साथ विश्वासघात करते तुम्हें लज्जा नहीं आती ?'

'तू अब मुझे शिक्षा देने चला है ? अपने घरमें पलनेवाले सर्प-वृश्चिक पहिले मार दिये जाने चाहिये ।' विभीषणने भी फटकारा—'विश्वके सत्पुरुषोंका विनाश करनेको उद्यत दुष्टोंको अभय कर देना घोर अधर्म है । उन्हें मिटा देना आवश्यक है ।'

हनुमानने पैरकी ठोकर मारकर कुण्डके समीपकी वैदियाँ ध्वस्त कर दी थीं । कुण्डकी मेखलाएँ तोड़ दी थीं । अग्निमें समीपसे उठाकर बहुत-सा जल डाल दिया था । मेघनाद अनुष्ठान-भ्रष्ट होनेसे निराश, क्रुद्ध उठा । उसने आग्नेय दृष्टिसे हनुमानकी ओर देखकर धनुष उठाया ।

'कुमार सावधान ! यह दुष्ट पवनपुत्र ब्रह्मशिरका प्रयोग करने जा रहा है ।' विभीषणने मेघनादके मन्त्रोच्चारणमें हिलते ओष्ठ देखकर लक्ष्मणको सचेत किया ।

लक्ष्मणके प्रहारने मेघनादका संकल्प नष्ट कर दिया । व्याकुल होकर वह मन्त्रोच्चारण बीचमें भूल गया । अब लक्ष्मणपर दिव्यास्त्र वृष्टि करने लगा । दोनों प्रलय पावकके समान दुर्धर्ष, दोनों दिव्यास्त्रोंके मर्मज्ञ । लगा कि प्रलय सन्निकट है । मेघनादने दौड़कर अपने अदृश्य रहनेवाले रथपर बैठ जानेका प्रयत्न किया । रथ अभी प्रांगणके बाहर ही था; किन्तु लक्ष्मणके प्रचण्ड बाणोंसे वह रथ, सारथि, अश्व उसी क्षण नष्ट हो गये । मेघनाद गदा उठाकर दौड़ा । उसे भी सौमित्रने काट फेंका ।

'पाशुपतास्त्र ?' मेघनादको स्मरण आया । उसका धनुष कट चुका था । दूसरा धनुष उठाने लपका ।

'कुमार ! इसका शीघ्र वध करो !' विभीषणने फिर सचेत किया— 'दशग्रीवका यह अन्तिम सहारा है । कोई अमोघास्त्र उठा सकता है ।'

'यदि श्रीराम सत्यसन्ध, धर्मात्मा हैं तो यह शायक इस मायावीको मार दे ! लक्ष्मणके करोंमें उनके त्रोणका सबसे समुज्वल, सबसे प्रचण्ड महाशायक था । स्थिर चित्तसंकल्प करके उसे उन्होंने चढ़ाया । प्रत्यञ्चाको कान तक खींचकर बाण छोड़ दिया ।

उस बाणने किरीट-कुण्डल-सहित इन्द्रजितका मस्तक काट दिया । सहसा गगनसे सुरोंने सुमन-वृष्टि प्रारम्भ की । जय-ध्वनि गूँजने लगी 'अनन्तविक्रम श्रीरामानुजकी जय !'

'आर्यपुत्र विजयी हुए ! अया राजसदनमें, अपने अन्तःपुरके एकान्त कक्षमें हनुमानके जानेके पश्चात् स्थिर, एकाग्रचित्ता, दृढ़ासना बैठी परमसती उर्मिलाके अंकमें एक अरुण विकचपद्म अचानक अन्तरिक्षसे गिरा तो चौंककर उन्होंने नेत्र खोले । पुष्पको मस्तकसे लगाकर माता कौशल्याके समीप पहुँची— 'यह आशीर्वाद-सुमन आया है ।'

'वत्से ! लक्ष्मणकी विजय उसी समय सुनिश्चित हो गयी, जब तू उसका संकल्प करके एकाग्रमना बैठ गयी ।' माताने पुत्रवधूको हृदयसे लगाया—

'स्वयं प्रलयंकर भी प्रतिपक्षमें होते तो तुझ जैसी सतीके संकल्पके सम्मुख उन्हें पराजित होना पड़ता ।'

'विजय—स्वामीकी विजय !' रावणके राजसदनमें अपने अन्तःपुरमें प्रमिला भी एकाग्रचित्ता बैठी थी; किन्तु बार-बार कोई अदृश्य कर उसे झकझोर देता था—'नहीं ! यह सम्भव नहीं ।'

'नहीं ! नहीं !' प्रमिला बार-बार चीत्कार करती थी । उसे अपने चारों ओर अन्धकार घिरता लगता था । उसकी एकाग्रता बार-बार नष्ट होती थी । अन्तमें जब उसके करोंका कंकण अकारण कड़ाक करके टूटा, वह मूर्छित होकर गिर पड़ी—'हाय ! स्वामी गये ! हार गयी मैं । मेरी अदृश्य संस्पर्धिनी ! यह आसुरी शाप देती है, तुम्हें भी स्वामीके पीछे सती ही होना पड़ेगा ।'

'कौशल्यानन्दवर्धन रघुकुलमणि श्रीरामकी जय !' लक्ष्मणने आकर अग्रजके पदोंपर मस्तक रख दिया । विभीषण, जाम्बवन्त आदिने भी प्रणाम किया । हनुमानने मेघनादका छिन्न मस्तक उनके सम्मुख रखा ।

'तुमने आज असाध्यको साध्य कर दिया !' श्रीरामने अनुजको हृदयसे लगाया ।

'जो द्वादश वर्ष निराहार, निद्रारहित ब्रह्मचर्यव्रती रहे, वही इसे मार सकता था ।' श्रीरामने सुनाया तो लक्ष्मणने मस्तक झुका लिया । वानर भले आश्चर्यसे उनकी ओर देखें; किन्तु ये सब व्रत तो उनके लिए अयोध्या छोड़नेके समयसे स्वाभाविक हो गये थे और उसे तो अब चतुर्दश वर्ष पूरे होने वाले थे ।

●●●

प्रमिला-सती

अविराम तीन दिन-रात इन्द्रजितने युद्ध किया था। एकादशीसे त्रयोदशीतक युद्ध करके उसने वीरगति प्राप्त की थी। श्रीराम अनुजकी प्रशंसा कर रहे थे। लक्ष्मणके शरीरपर अपने अभयकर फिरा रहे थे—'तुमने दशग्रीवकी दक्षिण भुजा काट दी।'

इस प्रशंसासे लक्ष्मण संकुचित हो रहे थे। ताराके पिता सुषेण द्रोणाचलसे औषधियाँ लेकर आहत वानरोंको स्वस्थ करनेमें लग गये थे।

'विभीषण लक्ष्मणको वानरोंके साथ निकुम्भिला मन्दिर ले आये थे। उन्होंने ही बार-बार उत्तेजित किया।' राक्षसोंने रावणको जाकर यह समाचार दिया—'आपके पुत्र इन्द्रजितने अतुलनीय पराक्रम प्रदर्शित किया; किन्तु अन्तमें उन्होंने वीरगति प्राप्त की। उनका मस्तक हनुमान उठा ले गये!'

दशग्रीव पुत्रवध सुनकर मूर्छित हो गया। चेतना प्राप्त करके शोकार्त रुदन करने लगा—'तुम यम और कालसे भी अजेय थे। युद्धमें मृत्यु तुम जैसे शूरका योग्य सुयश है। आज स्वर्गमें सुर उत्सव मनावेंगे। लंकामें तुम्हारी माता और पत्नी रुदन करेंगी। उचित तो यह था कि तुम मेरा प्रेतकर्म करते; किन्तु अब मुझे तुम्हारी उत्तरक्रिया करनी पड़ेगी?'

'मैंने एक सहस्र वर्ष दुश्चरतप करके सृष्टिकर्ताको सन्तुष्ट किया। उन्होंने मुझे देवता तथा असुरोंसे अवध्य बनाया।' रावणने उन्माद-ग्रस्तकी भाँति अट्टहास किया—'ब्रह्माके द्वारा दिया गया मेरा दिव्य धनुष और कवच कहाँ है? विजय-वाद्य बजाओ! मैं मानवोंकी शक्ति देखूँगा। आज उन्हें मार दूँगा या मर जाऊँगा।'

'इन्द्रजितने मायासे सीताका वध दिखलाया था, मैं उसे सत्य करूँगा।' दुरासद् दुर्धर्ष दशग्रीव क्रोधोन्मत्त दाँत पीस रहा था। अपने हाथ मसल रहा था। पैर पटक रहा था। पुत्रका मरण सुनकर उसकी बुद्धि विचलित हो गयी थी। उसका निर्णय अस्त-व्यस्त हो गया था। भयके कारण राक्षस भी उसके सामने आनेका साहस नहीं कर पा रहे थे, उसने भारी तलवार खींच ली—

'सब साथ चलो ! आज मैं सबके सम्मुख सीताको मार दूँगा ।'

हुंकार करते क्रुद्ध रावणको आता देखकर अशोकवनमें वैदेहीके समीप बैठी राक्षसियाँ भाग गयीं । पहिली बार रावण इस वाटिकामें अपने सेनापतियोंके साथ, बिना किसी रानीको संग लिए आ रहा था । उसकी उग्रतर भंगिमा देखकर देवी मैथिली डर गयीं—'आज यह मुझे अनाथाके समान मार देगा । मेरी ओरसे निराश हो गया है और मेरे स्वामी तथा देवरपर कोई वश नहीं चला है, तब क्रोधोन्मत्त मुझे मारने आया है । आर्यपुत्र दीर्घायु हों ! लक्ष्मण दीर्घायु हों !'

श्रीजनकनन्दिनीने नेत्र बन्द कर लिए । उन्होंने अपने जीवनका अन्तिम क्षण समझा । अपने मनको श्रीरामके चरण-चिन्तनमें एकाग्र किया ।

'आप महर्षि पुलस्त्यके पौत्र, वैश्रावण कुबेरके भाई हैं । वेदज्ञ हैं, विवेकी हैं, कर्तव्यपालक हैं ।' मन्त्री सुपार्श्वने सीताके समीप पहुँचनेसे पूर्व ही हाथ जोड़कर दशग्रीवकी स्तुति करते हुए डरते-डरते कहा—'आप अपना क्रोध मुख्य शत्रुपर सार्थक करें ! एक विवशा स्त्रीका वध क्यों करते हैं ?'

कभी-कभी प्रबल प्रवाहमें प्रवाहितको एक साधारण हिलोर भी दूसरी दिशा दे देती है । रावण खड़ा हो गया । उसने सुपार्श्वकी ओर देखा—'तुम ठीक कहते हो ।'

'दशग्रीव ! तूने स्वयं यह नरमेधयज्ञ प्रारम्भ किया है ! इस यज्ञमें रामको होता बना लिया तो वे आहुति देंगे ही । लक्ष्मण तो उनके उद्‌गाता हैं । सुग्रीव-वभीषण अध्वर्यु ऋत्विक बन गये । इतने वानरोंको तूने सभासद बनाकर बुला लिया । अब अपनी पूर्णाहुति देनेमें यह संकोच क्यों ?' मस्तक झुकाये रावण जो बोलता जा रहा था, साथके राक्षसोंने उसे शोकोन्मादका प्रलाप ही माना । वह बोलता जा रहा था—'देखना यह है कि कोई प्रधानाहुति तो अवशिष्ट नहीं है ?'

'राक्षसेन्द्र ! आपकी पुत्र-वधू आपका दर्शन करने पधार रही हैं ।' रावण अशोकोद्यानसे आकर अपने भवनके मन्त्रणाकक्षमें ही सिर झुकाये बैठ गया था । अन्तःपुरसे सेविकाने आकर सूचना दी तो वह हड़बड़ा उठा ।

'आपके पुत्र मेरी प्रतीक्षा करते होंगे, आप मुझे अनुमति दें ।' कक्षमें

प्रवेश करते प्रमिलाने पृथ्वीपर सिर रखकर प्रणाम किया । उसने अपना सम्पूर्ण श्रृंगार किया था । जैसे वह आज पुनः नववधू बन गयी हो । उसके स्वरमें कम्पनका नाम नहीं था । भूमिसे सिर उठाकर उसने दोनों हाथोंमें लेकर अञ्चल फैलाया—'मैंने सुन लिया, निकुम्भिला मन्दिरमें उनका कबन्ध पड़ा है । मैं उनका मस्तक माँगने आयी हूँ ।'

दशग्रीव फूटकर रो पड़ा । उसने अपने हाथोंसे दसों मुख ढक लिये । कठिनाईसे बोल सका—'वत्से ! यद्यपि सहमरणकी प्रथा हमारे राक्षसकुलमें सम्मानित नहीं है; किन्तु मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं । जो स्वयं अपनी आहुति देनेको उतावला हो रहा है, वह दूसरेको रोक कैसे सकता है

'मेघनादके चले जानेसे रावण कंगाल हो गया । आज किसीको मरणके अतिरिक्त कुछ देनेको मेरे पास नहीं और अपनी पुत्र-वधूको मरणका उल्लास देने योग्य भी वह नहीं रहा ।' त्रिभुवनजयीका इतना निराश, व्यथापूर्ण स्वर कदाचित् ही कोई सुन सकता हो—'वत्से तेरे पतिका मस्तक रामके समीप पहुँच गया । बलपूर्वक उसे ला दे सकूँगा, अब यह कहनेका दर्प दशग्रीवमें नहीं रहा । राम धर्मात्मा हैं । यह राक्षसाधिप उनका आचार्य बना था । निर्लज्ज होकर, शस्त्रहीन होकर उनके समीप जाय और पुत्रका मस्तक माँगे तो वे अस्वीकार नहीं करेंगे ।'

'नहीं ! आप नहीं जायेंगे ! प्रमिलाने तेजोदीप्त मुख उठाया—'अब मेरे पास लज्जा, संकोच करनेको रह क्या गया । मैं स्वयं उनके समीप जाकर पतिका मस्तक माँग लूँगी ।'

'वहाँ तुम्हारे स्वसुर विभीषण हैं ।' रावणने शिथिल स्वरमें कहा—'वे तुम्हारी सहायता करेंगे । राम धर्मज्ञ हैं । भले मैंने उनकी पतिव्रता पत्नीका हरण किया है, वे सतीका सम्मान करना जानते हैं । उनके समीप जानेमें तुम्हें संकोच नहीं होना चाहिए । तुम्हारे लिए वे भी स्वसुर समान हैं । सुरक्षा-सैनिक साथ जायेंगे ।'

'केवल अन्तःपुरकी रक्षिकाएँ जायेंगी मेरे साथ ।' पुनः प्रणाम करके जब वह सती लौटी, उसके पादक्षेपसे कक्षभूमि पर कुंकुम झड़ रहा था । दशग्रीवने देखा । सिंहासनसे उठकर उस कुंकुमको मस्तकसे लगाकर पुत्रके उपयुक्त

उत्तरक्रियाके प्रबन्धमें लग गया ।

थोड़ी-सी पुर-रक्षिकाओंकी सेना । सब बड़वा (घोड़ी) पर बैठीं । सब सशस्त्र, सबने कवच पहिने रखे । केवल उन काले कवच, शिरस्त्राण पहिने राक्षसियोंकी काली घोड़ियोंके मध्य अकेली रक्ताम्बरा, श्वेत-बड़वारूढ़ा, मुक्तकेशा प्रमिला । लगता था कि कोई स्वर्गकी देवी अवनि पर उतर आयी है ।

'स्त्रियोंकी सेना आ रही है !' वानरोंने जैसे ही प्रमिलाका दल उत्तर द्वारसे निकला, दौड़कर श्रीरामको सूचना दी ।

'स्त्रियोंकी सेना ?' श्रीरामने चौंककर विभीषणकी ओर देखा । 'अब क्या दशग्रीव इतना दुर्बल, कायर हो गया है कि वह स्वयं दुर्गमें दुबका रहे और स्त्रियोंको संग्राम करने भेजे ?'

'राक्षसेन्द्रको किसीने कापुरुष कभी नहीं कहा ।' विभीषणने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'मैं देखता हूँ ।'

'आपकी पुत्र-वधू प्रमिला आपके पदोंमें प्रणत है ।' विभीषणको देखते ही उस सतीने राक्षसियोंको रोका और स्वयं वाहन बढ़ाकर सम्मुख आ गयी—'गुरुजनोंके व्यवहारकी आलोचना और उन्हें उलाहना देनेका मुझे अधिकार नहीं है । मैं तो अपने पतिका मस्तक माँगने आयी हूँ । आप मुझे स्वामीके शरीरके साथ चितारोहणमें इतनी सहायता करेंगे कि मैं श्रीरामके समीप उपस्थित हो सकूँ ?'

'वत्से ! उनके समीप उपस्थित होनेमें किसी आर्तको अनुमतिकी आवश्यकता नहीं होती ।' विभीषणके नेत्र वर्षा करने लगे—'तुम आ सकती हो ।'

'इन्द्रजितकी विधवा सती होना चाहती है । आपसे अपने पतिका मस्तक माँगने आयी है ।' विभीषणसे सुनते ही श्रीराम उठकर खड़े हो गये ।

देवि ! सती सर्ववन्दनीया होती है । अतः यह इक्ष्वाकु-गोत्रीय दाशरथि राम तुम्हें प्रणाम करता है ।' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया । इससे पूर्व कि प्रमिला बड़वासे उतरकर उनको प्रणाम करती, वानर स्तब्ध देखते रहे । वे भुवनवन्द्य हाथ जोड़े, सिर झुकाये कह रहे थे—'मुझे खेद है कि यह

क्रूर कर्तव्य हमें करना पड़ा; किन्तु किसी सतीके फैले अञ्जलमें उसके स्वामीका छिन्न मस्तक अर्पित करनेमें राम समर्थ नहीं है । तुम कहो तो तुम्हारे स्वामी सजीव

'नहीं ! नहीं !' प्रमिलाने पुकारा—'उन्होंने वीरगति प्राप्त की । यह उनकी अनुगामिनी उनको पीछे लौटनेको बाध्य नहीं करेगी । सुना था कि आप उदारशिरोमणि, धर्मात्मा हैं । आज स्वयं देखती हूँ कि पुरुषोत्तमके पादारविन्दमें पहुँच गयी हूँ । पतिलोककी प्राप्तिमें आपकी केवल अनुमति और आशीर्वाद लेने आयी हूँ ।'

'वत्से ! सतीको वारित करनेकी शक्ति सृष्टिमें किसीमें नहीं होती ।' श्रीरामने गम्भीर कण्ठ कहा—'तुम स्वयं सादर अपने स्वामीका सिर ग्रहण करो । उसे सम्मानपूर्वक रखा गया है । वे उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं ।'

सुलोचना प्रमिला श्रीरामके संकेतके अनुसार आगे बढ़ी । मेघनादका मस्तक एक स्वच्छ शिलापर सुरक्षित रख दिया गया था । प्रमिलाने वहाँ पहुँचकर पहिले भूमिमें घुटने टेककर पृथ्वीमें सिर रखकर उस सिरको प्रणाम किया । अविकृत मेघनादका मुख—लगा कि उसपर जो क्रोधके भाव थे, पत्नीके सम्मुख आनेपर लुप्त हो गये । उठकर दोनों हाथोंसे उठाकर वह सिर अपने हृदयसे लगाया और लौटी ।

प्रमिलाने किसीकी ओर नहीं देखा । उसके मानधनी पतिका वह मस्तक उसकी गोदमें था, जो पिताके अतिरिक्त कहीं झुकता नहीं था । उस मस्तकको लेकर मेघनादकी मरणोन्मुख अर्धांगिनी किसीकी भी वन्दना नहीं कर सकती थी ।

'विभीषण ! लंका-द्वार तक तुम्हें इस सतीका अनुगमन करना चाहिये ।' विभीषणको भेजकर श्रीरामने सुग्रीवकी ओर देखा—'वानर इस समय शान्त रहेंगे । दशग्रीव जब तक पुत्रकी उत्तर क्रिया सम्पन्न नहीं कर लेता, कोई लंकामें नहीं जायेगा और न उधर, जहाँ इस पुरीकी श्मशान-भूमि है । इस समय कोई जयघोष नहीं किया जायेगा ।'

प्रमिलाके आगमनका समाचार मिलनेसे अब तक अग्रजके संकेतपर लक्ष्मण दूर ही रहे थे । वह सती अपने पतिको वीरगति देनेवालेको देखकर

व्यथित हो सकती थी । उसे क्षुब्ध या अपमानित अनुभव करानेकी क्षुद्रता तो सोचने योग्य ही नहीं थी ।

x x x x

दशग्रीवने समुद्र किनारे चिता सज्जित करा ली थी । मेघनादका मस्तकहीन शरीर (कबन्ध) निकुम्भिला मन्दिरसे वहाँ मँगा लिया था । उसे स्नान कराके चितापर—शरीरधारी सनातनधर्मी गृहस्थकी जो अनिवार्य अन्तिम शय्या है, उसपर शयन करा दिया गया था । प्रमिलाकी प्रतीक्षा थी ।

प्रमिलाने किसीकी ओर नहीं देखा । आकर वह अपनी बड़वासे उतरी और सीधे चितापर चढ़ गयी । पतिके शरीरको उसने इस प्रकार अपनी गोदमें रखा कि उससे सटाकर सिर रखनेपर वह प्रमिलाकी दक्षिण जंघापर ऐसा धरा रहा, जैसे शरीरसे लगा ही हो ।

'वत्से !' दशग्रीव कुछ कहना चाहता था; किन्तु उसके कण्ठने साथ नहीं दिया । वह निर्निमेष देखता खड़ा रहा ।

'राक्षसेन्द्र ! आप धन्य है । आपने पुरुषोत्तमको पतितपावन होनेका अवसर दिया है ।' सतीकी दिव्य दृष्टिको दशग्रीवका अभिनय आच्छादित नहीं कर सकता था । शान्त, निष्कम्प स्वरमें सम्पूर्ण समष्टिको उस परमसतीने आशीर्वाद दिया—'आप ठीक सोचते हैं । अपने आरम्भ किये महामेधयज्ञको अपनी आहुति देकर परमगति प्राप्त करें । सुर संकटहीन होकर सुखी हों । असुर शान्त होकर सुखी हो । संसार रामके छत्रकी छाया प्राप्त करके परम सुखी हो ।'

आज भी सती स्वतः अग्नि प्राप्त कर लेती है, उस समय तक तो अग्निदेव लंकामें सेवक थे । उस चितामें न किसीको अग्नि देनी पड़ी, न दक्षिणाग्निका आह्वान करना पड़ा । प्रमिलाने तनिक ऊपर दृष्टि उठाकर अस्ताचलकी ओर जाते आदित्यमण्डलकी ओर देखा और अञ्जलि फैला दी ।

जैसे मेघनादका शरीर और प्रमिलाका शरीर कर्पूर-निर्मित हो, इस प्रकार एक साथ जल उठा । चिताके चन्दनकाष्ठने पीछे ज्वाला पकड़ी, वे दोनों शरीर पहिले प्रज्वलित हो उठे ।

हुताशनमें सतीका अपमान करनेका साहस नहीं था । प्रमिलाका शरीर

भस्म होता गया—भस्म हो गया; किन्तु उसके वस्त्र तब तक बचे रहे, जब तक उसके शरीरकी अस्थियाँ भस्म नहीं हो गयीं ।

दशग्रीव संज्ञाशून्यके समान खड़ा रहा, जब तक चिताग्नि शान्त नहीं हो गयी । अन्तमें पुत्र-पुत्रवधूको जलाञ्जलि देने वह सागरमें उतरा ।

●●●

अहिरावण

'अभी कोई और प्रधानाहुति अवशिष्ट है ?' पुत्रको जलाञ्जलि देकर दशग्रीव समुद्रसे निकला तो उसके मनमें एकमात्र यही प्रश्न था । शीघ्र उसकी बुद्धिने उत्तर दे दिया- 'एक है । अमंगल मुहूर्तमें मेरी अनुमतिके बिना जिसका प्रसव उसकी माताने कर दिया, अतः क्रुद्ध होकर जिसे मैंने सागरकी लहरोंको सौंप दिया, वह अपने भाइयों-सहोदरोंके साथ मरा तो नहीं । वह नागलोकके एक द्वीपमें बस गया । मेरा नाम अपनाया उसने । नागलोकवासी होनेके कारण अपनेको अहिरावण कहने लगा । वह और उसके भाई मेरे ही औरस पुत्र हैं । वे रह जायेंगे ? इस महामेधमें भी उद्धार-वञ्चित ही रह जायेंगे ?'

'विभीषणको रामने शरण दी है । अपने सेवकके अनुगतोंका दायित्व उनपर । अतः लंकामें विभीषणके अनुचर बचे रहें, इसमें कोई आपत्ति नहीं ।' रावणकी मेधा प्रबुद्ध हो गयी थी- 'दशग्रीव ! यदि अपने अनुगतोंको, अपने औरसोंको त्यागकर तू चला जाता है तो उनका उद्धार करनेवाला कोई कहीं मिलेगा ?'

अहिरावण नागलोकमें रहता है । उसे यहाँ बुला भी लिया जाय, लाभ ?' राक्षसेन्द्रने क्षणभरमें निश्चय कर लिया । 'उसके पूरे कुलका उद्धार करनेके लिए रामको वहाँ जाना पड़ेगा । उनको वहाँ जाना ही है ।'

दशग्रीव समुद्रतटसे वैसे ही आर्द्रवस्त्र राजसदन न जाकर निकुम्भिला मन्दिर चला गया । मेघनादके रक्तसे सिञ्चित उसी प्रांगणमें वह बैठ गया ।

सामग्री सेवकोंने आज्ञा पाते ही प्रस्तुत कर दी । तन्त्रोंका वह परमाचार्य अहिरावणके नामसे आकर्षण-प्रयोग करने लगा था ।

'आपने मुझे स्मरण किया पिताजी !' अहिरावण उत्पन्न होते ही त्याग दिया गया था । समुद्रकी लहरोंने उसे निगला नहीं । अपने सब भाइयोंके साथ नागलोकमें उसने स्वयं अपना राज्य स्थापित किया था । लंकासे, माता-पितासे न उसे प्रीति थी, न कोई सम्बन्ध । वह पृथ्वीपर आया ही नहीं था । केवल दिग्विजय करता जब दशानन उसके यहाँ पहुँचा था, परिचय हो गया था । उसने पिताका सत्कार किया था । आज अचानक पितासे मिलनेकी तीव्र उत्कण्ठा उसके मनमें जागी । वह अपनेको रोक नहीं सका था । कोई अज्ञातशक्ति उसे सीधे यहाँ निकुम्भिला मन्दिर खींच लायी । दशग्रीवके अनुष्ठानका सम्भार देखते ही वह समझ गया कि उसकी यहाँ आनेकी उत्कण्ठाका कारण क्या था । उसने विनम्र होकर, प्रणाम करके पूछा- 'मेरे योग्य कोई सेवा ?'

'वत्स ! आज तुम्हारी यह पितृभूमि और पिता संकटमें हैं । मेरा सुरासुरजयी पुत्र मेघनाद भी मारा गया । रावणने उसे हृदयसे लगाकर कहा- 'तुमको तुम्हारे मातामह मयने अपनी समस्त मायिक शक्तियोंसे स्नेहपूर्वक सम्पन्न किया है । अब तुम्हीं संकटसे मुझे बचा सकते हो ।'

'मैं उन दोनों राजकुमारोंको हरण करके अपने यहाँ लिये जाता हूँ ।' पितासे पूरा विवरण सुनकर अहिरावणने कहा- 'वहाँ आज ही उनकी बलि दे दूँगा अपनी आराध्या चामुण्डाको ।'

'तुम इतना कर सको तो वानर स्वतः भाग जायेंगे ।' रावणने प्रसन्न होकर कहा- 'जो प्रातःकालसे पूर्व रह जायेंगे, उन्हें मैं मार दूँगा । लेकिन दोनों राजकुमार वानरोंसे सुरक्षित रहते हैं । तुम उनको ले जानेमें सफल हो गये, यह सूचना मुझे कौन देगा ?'

'आपने ही तो कहा है कि पितृव्य विभीषण उनके पक्षमें है । मैं उनके रूपमें वहाँ जाऊँगा ।' अहिरावणने योजना स्पष्ट की- 'आपको क्षणार्धके लिए जब गगनमें तीव्र आलोक दीखे, समझ लें कि आपके शत्रु जा रहे हैं ।'

पिताको आश्वासन देकर अहिरावण उत्तर द्वारके ऊपर आया । उसने मायासे समस्त वानर-सेनाको सम्मोहित किया । दिन-रातके युद्धसे श्रान्त आज

सब मेघनादके मारे जानेसे निश्चिन्त थे । श्रीरामने अत्यन्त आग्रह करकेलक्ष्मणको आज अपने समीप शयन करा लिया था । सब सो गये मायाके प्रभावसे ।

अहिरावणने देखा, अपने लांगूलकी परिखा सुप्त वानर सेनाके चारों ओर बनाकर हनुमान स्वयं उसका द्वार बने बैठे हैं । यद्यपि मायाके प्रभावसे उनको भी तन्द्रा आ रही थी; किन्तु बलपूर्वक वे अपनेको सुप्त होनेसे बचाये थे । उनकी पूँछ-परिखाका उल्लंघन असम्भव है । इस प्रयत्नमें पक्षी भी पवनपुत्रकी अचिन्त्य शक्तिके कारण पृथ्वीपर गिर पड़ेगा, यह अहिरावण समझ गया । वह विभीषणके रूपमें उनके समीप पहुँचा ।

'आप इस समय ?' हनुमानने पूछा ।

'मैं समुद्र-किनारे सन्ध्या करने चला गया था ।' उस कृत्रिम विभीषणने कहा- 'यह भी आवश्यक था कि देख लूँ, दशग्रीव क्या करने जा रहा है । पुत्रको जलाञ्जलि देकर वह नगरमें गया । कल युद्धमें आवेगा । यह सब देखनेमें मुझे विलम्ब हो गया ।'

'आजका सांकेतिक शब्द ?' हनुमानने फिर पूछा ।

'मुझे कैसे पता हो सकता है ।' मायावी राक्षसने शान्त स्वरमें कहा- 'आप जानते हैं कि ये शब्द सूर्यास्तके पश्चात् निश्चय किये जाते हैं । मैं तो उससे पूर्वसे प्रभुके समीप पहुँच ही नहीं सका ।'

सन्देहका कोई कारण नहीं था । पवनकुमारने मार्ग दे दिया; किन्तु थोड़ी देरमें ही भीतर कोलाहल होने लगा । मायाका प्रभाव दूर होनेपर पहिले सुग्रीव जागे । उन्होंने व्याकुल होकर जाम्बवन्तको जगाया- 'सानुज श्रीराम नहीं हैं ! इस अन्धकारपूर्ण रात्रिमें वे कहाँ गये ?'

'सानुज श्रीराम नहीं हैं !' जाम्बवन्तने विभीषणको जगाया । दो चार क्षणोंमें सम्पूर्ण वानर-सेना जाग गयी । सब व्याकुल हो उठे । जाम्बवन्तने कहा- 'हनुमानसे पूछना चाहिये ।'

'सानुज श्रीराम नहीं हैं । कोई सायंकालके पश्चात् भीतर आया था ?' सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवन्त पहुँचे हनुमानके पास । पूछा- 'भीतरसे कोई बाहर गया ?'

'भीतरसे बाहर किसीको जाते मैंने नहीं देखा । मेरी पूँछका उल्लंघन कोई तभी कर सकता है जब मेरे स्वामी उसके साथ हों ।' हनुमानने कहा— 'बाहरसे भीतर तो अन्धकार हो जानेके पश्चात् केवल ये विभीषणजी गये थे ।'

'मैं तो मेघनाद-वधसे लौटनेके पश्चात् प्रभुके समीप ही हूँ ।' विभीषणने कहा— 'लगता है कोई मेरे रूपमें आकर श्रीराम-लक्ष्मणको हरण कर ले गया ।'

'मैंने गगनमें एक तीव्र प्रकाश क्षणार्धके लिए देखा ।' हनुमानने बतलाया— 'जो भी आपके वेशमें रहा हो, उसके भीतर जानेके तनिक देर पीछे ही वह प्रकाश हुआ ।'

'मैं अपने वंशकी अन्तिम आहुति स्वयं दे रहा हूँ !' उसी प्रकाशको देखकर लंकाके राजसदनमें दशग्रीवने दीर्घ स्वांस ली ।

'हम राक्षसोंके कुलकी एक पवित्र शपथ है, राज परिवारके लोगोंका रूप मायासे केवल राज-परिवारके लोग ही बना सकते हैं ।' विभीषण सचिन्त कह रहे थे— 'रावण-कुम्भकर्णके पुत्रोंमें अब कोई जीवित नहीं है । मेरा रूप दानवेन्द्र मय बना सकते हैं या स्वयं रावण । लेकिन दानवेन्द्रमें दुर्वृत्तिका लेश नहीं है । दशग्रीव भी मुझे कलंकित करनेका ऐसा क्षुद्र प्रयास नहीं करेगा । वह राम-लक्ष्मणका हरण भी करे तो रखेगा कहाँ ?'

'केवल एक है- रावणका परित्यक्त एक औरस पुत्र है अहिरावण । उस मायावीके अतिरिक्त यह कर्म और किसीका नहीं हो सकता ।' विभीषणने निश्चयात्मक स्वरमें कहा— 'अवश्य मेघनादकी मृत्युसे निराश रावणने उसे बुलाया होगा । पवनपुत्र ! आपको प्रभुके समीप शीघ्र पहुँचना चाहिये । सूर्योदयसे पूर्व दोनों भाइयोंको यहाँ ले आनेमें आप ही समर्थ हैं ।'

'आप सब सावधान रहें । मैं यहाँ नहीं हूँ, यह किसी प्रकार राक्षसोंको ज्ञात न हो !' हनुमानने विभीषणसे अहिरावणकी पुरीका पूरा पता पूछा और उसी क्षण प्रस्थान किया ।

'इस पुरीका स्वामी आज कहीं बाहर गया था ?' समुद्रके भीतर नागलोकके उपद्वीपमें हनुमान पहुँचे तो उस पुरीके द्वारपर अपने ही समान रूप, आकारके बलवान वानरको देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ । उन्होंने उससे पूछा ।

'मेरे स्वामी अहिरावण आज कहींसे दो अत्यन्त सुन्दर श्याम-गौर राजकुमारोंको निद्रित ही उठा लाये हैं ।' उस वानरने कहा- 'उन दोनोंकी अभी थोड़ी देरमें चामुण्डाको वे बलि दे देंगे । तुम देवी-मन्दिरसे उठती वाद्य-ध्वनि सुन रहे हो ?'

'सुन रहा हूँ । तुम कौन हो ?' हनुमानने पूछा ।

'मैं परम पराक्रमी पवनपुत्र हनुमानका सुत मकरध्वज हूँ ।' उस वानरने गर्वपूर्वक कहा- 'मेरे स्वामीने मुझे आज द्वारपर नियुक्त करके आज्ञा दी है कि किसीको भीतर प्रवेश मत करने देना ।'

'मैं आजन्म ब्रह्मचारी, तुम मेरे पुत्र कैसे हो गये ?' हनुमानने उस वानरको घूरकर देखा । वह आकृतिमें उनकी प्रतिमूर्ति था ।

'मेरे अहोभाग्य कि मुझे आज अपने पूजनीय पितृपदोंके दर्शन हुए ।' वह चरणोंमें लोट गया । उठकर हाथ जोड़ बोला- 'आपने जब लंका जलाकर समुद्रमें पूँछ बुझानेके लिए छलाँग लगायी, आपके शरीरका स्वेद-बिन्दु जलमें टपका । उस उज्ज्वल बिन्दुको एक महामत्स्यने आहार समझकर मुखमें ले लिया । उससे उसके उदरमें मेरे शरीरका निर्माण हुआ । जालमें उसे दैत्य मछुओंने पकड़ा और अहिरावणको दे गये । उस मत्स्यको यहाँ रसोईघरमें काटा गया तो मैं निकला । इस पुरीके स्वामीने मेरा पालन कराया । एक दिन देवर्षि नारद पधारे । उन्होंने मुझे यह मेरी जन्म-कथा बतला दी ।

'अच्छा ! अब मुझे तुम्हारे देवी-मन्दिर जाना है ।' हनुमानने पैर बढ़ाया- 'वे दोनों राजकुमार मेरे स्वामी हैं । मैं उन्हें ले जाने आया हूँ ।'

'आप मेरे पिता हैं; किन्तु जिसने मेरा पालन किया है, उसने मुझे द्वार-रक्षापर नियुक्त किया है ।' मकरध्वज द्वार रोककर खड़ा हो गया- 'जब तक मुझमें शक्ति है, आप भीतर नहीं जा सकते ।'

पिता-पुत्रमें मल्ल-युद्ध प्रारम्भ हो गया । हनुमानके समीप अधिक अवकाश नहीं था । उन्होंने मकरध्वजको पटककर उसीकी पूँछसे कसकर बाँध दिया । उसे वैसे ही वहीं छोड़कर भीतर चले गये । देवी-मन्दिर पहुँचकर हनुमानने स्वयं देवीका भयंकर रूप धारण किया । वह चामुण्डा-विग्रह तो उनके चरणोंके दबावसे पाताल-प्रविष्ट हो गया और वे स्वयं उसके पीठपर स्थिर खड़े हो गये ।

'आज चामुण्डा बहुत प्रसन्न है ।' राक्षस अत्यन्त उत्साहमें थे । उन्होंने अर्चा करके जो भी नैवेद्य अर्पित किया, हनुमानने मुख खोलकर सब खा लिया ।

अयोध्या छोड़नेके पश्चात् आज प्रथम बार भली प्रकार श्रीराम-लक्ष्मणको अभ्यंग लगाकर उष्णोदकसे राक्षसोंने स्नान कराया । उनकी अलकोंमें सुमन सजाये । शरीरमें सुगन्धित चन्दन लगाया । दोनों भाइयोंको वल्कलके स्थानपर लाल कौशेय वस्त्र धारण कराये । पुष्पमाल्य कण्ठमें डाला । दोनों भाइयोंने केवल फलाहार स्वीकार किया, अन्यथा राक्षस तो स्वादिष्ट पक्वान्न प्रस्तुत कर रहे थे । अहिरावणने आज्ञा दे दी थी- 'कोई कटु वाक्य नहीं कहे । कोई बल प्रयोग मत करो । पुरुष-पशु भली प्रकार सत्कार-योग्य होता है ।

'अब जो तुम्हें प्रिय हो, तुम्हारी सहायता कर सके, उसका स्मरण कर लो !' खिलाकर, इत्रादिसे पूजित करके दोनों भाइयोंको देवीके सम्मुख खड़े करके अहिरावणने खड्ग उठाया- 'अब तुम्हारी बलि दी जायेगी ।'

'आर्य !' लक्ष्मणने अग्रजकी ओर देखा । उनके ये भाई भी अद्भुत हैं । वे संकेतसे भी अनुमति दे दें तो इन सब राक्षसोंको वे अपने हुंकारसे भस्म कर दे सकते हैं; किन्तु वे तो बराबर शान्त रहनेका संकेत करते आ रहे हैं ।

'लक्ष्मण ! मुझे तो पवनकुमार ही परम प्रिय हैं ।' श्रीरामने सहजभावसे कहा- 'तुम भी उन सबके विपत्ति-विदारक वायुपुत्रका स्मरण करो ।'

'यहाँ पवनपुत्र ?' लक्ष्मणने आश्चर्यसे पूछा ।

'तुमने देवीके नेत्रोंको ध्यानसे देखा ?' श्रीरामके अधरोंपर मन्द स्मित आया ।

अब तक अहिरावण शस्त्र-पूजन सम्पन्न कर चुका था । उसका खड्गवाला दाहिना हाथ ऊपर उठा । सहसा मानो वह सम्पूर्ण लोक फट जायेगा, ऐसी भयंकर गर्जना गूँजी । 'हुं' के विश्वभेदी घोषके साथ हनुमान प्रकट हो गये । अहिरावणके हाथका खड्ग छीन लिया उन्होंने और उसीसे उस मायावी राक्षसका मस्तक उड़ा दिया । कुछ क्षण लगे, वहाँके सब राक्षसोंके छिन्न-सिर शव बिछ गये । रक्तके प्रवाहसे पूरी पुरी पिच्छल हो गयी ।

'यह कौन है ?' अहिरावणकी पुरीमें केवल स्त्रियाँ बच गयी थीं जब

हनुमान श्रीराम-लक्ष्मणको अपने दोनों कन्धोंपर उठाकर वहाँसे चले । द्वारके समीप अपनी ही पूँछमें बँधे मकरध्वजको बँधे देखकर श्रीरामने पूछा ।

'यह मुझे प्रवेश नहीं करने दे रहा था ।' हनुमानने झुककर उसे खोल दिया- 'अतः मैं इसे बाँधता गया था ।'

'यह तो तुम्हारा पुत्र लगता है ।' स्नेहपूर्वक श्रीरामने मकरध्वजकी ओर देखा । पवनकुमारने संकोचसे सिर झुका लिया । उसने दोनों भाइयोंको तथा हनुमानको भी प्रणाम किया । उनकी प्रदक्षिणा की ।

'वत्स ! अब तुम इस पुरीके अधीश्वर हुए ।' समीप बुलाकर श्रीरामने उसके मस्तकपर हाथ रखा- 'आसुर भाव मत अपनाना । अपने इन पिताके समान शरणागतोंके रक्षक रहो !'

लंकाकी समर-भूमि ब्रह्ममुहूर्तसे पूर्व ही जयघोषसे गूँजने लगी । पवनपुत्र वहाँ दोनों भाइयोंको लेकर पहुँच चुके थे ।

●●●

शक्ति-पूजन

अनेक बार मन कोई निमित्त पकड़ता है । श्रीरामने अहिरावणकी पाताल नगरीसे समर भूमिमें आते ही कहा—'लक्ष्मण ! मेघनाद मरनेसे पूर्व यज्ञ करके श्मशान-कालिकाको सन्तुष्ट करनेका प्रयत्न कर रहा था । अहिरावण चामुण्डाकी अर्चना-चेष्टामें लगा था । दोनोंकी उपासना अधूरी रह गयी, यह दूसरी बात है; किन्तु उनकी उपासना शक्तिदात्री है, यह तो हम भी स्वीकार करते ही हैं । तब शत्रु-संहारके लिए हमको भी उन महाशक्तिकी शरण लेनी चाहिये ।'

लक्ष्मणने अग्रजकी ओर देखा । उनके ये लीलामय अग्रज कब क्या

करना चाहते हैं—किसीके लिए भी समझ लेना सम्भव नहीं है; किन्तु लक्ष्मणको चामुण्डा, श्मशान-चण्डिका, उग्रतारा, छिन्नमस्ता प्रभृति शक्तिके राजस-तामस रूपोंसे सहज विरक्ति है । वे बोले नहीं ।

'महाशक्ति सर्वेश्वरी, सर्वसञ्चालिका हैं; किन्तु सृष्टिके सञ्चालनके लिए उन्होंने गुणोंका आश्रयण करके अनेक रूप धारण किया है । उनके नवदुर्गारूप हों या दस महाविद्यारूप, एक ही महाशक्तिके रूप हैं ।' श्रीरामने अनुजकी विरक्ति देखकर समझाया—'जैसे प्रकृतिमें तमोगुणसे रजोगुण तथा रजोगुणसे सत्त्वगुण बलवान है; किन्तु आवेश, उत्पात, आरम्भिक उग्रता तमस एवं रजोगुणमें अधिक है, उसी प्रकार शक्तिके राजस-तामस उग्ररूप प्रचण्ड हैं । उनका प्रभाव अत्यन्त प्रबल है । फिर भी सात्त्विक रूप शान्त होते हुए भी अन्ततः उनको प्रशमित करनेमें समर्थ हैं ।'

'दैत्य, दानव, राक्षस अपनी राजस-तामस प्रकृतिके अनुसार कालीकुलका आश्रयण करते हैं ।' अब श्रीरामने स्पष्ट किया—'हम वैसा नहीं कर सकते । उग्ररूपोंको सन्तुष्ट करनेके लिए जो कुछ अनिवार्य है, वह हमें इष्ट नहीं है । हम गौरीकुलका आश्रयण करेंगे ।'

'त्रिपुरसुन्दरी भगवती ललिता ?' लक्ष्मणमें अब उत्साह आया—'अथवा उनका शीघ्र सन्तुष्ट होनेवाला स्वरूप त्रिपुरभैरवी ?'

'वे आद्या सर्वाराध्या हैं ।' श्रीरामने मस्तक झुकाया—'इस समय हम संग्राममें अत्यन्त दुर्जय शत्रुका शमन चाहते हैं, अतः उनकी सिंहवाहिनी, दशभुजा महाशक्ति दुर्गाका स्तवन करेंगे ।'

ब्रह्ममुहूर्तका आरम्भ ही हुआ था । श्रीरामने अनुजके साथ पुनः स्नान किया । अहिरावण द्वारा अर्पित अंगराग, चन्दन, माल्यादि विसर्जित हो गये । इनकी उपयोगिता तो उस नागपुरीमें थी । उन असुरोंके उद्धारके लिए थी । अब लक्ष्मणने समझा कि वहाँ उनके अग्रज क्यों शान्त रहकर राक्षसोंकी सब सेवा स्वीकार करते गये थे । अन्ततः अहिरावण तथा उसके अनुगतोंके उद्धारका भी तो कुछ निमित्त आवश्यक था । वह न भक्त था, न द्वेषी । न प्रेमसे चिन्तन करता था, न शत्रुतासे । वहबलि भी देने जा रहा था तो केवल पिताको सन्तुष्ट करनेके लिए । ऐसे तटस्थका तो उद्धार सम्भव नहीं है । अतः उसकी सेवा-

स्वीकार करना था । इसीसे श्रीराम, वह जो कहता गया, करते गये । उसीने कहा—'अपने प्रियका स्मरण करो !' तब पवनकुमारका स्मरण किया । अब वह प्रयोजन पूर्ण हो गया । अतः उसके द्वारा अर्पित वस्त्र, अंगरागादि विदा होने चाहिये थे । वहाँसे धारण कराया गया रक्ताम्बर त्यागकर दोनों भाइयोंने पुनः वल्कल धारण किया ।

श्रीरामको पूजा-सामग्री अपेक्षित थी ? वे दयामयी कहाँ सामग्री-सम्भार देखती हैं । उनकी अर्चा-सामग्री अन्तःकरणें भावित जितनी उत्तम होती है, बाह्य सामग्री उतनी श्रेष्ठ कैसे एकत्र की जा सकती है । श्रीरामने उन दशभुजाका उपस्थान किया ।१

अभी अरुणोदय हुआ नहीं था; किन्तु श्रीरामके स्तवन करते ही दिशाएँ आलोकसे उज्जवल हो उठीं । गगनमें श्रीरामसे किञ्चित् दक्षिण होकर वे सिंहवाहिनी सायुधाभरणा, रक्तवसना, त्रिनेत्रा, चन्द्रकिरीटिनी प्रकट हो गयीं । उनका शतसहस्र सूर्योपम महातेज, वानरोंने ही नहीं, लक्ष्मणने भी नेत्र बन्द कर लिए दोनों करोंसे । असम्भव था उनकी ओर देख पाना ।

स्वर्णसटा केशा, करालदंष्ट्रा केशरी शान्त, स्निग्ध लोचनोंसे देख रही थीं । वे अभयकरा, वरदहस्ता, सुप्रसन्ना—श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर अवनिमें ही मस्तक रखा । खड़े होकर उन अरुण-मृदुल पादपद्मोंमें मानसिक पुष्पाञ्जलि अर्पित की ।

परावाणीको कृतार्थ होनेका अवसर कब आता ? श्रीराम स्तवन करने लगे । लगा निखिल ब्रह्माण्डोंका कण-कण उनके स्तवन-स्वरसे ध्वनित हो रहा है । देवता, ऋषि, गन्धर्वादि प्रत्यक्ष दीखे गगनमें महाशक्तिके चारों ओर उसी स्तुतिके स्वरोंका साथ देते ।

'अभयमस्तु ! समरविजयी भव !' उन आद्याका दक्षिण कर उठा । उनके अकल्पनीय मधुर, स्नेह-स्निग्ध स्वरसे दिशाएँ झूम उठीं । उनके करके चन्द्रोज्वल कंकणकी किरणोंमें करतलकी अरुणिमाका राग—श्रीराम, सम्पूर्ण

---

१. ग्रन्थान्तरोंमें कल्प-भेदकी कथा है कि ब्रह्माकी प्रार्थनासे महाशक्ति दुर्गा लंकाकी समर-भूमिमें आकर दस दिन अदृश्य रहकर युद्धका सञ्चालन करती रहीं ।

वानर-सेना-स्नान कर गयी । वे निखिल ब्रह्माण्ड विधायिका, विश्वविनोदिनी बोलीं—'तुमको इस स्तवनकी आवश्यकता थी ? तुम्हारा संकल्प—वही तो घनीभूत होकर यह शक्ति-स्वरूप ग्रहण करता है । लेकिन तुम मर्यादापुरुषोत्तम अपनी मर्यादासे महिमान्वित करते हो, विश्वके लिए एक परम्परा बनाते हो और स्वयं अपनी परम्पराका पालन करते हो ।'

'अच्युत ! अविनाशी ! अद्वय ! तुम नित्यविजयी हो ।' नेत्र बन्द किये लक्ष्मणके अधरोंपर स्मित आया । ये आद्या उनके अग्रजकी स्तुति कर रही हैं या अग्रज उनके उपस्थानमें लगे हैं ? लेकिन वे आद्या ही कह रही थीं—'यह दुर्जय दशग्रीव तो तुम्हारा अपना जन है । तुम अपने करोंसे इसका यह रूप मिटा दो । तुम्हारे अपने जनोंका—वे कहीं किसी रूपमें हों, दूसरा कोई भी पराभव नहीं कर सकता । दूसरेमें इतनी शक्ति कभी नहीं आवेगी कि वह तुम्हारे आश्रितोंको पराजित कर सके ।

अवनत-सिर श्रीराम स्तवन कर रहे थे । साश्रुलोचन, पुलकित तन, गद्‌गद स्वर—एकाग्रमना श्रीरामकी परावाणी सृष्टिके अणु-अणुको श्रद्धाका पुनीत उपहार दे रही थी । वे ही तो अनादिकालसे प्राणियोंके पथ-प्रदर्शक हैं । वही तो अन्धकारमें भटकते जीवोंके लिए आलोक बनकर आते हैं । उनकी यह उपासना, उनकी यह स्तुति—विश्वके भ्रान्त जन ही न सीख सकें तो वे क्या करें । अनुजके, समस्त वानरोंके सम्मुख वे जो महाशक्तिका स्तवन कर रहे थे ।

'दशग्रीव तृणके समान भस्म हो सकता है किसी भी वानरके द्वारा यदि तुम दृष्टि उठाकर ऐसा संकल्प करो ।' महाशक्ति कह रही थीं—'लेकिन तुम्हें समर-विजयकी परिपाटी स्थापित करनी है । उस अपने अभिनयलीन दर्पदर्शीका उद्धार करना है तो कर दो । तुम सर्वसमर्थ—मुझसे समर्थन कराना है ? समर-विजय करो !'

'वे आद्या अदृश्य हो गयीं । अदृश्य हो गया उनका वाहन । अदृश्य हो गये उनका स्तवन करते सुर, ऋषि, मुनि, गन्धर्वादि; किन्तु दिशाओंमें व्याप्त उनकी असह्य अंगकान्ति, आलोक धीरे-धीरे अदृश्य हुआ ।

लक्ष्मणने, वानरोंने दृष्टि खोली । उनको लगा, जो दिव्य असह्य तेज

उन भगवती आद्याके श्रीविग्रहमें था, वह श्रीरामके शरीरमें पुञ्जीभूत हो गया है । आज इन इन्दीवरसुन्दरकी ओर देखना कठिन हो रहा था । इनका सहस्र-सहस्र ज्योत्स्ना-मधुर श्रीअंग आज दुरासद, दुर्धर्ष तेज-समन्वित हो रहा था ।

अब भी गगनसे अदृश्य आशीर्वादकी वर्षा होती लगती थी । अब भी जैसे श्रवण सुन रहे हों—'समरविजयी भव !' सबका हृदय प्रफुल्ल था । सब अत्यन्त उल्लासपूर्ण थे । सबके मनपर छायी युद्धकी विभीषिका जैसे सर्वथा तिरोहित हो चुकी थी । युद्धारम्भसे पूर्व जो उत्साह था, वह जैसे द्विगुण हो उठा ।

वही जमे, सूखे, काले पड़ गये रक्तसे क्लिन्न समर-भूमि, वही छिन्नायुध, भग्न रथोंसे पटी पृथ्वी । दशग्रीवके अनुचरोंने रात्रिमें राक्षसोंके शव, शरीरसे कटे अंग समेटकर समुद्रमें फेंक दिये थे सदाके समान । अपने अश्वों, गजों, गर्दभों, खच्चरोंके शव भी फेंक दिये थे; किन्तु अब भी युद्ध-भूमि आयुधोंसे, आयुधोंके खण्डोंसे, भग्नरथोंसे, मृत या आहत वीरों तथा गज या अश्वोंके आभूषणोंसे, कवच, ढाल आदि उपकरणोंसे पटी पड़ी थी । उसमें चलना-दौड़ना अत्यन्त कठिन था ।

सम्मुख लंकाका वही दुर्धर्ष दुर्ग । दशग्रीवके स्थापत्य-निपुणोंने दिनकी भग्न परिखाको रात्रिमें सुदृढ़ कर दिया था प्रतिदिनके समान । सबसे बड़ी बात—अभी भी त्रिभुवनजयी दशग्रीव जीवित था । अब उनके समीप लंकाके चुने शूरोंकी अपार शक्तिशाली राक्षससेना थी ।

सब था; किन्तु वानरोंके हृदयसे आतंक विदा हो गया था । अब उन्हें लंका और लंकापति तृण-तुच्छ प्रतीत होने लगा था । उनके जयघोषसे गगन गूँजा-

'अमित विक्रम श्रीरामकी जय !'

'परम पराक्रमी लक्ष्मणकी जय !'

●●●

रावण-युद्ध

'आप सब वीर हैं। अब प्रमादका अवसर नहीं है। यात्रा करें और घेरकर शत्रुको नष्ट कर दें।' दशग्रीवने नम्रतापूर्वक प्रारम्भ किया; किन्तु उसका स्वर शीघ्र कठोर हो गया—'सबको समझ लेना चाहिये कि जो भी युद्धमें जानेसे दुबकेगा या समर-भूमिसे भागेगा, मैं अपने हाथों उसका वध करूँगा।'

राक्षसोंने सेना सज्जित की और दुर्गसे निकले; किन्तु आज वानर विपुल उत्साह प्राप्त थे। स्वयं श्रीराम सम्पूर्ण सेनाका सञ्चालन कर रहे थे। पवनपुत्रके कन्धोंपर बैठे वे घूम-घूमकर बाणवृष्टि करनेमें लगे थे।

'यह रहे राम!' श्रीरामने गन्धर्वास्त्रका प्रयोग किया तो राक्षस मोहित होकर परस्पर एक दूसरेको राम समझकर एक दूसरेपर ही प्रहार करने लगे। जैसे सहस्रों राम हो गये हों।

श्रीराम एक भी हुए तो उनके करोंमें धनुष कुम्भकारके चक्रके समान घूम रहा था। घूम रहे थे वात्याचक्रके समान पवनपुत्र। राम दीखते ही नहीं थे उस प्रचण्ड वेगके कारण। आज श्रीराम राक्षसोंको साक्षात् काल दीखने लगे। लगभग दो घटी (डेढ़ घण्टे) यह अविराम बाणवर्षा श्रीरामके शारंग धनुषसे हुई। लक्ष-लक्ष रथ, अश्व, गज नष्ट हो गये। लंकाकी सामान्य सुरक्षित सेना सम्पूर्ण नष्ट हो गयी। असंख्य राक्षस मारे गये। उनके अंग-मस्तक, कर, रामके बाणोंसे कट-कटकर लंकाके भवनोंमें, पथपर इतने गिरे कि पुरी और समर-भूमिमें भेद करना कठिन हो गया।

'आजके रामके युद्ध जैसा चमत्कार केवल रुद्र प्रलयके समय प्रकट कर सकते हैं।' सुरेन्द्रने सुरोंके मध्य स्पष्ट कहा।

समर-भूमि और लंकाके पथोंमें ऊपर तक शवोंकी ढेरी लग गयी। चारों ओर रक्तका प्रवाह उमड़ पड़ा। शीघ्र जमकर वह अगम्य दलदल बनता जा रहा था।

लंकाके भवनोंमें राक्षसियाँ केश खोले वक्ष पीटती क्रन्दन कर रही थीं—'भयंकरी, वृद्धा, महोदरी, श्वेतकेशा, दुर्मुखी सूर्पणखा रामसे प्रेम करने गयी

थी। उसी दुष्टाके कारण खर-दूषणादि मारे गये। उसीके कारण दुर्बुद्धि दशग्रीव सीताके लिए अन्धा हुआ। इसे यह भी नहीं सूझा कि विराध, कबन्ध, बालिको मारने वालेसे शत्रुताका क्या परिणाम होगा। विभीषणकी बात सुन लेता तो आज लंका क्यों स्वर्णपुरीसे श्मशान बनती। कुम्भकर्ण जैसा महाकाय मरा, इन्द्रजित जैसा सुरविजयी पुत्र मरा; किन्तु यह सचेत नहीं हुआ। रावण मरेगा। अब कोई बचेगा नहीं। सीता कालरात्रि होकर आयी है। वह सबको चबा जायेगी। अब भी इस बीस नेत्रके अन्धेको नहीं सूझता।'

'समयानुसार समझदारी केवल विभीषणमें निकली।' राक्षसियाँ परस्पर एक दूसरीको गले लगाकर विलाप कर रही थीं, रावणको गालियाँ दे रही थीं। आज रावणका भय जैसे उठ गया था। राजसदनकी सेविकाएँ तक स्वजनोंके मारे जानेसे रावणके सम्मुख ही छाती पीटती उसे कोस रही थीं। पूरी लंकामें क्रन्दन व्याप्त था।

'महोदर! महापार्श्व! विरूपाक्ष!' क्रुद्ध रावणने अपने अंगरक्षक महासेनापतियोंको दाँत पीसते पुकारा—'सेना सज्जित करो! आज मैं अपने सब स्वजनोंका प्रतिशोध ले लूँगा। दिशाएँ मेरे बाणोंसे आच्छादित हो जायेंगी। कोई वानर आज कहीं भागकर नहीं बचेगा। चलो! शेष सब चलो! अपने मारे गये स्वजनोंका शोणित तर्पण करो!'

सब स्वस्त्ययन करके रथारूढ़ हुए; किन्तु आठ अश्वोंके रावणके रथ-ध्वजपर ही प्रस्थानके प्रारम्भमें गीध आकर बैठ गया। शृगाली फेत्कार करती नगरमें सामने आयी। वाम नेत्र तथा भुजा फड़क रही थी। राजसदनकी ध्वजा टूट गिरी। अकारण अश्व ठोकर खाने लगे। लेकिन अपशकुनोंकी इन सूचनाओंको कभी अभाग्यका मारा प्राणी देख सका है

दशग्रीवने दसों धनुषोंसे दारुण बाणवर्षा प्रारम्भ की। सचमुच दिशाएँ बाणोंसे भर उठीं। वानरदल विचलित होकर भागा। यह देखकर वानरेन्द्र सुग्रीव टूट पड़े। उन्होंने शिला-वर्षा करके विरूपाक्षका रथ नष्ट कर दिया। वह रथ त्याग गजपर बैठकर गर्जना कर ही रहा था कि उसके करका खड्ग छीनकर सुग्रीवने उसीका शिरश्च्छेद कर दिया।

रावणके उत्तेजित करने पर महोदर गदा लेकर दौड़ा। सुग्रीवने उसकी

गदा छीनकर उसके सिरपर दे मारी। अंगदने महापार्श्वका परशु छीनकर उससे उस राक्षसके टुकड़े कर दिये।

'सारथि ! शीघ्रता करो। राम-लक्ष्मणके सामने रथ ले चलो।' रावण चिल्लाया—'आज मैं रामरूपी वृक्षको काट दूँगा।'

वानर-सेनाको रौंदता रावणका रथ बढ़ा। रावणकी अनवरत बाणवर्षाके सम्मुख वानर टिक नहीं सकते थे। श्रीरामने धनुष चढ़ाया। वानरसेनाको पीछे किया और अनुजसे कहा—'लक्ष्मण ! तुम सेनाको सम्हालो। मैं इसे देखता हूँ।'

श्रीराम और रावणके युद्धकी सृष्टिमें तुलना नहीं है—सामान्य शर दोनोंमें कोई छूता नहीं था। सिंहमुख, शृगालमुख, सर्पमुख शरोंकी झड़ी भी क्षणिक थी। दिव्यास्त्र चलने लगे। आग्नेयास्त्रके विरुद्ध पार्जन्य मेघास्त्रके विरुद्ध वायव्य, पार्वतास्त्रके विरुद्ध ऐन्द्रास्त्र—ये दिव्यास्त्र भी दशग्रीवको तुच्छ लगे। वह जो अस्त्र उठाता था, उसको श्रीराम उचित उत्तर देकर व्यर्थ करते चले गये।

स्वयं नारायण स्वरूप श्रीरामके विरुद्ध नारायणास्त्रका प्रयोग सम्भव नहीं था। रावण सशंक हो गया जब उसके द्वारा प्रयुक्त रौद्रास्त्रने श्रीरामके ललाटका ऐसे स्पर्श किया, जैसे उन्हें स्नेहसे आशीर्वाद देता हो। उसे भय लगा—'यदि ब्रह्मास्त्र या पाशुपतने भी यही किया तो ?'

श्रीरामपर वश न चलते देखकर रावणने अचानक शक्ति उठायी और विभीषणपर चला दी। धनुषपर बाण चढ़ाये सावधान लक्ष्मणने यह देखा। उनके बाणने उस शक्तिको काट फेंका। दशग्रीवने हुंकार किया और दूसरी प्रज्वलित शक्ति उठा ली—अपनी तपःप्राप्त अमोघ शक्ति।

'मेरे शरणागतवत्सल अग्रजने विभीषणको अभय दिया है।' लक्ष्मणको निर्णय करनेमें आधा निमेष भी नहीं लगा। वे कूदकर विभीषणकके आगे आ गये। शक्ति वक्षस्थलमें लगी तो वे मूर्छित होकर गिरे।

'लक्ष्मणका कल्याण हो !' अनुजको गिरते देखकर सत्यसंकल्प श्रीरामके मुखसे निकला। वे कमलदल-लोचन क्रुद्ध हो उठे। उनके पद्मपलाश नेत्र अत्यन्त अरुण हुए। कठोर भृकुटि बोले—'वानर लक्ष्मणको घेरकर उनकी रक्षा करें।

सब वानर-सैनिक लक्ष्मणको लेकर शैलशिखरपर चले जायें और संग्राम देखें। आज पृथ्वी अरावण या अराम होकर रहेगी ।'

'हनुमान ! तुम्हारे लाये द्रोणाचलमें अब भी औषधियाँ सूखी नहीं हैं ।' वानर-भिषक् सुषेणने लक्ष्मणके शरीरमें गति देखकर कहा—'कुमार केवल मूर्छित हैं ।'

पवनपुत्रको वह समर-भूमिसे दूर स्थापित शिखर उठा लानेमें क्या श्रम था । सुषेणने औषधिलीं और उनके उपचारसे लक्ष्मण उठ बैठे । उठते ही लक्ष्मणने धनुष चढ़ाया और अग्रजके समीप पहुँचे । श्रीरामने अनुजको आया देखा तो हृदयसे लगाया । स्नेहपूर्वक बोले—'इस बार मुझे युद्ध-क्रीड़ा कर लेने दो । तुम तनिक विश्राम कर लो !'

'शत्रु अत्यन्त बलवान है । अस्त्रज्ञ है और रथारूढ़ है ।' लक्ष्मणके साथ ही विभीषण श्रीरामके समीप आ गये थे । उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'आप पदाति हैं । इतने दुर्जय शत्रुसे इस प्रकार संग्राममें पार पाना अत्यन्त कठिन है । आप पहिलेके समान पवनपुत्रके स्कन्धोंपर आरूढ़ होना स्वीकार कर लें ।'

'विभीषण ! विजय सामान्य स्यन्दनसे नहीं हुआ करती । शौर्य, धैर्य, साहस और धर्मका स्यन्दन विजयदायी होता है ।' श्रीरामने कहा—'तुम क्या समझते हो कि अधर्महत दशग्रीवको उसका यह रथ बचा लेगा ?'

लक्ष्मणके मूर्छित होनेके पश्चात् क्रुद्ध श्रीरामने रावणके धनुष तथा कवच काट दिया था । दूसरा अमोघ कवच धारण करके दूसरे दस धनुष ज्या-सज्ज करनेमें उसे दो-चार क्षण लगे । अब जैसे ही वह सावधान हुआ, विभीषणके सम्मुख ही श्रीरामके शरोंसे उसका स्यन्दन चूर-चूर हो गया । उसके आठों अश्व मारे गये । ध्वजा कट गयी ।

दशग्रीवके सारथिकी प्रशंसा करनी पड़ेगी । उसने कूदकर ऐसे अवसरोंके लिए प्रस्तुत पीछे खड़े रथोंमेंसे एककी रश्मि हाथमें ले ली । रावणको केवल कूदकर उस रथमें चले जाना पड़ा । अब उसने भी क्रोधमें भरकर एक बाणसे श्रीरामको आहत किया ।

'श्रीरामकी जय हो !' देवताओंने गगनसे जय-ध्वनि की । उस भीषण

प्रहारको श्रीरामने सहन कर लिया । वे विचलित, कम्पित नहीं हुए, यह देखकर देवता भी चकित रह गये ।

दशग्रीवने शूल उठाया था । श्रीरामने उसे ऐन्द्रास्त्रसे काटकर रावणकी भर्त्सनाकी—'परस्त्रीका अपहरण करनेवाले चोर ! आज मैं तुझे मार ही डालूँगा ।'

श्रीरामकी बाण-वर्षा अत्युग्र हो उठी । अपने दसों धनुष चढ़ाये भी दशग्रीव उन एकधन्वाके समस्त बाणोंको काट नहीं पाता था । उसने आज तक यह चमत्कार नहीं देखा था । श्रीराम त्रोणसे एक बाण निकालते हैं । प्रत्यञ्चा तक पहुँचते-पहुँचते वह दस हो जाता है । खींचते ही वे सौ बनते हैं, छूटते सहस्र और लक्ष्य तक पहुँचते-पहुँचते लाखों बन जाते हैं । उनमें कोई कितनोंको काटेगा । लक्ष्योंको नष्ट करके उनमें-से बाण पुनः रामके त्रोणमें आ जाता है । कौन-सा मूल बाण ? लक्ष-लक्ष बाणोंमें कैसे पता लगे ? वह कभी कट नहीं पाता । अथक उद्योग—वह मूल बाण काटा जा सके । रामके समीप दो त्रोण सही, उसमें पाँच-पाँच बाण मात्र हैं । उनका मूल बाण काटा जा सके—एक भी बाण कम किया जा सके; किन्तु कहाँ ? दशग्रीव सफल नहीं हो रहा है । उसका स्वयंका शरीर छलनी हुआ जा रहा है । रामके बाण उसका कवच फोड़कर शरीरमें प्रवेश कर रहे हैं ।

मायायुद्ध—मायावी राक्षसका अन्तिम सहारा । रावणने अनेक प्रकारकी माया प्रकट कीं । जलते महापर्वत गगनसे गिरने लगे । समुद्र उमड़ता समूची पृथ्वीको निगलने बढ़ा । अन्तरिक्षसे अस्त्र-शस्त्र, मांसशोणित, नाग, सर्प-वर्षा । सिंह, व्याघ्र, भल्लूक मुख फाड़े भक्षणको दौड़ते । लेकिन इससे केवल वानरोंको भयभीत किया जा सकता था । मायापति इससे सम्मोहित होते । उनका शर छूटता था और मायिक दृश्य लुप्त हो जाते थे ।

अनेकों—सहस्रों रावण प्रकट हुए । लाख-लाख हनुमान लांगूल उठाकर पर्वत लिए मारने दौड़ते दीखे श्रीरामको । श्रीराम सहस्रों दीखने लगे धनुष चढ़ाये वानरोंको मारनेको उद्यत । व्यर्थ थी सब माया । श्रीरामके अधरोंपर स्मित । उनके बाण सब माया नष्ट करते गये । अन्ततः मायिक दृश्य केवल दीखते ही तो हैं । वे स्वयं तो कोई हानि कर नहीं सकते । उनको देखकर

संत्रस्त होकर कोई अपनी हानि स्वयं कर ले, असावधान हो जाय तो शत्रुको प्रहार करनेका अवसर मिले। दशग्रीवकी ऐसी कोई दुराशा सफल नहीं होती थी। उसके मायिक दृश्य भी पानीके बुलबुलेसे अधिक स्थायी नहीं सिद्ध हो सके। श्रीरामके शरोंने उन्हें टिकने नहीं दिया।

अनवरत आघात, कवच फोड़कर शरीरमें प्रवेश करते प्रतिक्षण शतशः शर, पूरा शरीर रक्तका निर्झर बन गया। कितना भी शक्तिशाली हो, कैसा भी समर्थ हो, कोई कब तक सहन कर सकता है ? दशग्रीव शिथिल पड़ने लगा। उसके बाण लक्ष्यच्युत होने लगे। इससे श्रीरामका प्रहार-वेग बढ़ गया। रावणके नेत्रोंके आगे अन्धकार छाने लगा। उसका शरीर छटपटाने लगा। धनुष रथमें टेककर वह ढीला पड़ गया।

सारथिने अपने स्वामीकी अवस्था देखी तो रथ घुमाकर अश्व दौड़ा दिये। श्रीराम पराङ्मुख शत्रुपर तो प्रहार कर नहीं सकते थे।

नगरमें आकर रावण सचेत हुआ। सारथिपर बिगड़ा—'भीरु, पौरुषहीन, शस्त्रहीनके समान मुझे युद्धसे भगाकर तूने मेरी अवज्ञा की है। तू भीत है ! मूर्ख है ! शत्रुने तुझे कुछ उत्कोच दिया है ?'

'न मैं भीरु हूँ, न मूर्ख हूँ और न मैंने शत्रुसे उत्कोच ही लिया है। आप मेरा तिरस्कार मत करें।' सारथिने शान्त स्वरमें नम्रतापूर्वक कहा—'आप अकारण मुझपर दोषारोपण कर रहे हैं। आपके अश्व श्रान्त हो गये थे। आपके शर लक्ष्यच्युत हो रहे थे। अतः मैंने अपना सारथीका कर्तव्य पालन किया।'

'जैसे रथीका कर्तव्य संकटमें सारथिकी रक्षा करना है, वैसे ही सारथिका कर्तव्य भी रथीकी रक्षा करना है।' सारथिने समझाया—'रथपर रथीके साथ अकेला सारथि होता है। उसे रथको आगे, दाहिने, बायें या पीछे लौटानेका स्वयं निर्णय करना पड़ता है। रथको तीव्र अथवा मन्दगतिसे चलानेका निर्णय भी वही करता है। मैंने आपके हितके लिए रथ तब लौटाया जब आप अचेत हो चुके थे। अब आदेश दें, मैं आज्ञा पालन करूँगा।'

'तुम बुद्धिमान हो। जानते ही हो कि पीड़ित व्यक्ति क्रोधमें कुछ कह जाता है। मेरी बातोंका बुरा मत मानना।' रावणने अपने करोंके कंकण उतारकर

सारथिको पुरस्कृत किया—'अब मुझे सचमुच थोड़े विश्रामकी आवश्यकता है। तुम रथ, अश्व, उपकरण ठीक कर लो। परिवर्तित कर लो। शीघ्र हम शत्रुके सम्मुख चलेंगे।'

●●●

अशोकवाटिकामें

'अभाग्य मेरा कभी पीछा नहीं छोड़ेगा सखि ! मैं जहाँ जाती हूँ, दुर्दैव वहीं विपत्ति और विनाश बुला लेता है !' श्रीवैदेही अत्यन्त दुःखित सरमासे कह रही थीं—'मेरे कारण मेरे पिताकी पुरीपर शत्रुओंने घेरा डाला और सब नगरजनोंको वर्ष भर अत्यन्त विषम स्थितिमें रहना पड़ा। वे घेरा डालनेवाले राजा और राजकुमार मेरे कारण ही मारे गये अथवा आहत, अपमानित होकर भागे।'

'मैं अयोध्या आयी तो आर्यपुत्रको राज्याभिषेकके दिन वनमें आना पड़ा। साक्षात् श्री, शारदा और उमाके समान मेरी स्नेहमयी सासुएँ विधवा हो गयीं। सम्पूर्ण अयोध्याके नागरिक अब भी आर्यपुत्रके वियोग दावानलमें दग्ध हो रहे हैं। अपने उन संकोचशील आर्यपुत्रकी दूसरी मूर्ति बड़े देवरके व्रत-तपकी बात सुनी है मैंने। उनके सुखके दिन थे और अभीसे उन्हें मुनि-मन-अगम्य तपमें लगना पड़ा है।'

'मैं मर क्यों नहीं गयी। आर्यपुत्रके जिन चरणोंको मैं अत्यन्त संकोचसे संवाहन करती थी, उनके उस परम सुकुमार श्रीविग्रहको आज यहाँ शत्रुके शरोंसे जर्जर होना पड़ता है।' श्रीजानकीके मनकी व्याकुलता अनुमानसे परे है—'मेरे प्रतप्त स्वर्ण-गौर देवर लक्ष्मण, इतने सेवाशील, इतने संकोची, वे स्नेह पाने योग्य; किन्तु आज उन्हें बार-बार शत्रुके प्रहार इस अभागिनीके कारण मरणासन्न करते रहते हैं।'

'वह असीम पराक्रमी वानर आया था। उसके 'अम्बा' सम्बोधनने

मुझे पुत्रवती बना दिया; किन्तु इस दग्ध-कपालने उसे क्या दिया ? इसके कारण उसे बाँधा गया, राक्षसोंने अपमानित किया और अग्निकी लपटोंमें वह दौड़ता-कूदता फिरा। आज वह और उसके ही साथी असंख्य वानर बेचारे अपना घर-द्वार, पुत्र-परिवार त्यागकर समुद्रके पार इस राक्षसपुरीमें पड़े हैं। राक्षसोंके द्वारा मारे जा रहे हैं।'

'देवि ! सृष्टिमें सदा दुर्लभ रत्नके लिए संघर्ष होता आया है। यह संघर्ष तो अन्यायको, अधर्मको मिटाकर धर्मकी स्थापनाके लिए आपके आराध्य कर रहे हैं।' सरमा बार-बार हाथ जोड़ती है, समझाती है—'आप जैसा महारत्न सृष्टिने दूसरा नहीं पाया। आपका यह तप विश्वको परम वरदान है। इससे सुरोंका, सत्पुरुषोंका संकट सदाके लिए समाप्त होने जा रहा है। संसारकी शान्ति सुरक्षित होने जा रही है। श्रीरामका यह अद्भुत शौर्य स्मरण करके संसारके प्राणी सदा पवित्र होंगे। आप उनकी यशोध्वजा हो। आपके कारण उनका सुयश समुज्वल हुआ है।'

'मैं रत्न हूँ सखि ? तू कहती है तो रत्न ही हूँ, अन्यथा ऐसी पाषाणी कैसी होती। इतना दुःख कैसे सह पाती। लेकिन इतना अमांगल्य अशुभ रत्न विश्वमें कभी नहीं हुआ होगा। जहाँ जाती हूँ, वहीं विपत्तिके मेघ घिर आते हैं। मैं पञ्चवटी पहुँची तो जनस्थान उजाड़ हो गया। यहाँ लंका आकर मैंने सुना कि खरदूषणका कुल ही समाप्त हो गया।'

'आप जैसी दयामयी ही शत्रुकी विपत्तिमें भी दुःखी हो सकती हैं।' सरमाने झुककर चरणरज ले ली—'अन्यथा यह तो ऐसी घटना है कि सुर अब तक स्मरण करके आनन्द-विभोर होते हैं। ऋषि, मुनि, तापस, सत्पुरुष सबके लिए जनस्थान अगम्य हो गया था। दारुण-राक्षस तपस्वी, शान्त, प्राणिमात्रके सुहृद सत्पुरुषोंको अकारण उत्पीड़ित करके आनन्द मनाते थे। उन्हें आहार बना लेते थे। वे हँसते थे यह कहकर—'एक कंकाल प्राय मुनि मिल गया था आज। उससे उदरपूर्ति तो क्या होती; किन्तु उसका सूखा मांस बहुत स्वादिष्ट लगा। स्वाद-परिवर्तन हो गया !'

सरमा कैसे समझे कि जो जगज्जननी जगदम्बा हैं, उनकी करुणा अपने अधमतम कुपुत्रके लिए भी आकुल होती है। वह कहती गयी—'सर्प, वृश्चिक,

दंश-मशक, व्याघ्र-भेड़ियोंको स्वातन्त्र्य प्राप्त हो जाय तो सृष्टिमें कोई प्राणी सुरक्षित रहेगा ? इनका शमन, इनका संहार तो आवश्यक है, यह तो सत्कार्य है । निर्बल, निरीह, निर्दोष प्राणियोंको समर्थ ही सुरक्षा प्रदान नहीं करेंगे तो कौन करेगा ? आपके परम समर्थ आराध्यने सृष्टिके संतप्त प्राणियोंको दारुण राक्षसोंसे अभय देनेके लिए धनुष उठाया है । उनके असह्य, अकल्पनीय पराक्रमसे यह सुर-साधु-सुरक्षाका कार्य पूर्ण हो रहा है । अवशिष्ट भी पूर्ण होने जा रहा है, यह तो प्रसन्नताकी बात है ।'

'प्रसन्नता, सुख सीताके प्रारब्धमें लिखना विधाता भूल गया । यह तो जहाँ जाती है, दारुण दावानल जल उठता है । यह स्वर्णपुरी इसके कारण दग्ध हुई । वह राक्षसोंका, राक्षसियोंका क्रन्दन, इस्ततः भागते फिरना देखने योग्य था ?' जिसमें अनन्त दया है, उसके दुःखको कैसे कम किया जा सकता है ? संसारके अज्ञ जीव अपने पापोंसे, अपराधोंसे अपने लिए पीड़ाके निमित्त एकत्र करते रहते हैं और उन वात्सल्यमयीकी वेदना बढ़ती है ।

श्रीजनक-नन्दिनीको जबसे दशग्रीवने पञ्चवटीसे उठाया, उनकी वेदना विरामका नाम नहीं लेती थी । वे निद्रा तो लेती ही नहीं थीं । भूमिपर बिना किसी आस्तरणके यदा-कदा लेट जाती थीं । आहारका सर्वथा त्याग कर दिया था । अहर्निशिके रुदनने उनके कपोलोंपर अपनी स्थिर रेखाएँ बना ली थीं । वही वस्त्र जो उन्हें देवी अनुसूयाने दिया था । सिरके केश उलझकर एक वेणी-जटा बन गये थे । पल्लव-मृदुल अधर सदा हिलते रहते थे । प्रायः सिर झुकाये अपने पदनखोंको देखती राम-नामकी रट लगी थी उन्हें ।

दशग्रीवका अशोकोद्यान नन्दनकाननसे कहीं सुन्दर, कहीं सुरम्य और अत्यन्त सुशोभित था; किन्तु श्रीमैथिलीने केवल उस दिन दृष्टि उठाकर उस उद्यानको देखा, जिस दिन हनुमान उसे ध्वस्त करते उसमें उछलते उत्पात कर रहे थे ।

हनुमानके आनेसे पूर्व राक्षसियाँ रात-दिन डराया-धमकाया करती थीं । रावण तो अब भी अनेक प्रकारसे भयभीत करता है । उन दिनों केवल एक चिन्ता—'आर्य पुत्र कैसे होंगे ? क्या करते होंगे ? कैसे होंगे कुमार लक्ष्मण ? मेरी स्मृति आती होगी स्वामीको ? वे अपनी इस चरणाश्रिताके उद्धारके लिए

प्रयत्न करेंगे ?'

'वे तो अपने अपराधी भृत्यको भी नहीं भूलते ।' अखण्ड अविचल विश्वास । इस विश्वासने ही उन दारुण दिनोंमें उनका जीवन बचाया—'वे आवेंगे— अवश्य आवेंगे । इस अपनी दासीका उद्धार किये बिना वे रह नहीं सकते । क्या होता है दुष्ट दशग्रीव, उन अमित-विक्रमके सम्मुख ।'

पवनपुत्र अन्वेषण करते अकस्मात् आ पहुँचे थे । उनके आगमनने पूरी परिस्थिति परिवर्तित कर दी । पहिले केवल त्रिजटा थी जो तनिक सहानुभूति रखती थी । वह भी उस सहानुभूतिको प्रकट करनेमें भय खाती थी । विभीषणकी पत्नी सरमा और उनकी पुत्री कदाचित् ही लुक-छिपकर आ पाती थीं । त्रिजटाने उस दिन राक्षसियोंको अपना स्वप्न सुनाकर डरा दिया । हनुमानने लंका जलाकर स्वप्नकी सत्यताको प्रमाणिक बना दिया । तबसे रावणका भयंकर भय होने पर भी राक्षसियाँ सब सानुकूल हो गयीं । वे कभी डराती भी हैं तो पीछे पैरोंमें पड़कर प्रार्थना करती हैं—'हमें क्षमा करना ! हम यह अभिनय करनेको विवशा हैं ।'

अब इनका भयभीत करनेका अभिनय देखकर हँसी आती है; किन्तु जो दूसरोंके दुःखसे दुःखी होनेवाली अनन्त दयामयी हैं, उनकी वेदनाका अन्त कहाँ है । प्रतीक्षा सफल हुई, विश्वास बलवान सिद्ध हुआ । श्रीराम असंख्य वानर-सेना लेकर समुद्रपर सेतु बनाकर आ गये उद्धार करने, किन्तु अब अपनी चिन्ता मिटी नहीं, मिटती दीखती है, वियोगका महावाडव बुझता दीखता है तो दूसरोंके दुःखकी ज्वाला दग्ध करने लगी है ।

'स्वामीके सुकुमार शरीरपर असंख्य बाण प्रतिदिन लगते हैं । उन्हें नागपाशका विषम बन्धन प्राप्त हुआ । लक्ष्मण जो लालित होने योग्य हैं, प्रबलतम प्रहार प्रतिपक्षका झेल रहे हैं । कई-कई बार इतने आहत हुए कि उनके बैठनेकी आशा ही नहीं रह गयी थी ।' अब सरमा अदृश्य रहकर युद्धकी स्थिति देख आती है । वह जो सुनाती है, उससे जो प्राणोंको पीड़ा होती है— 'अभागिनी सीता मर जाती या युग-युग तक यहीं दशाननकी बन्दिनी बनी रहती— इसके लिए आर्यपुत्रको, लक्ष्मणको कितना दुःख उठाना पड़ रहा है !'

यहीं तक अन्त होता, तब भी कुछ बात थी । सरमा प्रायः सायंकाल

आकर सुनाती है कि युद्धमें कौन-कौनसे प्रधान शूर सेनापति खेत रहे । वह बड़े उत्साहसे कहती है—'दशग्रीवका दर्प चूर्ण हो गया । उसकी शक्ति क्षीण हो रही है । उसके दुर्दान्त दिक्‌चक्रजयी दनुज मारे जा रहे हैं ।'

'हाय सखि ! सीताने आकर इस स्वर्णपुरीको दग्ध पाषाणी बना दिया और अब स्वर्गका तिरस्कार करने वाली इस राक्षस-राजधानीमें नरककी ज्वाला जलाने लगी है ।' उत्साहके स्‌थानपर उन कृपामयीकी वेदना तीव्रतम हो जाती है—'बेचारे राक्षसोंकी विधवाएँ क्रन्दन करती होंगी । उनकी वेणियाँ खुल गयीं । उनके कर-कंकण-शून्य हो गये । उनके शून्य हो गये । उनके शिशु अनाथ हो गये । यहा दारुणा दग्धकपाला यहाँ चिताकी ज्वाला बढ़ाती जा रही है । जहाँ काल भी बन्दी था, जहाँके लोगोंने दुःख जाना ही नहीं था, वहाँ जानकीने घर-घरमें क्रन्दन ध्वनि गुंजित कर दी है ।'

उस दिन जब प्रमिलाके सती होनेका सम्वाद देते हुए स्वयं सरमा फूटकर रो पड़ी—'लंकामें वह सौकुमार्य, सौन्दर्य, पवित्रताकी पावन प्रतिमा थी । शचीका सौन्दर्य मद उसे देखकर दूर हो गया था । वह परम पतिव्रता—मुझे वह अपनी सगी पुत्रवधू लगती थी । स्वामीको राक्षसेन्द्रने निर्वासित कर दिया, इन्द्रजितने भी उन्हें अपमानित करनेकी धृष्टता की; किन्तु शील-संकोचकी मूर्ति सुलोचनाने मेरे सम्मानमें कभी प्रमाद नहीं किया । वह उठकर मेरे पदोंपर मस्तक ही रखती थी । स्वामीकी चर्चा आनेपर भरे दृग कह देती—'पूज्योंके गुणावगुण सोचनेका हमें अधिकार ही नहीं है ।'

'लंकाकी उस सुमन-सुकुमार अधिदेवताने अग्निमें अपनी आहुति दे दी ।' सरमाके अश्रु उस दिन रुकते ही नहीं थे—'चली गयी यहाँकी वह साक्षात् श्री । अब इस पुरीको श्मशान बननेमें अधिक विलम्ब नहीं है ।'

श्रीजनकनन्दिनी मूर्छित हो गयीं थीं सुनकर । त्रिजटाने सरमाको झिड़का था—'तुम्हें आज यहाँ नहीं आना था । जानती तो हो कि जानकी शत्रुका संताप भी सहन नही कर पातीं । इनके नवनीत-कोमल हृदयको ताप न हो, इसलिए मैं किसी राक्षसके मरणकी चर्चा, इनके स्वामीका शौर्य सुनानेके लिए भी इनके सम्मुख नहीं करती । अब आज तुम यहाँसे जाओ ।'

'सरमा चली गयी ?' श्रीजानकीने चेतनामें आते ही पूछा—'त्रिजटा !

सब लोग तुम सबको राक्षसियाँ कहते हैं; किन्तु तुम लोग इस प्रत्यक्ष पिशाचिनीको धिक्कारती क्यों नहीं हो जो तुम्हारे स्वजनों, सम्बन्धियोंको प्रतिदिन चबाये जा रही है । इसे आजके दारुण दिनमें मारने आकर भी दशग्रीव लौट गया । इतनी दया उसमें और उसके मन्त्री महापार्श्वमें भी है; किन्तु सीतामें दया नहीं है ।'

त्रिजटाको उस दिन बहुत कठिनाई हुई । श्रीमैथिली बार-बार मूर्छिता होती थीं—'हाय प्रमिला ! वह भोली बालिका सती हो गयी ! उसे इस भाग्यकी मारी सीताके कारण ज्वालाओंका आलिंगन करना पड़ा ।'

'महापार्श्व मारा गया, यह समाचार सीताको मत देना ।' आज सरमाके आते ही त्रिजटाने उन्हें सावधान किया । 'तुम अब लंकाकी साम्राज्ञी होनेवाली हो । इतना सचेत तुम्हें रहना चाहिये कि इन अपनी आराध्याको उत्साहातिरेकमें व्याकुल नहीं हो सकतीं । संसारकी सम्पूर्ण ममता इनमें मूर्तिमती हो गयी है ।'

लेकिन सरमा और त्रिजटा आज जो पूरी लंकामें करुण क्रन्दन व्याप्त था, उसे कैसे दबा सकती थीं । आज सब राक्षसियाँ दशग्रीवको ही दुःखिता होकर दुर्वचन कह रही थीं, श्रीजानकी तक उनके अपशब्द न पहुँचें—कैसे सम्भव था ? कोई सम्मुख आकर कठोर वचन न कहे, इस विषयमें त्रिजटा, सरमा और सुरक्षामें लगी दूसरी राक्षसियोंने भी पूरी सावधानी रखी; किन्तु दूरसे चिल्लाने, पुकारनेकी ध्वनि आ रही थी !

'सीता पिशाचिनी है । वह सब राक्षसोंका रक्तपान करनेपर तुली है ।'

'सीता चामुण्डा है, वह यहाँ सबको चबाती चली जा रही है । वह इन्द्रजितको, कुम्भकर्णको भी चबा गयी । दशग्रीवको भी चबा जायेगी । उसकी उदर-ज्वालासे यहाँ कोई नहीं बचेगा ।'

'सीता करालिका' 'सीता साक्षात् मृत्यु' 'सीता, सीता, सीता ।' राक्षसियाँ चिल्ला-चिल्लाकर कोस रही थीं । जिनके जो मुखमें आता था कहती थीं । आज जब रावणका ही भय उन्हें नहीं था, त्रिजटा या सरमा उनको रोकनेमें कैसे समर्थ होतीं ?

'वे सब सच कहती हैं ।' श्रीजनकनन्दिनीके नेत्र लाल-लाल हो रहे

थे । आज उनके अश्रु भी सूख गये थे । वे जैसे उन्मादिनी हो उठी थीं— 'लेकिन वे इस पिशाचिनी, करालिका, विपद्रूपाको मार क्यों नहीं देती हैं ? यह वज्र-हृदया ही अब कौन-सा सुख भोगनेको जी रही है ?'

सरमा और त्रिजटा अत्यन्त व्याकुल थीं । उनका हृदय छटपटा रहा था । किसी क्षण कोई दुर्घटना न हो जाय— अब एक क्षणको भी वैदेहीको अकेली नहीं छोड़ा जा सकता था ।

●●●

रावण-वध

'आचार्य ! आप जैसे सद्गुरुके रहते मेरी यह दुर्दशा ?' अपने ऊपर ही आ पड़ती है, तब व्यकिके सैद्धान्तिक निश्चय अस्त-व्यस्त हो जाते हैं । दशग्रीव कभी इतना आहत, अपमानित नहीं हुआ था । उसका हृदय व्याकुल हो गया था । उसका निश्चय विचलित हो गया था । उसने सुतल जाकर शुक्राचार्यके चरण पकड़े ।

'वत्स ! मेरी सञ्जीवनी विद्या केवल मेरे यजमानों— दैत्यकुल तक सीमित रहेगी, यह मैंने सृष्टिकर्ताको वचन दे दिया है ।' अत्यन्त नीतिज्ञ उन असुर-गुरुको द्रवित कर लेना सरल नहीं है । वे तटस्थ भावसे कह गये— 'दानव-कुलको भी इसका लाभ कभी नहीं मिला । मेरे यजमानोंमें माली और सुमाली लंका नहीं गये । वृद्ध माल्यवान युद्धमें नहीं उतरेंगे । सुमालीके पुत्र प्रहस्त तथा उसके दैत्य साथियोंको मैंने पुनर्जीवित कर दिया है । उन्हें आदेश दे दिया है कि अब वे पृथ्वीपर चलने वाले इस युद्धसे दूर रहें ।'

'मैं किसीको पुनर्जीवित करनेकी प्रार्थना करने नहीं आया ।' रावण जानता था कि दैत्य-गुरुपर ऐसी प्रार्थनाका प्रभाव नहीं पड़ना है । यहाँ आकर वह निराश हो गया कि अब उसे अपने मातृकुलसे भी कोई सहायता मिलनेकी आशा नहीं रही । क्योंकि दैत्यकुल अपने आचार्यका अत्यन्त आज्ञानुवर्ती है । अतः

दीन वाणीमें दशग्रीवने कहा—'मैं अपनी रक्षाके लिए प्रार्थना करने आया था।'

'तुम आ ही गये हो तो मैं तुम्हें निराश नहीं करूँगा।' शुक्राचार्यने मन्त्रोपदेश करके कहा—'एकान्तमें इसके द्वारा हवन करो। यदि दस सहस्राहुति निर्विघ्न दे सके तो यज्ञकुण्डमें-से अश्वोंसे जुता रथ, दिव्य धनुष तथा अक्षय त्रोण प्राप्त होगा। तुम सबसे अजेय हो जाओगे।'

आचार्यको प्रणाम करके रावण लौटा। उसने नगर-द्वार बन्द करा दिये। राजसदनका द्वार बन्द करा दिया। अपने अन्तःपुरके उस भूगर्भमें जिसमें लंका-दहनके समय वह पूरा परिवार सहित सुरक्षित रहा था, प्रवेश करके आवश्यक सामग्री लेकर मौन होकर बैठ गया। उसका द्वार भी उसने भीतरसे बन्द कर लिया।

श्रीराम भी रावणके साथ युद्ध करते हुए श्रान्त हो गये थे। वे प्रातःकाल चिन्तित हो रहे थे—'अब दशग्रीव आने ही वाला है!'

चिन्ता सुरोंको भी कम नहीं थी। अतः सुरगुरु महर्षि अगस्त्यको लेकर वहाँ पधारे। आकाशसे अगस्त्यजी श्रीरामके समीप उतरे। श्रीरामने भाईके साथ उन्हें प्रणाम किया तो वे बोले—'महाबाहु रामः मुझसे सनातन गुह्यमन्त्र आदित्य हृदयको[१] ग्रहण करो। यह शत्रुनाशक, परम कल्याणकारी है। यह चिन्ता-शोकहारी, परमपावन देवासुर-नमस्कृत भगवान भास्करका स्तवन सर्व-मंगल्य, सर्वानर्थ निवर्तक, आयुदाता, गुणवर्धक है। क्योंकि भगवान सूर्य निशानिवर्तक हैं, यह निशाचरोंके प्रतिकूल है। इसका तीन बार जप इसी समय करके तुम रावणका वध कर सकोगे।

महर्षि अगस्त्य मन्त्रोपदेश करके चले गये। श्रीरामने आचमन करके प्रभातमें उदय हुए भगवान भास्करकी ओर देखते हुए एकाग्रमनसे तीन बार उस मन्त्रका जप किया, अन्तमें पुनः आचमन करके धनुष उठाया।

'त्वरस्व! त्वरस्व! सूर्यमण्डलसे आती रश्मियोंमें स्पष्ट सुनायी पड़ा—'शीघ्र रावणको मार दो।'

'विभीषण! आज अब तक दुर्गद्वार बन्द है। दशग्रीव या उसका कोई

---

१. वाल्मीकीय रामायणके लंकाकाण्डमें यह स्तोत्र मन्त्र है।

योद्धा युद्धभूमिमें नहीं आया ?' श्रीरामने देखा कि वानर द्वारपर प्रहार करके उसे तोड़ देनेका प्रयत्न कर रहे हैं ।

'दशग्रीव अपने अन्तःपुरमें कोई यज्ञ करने लगा है ।' इसी समय विभीषणके एक मन्त्रीने आकर उनके कानमें कुछ कहा । उसे सुनकर विभीषणने श्रीरामसे निवेदन किया—'लंकामें राजभवनके ऊपर धूम्रकी रेखायें दीख रही हैं । वह तन्त्रोंका अद्वितीय ज्ञाता है । उसका यज्ञ पूरा हो गया तो उसे जीतना अशक्यप्राय हो जायेगा । अतः हनुमान, अंगदादिको उसका यज्ञ, ध्वस्त करनेकी आज्ञा दें ।'

इस बार विभीषण साथ नहीं गये । अंगदके साथ हनुमान, नल-नील, द्विविद, मैन्द, गय, गवाक्षादि प्रधान यूथप श्रीरामके आदेशसे परिखापर कूदकर चढ़ गये और वहाँसे भवनोंपर कूदते सीधे राजसदन पहुँचे । अन्तःपुरमें उन्हें उतरते विलम्ब नहीं हुआ । राक्षसोंको थोड़ेसे संघर्षमें वानरोंने समाप्त कर दिया । विभीषणकी पत्नी सरमाने एक सेविकाको अपनी ओर कर लिया था । उसने भूगर्भगृहका द्वार संकेतसे सूचित कर दिया । अंगदने ठोकर मारकर वह द्वार तोड़ दिया; किन्तु उस लम्बे स्थानमें सब एक साथ युद्ध नहीं कर सकते थे । रावण लाल वस्त्र पहिने अग्निमें आहुति डाल रहा था । उसने द्वारकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा ।

वानरोंने भवनके कंगूरे गिरा दिये । स्तम्भ उखाड़ फेंके । यज्ञकी सब सामग्री उठाकर एक साथ यज्ञ-कुण्डमें डाल दी । दशग्रीवके हाथसे स्रुवा छीनकर तोड़ डाला । उसके केश खींचकर, उसे नोचकर भागे; किन्तु वह अविचल बैठा रहा । उसका जप अविराम चल रहा था । उसे आशा थी कि जपसे भी काम चल जायेगा ।

अब भी दशग्रीव उठता नहीं है, यह देखकर अंगदने क्रोधमें आकर उसकी एक रानीकी चोटी पकड़ी और उसे घसीटने लगे । दूसरे वानरोंने इसका अनुकरण किया । मन्दोदरी भी वानरोंके इस आक्रमणसे नहीं बची । स्त्रियाँ चिल्लाने लगीं—'हाय ! आज हमारा पुत्र होता तो हमारी रक्षा करता ।'

वानरोंने मुख फाड़कर नाक-कान काट लेनेका ढंग दिखाया । अब रानियाँ चीत्कार करने लगीं—'हमारा अपमान हो रहा है । हम कुरूपा की

जा रही हैं । तुम्हारे ऐसे पौरुष और यज्ञको धिक्कार !'

रावणको लगा, वानर सचमुच उसकी रानियोंके नाक-कान काट लेंगे । रामने यह परम्परा ही प्रचलित कर दी है । तलवार लेकर उठा और गर्जना की—'दुष्टो ! स्त्रियोंको छोड़ दो !'

हो गया काम । वानर तो चाहते थे कि रावण आसन त्याग दे और मौन तोड़ दे । वे अंगदका संकेत पाकर कूदे । अब उनको सीधे श्रीरामके समीप पहुँचनेसे कौन रोक लेता । दशग्रीव रानियोंको समझाने लगा—'जीवनमें मान-अपमान, सुख-दुःख आता ही है । अतः धैर्य धारण करो । आज मैं रामको मार दूँगा । यदि मैं आज मारा जाऊँ तो तुम सीताको मारकर मेरे साथ अग्नि-प्रवेश करना ।'

'श्रीरामको जीतना अशक्य है । वे सनातन पुरुष हैं । प्रकृति-पुरुषके वही सञ्चालक हैं । तुमने अन्यायपूर्वक सीता-हरण किया है ।' मन्दोदरीने कहा—'विभीषण गये, तबसे यह पुरी दीना हो गयी । अब भी सीता श्रीरामको लौटा दो ।'

'मयतनया ! तूने यह बात अनेक बार कही है । अब मेरी बात सुन ! तू जो करती है, मैं उसे समझता नहीं हूँ, ऐसी बात नहीं है ।' आज दशग्रीव खुल पड़ा—'किन्तु मेरे सब पुत्र, भाई, सुहृद सम्बन्धी मारे गये, मैं जीवित अब किसके लिए रहूँ ? तुझे अब भी जीवनका मोह है ? मैंने तुम सबका त्याग किया । अब अकेला दशग्रीव युद्धमें जा रहा है । आज इसे इस महामेघमें आत्माहुति देकर यह यज्ञ पूर्ण कर देना है ।'

काले अश्वोंसे जुते, स्वर्णमाल्य-सज्जित मेघाकार रथपर दशग्रीव बैठा । नगरद्वारसे निकला और उसने प्रचण्ड बाण-वर्षा प्रारम्भ कर दी । इसी समय इन्द्रका रथ लेकर उनका सारथि मातलि आया । उसने श्रीरामसे प्रार्थना की—'सुरपतिने आपकी सेवामें अपना यह दिव्य रथ भेजा है । आप इसपर आरूढ़ हों ।'

श्रीरामने रथकी प्रदक्षिणा की । रथारूढ़ होते ही बोले—'मातलि सावधान ! शत्रुका रथ हमको दक्षिण करके वाम भागमें जा रहा है । मैं आज इसे मार देना चाहता हूँ । अपने नेत्र स्थिर रखना, अव्यग्र रहना । रथ-रश्मि

सँभालकर आगे बढ़ो । तुम सुरपतिके सारथि हो । तुमने अनेक बार असुरोंका युद्ध देखा है । तुम्हें सचेत करना अनावश्यक है । मैं अब युद्धमें एकाग्र हो रहा हूँ ।'

मातालिने निःशब्द सिर झुकाकर आदेश स्वीकार किया । उसी क्षण उस सुरेन्द्र-सारथिका कौशल प्रकट हुआ । उसने रथको ऐसा वेग दिया कि रथ-चक्रोंसे उड़ती धूलिसे रावणके लिए कुछ भी देखना अशक्य हो गया ।

इतनी देरमें रावणके साथ आये असिलोमा, वह्निलोमा आदि जो थोड़ेसे राक्षस सैनिक थे, उन्हें अंगदादिने मार दिया । अब श्रीराम और रावणका द्वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ । शेष सब तटस्थ दर्शक रह गये ।

रावणके रथपर मेघोंसे रक्त-वर्षा हुई, वायु उसीकी ओर धूलि लाने लगा । पता नहीं कहाँसे असंख्य गीध उड़ते आये और वे बार-बार उसके रथपर, अश्वोंकी पीठपर बैठने लगे । दिशाएँ सन्ध्या-कालके समान लाल हो उठीं । भूकम्प हुआ । दिनमें ही उल्कापात हुआ । भूमिसे विचित्र शब्द होने लगा । श्रृगाली फेत्कार करती दौड़ती रथके सम्मुख आ गयी । बिना मेघके लंकामें वज्रपात हुआ और उससे राजसदनका मुख्यद्वार ध्वस्त हो गया । पूरे नगरपर धूलि-वर्षा होने लगी । सारिकाएँ परस्पर लड़ती दशग्रीवके रथपर गिरने लगीं । रथके अश्व बार-बार ठोकर खाकर घुटने टेकने लगे ।

वायु श्रीरामकी ओरसे चलकर उनके सामनेका आकाश निर्मल कर रहे थे । गगन निर्मल था । अचानक एक हंसिनी उड़ती आयी और उनके रथकी ध्वजापर बैठ गयी । दक्षिणांग स्फुरित होने लगे ।

‘आज विजय प्राप्त करके ही विराम करेंगे !' श्रीरामने गर्जना की ।

‘आज जीतकर या मरकर ही इस युद्धको विराम मिलेगा !' दशग्रीवने भी सिंहनाद किया ।

अब दोनों ओरसे दिव्यास्त्रोंकी वर्षा प्रारम्भ हुई । दोनों ही दिव्यास्त्रोंके लोकोत्तर ज्ञाता । सुर भी चकित रह गये । युद्ध-भूमिमें पल-पल प्रचण्ड तेज, प्रलय-मेघ गर्जन, ब्रह्माण्ड-भेदी शब्द, अग्नि, जल, वायु आदिका अकल्पनीय वेग प्रकट होने लगा । दोनों दोनोंके दिव्यास्त्रोंका प्रत्यास्त्रोंसे उत्तर देने लगे ।

दशग्रीवने श्रीरामके रथकी ध्वजापर बाण-वर्षा प्रारम्भ की । क्रमसे

कम ध्वजा काट सके तो दूरसे युद्ध देखते वानरोंको रामके संकटापन्न होनेका भ्रम तो हो; किन्तु सुरेन्द्रके दिव्य रथकी ध्वजाका स्पर्श करके उसके बाण गिर जाते थे ।

'क्या हुआ ? रावण मर गया ?' लंकामें व्याकुलता फैली; क्योंकि श्रीरामने शत्रुकी रथ-ध्वजा काट दी । लंकामें केवल यह आश्वासन रह गया— 'वानर हर्षध्वनि नहीं कर रहे हैं ।'

रावणने श्रीरामके रथके अश्वोंपर प्रहार किया, पर व्यर्थ । वे अमरेन्द्रके अमर अश्व मरनेवाले तो थे नहीं, उनके शरीरपर कोई व्रण भी नहीं बनता था ।

अब रावणने गदा, मुशल, परिघ, चक्र गिरिश्रृंगोंको फेंकना प्रारम्भ किया; क्योंकि रामने उसके दसों धनुष काट दिये थे । राम उसके फेंके सब अस्त्र-शस्त्र काटते गये । उन शस्त्र-खण्डोंसे अन्तरिक्ष भर गया ।

रावण अविराम शस्त्र फेंक रहा था । राम हँसते हुए काटते जा रहे थे । बीच-बीचमें रावणको उत्साहित कर देते थे—'साधु ! साधु ! अच्छा श्रम कर रहे हो । और वेगसे ! और बल लगाकर !'

दोनों रथोंके सारथियोंका कौशल अवर्णनीय था । वे अपने रथीको अवसर देने अथवा बचानेके लिए रथोंको आगे-पीछे, दाहिने-बायें, मण्डलाकार दौड़ा रहे थे पूरे वेगसे ।

श्रीरामकी बाण-वर्षाने रावणको एक बार विमुख होनेको बाध्य कर दिया । उसके चारों अश्व आहत होकर पीछे भागे । सारथि कठिनाईसे उन्हें रोककर आगे ला सका । इस अविराम दिव्यास्त्र-वृष्टिसे समुद्र क्षुब्ध हो उठा । देवता, ऋषि व्याकुल पुकारने लगे—'स्वस्ति प्रजाभ्यः ! गौ-ब्राह्मणोंका मंगल हो ! सब लोगोंका मंगल हो । राम विजयी हों ।

अब श्रीरामने एक साथ तीस बाण मारकर रावणके दसों मस्तक और बीस बाहु काट दिये । कोई अन्तर नहीं पड़ा । युद्ध वैसे ही अविराम चलता रहा । दशग्रीवकी भुजाएँ और सिर तत्काल नवीन उग आये । इससे रावणका उत्साह बढ़ गया । वह भी मरणधर्मा है, यह बात—यह भय उसके मनसे भाग गया । वह द्विगुण वेगसे अस्त्र-वर्षा करने लगा ।

श्रीरामको भी क्रोध आ गया। वे बराबर शत्रुके सिर और भुजाएँ काटते चले गये। इसका एक बहुत भयानक कुपरिणाम हुआ। रावणकी कटी भुजाएँ आकाशमें चारों ओर उड़ने लगीं। वे श्रीरामके बहुतसे बाणोंको व्यर्थ करनेके पश्चात् पृथ्वीपर गिरती थीं। पृथ्वी उन भुजाओंसे पट गयी। दशग्रीवके छिन्न सिर ऊपर-नीचे, चारों ओर दौड़ने लगे। उनसे हुंकार गूँजने लगी—'पकड़ो! रामको मार दो! कहाँ है राम!

देवता, ऋषिगण इन उड़ते मस्तकोंके कारण अधिक ऊपर भागनेको बाध्य हुए। वानरोंने कूद-कूदकर कौतुकपूर्वक बहुतसे सिर पकड़े और उन्हें समुद्रमें फेंकने लगे। एक आतंक व्याप्त हो गया। श्रीरामने इस आतंकको देखा। उन्होंने बाण मारकर शत्रुके उड़ते सब मस्तकोंको विद्ध करके भूमिपर गिरा दिया। लेकिन इससे समस्या सुलझी नहीं। दुर्जय दशग्रीव अभी अविराम अस्त्र-वर्षा कर रहा था। उसे अपनी भुजाओं और मस्तकके बार-बार कटनेसे जैसे कोई क्लेश हो ही नहीं रहा था।

'इस युद्धका अन्त कहाँ है?' इस भावसे श्रीरामने सारथिकी ओर देखा।

'आप उपाय जानते हैं। युद्ध-क्रीड़ा करना चाहते हैं तो आप लीलामयको कौन रोकेगा।' मातलिने क्षणार्धके लिए गर्दन घुमाकर पीछे देखा—'ब्रह्माजीने महेन्द्रके द्वारा जो ब्रह्मास्त्रयुक्त बाण महर्षि अगस्त्यके समीप भेजा था, वह आपके त्रोणमें अब भी सुरक्षित है। उसको प्रयोग क्यों नहीं करते आप?'

श्रीरामने सस्मित अपना कर दूसरे त्रोणकी ओर बढ़ाया। दक्षिण स्कन्धपर बँधे त्रोणसे उस बाणके बाहर आते ही दिशाएँ उसके तेजसे व्याप्त हो गयीं। श्रीरामने उस शरके मस्तकसे लगाया और अभिमन्त्रित किया।

जिस बाणसे बालि मारा गया था, जिस बाणने खर-दूषणको कालके मुखमें फेंक दिया था, दुर्दम दशग्रीवने उनकी भी उपेक्षा की थी। वे बाण भी केवल उसका मस्तक काट सके थे और मस्तकोंका, भुजाओंका कटना तो रावणके लिए केशोंके कटनेसे अधिक महत्त्वका नहीं रह गया था। उसे कोई पीड़ा नहीं होती थी। कटे केश बढ़ जाते हैं; किन्तु उनके बढ़नेमें समय लगता है, पर दशग्रीवकी भुजाएँ और सिर तो उसी क्षण उग आते थे। अतः वह उनके

कटनेकी ओर क्यों ध्यान दें । लेकिन इस दिव्य बाणको देखकर उसका हृदय भी काँप गया ।

श्रीरामने वह बाण प्रत्यञ्चापर चढ़ाया । पृथ्वीमें भूकम्प आ गया । समुद्रमें उत्ताल तरंगें उठने लगीं । असमय ज्वार आ गया । अनेक-अनेक जलीय प्रचण्ड वात्याचक्र आकाश तक उठ गये । गगनसे उल्कापात होने लगा । जैसे सूर्य-मण्डलका तेज मन्द पड़ गया हो । दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं ।

श्रीरामने वह शर-सन्धान करके पीछे मुड़कर विभीषणकी ओर देखा। साभिप्राय थी वह दृष्टि । मानो श्रीराम पूछ रहे हों—'यह बाण भी रावणके मस्तक काट देगा तो वे अब उग तो नहीं आवेंगे ? यह कार्य तो मेरे दूसरे साधारण शर भी सम्पन्न कर ही रहे हैं ।'

विभीषण दौड़कर समीप आ गये । दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर बोले—'मस्तकोंको लक्ष्य मत बनाइये । सिर काटनेसे यह मरनेवाला नहीं है । इसके नाभि-ह्रदमें अमृतकणिका है, यह उसीकी शक्तिसे जीवित है ।'

इतनी सूचना पर्याप्त थी । संकेत पाकर विभीषण पीछे चले गये । श्रीरामने कान तक प्रत्यञ्चा खींचकर वह अमोघ ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया । विदीर्ण हो गया दशग्रीवका वक्ष, फट गया दुर्जय दशाननका हृदय, भस्म हो गयी रावणके नाभि-ह्रदमें स्थित सुधाकणिका । ध्वस्त रथ, मृत सारथि, त्रिलोकीको युगों तक रुलानेवाला रावण भूमिपर गिर पड़ा ।

सम्पूर्ण लंकामें 'शरण ! शरण !' की पुकार गूँजने लगी । दोनों हाथ ऊपर उठाये, शस्त्रहीन, शिरस्त्राण-रहित द्वार-रक्षक, पुरीके पथ-रक्षक, अवशिष्ट वृद्ध आदि सब राक्षस नगर-द्वारोंसे 'शरण ! शरण !' पुकारते भय-विह्वल, कातर-लोचन पंक्तिबद्ध निकल पड़े ।

'विभीषण ! इनको अभय दो !' श्रीरामने अब घूमकर विभीषणको पुकारा और अपने धनुषकी ज्या उतार ली । रथसे उतरकर उन्होंने सुरेन्द्रके उस रथकी पुनः प्रदक्षिणकी । उसे मस्तक झुकाया । बोले—'मातलि ! तुम्हारे अत्यन्त निपुण सारथ्यने रामको विजयी बनाया । तुम्हारे और सुरेन्द्रके प्रति भी मेरा आभार । अब रथको स्वर्ग ले जाओ ।'

मातलि उस दिव्य रथको लेकर स्वर्ग जानेके लिए गगनमें उठे, तब

विभीषण घोषणा कर रहे थे—'सब राक्षस लंकामें लौट जायें। सब अपने कर्तव्यका पालन करें। दूसरी आज्ञा तक जो जहाँ नियुक्त थे, वहीं लगे रहें। कोई कर्तव्य-पालनमें प्रमाद न करे; किन्तु किसीको उत्पीड़ित या संत्रस्त न करे।'

'वानरेन्द्र! सब वानरोंको मना कर दो!' श्रीरामने तत्काल सुग्रीवको आदेश दिया—'गर्जना करनेका समय समाप्त हो गया। जयघोष करके हत शत्रुके स्वजनोंको दुःखी करना नृशंसता है। अतः सब शान्त रहें।'

यह आदेश वानर स्वीकार कर ले सकते थे, उन्होंने स्वीकार कर लिया। वे शान्त हो गये किन्तु सुरोंके अन्तःपुरमें जो उल्लास उमड़ पड़ा था, युगोंके उत्पीड़नके पश्चात् उन्हें जो परित्राण प्राप्त हुआ था, उससे उत्साहमें आये देवताओंको कैसे रोका जा सकता था? उन्हें तो मर्यादा पुरुषोत्तम आदेश नहीं दे सकते थे।

'अमित-विक्रम श्रीरामकी जय!'

'सुर-श्रुति-साधु संरक्षक श्रीरामकी जय!'

'दशमुख-दर्प-दलन-कर्ता श्रीरामकी जय!'

गगनसे आते जयनादसे दिशाएँ गूँज रही थीं। दुन्दुभि-नाद उठ रहा था आकाशसे और अनवरत कुसुम-वर्षा हो रही थी। अप्सरा, किन्नर, गन्धर्वोंने नृत्य, वाद्य, स्तवनका महामहोत्सव प्रारम्भ कर दिया था।

●●●

रावणोपदेश

'अभी दशग्रीवका देहान्त नहीं हुआ है।' श्रीरामने इतने उग्र युद्धके पश्चात् स्वेद शुष्क होनेकी भी प्रतीक्षा नहीं की। वे लक्ष्मणसे बोले—वे महाप्राण श्रीरामेश्वरकी स्थापनामें मेरे आचार्य हुए थे। उन्होंने मुझे विजयी होनेका आशीर्वाद दिया और अपनी आहुति देकर वह आशीर्वाद सत्य किया। उनकी

दक्षिणा देनी है रामको । लेकिन लक्ष्मण ! नीतिशास्त्रका यह सूर्य मेरे उपस्थित होते ही अस्त हो जायेगा । तुम जाकर उनसे उपदेश ग्रहण करो ।'

लक्ष्मण गये और लौट आये । उनके पुकारनेपर भी रावणने नेत्र नहीं खोले थे । अनुजको निराश लौटा देखकर श्रीरामने उपालम्भ दिया—'तुमने आचार्यके चरणोंके समीप उनको अभिवादन किया था ? सम्यक् सम्मान जो न देता हो, जो उपदेशके अनुकूल स्थितिका ध्यान न रखता हो, ऐसे दुर्विनीत एवं प्रमत्त जिज्ञासुका परित्याग कर देना चाहिये, यह शास्त्रकी मर्यादा है । इसे तो तुम्हें स्मरण रखना था ।'

'यह इक्ष्वाकुगोत्रीय दाशरथि लक्ष्मण निखिलशास्त्रनिष्णात आचार्य पौलस्त्यके पदोंमें प्रणाम करता है ।' इस बार लक्ष्मणने आहत, मूर्छितप्राय, भूमिमें विदीर्णवक्ष उत्तान पड़े दशग्रीवके पैरोंके समीप खड़े होकर उच्चस्वरसे कहकर मस्तक झुकाया । दशग्रीवने नेत्र खोल दिये—यह देखकर दोनों हाथ जोड़कर विनम्र स्वरमें बोले—'अग्रजने मुझे आपके समीप नीतिशास्त्रका उपदेश-ग्रहण करने भेजा है । वे स्वयं शीघ्र उपस्थित हो रहे हैं ।'

'लक्ष्मण ! मेरी अवस्था देखते ही हो । मेरा अंग-अंग, रोम-रोम रामके शरोंसे विद्ध है । मैं बोलनेमें अत्यन्त पीड़ाका अनुभव कर रहा हूँ । मेरी इन्द्रियाँ शिथिल होती जा रही हैं । प्राण अब प्रस्थानको उत्सुक हैं । केवल तुम्हारे इन्दीवरसुन्दर अग्रजकी एक झाँकीकी प्रतीक्षा है; किन्तु—वह महाप्राण अपनी समस्त शक्ति समेटकर इस अवस्थामें भी मस्तिष्कको, स्मृतिको सावधान रखता बोला—तुम नीति-शिक्षा ग्रहण करने आये हो । कोई विद्वान अपने समीप उपस्थित जिज्ञासुको निराश करे तो विद्या उसे शाप देती है । वह पिशाच बनता है । यद्यपि अत्यन्त असमय है, पर तुम्हारे लिए और समय भी तो नहीं है । मैं तुम्हें निराश नहीं करूँगा ।'

'तुम महर्षि वशिष्ठके शिष्य हो । शास्त्रोंका सम्यक् अध्ययन किया है तुमने, राजनीति-शास्त्र तुमसे अज्ञात नहीं है ।' रावणने शास्त्रोचितरीतिसे जिज्ञासुकी प्रशंसाकी—'मैं केवल अपने अनुभवका सार सुना दूँ, इतना ही समय है और तुम्हारे लिए इतना पर्याप्त है ।'

'साम, दान, दण्ड और भेद—इन व्यवहार-शास्त्रके चारों अंगोंको तुम

समझते हो ।' दशग्रीवने अब अपना अनुभव सुनाना प्रारम्भ किया—'अपने सेवक और स्वजन प्राण देकर भी अत्यन्त अप्रिय होने पर भी उसका आदेश स्वीकार कर लेते हैं जो सदा उनकी सुख-सुविधाका पूरा ध्यान रखता रहा है । जो उनकी स्वतन्त्रता-उच्छृंखलताको भी सहता रहा है । राक्षसोंने मेरा साथ नहीं छोड़ा । मेरे लिए युद्धमें प्राण दिये । मेरी अत्युग्र प्रकृतिको सहकर भी मेरा सम्मान करते रहे, यह केवल आतंकसे सम्भव नहीं था । मैंने उन्हें पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी । उनकी रुचि, सुख-सुविधा मैंने सदा सावधानीसे देखी और उन्हें सुगम बनाये रखा ।'

'कोई सेवाशील, विनम्र, धर्मात्मा व्यक्ति यदि अपना विरोध करने लगे, अपने मनके विरुद्ध बोले तो उसका अपमान या उपेक्षा करनेके स्थानपर उसकी बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये ।' दशग्रीवने आज स्वीकार किया—'मैंने विभीषणका तिरस्कार जानबूझकर किया । मैं जानता था कि वह धर्मात्मा है । ऐसा व्यक्ति चाटुकारी नहीं कर सकता । वह अपने आश्रयदाताके हितकी बात अप्रिय होने पर भी कहेगा । अपने अत्यन्त अहित होनेका भय होनेपर भी कहेगा । बात उसीकी सुनने और मानने योग्य होती है । लेकिन मैं यह भी जानता था कि विभीषण तुम्हारे पक्षमें नहीं गया तो लंका अनाथ हो जायेगी । राम इसे अधिकृत करनेको रुकेंगे नहीं । अपने उत्तम निर्दोष अनुजको मुझे निर्वासित करना ही था ।'

'शत्रुको सामान्य मानकर उसकी उपेक्षा कभी नहीं की जानी चाहिये; किन्तु अपनेको सचिन्त दिखलाकर अपने अनुयायियोंमें भयके प्रवेशको अवसर नहीं देना चाहिये ।' यह अपने व्यवहारकी व्याख्या की रावणने । 'दशग्रीवने शत्रुकी उपेक्षा की, यह दोष कोई मुझे नहीं दे सकता । रामके प्रकट होनेके क्षणसे मैं सतर्क था; किन्तु तुम ससैन्य सुबेलपर आ गये, तब तक मैंने अपने सैनिकों, सेनापतियोंके मध्य उत्सव मनाये । मल्लयुद्ध देखता रहा ।'

'सदा सफलता ही श्रेयस्कर नहीं होती लक्ष्मण !' अब रावणका स्वर आर्द्र हुआ, शिथिल होने लगा । उसने नेत्र-संकेतसे—क्योंकि कर उठनेमें असमर्थ हो गये थे—सौमित्रको अपने मुखके समीप बुला लिया—'कभी असफलता, पराजय, मृत्युका भी आयोजन करना पड़ता है । तुम देखते हो कि इस युद्धमें

मैंने प्रयत्नपूर्वक अपने समस्त शूरोंकी आहुति दे दी है । लेकिन मैं जीवित हूँ तब तक तुम लंकामें प्रवेश कर सके ? मेरे सब अनुचर कहाँ गये यह भी तुमको बतलाना पड़ेगा ? अब तुम्हीं सोचकर बतलाओ, विजय किसकी हुई है ?'

'आप धन्य हैं आचार्य ! अवश्य आप विजयी हुए हैं । 'आज पहिली बार लक्ष्मणने सच्ची श्रद्धासे दशग्रीवको मस्तक झुकाया । शिव-स्थापनाके समय तो वे अग्रजके संकोचसे ही इस शत्रुको प्रणाम करते रहे थे ।

'अब मैं अधिक बोल नहीं सकूँगा । मेरी मुख्य बात मन लगाकर सुनो !' दशग्रीवने उपदेशका उपसंहार किया—'जीवनके कोई महत्वपूर्ण कार्य करनेकी महत्वाकांक्षा हो तो उसे सब सामान्य कार्य छोड़कर पूर्ण कर डालो । उसे कल पर टालते रहोगे तो वह कभी पूर्ण नहीं होगा ।'

'आपकी कोई महत्वाकांक्षा अपूर्ण रह गयी ?' लक्ष्मणने श्रद्धा, उत्साहपूर्वक पूछा ।

'रह गयी, किन्तु वह असुरकी महत्वाकांक्षा है । उसे तुम मर्यादा पुरुषोत्तमके अनुज पूर्ण नहीं कर सकते । उसे अपूर्ण ही रहने दो ।' इस अवस्थामें भी दशग्रीव हँस पड़ा ।

'पर वह क्या है ?' लक्ष्मणने आग्रह किया ।

'सुनोगे ? अच्छा सुनो ।' शिथिल स्वरमें ही अब वह बोल रहा था—'मैं सम्पूर्ण क्षार समुद्रको मधुर पेय जलसे पूर्ण कर देना चाहता था । सम्पूर्ण सागरको अनेक भागोंमें विभाजित करके बाँध देना, एक-एक भागके जलको उष्ण करके वाष्प बना देना, अवशिष्ट लवणको धरापर पर्वताकार एकत्र कर देना और वाष्पको वारिद बनाकर वर्षाके निर्मल जलसे सागरके उस अंशको पुनः भर देना लंकाके अधीश्वरके लिए असम्भव कार्य नहीं था । इसमें असंख्य जल-जन्तु मारे जाते; किन्तु हम राक्षस कहाँ प्राणियोंकी मृत्युपर रोने बैठते हैं ।

'मैं चाहता था स्वर्गके लिए सोपान निर्मित कर देना । भले स्वर्ग सूक्ष्म लोक हो, दशग्रीव स्थूल, सूक्ष्मके मध्य सोपान-निर्माणमें असमर्थ नहीं था ।' लक्ष्मण चौंक गये । ओह ! कहीं यह महत्वाकांक्षा यह महाप्राण पूर्ण

करनेमें लग जाता—श्रुति-शास्त्र तथा सत्कर्म सदाको समाप्त हो जाते। लक्ष्मणका चौंकना देखकर रावण हँसा—'मैं पापी-पुण्यात्माका भेद मिटा देना चाहता था। मैं असुर था न—चाहता था कि जो शरीरबलसे समर्थ हो, इतनी दीर्घ यात्रा कर सकें, सब इच्छानुसार स्वर्ग जाकर मनोरञ्जन कर सकें।'

'मैं चाहता था कि संसारमें कोई कभी रोगी या वृद्ध न हो। इसके लिए वृक्षोंमें मैं अमृत फल लगनेका विधान करना चाहता था।' रावणने बतलाया—'मैं प्रकृतिके स्थूल रहस्योंका प्रकाण्ड पण्डित—प्रयोग करनेमें लग जाता तो रोग, वार्धक्य एवं मृत्युको समाप्त कर देनेवाला आविष्कार अवश्य कर लेता।'

'तब पृथ्वीपर केवल राक्षस रह जाते।' लक्ष्मणने भी हँसकर कहा—'अन्य सब प्राणियोंको वे समाप्त कर देते। उनकी सन्तानोंके लिए भी पृथ्वी छोटी पड़ जाती; क्योंकि उन्हें मरना तो होता ही नहीं। आचार्य! आपकी महत्वाकांक्षाओंका अपूर्ण रह जाना ही विश्वके लिए वरदान हुआ।'

परम वेदज्ञ पौलस्त्य दशग्रीवको इक्ष्वाकुगोत्रीय दाशरथि राम प्रणाम करता है!' इसी समय श्रीराम आये और रावणको अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाते उसके दाहिने इस प्रकार खड़े हो गये, जिससे वह भली प्रकार उन्हें देख सके। उनका मेघ-गम्भीर स्वर गूँजा—'अपने आचार्यको अभीष्ट दक्षिणा देने यह जन उनके चरणोंमें उपस्थित हो गया है।'

'तुम आ गये राम?' दशग्रीवके अपलक लोचन उन इन्दीवरसुन्दरके श्रीमुखपर लग गये। उसके कण्ठने अन्तिम सम्बोधन किया—'राम!' एक अद्‌भुत ज्योति उसके शरीरसे निकली। उसने श्रीरामकी प्रदक्षिणा की और उनके श्रीचरणोंमें लीन हो गयी।

●●●

श्रीराम-स्तवन

अभी तक देवता आकाशमें ही स्थित जयघोष कर रहे थे। उन्हें युगों तक रावणने उत्पीड़ित किया था। वे तबतक आतंकित थे, जबतक दशग्रीवमें किञ्चित् भी श्वास शेष था। उन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि रावण मर भी सकता था। वे भयभीत थे—'यह दारुण कहीं अब भी न उठ खड़ा हो।'

जब दशग्रीवके शरीरसे निकली ज्योति श्रीरामके चरणारविन्दोंमें लय होते देवताओंने देख ली, तब उन्हें रावणकी मृत्युका विश्वास हुआ। अब देवता युद्धभूमिमें उतर आये।

बँधा जटामुकुट, वक्षपर कसा मृगचर्म, कटिमें वल्कल—केवल इतना श्रृंगार; किन्तु अपूर्व छटा थी रामकी। मुखपर स्वेदबिन्दु झलमला रहे थे। विशाल बाहु, वल्कल और चरण भी रक्त-बिन्दुओंसे भूषित थे। वे पद्मपलाश-लोचन वाम करसे धनुषको भूमिपर टेके स्थिर खड़े थे। अब भी पीठपर दोनों त्रोण कसे थे। दशग्रीवके शवके दक्षिण वे खड़े थे और वाम भागमें लक्ष्मण। सुग्रीवादि अब समीप आ गये थे। सब श्रीरामसे कुछ पीछे ही शान्त खड़े थे।

सम्पूर्ण युद्धभूमि रक्तकी कीचसे ढकी थी। विभीषणके संकेतपर समर-स्थली स्वच्छ करनेवाला राक्षसोंका दल पूरी शक्तिसे राक्षसोंका, गज-अश्व, गर्दभ-खच्चर आदिका शव उठा-उठाकर समुद्रमें फेंक रहा था। सर्वत्र पड़ी दशग्रीवकी छिन्न भुजाओं तथा मस्तकोंके साथ भी उसे यही व्यवहार करनेका संकेत मिल गया था।

अस्त्रोंके खण्ड, चर्म (ढाल) शिरस्त्राण, आभरण, रथोंके खण्ड उस रक्तके दलदलमें बिखरे पड़े थे और पड़े थे उनमें मृत वानरोंके असंख्य शव। उन्हें स्पर्श करनेका साहस राक्षसोंके स्थल स्वच्छ करनेवाले दलमें नहीं था। उनके शरीरोंका क्या होगा, यह तो उनके स्वामीको सोचना था।

ऐसी युद्धभूमिमें देवता उतरे। उन्हें कहाँ भूमिका स्पर्श करना था कि युद्धस्थलीके रक्तकर्दमपर वे ध्यान दें। उन्हें तो गगनमें कुछ ऊपर ही खड़े

रहना था। पृथ्वीका स्पर्श तो केवल वे भूदेवीके स्वामी ही कर सकते हैं। वे अवतार लेकर धरापर आवें या आविर्भूत हों। सुर ऐसा साहस कभी नहीं करते।

देवता आये तो उनके साथ हंसवाहन भगवान ब्रह्मा भी आ गये और वृषभध्वज नीलकण्ठ महेश्वर भी पधारे। श्रुतियोंके अधिदेवता—शरीरधारी वेद आये। जनलोक और तपोलोकके दिव्य ऋषिगण पहुँचे। लोकपाल, दिक्पालादि कोई यह सुअवसर क्यों छोड़ देता।

ब्रह्माजीने, भगवान शंकरने, ऋषियोंने, वेदोंने, सब लोकपालों-दिक्पालोंने पृथक-पृथक स्तवन किया। सभीका संकट तो श्रीरामने दूर किया था। गन्धर्व, किन्नर, यक्षादि सबको स्तुति करनी थी। सब स्तवन कर चुके, तब श्रीरामने देवराज इन्द्रसे कहा—'आप मुझपर एक अनुग्रह करेंगे ?'

'आप आदेश करें !' महेन्द्रने हाथ जोड़ा।

'मेरे लिए जिन्होंने अपने घर-द्वार, स्त्री-पुत्र सब छोड़े, यहाँ अपने आवाससे दूर शत्रुके प्रदेशमें आये, वे संग्राम-भूमिमें मरे पड़े हैं।' श्रीरामके नेत्र सजल हो गये—दशग्रीवकी अन्त्येष्टिके पश्चात् आप अमृतवर्षा करके उन सब मृत वानरोंको जीवित कर दें।'

'सभी वानर सुरोंके अंशोद्भव हैं। इन्होंने इस युद्धमें सम्मिलित होकर हम देवताओंकी ही सेवा की है।' इन्द्रने कहा—'यह तो आप शीलसिन्धुका संकोची स्वभाव है कि आप इनको जीवित करनेकी प्रार्थना करते हैं, अपनेको उपकृत मानते हैं। अन्यथा वानरोंका यह अपना स्वार्थ था। उन्होंने सुरोंकी सेवामें शरीर दिया है, अतः उनको जीवित कर देना मेरा कर्तव्य है। मैं आदेशका पालन करूँगा।'

'श्रीराम ! आपके पिताश्री महाराज दशरथ मेरे मित्र थे।' इन्द्रने पुनः प्रार्थनाके स्वरमें कहा—'देहत्यागके पश्चात् उन्होंने अमरावतीमें रहनेका अनुग्रह किया। वे आपको देखनेके लिए उत्सुक थे, अतः मैंने उनके यहाँ पधारनेकी व्यवस्था कर दी है। वे विमानके द्वारा आ रहे हैं।'

प्राणीका देहत्यागके समय पृथ्वीके किसी व्यक्ति अथवा वस्तुसे तीव्र राग या द्वेष हो तो वह यहाँ उसके समीप ही कर्मानुसार योनिमें जन्म ले

लेता है, अथवा आतिवाहिक देहमें उसके आसपास ही प्रेत या पितर बनकर मँडराता रहता है । महाराज दशरथ अत्यन्त पुण्यात्मा थे, अतः उन्हें प्रेत या पितरका आतिवाहिक देह मिलना सम्भव नहीं था । श्रीभरतने जिनकी उत्तर-क्रिया सम्पन्न की थी, श्रीरामने जिन्हें जलाञ्जलि दी थी, उन्हें पितृलोकमें तब रहना पड़ता, जब उन्हें पृथ्वीपर पुनर्जन्म प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा करनी हो । उन्होंने श्रीरामका स्मरण करते शरीर त्याग किया था । उचित तो यह था कि वे सीधे श्रीरामके धाम साकेत जाते; किन्तु अभी श्रीराम स्वयं धरापर थे, और महाराज दशरथके मनमें श्रीरामको मूर्धाभिषिक्त देखनेकी तीव्र लालसा थी । अतएव श्रीरामका राज्याभिषेक हो जाने तक उन्होंने स्वर्गमें रहना स्वीकार कर लिया था । पुण्यात्मा प्राणियोंको भले स्वर्ग भोगलोकके रूपमें मिले, श्रीचक्रवर्ती महाराजको वह मध्यमें स्वागत-स्थलके रूपमें ही प्राप्त हुआ था । महाराज वहाँ शक्रके शासित नहीं, इन्द्रके सम्मान्य अतिथि थे ।

प्राणिके शरीर-त्यागके समय उसके स्थूल शरीरका जैसा आकार होता है, उसे मिलने वाले आतिवाहिक देह (प्रेत एवं पितर शरीर) का, भोग-देह (स्वर्गके शरीर) का तथा यातना--देह (नरकके शरीर) का भी वैसा ही आकार होता है । यह शरीर होता तो पाञ्चभौतिक ही है; किन्तु पृथ्वीके स्थूल शरीरोंकी भाँति पार्थिव (पृथ्वी तत्व प्रधान) नहीं होता । यदि आतिवाहिक देह (प्रेत या पितरका) अथवा यातना देह (नरकका) हुआ तो वायु तत्व प्रधान होता है । यदि भोग देह (देव देह) हुआ तो तेजस (अग्नि) तत्व प्रधान होता है ।

इन सब शरीरोंको समान्यतः पृथ्वीके प्राणी देख नहीं सकते । क्योंकि ये शरीर सूक्ष्म तत्वोंसे बने हैं, पार्थिव पदार्थ—वृक्ष, पर्वत, भित्तियाँ, शिलाएँ या जल इनकी गतिमें बाधक नहीं बन सकते । उनमें-से ये ऐसे ही आ-जा सकते हैं, जैसे हम आप आकाशमें-से । इन शरीरोंमें रहनेवाले प्राणी चाहें तो अपने शरीरको थोड़े कालके लिए इतना सघन कर ले सकते हैं कि उन्हें पृथ्वीके लोग देख सकें । उनको पृथ्वीके पार्थिव शरीरके समान समझकर उनसे व्यवहार कर सकें । इस प्रकार शरीरको सघनता देनेकी शक्ति, उसे सघन बनाये रखनेका समय सबका भिन्न-भिन्न होता है । प्रेत प्रायः रात्रिमें ही ऐसा कर पाते हैं । पितर, देवता दिनमें भी कर सकते हैं । देरतक इस स्थितिमें रह सकते हैं ।

सुरोंने भी इसी प्रकार अपना शरीर सघन करके श्रीरामका स्तवन किया था। महाराज दशरथ भी इसी प्रकार प्रत्यक्ष अपने प्रिय पुत्रके समीप पधारे। पिताको आया देखकर श्रीराम सानुज खड़े हो गये। दोनों भाइयोंने भूमिपर लेटकर पिताको प्रणिपात किया। महाराज दशरथने दोनोंको उठाकर हृदयसे लगाया। दोनोंका सिर सूँघा।

'वत्स रामभद्र! तुम्हारा कल्याण हो।' महाराजकी वाणी गद्‌गद् हो रही थी—'तुमने दशग्रीवको मारकर इक्ष्वाकु वंशको उज्ज्वल कर दिया। मैंने और मेरे पूर्व पुरुषोंने इस सुर-साधु-संतापदायीकी उपेक्षा करके जो अपराध किया था, उसे तुमने मिटा दिया। चक्रवर्ती होकर भी सत्कार्य एवं सत्पुरुषोंको पीड़त करने वालेकी उपेक्षा हमारे कुलके लिए कलंक थी। तुमने उस कलुषको धो दिया।'

'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं आपके द्वारा एक वरदान पानेकी कामना करता हूँ।' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की।

'वत्स तुम सर्वलोकेश्वर हो। दशरथ धरापर था तो और स्वर्गमें है तो, इसका जो कुछ है, जो भी इसकी शक्तिमें है, वह सब तुम्हारा स्वत्व है।' महाराज उत्फुल्ल बोले—'तुम कुछ माँगर मुझे सुखी करना चाहते हो। तुम्हें कुछ भी देकर मुझे असीम आनन्द प्राप्त होगा।'

'आज रामको जो यश, जो उत्कर्ष प्राप्त हुआ है, वह अम्बा कैकेयीके वरदानोंका प्रसाद है।' श्रीरामने प्रार्थना की—'आपने मेरे स्नेहवश उन परम सतीको परित्यक्ता घोषित कर दिया था। मेरा अनुरोध है कि आप उन्हें पुनः अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लें। वे पतिलोक प्राप्त करें और वहाँ आपकी प्रिया बनी रहें।'

'राम! यह प्रार्थना तुम्हीं कर सकते थे।' महाराजका स्वर अत्यन्त गद्‌गद् हो गया—'तुम्हारा आदेश-अनुरोध अस्वीकार कर देनेकी शक्ति त्रिभुवनमें किसीमें नहीं है। तुम चाहते हो, अतः मैं कैकेयीको स्वीकार करता हूँ।'

महाराज जब पूछकर, आशीर्वाद देकर स्वर्ग पधारे श्रीरामको लगा कि उनके हृदयका भारी भार दूर हो गया। उन्हें दशग्रीव-दलनका सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार प्राप्त हुआ।

●●●

रावणकी अन्त्येष्टि

'आज आप सुरजयी, वेदज्ञ, महापराक्रमी, इस प्रकार पृथ्वीपर पड़े हैं ?' इच्छा न होनेपर भी बड़े भाईका शव देखकर विभीषण व्याकुल हो उठे थे। वे उस शवके समीप घुटनोंके बल बैठकर रुदन करने लगे थे—'यही परिणाम होना है, मैं जानता था; किन्तु आपने अहंकारवश मेरी बात नहीं मानी। प्रहस्तने, इन्द्रजितने, कुम्भकर्णने, आपने जिस परिणामकी आशा नहीं की थी, वह सामने आया। राजनीतिका प्रखर प्रताप, वेदज्ञोंका सूर्य अस्त हो गया। पौरुषका प्रतिमान आज नष्ट हो गया।'

'विभीषण ! तुम्हारे ये अग्रज श्लाघ्य हैं।' जैसे ही देवता स्तुति करके गये, श्रीराम विभीषणके समीप आ गये। 'कौन कहता है कि ये विनष्ट हुए। युद्धमें प्रचण्ड पराक्रम करके वीरगति पाना शूरोंको सदा अभीष्ट रहा है। इनकी मृत्यु शोकके योग्य नहीं, प्रशंसाके योग्य है। अतः शोक त्याग दो।'

'ये जीवनमें कभी पराजित नहीं हुए थे; किन्तु यह महासागरका प्रबल ज्वार आज आप-रूपी बेलासे टकराकर भग्न हो गया।' विभीषणने शोक कातर कहा—'जीवनमें इन्होंने दान किया, सब लोग भरपूर भोगे, शत्रुओंको सन्ताप दिया और सन्तुष्ट किया। सेवकोंको धनी, सुखी रखा। ये तपस्वी, आहिताग्नि, वेदज्ञ थे। इनके मरनेपर मुझे उचित कर्त्तव्यका आप परम धर्मज्ञ उपदेश करें।'

'मेरे सम्बन्धमें शंका मत करो। शत्रुता शत्रुके शरीरसे नही, उसके कर्मसे होती है। इनकी मृत्युके साथ हमारा प्रयोजन पूरा हो गया। अब ये जैसे तुम्हारे भाई हैं, वैसे ही मेरे भी हैं।' श्रीरामने समझाया—'सबका अन्तिम यज्ञ होता है देहमेध। अतः उठो और इनकी अन्त्येष्टि—शरीरकी अग्निको आहुति देकर वह यज्ञ सम्पन्न कर दो।'

इसी समय लंकाके दुर्गद्वारसे मुक्तकेशा, निराभरणा दशग्रीवकी रानियाँ रुदन करती, वक्ष पीटती निकलीं। वे उस समरभूमिमें पड़े शवसे लिपटकर क्रन्दन करने लगीं—'तुम अपने तेजसे इन्द्र और यमको भी कम्पित करते थे। लोकपाल कुबेरसे पुष्पक इसीलिए छीन लाये थे कि आज इस प्रकार पृथ्वीपर

पड़े रहो ? सीतारूपी मृत्युको तुम स्वयं उठा लाये । विभीषणकी बात मानी नहीं । इनकी बात मानकर सीताको लौटा देते तो हम आज अनाथा, विधवा क्यों बनतीं ?'

'तुमने जिसे उत्कर्षके शिखरपर पहुंचाया था, स्वयं उस राक्षस जातिको नष्ट कर दिया । सदा कहीं किसीके मनका हुआ है ? दैवकी गतिको कोई टाल सका है ?' महारानी मन्दोदरी अंकमें रावणका मस्तक लेकर विलाप कर रही थीं—'तुमसे उद्विग्न होकर देवता भागते थे । त्रिलोकीको जीता तुमने, वही तुम रामके हाथों मारे गये, यह विश्वास ही नहीं होता है ।'

'खरके मारनेका समाचार मिला, तभी मुझे लगा कि राम मनुष्य नहीं हैं । जब इन्होंने समुद्रपर सेतु बना लिया, विश्वास हो गया कि राम परम पुरुष, अनादि-अनन्त, सनातन पुरुष हैं । मनुष्य रूपमें लोक रक्षा निमित्त प्रकट इन श्रीवत्सवक्षा, अजित, अप्रमेय, शाश्वत, सत्यपराक्रमको पहिचाना नहीं ।' मन्दोदरीका विलाप भी उसीके अनुरूप था—'तुम ऐसे महत्तम कि तुम्हें पराजित करनेको देवता वानर बने । परमेश्वरको भी तुम्हें मारनेके लिए मनुष्य बनना पड़ा । मैंने तुमसे बार-बार कहा था कि रामसे विरोध मत करो ।'

'परस्त्री सीताकी चाह-ने तुम्हारी यह गतिकी । सीता तो अरुन्धतीसे भी श्रेष्ठ महासती हैं, तुमने उनकी अवज्ञा की । उन पतिव्रताके तपसे तुम दग्ध हो गये ।' रानियोंमें अनेकों प्रकारकी विलाप व्याकुल बातें उठ रही थीं—'पापका फल अवश्य भोगना पड़ता है । अत्युग्र पाप तत्काल फल देता है । अन्यथा कुलमें, रूपमें सीता मुझसे श्रेष्ठ नहीं हैं, पर तुम्हें यह सूझता ही नहीं था । अभागिनी तो मैं हूँ । मेरा पुण्य क्षीण हो गया । तुमने मुझे क्या-क्या सुख नहीं दिया ।'

'मैं दानवेन्द्र मयकी पुत्री, इन्द्रजितकी माता आज अनाथा हूँ ?' मन्दोदरीकी व्याकुलता असीम थी—'मैं तभी क्यों नहीं मर गयी, जब इन्द्रजित मरा । तुमने ऋषियोंको बहुत सताया । सहस्रों सतियोंको विधवा बनाया । उनका शाप आज मुझे यह दिन दिखला रहा है । तुम तो अपने पुण्य-पाप लेकर चले गये, अब मैं अपने लिए शोक कर रही हूँ ।'

मन्दोदरी रावणके वक्षपर गिरकर मूर्छित हो गयी । उसे दूसरी रानियोंने

उठाया । यह देखकर श्रीररामने विभीषणसे कहा—'स्त्रियोंको लौटा दो और अग्रजका अग्नि संस्कार करो ।'

'मैं इस त्यक्त धर्मा, क्रूर, नृशंस, परस्त्री-लोलुपकी अन्त्येष्टि नहीं करूँगा । मन्दोदरीने विलाप करते हुए जो रावणके दुष्कर्मोंका वर्णन किया, उसे सुनकर विभीषणका क्षणिक मोह मिट गया । वे ग्लानिपूर्वक उठ खड़े हुए । वितृष्णासे बोले—'यह तो भाईके रूपमें शत्रु था । सर्व-लोकोपतापक था । महा-अधर्मी था ।'

'विभीषण ! तुम धर्मज्ञ हो । जानते हो कि सब समय अपने मनका कार्य ही उचित नहीं होता ।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक समझाया—'मेरी प्रसन्नताके लिए दशग्रीवकी अन्त्येष्टि करो । भले तुम्हारा यह भाई अधर्मी था; किन्तु शूर था, तेजस्वी था, युद्धमें लड़ता मारा गया । उसकी बुराई भूल जाओ । इससे तुम्हें सुयश प्राप्त होगा ।'

'आपका आदेश अनुलंघनीय है ।' विभीषण उठ खड़े हुए । अब उनका चित्त शोक और वितृष्णा दोनोंसे स्वच्छ हो गया था । उन्होंने दशग्रीवकी रानियोंको समझाकर नगरमें भेजा ।

'मैं इनके साथ जाऊँगी ।' मन्दोदरी अपने पतिके शवके साथ लिपट गयी ।

'नहीं देवि !' श्रीरामने रोका । रोकनेका कारण था । सतीको पतिके साथ सती होनेसे रोक देनेकी शक्ति किसीमें नहीं है; किन्तु सतीत्व एक साधना है, आवेश नहीं है । आवेश क्षणिक होता है, पर साधना तो सतत चलकर जीवनका निर्माण करती है । जिन लोकोत्तर नारियोंके जीवनमें यह सतीत्वकी सतत साधना चलती रही है, पतिका परलोक गमन उनमें शोक नहीं जगाता । उनमें एक आत्मोत्सर्गकी दिव्य प्रेरणा देता है । उस समय उनका अन्तःकरण अद्भुत स्थिरता और उज्वलता प्राप्त कर लेता है । उनका देह तक दिव्य हो उठता है । उनके पदोंसे पृथ्वीपर कुंकुमके विन्दु गिरने लगते हैं । दशग्रीवकी रानियोंमें-से एकमें भी ऐसी स्थिरता-दिव्यता नहीं आयी थी । वे केवल शोकावेशमें थीं ।

मन्दोदरी नित्य कन्या—उसमें सतीत्वका जागना तो सम्भव नहीं था ।

दूसरी रानियोंमें भी किसीमें वह स्थैर्य नहीं जागा कि वे सुव्यवस्थित श्रृंगार करके, शान्त सहमरणको आयी हों। वे तो शोक विह्वलता थीं और आवेशमें आकर प्राणत्याग आत्मोत्सर्ग नहीं, आत्महत्या होता है।

'तुम दिव्या हो। तत्त्वज्ञा हो। तुम्हारी बहुत अधिक आवश्यकता है लंकाको।' श्रीरामने समझाया—'अपनेको स्थिर करो। दशग्रीवकी अन्त्येष्टिके पश्चात् तुम्हारे दर्शन करके रामको प्रसन्नता होगी।'

'तुम सर्व-सञ्चालक, सर्वेश्वर।' मन्दोदरीने भूमिपर श्रीरामके सम्मुख मस्तक रखा—'तुम्हारे संकेतसे ही समस्त सृष्टि-चक्र चलता है। एक अबला तुम्हारे आदेशकी अवज्ञा कैसे कर सकती है।'

मन्दोदरी दूसरी रानियोंके साथ समुद्र-स्नान करने चली गयी। विभीषणने चन्दन, उशीर, पद्मकाष्ठके द्वारा ब्राह्मणोचित विशाल चिता सज्जित करायी। स्नान कराके जब दशग्रीवका शरीर उस चितारूपी पितृमेध वेदीपर कुशास्तरण करके चढ़ा दिया गया, तब उसके ऊपर भी कुश आस्तृत किये गये। सब यज्ञपात्र एवं मुशल भी शवके समीप रखे गये। प्रज्वलित दक्षिणाग्नि लेकर स्नानार्द्रवस्त्रोंमें विभीषणने तीन बार चिताकी प्रदक्षिणा करके नैऋत्य कोणमें अग्नि लगायी। लाजाकी अञ्जलि अर्पित की।

समुद्रके किनारे चैत्रकी अमावस्याके दिन मध्याह्नके उपरान्त युगों तक त्रिभुवनको आतंकित रखनेवाले दुर्दान्त दशग्रीवका शरीर चितापर धू-धू करके जल रहा था। इतनी दीर्घायु, इतना ऐश्वर्य, इतना वैभव, ऐसा अतर्क्य बल—सबका धरापर यही अन्तिम परिणाम। स्वयं दशग्रीवने जो महामेध प्रारम्भ किया था, उसमें अपने समस्त अनुयायियोंकी आहुति देनेके पश्चात् उसके स्वयंके शरीरकी यह पूर्णाहुति पड़ गयी।

श्रीराम, लक्ष्मण, सुग्रीव और सब वानर शान्त, नीरव बैठे थे। विभीषणने आर्द्रवस्त्र अपने इस अग्रजका तर्पण किया। सब कर्म सम्पन्न करके वे श्रीरामके समीप आये और हाथ जोड़कर सिर झुकाये खड़े हो गये।

इसी समय मन्दोदरी भी आयी। वह लंकाकी साम्राज्ञी, आज एकाकिनी, पैदल, मुक्तकेशा, आभरणहीना आयी थी। उसके नेत्रोंसे अश्रुधारा चल रही थी। वह बोलनेमें असमर्थ थी। दोनों हाथ जोड़कर श्रीरामके चरणोंके सम्मुख वह शान्त बैठ गयीं।

●●●

विभीषणका अभिषेक

'आप दानवेन्द्र मयकी महिमामयी पुत्री हैं देवि ! आपका कन्यात्व नित्य अखण्ड है । आपका ज्ञान अविद्याके कल्मषसे कभी अपवित्र नहीं हुआ । आपमें शरीरके प्रति यह आसक्ति उचित नहीं है । आप शोकका त्याग करें ।' श्रीराम स्वयं मन्दोदरीको समझाने लगे । वे सबके उर-प्रेरक हृषीकेश—उनकी इच्छा ही तो सर्वत्र साकार होती है ।

'आपके इस पतिकुलमें और पितृकुलमें भी सहमरण श्लाघ्य नहीं माना जाता ।' श्रीरामने कहा—'अपवाद सर्वत्र होते हैं; किन्तु उनको नियम बनाना उचित नहीं है । आपकी पुत्रवधू प्रमिला अपवाद थी इस कुलमें ।'

'आप अपने इस पति-कुलको उच्छिन्न, परस्परके संघर्षसे समाप्त होता तो नहीं देखना चाहतीं ?' श्रीराम इस समय मन्दोदरीके प्रति अत्यन्त आदर प्रदर्शित कर रहे थे—'यह सत्य है कि लंकाके वास्तविक शासक विभीषण ही थे; किन्तु जो परिस्थिति बन चुकी है, उसमें अवशिष्ट राक्षसोंकी आस्था विभीषणपर बनी रहेगी ? जिनके पति-पुत्र-भाई मारे गये हैं, वे नारियाँ विभीषणको सहयोग देंगी ?'

'विभीषणको भय तथा आतंकको माध्यम बनाकर व्यवहार करना नहीं आता, यह आप भली प्रकार जानती हैं ।' श्रीरामके मुखकी ओर चकित मन्दोदरी देख रही थी । उसके अश्रु सूख चुके थे । वह समझ नहीं पाती थी कि ये लीलामय कहना क्या चाहते हैं । श्रीराम कहते गये—'विभीषण भोग लोलुप नहीं हैं । उन्हें आवश्यक भोगोंका अब अभाव नहीं रहेगा । अपनी पत्नी में इनकी प्रीति है ।'

'आपका सम्पूर्ण राक्षस-कुलपर अखण्ड प्रभाव रहा है । आपपर अब भी सब राक्षस-राक्षसियोंकी आस्था है । सब आपका सम्मान करते हैं । आपके कुलमें इसे दोष नहीं माना जाता ।' अब श्रीरामने अभिप्राय स्पष्ट किया—'अतः लंकाकी सुव्यवस्थाके लिए, हत-बान्धव दुःखियोंको आश्वस्त करनेके लिए आप सबका आश्रय बन, आप अपना साम्राज्ञीका मुकुट स्वीकार कर लें ।

विभीषणको केवल सिंहासनपर साथ देनेके लिए आपका सहयोग वाञ्छित है ।'

'अर्थात् मैं पुनः श्रृंगार करूँ ?' मन्दोदरीके नेत्र जल उठे—'आप मर्यादा पुरुषोत्तम चाहते हैं कि यह विधवा फिर वधू बने ? मैं सरमाका स्वत्वापहरण करूँ ?'

'देवि ! आप नित्य कन्या हैं ।' श्रीराम शान्त बने रहे । 'आपके कुलमें यह निन्दित आचार नहीं है । इस समय समग्र राक्षस जातिको जो इस महासंहारसे बची है, आपके आश्रयकी आवश्यकता है । विभीषणकी पत्नीका स्वत्वापहरण कहाँ होता है । मैंने सुना है, वे सरला शासिका नहीं हैं । शासन उनके स्वभावमें नहीं है । वे विभीषणके अन्तःपुरकी अधीश्वरी बनी रहेंगी । यह तो आपके लिए एक विषम तप है ।'

मन्दोदरीने रोते-रोते भूमिमें मस्तक रखा । दोनों हाथोंमें मुख छिपाये वह रोती हुई लौट चली लंकाकी ओर ।

'लक्ष्मण ! ये मुझमें अनुरक्त हैं । इन्होंने मेरे लिए सर्वस्वका त्याग कर दिया । युद्धमें इन्होंने मेरा बहुत उपकार किया । मैं इनके प्रति किये गये अपने 'लंकेश्वर' सम्बोधनको सफल देखना चाहता हूँ ।' मन्दोदरीके जाते ही श्रीरामने भाईको आदेश दिया । सुग्रीवको आलिंगन देकर कहा—'वानरेन्द्र ! आप हनुमान, अंगद, नील आदि सब प्रमुख यूथपोंको लेकर लक्ष्मणके साथ लंका पधारें । विभीषणको सविधि सिंहासनपर बैठा दें और राक्षसोंको आश्वस्त कर दें ।'

लक्ष्मण सबके साथ विभीषणको लेकर लंकामें प्रविष्ट हुए । वानरोंको स्वर्ण कलश देकर सभी समुद्रोंका जल, तीर्थोंका जल तथा आवश्यक औषधियाँ लाने भेज दिया गया । शीघ्रतापूर्वक दशग्रीवकी राजसभा सज्जितकी गयी ।

ऐसा विषम समय था, जब राज्याभिषेकका कोई बड़ा महोत्सव करना विडम्बना ही होती । लंकामें सब विभीषणके अपने ही स्वजन थे । उनके पुत्र, पिता, भाई, सगे सम्बन्धी मारे गये थे, विधवाओंकी ही बहुलता थी लंकाके गृहोंमें । अतः अनिवार्य मांगलिक शंखध्वनि मात्र होनी थी ।

विभीषणको, उनकी पत्नी सरमाको, मन्दोदरीको भी तीर्थोंके जलसे स्नान कराया गया । तीनोंने वस्त्राभरण धारण किए । अंगराग, चन्दन, पुष्पमाल्य—इनके अतिरिक्त रावणके कोषमें सभी निधियाँ थीं । दक्षिणावर्त

उज्ज्वल शंख तथा अन्य मांगलिक रत्न, मणियाँ उपस्थित की गयीं ।

लक्ष्मणने हाथ पकड़कर विभीषणको सिंहासनपर बैठाकर तिलक किया । वानरेन्द्र सुग्रीवने उनके करोंमें रत्न-जटित राजदण्ड दिया । लक्ष्मणके अनुरोधपर मन्दोदरीने विभीषणके वामपार्श्वमें बैठकर जब रत्नकिरीट मस्तकपर रखा, सरमाने आगे आकर सादर अपनी इस साम्राज्ञीकी पद-वन्दना की ।

विभीषणके मन्त्रियोंने उनके ऊपर छत्र तथा चामर, व्यजन धारण किया । युवराज अंगद तथा दूसरे वानर यूथपोंने जब उनकी वन्दना कर ली, अवशिष्ट राक्षस उपहार लिये आये । इनमें सबसे आगे दैत्यश्रेष्ठ, दशग्रीवके मातामह माल्यवन्त थे ।

उसी समय लक्ष्मण तथा सुग्रीवसे सम्मति करके विभीषणने अपने अबतक साथ रहे मन्त्रियोंको शासनका मन्त्री घोषित किया । उन्होंने इसी समय नगरके सुरक्षा अधिकारी नियुक्त किये । दूसरे भी कुछ प्रधान पदोंकी घोषणा की ।

लंकामें रावण-वधका समाचार पहुँचते ही सूर्पणखा नगर त्यागकर चली गयी थी । उसने मधुवन पहुँचकर मधुदैत्यके पुत्र लवणासुरके यहाँ शरण ले ली ।

'किसीको भी उसके पिछले अपराधोंके लिए कोई दण्ड नहीं दिया जायेगा !' विभीषणकी प्रथम राजाज्ञा नगरमें तत्काल घोषित की गयी—'नवीन राक्षसेश्वर तथा महाराज्ञी मन्दोदरीने सबके अबतकके अपराध क्षमा कर दिये । किसीको भयभीत नहीं होना चाहिये; किन्तु अब राक्षसोंको कहीं किसीको भी उत्पीड़ित नहीं करना चाहिये । सुरोंका, सत्पुरुषोंका और सभीके उपासना स्थानोंका सम्मान करना चाहिये । अब गोवंश सम्मान्य पशु माना जायेगा । किसीका स्वत्व हरण करनेवाला, किसीके साथ अन्याय करनेवाला दण्डित होगा ।'

'राज्य वस्तुतः मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामका है ।' विभीषणने स्पष्ट घोषणा की—'मैं केवल उनका सेवक हूँ । भारतके सभी आर्य नरेश और वानरेन्द्र सुग्रीव हमारे मित्र हैं । हमारी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है । हम शान्तिपूर्वक रहनेके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं ।'

प्राप्त सब उपहार, सब मांगलिक द्रव्य, असंख्य रत्न-मणि पुष्पकमे

विभीषणने भरवायीं। उस विमानको लेकर श्रीरामके सम्मुख उपस्थित हुए। वह सब सामग्री उन्होंने सादर अर्पित की।

'मैंने यह सब स्वीकार किया।' सस्मित श्रीराम बोले—'लेकिन अभी लंकेश्वरको किञ्चित् श्रम और करना है। इन वानरोंकी सहायतासे ही राम समर-विजयी हुआ है। अतः विजयोपहारके ये प्रथम अधिकारी हैं। इन असंख्य वानरोंको पुरस्कार-वितरणकी एक ही सुविधाजनक व्यवस्था सम्भव है, तुम विमानमें बैठकर आकाशसे सब सामग्रीकी वर्षा कर दो। वानर स्वेच्छानुसार पदार्थ ग्रहण कर लें।'

विभीषणका अभिषेक हो रहा था, तभी युद्धभूमिपर महेन्द्रने अमृतवृष्टि कर दिया था। युद्धमें मारे गये सब वानर जीवित हो गये थे। विभीषणने आज्ञा मानकर वस्तुओंकी वर्षा की तो वानर उन्हें कूद-कूदकर लूटने लगे।

'आपने जिस अपराधमें दशग्रीवका वध किया, परस्त्रीको बलपूर्वक अपमानित करनेका वही अपराध इस दुष्टने किया है।' अबतक लक्ष्मणने अपनेको संयमित रखा था। विभीषणके पदार्थ वर्षा करके उतरते ही अंगदने लक्ष्मणके संकेतके अनुसार बँधे द्विविदको श्रीरामके सम्मुख उपस्थित किया। लक्ष्मण अत्यन्त क्रुद्ध थे—'यह प्राणदण्डका पात्र है।'

विभीषणके अभिषेक महोत्सवमें आयी राक्षस-सुन्दरियोंको देखकर द्विविदका मन विचलित हो गया था। उसने एकको बलपूर्वक उठाया। वह चाहता था कि उसे किसी गुफामें छिपा देगा। यहाँसे विदा होते समय ले जायेगा; किन्तु वह चीत्कार करने लगी। उसके क्रन्दनको सुनकर अंगद दौड़े। द्विविदको लक्ष्मण वहीं विभीषणके द्वारा प्राणदण्ड दिलाना चाहते थे, परन्तु विभीषण श्रीरामके किसी जनको दण्ड नहीं देना चाहते थे। उन्होंने कह दिया—'विजयके उल्लासमें सैनिक कुछ उच्छृंखलता करें तो उसे क्षमा किया जाना चाहिये।'

'इस समय इसे दण्ड देना उचित नहीं है।' द्विविद लक्ष्मणके आदेशके अनुसार बन्दी करके लाया गया था। मर्यादा पुरुषोत्तमने अनुजसे कहा—'हमें लंकेश्वरके प्रथम क्षमादानका सम्मान करना चाहिये। यह अब असुर हो ही गया है। तुम द्वापरमें इसे प्राणदण्ड दे देना।[1]

●●●

१. द्विविदको द्वापरमें श्रीबलरामने मारा, यह कथा 'श्रीद्वारिकाधीश' में दी गयी है।

वैदेहीकी विपत्ति-विदा

'अब तुम राजधानी जाकर पहिले पुरीकी व्यवस्था ठीक करो ।' श्रीरामने विभीषणको आज्ञा दी । विभीषण भी इस समय उत्सुक थे नगरमें जानेके लिए । उन्हें अनेक अत्यावश्यक कार्य स्मरण आ रहे थे । भगवती वैदेहीके दर्शन आवश्यक थे और श्रीरघुनाथसे नगरमें पधारनेकी प्रार्थना करनेके पूर्व भी कुछ व्यवस्था करनी ही थी । वे प्रणाम करके चले गये ।

'हनुमान ! विभीषणकी आज्ञा लेकर सीताके समीप जाओ ।' श्रीरामने आञ्जनेयको आदेश दिया—'रावण मारा गया और मैं सुग्रीव तथा लक्ष्मणके साथ सकुशल हूँ, यह समाचार उन्हें देकर लौट आओ ।'

श्रीवैदेही तक समाचार पहुँच गया होगा; किन्तु उन्हें अधिकृत एवं विश्वस्त सूत्रसे भी तो समाचार मिलना चाहिए । राक्षसियोंपर अविश्वास कर सकती हैं । श्रीरामके दलमें केवल हनुमानसे परिचित थीं । जिन्होंने उनका पता लगानेके लिए समुद्र लाँघनेका श्रम करके अकेले शत्रुपुरीमें प्रवेशका साहस किया था, सुख-समाचार पहुँचाना उनका स्वत्व था ।

हनुमानने राजसदन पहुँचकर विभीषणसे अनुमति माँगी तो वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये । वे स्वयं साथ जाते; परन्तु हनुमान एकाकी जाना चाहते थे । इस समय यही उचित था ।

श्रीसीता मलिनदेहा, मलिनवस्त्रा, राक्षसियोंसे घिरी बैठी थीं । उनका मुख सौम्य था । राक्षसियाँ आज बहुत अधिक थीं । सब हाथ जोड़े विनम्रवदना बैठी थीं ।

'अम्ब ! श्रीरामका सेवक यह पवनपुत्र हनुमान आपके पादपद्मोंमें प्रणाम करता है ।' हनुमानने द्वारसे प्रवेश किया था । पृथ्वीपर पड़कर प्रणाम किया । उठकर हाथ जोड़कर खड़े हुए—'सानुज श्रीराम वानरेन्द्र सुग्रीवके साथ सकुशल हैं । शत्रु मारा गया । विभीषणको लंकाका राज्य प्राप्त हो गया । प्रभुने आपकी कुशल पूछी है । सौभाग्य है कि आप जीवित हैं, सकुशल हैं, स्वस्थ हैं । जबसे आपको लौटानेकी प्रतिज्ञा करके गया हूँ, अब तक सोया नहीं हूँ । अब सब

निद्रा पूरी करूँगा । लंका अब हमारे वशमें है । आप अपने उद्यानमें हैं !'

हनुमानने पुनः पृथ्वीमें पड़कर प्रणिपात किया । वे हाथ जोड़कर फिर खड़े हुए । श्रीवैदेही उठकर खड़ी हो गयीं; किन्तु उनके मुखसे कोई शब्द नहीं निकला । आञ्जनेयने पूछा—'आप किस चिन्तामें हैं ?'

'वत्स ! तुमसे यह सम्वाद पाकर मैं हर्ष-विह्वल हो गयी हूँ ।' हर्षाश्रुकी धारा चल पड़ी । गद्गद् स्वर बोलीं—'समझ नहीं पाती हूँ कि तुम्हें क्या दूँ । सृष्टिमें तुम्हें देने योग्य कुछ नहीं है । त्रिभुवनका राज्य भी तुच्छ है इस सम्वादके सम्मुख ।'

'पतिव्रता-शिरोमणि आप ही ऐसी बात कह सकती हैं ।' हनुमान भी हर्ष-विभोर हो उठे—'सानुज श्रीरामको विजयी, कुशली मैं देख रहा हूँ, इससे बड़ा पुरस्कार मुझे क्या प्राप्त हो सकता है ?'

'वत्स ! तुमसा सच्चा सेवक ही ऐसी बात कह सकता है ।' उन निखिलेश्वरीने आशीर्वाद दिया—'तुम बल, वीर्य, तेज, सहनशक्ति, धृतिमें विश्वमें अद्वितीय रहो । श्रीराम-चरणानुराग तुम्हारे अनुग्रहसे प्राणियोंको प्राप्त हो ।'

भाव-विभोर हनुमानने मस्तक रख दिया उनके चारु चरणोंपर । कुछ क्षणके पश्चात् शिशुके समान सरल वाणीसे बोले—'आपकी आज्ञा हो तो मैं अपना पहिला क्रोध आज निकाल लूँ । आपको उत्पीड़ित करने वाली राक्षसियोंको घूंसे-थप्पड़ मारूँ, दाँतोंसे काटूँ, नोच डालूँ, इनके नासिका-कर्ण काट लूँ । इनके केश उखाड़ लूँ । इनके दाँत तोड़ दूँ । यह मेरी पुरानी प्रबल इच्छा है ।'

राक्षसियाँ तो भयके कारण थर-थर काँपने लगीं । वे सब श्रीजानकीके पीछे सिमट गयीं । उन्हें भागकर कहीं भी बचनेकी आशा नहीं थी । श्रीवैदेही सरोष बोलीं—'तुम श्रीरामके सेवक होकर यह क्या कहते हो ? ये पराधीना थीं । अपने राजाकी आज्ञासे मुझे डराती थीं । मेरे भाग्य-दोषसे मुझे कष्ट मिला । लक्ष्मण परम भक्त है, मैंने उनका तिरस्कार किया । उन भक्तापराधका दण्ड मुझे मिला । कष्ट अपने कर्मोंका फल होता है । इसमें इनका तो दोष नहीं है । रावण मर गया तो ये कहाँ मुझको सताती हैं । एकका पाप दूसरेको नहीं भोगना पड़ता । पापीको ही अपने पापका फल भोगना पड़ता है ।'

'हनुमान ! ऐसा कोई सृष्टिमें नहीं है जिससे कभी कोई अपराध न

होता हो ।' श्रीसीताजीने स्नेहपूर्वक समझाया—'पापी हो या पुण्यात्मा, चाहे मार देने ही योग्य हो, श्रेष्ठ पुरुष सबके साथ करुणाका ही व्यवहार करते हैं । पापीके साथ भी हमें बुराई करना उचित नहीं है ।'

'अम्ब ! आप श्रीरामभार्याके अनुरूप ही ये वचन हैं ।' हनुमानने पुनः चरण-वन्दनाकी—'मैं अपने स्वामीके समीप जाना चाहता हूँ, आप कोई सन्देश देंगी ?'

'मैं अपने उन आराध्य चरणोंके दर्शन करना चाहती हूँ ।' श्रीजनकनन्दिनीको और क्या सन्देश देना था ।

'आप अभी सानुज श्रीराघवेन्द्रका दर्शन करेंगी ।' पवनकुमारने प्रणिपात किया और लौटे ।

'यह आरम्भ जिनके निमित्त हुआ, उन शोक-संतप्ता अम्बा सीताका दर्शन करके मैंने उन्हें आपकी विजय सुनायी । वे परमानन्द-निमग्ना हो गयीं सुनकर ।' हनुमानने लौटकर श्रीरघुनाथके पादारविन्दमें प्रणाम करके निवेदन किया—'वे आपके दर्शनोंको आतुर हैं ।'

'जानकीको ले आओ !' विभीषण श्रीहनुमानजीके साथ ही आये थे । उनको यह आदेश देते हुए श्रीरामका स्वर शिथिल था । उनके कमललोचन भर आये थे । उनके भीतर एक मनोमन्थन चल रहा था—'जनकनन्दिनी बहुत अधिक कष्ट पा चुकी हैं, उन्हें और क्लेश कैसे दिया जा सकता है । वे सर्वथा निर्दोष हैं, उनका त्याग कर देना किसी प्रकार उचित नहीं है; किन्तु उनको स्वीकार करनेमें लोकापवाद है । अब राम व्यक्ति नहीं रहा । अपने ही व्यक्तित्वको लेकर विचार करनेका इसे अधिकार नहीं है । अभी अयोध्या चलकर पूर्वजोंका सिंहासन स्वीकार करना होगा इसे । प्रजा तो शासकका अनुवर्तन करती है । लोक-रुचि छिद्रान्वेषी है । अतः अब कर्त्तव्य ?'

विभीषण प्रणाम करके चले गये । देर तक श्रीराम सिर झुकाये सोचते रहे । लक्ष्मण, सुग्रीव किसीमें भी कुछ बोलने-पूछनेका साहस नहीं था । इतना गम्भीर उन्होंने श्रीरामको कभी नहीं देखा था । लेकिन कुछ देरमें जब उन रघुवंश-विभूषणने सिर उठाया, अपने नेत्र पोंछ लिये । उनके मुखपर दृढ़ निर्णयकी आभा आ चुकी थी ।

'मैं जैसी हूँ, वैसी ही अपने स्वामीके श्रीचरणोंमें उपस्थित होना चाहती हूँ ।' श्रीवैदेहीने विभीषणसे कहा । विभीषणको प्रथमावसर प्राप्त हुआ था उन परम श्रद्धेयाके पावन पदोंमें प्रणाम करनेका । वे राजभवनकी निपुणतमा सेविकाओंसे— महाराज्ञी मन्दोदरीकी सेवामें रहनेवाली अत्यन्त सेवा-कला-मर्मज्ञताओंसे घिरे थे । सेविकाओंका वह समूह अपने साथ समस्त प्रसाधनोपकरण ले गया था ।

'मातः ! हम राक्षस हैं । आप जानती हैं कि अविनय हमारा स्वभाव है । हमें अपनी इच्छा ही पूरी करना आता है ।' विभीषणने हाथ जोड़कर विनम्र स्वरमें कहा—'आपने बहुत दिनों तक बड़े भाईके अत्याचार सहे हैं । इस उसीके छोटे भाईके अत्याचार भी आपको एक बार सहने हैं । इसपर इसे तो अपने स्वामी श्रीरघुनाथकी अनुमति प्राप्त हो गयी है ।'

सेविकाओंके संकेत करके विभीषण शीघ्र वहाँसे लौट गये । उनमें एक-एक सेवाकी अनेकों मर्मज्ञा थीं । उन्होंने श्रीमैथिलीको घेर लिया । अयोध्या छोड़नेके पश्चात् प्रथम बार उनके श्रीअंगोंपर सुगन्धित उद्वर्त्तन लगा । उससे अंग-मार्जन करके सबोंने उष्णोदकमें अनेक सुगन्धित द्रव्य डालकर स्नान कराया । वस्त्राभरण सजाये । केशोंको सुलझाया, सुगन्धित तैलसे सिञ्चित किया । उनकी वेणी बनाकर उनमें मौक्तिक लड़ियाँ लगायीं । अंगोंमें अंगराग, चरणोंमें अलक्तक, कण्ठमें पुष्पमाल्य ।

अत्यन्त अनिच्छापूर्वक श्रीमैथिलीको यह सब स्वीकार करना पड़ा । उन्होंने बार-बार कहा—'मेरे स्वामी जटा-वल्कलधारी तपस्वी वेशमें हैं । मुझे यह सब शोभा नहीं देता । मुझपर दया करो ।'

'आप निखिलेश्वर स्वेच्छासे लंका नहीं पधारीं ।' सबने अपने नवीन सम्राट्का स्वर सीख लिया था—'आपने तो यहाँ आत्याचार ही सहे हैं । हम सब राक्षसियाँ हैं । हमें सेवा करना क्या आवे । हमें अपनी कलाको, अपने करोंको कृतार्थ करनेका आज अवसर मिला है । अतः आज भी आपको हम सबका अत्याचार सहना ही है ।'

सूचना मिली विभीषणको सेविकाओंसे—'श्रीवैदेहीको स्नान कराया जा चुका; किन्तु अपने स्वामीका दर्शन करनेके पूर्व वे किसी प्रकार यहाँ मुखमें

जल भी डालनेको प्रस्तुत नहीं हैं ।'

विभीषणने रत्नजटित स्वर्ण-शिविका सज्जित करा रखी थी । उसे उपस्थित किया । भगवती मैथिली उसपर आरूढ़ हुईं । बहुमूल्य कञ्चुक, उष्णोषधारी महाकाय राक्षस वेत्रहस्त शिविकाको चारों ओरसे घेरकर चले । स्वयं विभीषण उनके आगे-आगे चलने लगे ।

श्रीराम नेत्र बन्द किये शिलातलपर ध्यानस्थ बैठे थे । दोनों पार्श्वोंमें लक्ष्मण और सुग्रीव शान्त खड़े थे । दूसरे वानर-यूथप भी पीछे खड़े थे । श्रीरामकी इस समयकी गम्भीरताने सबको अद्भुत असमञ्जसमें डाल दिया था ।

'माता जानकी पधार रही हैं ।' विभीषणने शिविका दुर्गद्वारसे बाहर रोक दी । स्वयं आगे आकर प्रणाम करके निवेदन किया ।

'तुमने मेरा असीम उपकार किया है ।' श्रीरामने सिर उठाकर विभीषणकी ओर देखा । उनका स्वर इतना शुष्क था कि विभीषण चौंक गये । वे जैसे बहुत दूरसे, अत्यन्त तटस्थ बोले—'उन्हें शीघ्र यहाँ ले आओ ।'

पवनकुमार जिन्हें अम्बा कहते थकते नहीं; जिनके रूपकी गुणोंकी सदा प्रशंसा सुनी है, जिनकी प्राप्तिके लिए इतना श्रम, इतना कठिन संघर्ष हुआ, वे श्रीवैदेही आ रही हैं तो उनके दर्शनोंकी उत्सुकता वानरोंमें उठनी ही थी । वे सब एक साथ दौड़ पड़े । शिविका-रक्षक उन्हें वेत्र चलाकर वारित करने लगे । इससे विपुल कोलाहल होने लगा ।

'विभीषण ! सब वानर मेरे अपने हैं । इनका अपमान मेरा अपमान है ।' श्रीराम कुछ सरोष बोले—'स्त्रीका सत्कार उसे पर्देमें रखना नहीं है । उसका शील, उसकी सचरित्रता ही उसका पर्दा है । कष्टमें युद्धमें और स्वयंवरमें पर्देका त्याग दोष नहीं है । अतः सीताको पैदल आना चाहिये । सब वानर उनका दर्शन करें ।

लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीवादि श्रीरामके स्वर तथा बोलनेके ढंगसे सशंक हो गये । विभीषणने जाकर आदेश सुनाया । आगे-आगे चलने लगे । शिविकासे उतरकर लज्जासे सिकुड़ती श्रीजानकी विभीषणके पीछे चलीं । उनका ऐसा श्रृंगार किया था राक्षसियोंने, उनको ऐसे बहुमूल्य वस्त्राभरण धारण कराये थे जैसे जनकपुरसे नववधू बनकर वे अयोध्या आयी थीं । इस वेशमें स्वामीके समीप

जानेमें उन्हें और भी लज्जाका अनुभव हो रहा था। श्रीरामका दर्शन करके उनका मुखकमल खिल उठा। उनके मुखसे हर्ष-विह्वल निकला—'आर्यपुत्र !'

'मैंने रावणको उसके दुस्साहस का दण्ड दे दिया। पुरुषोचित पौरुष प्रकट करके मैंने अपना अपमान मिटा दिया। मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। मैंने समुद्र पार किया और सुग्रीव, विभीषण, हनुमान आदिका सहयोग सफल हुआ।' श्रीरामने जनक-नन्दिनीको प्रणाम करनेका भी अवसर नहीं दिया। वे अत्यन्त रूक्ष स्वरमें बोलने लगे—'अब कोई अपनी शक्तिके गर्वमें इस प्रकार किसी आर्यपुरुषको अपमानित करनेका साहस नहीं करेगा। शत्रु-दलन करके मैंने उत्तम पुरुषका कर्त्तव्य पूरा कर दिया।'

'सीता ! तुम दशग्रीवके यहाँ दस महीने रही हो। तुम्हारा चरित्र शुद्ध है, इसपर कौन विश्वास करेगा ?' इसी निष्ठुरताको धारण करनेके लिए श्रीराम इतने समयसे गम्भीर रहे थे। उनके विषय विष-बाण जैसे वाक्य—'अतः मैं आज्ञा देता हूँ, तुम अब चाहे जहाँ जा सकती हो। मुझे तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है। दशग्रीवकी गोदसे गिरी, दूसरेके घर रही स्त्रीको मैं स्वीकार नहीं कर सकता। तुम लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव अथवा विभीषण किसीके आश्रयमें रहकर जीवन-यापन कर सकती हो।'

'आप ऐसा कहते हैं ? आप उत्तम पुरुष ? आप तो सामान्य मानव नहीं हैं। सब स्त्रियोंको आप एक समान ही समझते हैं ?' अपने आराध्य, प्राणोंके प्राण, श्रेष्ठतमसे—जिनका अहर्निशि स्मरण करते इतने विपत्तिके दिन काटे थे, उनके मुखसे ये वाग्वाण सुनकर श्रीजनकनन्दिनीका मानो हृदय विदीर्ण हो गया। बड़े कष्टसे उन्होंने अपनेको मूर्छित होकर गिरनेसे बचाया। अपने अश्रु पोंछे और क्रोध तथा करुणा मिश्रित स्वरमें बोलीं—'मेरा दोष क्या है ? मेरा शरीर परवश था—मैं क्या कर सकती थी ? इतने दिनों साथ रहकर भी आपने मुझे पहिचाना नहीं तो मैं मारी गयी।'

'मैं अयोनिजा हूँ। अग्निकी साक्षीमें आपने मेरा पाणि-ग्रहण किया है। आप स्वामीके रहते, भरत, लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषणादि पुत्रोपमोका आश्रय लेकर मैं जीवन-यापन करूँ ?' वे ओजस्विनी फूट पड़ी—' आपने हनुमानको भेजा तभी क्यों कहला नहीं दिया था कि आप इस सीताको स्वीकार नहीं

करेंगे ? तभी मैं मर गयी होती । आपको समुद्रपर सेतु बनाने, संग्राम करनेका श्रम नहीं करना पड़ता ।'

'लक्ष्मण ! यदि अब भी मैं तुम्हारी कोई हूँ तो अञ्चल फैलाकर तुमसे भिक्षा माँगती हूँ । उठो ! मेरी सहायता करो ।' उन तेजोमयीके अश्रु सूख गये । उन्होंने सौमित्रकी ओर देखा—'मेरे लिए चिता प्रस्तुत कर दो ! पुण्य होगा तुम्हें । मेरे पतिने सबके सम्मुख मेरा त्याग कर दिया है अतः मैं यह शरीर धारण नहीं करूँगी ।'

लक्ष्मण अत्यन्त व्याकुल हो गये । उन्होंने बहुत दयनीयकी भाँति अग्रजकी ओर देखा; किन्तु श्रीरामने चिता बना देनेका—श्रीवैदेहीकी बात मान लेनेका संकेत कर दिया । वानर व्याकुल रुदन करने लगे । हनुमान रुष्ट होकर समुद्र तटपर जा बैठे । लेकिन लक्ष्मणके मूक अनुरोधपर विभीषणने राक्षसोंको काष्ठ लानेका संकेत कर दिया । चन्दन काष्ठ आ गया तो रोते-रोते लक्ष्मणने चिता सजाकर उसमें अग्नि लगा दी ।

'सब देवता, दिव्य ऋषिगण, दिशाएँ, दिक्पाल मेरा प्रणाम स्वीकार करें । सब साक्षी रहें ।' श्रीजनकनन्दिनी हाथ जोड़कर चिताकी प्रदक्षिणा करके स्वस्थ निर्भय वाणीमें बोली—'मेरा हृदय यदि मेरे स्वामी श्रीरामसे क्षण भरको पृथक न हुआ हो तो लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी रक्षा करें । यदि मैंने सर्व धर्मज्ञ श्रीरामकी मन, वाणी, कर्मसे कभी उपेक्षा न की हो तो अग्नि मेरी रक्षा करें । यदि सबके नित्य साक्षी सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, आकाशने मुझे शुद्ध चरित ही देखा हो तो अग्नि मेरी रक्षा करें ।

सर्वत्र हाहाकार मच गया । स्वर्णवर्णा, रत्नाभरणभूषिता, लोकवन्दिता वैदेहीने अग्निमें प्रवेश किया । लक्ष्मण मूर्छित होकर गिरे । हनुमान पहिले मूर्छित हो चुके थे । सभी वानरोंने, सुग्रीव, जाम्बवन्तने, विभीषणने, राक्षसोंने भी दोनों हाथोंसे नेत्र बन्द कर लिये थे । सब चीत्कार कर रहे थे । केवल श्रीराम स्वस्थ बैठे थे । इन लीलामयको अग्निमें छिपायी अपनी नित्य सहचरीको प्रकट करना था इस छाया-सीताको तिरोहित करके ।

अचानक आकाशसे विमानोंसे भर उठा । ऊपरसे पुष्प वर्षा होने लगी । भगवान् वृषभध्वज, हंसवाहन सृष्टिकर्त्ता, सुरेन्द्र जलाधिप वरुण, यक्षराज कुबेर

सब उपस्थित हो गये । सुरोंको देखकर मर्यादा पुरुषोत्तम अञ्जलि बाँधकर खड़े हो गये ।

सर्वेश्वरेश्वर ! सर्वज्ञ ! सर्वसञ्चालक ! आप अपनी ही अभिन्न शक्ति भगवती सीताकी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं ?' सभी सुरोंने स्तवन किया—'आप स्वयं प्रभु, आत्मतन्त्र हैं; किन्तु सामान्य मनुष्यके समान श्रीजनकनन्दिनीकी उपेक्षा उचित नहीं है ।'

'आप सब मुझ मानव दशरथात्मजकी स्तुति क्यों कर रहे हैं ?' श्रीरामने अत्यन्त संकोचपूर्वक कहा ।

'चक्रायुध ! सर्वकारण कारण ! सर्वान्तर्यामी स्वयं प्रकाश आप ही जैसे लोकोंकी रक्षाके लिए अपनी योगमायाका आश्रय लेकर कभी वाराह, कभी नृसिंह, कभी कच्छप, वामन या मत्स्य बनते हो, वैसे ही इस समय दशरथात्मज बने हो ।' चतुर्मुख हंस वाहन बोले—'पुरुषोत्तम ! अजित ! सृष्टिमें आप ही सत्तारूपसे व्याप्त हो । सृष्टिकी उत्पत्ति, पालन, लयके आश्रय आप हो । सर्व शरण, सर्वाश्रय शरणागत वत्सल ! आपका स्वरूप कौन जान सकता है ? आप सर्वरूप, सर्वनामा, सर्व व्यापक हो । आपका दर्शन, आपका पराक्रम अमोघ है । आप अपनी अभिन्न शक्तिका त्याग कैसे कर सकते हैं ?

'श्रीराम ! यह निष्पापा सीता तुम्हारी है । ये सद्वृत्ता हैं ? इन्होंने मन, वाणी, कर्मसे कभी तुम्हारा अतिक्रमण नहीं किया है ।' सहसा चिताकी लपटें एक बार आकाश तक भभककर बुझ गयीं । चिता बिखर गयी । द्विमूर्धा, सप्तजिह्वा, अंगारलोचन, लपट केश अग्निदेव लोहित वस्त्रधारिणी, घुँघराले केश, अम्लान पुष्पमाल्यसज्जिता श्रीसीताको लेकर प्रकट हुए । बोले—'रावणकी वाटिकामें भी अनाहार रहकर इन्होंने केवल तुम्हारा चिन्तन किया है । तुम अपनेको मानव कहते हो, अतः लोकपाल हव्यवाह होनेके कारण मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ, इन्हें स्वीकार करो । इनका कभी तिरस्कार मत करना ।'

'आपकी आज्ञा उचित है ।' प्रेमाश्रुपूर्ण दृग, गद्गद्स्वर श्रीरामने सिर झुकाया—'निःसन्देह सीतामें कल्मषलेश भी नहीं है; किन्तु दीर्घकाल तक ये रावणान्तःपुरमें रह रही थीं । मैं इन्हें ऐसे ही स्वीकार कर लेता तो लोकापवाद इन्हें भी बहुत व्यथा देता; मैं जानता था, ये सर्वथा निष्पापा हैं । ये अपने

तेजसे ही रक्षित हैं । रावण इनका तिरस्कार करनेमें असमर्थ था । मैं इनका त्याग नहीं कर सकता । अब तो ये आप लोकपूज्यका प्रसाद बनकर मुझे प्राप्त हुई हैं । आपकी आज्ञा मुझे स्वीकार है ।'

श्रीरामने आगे बढ़कर श्रीजनकनन्दिनीका कर पकड़ा । यह साक्षात् अग्निदेवकी साक्षीमें पुनः पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ । आशीर्वाद देकर अग्नि अदृश्य हो गये । श्रीरामने वैदेहीको अपने समीप बैठा लिया ।

हर्षविह्वल लक्ष्मण और हनुमानने एक साथ श्रीसीतारामके चरणोंमें मस्तक रखा । वानर जयघोष करते उछलने-कूदने लगे । लंकामें बधायीके वाद्य बज उठे । दिशाएँ निर्मल हो गयीं । सर्वत्र व्याप्त दुःख, शोक, व्याकुलताकी कालिमा स्वच्छ हो गयी । सुर प्रसन्न होकर सुमनवर्षा करने लगे । गगनमें गन्धर्व, किन्नर, अप्सराओंका नृत्य-वाद्य-महोत्सव प्रारम्भ हो गया ।

●●●

उपसंहार

'आपने लोककण्टक रावणको मारकर सबको सुखी किया । अब अयोध्या पधारें !' भगवान् आशुतोष गगनसे सम्मुख उतरे तो सीता-लक्ष्मणके साथ श्रीराम उठकर खड़े हो गये । प्रणाम किया । वे नीलकण्ठ प्रसन्न थे— 'भरत-कौशल्या तथा अयोध्याके जन बहुत दुःखी हैं । उनको सुखी करें । इक्ष्वाकुवंशकी स्थापना करें । अश्वमेध यज्ञ करके भुवनको भूपतियोंको आदर्श दें ।'

'उस विमानमें श्रीचक्रवर्ती महाराज आ रहे हैं ।' संकेत करके सदाशिव चले गये । निर्मल वस्त्र, तेजोदेह महाराज दशरथ विमानसे उतरे । प्रणाम करते दोनों पुत्रोंको उठाकर हृदयसे लगाया । हर्ष-विभोर बोले—'वत्स रामभद्र ! तुम्हारे बिना स्वर्ग मुझे तुच्छ लगता है । तुमने वनवासकी अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर ली । कैकेयीके कड़े वचन मेरे हृदयमें शूलके समान पीड़ा देते थे, वधूके

साथ आज तुम्हें देखकर मैं सुखी हुआ अब अयोध्या जाओ और यशस्विनी कौशल्याको सुखी करो । मेरी तीव्र अभिलाषा तुम्हें सिंहासनारूढ़ देखनेकी थी । तुमने वनवासकी अवधि पूर्ण करली । दशग्रीवको मारकर सुरोंको सुखी कर दिया । अब मेरी वह अभिलाषा पूर्ण करो ।'

'लक्ष्मण ! तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें धर्म और यश प्राप्त हुआ ।' महाराज दशरथने लक्ष्मणकी ओर देखा—'श्रीराम सदा सबके कल्याणमें लगे रहते हैं । इन्द्रादि देवता भी तुम्हारे इन अग्रजका पूजन करते हैं । ये साक्षात् परमब्रह्म हैं । तुमने इनकी सेवामें लगकर मुझे पुत्रवान बनाया । मैं तुमपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ ।'

'वत्से वैदेही ?' अवनतमुखी पुत्रवधूसे श्रीचक्रवर्ती महाराजने कहा—'श्रीरामने तुम्हारे अपयश-मार्जनके लिए यहाँ तुम्हारी उपेक्षा दिखलायी । इनकी अवज्ञा, या इनपर क्रोध मत करना । यही तुम्हारे परम देवता है ।'

तीनोंको आशीर्वाद देकर महाराज दशरथ विमानमें बैठकर स्वर्ग गये । सायंकाल हो गया था । विभीषण हाथ जोड़े आगे आकर खड़े हो गये—'आप सानुज सुग्रीवादि सहित नगरमें पधारें । स्नान करके आभरण धारण करें ।'

'अभी वनवासकी अवधि व्यतीत नहीं हुई है ।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक कहा—'तुम सुग्रीवादिका सत्कार करो । मैं भाई भरतको स्नान कराके, उनकी जटाओंको सुलझाकर ही शिरःस्नान करूँगा । उनसे मिले बिना एक-एक क्षण युगोंके समान व्यतीत हो रहा है ।'

'आप मुझपर अनुग्रह करें । लंकाकी प्रजाको भी अपनाकर पवित्र कर दें !' विभीषणने पुनः प्रार्थना की—'प्रातःकाल पुष्पक विमानके द्वारा अयोध्या पधारें ।'

'तुमने भली प्रकार मेरा सत्कार किया । मेरा मन भरतके समीप है । उनके बिना मैं कोई भोग स्वीकार नहीं कर सकता । श्रीरामने नगरमें जाना स्वीकार नहीं किया । लक्ष्मण और सीताके साथ वे उस युद्ध-स्थलीमें ही रात्रिको रहे । हनुमान उनके समीप रहे । बहुत आग्रह करके विभीषण सुग्रीवादि वानर-यूथपोंको नगरमें ले गये । उनका उत्तम आतिथ्य किया ।

'विभीषण ! बुरा मत मानना कि मैंने तुम्हारी उपेक्षा की ।' प्रातःकाल

पद-वन्दनाके लिए आते ही श्रीरामने विभीषणसे कहा—'मेरी माताएँ, गुरुदेव, सुहृद सब दुःखी हैं। मैं उन्हें देखनेको आतुर हूँ। अतः विमान शीघ्र उपस्थित करो।'

'सम्पूर्ण स्वर्ण-निर्मित विमान उपस्थित करके विभीषणने निवेदन किया—'दशग्रीवने इसे यक्षराज कुबेरसे छीना था। अब यह आपका है। आप इसे स्वीकार करके मुझे कृतार्थ करें।'

'धनाधीशका स्वत्व है इसपर।' श्रीरामने विमानको देखा—'यह उनकी सेवामें रहे, उचित यही है। आवश्यकता होनेपर मैं इसका उपयोग कर लिया करूँगा। उन लोकपालको इसमें आपत्ति नहीं होनी है।'

अद्भभुत विमान था पुष्पक। उसके लिए किसी चालककी आवश्यकता नहीं थी। जिसके अधिकारमें हो, उसकी इच्छानुसार वह कहीं भी जा सकता था। उसे बिना किसी आरोहीके कहीं भी भेजा या कहींसे भी बुलाया जा सकता था। वह अपने आरोहीकी इच्छानुसार केवल संकल्पसे गगनमें स्थिर रह सकता था, मन्द गतिसे चल सकता था और शब्दसे कई गुना तीव्र भी चल सकता था। वह पृथ्वीपर, जलपर, या पर्वत-शिखरपर भी उतर सकता था।

पुष्पकके भीतर सदा सुखद वातावरण रहता था। शीत, ताप, ओले, वर्षा, अन्धड़का उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। वह बहुत ऊपर ग्रहान्तरोंमें भी जा सकता था और पृथ्वीके बहुत पाससे उड़ सकता था। नगरमें राजपथपर भी उसे उतारा जा सकता था।

पुष्पकमें वैदूर्य मणिकी वेदियाँ बैठनेके लिए बनी थीं। यह समूचा विमान केवल संकल्प करनेसे छोटा अथवा बड़ा किया जा सकता था। छोटा इतना कि एक ही आरोही बैठे। बड़ा इतना कि विशाल सेना उसमें आ जाय। यद्यपि वह यात्री-विमान था, उसे क्षणार्धमें युद्ध-विमान बनाया जा सकता था। उसपर किसी अस्त्र-शस्त्रका प्रभाव नहीं पड़ता था।

पुष्पकमें ऐसी ध्वजाएँ लगी थीं कि वे वृक्ष, पर्वतादिके मध्यसे विमानके जानेपर भी उलझती या टूटती नहीं थी। विमानके आरोही भीतर वैसे ही चल-फिर सकते थे, जैसे भूमिपर हों। विमानके उतरते या उड़ते समय भी

कोई झटका नहीं लगता था ।

सम्पूर्ण विमान बहुत सुसज्ज था । उसमें प्रकाशको इच्छानुसार रखा जा सकता था । विमान उड़ता था, तब बाहर केवल एक मधुर संगीत-लहरी हंसोंके कूजनके समान गूँजती थी । विमानके भीतर तो विमानकी गति, शब्दका पता भी नहीं चलता था ।

निधिपति कुबेरका यह विमान असंख्य आरोहियोंको महीनों अन्तरिक्षकी यात्रा करा सकता था । उसमें सभी आरोहियोंकी सुख-सुविधाकी पूरी सामग्री सदा विद्यमान रहती थी । उसमें बैठने अथवा शयन करनेकी सब सुविधाएँ थीं ।

सबसे बड़ी विशेषता यह कि पुष्पक दिव्य विमान था । वह स्वयं आदेश समझ सकता था एक जीवित बुद्धिमान मनुष्यके समान । उसे दीर्घकाल तक स्मरण रख सकता था और समयपर उसके अनुसार कार्य करता था ।

'वानरेन्द्र ! अब सब वानरोंको अपने स्थानोंपर जानेकी आज्ञा दे दें ।' श्रीरामने विमान आ जानेपर सुग्रीवसे कहा—'इन्हें अपने स्त्री-पुत्र-परिवारसे पृथक हुए पर्याप्त समय हो गया ।'

'मैं आप सबका बहुत उपकृत हूँ । आप सबकी सम्मिलित सहायतासे ही दशग्रीव मारा गया और विभीषण लंकाका राज्य पा सके ।' श्रीरामने समस्त वानर-सेनाको सम्बोधित किया—'अब सब लोग अपने आवास पधारें । किसीको भी कोई कष्ट कभी हो तो मुझे सूचित करनेमें संकोच न करें । अयोध्या आप सबकी है । राम आप सबका है ।'

विदा होनेका समय बहुत विषम होता है यदि किसी प्रियसे विदा होना हो । श्रीराम प्राणोंके प्राण । ऐसा संकोचशील, स्नेहमय परमोदार स्वामी सृष्टिमें कहाँ सुलभ है जो प्रत्येक पल सेवकोंको सम्हालता रहे । लंकाके दारुण युद्धमें भी जिन्होंने स्वयं आगे रहकर सबकी रक्षा की, सबकी सुविधाको आगे रखा, आहत एवं मृत वानरोंको भी स्वस्थ, सजीव बनाया, उन श्रीरामसे विदा—उनका वियोग—वानर व्याकुल हो गये; किन्तु विदा तो होना ही था । सब श्रीसीतारामकी चरण-वन्दना करके जाने लगे ।

किसीको नहीं लगा कि श्रीराम उससे व्यक्तिगत रूपसे नहीं मिले या

उससे बात नहीं की । वे सर्वसमर्थ सबसे मिले । सबका स्वास्थ्य पूछा । सबको कर-स्पर्शसे सन्तुष्ट करके भेजा उन्होंने ।

'वानरेन्द्र ! मैं तुमसा मित्र पाकर गौरवान्वित हुआ ।' श्रीरामने सुग्रीवके कन्धेपर हाथ रखा—'तुमने मित्र-धर्मका पूरा पालन किया । अब तुम किष्किन्धा पधारो ।'

अकेले सुग्रीव ही नहीं थे । उनके पीछे अंगद, जाम्बवन्त, नल-नील, मैन्द, गय, गवाक्षादि सब यूथप हाथ जोड़े, साश्रुलोचन खड़े थे । विभीषण भी इसी समूहके साथ आकर खड़े हो गये थे । केवल द्विविद वानरोंके साथ विदा हो गया था । वह अपने अपकर्मसे—अपराधसे लज्जित होकर श्रीरामके सम्मुख आनेका फिर साहस नहीं कर सका ।

हनुमान इस यूथसे तटस्थ विमानमें श्रीरघुनाथके बैठनेकी वेदिका सज्जित करनेमें लगे थे । उन्हें आवश्यक नहीं लगा कि अयोध्या जानेकी अनुमति श्रीरामसे माँगनी है । उन्होंने साथ जाना सुनिश्चित मान लिया था । वे अपनेको श्रीरामकी सेवामें सदाको अर्पित कर चुके । इसमें पूछनेकी आवश्यकता ?

'हम सब आपके साथ जाकर आपके स्वजनोंका दर्शन करना चाहते हैं ।' सुग्रीव तथा विभीषणने एक साथ प्रार्थना की—'आपके अभिषेक महोत्सवमें सम्मिलित होनेके पश्चात् आप जैसा आदेश करेंगे ।'

'अच्छा, तब सब लोग विमानमें बैठें । श्रीराम सीता तथा अनुजके साथ विमानमें आरूढ़ हो गये । उनके पीछे विभीषण, सुग्रीव आदि भी विमानमें आ बैठे । श्रीरामके आदेशसे विमान ऊपर उठा ।

●●●

पुष्पकारूढ़ राम

अतिशय सुन्दर हंसाकार विमान पुष्पक पृथ्वीसे ऐसे ऊपर उठा, जैसे कोई बैठा हुआ बड़ा पक्षी अपने पंख फैलाकर उड़ जाता है। उससे मधुर कल हंस ध्वनि गूँज रही थी। श्रीरामकी इच्छानुसार विमान बहुत मन्द गतिसे, पृथ्वीके बहुत समीपसे—इतने समीपसे कि लंकाके भवनोंसे, वृक्षोंसे, पर्वतके शिखरसे टकरा न जाय, समरभूमिका एक चक्कार लगाने लगा।

'यहाँ मैंने रावणको मारा। सुरासुरजयी दशग्रीव सचमुच दुर्जय था।' श्रीरामने जनक-नन्दिनीको युद्धभूमि दिखलाना प्रारम्भ किया—'उसने अकल्पनीय पराक्रम प्रकट किया। अब भी उसका वह भग्नरथ नीचे पड़ा है।'

'तुमने तो महाकाय कुम्भकर्णको देखा नहीं होगा।' श्रीरामने युद्धभूमिकी ओर संकेत किया—'वह मरकर गिरा तो वह उतना बड़ा भूभाग उसके शरीरके नीचे आकर गड्ढ़ा बन गया है। यद्यपि तब मैंने उसका मस्तक, उसके दोनों पैर और उसकी भुजाएँ काट दी थीं। अपने राक्षसेन्द्र ये विभीषणजी उसके छोटे भाई हैं—सचमुच छोटे। ये कठिनाईसे अपने हाथ उठाकर उसके सिरका स्पर्श कर सकते होंगे। वह जब लंकाके राजपथपर निकला, तब हमारे अनेक बुद्धिमान यूथपोंने वानरोंको यह कहकर बहलाया—'यह सजीव राक्षस नहीं है। यह रावणकी मायासे निर्मित राक्षसाकार महायन्त्र है।'

सुनकर श्रीवैदेही हँस पड़ीं। श्रीरघुनाथने भी तनिक मन्दस्मितके साथ नीलकी ओर देखा तो उन्होंने मस्तक झुका लिया; क्योंकि यह युक्ति उनके ही मस्तिष्कका आविष्कार थी।

'देवि ! कुम्भकर्ण महाकाय था; किन्तु उसको जीतना उतना कठिन नहीं था, जितना रावणके ज्येष्ठ पुत्र मेघनादको। वह ब्रह्मास्त्रवेत्ता, मायावियोंका मुकुटमणि अदृश्य रहकर युद्ध करता था। एक बार तो उसने हम सबोंको नागपाशसे बाँधकर मूर्छित-मृत तुल्य ही कर दिया था।' संकट समाप्त हो जानेपर उसकी स्मृति व्यक्तिको गौरव देती है। श्रीराम युद्ध-संस्मरण सुना रहे थे।

'मुझे उसी समय दशग्रीवने राक्षसियोंके साथ पुष्पकमें युद्धभूमि देखने भेजा था ।' श्रीमैथिलीके श्रीअंगमें सिहरन उठी—'मैं उसी दिन प्राण त्याग देती, यदि त्रिजटाने मुझे समझाया न होता कि आर्यपुत्र देवरके साथ केवल मूर्छित हैं । बहुत कठिनाईसे मैं उसकी बातका विश्वास कर सकी ।'

'लंकेश उस वृद्धाका ध्यान रखेंगे ।' वैदेहीने विभीषणकी ओर देखा—'वह विपत्तिके दिनोंमें माताके समान मेरी रक्षा करती रही है । वही थी कि आज सीता जीवित है ।'

'मैंने पवनपुत्रसे उसका वह स्वप्न सुन लिया है, जो उन्होंने राक्षसियोंको सुनाया था ।' विभीषणने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया—'सरमाने उन्हें राजमाता मान लिया है । वे अब राज सदनमें आ चुकी हैं ।'

प्रशंसा पूर्ण दृष्टि उठी श्रीराघवेन्द्रकी विभीषणकी ओर । उन्होंने उचित व्यक्तिको लंकाका राज्य दिया है ।

'जो द्वादश वर्ष अनाहार, अनिद्र, ब्रह्मचारी रह चुका हो और दिव्यास्त्र ज्ञानमें भी लगभग संसारमें अद्वितीय ही हो, वही उस इन्द्रजितको मार सकता था ।' अब श्रीरामकी वात्सल्यसे पूर्ण दृष्टि पीछे खड़े अनुजकी ओर गयी तो लज्जासे लक्ष्मण अत्यन्त संकुचित हो गये—'यह दुष्कर कार्य वत्स लक्ष्मणने सम्पन्न किया । यहाँ गुहामें निकुम्भिला मन्दिर है देवीका । यहीं मेघनाद कालीको सन्तुष्ट करनेके लिए यज्ञ करने लगा था । यज्ञ पूरा होनेपर वह अमर हो जाता । लक्ष्मणने यहाँ उसका वध किया युद्ध करके ।'

'ओह ! कितने कष्ट उठाने पड़े मेरे लिए आर्यपुत्रको और मेरे सुकुमार देवरको !' भगवती मैथिलीके लोचन सजल हो गये । उनको पञ्चवटीमें कहे अपने कठोर वचन स्मरण आये । वे लक्ष्मणसे क्षमा-याचना करने वाली थी; किन्तु दृष्टि जब लक्ष्मणकी ओर गयी, वे हाथ जोड़े, सिर झुकाये ऐसे संकुचित हो रहे थे कि समझ गयीं—इनपर बहुत अत्याचार होगा—बड़ी निष्ठुरता होगी इनके प्रति इनसे क्षमा की कोई बात कहना ।

'यहाँ हनुमानने, यहाँ अंगदने, यहाँ सुग्रीवने रावणके प्रमुख सेनापतियोंको मारा ।' श्रीरामने प्रसंगान्तर किया ।

युद्ध-भूमिमें अब तक असंख्य रथ भग्न पड़े थे । कटे कवच, शिरस्त्राण,

आभूषण, अस्त्र-शस्त्र चमक रहे थे। सम्पूर्ण समर-भूमि जमे रक्तके दलदलसे लोहितकृष्ण हो रही थी। अब नीचे श्रृगाल, गृद्ध, काक, श्वानादि अपनी उदरपूर्तिमें लगे थे और स्वभावानुसार लड़-झगड़ रहे थे। सहस्रशः राक्षस सेवक समर-स्थली स्वच्छ करनेमें लग चुके थे। वह दृश्य अत्यन्त वीभत्स था। वह देखने योग्य नहीं था। विमानने लंकाका चक्कर लिया।

'यहाँ नीचे वह इस दासका आवास है।' विभीषण दिखलाने लगे— 'वह अत्युच्च राजसदन है।'

नीचे राक्षस, राक्षसियाँ सब हाथ जोड़े, ऊपर मुख उठाये खड़े थे। राजसदनके ऊपर श्रीजानकीने सरमा और त्रिजटाको साथ खड़े देखकर पहिचाना।

'हम पहिले, इस सुबेल शिखरपर उतरे थे। यह हमारा प्रथम सैनिक शिविर है।' श्रीरामने पवनपुत्रकी ओर देखा—'हनुमानने पहिले ही हमारे लिए इसे प्रशस्त कर दिया था।'

श्रीरघुनाथ कुछ थोड़ा परिचय दे रहे थे, सम्बन्धित कथाएँ सुना रहे थे। बीच-बीचमें किसीकी प्रशंसा भी करते थे। विभीषण, सुग्रीव अथवा वानरोंमें-से भी कोई बोलता था। श्रीजनकनन्दिनी मध्यमें कुछ पूछती थीं। किसीकी ओर कृतज्ञता, वात्सल्य, स्नेहसे देख लेती थीं। उनके लिए सब अपरिचित था। लंकामें तो उन्होंने अशोक-वाटिकाकी ओर भी दृष्टि दशग्रीव वधके पश्चात् डाली। वे बलात् लायी गयीं तब इतनी व्याकुल थीं कि कुछ देखनेकी उनकी अवस्था ही नहीं थी। आज अपने स्वामीके अप्रमेय पौरुषके प्रत्येक प्रतीकको देख लेने, समझ लेनेकी उत्सुकता जाग उठी थी उनमें। उनकी दृष्टि नीचे ही लगी थी। विमान बहुत मन्द गतिसे चल रहा था। जब श्रीराम किसी स्थलको दिखलाते हुए उसका वर्णन करने लगते थे, तब विमान वहाँ लगभग स्थिर हो जाता था।

अच्छा यही था कि विनाशके बहुतसे केवल चिन्ह बचे थे। पवनपुत्रने लंका जलाकर उसे जो रूप दे दिया था, उसको बहुत कुछ दशग्रीव सुधार चुका था। अब तो युद्धके मध्य वानरोंने— विशेषतः हनुमान और अंगदने नगरमें जो ध्वंस किया था, वही देखा जा सकता था। वह भी अल्प नहीं था; किन्तु

विभीषणके आदेशसे उसका भी पुनर्निर्माण प्रारम्भ हो गया था ।

'अहा ! लगता है कि उदधिको आपने माला पहिना दी है ।' श्रीवैदेहीने दूरसे सेतुको देखकर पुलकित होकर कहा । उन्होंने सुन लिया था कि उनके स्वामीने समुद्रपर सेतु-निर्माण करके अकल्पनीय कार्य सम्पन्न किया है; किन्तु सेतुको सम्मुख देखकर उनका हृदय भी अपने आराध्यके इस अतुलनीय पौरुषसे विभोर हो गया । इस उत्ताल तरंगायमान उदधिके वक्षपर पुष्पमाल्यके समान ऊपर-नीचे, उठता-बैठता, लहराता; किन्तु अभग्न सुदृढ़ सेतु ! इतना विशाल, इतना चौड़ा— बिना मध्यमें कोई आधार स्तम्भ दिये !

सेतु अब अधिक स्वाभाविक हो गया था । सागरकी तरंगोंने उसके दोनों ओरके किनारोंको बहुत कुछ सपाट कर दिया था । तरंगोंपर बराबर ऊपर-नीचे होते रहनेके कारण सेतु अधिक समतल बन चुका था । मध्यमें लगे वृक्षोंके पत्ते, पुष्प, फल सूखकर झड़ चुके थे और बह गये थे । अब तो रंग-बिरंगी शिलाएँ भी बराबर समुद्र जलसे सिञ्चित होनेके कारण लगभग एकाकार होने लगी थीं । दस योजन चौड़ा, सौ यौजन लम्बा अब काईके रंगसे उपलिप्त जैसा वह सेतु अद्‌भुत आश्चर्य था सृष्टिका । उसे देखकर विश्वकर्मा और मय दोनों चकित ही हो सकते थे ।

'यह नल-नीलके करोंका कौशल है ।' श्रीरामने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की । इन्होंने इसे केवल पाँच दिनमें पूरा कर दिया था । वृक्ष, शिलाएँ, पर्वत ढोनेका अथक उद्योग वानरेन्द्र सुग्रीवके सैनिकोंने किया ।'

'हम दोनोंको निमित्ति बनाकर जिन्होंने गौरव दिया, हमारे स्वामी तो सदासे सेवकको सुयश देने वाले हैं ।' नल-नील हाथ जोड़कर खड़े हो गये— 'हम दोनों तो असफल हो चुके थे, जब समुद्र हमारे द्वारा स्थापित शिलाएँ बहा ले गया था । यदि आपके नामने उन्हें संयोजित न किया होता, हम क्या कर लेते ?'

श्रीजनक-नन्दिनीसे अपने आराध्यके नामका असीम प्रभाव अज्ञात नहीं है । उस नामका स्मरण करके प्राणी भवसिन्धु पार कर लेता है; किन्तु पवनपुत्रने शिला-संयोजनका यह प्रभाव सूचित किया तो उन्हें आनन्दमिश्रित आश्चर्य ही हुआ ।

'आर्य तो समुद्रसे मार्ग पानेके लिए वहाँ अनशन करके प्रार्थना करते लेट गये थे । तीन दिन उपोषित पड़े रहे ।' लक्ष्मणने श्रीरामका वह प्रचण्ड पौरुष सुनाया, जिससे भीत समुद्रके देवताको 'शरण ! शरण !!' पुकारते प्रकट होना पड़ा था ।

'वहाँ विभीषण मिले थे !' श्रीरामने दूरसे संकेत किया—'तुम्हें स्मरण होगा कि वहाँ हमने भगवान शंकरकी स्थापना की है ।'

'मैं उन आशुतोषके दर्शन करूँगी ।' श्रीजानकीके कहते ही विमान सागरके दूसरे तटपर सेतुबन्धके समीप कुछ मंडलाकार घूमकर उतरा और पक्षीके समान अपने पंख समेटकर उस स्थापित श्रीविग्रहके समीप तक चला गया ।

श्रीरामने वैदेही तथा लक्ष्मणके साथ समुद्र-स्नान करके श्रीरामेश्वर लिंग विग्रहका पूजन किया । विभीषण तथा अन्य सबने भी सागर-स्नान तथा शिवार्चन सम्पन्न किया । श्रीरामने हनुमदीश्वरकी स्थापनाकी कथा सुनायी । सबने उस हनुमदीश्वर लिंगकी भी अर्चाकी । हनुमानजी इस अवसरपर तनिक लज्जित हो गये थे ।

अचानक विभीषण अञ्जलि बाँधकर सम्मुख खड़े हो गये । श्रीरामने उनकी ओर देखा । इस दृष्टिमें ही प्रश्न था—'कुछ कहना है तुमको ? मुझसे कुछ कहनेमें मेरे अपनोंको संकोच क्यों होना चाहिये ?'

लक्ष्मण, सुग्रीवादि भी विभीषणकी ओर देखने लगे । सबको कुतूहल हुआ कि ये लंकेश उस स्थापनापर आकर जहाँ प्रभुके प्रथम-दर्शन इन्होंने किये थे, अब क्या कहना चाहते हैं ?

'आपने दुर्दान्त दशग्रीवको मारकर सुर-साधु सबको सुखीकर दिया । समुद्रपर बना यह सेतु न भी रहे तो भी आपके सुयशसे त्रिभुवन सदा उज्ज्वल रहेगा ।' अत्यन्त विनम्र स्वरमें विभीषण प्रार्थना कर रहे थे—'आपने लंकाके पालनका दायित्व अपने इस अयोग्य दासपर डाल दिया । सेतु बना रहा तो मानव, मुनिगण, विप्रगण कोई भी सरलतापूर्वक चाहे जब लंका पहुँचते रहेंगे । राक्षसोंका स्वभाव आप जानते हो । वह उनका जन्मजात स्वभाव सम्पूर्ण परिवर्तित हो जाय, यदि ऐसा आप आशीर्वाद दे दो तो मुझे कुछ कहना नहीं है । अन्यथा अपने यहाँ आ गये साधुओं, मुनियों, गायोंका वे अपमान नहीं

करेंगे, उन्हें कष्ट नहीं देंगे, यह विश्वास मुझे नहीं है ।'

'मैं अपनी असमर्थता निवेदन कर दूँ । उग्र दण्ड देना मेरे स्वभावमें नहीं है । मैं कठोर दण्ड-विधानकी क्रूरता नहीं कर पाता ।' विभीषणने कहा— 'दशग्रीवके उग्र दण्डसे राक्षस डरते थे । इस समय जिनके स्वजन मारे गये हैं, उनसे अपराध भी हो तो भी उन्हें कठोर दण्ड देना नृशंसता लगेगा मुझे । अतः यदि इस सेतुको सुरक्षित रखना है ।'

'अब इसकी आवश्यकता भी क्या है ।' श्रीराम उठ खड़े हुए—'हमारा प्रयोजन पूरा हो गया । तुमको और तुम्हारे राक्षसोंको सेतुकी कभी आवश्यकता नहीं हुई । तुम ठीक कहते हो कि अब यदि यह बना रहता है तो इसके दुरुपयोगकी ही सम्भावना अधिक है ।'

श्रीराम वहाँसे धनुष लिए पैदल ही उस स्थान तक पहुँचे जिसे आज धनुष्कोटि कहा जाता है ।[1] जहाँसे सेतुकी चौड़ाईका प्रारम्भ होता था । सेतुकी चौड़ाईका दूसरा भाग तो दक्षिण-पश्चिम वर्तमान कन्याकुमारी तक चला गया था । विभीषण, लक्ष्मणादि सभी श्रीरामके पीछे वहाँ तक आ गये ।

अपने यशके इस अद्‌भुत प्रतीककी ओर एक बार दृष्टि उठाकर भी उन महत्तमने नहीं देखा । अपने धनुषकी नोंकसे प्रारम्भकी एक शिला मात्र हटी; किन्तु जिन सत्य संकल्पके संकल्प-बलसे सेतु टिका था, उन्होंने ही उसे भग्न करनेका संकल्प किया तो उसे टूटनेमें कितने क्षण लगने थे ? समुद्रको स्वयं कहाँ यह बन्धन स्वीकार था । उत्ताल तरंगोंके थपेड़ोंमें क्षण भरमें सेतु अदृश्य हो गया । वे तैरते पाषाण कहाँ गये, कौन कह सकता है ।

सब स्तब्ध रह गये । नीरव ही सब लौटे और श्रीसीतारामके साथ पुष्पकपर जा बैठे । पुष्पकके पंख फैल गये और वह पक्षीके समान आकाशमें उड़ गया ।

●●●

---

१. धनुष्कोटिका मन्दिर तथा उस अन्तरीपका अन्तिम भाग समुद्री वात्याचक्र (साइक्लोन) ने ध्वस्त कर दिया था । मन्दिर तो नहीं है; किन्तु अन्तरीप निकल आया है ।

किष्किन्धामें

'अपने वानरेन्द्रकी पुरी किष्किन्धा आ रही है ।' श्रीजानकीका ध्यान नीचेकी ओर राघवेन्द्रने दिलाया । समुद्रतट छोड़नेके पश्चात् अबतक कोई उल्लेखनीय दृश्य आया नहीं था ।

'विमानको यहाँ उतरना चाहिये ।' वैदेहीने उत्सुक होकर कहा—'यहाँ वानरेन्द्रकी पत्नियाँ हैं । दूसरे भी वानर यूथपोंकी जो पत्नियाँ यहाँ हैं, उनसे मैं मिलूँगी । यदि आर्यपुत्र अनुमति दे तो उन्हें भी अयोध्या साथ ले चलें ।'

'अवश्य उन्हें साथ ले लेना चाहिये ।' श्रीरामने प्रसन्न होकर कहा । विमान नीचे उतरने लगा था । किष्किन्धाके समीप भूमिका स्पर्श करते ही उसने पंख समेट लिये ।

'मित्र ! आप शीघ्रता करेंगे ।' श्रीरामने सुग्रीवसे अनुरोध किया । स्पष्ट हो गया कि वे स्वयं तो उस वानर पुरीमें नहीं ही जायेंगे, श्रीजनकनन्दिनी तथा लक्ष्मणको भी जानेका अवकाश नहीं है ।

'आपकी आज्ञा हो तो मैं अपनी माताके चरण-दर्शन कर आऊँ ।' पवनकुमारने प्रार्थनाकी । उनके पिता केशरीजी तो साथ ही थे । 'विमानको मैं मार्गमें मिल जाऊँगा ।'

'उन पूजनीयाके हम सब दर्शन करेंगे ।' श्रीराघवेन्द्र सुप्रसन्न बोले—'तुम पहिले जा सकते हो; क्योंकि माताके पुत्र-मिलनको कुछ एकान्त क्षण प्राप्त होने चाहिये ।'

सुग्रीव, अंगदादि विमानसे नगरमें चले गये और बहुत शीघ्र लौटे । उनके साथ किष्किन्धाके उनके सेवक, पत्नियाँ तथा स्वागत सामग्री थी ।

ताराने श्रीरामकी, लक्ष्मणकी भी चरण-वन्दनाकी । पद-वन्दनाके समय उसे श्रीजानकीने हृदयसे लगा लिया । उसने साश्रुलोचन कहा—'हम वानरोंकी पुरी आप जगद्धात्रीके पादारविन्दसे पवित्र होने योग्य नहीं है ?'

'आर्यपुत्र अत्यन्त आतुर हैं अयोध्या पहुँचनेके लिए ।' श्रीवैदेहीने

संकोचके साथ मानो क्षमा याचना की—'वानरेन्द्र आर्यपुत्रके अपने हैं, अतः यह पुरी तो हमारी ही है । तुम इस समयकी हमारी स्थिति देखकर बुरा मत मानना ।'

'समझती हूँ देवि ! आप चौदह वर्षोंसे वन-वन भटकती रही हैं । राक्षसके द्वारा उत्पीड़ित हुई हैं । अयोध्या समाचार पहुँचा होगा । वहाँके स्वजन अपनी साम्राज्ञीके दर्शनोंके लिए कितने उत्सुक, कितने व्याकुल होंगे, समझ सकती हूँ ।' ताराने कहा—'मैं अधिक आग्रह नहीं करूँगी ।'

तारा अयोध्या नहीं जा सकती थी । सुग्रीव और अंगद दोनों ही अयोध्या जा रहे थे, अतः वानर-पुरीकी व्यवस्था बनाये रखनेके लिये ताराका यहीं बने रहना आवश्यक था । वस्तुतः किष्किन्धाकी समस्त व्यवस्था वानरेन्द्रके यहाँ न होनेपर ताराके ही हाथोंमें रहती थी ।

सुग्रीवके साथ उनकी पत्नी रुमाको साथ जाना था । रुमाने पदवन्दनाकी तो श्रीजानकीने उसे अंकमें ही समेट लिया । वह अत्यन्त संकोची, छुई-मुई-सी अपनी पुत्री जैसी ही प्रतीत हुई श्रीजनक-नन्दिनीको । उसे उन्होंने स्नेहपूर्वक विमानमें अपने समीप बैठाना चाहा; किन्तु वह उनके पाद-पीठके समीप भी बहुत सिकुड़ी सिमटी बैठी ।

श्रीजनकनन्दिनी नित्य अतुलनीय हैं । वे निखिलेश्वरि— सर्वलोक वन्दनीया सुरेन्द्र भी उनके श्रीचरणोंमें मस्तक रखकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं । अनन्त वात्सल्यकी घनीभूत मूर्ति वे कृपा-पारावार प्रतिमा ।

लंकामें मन्दोदरी और विभीषण पत्नी सरमा थीं तथा किष्किन्धामें यहाँ तारा और रुमा मिलीं । चारों अपूर्व सुन्दरियाँ; किन्तु तुलना ही करनी हो तो मन्दोदरी एवं तारा तथा सरमा और रुमासे की जानी चाहिये । मन्दोदरी एवं तारा दोनोंको देखकर लगता है कि वे जन्मजात प्रशासिका हैं । वे स्वरूपसे ही शासन करनके लिए उत्पन्न हुई हैं । दोनों तत्त्वज्ञा, दीर्घदर्शिनी, गम्भीर । दोनोंको दैवने एक-सी परिस्थिति प्रदान की । लेकिन तारा किञ्चित् प्रगल्भा और मन्दोदरी अधिक विनयावनता । सम्भव है । बालि-की स्नेहशीलता तथा दशग्रीवकी दुर्धर्षताका दोनोंमें प्रभाव आया हो ।

सरमा सहज सेवा परायणा । श्रीवैदेही उसे 'सखि !' कहती थीं किन्तु

रुमा इतनी लज्जामयी, सिकुड़ी रहनेवाली जैसे कोई बहुत सुकुमार सुमन हो, स्पर्श करते ही म्लान पड़ जायेगा। श्रीमैथिलीका वात्सल्य वह मिलते ही प्राप्त कर चुकी थी।

तारा बहुत-सा उपहार ले आयी थी। श्रीरघुनाथने उसे स्वीकार करनेकी स्वीकृति दे दी। श्रीजनकनन्दिनीने उसे स्वीकार कर लिया। अद्‌भुत थे वे उपहार। अनेक रंगोंके, अनेक गुणवाले मधुछत्रक, विचित्र प्रभाव वाली औषधियाँ थीं उनमें। इनको प्राप्त करना किसी सम्राट्के लिए भी कठिन ही था।

किष्किन्धासे विदा होते समय श्रीवैदेहीने ऋष्यमूक शिखर देखनेकी इच्छा की—'आर्यपुत्र जहाँ पाँच मास रहे हैं, वह गुहा मुझे देखनी है।'

'तुम्हारे बिना कैसे व्यतीत हुए वे दिन, मैं ही जानता हूँ।' सस्मित श्रीरघुनाथने कहा।

वह गुहा, वह शिलातल जिसपर श्रीरघुनाथ बैठा करते थे—बालिकाके समान दौड़ती श्रीवैदेही उन स्थानोंपर घूमीं। उन्होंने पता नहीं कितने स्थानोंपर मस्तक रखा, कितने स्थानोंको स्पर्श किया। यहाँ केवल लक्ष्मण साथ बतला रहे थे स्थानोंको। शेष सब दर्शक बने रहे।

श्रीरघुनाथको शीघ्रता थी। सबको विमानमें बैठकर उस पावन स्थलीको प्रणाम करके विदा होना पड़ा। अब विमान अञ्जना-शिखरपर जाकर उतरा। अब तक पवनकुमारने माताको कोई समाचार नहीं दिया था। आते ही मातृपदोंमें उन्होंने प्रणाम किया तो माताने उन्हें हृदयसे लगा लिया। वे अब तक माताके वात्सल्य-विभोर अंकमें शिशु बने बैठे थे। बहुत कालके पश्चात् पुत्रको पाकर माता भी शरीरकी सुधि भूल गयी थीं।

अब पुष्पकको उतरते देखकर हनुमान सावधान हुए। माताको सूचना दी—'आपके दर्शनार्थ सानुज श्रीरघुनाथ पधारे हैं। अम्बा सीता साथ हैं और अपने प्रमुख परिकरोंके साथ वानरेन्द्र सुग्रीव भी।'

केशरीने इस अवसरपर उपयुक्त माना कि वे पृथक रहें। देवी अञ्जनाने शीघ्रतापूर्वक स्वागत-सम्भार एकत्र करना प्रारम्भ किया। वे बार-बार दुहरा रही थीं—'हनुमान! तू सच्चा पुत्र सिद्ध हुआ। तूने मेरा मातृत्व सफल किया।

मुझे कृतकृत्य किया ।'

सानुज श्रीरामने गोत्र तथा पिताका नाम लेकर प्रणाम किया । पुलकित शरीर, अंग-अंग काँपता, अविरल अश्रुधारा, बोलनेमें असमर्थ वाणी । माता अञ्जना तो जैसे प्रतिमाके समान स्थिर रह गयीं । वे मूर्छित होकर गिर पड़तीं; किन्तु तभी श्रीजानकीने करोंमें अञ्चल लेकर उनके चरणोंपर सिर रखना चाहा । उन्हें अंकमें समेटकर वे सावधान ही हुईं । अश्रु सिक्त हो गयीं श्रीमैथिलीकी अलकें ।

अर्घ्य, पाद्यादिसे जब वे श्रीरामकी अर्चा कर चुकीं, दूसरे लोगोंने प्रणाम करना प्रारम्भ किया । हनुमान उनका परिचय देने लगे—'ये वानरेन्द्र सुग्रीव ! ये युवराज अंगद ! ये ऋक्षपति जाम्बवान । ये वानर विश्वकर्मा नल-नील बन्धु ।'

'ये लंकाधिप राक्षसेश्वर विभीषण !' जानबूझकर विभीषणने सबसे अन्तमें प्रणाम किया था । देवी अञ्जनाके जाति स्वजनोंको प्रथम अवसर प्राप्त होना चाहिये था यहाँ ।

'हनुमान ! लंकाधिप तो दशग्रीव है ।' पुत्रकी ओर देखकर प्रश्न किया माता अञ्जनाने ।

'रघुनाथने उसे समर-शैय्या दे दी ।' हनुमानजीने संक्षिप्त कथा सुनाना प्रारम्भ किया—'वह सुर-मुनियोंका सन्त्रासक समाप्त हो गया । अब तो श्रीरघुनाथकी कृपाके परम भाजन विभीषणजी राक्षसाधिप हैं ।'

'तूने अञ्जनाका दूध पिया है, धिक्कार है तुझे !' माता अञ्जनाके नेत्र अंगार हो उठे—'तू क्या करता रहा ? मेरे दूधको पीकर भी तुझमें शक्ति नहीं आयी, साहस नहीं हुआ कि सीताके अपहरणकर्त्ताओंको समुचित दण्ड दे देता । मैंने व्यर्थ तुझे अपना दूध पिलाया । तू दशग्रीवको मसल नहीं दे सकता था मेरा दूध पीकर भी कि रामको वानरेन्द्रसे सहायता लेनी पड़ी और इतना श्रम करना पड़ा । मुझे मुख दिखलानेका साहस तूने कैसे किया ?'

फड़कते अधर, कठोर भृकुटि माताके सम्मुख महावीर हनुमान भय कातर बालकके समान खड़े थे । बड़ी कठिनाईसे काँपते स्वरमें किसी प्रकार बोल सके—'आप मुझपर अकारण क्रोध करती हैं । मुझे ऋक्षपति जाम्बवन्तने वर्जित किया था । ये आपके सम्मुख हैं, इनसे पूछ लें । ये हमने वृद्ध थे,

सम्मान्य थे। मेरा अपराध इतना ही है कि मैंने इनका अनुशासन स्वीकार कर लिया। इनका तर्क था—'दशग्रीव-दलनका सुयश इस सेवकको न लेकर अपने स्वामीके लिए सुरक्षित रहने देना चाहिये।'

'ऋक्षपति हम सबके सम्मान्य हैं।' माताका रोष शान्त हो गया—'उनका सोचना ही उचित था। तुमने उनका आदेश स्वीकार करके समझदारी दिखलायी।'

'कुमार! तुम समझते हो कि अञ्जना सबके सम्मुख अपने पुत्र और अपने दूधकी प्रशंसामें डींग मार रही है?' माता अञ्जनाकी दृष्टि लक्ष्मणलालकी ओर चली गयी। उनके मुखपर स्मित देखकर वे बड़ी गम्भीरतासे बोलीं—'अञ्जनाके दूधकी शक्ति देखोगे? देखोगे कि हनुमानने कैसा दूध पिया है?'

किसीको कुछ कहनेका अवकाश नहीं मिला। माता अञ्जना घूमीं और वानरोंके समूहसे बाहर एक ओर आकर अपना वक्षावरण हटाया उन्होंने। इतने दीर्घकालके पश्चात् पुत्रके मिलनेसे वात्सल्याधिक्यके कारण पयोधरोंमें दूध भर आया था। उनमें-से एकको उन्होंने अपने हाथसे दबाया।

दूधकी उज्ज्वल धारा सम्मुखके पर्वत-शिखरपर पड़ी, मानो वज्रपात हुआ हो। भयंकर शब्दके साथ वह शिखर मध्यसे विदीर्ण हो गया। वानर स्तब्ध रह गये। माता घूमीं तो लक्ष्मण उनके चरणोंपर गिर पड़े।

'अब आप हम सबको अनुमति दें।' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर सादर मस्तक झुकाया।

'तुम परम पुरुष मेरे यहाँ पधारे, यह वानरी तुम्हारा कोई सत्कार करने योग्य नहीं है।' माताका स्वर फिर विह्वल हो गया—'मैं अपने हनुमानको तुम्हारे चरणोंमें अर्पित करती हूँ। इसे स्वीकार कर लो। यह सदा तुम्हारा विनम्र सेवक बना रहेगा।'

'राम आप पूजनीयाके आदेशको स्मरण रखेगा।' श्रीरामने पुनः वन्दन किया। श्रीवेदेहीको अंकमाल मिली। वानरेन्द्रने, वानरोंने, विभीषणने तथा वानर-पत्नियोंने भी चरण-वन्दना की। सब पुष्पकपर बैठे, तब तक हनुमान माताके समीप खड़े रहे। सबके अन्तमें माताके पदोंपर मस्तक रखकर, उनसे अनुमति लेकर वे विमानपर आये। जब तक पुष्पक गगनमें दीखता रहा, देवी

अञ्जना स्थिर खड़ी उसे अपलक देखती रहीं ।

'किष्किन्धामें वानरेन्द्रकी सेविकाओं, सहचरियोंने मुझमें एक विलक्षण त्रुटि ढूँढ़ ली थी ।' विमानपर बैठनेके पश्चात् विभीषणने वातावरणको सुप्रसन्न बनानेके उद्देश्यसे श्रीरघुनाथसे निवेदन किया—'सबका कहना था कि आप दोनों भाई तो दिव्य पुरुष हैं, अतः आपका स्वरूप देवतुल्य होना उचित है; किन्तु मैं बिना पूँछके अशोभन लगता हूँ ।'

सुनकर श्रीरघुनाथ, जनकनन्दिनी भी हँस पड़ी । लक्ष्मणलालके भी मुखपर स्मित आया । अवश्य वानरियोंने मुख छिपा लिया । वानरेन्द्र सुग्रीव संकुचित हो गये । रुमा तो लज्जासे लाल हो उठी ।

'वे सब कहती थीं कि मैं आकारमें वानरेन्द्रसे विशाल हूँ तो मेरी पूँछ भी वानरेन्द्रसे बड़ी होनी चाहिये थी । एक छोटी पूँछ भी मेरे नहीं ।' विभीषणजी हँसते कह रहे थे—वानर साम्राज्ञी तारादेवीने मेरा पक्ष लिया था । उन्होंने सबको समझाया—'जैसे हम वानरोंमें पुरुषोंके ही पूँछ होती है, वानरियोंके नहीं होती, वैसे ही राक्षसों और मनुष्योंमें भी केवल पुरुषोंके मूँछे होती हैं ।'

विभीषणने अपनी बड़ी मूछोंपर हाथ फिरा लिया । कुमार लक्ष्मण हँसे—'हम इन मूँछोंसे वञ्चित हैं ।'

'आप दोनों तो देवपुरुष हैं—पुरुषोत्तम ।' इस बार वानरेन्द्र सुग्रीवने हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया ।'

'यह महर्षि मतंगका आश्रम है ।' श्रीरामने नीचेकी ओर संकेत किया—'तपस्विनी शबरी यहीं मिली थी । उसने इतने स्वादिष्ट बेर खिलाये कि उनका स्वाद मुझे अब तक स्मरण है । वैसा स्वादिष्ट पदार्थ कभी नहीं मिला था ।'

परिहास समाप्त हो गया । सबकी दृष्टि नीचे लग गयी ।

●●●

प्रयाग पहुँचे

'आर्यपुत्रको जटायु यहीं कहीं मिले होंगे !' मैथिलीके नेत्र भर आये— 'वह महावट दीख रहा है, जिसपर वे रहा करते थे । उन वृद्धने मेरे लिए दशग्रीवसे युद्ध किया । उससे एक बार मुझे छीन लिया था । उसका रथ नष्ट कर दिया और उसे इतना आहत किया कि वह मूर्छित हो गया था ।'

'यहाँ मिले थे वे पितृव्य !' श्रीरामने भी अपने नेत्र पोंछे—'उनके प्राण केवल तुम्हारा समाचार मुझे सुनानेके लिए ही शरीरमें अटके थे । धन्य थे वे ।'

विमान वहाँ प्राय: रुक गया था गगनमें । श्रीसीतारामने लक्ष्मणने भी जटायुको उद्देश्य करके मस्तक झुकाया । सभी वानरोंने उझककर नीचे देखा, जैसे वे महाप्राण अब भी वहाँ होंगे ।

'उन आदरणीयकी अन्त्येष्टि करके हम आगे बढ़े तो वहाँ कबन्ध मिल गया था । उसने लक्ष्मणको शिशुके समान पकड़ लिया ।' श्रीरामने पीछेकी ओर संकेत किया, जहाँ अब केवल विशाल गर्त अवशेष था । श्रीमैथिलीने सस्नेह लक्ष्मणकी ओर देखा ।

'वह अपनी भाग्यहीना पर्णकुटी है पञ्चवटीमें ।' अनेक-अनेक स्मृतियाँ एक साथ मानसमें जाग उठीं । लक्ष्मणने भी नीचे देखा और एक दीर्घ-श्वास ली ।

'यहीं तो आपका वरण करने सूर्पणखा आयी थी ।' जानकीके अधरोंपर स्मित आया—'वह तो देवरको भी वर-बनानेको प्रस्तुत थी; किन्तु इनको उसके नासिका-कर्ण इतने बुरे लगे कि उन्हें काट ही दिया ।'

'वही दशग्रीवके विनाशकी आरम्भ बनी । उसीसे तुम्हारी विपत्ति प्रारम्भ हुई ।' श्रीरघुनाथने विभीषणकी ओर देखा—'किन्तु राक्षसेन्द्रको उस अपनी भगिनीके प्रति सदय रहना चाहिये । वह अपनी दुर्बलतासे विवश बनी ।'

'मैंने सुन लिया है कि उसने स्वतः लंकाका त्यागकर दिया और

मधुवनमें शरण ली है ।' विभीषणने निवेदन किया—'शैशवसे वह मुझसे चिढ़ती रही थी । मैं सदय भी रहता, तब भी वह मेरा विश्वास नहीं कर सकती थी ।'

'वह महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम है ।' विमानने वेग पकड़ लिया था । श्रीराम नीचे दिखलाने लगे—'वहाँ महामुनि शरभंगने हमारे सामने ही शरीर त्यागा था ।'

'आर्यपुत्रने महर्षि अगस्त्यका आश्रम छोड़ ही दिया ।' श्रीजानकीने स्मरण दिलाया—'वहीं आपको विजयदायी आयुध प्राप्त हुए थे । भगवती लोपामुद्राका स्नेह मिला था मुझे ।'

'महर्षिने मुझे समरभूमिमें भी दर्शन देनेका आग्रह किया था ।' श्रीरामने आदित्य-हृदय प्राप्तिका वर्णन करके कहा—'उन्होंने अयोध्या आनेका आश्वासन दिया है । अतः इतनी दूर गगनसे उनके उटजके ऊपरसे उड़ना अशिष्टता ही होती । अब समय भी थोड़ा ही है । हम दिनके चतुर्थ प्रहर प्रयाग पहुंच सकेंगे ।'

'वह नीचे महर्षि अत्रिका आश्रम है । भगवती अनुसूयाने यहीं देवीको दिव्य वस्त्रालंकार दिये थे ।' श्रीरघुनाथने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया । श्रीजानकीने लक्ष्मणने भी ऐसा ही किया । वानरोंने भी अनुकरण किया ।

'वह पयस्विनी-मन्दाकिनी संगमके समीप अपनी दोनों पर्णकुटी हैं । ये अब तक सुरक्षित हैं !' श्रीमैथिलीने ममता और आश्चर्यके साथ नीचे देखा ।

'आपके कर-कमलों द्वारा लगायी गयी लतिका पुष्पभारसे लदी है ।' इस बार लक्ष्मण बोले—'आपने जो आम्रतरु आरोपित किया था, उसमें भी फलोंके घौर लगे हैं । वह आपकी पर्णशालाके सम्मुख बैठा मृग सम्भवतः अब भी आपके करोंका नीवार पाना चाहता है ।'

'वह मृग शावक इतना बड़ा हो गया ? इतने बड़े सींग हो गये उसके ? उसने तो बहुत-सी संगिनियाँ जुटा ली हैं ।' जैसे अपने पुत्रका परिवार देखकर माता प्रसन्न हो गयी हों ।

'अरण्यानी मानवोंको भले नागरिक जन असभ्य कहें, उनके शरीरपर वस्त्र भले अत्यल्प हों, उनके हृदयमें अपार श्रद्धा होती है ।' श्रीरघुनाथ सस्नेह कह रहे थे—'देवि ! चित्रकूटमें अपने आसपास आकर बस गये कोल-किरातोंका स्नेह मुझे भूलता नहीं । उनकी श्रद्धाने ही हमारी पर्णकुटियोंको अबतक यथावत

रक्षित रखा है । उनका समूह जहाँ-तहाँ सिर उठाये विमान देखनेमें लगा है; किन्तु इनको तो अयोध्या बुलाकर ही सत्कृत करना है ।'

'ये अयोध्या आवेंगे ?' लक्ष्मणके स्वरमें सन्देह स्पष्ट था । सचमुच अरण्यमें सेवा करना सुगम था इनके लिए; किन्तु अयोध्याका महानगर इनके अनुकूल पड़ेगा ?

'अपने निषादराज इनके अधिपति हैं ।' श्रीरामने समाधान कर दिया— 'वे इनको अभिमन्त्रित कर लेंगे और इनका आतिथ्य भी उचित रीतिसे करेंगे ।'

'यह महर्षि वाल्मीकिका आश्रम ।' श्रीरघुनाथने नीचे संकेत किया— 'ये आदि कवि अद्वितीय तपस्वी हैं ।'

'मुझे अपने पितृचरणों जैसे ही प्रतीत हुए । उनका वात्सल्य आर्य पुत्रपर भी बहुत था ।' श्रीवैदेहीके साथ सभीने प्रणाम किया ।

'अब नीचे गंगा-यमुनाकी धारा स्पष्ट दीख रही है । वह संगमके आगे महर्षि भरद्वाजका आश्रम है ।' श्रीरामकी इच्छानुसार विमान कुछ और आगे बढ़ गया । दूरसे देखकर श्रीरघुनाथने संकेत किया—'वह पुण्य सलिला सरयू और उसके तटपर इक्ष्वाकु कुलकी अमित गौरवशालिनी पुरी अयोध्या ।'

श्रीरामने, लक्ष्मणने, श्रीवैदेहीने आसनसे उठकर अञ्जलि बाँधकर जन्मभूमिको प्रणाम किया । वानर प्रसन्नतासे उछलने लगे । श्रीरामने कहा— 'मुझे यह पावनपुरी वैकुण्ठसे भी प्रिय है ।

अयोध्यासे श्रीराम चैत्र शुक्ल पञ्चमीको वनके लिए चले थे । आज चैत्र शुक्ल पञ्चमी थी । वनके चौदह वर्ष पूर्ण हो गये आज । कल प्रातः अयोध्या पहुँचना था । विमान लौटा । वह भरद्वाज आश्रमके समीप उतरा । ब्रह्मचारियोंने दौड़कर महर्षिको सूचना दी । वे उत्सुकतावश विमानके उतरते ही समीप आ गये थे ।

'इक्ष्वाकु गोत्रीय दाशरथि राम श्रीचरणोंमें प्रणत है ।' श्रीरामने सानुज पृथ्वीमें पड़कर प्रणिपात किया । महर्षिने लगभग दौड़कर उठाकर हृदयसे लगाया । गद्गद स्वर बोले—'वत्स ! तुम्हारे सुयशसे त्रिभुवन सदा पवित्र होता रहेगा । तुमने दशग्रीव-दलन करके सुर-मुनियोंका संकट समाप्त कर दिया ।'

'भाई भरत सकुशल हैं ?' सबके आसन ग्रहण करते ही महर्षिसे श्रीरामने पूछा— 'श्रीचरणोंको उनका वृत्त अविदित नहीं होगा ।'

'वत्स ! वे तुम्हारे अनुज हैं; किन्तु उनके नियम, व्रत, तपके सम्मुख सभी मुनियोंका तप तुच्छ हो गया है ।' महर्षिने पुलकित तन वर्णन किया— 'वे जटा वल्कल धारी तुम्हारे ध्यानमें तल्लीन भुवन वन्दनीय हैं । वे तुम्हारी आतुर प्रतीक्षा कर रहे हैं; किन्तु आज तुम अपने आतिथ्यका अवसर मुझे दो । कल प्रातः यहाँसे प्रस्थान करना ।'

महर्षिका अनुरोध भी आदेश ही था । सबको त्रिवेणी स्नान करने था । श्रीरामने हनुमानको समीप बुलाया—'पवनपुत्र ! तुम अयोध्या चले जाओ । मार्गमें श्रृंगबेरपुरमें मेरे सखा निषादराज गुहको मेरे सकुशल लौटनेका समाचार देते जाना ।'

नन्दिग्राममें भरतके समीप मानववेशमें जाओ । तुम्हारे अपने वेशसे तो वे परिचित हो चुके हैं । उनको मेरे सकुशल लौटने, सीताकी प्राप्ति तथा दशग्रीव वधका पूरा समाचार देना और ध्यानसे उनके मुखको देखना कि उनकी भंगी कैसी है ? वे क्या चाहते हैं ?'

'वे क्या चाहेंगे देव ?' हनुमानको आश्चर्य हुआ ?

'वे बहुत संकोची हैं, दृढ़ निश्चयी हैं । उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि मैं चौदह वर्ष व्यतीत होते ही अयोध्या न पहुँचा तो वे देहत्याग देंगे ।' श्रीरामने समझाया—'मैं मध्याह्नके लगभग अयोध्यासे चला था । उसी समय वहाँ उतरना चाहता हूँ; किन्तु यदि ऐसा लगे कि भरत इतनी प्रतीक्षा नहीं करेंगे तो मुझे अवश्य बतलाना, पुष्पक सूर्यकी प्रथम किरणके साथ वहाँ उतरेगा !'

पवनपुत्र प्रणाम करके चले गये । पुष्पक उतरनेसे पहिले ही श्रीरघुनाथने वानरोंको समझा दिया था कि अबसे अयोध्या रहने तक सब सामान्य मनुष्य वेशमें ही रहेंगे । विभीषण भी सामान्याकार हो गये थे । सबने त्रिवेणी स्नान, पूजन किया । महर्षि भरद्वाजने अपनी सिद्धियोंका स्मरण करके श्रीरामका तथा वानरोंका भी भव्य सत्कार किया । वह रात्रि वहाँ आनन्दपूर्वक व्यतीत हुई ।

●●●

आतुर अयोध्या

'आज इतने दिनोंपर बोले हो तुम काक !' माता कौशल्या आज बहुत दिनोंके पश्चात् प्रसन्न हैं । कबसे, कितने दिनोंसे वे इन कौओंके लिए अपने आँगनमें मधुर आहार रखती हैं । ये कौए बहुत चतुर हैं । आते हैं—अनेक-अनेक आते हैं; किन्तु जब माता पूछती हैं—'मेरे रामभद्र आ रहे हैं ? आ रहे हैं मेरे लक्ष्मण ?' तो ये मौन बने रहते हैं । ये आहार लेते हैं और उड़ जाते हैं । माता देखती रहती हैं एकटक इनकी ओर ।

'हाय ! मुझ अभागिनीके अंकधन पता नहीं कैसे होंगे ? कहाँ क्या करते होंगे ?' माताके अश्रु कहाँ सूख पाते हैं । ये तपस्विनी—उपासना गृह ही इनका आवास बन गया है । आंगनमें आती हैं तो काकोंसे शकुन जानना चाहती हैं, परन्तु काक कुछ भी तो संकेत नहीं करते ।

आज इतने दिनोंपर—लगता हैं युगों—कल्पोंके पश्चात् एक उत्तम काक आया है । पता नहीं क्यों माताको यह बहुत पहिचाना—बहुत परिचित लगता है । बहुत प्रिय लगता है । माता पूछते नहीं थक रही हैं इससे—मेरे राम-लक्ष्मण आ रहे हैं ? आ रही है सकुशल मेरी वधू सीता ?'

'काँव ! काँव ! काँव !' माताको आज कौएका 'काँव, काँव' बहुत श्रुति मधुर लगता है । लगता है, यह 'हाँ, हाँ, हाँ' करता बोल रहा है । बोलता है और उड़ता है । उड़ता है और बोलता है । आहारको मुख ही कम लगाता है । बोलता है और उड़कर मन्दिरके शिखरपर जा बैठता है । जैसे माताको आश्वासन ही देने आया हो ।

'जीजी ! मेरे आँगनमें आज नीलकण्ठ उतर आया ।' माता सुमित्रा प्रसन्न आ गयीं हैं—'देखती हूँ कि आपके यहाँ तो ऊपर क्षेमकरी (श्वेत चील) बराबर मण्डल बना रही है ।'

'कहाँ ?' माता कौशल्याने ऊपर गगनकी ओर देखा । अभी वे काक-शकुनमें ही मग्न थीं । 'नीलकण्ठ उतरा ? तब अवश्य मेरे राम-लक्ष्मण आ रहे हैं । अवश्य आ रही है वधू सीता ! आज यह काक भी कबसे मुझे 'हाँ,

हाँ' कहकर यही सन्देश दे रहा है । कहाँ तक आये होंगे वे ?'

'अम्ब मैं बताऊँगा ?' अचानक उर्मिलाने आकर दोनों सासोंकी चरण-वन्दना करके तनिक स्मितके साथ कहा ।

'सौभाग्यवती हो ! सत्पुत्रवती हो !' माता कौशल्याने आशीर्वाद दिया तो लज्जासे लाल हो गया मुख उर्मिलाका । 'बतला, तू क्या बतला रही थी ?' माता कौशल्याने खींचकर छोटी बालिकाके समान उर्मिलाको हृदयसे लगाया ।

'अम्ब ! सतीत्व तो नारी आपके इन श्रीचरणोंका स्मरण करके प्राप्त कर लेती हैं ।' झुककर चरणोंको हाथ लगाकर उर्मिलाने सिरसे लगाया—'मुझे तो इनकी पावनरजका प्रसाद प्राप्त है । मैंने आज प्रातः स्वप्न देखा है कि आपके दोनों पुत्र जीजीके साथ बड़े भारी हंसपर बैठे गगनसे उतर रहे हैं । बहुत लोग उनके साथ उतर रहे हैं उस हंससे । मुझे लगता है, वे कहीं आकाश मार्गसे आ ही रहे हैं ।

'आकाश मार्गसे ?' सुमित्राजी गम्भीर हो गयीं—'वत्से ! तेरी बात सत्य होनी चाहिये । अभी वह वानर लगभग सात दिन पूर्व बतला गया कि वत्स रामभद्र लंकामें संघर्षरत है । अपने कुलगुरुने उनके विजयी होनेकी भविष्यवाणी की । लंका निकट तो नहीं है । कल रामको लौटना चाहिये । आज उनके वनवासकी अवधि पूर्ण हो जायेगी । वह वानर पूरा पर्वत उठाकर आकाश मार्गसे लंका गया था । अवश्य वह मेरे पुत्रों तथा पुत्रवधूको भी अपने कन्धोंपर बैठाकर आकाश मार्गसे आ सकता है ।'

'वत्से ! तू अपनी छोटी सासको सम्भाल ले ।' माता कौशल्याने आग्रहपूर्वक कहा—'तू ही कैकेयीको सम्हाल सकती है । वह बहुत पीड़ा सह चुकी । सबसे अधिक जो मानिनी थी, सबसे सम्मानित थी, उसीको अत्यन्त अपमान-भाजना दैवने बना दिया । वह अब पता नहीं क्या सोच बैठे !'

'अम्ब ! मैं प्रथम उन पूज्याकी चरण-वन्दनाकर आयी ।' उर्मिलाने प्रसन्न मुख कहा—'आज उनके उत्साहका पार नहीं है । वे मन्थराको भी आज डाँट बैठती हैं । स्नेहपूर्वक झिड़क रही थीं । स्वयं अपने सदनको सज्जित करनेमें लगी हैं ।'

'कल मेरा राम आवेगा !' माता कैकेयीका उल्लास जागा है आज चौदह

वर्ष पश्चात्—'कैकेयी भले कुमाता सिद्ध हुई, राम जैसा सत्पुत्र सृष्टिमें दुर्लभ है । मैं भटक गयी थी । भूलसे मैंने भरतको अपना मान लिया; किन्तु भरतने मुझे बुद्धि दे दी । राम मेरा रहा है और रहेगा । कल मेरा राम वनवाससे लौट रहा है । लौट रही है मेरी पुत्रवधू सीता । अब कोई आधा शब्द भी कैकेयीको कहनेका साहस नहीं कर सकता । मैं अपने पुत्र और पुत्रवधूका स्वागत करूँगी ।'

'मन्थरे ! मैंने अपने इन्हीं जले हाथों रामको वल्कल दिया था ।' माता कैकेयी उन्मादिनी हो उठती हैं बीच-बीचमें । यह उन्माद चित्रकूटसे लौटनेसे बना ही रहा है; किन्तु आज उसमें आनन्दोद्रेक आ गया है—'कल मैं अपने सारे आभरणोंसे अपनी पुत्रवधूको इन्हीं हाथों सजाऊँगी । इसी भवनसे राम वन गये हैं । कल यहीं स्वागत करना है उनका मुझे ।'

'कैकेयीको राजमाता बनना है !' उन्मादमें अट्टहास कर उठती थीं प्रायः वे चित्रकूटसे लौटकर; किन्तु आज हँसती है—'मन्थरे ! तू तो मूर्खा थी ही, कैकेयी भी तेरी बातोंमें आ गयी । यह राजमाता तो थी और है । कल सब देख लेंगे जब इसका राम आवेगा और 'माँ' कहकर इसके पदोंमें प्रणाम करेगा ।'

'आज मैं किसीका प्रमाद नहीं सह सकती । पूरे श्रमसे सदन सज्जित करो ।' उर्मिलाने बतलाया—'आज वे अम्बा पुनः शासिका बन गयी हैं । क्षण-क्षणपर कहती हैं कि उनके पुत्र और पुथवधू कल आवेंगे ।'

'वह ठीक कहती है । राम सदा से उसके रहे हैं ।' माता कौशल्याने प्रसन्न होकर कहा—'सौभाग्यकी बात है कि वह इस सत्यको समझ गयी । अब उसे आनन्द मिलेगा । राम तो उसका सम्मान सदा करते रहे हैं ।'

'माण्डवीने मुझे अपने सदनमें आनेसे रोक दिया था । ठीक किया था उसने ।' उर्मिलाने बतलाया—'वे कह रही थीं, मेरी पुत्रवधू कल आ रही है । मुझे क्या आवश्यकता है कि मैं किसीके सदनमें जाऊँ । अब सब स्वतः भागी आवेंगी यहाँ । मेरी पुत्रवधूको आ जाने दो ।'

'मैं अभी भागी आयी हूँ अम्ब !' उर्मिलाने कहा था ।

'वत्से ! तू ही तो मेरा अवलम्ब रही है ।' माता कैकेयीने हृदयसे लगाया—'तू सदा ऐसे ही आती रही है । यह सदन तेरा ही है ।'

'अम्ब ! समस्या माण्डवी जीजी की है ।' उर्मिलाने सुमित्रा और कौशल्या दोनोंको चौंका दिया—'वे कलसे निर्जल हैं ।'

'उसे क्या हुआ है ?' आतुरतापूर्वक कौशल्याजीने पूछा—'वह वैसे ही अत्यन्त कृशांगी हो गयी है आये दिन व्रत करके । अब असमय उसे निर्जल रहनेकी क्यों सूझी है ? मैं अभी उसके समीप चलना चाहती हूँ ।'

'आपके दूसरे पुत्र नन्दिग्राममें निश्चय किये बैठे हैं कि यदि कल उनके अग्रज नहीं पधारते तो अवश्य वे देहत्याग कर देंगे ।' उर्मिलाने सामान्य स्वरमें बिना किसी चिन्ताके कह दिया—'उन्होंने भी कलसे निर्जल व्रत रखा है । माण्डवी जीजीका निर्णय तो उनके अनुरूप है । वे कहती हैं—'आर्यपुत्रकी चरणानुगामिनी रहना है इस किंकरीको । अतः समझना ही हो तो आपको नन्दिग्राम जाना पड़ेगा ।'

'मुझे इसमें चिन्ता करनेकी बात नहीं दीखती ।' उर्मिलाने कह दिया—'मुझे किञ्चत् भी सन्देह नहीं है कि कल जीजीके साथ आपके दोनों पुत्र आ जायेंगे । मेरा वाम नेत्र, वाम भुजा प्रातःसे स्फुरित हो रही है ।'

'ये अंग तो मेरे भी स्फुरित हो रहे हैं ।' कौशल्याजीने कहा तो सुमित्राजीने सूचित किया कि उनकी भी यही स्थिति है । तब उर्मिलाने कहा—'सबके शकुन मिथ्या नहीं हो सकते । छोटी अम्बाने भी यही कहा और माण्डवी जीजी भी यह स्वीकार करती हैं । आज मेरा उद्यान पुष्पोंसे लदा है । उसकी सदाकी आविल सरसी सुनिर्मल नीरसे भर उठी है । वह अपने पुष्पित सरोजोंसे हँसती लगती है ।'

'इन चतुर्दश वर्षोंमें मैं आज उत्तम पुष्प अर्चाके लिए पा सकी ।' कौशल्याजीने कहा—'उद्यानसे कुसुम लाने वाली सेविका कह दिया करती थी कि पूरा उद्यान शुष्क हो रहा है । कठिनाईसे कुछ श्रीहीन सुमन मिलते थे । आज उसने भी कहा कि उद्यान हरित-पुष्पित हो उठा है । आज प्रातःसे पिक, पपीहेका स्वर सुनायी पड़ रहा है । यह उत्फुल्लता अयोध्यामें अकारण नहीं आयी है ।'

x　　x　　x　　x

'तुमने नगर-सज्जा प्रारम्भ कर दी सुमन्त्र ?' महर्षि वशिष्ठने

महामन्त्रीसे पूछा—'कल अतिलौकिक यश अर्जित करके आ रहे वत्स रामभद्रका स्वागत करना है। उनके अभिषेकका मुहूर्त भी शीघ्र आ रहा है।'

'मैं श्रीचरणोंमें यही निवेदन करने आया था कि अभी तक कहींसे भी हमारे सम्राट्के आगमनका कोई सम्वाद नहीं मिला है।' सुमन्त्रने शिथिल स्वरमें कहा—'प्रजाका जन-जन आतुर है अपने सम्राट्का स्वागत करनेके लिए; किन्तु हमने जो सम्वाद पानेके साधन नियुक्त किये, उनमें किसीको अब तक सफलता नहीं मिली। दक्षिण कौशलसे आगे तक हमारे चर नियुक्त हैं।'

'सुमन्त्र ! केवल भौतिक सूत्र सदा सत्य नहीं हुआ करते।' महर्षि अत्यन्त गम्भीर हो गये—'भरत जैसे महातापसका निश्चय टूटेगा ? और भरतको शरीर त्याग करना पड़े तो सृष्टि सुरक्षित रहेगी ? राम सत्य-संकल्प हैं। उन्हें कल आना है। कोई शक्ति कहीं नहीं जो उन्हें कल अयोध्या पहुँचनेसे रोक ले। अतः तुम स्वागतकी सज्जा करो।'

महर्षि वशिष्ठके इस आदेशका अयोध्यापर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ा। सुमन्त्रने प्रजा-प्रधानोंको बुलाकर महर्षिका आदेश सुना दिया। मन्त्रियों तथा सेवकोंको कार्यमें लगा दिया। ब्राह्मणोंने एक स्वरसे महर्षिके मतका समर्थन किया—'अवश्य रामभद्र कल आ रहे हैं। हमारी आवहनीय अग्नियाँ बिना आहुति प्रज्वलित हो उठी हैं। अब धूमका लेश नहीं है उनमें।'

अयोध्यामें कोई शिशु नहीं था। श्रीरामके वन जानेके पश्चात् सभी वर्णके लोगोंने भोग-विरत संयमका जीवन व्यतीत किया था। अतः चौदह वर्षसे कम आयुके बालक थे ही नहीं। इन चौदह वर्षोंमें महाराज दशरथके अतिरिक्त किसीने शरीर-त्याग भी नहीं किया था। सबके प्राण श्रीरामके दर्शनार्थ अटके थे।

सेवकोंको कार्य मिल गया था। उन्हें नगर, पथ, चतुरष्क सज्जित करने थे। नारियाँ और पुरुष—अयोध्यामें तो सभीका श्रीजानकी तथा श्रीरामसे कोई-न-कोई सम्बन्ध था। सब उत्साहमें आ गये थे। सबके हृदयसे निराशान्धकार अदृश्य हो गया था। सब गृह, द्वार, सम्मुखका पथ सजानेमें, स्वागत समारम्भमें लग गये थे। सबके मुखपर एक ही चर्चा—'हमारे सम्राट् कल आ रहे हैं। त्रिलोक-कण्टक रावणको समाप्त करके आ रहे हैं।'

'वे कहाँ तक आ गये हैं ?' इस प्रश्नका उत्तर किसीके समीप नहीं था । लेकिन एक सुदृढ़ उत्तर था सबके समीप—'महामन्त्री सुमन्त्र बिना विश्वसनीय सूत्रके तो स्वागत-सज्जामें नहीं लगे हैं ।'

सुमन्त्रने कुछ कहना अस्वीकार कर दिया था । अतः लोगोंने इसमें महामन्त्रीकी राजनैतिक निपुणताका अनुमान कर लिया—'हमारे सम्राट् सुरजयी रावणको समाप्त करके आ रहे हैं । मायावी राक्षस मार्गमें कहीं कोई उत्पात कर सकते हैं । अतः अयोध्या पहुँचनेसे पूर्व उनकी यात्रा गुप्त रखना उचित है । सुरक्षाकी दृष्टिसे बहुत आवश्यक है ।'

'सम्राट् कल आ रहे हैं !' प्रजामें-से किसीके मनमें सन्देह नहीं था। सब अपने ढंगसे स्वागतकी सज्जामें लगे थे ।

'वे सदासे ही तो हमारे रहे हैं ! सबसे अधिक स्नेह रहा है उनका हमपर ।' सबको अयोध्यामें तो सदा यही लगा है—'वे आते ही सीधे हमारे सदन आ सकते हैं !'

'वे स्नेहमयी अब साम्राज्ञी होंगी ।' श्रीजनकनन्दिनीके सम्बन्धमें भी सबके ऐसे ही भाव हैं—'उन्होंने तो अयोध्या आनेके पश्चात् सबसे पहिले हमें अपना बना लिया था । अब भी आते ही उनकी दृष्टि हमें ढूँढ़ेगी ।'

श्रीरामके सखा हैं, सम्बन्धमें बड़े अथवा छोटे हैं, नारियोंमें भी सब अपना सम्बन्ध मानती हैं । सबको श्रीसीताराम अपने अत्यन्त प्रिय लगते हैं । सबको लगता है, दोनों सबसे अधिक हमारा ध्यान रखते हैं । अतः सबको अपने सम्बन्धके अनुकूल उनका स्वागत करना है । सब गृह आशा लिये हैं—'वे यहाँ पधारेंगे !'

अयोध्यामें घर-घर, जन-जन आकुल प्रतीक्षा लिये पूरे उत्साहसे स्वागत-सज्जामें व्यस्त है ।

●●●

आतुर भरत

'अचिन्तय पराक्रम श्रीरामको अयोध्या पहुँचनेसे कोई अटका सकता है, यह असम्भव है ।' भरतकी आस्था अविचल थी—'वे यदि कल यहाँ नहीं आते हैं तो इसका केवल एक ही अर्थ है कि उन्होंने भरतको अपने श्रीचरणोंकी सन्निधिमें रखनेका अधिकारी नहीं समझा है । मेरे मनमें ही कहीं कपट है, अग्रजके प्रति कुटिलता है, राज्यकी छिपी कामना है ।'

श्रीराम भारत-भूमिसे भी दूर लंकाममें युद्ध व्यस्त हैं, यह बात भरतको विचलित नहीं करती । उनका हृदय एक ही रट लगाये है—'उन सर्वसमर्थको संग्राम रोकेगा ? वे परमोदार बहाना बना सकते हैं न आनेका; क्योंकि किसीको अयोग्य, अनधिकारी घोषित कर देना उनके स्वभावमें नहीं है । वे अपनी विवशता ही बतलावेंगे; किन्तु है वह तेरी अयोग्यता । तुझे अपनाने योग्य उन्होंने नहीं समझा ।'

'वे हनुमान आये थे । उन्होंने कहा था ।' लेकिन कुछ भी कहा हो हनुमानने, भरतका हृदय यह माननेको प्रस्तुत नहीं है कि श्रीराम आना चाहेंगे तो उनको कोई भी परिस्थिति अटका सकेगी । एक आशा अवश्य उठती है—'हनुमान आकाश मार्गसे पर्वत लेकर आये थे । वे पर्वत लेकर उसी प्रकार लंका चले गये थे । वे इसी प्रकार आकाश मार्गसे श्रीराम-लक्ष्मणको ले भी तो आ सकते हैं ।'

'मान लो, लंकाका युद्ध नहीं ही समाप्त हुआ है । क्या बाधा है ?' हृदयके तर्क बड़े अटपटे हैं—'वे श्रीरघुनाथ अयोध्या आकर अपना राज्य सम्हाल लें तो भाइयोंको, अयोध्याकी विजयवाहिनीको भेज दे सकते हैं; किन्तु कुलगुरुने कहा है, किसीके जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है । तब लंकाका युद्ध अवश्य समाप्त हो गया होगा । आज तो अवधिका अन्तिम दिन है । कल आना ही चाहिये उन अवधेशको ।'

'चित्रकूट तक प्रभुके आनेका कोई समाचार नहीं है ।' निषादराजका सन्देश आया है—'वन्य लोग और आगे तक पता लगानेके प्रयत्नमें हैं ।

सायंकाल तकका समाचार अवश्य रात्रिके प्रथम प्रहरमें अयोध्या पहुँच जायेगा।'

'श्रीराम कहाँ हैं, हमारे चर कुछ पता नहीं लगा सके हैं। हम प्रयत्नमें हैं। 'दक्षिण कौशलसे मातामहका सन्देश आया है—'यह बहुत पहिले पता लग गया था कि विराध जैसे विकट दानवको मारकर श्रीरामने दण्डकारण्यमें प्रवेश किया था। जो वानर रात्रिमें अयोध्या पहुँचा था, उसके द्वारा प्राप्त सन्देश सत्य होना चाहिये।'

'भरतको कोई अनर्थकारी पद नहीं उठाना चाहिये। सम्भव है, वत्स रामभद्रको कुछ थोड़े दिन अधिक लग जायें; किन्तु जिन्होंने किष्किन्धाके अजेय-प्राय बालिको मार दिया, खर-दूषणका ससैन्य संहार किया, दशग्रीव अवश्य उनके करोंसे समरशैय्या प्राप्त करेगा।' मातामहका आश्वासन देना उचित है—'हमारे चर सुदूर दक्षिणकी ओर गये हैं; किन्तु अत्यन्त दुर्गम अरण्य होनेके कारण उनके लौटनेमें विलम्ब होगा। भरतको कमसे कम उनके लौटनेकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। चरोंके लौटते ही हम अयोध्या आ रहे हैं।'

'श्रीरामभद्रके लौटते ही हमें सन्देश दिया जाय। हम उनके अभिषेकमें सम्मिलित होनेको उत्सुक हैं।' महाराज सुमित्रका सन्देश उचित है। बहुत दूर है विदर्भ। वे मातामह उतनी दूरसे कैसे अनुमान लगा सकते हैं कि अयोध्याकी स्थिति क्या है और अयोध्याके वनवासी सम्राट् कहाँ हैं। प्रत्येक महीने उनके दूत आते रहे हैं। हनुमानके अयोध्या आनेके पहिले उनका दूत लौट गया था। अब अवधि समाप्त होनेको आयी तो उनका दूत आना ही था। वह लौटनेकी त्वरामें है; किन्तु क्या कहा जाय उसे? अयोध्यामें तो स्वयं किसीको पता नहीं है।

प्रतिमास आते हैं जनकपुरके दूत। महाराज विदेह राज्यकी भी अवस्थाका पता रखते रहे हैं। वे अत्यन्त सन्तुष्ट हैं अयोध्याके सुप्रबन्धसे। उन्होंने बार-बार कहलाया है—'कुमार भरत मिथिलाको कोई सेवा सूचित करते संकोच नहीं करें। यहाँकी पूरी सेना और कोष अयोध्याका ही है।'

अब वे श्रीरामके लौटनेका समाचार जानना चाहते हैं, यह स्वाभाविक है। उनका चर हनुमान द्वारा प्राप्त समाचार लेकर चला जाय, यह तो उचित नहीं हो सकता। उसे कल तकके लिए आग्रहपूर्वक रोका ही जा सकता था।

कल सायंकाल तक उसे समाचार मिलेगा । भरतने सोचकर दीर्घ श्वास ली—'पता नहीं दैव उसे क्या समाचार देने वाला है ।'

'कैकयसे भी चर आये ।' शत्रुघ्नसे यह समाचार पाकर भरत प्रसन्न नहीं हुए थे । शत्रुघ्नने कहा था—'वे सामान्य यात्रियोंके वेशमें आये हैं । राज्यकी पान्थशालामें रुके हैं । अपने गुप्तचरोंकी उनपर बराबर दृष्टि है ।'

'उनको अपरिचित ही रहने दो और उनके लौटनेमें अवरोध मत उत्पन्न करो ।' भरतने आदेश दे दिया; क्योंकि अयोध्याके गुप्तचरोंकी सूचना थी—'कैकयके चर कोई अभिसन्धि लेकर आये नहीं लगते हैं । उनकी परस्परकी चर्चासे पता लगा है कि उनके युवराज युधाजित अयोध्या हमारे सम्राट्के आगमनके पूर्व आनेमें अपमानकी आशंका करते हैं । वहाँके महाराज अश्वपतिका कहना है—'कन्याने हमें सम्राट्के स्वागतसे भी वञ्चित कर दिया ।' वे सम्राट्के अभिषेकोत्सवमें आना चाहते हैं । उसकी तिथि गुप्त रूपसे जाननेको आये हैं; क्योंकि उन्हें आशा नहीं है कि कैकय नरेशको इस अवसरपर भी आमन्त्रण प्राप्त होगा ।'

'आर्य ! नाना प्रदेशोंसे विख्यात कलाजीवी आ रहे हैं । उनमें-से अधिकांश अयोध्यामें बस जानेको उत्सुक हैं ।' शत्रुघ्नके समीप बहुत अधिक सूचनाएँ आज थीं—'सुर-वन्दित सुप्रसिद्ध तपस्वी, मुनिगण आ रहे हैं । अनेक आ गये हैं और बहुत अधिकके अन्तेवासी कुलगुरुसे अनुमति लेने आये हैं । कुलगुरुने सबको आ जानेकी अनुमति दे दी है ।'

'कलाजीवियोंका, विद्वानोंका समुचित सत्कार होना चाहिये । उनके आवास एवं निर्वाहकी उपयुक्त व्यवस्था राज्यका कर्त्तव्य है ।' भरतने कहा—'तापस, मुनिगण जहाँ उटज बनाना चाहें, उनको असुविधा एवं संकोच न हो, इस प्रकार उनकी व्यवस्था करो । उन वीतराग वन्दनीयोंको प्रतीत नहीं होना चाहिये कि प्रशासन उन्हें परिग्रहके लिए प्रलुब्ध कर रहा है ।'

'आर्य ! सरिताओं तथा सरोवरोंका जल सहसा सुनिर्मल हो गया है ।' शत्रुघ्नने अब दूसरे प्रकारकी सूचनाएँ देनी प्रारम्भ कीं—'शुष्कप्राय उद्यान ही नहीं, वनके वृक्ष-लता भी फलों-पुष्पोंसे लद उठे हैं । गायें प्रसन्न हैं और अब उनके लिए वृषभोंमें संघर्ष होने लगा है ।'

'वर्षोंके पश्चात् पक्षियोंने घोंसले बनाने प्रारम्भ किये हैं । इसका अर्थ ही है कि अब वे अण्डे देने वाले हैं ।' शत्रुघ्नने उत्साहपूर्ण स्वरमें सुनाया— 'अपने अश्वोंने, गजोंने कलसे पूर्ण आहार लेना प्रारम्भ किया है । अब उनका प्रसन्न स्वर अश्वशाला तथा गजशालाको गुञ्जित कर रहा है । उनके सेवकोंमें उत्साह आया है । अश्वशाला तथा गजशालाके निरीक्षकोंने कहा है कि— 'श्यामकर्णोंका हींसना, सुलक्षण गजोंका हर्षित होकर झूमना अत्यन्त शुभ सूचक है । अवश्य अपने सम्राट् विजयी होकर पधार रहे हैं ।'

'पालित पक्षी तक पूछते हैं—'राम आ गये ?' शत्रुघ्नने अपनी समस्या सूचित की—'कृषक प्रजाके प्रतिनिधि उपालम्भ देने आने लगे हैं । उनके क्षेत्रोंमें उत्पादन बहुत अधिक हुआ है । वे कहते हैं कि जलाशयोंके समीप रखा उत्पादनका षष्ठमांश उठाने राजकर्मचारी नहीं पहुँच रहे हैं । अब उन्हें अधिक समय तक इस राजकीय देयकी सुरक्षाका दायित्व वहन करना पड़ता है । साथ ही उत्पादन अधिक होनेके कारण उन्हें अधिकार मिलना चाहिये कि अपनी आवश्यकतासे अधिकको वे अपने आने वाले सम्राट्की सेवामें अर्पित कर सकें ।'

'अधिक स्वीकार नहीं किया जाना चाहिये ।' भरतने आदेश दिया— 'ऐसा करना होगा तो स्वयं सम्राट् ही करेंगे । अवश्य ही राजकीय भाग जलाशयोंके किनारोंसे उठाया जाना चाहिये । इसमें इतना अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिये कि जिनके भागसे अनुमान हो कि उनके पास वर्षभरको पर्याप्त नहीं रहा है, उन्हें कर्मचारी वहीं राजकीय भागसे पर्याप्त उपहार अर्पित कर दिया करें ।'

'सबसे कठिन समस्या आकरों (खदानों) की है ।' शत्रुघ्न ! उनके अधिपतियोंने आवेदन किया है—'भूगर्भसे श्रमपूर्वक प्राप्त धातुओं तथा मणिरत्नोंपर ही हमारा अधिकार है । अकस्मात् भूमिमें ऊपर जो धातुएँ प्रकट हो गयी हैं, गिरिपर जो मणियाँ, रत्न चमकतने लगे हैं, वे तो भूदेवीने अपने प्रिय सम्राट्को उपहार दिये हैं । प्रशासनको उन्हें शीघ्र उठा लेना चाहिये, जिससे हम अपना कार्य सुगमतापूर्वक कर सकें ।'

'उदधिके तटीय भागके लोगोंने मुक्ता, दुर्लभतम शंख, प्रवालादि भेजने प्रारम्भ कर दिये हैं ।' शत्रुघ्नकुमार कह रहे थे—'वे सुननेको ही प्रस्तुत नहीं

हैं कि सागरकी तरंगें जो वेलापर निक्षिप्त कर दें, वह भी उनका स्वत्व है। वे इस धनको वरुणके राज्यको—सम्राट्को भेंट मानते हैं। सागरमें-से श्रम करके जो प्राप्त हो, वही उनका स्वत्व है, उनके इस तर्कको कैसे अस्वीकार किया जा सकता है ? प्रशासन इस प्रकार प्रजाका उपहार स्वीकार भी कैसे कर सकता है।'

'औषधियाँ असीम बढ़ गयी हैं। मधु-छत्रकोंको सामान्य गृहोद्यानोंमें भी देखा जा ससकता है। उन्हें मधुपूर्ण करके मक्षिकाएँ त्याग देती हैं और दूसरा छत्रक बनाने लगती हैं।' शत्रुघ्नने अब अपनी बात कही—'बाँसोंमें-से प्रत्येकमें वंशलोचनकी प्राप्ति, दुर्लभतम दिव्यौषधियोंकी प्रचुरता सूचित करती है कि अयोध्याके सम्राट् कहीं समीप आ गये हैं। यह सब उनका ही अलौकिक प्रभाव है।'

'वे आवेंगे—अवश्य आवेंगे कुमार ! जिनके प्राण उनके दर्शनोंके लिए आतुर हैं, उन सबको वे भूल कैसे सकते हैं ! अवधकी प्रजा, यहाँका जन-जन उन्हींकी प्रतीक्षा कर रहा है। आतुर अभीप्साकी उपेक्षा वे करुणासिन्धु कर नहीं सकते।' भरतके दृगोंसे धाराएँ चलने लगीं। उन्होंने भरित कण्ठ किसी प्रकार कहा—'अयोध्या उनकी है। उन्हें यहाँ आना ही है; किन्तु उनके दर्शनोंका अधिकारी यह भाग्यहीन भरत ही नहीं जान पड़ता। कुमार ! तुम मेरी कुछ सहायता करोगे ?'

'आर्य ! आप इस प्रकार क्यों पूछते है ?' शत्रुघ्नने व्याकुल होकर अग्रजके चरण पकड़ लिये।

'तुमको अत्यन्त सुकुमार जानते हुए भी बहुत निष्ठुर दायित्व दे रहा हूँ कुमार !' भरतने भाईको उठाकर बैठाया। उसी प्रकार विह्वल कण्ठ बोले—'मैंने प्रतिज्ञा की है कि यदि अवधि समाप्त होनेपर भी वे मेरे स्वामी अयोध्या नहीं पधारते तो भरत शरीरका भार नहीं ढो सकेगा। आजकी रात्रि व्यतीत होते ही अवधि समाप्त हो जायेगी। अबतक रघुवंशमें उत्पन्न किसीकी प्रतिज्ञा मिथ्या होते तुमने सुनी है ?'

शत्रुघ्नने दोनों करोंमें मुख छिपा लिया और बालकके समान फूटकर रो पड़े। वे क्या कहें ? कैसे कहें ? भरतने उनके कन्धेपर कर रखा—'तुमने

चौदह वर्ष अत्यन्त कठिन दायित्व वहन किया है । मैं भी असमर्थ था अपनेको प्रसन्न दिखलाते हुए प्रबन्धरत रहनेमें । तुमने अश्रुतपूर्व कर्मयोगीका आदर्श उपस्थित किया है । अब यह बहुत दारुण दायित्व भी तुम्हीं वहन कर सकते हो !'

'मैं किसीको कष्ट नहीं दूँगा ! अपने लिए श्रम नहीं उठाने दूँगा । केवल तुम्हें भरतके लिए हृदयको वज्र बनाकर कुछ करना है ।' भरतने कुछ क्षण मौन रहकर अत्यन्त गम्भीर स्वरमें कहा—'यदि कल मेरे स्वामी अयोध्या नहीं आते, भरत इस अधम शरीरको नहीं रखेगा । कलका सूर्य इसे स्वतः रचित चितामें भस्म होता देखकर ही अस्त होगा । केवल तुम इतना करना कि वह भस्म सरयूमें विसर्जित की जाय ।'

शत्रुघ्न जैसे निष्प्राण हो गये । उनके नेत्र फटे-फटे हो रहे । वे सुन भी रहे हैं कि नहीं, यह देखे बिना भरत कहते गये—'श्रीरघुनाथसे मेरी ओरसे प्रार्थना करना । मेरे प्राण परितुष्ट हो जायेंगे । मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा । मेरी जन्म-जन्मकी अभिलाषा पूर्ण हो जायेगी । जीवित मैं उनके श्रीचरणोंका स्पर्श न पा सकूँ तो वे भक्तवत्सल अपने चारु चरणोंसे मेरी शरीर-भस्मको स्पर्श कर दें !'

'नहीं ! नहीं ! नहीं !' शत्रुघ्नने चीत्कार की—फटे कण्ठकी चीत्कार—'ऐसा कुछ नहीं होगा । कल सूर्यास्तसे पूर्व ही हमारे वे सौभाग्य सूर्य आवेंगे ! अवश्य आवेंगे !'

●●●

हनुमान आये

'आ रहे हैं आपके प्राणाराध्य श्रीराम !' सहसा ब्राह्मणके वेशमें उपस्थित होकर हनुमानने कहा—'दशग्रीवका दलन करके, सुर-मुनिगणोंसे संस्तुत श्रीराम भाई तथा अम्बा सीताके साथ पुष्पक विमानसे आ रहे हैं । वे आज सायं प्रयाग आ पहुँचे हैं ।'

'आ रहे हैं आपके प्राणाराध्य श्रीराम ।' यह समाचार इन्हीं शब्दोंमें पवनकुमारने श्रृंगबेरपुर पहुँचकर निषादराज गुहको भी सुनाया था । अच्छा था कि हनुमानने पहिले गुहको देखा नहीं था । अन्यथा वे उसे अवश्य पहिचान न पाते । इन चौदह वर्षोंके श्रीरामके वियोगने उस वज्रकायको जर्जर वृद्ध बना दिया था । हनुमान तो उस निषादोंके ग्राममें निषाद प्रमुखका बड़ा भवन देखकर पहुँचे थे । ब्राह्मण वेशमें ही गये थे । सुनते ही वह पुकार उठा था—'कौन है ? शीघ्र नौका प्रस्तुत करो ।'

'वे सानुज, भार्यासहित पुष्पक विमानसे आज सायं प्रयाग पहुँचे हैं ।' हनुमानने सम्वाद पूरा किया । गुहने उन्हें दण्डवत प्रणिपात किया । पूछा भी नहीं कि वे कौन हैं, कहाँसे आये हैं । एक ब्राह्मणका निषादकी झोंपड़ीमें आतिथ्यका प्रश्न ही नहीं था । गुहमें लगता था कि उत्साहका अनन्त स्रोत फूट पड़ा है । उसने पूरा समाचार सुनकर भी अपने निषादोंको डाँटा—'मुख क्या देखते हो ? नौका प्रस्तुत करो ।'

अनेक निषाद दौड़ गये थे । गुह स्वयं जैसे था, वैसे ही उठ खड़ा हुआ । पवनकुमारसे उसने पूछा—'आप प्रयाग चल रहे हैं ? हम अर्धरात्रिसे पूर्व पहुँच जायेंगे । प्रातः जब श्रीराम उठेंगे, उनकी पद-वन्दनाका सौभाग्य प्राप्त होगा ।'

'मुझे अयोध्या जाना है ।' हनुमानने कहा ।

'मैं भूल ही गया था ।' गुहने पुनः दण्डवत प्रणाम किया—'आप अवश्य पधारें । नन्दिग्राममें महातापस भरतको सम्वाद देना आवश्यक है ।' स्वयं गुह गंगा किनारे चल पड़ा था । हनुमान जब अयोध्या जानेके लिए आकाशमें उछले,

उन्होंने देख लिया कि गुहकी नौका पार जानेके लिए चल पड़ी है । वह महाभाग रात्रिमें ही प्रयाग पहुँच जायेगा, यह समझ लेना सरल था । उसने अन्त तक हनुमानसे नाम परिचय नहीं पूछा । हनुमानने मनमें कहा—'कितना सरल श्रद्धालु है ! कैसा सरल विश्वासी ! मेरे स्वामीका सख्य इसे इसीसे तो सुलभ हुआ ।

'आ रहे हैं आपके प्राणाराध्य श्रीराम ।' यही शब्द पवनकुमारने नन्दिग्राम पहुँचकर श्रीभरतसे भी कहे । वे यहाँ भी उसी ब्राह्मण वेशमें ही आये थे । भरत ऐसे अपलक देखते रह गये, जैसे बात समझमें ही नहीं आयी हो । तब पवनकुमारने पूरा समाचार दिया—'दशग्रीवका दलन करके, सुर-मुनिगणोंसे संस्तुत श्रीराम भाई तथा अम्बा सीताके साथ पुष्पक विमानसे आ रहे हैं । वे आज सायं प्रयाग पहुँच गये हैं ।'

सुनते ही भरत आनन्दातिरेकके कारण मूर्छित हो गये । कुछ क्षणोंके उपरान्त सावधान हुए तो हनुमानसे भुजा फैलाकर लिपट गये । अपने आनन्दाश्रुओंसे उन्हें स्नान करा दिया । हर्ष विह्वल पूछा—'आप कौन हैं, देवता या मानव ? आपने मेरे कर्णोंमें सुधा वृष्टिकी । इतना प्रिय सम्वाद दिया आपने ।

'आपको क्या दूँ, समझ नहीं पाता हूँ । जितने ग्राम आप चाहें, उतने सब आपके । लक्ष-लक्ष स्वर्ण मुद्राएँ, सोलह परम सुन्दरी विप्र कन्याएँ, जहाँका राज्य स्वीकार करें वह राज्य ।' फिर भरत रुके—'नहीं, यह सब इस सम्वादकी समता नहीं कर सकता । भरत सदाके लिए आपका ऋणी रहेगा ।'

'बहुत वर्षोंके पश्चात् आज मेरे प्राणप्रिय स्वामीका समाचार मिला है ।' भरतने फिर पूछा—'वे कहाँ हैं ? कैसे हैं ? अयोध्या कब पधार रहे हैं ?'

'सागरपर सेतु बनाकर वानरेन्द्र सुग्रीव तथा उनकी वानर सेनाके साथ श्रीराघवेन्द्र लंका पहुँचे थे । भगवती वैदेहीके अपहरणके अपराधमें सुरासुरजयी दशग्रीव सकुल मारा गया संग्राममें । उसके शरणागत भाई विभीषणको लंकाका राज्य प्राप्त हुआ ।' हनुमानजीने संक्षिप्त समाचार सुनाया—'वहाँसे पुष्पक विमानमें बैठकर अम्बा सीता, कुमार लक्ष्मण, सुग्रीव, विभीषण तथा वानर

यूथपोंके साथ श्रीरघुनाथ आज सायं प्रयाग पहुँच गये हैं । महर्षि भरद्वाजके आग्रहके कारण आज रात्रि वे प्रयाग रुके हैं । कल लगभग मध्याह्नके समय यहाँ नन्दिग्राम पहुँचेंगे आपके समीप । मैं श्रीरामका सेवक हनुमान हूँ । मुझे प्रभुने आपके समीप समाचार देने भेजा है ।'

'शत्रुघ्न ! नगर और ग्रामोंके मन्दिरोंमें वाद्यध्वनिके साथ अखण्ड अर्चा प्रारम्भ कर दो । सूत, मागध, बन्दीजन सबको सावधान कर दो । अयोध्याके सिंहासनपर उसके स्वामीका शीघ्र अभिषेक होगा । महामन्त्री सुमन्त्रको सूचित करो कि वे उसके लिए आवश्यक सामग्री संग्रह करनेको आज ही चर भेज दें ।' भरतने आदेश दिया—'विमान उतर सके, इस प्रकार भूमिको रात्रिमें ही सम कर दिया जाना चाहिये ।'

'इसकी आवश्यकता नहीं है ।' पवनकुमारने निवेदन किया—'पुष्पक यक्षराज कुबेरका दिव्य विमान है । वह असम गिरि शिखरपर अथवा अरण्यमें भी सरलताके साथ उतर सकता है ।'

कुमार शत्रुघ्न उसी समय अश्वपर बैठे अयोध्याके राजसदनमें समाचार देनेके लिए । नगर पहिलेसे ही सज्जित हो रहा था । सब नर-नारी सुमन्त्रकी प्रेरणा पाकर स्वागत-सम्भार सजानेमें लगे थे । द्वार-द्वारपर तोरण बाँधे जा रहे थे । कदली स्तम्भ धारके साथ रोपित करके सदीप, मण्डन-मण्डित मंगल कलश रखे जा रहे थे । पथोंको कौशेयके चित्र-विचित्र, मुक्ताकी झालरोंसे अलंकृत वस्त्रोंसे ढक दिया गया था । भवनोंपर पताकाएँ लहराने लगी थीं ।

उपवास कृश, जटा मुकुटी, वल्कल वसन भरतने श्वेत छत्र स्वयं स्वच्छ करके सज्जित किया । फिर हनुमानके साथ राजसदन चलनेको प्रस्तुत होकर बोले—'पवनकुमार ! आपने अपनी जातिके स्वाभाविक चापल्यवश मुझे भ्रमित करके अपने निश्चयको सक्रिय करनेसे विलम्बित करनेके उद्देश्यसे तो यह समाचार नहीं दिया है ?'

'देव ! मैं ऐसा दुस्साहस नहीं कर सकता ।' हनुमानने हाथ जोड़कर कहा—'आप स्वयं सरयूका निर्मल प्रवाह, अयोध्याके सरों, वापियोंका स्वच्छ जल देख सकते हैं । लताओं तथा वृक्षोंको पुष्प-फल भारसे झुका देख रहे हैं आप । वन-उपवन, जल-स्थलमें यह शोभा, सम्पन्नता, स्वच्छता पिछले चौदह

वर्षोंमें कभी आयी है ? यह सर्वत्र जो आनन्द एवं वैभव उमड़ पड़ा है, वह क्या मेरे सन्देशके सत्य होनेका पर्याप्त साक्षी नहीं है ? आपको कल तृतीय प्रहर तक भी प्रतीक्षा नहीं करनी है ।'

तीनों माताएँ, तीनों राजवधुएँ भी शत्रुघ्नके द्वारा समाचार पाकर राजसभाके अन्तःकक्षमें आ गयी थीं । महर्षि वशिष्ठ पधारे थे अनेक मुनिगणोंके साथ । मन्त्रियों तततथा नगरके प्रायः सब सम्मानित जन आ गये थे ।

हनुमानके साथ भरत रथमें बैठकर आज पुनः रात्रिमें नगरमें आये । भरतके अनुरोधके कारण हनुमानने अपना विप्ररूप त्याग कर दिया था । वे अपने वानर रूपमें ही सबके सामने आये । उनसे अभी पिछले दिनों ही जब वे द्रोणाचल लेकर जा रहे थे, सब परिचित हो गये थे । अतः सब उनको देखकर प्रसन्न हो गये ।

पवनपुत्रने महर्षि-वृन्दकी, माताओंकी, राजवधुओंकी भी पद-वन्दनाकी । वे अपनी पहिली ही यात्रामें सीता-हरण, कबन्ध वध, खर-दूषणादि वध, सुग्रीव मैत्री, सीतान्वेषण, विभीषण मिलन, समुद्रपर सेतु बन्ध तथा संग्रामका उतना समाचार दे चुके थे, जहाँ तक कुमार लक्ष्मणको शक्ति लगी थी । अब उन्हें केवल उसके पश्चात्का ही वृत्त बतलाना था ।

'रावणका महाकाय भाई कुम्भकर्ण पहिले ही श्रीरामके शरोंसे वीर-शय्या प्राप्त कर चुका था । मेरे पहुँचते ही चिकित्सकने प्रयत्न किया । कुमार लक्ष्मण स्वस्थ हो गये । प्रभातमें ही अमर होनेकी इच्छासे अभिचार यज्ञमें लगे उस दारुण इन्द्रजितको लक्ष्मणने पहुँचकर युद्ध करनेको विवश किया और वीर-शय्या दे दी ।' हनुमानने युद्ध-समाचार दिया—उसके शवके साथ उसकी पत्नी सती हो गयी । रावणका एक पुत्र अहिरावण नागलोकसे रात्रिमें आया । माया करके श्रीराम-लक्ष्मणको अपहरण करनेमें सफल हो गया; किन्तु वह तो अपने पूरे कुलका मरण ले गया था । उसी रात्रि सकुल मारा गया ।'

'दशग्रीवके समस्त सैनिक, मन्त्री सेनापति मारे जा चुके थे । उसने प्रचण्ड पराक्रम प्रकट किया; किन्तु अन्तमें उसे भी श्रीरघुनाथके शरोंने सदाको समर-शय्या दे दी ।' पवनपुत्रका वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त था—'शरणागत रावणानुज विभीषणको लंकाका राज्य प्राप्त हुआ । वे राक्षसाधिप पुष्पकमें साथ

आये हैं ।'

'भगवती जनक-नन्दिनीको विभीषण सादर लिवा लाये; किन्तु लोकरुचि अद्भुत है । आवश्यक था कि लोकापवादका मार्जन तत्काल किया जाय । श्रीराघवेन्द्रने निष्ठुर वचन कहे । एक बार तो अम्बा वैदेहीको अस्वीकार ही कर दिया ।' यह सुनकर माताएँ रो उठीं । वधुओंकी रुदन सिसकी सुनायी पड़ी । पवनकुमारने अविराम वर्णन किया—'उन परम सतीने कुमार लक्ष्मणसे अग्नि प्रकट करनेका अनुरोध किया । अग्रजका संकेत समझकर कुमारको यह निष्ठुर कर्म भी करना पड़ा । उस प्रज्वलित अग्निमें अम्बाने प्रवेश किया ।'

'धन्य जीजी !' उर्मिलाका स्वर सुनायी पड़ा—'तुम्हारे ही योग्य निर्णय किया तुमने । अग्नि तुम्हारे स्पर्श करनेकी शक्ति कभी पा नहीं सकता ।'

'वह प्रज्वलित चिता भगवतीके प्रवेश करते ही शान्त हो गयी । स्वयं अग्निदेव देवीको लेकर प्रकट हुए । उन्होंने श्रीरघुनाथको आज्ञा दी कि वे देवीको स्वीकार करें ।' यह अप्रिय समाचार हनुमानने शीघ्र पूरा किया ।

'जीजी पहिलेसे भूमि सुता है ।' माण्डवीने श्रद्धा विगलित स्वरमें कहा—'अब वे अनलात्मजा भी हो गयीं ।'

'विभीषणका बहुत आग्रह था कि प्रभु उनके नगरमें पधारें; किन्तु वे भक्तवत्सल अत्यन्त आतुर थे अपने इन भाव-प्राण भाई भरतजीसे मिलनेको ।' हनुमानने कहा—'अतः विभीषणने यात्राके लिए पुष्पक विमान प्रस्तुत किया । पुष्पक मार्गमें केवल सागर तटपर और किष्किन्धा उतरा था । आज सायंसे पूर्व ही वह दिव्य विमान प्रयाग पहुँच गया । महर्षि भरद्वाजका आग्रह श्रीरघुनाथको स्वीकार करना पड़ा है । महर्षि चाहते थे कि रात्रि उनके आश्रममें रहकर सब उनका आतिथ्य स्वीकार करें ।'

'वे स्नेहमय ! उन्होंने तब अयोध्याके पूरे समाजका आतिथ्य किया था, जब मैं चित्रकूट जा रहा था ।' श्रद्धाके साथ सिर झुकाया—'उन पूजनीयका अनुरोध स्वीकार नहीं किया जा सकता । वे कितना वात्सल्य रखते हैं अयोध्याके राजकुलपर, हम सबने अनुभव किया । अतः उनके लिए यह अनुरोध स्वाभाविक है । उसे माना जाना ही चाहिये ।'

'प्रभुके आदेशसे मैं निषादराज गुहको समाचार देता आया हूँ । वे

महाभाग उसी समय प्रयाग पैदल चल पड़े थे ।' अब पवनपुत्रने उपसंहार किया— 'प्रभु यहाँ शुभ मुहूर्तमें आना चाहते हैं । अतः पुष्पक नन्दिग्राम अभिजित मुहूर्तमें कल उतरेगा, यह सूचना मुझे देनेका उन्होंने आदेश दिया है ।'

'उचित निर्णय है ।' किसीको कुछ कहनेका अवसर मिले, इससे पूर्व महर्षि वशिष्ठने कहा—'वत्स रामभद्रको उत्तम मुहूर्तमें ही आना चाहिये । हम सब नन्दिग्राममें कल उनका प्रथम स्वागत करेंगे ।'

'आप सब अब मुझे अनुमति दें !' पवनकुमारने महर्षिके, माताओंके, भरत-शत्रुघ्नके, राजवधुओंके भी चरणोंमें प्रणाम किया ।

अनेकोंकी इच्छा थी, स्वयं भरत भी चाहते थे कि हनुमान उनके समीप ही रहें; किन्तु हनुमानने जब बतलाया कि प्रभुने उन्हें लौटनेका आदेश दिया है, तब सबने उनको विदा दे दी ।

अनेकोंके मनमें उठा—'ये उतना भारी पर्वत ले गये थे, अनुरोध करनेपर हमें प्रयाग नहीं ले जावेंगे ?'

लेकिन किसीने अनुरोध नहीं किया । दूसरे सबको अयोध्या छोड़कर स्वयं पहुँचनेकी त्वरा प्रदर्शित करना अत्यन्त स्वार्थपरता प्रतीत हुआ सबको । अतः संकोचने किसीको बोलने नहीं दिया ।

हनुमानके जाते ही महर्षि वशिष्ठ भरत तथा सुमन्त्रको लेकर मन्त्रणा करने लगे कि नन्दिग्राममें कौन-कौन जायेंगे । वहाँ श्रीरघुनाथका स्वागत कैसे सम्पन्न होगा ।

'हम राजसदनमें ही जीजीका स्वागत करेंगी ।' उर्मिलाने स्वयं प्रस्ताव करके प्रबन्धकोंका संकोच दूर कर दिया । राजकुलकी वधुओंको वहाँ ले जाना उचित नहीं था । माताओंको ही जाना था वहाँ महिलाओंमेंसे । मुनिमण्डल, मन्त्रीगण, प्रजाके प्रधान पुरुष जाते ही । उनका क्रम निश्चित कर दिया गया कि वे सम्राट्के स्वागतमें किस प्रकार सम्मिलित होंगे ।

●●●

भरत-मिलाप

'आकाशमें सूर्यके मध्याह्न तेजके समान ज्योतिःपुञ्ज चन्द्रोज्वल विमान पुष्पक दिखायी पड़ा। नन्दिग्रामके आस-पास सम्पूर्ण भूमि लोगोंसे भरी थी। वाद्योंकी तुमुल ध्वनि गूँजने लगी और जयघोष उठने लगा। विमानके उतरनेका स्थान राजसेवकोंने रिक्त कराया। पुष्पकने एक मण्डल लिया और पक्षीके समान पंख समेटकर पृथ्वीपर उतर गया।

अञ्जलि बाँधे, कृशकाय, जटाधारी भाई भरतको श्रीरामने विमानके द्वारपर देखा तो हाथ पकड़कर ऊपर चढ़ा लिया। दोनों भुजा फैलाकर मिले। दोनों इन्दीवर सुन्दर, दोनोंके शरीर पुलकपूरित, दोनोंकी जटाएँ और स्कन्ध भीगते रहे दोनोंके अश्रुओंसे।

लक्ष्मणने आकर भरतके चरणोंमें प्रणाम किया। भरतने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया। भरतने श्रीवैदेहीके चरणोंमें मस्तक रखा। सब भाव विह्वल। एक शब्द भी कोई बोल नहीं पाता था। सबके पहिले भरत बोले, जब वे सुग्रीवसे मिलने लगे उन्होंने वानरेन्द्रसे कहा—'तुम हमारे पाँचवें भाई हो गये।'

'हमारा सौभाग्य कि आप जैसे सहायक प्राप्त हुए।' भरतने विभीषणको हृदयसे लगाते हुए कहा।

'सौभाग्य मेरा कि आपके अग्रजने मुझे अपने श्रीचरणोंमें आश्रय दिया।' विभीषणने अत्यन्त विनम्र स्वरमें कहा—'अन्यथा इन सर्व-समर्थको किसीकी भी सहायता कहाँ अपेक्षित थी।'

अब शत्रुघ्न कुमार विमानपर आ गये। श्रीरामने प्रणाम करते उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया। लक्ष्मणसे अंकमाल मिली। श्रीजानकीने उनकी अलकोंपर हाथ रखा, जब वे पदोंमें प्रणत हुए। सुग्रीव तथा विभीषणादिसे मिलनेके अनन्तर शत्रुघ्नने निवेदन किया—'देव! कुलगुरु, माताएँ तथा पुरजन आये हैं आपके दर्शन करने। सहस्र-सहस्र लोग हैं।'

श्रीराम उठे। सब उनके पीछे चले। विमानसे उतरते श्रीसीतारामको देखकर तुमुल जयघोष गूँजने लगा। वाद्योंकी ध्वनि द्विगुणित हो गयी। लगभग

दौड़कर श्रीरघुनाथ महर्षि वशिष्ठके पदोंके सम्मुख गिरे । महर्षिने उन्हें उठाया ।

जब लक्ष्मण प्रणाम कर चुके और श्रीवैदेहीने चरण-वन्दन कर लिया, श्रीरघुनाथने सुग्रीव, विभीषण तथा वानरोंकी ओर मुख किया—'ये रघुकुल गुरु । इनके आशीर्वादका ही प्रभाव है कि राम लंकाके समरमें विजयी हुआ ।'

'देव ! इन वानरेन्द्र सुग्रीवको सहायतासे लंकाका समर-सागर मैं पार कर सका !' श्रीरामने कुलगुरुको परिचय देना प्रारम्भ किया ।

'ये वर्तमान राक्षसेश्वर विभीषण । इन दशग्रीवानुजकी सहायताके बिना हम वहाँ कदाचित ही कुछ कर पाते ।' श्रीरामका परिचय देना सबको इतना संकुचित कर रहा था कि प्रायः सभी वानर-यूथपोंने एक साथ महर्षिको प्रणाम किया ।

'ये सब शूर संग्राममें मेरे लिए सर्वस्व त्यागकर आये ।' सच्ची भावना थी स्वरमें—'युद्ध उदधिमें जलपोत बनकर इन्होंने रामको उबार लिया ।'

महर्षिको प्रणाम करनेके अनन्तर सब मुनिगणोंको दोनों भाइयोंने प्रणाम किया और तब श्रीरामने कैकेयीके चरणोंमें मस्तक रखा—'अम्ब ! आपके आशीर्वादसे, आपके अनुग्रहसे सुरोंका, साधुओंका शल्य दशग्रीव समाप्त हुआ । रामको आपने यह सुयश प्रदान किया है ।'

'राम ! मेरे राम ।' कैकेयीने श्रीरामको हृदयसे लगाया तो उनके नेत्रोंकी धाराने श्रीरामकी जटाओंको आर्द्र कर दिया । वे सम्बोधन भी कठिनाईसे कर सकीं । लक्ष्मणको भी चरणोंमें प्रणाम करते उन्होंने उठाया ।

'मेरी वधू ! मेरी पुत्री !' जनक-नन्दिनीको हृदयसे लगाते वे फूट पड़ीं—'मैंने कितने क्लेश दिये तुम्हें ।'

'वत्स ! सुमित्रा तुमसे पुत्रवती हुई । माता सुमित्राने लक्ष्मणको हृदयसे लगाया तो केवल इतना बोल सकीं । लेकिन माता कौशल्या एक शब्द भी बोलनेमें समर्थ नहीं हुईं । वे राम-लक्ष्मणको भुजाओंसे भरे उनकी जटाएँ अश्रु जलसे भिगोती रहीं । जब सीताने उनके पदोंमें मस्तक रखा, उन्हें उठाकर हृदयसे लगाकर वे अपने आपको भी भूल ही गयीं ।

लक्ष-लक्ष लोग आये थे । सबको लगा कि श्रीराम-लक्ष्मण सबसे पहिले

उनसे मिले हैं । श्रीरामने सबसे पहिले उनसे कुशल पूछी है । देवी अरुन्धती तथा मुनि-पत्नियोंको लगा कि श्रीमैथिलीने उन्हें ही सर्वप्रथम प्रणाम किया है ।

लोगोंने सुग्रीव, विभीषण तथा वानर यूथपोंसे स्वतः परिचय प्रारम्भ कर दिया था । विभीषणने सुग्रीवसे कहा—'मेरे अग्रजके यहाँ सब सुर सभय आते थे । मैंने इन्द्र, यम सबको देखा है । इतने सुन्दर, इतने सम्पन्न उनमें एक भी नहीं, जैसे ये अयोध्याके सामान्यजन हैं और इतने सुशील, इतने विनम्र तो यहाँके राजपुरुष है । श्रीरघुनाथके ये स्वजन— इनकी कही समता है सृष्टिमें ।'

श्रीभरतने इस अवसरपर अपनी पर्णकुटीमें जाकर सिंहासनास्था पादुकाओंको उठाकर अपने मस्तकपर रख लिया था । दोनों करोंसे उन्हें अपनी जटापर पकड़े वे श्रीरामके सम्मुख आये और घुटनोंके बल बैठकर पादुकाएँ सम्मुख रखीं उन्होंने—'ये आपकी चरण पादुकाएँ और यह इन पादुकाओंका प्रतिनिधि ! पादुकाओंने ही इन वर्षोंमें शासनका सञ्चालन किया है । अब इनको चरण-स्पर्श देकर सनाथ करें ।'

भरतने अपने करोंसे पादुकाएँ धारण करायीं । श्रीरामने जब संकोचपूर्वक उन्हें पहिन लिया, भरतने अञ्जलि बाँधकर कहा—'आज मेरा जन्म सफल हुआ । शासन तो आपके तेजसे सुरक्षित रहा है । अब आप अयोध्या देख लें । कोष एवं सेना दस गुणित हो गयी है ।'

सूत, मागध, बन्दीजन स्तवन कर रहे थे । जनसमूह जयघोष कर रहा था । गगनसे कुसुम वर्षा हो रही थी । श्रीरामने पुलकित होकर भरतको उठाकर हृदयसे लगाया ।

'पुष्पक ! अब तुम धनाध्यक्षके समीप चले जाओ ।' श्रीराम विमानके समीप आ गये—'उनकी सेवामें रहो ।'

'श्रीचरणोंने मुझे सनाथ किया है ।' उस दिव्य विमानसे मधुर ध्वनि आयी—'शस्त्र एवं वाहन समर विजयीके होते हैं । लोकपाल कुबेर मुझे हार चुके हैं । उनको पराजित करके दशग्रीवने मुझे प्राप्त किया था । मैं अपवित्र ही रहता यदि आपके पादपद्म मुझे पवित्र न कर देते; किन्तु दशमुख-दलन करके आपने अपने शौर्यसे मुझे प्राप्त किया है । इन चरणोंमें अपनाकर

परित्यागकी परम्परा तो उचित नहीं है । मेरा अपराध देव ?'

'तुम सामान्य वाहन नहीं हो पुष्पक ! सृष्टिकर्त्ता विश्वकर्माके द्वारा तुम्हारा विशेषरूपसे निर्माण धनाध्यक्षके लिए कराया है ।' श्रीरामने कहा— 'दशग्रीवका दौरात्म्य था तुम्हारा अपहरण । अतः तुम अलका जाओ । मुझे जब आवश्यकता होगी, तुम्हें स्मरण कर लूँगा । तुम तो स्मरण करते ही आ सकते हो ।'

'जब तक आप धरापर हैं, मैं वाहन आपका ही हूँ ।' पुष्पकसे पुनः ध्वनि उठी—'आपके आदेशसे मैं धनाध्यक्षके समीप जा रहा हूँ । आपके स्मरण करनेपर मुझे कुबेरसे अनुमति लेनेकी आवश्यकता नहीं ।'

पुष्पकने अपने पंख खोले । बिना किसी चालकके वह दिव्य विमान उठा और उत्तरकी ओर चला गया । उस चन्द्रोज्वल हंस-यानके चले जानेपर श्रीराम नन्दिग्रामकी भरतकी पर्णकुटीमें पधारे । महर्षि वशिष्ठने जब आसन स्वीकार कर लिया, श्रीरघुनाथ उनके चरणोंके समीप बैठकर अपने करोंसे चरण-संवाहन करने लगे । महर्षिने स्नेहपूर्वक उनका कर पकड़ा, अपने समीप बैठा लिया ।

'वत्स ! अब तुमको अयोध्या राजसदन पधारना चाहिये ।' महर्षिने वात्सल्य भरे स्वरमें कहा ।

'भाई भरतकी आज्ञाके बिना मेरा अयोध्यामें प्रवेश उचित नहीं है ।' श्रीरामने मस्तक नीचे झुकाकर अत्यन्त संकोचपूर्वक कहा—'आपका आदेश भी अनुलंघनीय है ।'

'आर्य ! आपने कैकेयीका यथेष्ट सत्कार सम्पन्न कर दिया । चौदह वर्ष वनमें रह आये आप ।' भरतने रोते हुए दोनों चरण पकड़ लिये—'राज्य आपने अपने इस सेवकको सम्हालनेके लिये दिया था । मैं राज्य न तब स्वीकार कर सकता था, न अब स्वीकार कर सकता हूँ । आपका राज्य मैं आपको लौटाता हूँ । भरत अयोध्याके अधीश्वरको आज्ञा देनेवाला कौन होता है । यदि आप मुझे अपना भृत्य, भक्त मानते हैं, यदि आपका मुझपर स्नेह है तो आप मुझे आज्ञा दें ।'

'मेरी इच्छा है कि आपका राज्याभिषेक संसार देखे ।' भरतने अञ्जलि

बाँधकर दीनतापूर्वक याचना की—'आप समस्त भूमण्डलके स्वामी हैं, आपका प्रभात जागरण वाद्यों तथा वन्दियोंके मंगल शब्दसे हो । भरतको आप यह वरदान दें ।'

'वत्स ! कैकेयी कुमाता सिद्ध हुई; किन्तु तुम-सा पुत्र प्राप्त करके भी इसके दोषका परिमार्जन नहीं होगा ?' माता कैकेयी उठ खड़ी हुई । वे साश्रुलोचन श्रीरामकी ओर देखती बोलीं—'मैं क्षमा माँगती, यदि तुम मुझे अपनी माता न मानते होते । अब इस अपनी माताकी भूलको सुधार लो । अयोध्याका सिंहासन स्वीकार करो !'

'अम्ब ! राम सदा आपका है । आपका आदेश मैंने कभी अस्वीकार किया है ?' श्रीरामने भावभरे स्वरमें कहा—'आज भी आपका आदेश स्वीकार करूँगा; किन्तु आपने कोई भूल की थी, यह राम नहीं मानेगा । आपने अपने रामको अनन्त यशस्वी बनाया है ।

'आर्य ! अब आपका यह वेश अयोध्याके सम्राट्के अनुकूल नहीं है ।' शत्रुघ्नने हाथ जोड़कर प्रार्थना की । उनके संकेतके अनुसार केश सज्जा करने वाले निपुण, सुखहस्त, शीघ्रकारी सेवक नापित उपस्थित हो गये थे ।

श्रीरामने उन सेवकोंकी सहायतासे स्वयं आगे बैठाकर अपने हाथों भरतकी जटाएँ सुलझायीं । उन्हें स्नान कराया । जैसे माता छोटे बालकके केश सजाती हैं, भरतकी केश-सज्जा की । लक्ष्मणकी जटाएँ भी स्वयं सुलझाकर उन्हें स्नान कराया, उनका केश-श्रृंगार किया । तब सेवकोंको उनकी जटाएँ सुलझाने, उन्हें स्नान करानेका समय मिला ।

तीनों राजमाताओंने श्रीसीताको स्वयं अपने करोंसे उपलेपन लगाकर स्नान कराया और उनका श्रृंगार किया । श्रीरघुनाथके आदेशानुसार विभीषण, सुग्रीवादि सभी साथ आये वानर यूथपोंको जो मानव वेशमें ही थे, स्नान कराके बहुमूल्य वस्त्राभरण धारण कराया गया । दासियोंके साथ माता कौशल्याने स्वयं वानर पत्नियोंको वात्सल्यवश स्नान कराके अलंकृत किया ।

निषादराज गुहकी अस्वीकृति आज कौन सुनता ? कुमार शत्रुघ्नने स्वयं उन्हें स्नान करनेको विवश किया । उन्हें वस्त्रालंकार धारण करने पड़े ।

सुमन्त्र राजकीय कोविदार ध्वज रथ जोड़कर सम्मुख हाथ जोड़े उपस्थित

हुए । सर्वाभरण भूषित, रत्नमुकुट धारण किये श्रीराम उस रथपर सीताके साथ विराजमान हुए । भरतने सुमन्त्रके स्थानपर रथ-रश्मि अपने हाथमें ले ली । शत्रुघ्न श्वेत छत्र लेकर श्रीसीतारामके पीछे खड़े हुए । लक्ष्मणने व्यजन लिया । विभीषण और सुग्रीव दोनों पार्श्वोंमें चामरधारी बन गये ।

चक्रवर्ती महाराज दशरथके सब मन्त्री, प्रजा परिषदके प्रधान आगे चले । विप्रवर्ग मन्त्र-पाठ करता आगे चला । गगनसे देवता अनवरत पुष्प वर्षा कर रहे थे । अप्सराओंका नृत्य, गन्धर्वोंकी वाद्यध्वनि, किन्नरोंका कल-कण्ठ गगनको गुञ्जित कर रहा था और धरापर मंगल-गान, मन्त्रपाठ, मागध-सूत-बन्दियोंका स्तवन, जन-समाजका जयघोष दिशाओंको ध्वनित कर रहा था । सहस्रशः गजोंपर वानर-यूथप बैठे चल रहे थे ।

नगर द्वारपर रथ रुका । अब नीराजनका क्रम चल पड़ा । भवनोंके ऊपरसे दधि-केशर, दूर्वाङ्कुर, लाजा तथा राशि-राशि पुष्पोंकी वर्षाने पथपर पड़े बहुमूल्य पाँवड़ोंपर द्वितीय आस्तरण आस्तृत करना आरम्भ कर दिया । नगर-द्वारपर ही नहीं, प्रायः सब चतुरष्कोंपर नीराजन हुआ ।

रथ राजभवन पहुँचा । श्रीरामने भरतकी ओर देखा—'मेरा निज भवन वानरेन्द्र सुग्रीवको आवासके लिए दिया जाना चाहिये ।'

सुग्रीवका हाथ पकड़कर श्रीराम अपने सदनमें ले गये । उन परमोदारने विभीषण, जाम्बवन्त, अंगद, प्रभृति सबको स्वयं उनके आवास पहुँचाया और उनकी व्यवस्था सम्हाली ।

पूरा नगर पताका, तोरण, ध्वजाओंसे सजा था । सम्पूर्ण पथ सुगन्धि सिञ्चित थे । द्वारोंपर मंगल-कलश प्रदीपयुक्त सजाये गये थे । प्रत्येक गृहोंके गवाक्षोंसे सुरभित धूम्र उठ रहा था । प्रत्येक गृहमें मन्त्र-पाठ चल रहा था, मंगल-गान हो रहा था । अयोध्यामें आज चौदह वर्षोंके पश्चात् महोत्सव मनाया जा रहा था ।

श्रीराम-लक्ष्मणने अन्तःपुरमें जाकर वन्दनीय महिलाओंको प्रणाम किया । श्रीजानकीने सबकी पद-वन्दना की । सभी सेवकों-सेविकाओंसे मिले, उनका कुशल पूछा । उन्हें पुरस्कृत किया ।

अयोध्याका यह समारोह तो अब चलता ही रहना है । नगरकी विप्र-

पत्नियोंको, वृद्धाओंको श्रीराम-लक्ष्मणसे भी मिलना है और श्रीजनक-नन्दिनीसे तो वधुओंको, कन्याओंको भी मिलना है ।

श्री रघुनाथको सभी नागरिकोंका सत्कार करना है । सखाओंको अंकमाल देकर उन्हें सुग्रीवादिसे परिचित कराना है । आजका आनन्द विभोर समय—आनन्दघन आज आये हैं दीर्घकालके पश्चात् अयोध्या । असीम आनन्द पारावार उमड़ पड़ रहा है ।

●●●

श्रुतकीर्तिका संग्रहालय

'आप मेरी सहायता करो जीजी !' श्रुतकीर्तिने आकर अचानक उर्मिलाके चरण पकड़ लिये—'मैं और किसीसे कह नहीं सकती । तुमसे मैं आज भिक्षा माँगने आयी हूँ ।'

'तुझे हुआ क्या है ?' उर्मिलाने उठाकर हृदयसे लगाया और अञ्चलसे मुख पोंछा—'ऐसा क्या मेरे पास है जो तुझे इस प्रकार माँगना पड़े ।'

'आप तीनोंने तपस्याकी है । केवल हम दोनों राजभवनका सुख भोगते हैं ।' श्रुतकीर्तिका स्वर अत्यन्त अनुरोध पूर्ण था—'आप मुझे अपने उस तपकी पावन स्मृति सुरक्षित कर लेने दो ।'

'तपकी बात करके मुझे बहला मत !' उर्मिलाने इस छोटी बहिनको तनिक स्नेहसे झिड़का—'अन्तरमें असीम वियोग वाडवाग्नि लिये हँसते रहनेकी शक्ति तुझमें और देवरमें ही है । तुम दोनोंने जो त्याग किया, दूसरा उसका स्वप्न भी नहीं देख सकता । जब वल्कल हिम शीतल लगता था, तुम दोनों दूसरोंको सुखी करनेके लिए दाहक दुकूल धारण किये रहे ।'

'जीजी ! आप इन बातोंमें मुझे टाल दोगी ?' बहुत दयनीय करुण स्वर हो गया श्रुतकीर्तिका ।

'तुझे चाहिये क्या ? यह सीधे क्यों नहीं कहती है ।' उर्मिलाने उपालम्भ दिया ।

'मुझे आपके, माण्डवी जीजीके और बड़ी जीजीके भी वे सब उपकरण चाहिये जो इन चौदह वर्षोंमें आप काममें लेती रही हैं । वस्त्र, चटाइयाँ, आसन और कमण्डलु आदि पात्र भी ।' श्रुतिकीर्तिने अब हँसकर कहा—'मेरा लोभ बहुत बड़ा है । इस अवधिमें आपने जो चित्रांकन किये हैं, पद्य लिखे हैं, वे सब । साथ ही तीनों वन्दनीय जेठोंके वल्कल, मृगचर्म, आसन, खन्ती, कुल्हाड़ी, फलादि रखनेकी पेटिका । केवल उनके धनुख, त्रोण, शर, मैं नहीं माँगूंगी । सम्भव हो तो उनकी विसर्जित जटाओंसे निकले केश भी ।'

'उन केशोंको लेकर अब तू जटा बनानेवाली है या देवरको जटाधारी बनना है ।' उर्मिलाकी उज्वल हँसीने कक्षको आलोकित कर दिया—'कीर्त्ति ! अब तू इस सब सामग्रीका क्या करनेवाली है ?'

'सब जटा-वल्कल धारणका अवसर आया था, तब बड़ोंका वह पदानुसरण करनेके योग्य हम सिद्ध नहीं हुए ।' श्रुतिकीर्तिने सहज स्वरमें कहा—'अब तो अपने सदनमें यह सब एक कक्षमें सज्जित करके मैं उसे अपना अर्चा-कक्ष बना लूँगी । इतना तो स्मरण रहेगा कि इस कुलकी परम्परा वार्धक्यमें ही वनगमनकी नहीं है । गार्हस्थ्यके आरम्भमें भी यह सामग्री आदरणीय हुआ करती है ।'

'मेरी बहिन !' उर्मिलाने भुजाओंमें भर लिया छोटी भगिनीको—'तू एक अत्यन्त सम्मान्य संग्रहालय बनाने जा रही है । इस कुलको उससे सदा एक पुण्य-सन्देश प्राप्त होता रहेगा । मैं तेरी सहायता करूँगी । माताजीसे कहना पड़ेगा । वही यह व्यवस्था कर सकती है । माण्डवी जीजीसे तू कह ले ।'

'जीजी ! तुमने मुझे बचपनसे धृष्ट बना दिया है स्नेह देकर ।' श्रुतिकीर्तिने बड़े संकोचपूर्वक कहा—'मैं और किसीसे कुछ नहीं कह सकूँगी, जानती हो । तुम्हारे देवरजीसे कहा था; किन्तु उन्हें तो तुमसे कहनेका भी साहस नहीं हुआ ।'

'तुम दोनों मौनी हो ।' उर्मिलाने फिर सस्मित कहा—'देवरको मुझसे

क्यों संकोच होता है। अच्छा चल, माताजीसे और माण्डवी जीजीसे अभी कहती हूँ। मेरा सदन तो तेरा है ही। यहाँसे तुझे जो अच्छा लगे, उठा ले जा।'

श्रीरघुनाथके स्वागतार्थ नन्दिग्राम जानेसे पूर्व ही माता सुमित्राके समीप उनकी दोनों पुत्रवधुएँ उपस्थित हुई। पद-वन्दनाके पश्चात् उर्मिलाने ही कहा—'आजके मंगल अवसरपर कीर्ति आपसे कुछ पुरस्कार पानेकी कामना लेकर आयी है।'

'वत्से ! उत्तम अवसरपर आयी हो तुम दोनों। रामभद्र रहेंगे, तब भरत अस्वीकार नहीं कर सकेंगे। अन्यथा तुम जानती हो कि वे कितने संकोची हैं।' सुमित्राजी सुनकर सन्तुष्ट हो गयी थीं। उन्हें पुत्रवधुओंकी योजना अच्छी लगी। यह उनके पुत्रोंके तप-त्यागका प्रतीक सम्मान सहित सुरक्षित रहना चाहिये।

'अम्ब ! नन्दिग्राममें अब तक जो पादुकाएँ थीं वे और उनका सिंहासन, छत्र, चामर आये बिना अपूर्ण रहेगा यह कीर्तिका संग्रहालय।' उर्मिलाने प्रस्ताव किया—'वे पादुकाएँ इस अर्चा कक्षामें अपने सिंहासनपर आसीन होकर मुख्या आराध्या होंगी।'

श्रुतिकीर्तिने सम्मानपूर्वक सिर झुकाया बड़ी बहिनको। उसकी योजनाका आवश्यक उपकरण तो वह भूल ही गयी थी। माता सुमित्रासे आश्वासन पाकर दोनों भरतके अन्तःपुरमें पहुँचीं तो उर्मिलाने वहाँ बिना पूछे बहुत-सी सामग्री समेटनी प्रारम्भ कर दी। माण्डवी मौन देखती रहीं। उर्मिलाने ही कहा—'आज ही सायं ज्येष्ठ इस सदनमें आनेवाले हैं। जीजी, अब तुम तपस्विनी बनी नहीं रह सकतीं।'

'उर्मि ! तेरा अनुरोध भी सदा आज्ञा रही है; किन्तु तू क्या देवरके सम्मुख इसी वेशमें उपस्थित होगी ?' मण्डवीने स्नेहपूर्वक हाथ पकड़ा—'आज मेरी बात मान ले। मैं अपने हाथों तुझे सज्जित कर देना चाहती हूँ।'

'जीजी ! इस सेवामें सम्मिलित होनेका अधिकार मुझे भी दे दो।' श्रुतिकीर्ति प्रसन्न हो गयी। पहिले उर्मिलाको ही वस्त्राभरण धारण करने पड़े। उनकी वेणीभूता रूक्ष सघन, घुँघराली, सुकोमल, अतिदीर्घ केशराशि वहीं सुलझायी गयी। वहीं उन अलकोंका अच्छी प्रकार मार्जन हुआ। वे सुरभित

तैलसे सिञ्चित हुई । स्नानके अनन्तर जब उनमें मुक्ता सज्जा हुई, लगा कि सौन्दर्यकी साक्षात् अधिदेवता प्रकट हो गयी हैं ।

'उर्मि ! तू जानती है कि तेरे द्वितीय ज्येष्ठ स्वभावसे तापस हैं ।' माण्डवीने बहुत आग्रह किया कि उन्हें बहुमूल्य वस्त्राभरण अच्छे नहीं लगेंगे; किन्तु आज उनकी ये दोनों अनुजाएँ माननेवाली नहीं थीं । उर्मिलाने सेविकाओंको संकेत किया । उस सदनकी इन चौदह वर्षोंकी सज्जा उसी समय श्रुतकीर्तिके सदनमें पहुँच गयी । वह अन्तःपुर उस प्रकार सजाया गया, जैसे उस दिन सजा था, जब माण्डवी नववधू बनकर उस कक्षमें आयी थीं । वे यह सब देखकर लज्जासे लाल हो रही थीं ।

'जीजी ! अब तुम्हारे अन्तःपुरको मैं सज्जित करूँगी ।' श्रुतिकीर्तिने उमंगके साथ कहा ।

'तू यह कष्ट न करे तो भी वह असज्जित नहीं रहेगा ।' उर्मिलाने हँसकर कहा—'कुमार शत्रुघ्नके सहोदर अग्रज आज चौदह वर्षोंपर आ रहे हैं वहाँ । यह उनकी सेविका उनके सदनको भला असज्जित कैसे रहने दे सकती है ।'

'जीजी ! तुम्हारी कला प्रवणता दूसरा कैसे पा सकता है; किन्तु आज तुम मेरी निर्देशिका बनी रहो !' उर्मिलाने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया । उनके अन्तःपुरके भी अब तकके उपकरण श्रुतिकीर्तिके संग्रहालयमें पहुँच गये ।

'देवर तो आज तेरा अन्तःपुर नहीं, तेरा संग्रहालय देखकर प्रसन्न होंगे ।' सायंकाल माता सुमित्राके लौटते ही उनके साथ आयी सब सामग्री लेकर उर्मिला शत्रुघ्नके अन्तःपुरमें पहुँच गयीं—'चल, तेरा संग्रहालय सज्जित कर दूँ । केवल बड़ी जीजीके वल्कल इसमें नहीं हैं ।'

'उनके वे उपकरण ?' श्रुतकीर्तिने पूछा ।

'वे वनसे तो लौटी नहीं हैं । लंकामें उनके दिव्य देहपर देवी अनुसूयाके द्वारा प्राप्त दिव्य वस्त्र था, जो कभी मलिन नहीं होता था । नये राक्षसाधिपकी पत्नीने उन्हें प्रसाद रूपमें प्राप्त कर लिया ।' उर्मिलाने बतलाया—'केवल उनका चूड़ामणि मिला है, वह भी ज्येष्ठके समीप । वे साम्राज्ञी हैं । उनके ये वस्त्राभरण भी तेरे संग्रहालयमें उनके सम्मानको सूचित करेंगे । ये त्रिभुवनजयी दशग्रीवके

कोषके सबसे मूल्यवान रत्न—विभीषणने इनके द्वारा उनको सत्कृत किया। ये अपने सम्राट्के विजय-चिन्ह बनकर रहें।'

जब तक श्रीराम अपने अनुजोंके साथ नागरिकोंके सत्कारमें व्यस्त रहे, शत्रुघ्नके अन्तःपुरका प्रशस्त कक्ष उसी अवसरमें संग्रहालय बन गया। वह अयोध्याके लोगोंका अत्यन्त आदरणीय—पुरीके किसी भी देवसदनसे अधिक सम्मान्य हो गया। उसका दर्शन करके नारियाँ—नगरजन अपनेको पवित्र करते रहे दीर्घकाल तक।

'मेरी बुद्धिमती बालिका वधू!' माता कौशल्याने प्रशंसा की सुनकर और कैकेयीजीने सुना तो वे सीधे वहाँ आ गयीं। उन्होंने तो अनेक दिनों तक उसकी सज्जामें सहयोग दिया। अनेक परिवर्तन कराये। स्व० श्रीचक्रवर्ती महाराजके भी वस्त्रादि उसमें आ गये।

●●●

राज्याभिषेक

'अभिषेकका समय श्रीचरण निश्चित कर दें तो उसके अनुरूप व्यवस्था की जाय।' भरतने महर्षि वशिष्ठके समीप जाकर निवेदन किया। 'अब राज्यकी सुचारु व्यवस्थाके लिए आवश्यक है कि अयोध्याके सम्राट्का शीघ्र अभिषेक सम्पन्न हो।'

महर्षिने मुहूर्त निश्चित कर दिया। भरतने सुग्रीवसे कहा—'चारों समुद्रों तथा पुण्य सरित सरोवरोंका जल लानेके लिए आप अपने दूत भेजें तो वे हमारे अश्वारोहियोंकी अपेक्षा शीघ्र आवेंगे। औषधियाँ भी वे समुगमतापूर्वक ला सकेंगे।'

सुग्रीवका आदेश पाकर वानरोंको इस सेवामें यात्रा करनेमें प्रसन्नता हुई। अयोध्यामें उनका सत्कार भरपूर हो रहा था; किन्तु वे सेवा करना चाहते थे। उनको बैठ-बैठे सत्कारका उपभोग उबाने लगा था। यहाँ उद्यान प्रचुर

थे । उनमें फलोंसे लदे वृक्ष थे और वानरोंपर कोई प्रतिबन्ध नहीं था; किन्तु यहाँ उन्हें स्वयं अपनी स्वाभाविक उछलकूदमें संकोच होता था ।

सुग्रीवका आदेश पाकर स्वर्ण कलश लेकर बहुतसे वानरोंके साथ सुषेण पूर्व गये । ऋषभ-दक्षिण, गवय पश्चिम तथा नल उत्तर सागरसे जल लेने गये । इनके साथके वानर सम्पूर्ण भारतकी पुण्य सरिताओं एवं सरोवरों, कूपों, निर्झरोंका तीर्थोदक ले आये । वानर अनेक प्रकारकी औषधियाँ ले आये ।

सब आवश्यक सामग्री प्रस्तुत हो जानेपर शत्रुघ्नने मन्त्रियोंके साथ जाकर महर्षि वशिष्ठको सूचना दी । सुदूर उत्तरके कैकय देशसे कुमार युधाजित आ गये थे । दक्षिण कौशल तथा मगधके युवराज भी आये । जनकपुरसे महाराज विदेहने भी अपने पुत्रको भेजा था । कन्याके पतिगृहका ही नहीं, उस नगरका जल भी पहिले नियम-निष्ठ लोग नहीं लेते थे । अतः जनकपुर नरेश अथवा ननिहालोंके नरपति स्वयं नहीं आये थे ।

इन स्वजन सम्बन्धियोंको तो उपहार लाने ही थे, दूसरे नरेश भी नाना प्रकारके उपहार सम्राट्को अर्पित करनेके लिए ले आये थे । अद्भुत रत्न, कम्बल, कौशेय वस्त्र, नाना प्रकारके पात्र, कलाकृतियाँ काष्ठ-गजदन्त अथवा धातु निर्मित लोग ले आये थे ।

सरयू किनारे आगत नरेशोंके वस्त्र शिविरोंसे दूसरा महानगर निर्मित हो गया था । दूरस्थ प्रदेशोंसे कला जीवी पधारे थे अपनी सर्वोत्तम कृतियाँ लेकर । लगभग सभी सुप्रसिद्ध ऋषि-मुनि अपने शिष्य एवं सहायकोंके साथ आये थे ।

लोग चतुर्दन्त श्वेत गज, श्याम कर्ण अश्व तथा दूसरे भी दुर्लभ लक्षण वाले शिक्षित पशु ले आये थे । अनेक प्रकारके गुण-शिक्षायुक्त पक्षी लाये थे लोग । सुकोमल मृग-चर्म, व्याघ्रम्बर तथा दूसरे पशु-चर्म, औषधियाँ, मधु, कस्तूरिकादि लोग ले आये थे ।

शत्रुघ्नने सबको समुचित आवास दिया था । सबकी व्यवस्था भरत स्वयं घूमकर देख लेते थे । श्रीराम सबसे नम्रतापूर्वक मिलते थे । उनके राज्य, प्रदेश, आश्रमकी कुशल पूछते थे । सबको प्रतिदिन कुछ-न-कुछ उपहार भेजते रहते थे ।

श्रीसीताराम रत्नजटित स्वर्णासनपर विराजमान हुए । औषधियुक्त पवित्र तीर्थोदकोंसे महर्षि वशिष्ठ तथा दूसरे ऋषि-मुनि-तापसोंने दोनोंको मन्त्र-पाठ करते हुए अभिषिक्त किया ।

गगनसे सुमन-वर्षा हो रही थी । देवता जय-ध्वनि कर रहे थे । अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं । गन्धर्व बजाने, गानेमें लगे थे । सब ओर जयघोष उठ रहा था ।

पुण्य स्नानके पश्चात् विप्रपत्नियों, देवांगनाओं तथा नगरकी प्रतिष्ठित वृद्धाओंने श्रीवैदेहीको वस्त्राभरण, पुष्पमाल्य एवं दिव्यवस्त्र धारण कराया । उनकी केश सज्जा की । अंगराग लगाया । पुष्पमाल्य एवं पुष्पाभरण भूषित कराके सिंहासनपर श्रीरामके वाम भागमें बैठाया ।

श्रीरामने भी वस्त्राभरण धारण किया । अंगराग लगा । पुष्पमाल्यसे सज्जित वे आदि पुरुष सिंहासनासीन हुए । उनको पुष्पसार लगाया गया । अब महर्षि वशिष्ठने इक्ष्वाकुवंशकी परम्परासे आता रत्न मुकुट विप्रोंके मन्त्र-पाठके मध्य श्रीरामके मस्तकपर रखकर उसपर वह किरीट धारण कराया जो सृष्टिकर्ताने स्वयं मनुको दिया था । श्रीजनक-नन्दिनीके मस्तकपर रत्नोज्वल चन्द्रिका भूषित हुई ।

शत्रुघ्नने श्वेत छत्र धारण किया । यह चन्द्रोज्वल अमृतवर्षी छत्र विश्वकर्माने महाराज इक्ष्वाकुके लिए प्रस्तुत किया था । विभीषण तथा सुग्रीवने चामर धारण किया । भरतने व्यजन उठाया करोंमें; किन्तु श्रीरामने उन्हें रोक दिया । अग्रजके आदेशसे भरतको युवराजके आसनपर बैठना पड़ा । यौवराज्य पदपर उनका अभिषेक उसी समय श्रीरामके आग्रहसे हुआ ।

देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे वायुदेव स्वर्ण कमलोंकी माला लेकर उपस्थित हुए । श्रीरामके कण्ठमें उन्होंने पहिनाया । वे पुष्प अत्यन्त सुरभित थे और कभी म्लान होने वाले नहीं थे ।

तुमुल वाद्य ध्वनि, ऋषि-मुनिगण तथा विप्रवर्गके सस्वर वेद पाठके मध्य महर्षि वशिष्ठने श्रीरामको तिलक लगाकर सूर्यवंशकी परम्परासे आता मणि-रत्न-मण्डित राजदण्ड श्रीरामके दक्षिण हस्तमें दिया । ऋषियों तथा विप्रवर्गने स्वस्तिवाचनपूर्वक राजतिलक तथ दण्ड धारणका समर्थन किया । श्रीसीतारामको

आशीर्वाद दिया ।

सम्राट्को सबसे पहिले उपहार अर्पण करनेका अधिकार वानरेन्द्र सुग्रीवको प्राप्त हुआ । सुग्रीवके पश्चात् विभीषणने जब उपहारार्पण कर लिया, तब देवराजको, लोकपालोंको, देवताओंको अवसर मिला । सामान्य नरेशोंको तो बहुत पीछे यह अवसर प्राप्त हुआ । तब जब कि सब स्वजन सम्बन्धी उपहार दे चुके ।

सबसे अन्तमें अत्यन्त संकोचपूर्वक उठे निषाद राज गुह; किन्तु श्रीरामने उन्हें अपने सिंहासनके दक्षिण पार्श्वमें रत्नासनपर बलात् बैठा दिया—'आप हमारे अपने हैं । इस सिंहासनको उपहारकी अपेक्षा आपसे नहीं है । आप इसके प्रमुख रक्षक रहेंगे और राजसभामें यह दक्षिणका आसन आपका रहेगा । रामको आप जैसा मित्र पानेपर गर्व है ।'

देवराज इन्द्रने स्वयं आकर उपहार अर्पित किया । यक्षराज कुबेर, जलाधीश वरुण प्रभृति सभी लोकपालोंने भेंट दी । गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, किम्पुरुष, नाग आदिने भेंट अर्पित की । अभिषेकके समय भेंट देनेका अर्थ ही अपना सम्राट् स्वीकार करना था ।

भगवान ब्रह्मा मूर्त्तिमान वेदोंके साथ पधारे । उन्होंने स्तवन किया । भगवान् गंगाधर वृषभारूढ़ पधारे देवी पार्वतीके साथ । उन्होंने भी स्तवन किया ।

श्रीराघवेन्द्रके अभिषिक्त होते ही भूमि रसवती हो गयी । कृषकोंके क्षेत्र बिना जोते-बोये फल देने लगे । कृषि तथा उद्यानके विनाशक तत्त्व मूषक, टिड्डियाँ, कीड़े एवं शुक जैसे हानिकर पक्षियोंका स्वयं अभाव हो गया ।

लताएँ तथा पुष्पतरु पुष्पभारसे झुके रहने लगे । उनपर भ्रमरोंने, पिक, पपीहे, मयूरोंने अपना आवास बनाया । सुस्वर पक्षियोंकी बहुलता हो गयी । फलोद्यानों तथा उपवनों, वनोंमें सभी ऋतुओंमें वृक्ष फलित-पुष्पित होने लगे । उनपर स्थान-स्थानपर मधुछत्रक लटकने लगे ।

मेघ समय-समयपर आवश्यक वर्षा करने लगे । अनावृष्टि तथा अतिवृष्टि शब्द ही लोगोंको विस्मृत हो गये । धरापर परिपुष्ट गुणवान औषधियाँ प्रकट होने लगीं । तृणोंसे भूमि श्यामला हो उठी ।

सूर्यने मानो सुखद ताप बनाये रखनेका व्रत ले लिया। ओला, तुषारपात पुस्तकोंके शब्द रह गये। हिमपातसे केवल गिरि-शिखर शुभ्र होते थे। सरिताएँ, निर्झर सदा निर्मल नीर प्रवाहित करने लगे।

अश्व, गज, गायें तथा अन्य पशुओंमें उत्तम लक्षणयुक्त शिशु ही उत्पन्न होने लगे। गायोंमें दूध बढ़ गया। भेड़ोंने सुकोमल ऊन देना प्रारम्भ किया। कौशेय क्षेत्रोंमें कोशक निर्माता कृमिगणोंने अनेक रंगोंके उत्तम कोशक निर्मित करने आरम्भ किये।

भगवान गणपतिने अपने गणोंको आदेश दे दिया—'भूमिपर आधि-व्याधिके अधिदेवताओंका भूलसे भी भटककर निकलना दण्डनीय अपराध माना जायेगा।'

वीरभद्रने, महाभैरवने, कालिका तथा चामुण्डाने अपने सब अनुगतोंको सावधान कर दिया—'अब त्रेताके अन्त तक पृथ्वीको वर्जित क्षेत्र न मानने वाले क्षमा नहीं किये जायेंगे।'

सरोवरोंमें, वापियोंमें ही नहीं, छोटे उत्खातों (गड्ढों) तकमें रंग-बिरंगे कमल, कुमुदनियाँ खिल उठीं और वहाँ सारस, चक्रवाक तथा राजहंसोंका समूह स्वर्गीय उद्यानोंसे भी उतर आया। जैसे भगवती श्री स्वयं अपने करोंसे भूमिके एक-एक तृणको, एक-एक पादपको, प्राणीको, शिलातलको भी सज्जित करनेमें लग गयीं।

पर्वतोंपर स्वर्ण, रजत, ताम्रादि धातुएँ ऊपर ही प्रकट हो गयीं। हीरक, पुष्पराग, पन्ना, गोमेद, नीलम, पद्मराग जैसे रत्न-मणियोंकी राशि सामान्य पर्वतोंमें भी सुलभ हो गयी। समुद्रकी तरंगें राशि-राशि मुक्ता, विद्रुम, शंख-पुलिनपर प्रक्षिप्त करने लगीं। दुर्लभ पदार्थ, दुर्लभ वस्तु जैसा कुछ रह नहीं गया कहीं।

मनुष्योंके ही नहीं, पशु-पक्षी एवं कीटों तकके मानस निर्मल हो गये। सृष्टिमें तमोगुण केवल धातु-पदार्थोंको सघनता, दृढ़ता देनेवाला तथा प्राणियोंको सुखद निद्रा प्रदान करनेवाला शुभ गुण बन गया। रजोगुण शक्ति, स्फूर्ति, सेवाका प्रदाता हो गया। सबके अन्तःकरण निर्मल हो गये। प्राणियोंमें परस्परका संघर्ष, हिंसा, अमर्ष विस्मृत बात बन गयी। सम्पूर्ण पृथ्वी तपोवनके समान

शुद्ध सत्त्व, शान्त हो गयी ।

वायुने बन्द हो जाना तथा झंझा, अन्धड़, वात्याचक्र बनना त्यागकर सुखद, शीतल, मन्दगति सुस्थिर रूपमें अपना लिया । अग्निदेव यज्ञशालामें हों अथवा पाकशालामें, निर्धूम प्रज्वलित होने लगे । उनके उपद्रव शमित हो गये ।

मनुष्योंका शरीर सुपुष्ट, सुन्दर, स्वस्थ रहने लगा । स्त्री-पुरुष सबकी इन्द्रियाँ निर्विकार, चित्त शान्त । सब शम-दम सम्पन्न । परिग्रह केवल यज्ञके लिए आवश्यक रह गया । लोभ विदा हो गया । काम परिवर्तित हो गया श्रीराम प्रेममें । दाम्पत्य आवश्यक सन्तानोत्पादन तथा सेवाका साधन हो गया ।

सब अपने अनुकूल, विधि विहित आचारमें सुखी-सन्तुष्ट, ईर्ष्या, द्वेष, कपट, संघर्षसे सब असंस्पृष्ट, प्रचुर सामग्री सबके लिए सदा सुलभ हो गयी, तब लोभ और परिग्रह कोई क्यों करे ? सन्तोष, तितीक्षा, तप प्रिय हो गया सबको । इन्द्रिय-भोगोंमें रुचि रही नहीं; क्योंकि सत्त्वस्थ अन्तःकरण अन्तरके अनन्त आनन्दका निधिपति हो गया ।

भगवती वीणापणि मानो प्रतीक्षा करने लगीं कि कोई अध्ययन करनेकी इच्छा करे, काव्यके लिए लेखनी उठाये, तूलिका अथवा तक्षणकी चेष्टा करे तो उसकी वाणीको, कण्ठको, करको अपना सम्पूर्ण आशीर्वाद देकर वे स्वयं कृतार्थ हों; क्योंकि मानवमें विलास-वर्जित उच्चतम अभिरुचि जाग उठी थी । अध्ययन करना था योग्यता प्राप्तिके लिए । काव्यय, संगीत, चित्र अथवा मूर्तिकला साधना बन गयी—अपने सर्वेश्वरेश्वर सम्राट्के रूप, गुण, पराक्रमको प्रकट करके उनके चारु चिन्तनमें मानसको निमग्न रखनेकी साधना ।

साधक, संयमी, तपस्वी ये शब्द रह गये । ऋषि, मुनि, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी वनोंमें रहते थे, उनके त्यागपूर्ण वेश थे, वे समाजके वन्दनीय थे; किन्तु तितीक्षा, सन्तोष, अपरिग्रह संयम एवं भगवत्प्रेम तो सामान्य जनोंमें भी उनके ही समान परिपूर्ण था ।

लोगोंकी कुछ कठिनाइयाँ भी बढ़ गयीं श्रीरामके राज्यारूढ़ होते ही । सत्कार करनेवाले श्रद्धापूत मानस मनुष्य थे; किन्तु उनकी वह श्रद्धा समन्वित सेवा स्वीकार करनेवाले अतिथि अभ्यागत प्राप्त होने दुर्लभ हो गये थे । दाता

ता सब होनेको उत्सुक थे; किन्तु यह अवसर अधिकांशके लिए अलभ्य बन गया था; क्योंकि प्रतिगृहीता भी कोई कभी बनता था तो आवश्यकतासे विवश होकर नहीं, केवल अनुग्रहके कारण ।

श्रीरामके राज्याभिषेकके साथ असन्तोष केवल अपनी आराधना तथा धर्ममें सीमित हो गया । दैन्य स्वभावका सद्‌गुण रह गया । सम्पूर्ण पृथ्वी, सब प्राणी सत्वनिष्ठ, सुखी, सम्पन्न सहज सद्‌गुण निरत हो गये ।

●●●

पुरस्कार-वितरण

अयोध्याकी राजसभामें आञ्जनेयने अपना स्थान उसी समय निश्चित कर लिया, जब श्रीरघुनाथ वैदेहीके साथ सिंहासनासीन हुए । अभिषेक तथा उपहारार्पण पूरा होते ही पवनकुमार श्रीराघवेन्द्रके पाद पीठके पास तनिक दक्षिण वीरासनसे बैठ गये । उनका यह स्थान और मुद्रा सुनिश्चित हो गयी श्रीरामके सिंहासनासीन रहते । वे सम्राट्‌के सिंहासनपर बैठते ही बैठ जाते थे और उनके उठनेका उपक्रम करते ही उठ खड़े होते थे ।

उपहारार्पणके अनन्तर सम्राट्‌की ओरसे पुरस्कार वितरण प्रारम्भ हुआ । भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न सब आगतोंको समुचित् पुरस्कार देनेमें लगे । सूत, मागध, बन्दीजन तथा दूसरे सब कलाजीवी सन्तुष्ट किये गये । सबको यथेष्ट पुरस्कार प्राप्त हुआ । सबको लगा कि स्वयं सम्राट्‌ने उनको सम्मानित किया है । उनकी कलाकी प्रशंसा की है और उन्हें विशेष रूपसे पुरस्कृत किया है ।

ब्राह्मणोंको, मुनिगणोंको श्रीरघुनाथने विदा करते समय उनसे अनुरोध किया—'आप सब इस सेवकपर अनुग्रह रखें । इससे कोई प्रमाद कभी होता दीखे तो इसे अनुशासित करें और यहाँ यज्ञका आयोजन हो तो आनेकी अनुकम्पा करें ।'

सबने हर्षोत्फुल्ल कहा—'तुम्हारे यज्ञमें आमन्त्रित होकर आना हमारे

लिए गौरवकी बात होगी ।'

आगत मण्डलीक नरेशों तथा प्रजा प्रतिनिधियोंको पुरस्कृत करके विदा करनेके अनन्तर स्वजनों, सेवकोंको श्रीरघुनाथने यथेष्ट पुरस्कार दिया । वस्त्र, अन्न-धन, गौ, गज, अश्व, भूमि, ग्रामादि यथोचित रूपमें देकर सबको सम्राट्ने सन्तुष्ट किया । कोई सेवक, कोई सम्बन्धी इस अवसरपर सत्कृत होनेसे छूटता नहीं था । सुमन्त्रादि सचिव ही नहीं, भरतादि भाई तथा भ्रातृ पत्नियाँ भी स्नेहोपहारसे सन्तुष्टकी गयीं ।

'तुम हमारे ऐसे ही आत्मीय बन्धु हो जैसे लक्ष्मण या भरत ।' श्रीरामने स्वयं निषादराज गुहको अपने करोंसे वस्त्रालंकार पहिनाये और उन्हें विदा करने द्वार तक आकर अंकमाल देते भरे कण्ठ बोले—'राम अब इस दायित्वसे दब गया है । अतः इसे अवसर न मिले तो तुम इसको विस्मृत मत करना ।' मेरी इच्छा है कि एक बार प्रतिदिन यहाँ दर्शन दे जाया करो । अयोध्याकी राजसभा अथवा रामके अन्तःपुरमें आनेके लिए तुम्हें अनुमति की कभी आवश्यकता नहीं होगी ।'

निषादराजसे बोला नहीं जा रहा था । उनकी राजसभामें पदवृद्धि, उनके शासन क्षेत्रकी सीमा वृद्धि, उन्हें सम्राट्के पार्श्वमें प्रत्येक यात्रामें रहनेका अधिकार—इन सबके अतिरिक्त अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटकी एक निषादके प्रति यह आत्मीयता—गुह विभोर गये अयोध्यासे । श्रीरामके समीपसे शरीर ही गया, राम तो उनके अन्तरमें अविचल आसीन हो चुके थे ।

सब स्वजनोंका सत्कार हो जानेके पश्चात् श्रीराघवेन्द्रने लंकासे आये वानरोंको सम्मानित करना प्रारम्भ किया । अपने कण्ठकी रत्नमाला सुग्रीवके गलेमें डाल दी । अंगदकी भुजाओंमें अपने करोंसे अपने रत्नांगद पहिनाये ।

'हनुमान ! तुमको जो अभीष्ट हो मांग लो ।' सबके अन्तमें पवनकुमारकी ओर श्रीराघवेन्द्रने देखा । सब वानर यूथप, विभीषणादि पुरस्कृत हो चुके थे ।

'मेरे मुखसे आपका नाम बराबर निकलता रहे ।' आञ्जनेयको कहाँ किसी पदार्थकी कामना थी—'जब तक सृष्टिमें आपकी भुवनपावनी कथा रहे, तबतक मैं सशरीर इस पृथ्वीपर रहूँ ।'

'एवमस्तु ! तुम स्वेच्छानुसार जीवन्मुक्त होकर मेरे भक्तोंके संरक्षक

बनकर पृथ्वीपर रहो ।' श्रीरामने प्रसन्न स्वरमें स्वीकार किया ।

'तुम जनपदमें, निर्जनमें, वन-पर्वतमें जहाँ कहीं भी रहो, वहीं सब भोग तुम्हारी सेवामें उपस्थित रहा करें ।' साम्राज्ञी श्रीजनकनन्दिनीने वरदान दिया ।

यह सब हुआ; किन्तु श्रीमैथिलीका हृदय सन्तुष्ट नहीं हुआ । आजके महान अवसरपर सम्राट्ने उन्हें भी उपहारार्पण किया है; किन्तु जो उनको अम्बा कहता है, जिसे उन्होंने अपना प्रथमपुत्र स्वीकार कर लिया है, जिसके उपकारोंको कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता, आजका परमानन्द अवसर जिसके पौरुषसे प्राप्त हुआ, उसीको कोई पुरस्कार नहीं ? वाणीसे दिया गया वरदान क्या पर्याप्त है उसके लिए । अन्तरके वात्सल्यका, कृतज्ञताका वाहक कोई प्रतीक-पदार्थ भी तो होना चाहिये ।

इक्ष्वाकुकुलकी परम्परासे आती सुरदुर्लभ मणि-मुक्ता-माल्य इस अवसरपर श्रीरघुनाथने अपने करोंसे साम्राज्ञीके कण्ठमें डाली थी । अयोध्याके राज्य कोषका सर्व श्रेष्ठ श्रृंगार सुर सम्राज्ञी शचीके लिए भी दुर्लभ । धनाध्यक्ष कुबेरका सम्पूर्ण कोष उसके सम्मुख तुच्छ । उस मालाकी मणियोंकी ज्योतिसे पूरी राजसभा जगमगा रही थी । उन मणियोंका प्रभाव अकल्पनीय था । उनके धारण करनेवालेकी कान्ति, ओज, बल बढ़ता रहता था । वे आयु, आरोग्य, यश, ऐश्वर्य प्रदायिनी मणियाँ—उनमें एक-एक सम्पूर्ण राज्य कोषसे अधिक मूल्यवान एवं महत्त्वपूर्ण थीं । जनक-नन्दिनीने वह माला कण्ठसे उतारकर करोंमें ले ली और श्रीराघवेन्द्रकी ओर बार-बार देखने लगी । आजका यह स्नेहोपहार—इसे किसीको देते भी बड़ा संकोच । यह भी क्या किसीको देनेकी वस्तु है ? लेकिन वात्सल्य मानता नहीं है । अतः अनुमतिकी अपेक्षा है ।

'तुम जिसपर प्रसन्न हो, जिसे देना चाहती हो, उसे दे दो ।' श्रीरामने अपनी अर्धांगिनीकी दृष्टिका तात्पर्य समझकर उन्हें सहर्ष अनुमति दे दी । वे उदारचक्र चूड़ामणि, उन्हें प्रसन्नता हुई श्रीजानकीके इस औदार्यसे ।

श्रीजनक-नन्दिनीने तनिक झुककर वह मणिमाला केशरीकुमारके कण्ठमें डाल दी । चौंककर हनुमानजीने श्रीवैदेहीकी ओर देखा और फिर श्रीराघवेन्द्रके मुखकी ओर दृष्टिकी । श्रीरामके अधरोंपर उन्हें स्मित रेखा स्पष्ट दृष्टि पड़ी । हनुमानने कण्ठमें-से वह मणि माला निकाल ली । उसे दोनों हाथोंमें

लेकर मस्तकसे लगाया । फिर उसे लेकर उठ खड़े हुए । राजसभामें एक किनारे जा बैठे ।

हनुमानजीके कण्ठमें सम्राज्ञीने अपना सर्वोत्तम कण्ठाभरण डाल दिया, यह देखकर सबकी दृष्टि पवनकुमारकी ओर लग गयी । सभीके हृदयमें श्रीहनुमानके सौभाग्यके प्रति प्रशंसाके भाव जागे । सबने समझ लिया कि सम्राज्ञीके पवनपुत्र अतिशय स्नेह भाजन हैं ।

पवनकुमारका ध्यान किसीकी भी ओर नहीं था । वे राजसभाके एकान्त कोनेमें जा बैठे थे और उस मालाको उलट-पलटकर बड़े ध्यानसे देख रहे थे । पूरी मालाको कई बार उलट-पलटकर देखनेके अनन्तर उन्होंने उसकी एक-एक मणियोंको घुमा-फिराकर देखना प्रारम्भ किया । मन्त्रीने समझा कि वे मालाकी ज्योतिर्मयी अकल्पनीय सुन्दर मणियोंको देखकर आश्चर्य मुग्ध हो रहे हैं ।

'अरे !' सबके सब चौंके जब मालाकी एक मणि हनुमानने तोड़नेके लिए मुखमें डाल ली । अधिकांशके अधरोंपर हास्य आया । किसीका मन्द स्वर भी सुन पड़ा—'वानर इन रत्नोंका मूल्य क्या जाने । वह इन्हें भी जीभपर रखकर परीक्षा करना चाहता है ।'

पवनकुमारका ध्यान अन्यत्र कहीं नहीं था । उन्होंने अपने वज्रदन्तसे उस मणिको तोड़ डाला और मुखसे उसके टुकड़े हाथपर लेकर उनको उलट-पलटकर देखने लगे । कुछ निराश भावसे मस्तकको झटका देकर उन्होंने उन टुकड़ोंको फेंक दिया । सिंहासनस्थ श्रीसीतारामकी ओर देखा । श्रीजनकनन्दिनी अत्यन्त कुतूहलपूर्वक उनकी ओर देख रही थीं । जैसे माता अबोध शिशुकी अटपटी क्रीड़ा देखकर सन्तुष्ट हो रही हों । श्रीरघुनाथके अधरोंकी स्मित रेखा और स्पष्ट हो गयी थी ।

हनुमानने दूसरी मणि तोड़नेके लिए मुखमें डाली तो लोगोंके हृदयममें हूक उठी—'यह वानर इन अमूल्य रत्नोंको नष्ट कर रहा है । यह इतना बहुमूल्य पुरस्कार पानेका अधिकारी नहीं था । इसे कोई राजसेवक रोकते क्यों नहीं ।'

आञ्जनेयने उस मणिको भी दाँतोंसे तोड़ा और उसके टुकड़े भी हाथपर लेकर पहिलेके समान देखकर फेंक दिये । जब तीसरी मणि तोड़नेके लिए उन्होंने मुखमें डाली, विभीषणसे रहा नहीं गया । वे बोल पड़े—'हनुमानजी ! आप इन सुरासुर दुर्लभ रत्नोंको इसप्रकार क्यों नष्ट कर रहे हैं ? इनमें-से एक-

क स्वर्गकी समस्त सम्पत्तिसे अधिक मूल्यवान हैं । आप इनको तोड़कर इनमें क्या पाना चाहते हैं ?'

'ये सचमुच मूल्यवान हैं ?' पवनकुमारने अब विभीषणकी ओर ...ा—'अम्बाने मुझे पहिनाया इसे तो मैंने भी इन्हें मूल्यवान ही समझा: किन्तु वह मूल्य इनमें मुझे अबतक दीखा नहीं । मैंने जिन्हें तोड़ दिया, वे तो मूल्यहीन पाषाण मात्र हैं ।'

'आप इस प्रकार तोड़कर उनमें उनका मूल्य देखना चाहते हैं ...भीषणने पूछा—'अन्ततः आप उनमें क्या देखनेकी आशा करते हैं ?''

'अपने सिंहासनासीन इन स्वामीके नाम तथा इस दिव्य रूपके अतिरिक्त भी सृष्टिमें कुछ मूल्यवान है ?' हनुमानजीके स्वरमें आश्चर्य था । मानो वे ...ह समझ ही नहीं पाते हों कि इतनी सीधी बात विभीषण क्यों पूछ रहे हैं । अपने आराध्यका नाम या रूप ही अपनी उपस्थितिसे अन्यको मूल्यवान बनाता ... । इनमें कोई जिसमें न हो, वह तो हेय है, त्याज्य है । निर्मूल्य ही नहीं व्यर्थ भार भी है वह ।'

'आपके इस विशाल शरीरमें इन दोनोंमें-से क्या है ?' विभीषणका स्वर कुछ चिढ़ा हुआ था । वे हनुमानके इस तर्कको समझ नहीं सकते थे कि ...समें रामनाम अथवा श्रीसीतारामकी छवि न हो, वह महामूल्यवान मणि हो तो तोड़कर फेंक देने योग्य है । 'आपने देख लिया है कि आपके देहमें ...-नाम अथवा श्रीसीतारामका यह भुवन पावन रूप है ?'

'आप ठीक कहते हैं । मैंने कभी देखा नहीं है । मैं केवल विश्वास ...ता हूँ कि मेरे देहमें मेरे स्वामीका नाम और रूप दोनों हैं ।' पवनकुमारने ...ी मणि-माला पृथ्वीपर डाल दी । विभीषणकी ओर देखते उठ खड़े ...—'आपने मुझे उचित सचेत किया है । मुझे देख लेना चाहिये । यदि इस देहमें ...मीका नाम या रूप नहीं है तो यह भी व्यर्थभार है । यह त्याज्य है ।'

विभीषणने तथा दूसरोंने कल्पना भी नहीं की थी कि उन शब्दोंकी ... गम्भीरता प्रतिक्रिया पवनपुत्रपर होगी । कोई समझ नहीं सका कि हनुमान ... करने जा रहे हैं । उन श्रीअञ्जनीनन्दनने अपने दोनों हाथोंके वज्रनख ... वक्षपर लगाये, वक्षका वाह्य चर्म चीरते चले गये । मस्तक झुकाकर

देखा और उनके मुखपर सन्तोषका स्वस्थ भाव आ गया ।

'श्रीपवनकुमारकी जय

'श्रीराम-प्रेम-परिपूर्ण आञ्जनेयकी जय !'

'श्रीराममय रामदूत हनुमानकी जय !'

गगन-जयघोषसे गूँजने लगा । राजसभामें उपस्थित सबके कण्ठ... निकला । सबने चकित होकर स्पष्ट देखा कि हनुमानके हृदयमें सिंहासनास... श्रीसीताराम विराजमान हैं और उनके रोम-रोममें, शरीरके कण-कणमें राम... नाम अंकित हैं । ऐसा लग रहा है कि उनके शरीरके कण रामनामसे ही निर्मि... हैं ।

विभीषण दौड़कर पवनकुमारके चरणोंपर गिर पड़े । श्रीरघुना... उठकर हनुमानका हाथ पकड़ा । अन्यथा वे तो शरीरका चर्म चीरते चले ... रहे थे । श्रीरामके अमृतस्पन्दी कर स्पर्शसे हनुमानके वक्षपर बना व्रण ... गया । वह विदीर्ण चर्म पूर्ववत स्वस्थ हो गया ।

श्रीजनक-नन्दिनीने अत्यन्त वात्सल्यपूर्वक हनुमानके मस्तकपर अ... पद्मपाणि रखा; किन्तु विभीषणकी ओर सरोष देखा—'इसे बन्दी रहकर ता... होना पड़ेगा ।'

'देवि ! ये राक्षसेन्द्र भी अपने ही हैं ।' स्वयं श्रीरघुनाथने विभीषणका ओरसे क्षमा-याचनाके स्वरमें कहा ।

'आपका अनुग्रह इसकी रक्षाकर लेगा ।' वे आद्या अपने आराध्यके अनुरोधपर भी केवल इतनी अनुकम्पा कर सकीं ।

'आपको ये पाषाण मूल्यवान प्रतीत होते हैं ?' श्रीपवनकुमारने झुक... अपने पैरोंके पास पड़ी वह मणि-माला उठाकर विभीषणकी अञ्जलिमें डाल दी—'आप इन्हें स्वीकार करें ।'

विभीषणका मस्तक श्रद्धासे, कुछ लज्जासे भी झुक गया था । समय श्रीराघवेन्द्रने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया । हाथ पकड़कर वे हनुमान... ले गये और अपने पादपीठके समीप उन्हें सस्नेह बैठाकर तब श्रीजानकी... साथ स्वयं सिंहासनपर बैठे ।

●●●

वानरोंकी विदाई

अतिथि, अभ्यागतोंका समाज सत्कृत होकर विदा हो गया। आगत ऋषि-मुनियों तथा कलाजीवियोंमें-से अधिकांश अयोध्यामें तथा आस-पासके अरण्योंमें आश्रम बनाकर बस गये। केवल वे गये जिनके कहीं स्थायी आश्रम अथवा कला-शिक्षण-केन्द्र थे। जिनको किसी स्थान विशेषमें ही नहीं रहना था, वे परिव्राजक-पर्यटनशील अब अयोध्या छोड़कर अन्यत्र क्यों जायें ? इस प्रकार जिन्होंने भी रहना चाहा, सबको उसकी इच्छा तथा सुविधाके अनुसार आवासकी व्यवस्था शासनने कर दी। उनके निर्वाहकी व्यवस्था भी शासनने कर दी, जिन्होंने इस व्यवस्थाको स्वीकार किया। अयोध्या उसी समय अपने नगर तथा उपनगरों, आश्रमों सहित भूमण्डलका वृहत्तम, सम्पन्नतम, श्रेष्ठतम नगर बन गया।

'तुम मेरे साथ पृथ्वीका पालन करो!' श्रीरामने बहुत आग्रह किया लक्ष्मणसे कि वे युवराज-पद स्वीकार कर लें; किन्तु लक्ष्मणने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्होंने सविनय निषेध कर दिया—'मैं आपका सेवक हूँ। मेरा कोई अपराध नहीं है कि मैं सेवा-वञ्चित किया जाऊँ। मैं आज्ञा पानेका अधिकारी हूँ। स्वयं निर्णय करना मुझे नहीं आता। हमारे वनमें रहते भाई भरतजीने राज्यका सञ्चालन किया है। ये उत्तम व्यवस्था-सञ्चालक सिद्ध हो चुके हैं। अतः नवीन परीक्षण अनावश्यक है।'

भरतको युवराद पद स्वीकार करना पड़ा। वस्तुतः तो भरत ही राज्यके सञ्चालक बने रहे। श्रीराघवेन्द्र प्रायः यज्ञ-दीक्षामें ही दीक्षित रहे। इसका एक परिणाम हुआ कि राज्याभिषेकके पश्चात् जिन ऋषियों तथा स्वजनोंने विदा ली, उनकी यह विदाई भी औपचारिक ही बन गयी। उन्हें भी सम्राट्के यज्ञोंमें सम्मिलित होना ही था। फलतः उनमें-से भी अधिकांश दूसरे या तीसरे यज्ञमें आकर अयोध्यामें ही बस गये।

स्वजन—सम्बन्धियोंने, सुग्रीवने भी यह व्यवस्था की कि उनको बार-बार आनेका अवसर प्राप्त होता रहे। राज्याभिषेकके अन्तमें वानरोंकी विदाई

हुई; किन्तु वह औपचारिक रह गयी। उन्हें तो यज्ञोंमें आना ही था। इतनेपर भी अपने अत्यन्त प्रिय श्रीरामसे भले अल्पकालिक हो, यह विदाई अत्यन्त विषम थी। बहुत व्यथित करनेवाली थी हृदयको। वानर यूथपोंमें कोई अयोध्यासे जाना नहीं चाहता था।

'आप सबने मेरे लिए बहुत संकट सहा है। बहुत दिन हो गये आप सबको स्वजनोंसे वियुक्त हुए।' शील-सिन्धु श्रीरामने संकोचपूर्वक वानरोंको विदा करते समय कहा—'आपने मेरे लिए अपने जीवन तकको उत्सर्ग करनेका उत्साह दिखलाया। मैं आपसे कभी उऋण नहीं हो सकता। मैं सदा आपका हूँ। अयोध्या आपकी है। आप अपने यहाँ निर्भय रहें। कोई आपको असुविधा करनेका साहस नहीं करेगा। रामका कोई यज्ञ-महोत्सव आपके आगमनके बिना अपूर्ण रहेगा और आप जब चाहें, यहाँ आ सकते हैं।'

सब भाव विह्वल थे। सुरेन्द्र भी जिनके पादपीठका अपनी किरीटकोटिसे स्पर्श करके उलटे पदों पीछे हटते थे राजसभामें, वे सर्वेश्वरेश्वर, भुवनैक सम्राट् स्वयं वानरोंको पहुँचाने चले। सभी वानर यूथपोंको अयोध्यासे तो वानरेन्द्र सुग्रीवके साथ किष्किन्धा जाना ही था। अपने स्थानोंको वे वानरेन्द्रका सत्कार स्वीकार करके ही जानेवाले थे। अतः सबको एक साथ विदा होना था।

'मुझे कोई पद, कोई सुख-सुविधा नहीं चाहिये। मेरे पिता मुझे आपके पावन पदोंके प्रश्रयमें छोड़ गये हैं।' अंगद अत्यन्त विह्वल हो रहे थे—'किष्किन्धामें मेरा कोई भी प्रयोजन नहीं है। मुझे अपने श्रीचरणोंमें पड़े रहने दें।'

'वत्स ! तुम वानरेन्द्र बालिके वंशधर हो। तुम्हारी माताने केवल तुम्हारी सुरक्षाको महत्त्व देकर पतिके साथ शरीर त्यागका विचार छोड़ा था। वे पल-पल तुम्हारे प्रत्यावर्तनकी प्रतीक्षा करती होंगी।' श्रीरामने अपने चरणोंमें लिपटे अंगदको बलपूर्वक उठाकर हृदयसे लगाया। छोटे बालकके समान उनके मस्तकपर हाथ फेरा। वात्सल्यपूर्ण स्वरमें समझाया—'महामनस्वी पिताके तुम योग्य पुत्र हो। अपने दायित्वसे तुम्हें भागना नहीं चाहिये। तुम नहीं लौटोगे तो तुम्हारी माता भी उदासीना हो जायेंगी। एकाकी सुग्रीवको वानरोंके शासनमें

बहुत कठिनाई होगी । तुमको उन्हें सहयोग देना चाहिये ।'

'अयोध्या तुम्हारी अपनी है । तुमको तो यहाँ शीघ्र आना है, श्रीरामने आश्वासन दिया—'वानरेन्द्र यहाँके किसी यज्ञके समय तुम्हें किष्किन्धामें रोकनेका आग्रह नहीं करेंगे । मैं तुम्हें विशेषरूपसे बुलाता रहूँगा ।'

अंगदको आज्ञाके कारण विवश हो जाना पड़ा । वे बार-बार मुड़कर देखते गये श्रीरामकी ओर—'अब भी मुझे रह जानेका आदेश हो जाय ।'

नगरके बहिर्द्वार तक श्रीराम सुग्रीवको पहुँचाने गये । अंगदको अपने अंकमें ही लगाये रहे तबतक । सुग्रीवने कोई वाहन नहीं स्वीकार किया । उन्होंने निवेदन किया—'आपने देखा ही है कि हम लोगोंको वाहनोंकी आवश्यकता नहीं है । जनपदोंसे दूर होते ही हम अपने वानरवेशमें आ जायेंगे । वृक्षोंपर कूदते जाना हमारे लिए अधिक सुखकर होता है । हमारी पत्नियोंको हमारे साथ उसी वेगसे चलनेमें असुविधा नहीं होती ।'

'अब आप हमें अनुमति दें ।' नगर द्वारपर पहुँचकर सुग्रीवने चरण वन्दना करके अनुरोध किया ।

भाइयोंके साथ श्रीराम रुक गये—'तुम ठीक कहते हो जिनसे शीघ्र मिलनकी आशा हो, उन स्वजनोंको दूर तक नहीं पहुँचाया जाता ।'

सुग्रीवने, जाम्बवन्तादिने पुनः चरण-वन्दना की । रुदन करते अंगदको अत्यन्त स्नेह देकर श्रीरामने भेजा । सभीको अंकमाल प्राप्त हुई । श्रीरामका शील, सद्गुण, शौर्य, सौजन्य, सौहार्द्र—इन सद्गुणोंने तो हृदयपर अधिकार कर लिया था । इनका स्तवन केवल मार्गमें ही नहीं होना था । इन गुणोंका वर्णन तो जीवनका आनन्ददायक व्यसन बन चुका था सबका ।

इस सब आयोजनमें आञ्जनेय तटस्थ बने रहे । किसीने उनसे कुछ नहीं कहा । सुग्रीवको, उनके साथके सभीको तथा अयोध्यामें भी सबको इसमें कोई सन्देह नहीं था कि हनुमान अब अयोध्यामें ही रहेंगे । अतः उनसे किसीने कुछ पूछा या कहा नहीं । श्रीरामके साथ वे नगर द्वार तक आये थे । वानर विदा होकर जाने लगे तो वे सुग्रीवके साथ हो गये । श्रीरामको प्रणाम तो तब करते, जब अयोध्यासे विदा होना होता । स्पष्ट था कि वे कुछ दूर तक सुग्रीवको पहुँचाने जा रहे हैं ।

पवनकुमार सुग्रीवके स्वेच्छा सहायक थे । सुग्रीवने उन्हें अपना मन्त्री बना रखा था; किन्तु वे माताकी आज्ञासे किष्किन्धामें राजनीति तथा शासन-व्यवस्थाका व्यावहारिक प्रशिक्षण लेने आये थे । अब माताने श्रीरघुनाथकी सेवाका आदेश दे दिया था । किष्किन्धामें उन्हें क्या बन्धन था । उन्हें कोई रोक भी कैसे सकता था ।

आप मुझे अनुमति दें ।' कुछ आगे जाकर हनुमानने वानरेन्द्र सुग्रीवसे विनम्र प्रार्थनाकी—'आवश्यकता होनपर जब आप स्मरण करेंगे, सेवामें उपस्थित हो जाऊँगा ।'

'तुम सौभाग्यशाली हो हनुमान ! अयोध्याके सम्राट्के श्रीचरणोंके सन्निकट रहनेका सुयोग सुरेन्द्रको भी सुलभ नहीं है । सुग्रीवने हृदयसे लगाकर विदा करते भरे कण्ठ कहा—'किष्किन्धा तो तुम्हारी अपनी पुरी है; किन्तु तुम अयोध्या रहोगे तो सम्पूर्ण वानर जाति गौरव प्राप्त कर लेगी कि उनका एक प्रतिनिधि सम्राट्की निजी सेवामें स्वीकृत है । तुम करुणावरुणालय श्रीरामकी सेवा करो । इतना ही तुमसे अनुरोध है कि सेवाका कोई भी सुयोग हो तो हम लोगोंको विस्मृत मत करना !'

'पिताके न रहनेपर आप ही मेरे संरक्षक, सुहृद, शुभ-चिन्तक रहे हैं । लौटते हनुमानसे पीछे आकर अंगद लिपटकर रुदन करने लगे—'अपने पालित इस बालकको विस्मृत मत कीजिये । आप शरणागत वत्सल श्रीराघवेन्द्रको परम प्रिय हैं । उनकी सेवामें स्वीकृत हैं । उनके सदा समीप रहनेका सुयोग प्राप्त है । स्वामीको मेरा स्मरण दिलाते रहें । मेरी एकमात्र कामना है कि मैं उनके श्रीचरणोंके समीप ही रहूँ । अयोध्याके राजसदनकी तुच्छतम सेवा मिल सके तो मैं अपना सौभाग्य मानूँगा ।'

आञ्जनेयने अंगदको आश्वासन दिया । स्नेहपूर्वक समझाकर विदा किया । लौटकर रघुनाथसे उन्होंने अंगदके अतिशय आग्रह एवं प्रीतिका वर्णन किया । सुनकर श्रीराम गम्भीर हो गये । अनेक बार कर्त्तव्य बहुत निष्ठुर होनेको बाध्य करता है । ताराको पति-वियुक्त बना दिया था उन्होंने । अब उस मनस्विनीको पुत्र-वञ्चिता किसी प्रकार भी बनाया नहीं जा सकता था ।

●●●

विभीषणकी विदाई

अत्यन्त कठिन—असम्भव प्राय है अपना आराध्य विग्रह किसीको दे देना । आस्थाहीन अथवा दुर्बल आस्था पुरुष भले यह कर ले, जिसमें दृढ़ आस्था है, वह यह त्याग किसीके निमित्त भी कैसे कर सकता है; किन्तु श्रीरामके लिए यह भी अदेय नहीं रहा । अपना ही नहीं, इक्ष्वाकु कुलकी परम्परासे प्राप्त आराध्य मूर्ति भी इन उदार शिरोमणिने दे दी । आश्रितजनको जो स्वयं अपनेको ही दे डालते हैं, उन भक्त-वत्सलके लिए अदेय कुछ भी नहीं है ।

संगका रंग कुछ-न-कुछ चढ़ता ही है । लंकामें रावणके रहते विभीषणको उस स्वर्णपुरीका पूरा प्रबन्ध सम्हालना पड़ता था । उनका रात-दिन राक्षसोंका संग था । राक्षस सब इन्द्रिय भोगोंमें लिप्त । अर्थ और कामकी ही अहर्निशि चर्चा । फलतः अनजाने ही विभीषणके अन्तःकरणमें दशग्रीवसे अपमानित होनेपर लंकाका राज्य-प्रभुत्व पानेकी कामना एक बार जाग उठी थी ।। श्रीरामके समीप पहुँचते ही वह कामना समाप्त हो गयी; किन्तु अब श्रीरघुनाथने उसके उदयको ही पूरणीय मानकर संतृप्त कर दिया ।

लंकामें मन्दिर थे—भैरवके, भवानीके, भूतनाथके । परमभक्त विभीषणकी आन्तरिक इच्छा थी कि एक भगवान् नारायणका भी भव्य मन्दिर वहाँ होता । रावणके रहते यह असम्भव था । वह तो हरिका शत्रु ही था; किन्तु अब तो वे दुर्दिन समाप्त हो गये । विभीषण ही लंकाके अधिपति हो गये । अब वह आकांक्षा पूर्ण करनेमें कोई बाधा नहीं रही । अब आवश्यक है उपयुक्त भव्य मूर्ति ।

अयोध्या आकर श्रीराम-राज्याभिषेकके अवसरपर विभीषणने भी अयोध्याके मन्दिरके दर्शन किये दूसरोंके साथ । राजसदनके मन्दिरमें दर्शन करने गये । इक्ष्वाकु कुलके आराध्य भगवान श्रीरंगकी शेषशायी भव्य श्रीमूर्तिके दर्शन करके हृदय पुकार उठा—'यही ! यही ! यही ।' जैसे जन्म-जन्मसे इसी आराध्य श्रीविग्रहकी शोधमें वे रहे हों ।

कैसे माँगा जाय श्रीराघवेन्द्रसे कि वे अपने कुलाराध्यका ही श्रीविग्रह

प्रदान कर दें; किन्तु हृदय मानता नहीं। बुद्धि बहाने बनाती है—'जहाँ स्वयं श्रीरघुनाथ उपस्थित हैं, वहाँ किसी मूर्तिके रहने, न रहनेका क्या प्रभाव पड़ता है। वे सर्वसमर्थ हैं। वैसा दूसरा श्रीविग्रह वैकुण्ठसे भी उनकी इच्छा करनेपर आ सकता है। उन दानि-शिरोमणिके लिए कुछ अदेय नहीं है। लंकाके राजस-तामस स्वभाव राक्षसोंके मनको प्रभावित करने—शुद्ध करनेकी सामर्थ्य इसी श्रीविग्रहमें है।'

विभीषणने अनेक बार प्रयत्न किया; किन्तु कहनेका साहस नहीं हुआ। जब आगत विदा होने लगे, वे श्रीरामके सम्मुख पड़नेसे बचते रहे। सुग्रीवदिको विदा करके श्रीरामने उन्हें समीप बुलाया। स्नेहपूर्वक बोले—'सखे ! मुझे लगता है कि तुम कई दिनोंसे कुछ कहना चाहते हो। मुझसे भी कुछ कहनेमें संकोच ? बिना हिचक बतलाओ, तुम्हें क्या चाहिये ?'

'मैं अधम राक्षस हूँ। आपने मुझे अपनाकर धन्य-धन्य कर दिया है।' विभीषण श्रीरघुनाथके दोनों चरण पकड़कर फूट पड़े—'लेकिन राक्षसका लोभी स्वभाव गया नहीं। यहाँ इस दिव्यपुरीमें आकर इसका लोभ अधिक उद्दीप्त हो गया है।'

'अयोध्यामें ऐसा क्या है जो आप चाहते हैं और उसे सूचित करनेमें इतना संकोच करते हैं ?' श्रीरामके मुखपर सहज स्मित आया—'सुनूँ भी तो मैं अपने परम सहायक मित्रको क्या अर्पित करके सन्तुष्ट कर सकता हूँ।'

'लंकामें श्रीहरिका कोई मन्दिर नहीं है !' विभीषणने बहुत संकोचपूर्वक प्रार्थना की—'वहाँके राजस-तामस लोगोंको सात्त्विक, शुद्ध भक्तिकी प्रेरणा मिलती यदि श्रीरंगका श्रीविग्रह वहाँ विराजमान होता।'

'तुम यही कहनेमें इतना संकोचकर रहे थे ?' श्रीरामने हँसकर कहा। तत्काल गम्भीर हो गये—'विभीषण ! श्रद्धा सेवित श्रीविग्रह धातु-पाषाणकी मूर्ति नहीं होता। वह साक्षात् सच्चिदानन्द-घन हो जाता है। अर्चा विग्रह ईश्वरका प्रत्यक्ष अवतार है। इक्ष्वाकु-कुलको यह श्रीविग्रह स्वयं नारायणके अनुग्रहसे प्राप्त हुआ। उनको देने या लेनेका प्रश्न नहीं उठता। वे चिद्घन स्वयं अयोध्यासे अन्यत्र पधारना चाहते हैं, तभी उन अन्तर्यामीने तुम्हारे हृदयमें ऐसी आकांक्षा जागृतकी है। उनकी इच्छामें व्यवधान बननेका दुराग्रह यहाँ

कोई भी कैसे करेगा । वे आराध्य जाना चाहते हैं तो तुम उन्हें स्वेच्छापूर्वक सादर ले जाओ ।'

विभीषणको तो वह अलभ्य लाभ हुआ, जिसकी उन्हें किसी प्रकार आशा नहीं थी । महर्षि वशिष्ठको बुलाया गया । विप्रवृन्दके साथ वे आये । सविधि महाराजोपचारसे श्रीरंगकी अर्चा हुई । राजकुलके सभी सदस्योंने, अयोध्याके प्रमुखोंने उनका पूजन किया । यह आराध्यको विदा देनेका पूजन—सबके हृदय भाव-विह्वल हो रहे थे ।

'हम राक्षस आकाशचारी तो हैं ही । विभीषणने कोई वाहन स्वीकार नहीं किया—'इस अधम असुरको एक बार तो श्रीनारायणका वाहन बननेका सौभाग्य प्राप्त हो ।'

श्रीरामने रथपर ले जानेका आग्रह नहीं किया । ऋषि-मुनियोंके सस्वर वेद-मन्त्रोंके स्तवनके मध्य विभीषणने वह श्रीविग्रह सादर अपने दक्षिण स्कन्धपर उठाया और वहीं आकाशमें उठ गये ।

श्रीरंगके अयोध्यासे प्रस्थान करनेके कारण वहाँ सबको खेद हुआ; किन्तु दूसरा लगभग वैसा ही श्रीविग्रह उसी समय गरुड़ ले आये । उन्होंने बतलाया—'स्वयं भगवान नारायणने उसे भेजा है । अत्यन्त आर्त पुकार तथा दीर्घकालीन तपानुरोधके कारण ही अयोध्यामें स्थित अर्चा-विग्रहको अन्यत्र जाना पड़ा ।'

अयोध्यामें इस आगत श्रीमूर्त्तिकी स्थापना हो गयी । यहाँसे श्रीरंगका अर्चा विग्रह लेकर विभीषण दिनके तृतीय प्रहरमें चले थे । मध्याह्नमें राजभोग अर्पित करके, विश्राम करानेके अनन्तर मध्याह्नोत्तर उत्थापन, पूजनादिके पश्चात् ही आराध्य-विग्रहको अयोध्यासे विदा प्राप्त हुई थी । विभीषणको सूर्यास्त होता दीखा जब वे दक्षिण भारतमें क़ाबेरीके अन्त्यद्वीपके ऊपर पहुँचे ।१

सूर्यास्त हो रहा था । विभीषण नियम निष्ठ थे । सायं स्नान-सन्ध्याका समय हो गया था और सायंकालीन अर्चन श्रीविग्रहका आवश्यक था । अतः वे उस द्वीपमें उतर गये । अपोलिंगम् श्रीजम्बुकेश्वरसे कुछ दूरीपर उन्होंने श्रीरंग-विग्रहको सादर रखा और स्वयं काबेरीमें स्नान करके सन्ध्यादिमें लग गये ।

अपना आह्निक सम्पन्न करके विभीषणने यथालब्धोपचारसे भगवान

श्रीरंगकी सायंकालीन अर्चाकी । अर्चाके अनन्तर जब वे उस दिव्यविग्रहको उठाने लगे, सम्पूर्ण शक्ति लगा देनेपर भी उसे हिलानेमें भी असमर्थ हो गये ।

हृदयकी गति मानो अवरुद्ध हो जायेगी । जैसे हृदय फट जायेगा । विभीषणकी व्याकुलताका वर्णन शब्दोंमें सम्भव नहीं है । उन्होंने वहीं श्रीरंग विग्रहके समीप निर्जल, निराहार पड़े रहनेका निश्चय किया, जब तक अनुग्रह करके श्रीरंग स्वयं चलना स्वीकार न कर लें ।

'वत्स विभीषण ! आग्रह मत करो ।' विभीषण स्वयं नहीं समझ सके कि वे उस समय स्वप्न देख रहे थे या जागृत थे, अथवा तन्द्रामें थे । रात्रिमें तनिक पलकें झपकीं और जैसे गगन शत सहस्र पूर्ण चन्द्रोंकी ज्योत्स्नासे धवल हो उठा । साक्षात् पीताम्बर परिधान, इन्दीवर सुन्दर, रत्नाभरण भूषित, चतुर्भुज सायुध श्रीरंग गगनमें सम्मुख सुप्रसन्न मेघ गम्भीर स्वरमें कह रहे थे—'वहाँका नरेश महाराज दशरथके राजसूय-यज्ञमें अयोध्या गया था । वहाँ मेरे इस श्रीविग्रहका दर्शन करके मुग्ध हो गया । अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राटसे उनका आराध्य विग्रह माँगनेका साहस उसे नहीं हुआ । यहाँ लौटकर तभीसे केवल जल पीकर मेरे इस अर्चानिग्रहको पानेके लिए तप कर रहा है ।'

'विभीषण ! तुम भक्त हो । जानते हो कि मैं भक्तोंकी भावनाके वशमें हूँ । इसीसे अयोध्या त्यागकर मुझे यहाँ आना पड़ा है ।' वह अमृतको भी उज्जीवित करनेवाला स्वर अत्यन्त वात्सल्य मधुर हो गया—'मैं तुम्हारी लंकाकी ओर चरण करके, उधर ही देखता यहाँ शयन करूँगा । तुम यहाँ आकर मेरी अर्चा कर लिया करो । एक अत्यन्त आतुर, तपोनिरत, भक्तिपूत हृदयकी अभीप्सा पूर्ण हो जाने दो !'

वह मूर्ति अदृश्य हो गयी । विभीषणने नेत्र खोले तो गगन अरुणोदयके कारण लाल हो रहा था । उन्होंने भूमिपर मस्तक रखकर वह आदेश स्वीकार किया । उठकर काबेरी स्नान करके सन्ध्याकी और प्रातःपूजन करके लंका चले गये । तपोनिरत राजाको भी स्वप्नादेश हो गया था । विभीषणके जाते ही वहाँ आ गया । मन्दिर निर्माण उसने करवाया ।

●●●

---

१. काबेरीमें तीन द्वीप हैं । तीनोंमें शेषशायी श्रीरंग विग्रह स्थापित हैं । काबेरी उद्गमके थोड़ी ही दूरपर शिव समुद्रम् — आदि-रंगम् । मध्यमें मैसूरसे लगभग ६ मील दूर श्रीरंग-पट्टन — मध्य रंगम् और काबेरी — सागर संगमके समीप श्रीरंगम्-अन्त्यरंगम् ।

विभीषण-विमोचन

अचानक अयोध्यामें लंकासे यह समाचार आया—'राक्षसेश्वर विभीषण लंकासे श्रीरंगका दर्शन करने गये थे। अनेक दिन गये, वे लौटे नहीं हैं। हम तो अपने सर्व-समर्थ सम्राट्के आश्रित हैं। अतः आदेशकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सन्देश मन्दोदरीने भेजा था। उस राक्षसेश्वरी बुद्धिमत्ताकी थी। विभीषणका पता लगानेको राक्षस नियुक्त किये जा सकते थे; किन्तु भय था कि वे अपने उग्र स्वभावके कारण भारत भूमिमें किसीको भी उत्पीड़ित करेंगे। सम्राट्की प्रजाको उत्पीड़ित करना अपराध होगा। अतः अपने आश्रित जनका पता सम्राट्को ही लगाना चाहिये।

विभीषण श्रीरंगका दर्शन करने गये थे, अतः उनका पता वहाँसे लगाया जाना उचित था। श्रीराघवेन्द्रके स्मरण करते ही पुष्पक विमान उपस्थित हुआ। किसीको भी साथ लेनेका स्मरण नहीं आया। यह सदाका स्वभाव है इन भक्तवत्सलका। किसी आर्तकी पुकार सुनकर, किसी आश्रितपर संकटकी आशंका होनेपर जैसे हैं, वैसे ही दौड़ पड़ेंगे। तब रथ, सहायकादि तो दूर, चरणोंमें पादत्राण डालना भी स्मरण नहीं रहेगा। पवनकुमार सदा साथ न रहते होते तो वे भी साथ नहीं हो पाते। पुष्पक आया और श्रीराम उसमें जैसे थे, वैसे ही आरूढ़ हो गये।

पुष्पक तो मनोगामी विमान था। अपने आरोहीकी इच्छाके अनुरूप उसकी गति तीव्र या मन्द रहती थी। श्रीरामको त्वरा थी, अतः पुष्पकका वेग तीव्रतम था। वह दो घटीसे भी पूर्व श्रीरंग द्वीपमें जा उतरा।

'पुष्पक विमान आया। सम्राट् श्रीराघवेन्द्र पधारे!' पूरे श्रीरंगद्वीपमें कोलाहल होने लगा। वहाँके निवासीजनोंने शीघ्रतापूर्वक अर्चन सामग्री उठायी। जयघोष गूँजने लगा—

'मर्यादा पुरुषोत्तम ब्रह्मण्यदेव श्रीरामकी जय!'

'दशग्रीव दर्पदलनकारी पुरुषोत्तम श्रीरामकी जय!'

'श्रुति सेतु पालक परम पुरुष श्रीरामकी जय !'

श्रीरंग-द्वीप सम्पूर्ण ही आराधक ब्राह्मणोंका निवास था । राजा तथा उसके प्रजाजन तो कावेरीके पार तिरुचिनापल्लीमें निवास करते थे । उनको पहुँचनेमें विलम्ब स्वाभाविक था । श्रीरंग-द्वीपके ब्राह्मणोंने ही श्रीरामका प्रथम सत्कार किया । उन्होंने कलश, पुष्प, नारिकेल पाणि पहुँचकर श्रुति-मन्त्रोंके साथ सविधि स्वागत किया । आसन देकर अर्घ्य, विमानके समीप पाद्यादि उपचारोंसे पूजन किया, स्तवन किया ।

श्रीरामने ब्राह्मणोंका आतिथ्य स्वीकार कर लिया । स्तवनके पश्चात् ब्राह्मणोंने ही प्रार्थना की—'आप सर्वज्ञ हैं, सर्व-समर्थ हैं, अतः यहाँ इस अवसरपर आपका उपस्थित होना आश्चर्यकी बात नहीं है । जहाँ प्रजा असमर्थ हो जाती है, समर्थ सम्राट् स्वयं सहायतार्थ पहुँच ही जाते हैं ।'

'मैं आप सबकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?' श्रीरामने नम्रतापूर्वक पूछा ।

'हमने एक राक्षस पकड़ा है । उसने एक वृद्ध ब्राह्मणको अपने रथ-चक्रसे कुचलकर मार दिया ।' ब्राह्मणोंने कहा—'यहाँका राजा कहता है कि श्रीरंग-द्वीप श्रीरंगजीका है । इसपर उसका शासन नहीं है । अतः यहाँके अपराधका विचार श्रीरंगके सेवक करके दण्ड दें या सम्राट् दें । वह यहाँ हुए अपराधके विचारका अधिकारी नहीं है ।'

'वह राक्षस बनता तो बहुत विनम्र है; किन्तु बड़ा मायावी है ।' ब्राह्मणोंने बतलाया—'उसके अपराधका विचार करके हमने उसे प्राण दण्ड देनेका निर्णय किया ।'

'आप लोगोंने मार दिया उसे ?' श्रीरामने आतुर होकर पूछा ।

'यही तो हम नहीं कर पाते हैं । हमारे द्वारा वह किसी प्रकार मरता नहीं । हमने उचित उपाय कर देखे । अतः उसे एक गुहामें निराहार, निर्जल बन्दी बना दिया है ।' ब्राह्मणोंने कहा—'अब आप अपने हाथों उसका वध करके हमारे दण्ड-निर्णयको सार्थक करें ।

'उसका अपराध क्या है ?' श्रीरामने पवनकुमारकी ओर देखा—'तुम उससे भी पूछ आओ ।'

न ब्राह्मणोंको उस बन्दीसे द्वेष था और न विभीषणको ही झूठ बोलना था। ब्राह्मणोंका कहना था, वह बल एवं पदके मदमें प्रमत्त हो गया है। उसे तीर्थ क्षेत्रमें इतने वेगसे रथ क्यों दौड़ाना चाहिये कि कोई असमर्थ वृद्ध रथ-चक्रके नीचे कुचलकर प्राण त्याग करे ?'

विभीषण स्वयं अत्यन्त दुःखी थे इस असावधानीके कारण। उनका कहना था—'श्रीरंगजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठाके कारण उनसे प्रमाद हुआ। रथ तीव्र वेगसे आ रहा था इसी आतुरताके कारण जहाँ पथ मुड़ता था, रथ मुड़ा तो अचानक एक अत्यन्त वृद्ध मध्य पथपर मिले। बहुत प्रयत्न करनेपर भी रथ रोका नहीं जा सका। वे रथके चक्रके नीचे आ गये। यह अपराध है। प्रमाद हुआ है उनसे। अतः उसका जो भी दण्ड निश्चित किया जाय, उसे वे स्वीकार करेंगे।'

विभीषणका यह अपराध तो नहीं था कि श्रीरामने उन्हें कल्पान्त तकके लिए अमर रहनेका वरदान दिया था। अतः किसीके किसी प्रयत्नसे वे मारे नहीं जा सकते थे। ब्राह्मण स्वयं स्वीकार करते थे कि 'उस राक्षसने जानबूझकर उस वृद्धको मारा नहीं है। उसने हम सबके किसी दण्डका प्रतिकार करनेका कोई प्रयत्न नहीं किया है। उसकी यह शालीनता तथा दण्डके द्वारा शुद्ध होनेकी तत्परता स्वीकारताकी जानी चाहिये। अन्यथा वह सबल है। उसका रथ आकाशगामी भी है। वह स्वयं प्रतिकार कर सकता है, अथवा आकाशमें उड़कर भाग जा सकता है।'

ब्राह्मणोंके आक्रोशका मुख्य आधार था—वह मायावी है। मारनेके पश्चात् भी मरता नहीं है। सम्भवतः वह अपनी इस शक्तिके बलपर विनीत बननेका दम्भ करके ब्राह्मणोंकी शक्तिका उपहास कर रहा है।'

'आप सब मेरे शासन-विधानके नियमोंसे तो परिचित हैं ?' श्रीरामने हनुमानके द्वारा बन्दीका परिचय प्राप्त हो जानेपर बहुत गम्भीर होकर पूछा।

'हम तो केवल स्मृतियोंमें निर्दिष्ट विधान जानते हैं। ब्राह्मणोंने सरल भावसे कहा—'सम्राट् मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। श्रुति-स्मृतिकी मर्यादाके रक्षक हैं। शासकको देश-कालके अनुसार स्मृतिके आदेशोंके अनुकूल विशेष नियम बनानेका सदा स्वत्व है। अतः सम्राट्के यदि इस अपराधसे सम्बन्धित कोई

विशेष नियम हों तो हम श्रीमुखसे ही उनको सुनना चाहते हैं ।'

'मैंने एक नियम निर्धारित किया है ।' श्रीरामने शासकके सुदृढ़ स्वरमें सुनाया—'किसीके भी सेवकसे अपराध होनेपर उस अपराधका दण्ड उसके स्वामीको प्राप्त होना चाहिये ।'

'न्याय है । धर्म संगत है । शास्त्रानुमोदित है ।' ब्राह्मणोंने एक स्वरसे स्वीकार किया—'सेवकको सुशिक्षित करनेका, संयत एवं अप्रमत्त रखनेका दायित्व स्वामीका है । अतः सेवकसे यदि अपराध होता है तो उसका दण्ड भागी स्वामीको होना चाहिये ।'

'यह अपराधी राक्षस किसीका सेवक है ?' दो क्षण रुककर ब्राह्मणोंने चौंककर पूछा । 'हमने सुना है कि वह लंकाका स्वामी है ।'

'लेकिन रामने जब दशग्रीवको मार दिया, जिसे लंकाका शासन दायित्व दिया, वह रामका सेवक ही तो हुआ ?' श्रीरामका स्वर और अधिक गम्भीर हो गया—'उसे मैंने कल्पान्त, अमर बनाया है अतः आपके प्रयत्नोंसे वह मारा नहीं जा सका । मेरे सेवकसे अपराध हुआ, प्रमाद हुआ तो वह मेरा अपराध है । ब्राह्मणोंका दण्ड विधान मैं स्वीकार करता हूँ । मेरी मृत्यु उचित है; किन्तु मेरे सेवकको क्यों मारा जाना चाहिये । आप मुझे प्राण दण्ड दें । मैं स्वीकार करूँगा उसे ।'

'सम्राट् क्षमा करें ! हम सबसे प्रमाद हुआ है ।' श्रीरामने दोनों हाथ ऊपर उठाये मुकुट उतार देनेके लिए । यह देखकर सबके साथ ब्राह्मण एक साथ पुकार उठे । उनका स्वर सर्वथा परिवर्तित हो गया था—'वे महानुभाव निर्दोष हैं । उनसे अनजानेमें जो अपराध हुआ था, उसका बहुत अधिक दण्ड वे भोग चुके हैं । उन्हें आपने जो अमरत्व प्रदान किया है, अज्ञानवश हमने उसे उनका दर्प मान लिया । अपराध हम लोगोंसे हुआ है । हमने भक्तापराध किया है; किन्तु वे अवश्य हमें क्षमा कर देंगे ।

ब्राह्मण एक साथ वहाँसे दौड़े गये । उन्होंने विभीषणको उस गुहासे निकाला और उनसे हाथ जोड़कर बोले—'आप भगवद्भक्त हैं । हम सबने अज्ञानके कारण आपको बहुत कष्ट दिया है । आप अपने सहज औदार्यसे हमें क्षमा कर दें । यदि आपका हम सबपर अनुग्रह हैं तो हमारी अर्चा स्वीकार

करें। आपको इसी अप्रीति कर वेशमें हम सम्राट्के सम्मुख उपस्थित करनेका साहस नहीं कर सकते।'

'प्रभुने आदेश किया है।' इसी समय पवनपुत्रने आकर विभीषणको सुनाया—'आपको विनम्र होकर ब्राह्मणोंसे प्रायश्चित्त पूछना चाहिये और उसे सम्पन्न करके ही उनके सम्मुख जाना चाहिये।'

भक्त-रक्षणका कार्य पूर्ण हो चुका था। अब उसके द्वारा अनजानमें हुए अपराधका परिमार्जन आवश्यक था। जिनका नाम-स्मरण निखिल पाप राशिको तत्काल भस्म कर देता है, वे परम पावन प्रभु चाहते थे कि उनके अपने जनसे जिनको असन्तोष हुआ हैं, वे सर्वथा सन्तुष्ट हो जायें। श्रुति-शास्त्रकी मर्यादा अक्षुण्ण रहे। क्योंकि स्मृति कहती है—'ब्रह्मघ्नका मुख देखना भी पाप है।' मर्यादा पुरुषोत्तमने प्रायश्चित करके विभीषणको अपने समीप आनेका आदेश दिया। प्रायश्चित तो वह जो शास्त्रज्ञ विद्वानोंकी समिति निर्णय करे।

'मैं आप सबके चरणोंमें विनम्र प्रणिपात करता हूँ।' विभीषण हाथ जोड़कर बोले—'श्रीरंग-दर्शनकी आतुर उत्कण्ठाके कारण ही मेरे रथका वेग तीव्र था। प्रयत्न करके भी मैं रथको इतनी शीघ्र नहीं रोक सका, जिससे उन वृद्ध विप्रको बचा सकता। आप सबने मेरे स्वामीका सन्देश सुन लिया है। कृपा करके मुझे प्रायश्चित निर्देश करें, जिसके द्वारा परिपूत होकर मैं उन अपने सर्वस्वके श्रीचरणोंका दर्शन कर सकूँ।'

'आप वैसे तो परिपूत ही हैं। श्रीरामका स्मरण ही समस्त पापोंको नष्ट करने वाला है; किन्तु वे मर्यादा पुरुषोत्तम मर्यादा-रक्षण चाहते हैं।' ब्राह्मणने वहीं बैठकर विचार करके निर्णय दिया—'सब शास्त्र भगवत्प्राप्तिकी, भगवद्दर्शनकी अत्यन्त उत्कण्ठाको आवश्यक मानते हैं, आपकी श्रीरंग-दर्शनकी आतुरताको किसी प्रकार अपराध या प्रमाद नहीं कहा जा सकता। आप स्वयं ब्राह्मण हैं, भगवद्भक्त हैं। आपसे अनजानमें, अनिच्छापूर्वक जो अपराध बना हैं, उसका प्रायश्चित केवल काबेरीके पुण्यतीर्थमें स्नान मात्र हैं। आपको हम सबने जो विविध यातनाएँ दी हैं, वह प्रायश्चित्तसे बहुत अधिक हैं, वह प्रायश्चित मानकर ही आपने सहनकी हैं। उन्हें आपको देकर अपराध हमने

किया है, उसका प्रायश्चित्त हम करेंगे । आप स्नान करके शुद्ध हों ।'

ब्राह्मणोंने विभीषणको ले जाकर क्षौर कराया, सविधि मृत्तिका, गोमय आदि उपलेपनपूर्वक प्रायश्चित्त स्नान कराया । सम्पूर्ण विधिसे अघमर्षण सम्पन्न हो जानेपर उन्हें दिव्य वस्त्र दिये । उनके आभरण लौटाये उन्हें । प्रायश्चित्त-पूजनमें उनको तिलक किया, माल्य धारण कराया । स्वास्ति पाठ किया । यह सब करके सादर श्रीरामके समीप ले गये ।

'पाहिमाम् ! पाहिमाम् !' पुकारते विभीषण दौड़कर पाद-पद्मोंमें गिरे तो श्रीरघुनाथने उन्हें विशाल भुजाओंमें भरकर हृदयसे लगा लिया । इन भक्तवत्सलका स्वभाव तो आश्रितका दोष देखना नहीं है । कोई उपालम्भ नहीं । पूछा तक नहीं कि विभीषण क्यों आये यहाँ । अपने यहाँ आनेकी भी चर्चा नहीं ।

ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा प्राप्त हुई । श्रीरामने भी श्रीरंगका दर्शन-अर्चन किया । गायें, भूमि, स्वर्ण अन्नादि देकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया । ब्राह्मणोंने सविधि अर्चन कराया ।

'मित्र तुम तो मानव दृष्टिसे अदृश्य रहनेमें सक्षम हो ।' विभीषणकी ओर श्रीरामने देखा 'अतः अबसे यहाँ अर्चाके लिए प्रत्यक्ष आनेका परित्याग कर दो । अलक्ष्य रहकर ही श्रीरंगकी अर्चा सम्पन्न कर लिया करो । इससे पुनः तुम्हें कोई व्याघात प्राप्त नहीं होगा ।'

विभीषणने यह आदेश स्वीकार कर लिया । इसके कारण उनकी अर्चा निर्वाध हो गयी । हानि ब्राह्मणोंकी ही हुई । राक्षसाधिपसे प्राप्त होने वाली उनकी दैनिक दक्षिणा बन्द हो गयी । श्रीरामके अपने जनोंसे असन्तुष्ट होने वाला सदा अपनी ही हानि करता है । विप्रोंको भक्तापराधके प्रतिकारमें यह अत्यल्प दण्ड प्राप्त हुआ ।

विभीषणको साथ लेकर, ब्राह्मणों द्वारा पुनः स्वस्ति पाठसे सत्कृत होकर श्रीरंगनाथकी पुष्प माला, प्रसादादि स्वीकृत करके श्रीराम पवनकुमारके साथ पुष्पकपर पधारे ।

●●●

पुनः पदार्पण

'आपके चरणार्चनसे यह किंकर वञ्चित ही रह गया ।' विभीषणने विमानमें बैठते ही बद्धाञ्जलि प्रार्थनाकी—'राक्षसोंकी अपावन पुरी और उसका अपवित्र राजसदन पवित्र हो जाता यदि ये भुवन पावन पादपद्म वहाँ कुछ पलको भी पड़ जाते ।'

'विमान तुम्हारी इच्छाका अनुगमन करे ।' श्रीरघुनाथने स्वीकृति दे दी । युद्ध विजयके उपरान्त अयोध्या जानेकी त्वरा थी । उस समय विलम्ब होनेसे अनर्थ अवश्यम्भावी था । अतः उस समय विभीषणके अनुरोधको अस्वीकृत करना पड़ा था; किन्तु इस समय ऐसी कोई विवशता नहीं थी ।

विमान लंकाके आकाशपर पहुँचा तो वहाँ कुतूहल, आनन्द, उत्सुकताके कारण लोग दौड़ने लगे । पुष्पक लंकाके लोगोंके लिए पूर्व परिचित था । अब यह विमान आया है तो अवश्य सम्राट पधारे हैं अयोध्यासे । अल्पकालमें स्वागतकी जो सज्जा सम्भव थी उसे प्रस्तुत करके मन्त्रियोंके साथ महाराज्ञी मन्दोदरी विमानके उतरते ही उसके समीप स्वयं पहुँची ।

'राक्षसेश्वरीका सन्देश प्राप्त होते ही मैं अयोध्यासे चल पड़ा था ।' श्रीरामने स्वागत स्वीकार करके सस्मित कहा—'लंकाको उसका अधिपति लौटाने आ गया हूँ ।'

'अपने चरणाश्रितोंकी चिन्ता आप भक्तवत्सलको रहती ही है ।' मन्दोदरीने हाथ जोड़कर कहा—'मैंने तो अपने अधैर्यके कारण सूचना देनेकी धृष्टताकी । अन्यथा जानती थी कि आप स्वयं अपने दासोंकी सुरक्षाके प्रति सचिन्त रहते हैं । प्राणी आपके पादपल्लवोंकी शरण लेकर अकुतोमय हो जाता है । उसे कहीं भी, किसीसे भी कोई भय नहीं रहता । भय तो मुझे था कि राक्षसाधिप अयोध्या चले गये होंगे और आपके चारु-चरणोंका सान्निध्य प्राप्त हो तो किये संसारका स्मरण आ सकता है ।'

'ऐसा सौभाग्यशाली यह जन नहीं है देवि ।' विभीषणने मन्दोदरीकी ओर देखा । उनका हृदय रो उठा—'कदाचित् ऐसा हो पाता....... ।'

श्रीरघुनाथको दिव्यरथमें बैठाकर राजसदन ले जाया गया । राजमाता कैकसी (केशिनी, निकषा) ने राजभवनमें प्रणाम किया—'मेरे लोक विश्रुत तीन पुत्र हुए और तीनोंपर ही मुझे गर्व है । दशग्रीव और कुम्भकर्णने समरमें अपने पौरुषसे आप परमपुरुषको सन्तुष्ट किया । आपके शरोंसे वे शुद्ध होकर आपके धाम पहुँचे । विभीषणको आपने अपने श्रीचरणोंमें स्वीकार कर लिया । मेरे पितृकुलमें प्रह्लाद तथा बलिको अपनाकर आपने उस कुलको पावन किया थाऊ। अब यह मेरा अपना कुल कृतार्थ हो गया । विभीषणके कारण राक्षस वंश पुनीत हुआ ।'

'प्रह्लादके समान ही विभीषण मुझे अत्यन्त प्रिय है ।' श्रीरामने सहज स्वरमें कहा—'ऐसे सत्पुत्रकी जननी होनेके कारण आप त्रिभुवन वन्दनीय हैं ।'

'भुवन वन्दनीय वह है जिसे आप बनादें ।' माता निकषाने कहा—'अन्यथा एक दैत्यकन्या, राक्षस जननीको कौन पूछने लगा है । नैकषयोंकी माताका स्मरण भी अशुभ है; किन्तु आप परमोदारने इसके पुत्रको अपनाकर इसे भी पवित्र कर दिया ।'

'आज हम सबका सौभाग्य है कि त्रिभुवन सम्राट अपने शासित प्रदेशकी इस पुरीमें पधारे हैं ।' राजभवनमें सत्कार हो चुका तब मन्दोदरीने श्रीरामसे प्रार्थनाकी—'हम राक्षसोंकी राजसभामें पधारकर यहाँके जनोंको पादाभिवन्दनका सौभाग्य प्रदान करें और एक बार इस अपनी पुरीकी व्यवस्था भी देखलें ।'

'देवि त्रिजटाके भी दर्शन करने हैं मुझे ।' श्रीरामने स्वयं कहा । श्रीजनक-नन्दिनीने बार-बार त्रिजटाके स्नेह सहानुभूतिकी प्रशंसाकी थी । इसी क्रममें स्मरण किया—'विभीषण ! तुम्हारी कन्या भी तो है ।'

'इसी भयंकरी राक्षसीका नाम त्रिजटा है ।' समीप ही उपस्थित एक वृद्धाने पदोंमें मस्तक रखा—'उन महासती सीताका अनुग्रह । वर्तमान लंकाधिपने तो मुझ दासीको पूजाकी प्रतिमा मान लिया है । ये महाराज्ञी और वधू सरमा राजमाता निकषाकी अपेक्षा भी अधिक आदर करती हैं इसका ।'

'आपके असीम उपकार हैं मुझपर ।' श्रीरामने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया—'आपके उपकारोंसे मैथली उऋण नहीं हो सकती । उन्होंने आपको

बार-बार स्मरण किया है । उन्होंने बहुत स्मरण किया है विभीषणकी पत्नी तथा पुत्रीका ।'

विभीषणकी पत्नी सरमाने संकोचपूर्वक भूमिमें मस्तक रखा तो श्रीरामने अपने कण्ठकी मणिमाला उसे प्रदान की । विभीषणकी पुत्रीको समीप बुलाकर अपने करोंके कंकण उसे दिये । सम्राट्का यह प्रसाद दोनोंने मस्तकसे लगाकर आदरपूर्वक स्वीकार किया ।

श्रीरघुनाथ राजसदनके अन्तःपुरसे राजसभामें पधारे । वहाँ सभी मन्त्रियोंने तथा पुरीके प्रधान लोगोंने प्रणाम किया । अपने उपहार अर्पित किये । लंकामें अब केवल वृद्ध ही नहीं रहे थे । राक्षसियाँ गर्भ धारण करते ही संतानको जन्म देनेमें समर्थ होती हैं । उनके शिशु तत्काल युवावस्थाके समान आकार एवं बल वाले हो जाते हैं । इस प्रकारके स्वस्थ, सबल बालक बहुत हो गये थे लंकामें । अब उनका अध्ययन चल रहा था । विभीषणके संग एवं प्रभावके कारण उनके स्वभावमें उग्रता तथा तामसिकता नहीं आयी थी । वे सब विनयी थे, बुद्धिमान थे, संयमी थे और सात्त्विक वृत्ति वाले थे । वृद्धोंके भी रहन-सहन तथा स्वभावमें बहुत कुछ परिवर्तन हो चुका था ।

श्रीराघवेन्द्रने सभीको पुरस्कृत किया । मन्दोदरीने यह व्यवस्था पहिले ही कर दी थी । सम्राट्ने मंत्रियोंसे लेकर सेवकों तक सबको पुरस्कृत किया । सम्राट् द्वारा घोषित पुरस्कार राजकोषसे तत्काल दे दिया गया ।

विभीषण तथा मन्दोदरीके आग्रहके कारण रथमें बैठकर श्रीराघवेन्द्रने सम्पूर्ण लंकापुरी देखी । अन्तःपुरसे राजसभामें आनेसे पूर्व वे अशोकोपवन देख आये थे । जिस शिंशुपामूलमें श्रीजनकनन्दनी रही थीं, वह स्थान तो अब मन्दोदरी, सरमा, विभीषणकी पुत्रीका ही नहीं, विभीषणकी भी आराध्या स्थली बन गयी थीं । श्रीजनक-नन्दिनी जहाँ बैठी रहती थीं, वह स्थली सुरक्षित कर दी गयी थी । वहाँ विधिवत् अर्चा होती है, उसे देखकर स्पष्ट हो जाता था । अशोकोद्यान पुनः वृक्ष लताओंसे सुन्दर हो गया था । उसके मध्यका देवी-मन्दिर पुनरुद्धार प्राप्त कर चुका था । केवल उसमें प्रतिमा-परिवर्तन हो गया था । उसमें अब श्रीसीताकी वही तपस्विनी वेशकी स्वर्ण प्रतिमा प्रतिष्ठित थी ।

'पवनपुत्र ! आज तुम्हें इस वाटिकाके फलित वृक्षोंको देखकर क्षुधा

नहीं सताती ?' मन्दोदरीने तनिक हँसकर पूछा ।

'देवि ! अब तो यह मेरी अम्बाका उपवन है ।' हनुमानने हाथ जोड़ा—'वे स्नेहमयी अपने इस वानर पुत्रको अयोध्यामें एक दिन भी भूखा नहीं देख पातीं । उस समय तो मैं उनके अन्वेषणमें कई दिनोंका उपोषित था ।'

लंका पुनः वैभव-शालिनी पुरी बन गयी थी । उसमें युद्धके ध्वन्सका कोई चिन्ह शेष नहीं रहा था; किन्तु नगरकी साज-सज्जामें परिवर्तन बहुत हुआ था । उग्रतारा छिन्नमस्ता, चामुण्डा, भैरवादिके मन्दिर थे; किन्तु उपेक्षित प्राय पड़े थे । अनेक भव्य मन्दिर भगवान नारायणके निर्मित हो गये थे । वे ही नगरके सम्पन्नतम मन्दिर थे ।

आपान-गृह बन्द नहीं किये गये थे और न रंगशालाएँ उच्छिन्न हुई थी; किन्तु रंगशालाओंमें अब श्रीहरिके अवतार चित्रोंकी सज्जा थी । भगवल्लीकाओंका अभिनय होता था । आपान गृहमें वृद्ध ही आते थे और वे भी यदा-कदा, अपनेको दूसरोंसे छिपाकर आते थे ।

पशु-वधशालाएँ स्वच्छ हो चुकी थी । आहारके लिए पशु-पालन अनावश्यक प्राय हो जानेसे उन पशुओंके स्थानपर गौ एवं महिषी-पालनको प्रमुखता प्राप्त हो गयी थी । केवल राक्षसोंकी प्रकृतिका यही वैशिष्य बचा था कि उन्होंने गौकी अपेक्षा महिषी-पालन अधिक अच्छा माना था ।

सम्पूर्ण नगर श्रीरामने देखा । विभीषण तथा मन्दोदरीने विनम्र सेवकके समान अपने कार्य दिखलाये । श्रीरघुनाथने उनके कार्योंकी प्रशंसा की । यह नगर निरीक्षण समाप्त करके जब पवनकुमारके साथ पुष्पकपर पहुँचे, विभीषणने अमूल्य रत्नोंसे विमान भर दिया था । श्रीरामने यह उपहार सहर्ष स्वीकार कर लिया । विभीषणादिसे विदा होकर विमान ऊपर उठा । उसी दिन श्रीराम अयोध्या पहुँच गये ।

●●●

हनुमदोपदेश

'आञ्जनेयको मेरे तत्त्वका उपदेश करो तुम !' अपने चरणोंके समीप बैठे हनुमानकी ओर देखकर श्रीरघुनाथने श्रीजनक-नन्दिनीसे कहा ।

पवनकुमारने कोई जिज्ञासा नहीं की थी । वे अपने इन आराध्यकी सेवासे सन्तुष्ट-उन्हें सेवाके अतिरिक्त और कुछ अभीष्ट नहीं; किन्तु उनके जैसा निष्काम अधिकारी प्राप्त हो तो स्वयं श्रीराम कहाँ अपना स्वरूप अप्रकट रख पाते हैं ।

भक्ति देवीका स्वभाव ही है कि वे जहाँ स्वयं विराजमान होती हैं, उनके दोनों पुत्र ज्ञान-वैराग्य वहाँ स्वतः आ जाते हैं । ज्ञान-वैराग्य रहित भक्ति-बन्ध्या होगी । लेकिन सम्भव कैसे है कि श्रीराममें सच्चा अनुराग भी हो और संसारमें, शरीरमें आसक्ति भी अवशिष्ट रहे । परमात्मामें प्रेम स्वतः पर-वैराग्यको अपना प्रसाद बना देता है । जिसमें प्रीति होगी, उसका स्वरूप आवृत रह सकेगा ? अतः भक्ति, विरक्ति और भगवत्तत्वबोध एक साथ अन्तरमें आते हैं । इनमें क्रम या कार्य-कारणत्व नहीं हुआ करता ।

'प्रबल-वैराग्य-दारुण-प्रभञ्जन-तनय ।' पवन-पुत्र साक्षात् पर-वैराग्यके स्वरूप हैं और श्रीराम-प्रेमकी तो प्राप्ति उनके अनुग्रहसे होती है । इसलिए वे ज्ञानियोंमें अग्रगण्य हैं । यह तो श्रीरामका सहज स्नेह था कि उन्होंने अपनी आद्याशक्तिको उपदेशका आदेश किया । हनुमानने अञ्जलि बाँधकर तनिक मुख ऊपर उठा लिया और अपनी अनन्त वात्सल्यमयी अम्बाकी ओर अपलक देखने लगे ।

'अनादि, अनन्त, अचिन्त्य, अद्वितीय हैं ये अवधेश ।' उन पराशक्तिने प्रारम्भ किया—'ये निर्गुण, निर्विकार, निष्क्रिय निर्धर्मक हैं । इनका वर्णन न वाणीसे सम्भव है, न मनसे वे चिन्त्य हैं । ये अवाङ्मनसगोचर हैं ।'

'जब एक ही अटूट तत्त्व परिपूर्ण है, उसमें विकार अथवा क्रिया सम्भव नहीं है, यह तुम समझ सकते हो । श्री वैदेहीकी वाक सुधा स्रोतस्विनी अखण्ड प्रवाहित हो रही थी—'अनुभव स्वरूप, ज्ञान मात्र ही इन मेरे आराध्यको किसी

प्रकार कहा जा सकता है । इनमें असत्, अज्ञान क्लेशका सर्वथा लेश नहीं है, केवल यह सूचित करनेके लिए इनको सच्चिदानन्द कहा जाता है ।'

'तुम्हारे ये स्वामी न चलते हैं, न कुछ करते हैं, न खाते हैं और न सोते हैं । ये कर्ता या भौक्ता नहीं हैं । इनका यह अवतार और इस अवसरकी सब लीलाएँ मेरा कर्म हैं । मैंने की हैं सब । इनमें केवल इतनी प्रतीति होती है । ये मुझ योगमायाके द्वारा ही इस चिद्घन श्रीविग्रहके रूपमें विद्यमान हैं ।'

'मैं इनकी शक्ति, इनकी प्रकृति, इनकी योगमाया । इनसे पृथक मेरा कोई अस्तित्व नहीं; किन्तु मेरे बिना इनकी प्रतीति—इनकी उपलब्धि भी नहीं है । निर्गुणको मेरे सहयोगसे सगुण होना पड़ता है । मैं इनसे नित्य अभिन्न और ये मेरे शाश्वत अधिष्ठान—आश्रय ।'

'यह समस्त प्रकृति-प्राकृत प्रपञ्च मेरा विलास है । अनन्तानन्त ब्रह्माण्डोंका उद्भव मुझसे होता है । मैं ही उनकी पालिका-स्थितिकारिणी और संहारिका भी हूँ । यह सब शक्तिका स्फुरण है और शक्ति मैं हूँ । शक्ति इन परात्पर पुरुषकी । इनसे सदा अभिन्न ।'

'इन आनन्दघनमें मेरे द्वारा आरोपित सत्-चित् आनन्द ही मुझमें प्रतिफलित होकर मेरे स्थूल रूप प्रकृतिमें आता है और तब उसीको क्रमशः तम, राज और सत्त्व कहा जाता है । इनकी परमाधिष्ठात्री मुझे शास्त्र संधिनी, संवित् एवं ह्लादिनीके नामसे उपास्या बतलाते हैं । समस्त सृष्टि मेरा विलास है और मैं अपने इन अधीश्वर परात्पुरुषके आनन्दके लिए—विनोदके लिए विलासिनी बनी हूँ । इनकी प्रीतिके अतिरिक्त मेरा कोई और प्रयोजन नहीं है । मेरी अपने लिए भी कोई सार्थकता नहीं है । मैं हूँ केवल तब तक, जब तक ये मेरे आराध्य मेरी ओर देखते हैं । इन्हें मेरा प्रयोजन है । इनकी अस्वीकृति होनेपर मैं इनसे एकात्म हो जाती हूँ ।'

हनुमानके नेत्रोंमें अश्रु आ गये । उन्हें स्मरण आया कि श्रीरघुनाथने लंकामें इन जगदम्बाको जब अस्वीकार किया था, इन्होंने अग्नि प्रवेश करके अपना अस्तित्व समाप्त करना श्रेयस्कर माना था । अग्निदेवके आदेशसे श्रीराघवेन्द्रने इन्हें स्वीकार किया, इसीसे ये आज इस रूपमें सम्मुख हैं ।

'पवनकुमार ! ये जगद्धात्री ही भक्ति हैं ।' श्रीरघुनाथने अब

अनुकम्पाकी। श्रीजानकीने साध्य तत्त्वका स्वरूप स्पष्ट किया था। अब श्रीरामने साधन तत्त्वका उपदेश आरम्भ किया। 'इनके आश्रयके बिना जीव आवागमनसे उद्धारका मार्ग नहीं पाता है। वैराग्य और ज्ञान दोनों इनके पुत्र हैं, इनके ही प्रसाद हैं। ये परम प्रेम रूपिणी अन्तःकरणमें न आवें तो प्राणीका अन्तःकरण कल्मषहीन हो नहीं सकता।'

'यह दृश्यमान जगत त्रिगुणात्मिका प्रकृतिका विलास है। इसमें गुणमें गुण व्यवहार करते हैं। रूप तन्मात्रक नेत्र रूप ही देखते हैं और गन्ध तन्मात्रक नासिका गन्ध ही उपलब्ध करती है। इसी प्रकार प्रत्येक गुण अपनेमें ही व्यवहृत होता है।' श्रीराघवेन्द्रने स्पष्ट किया—'अन्तःकरण जब तक इन गुणोंमें आसक्त है, जन्म-मरणका चक्र चलता रहेगा। क्योंकि गुणोंके प्रति वासना ही शरीरकी सृष्टि करती है। जैसे वासना-संस्कार स्वप्नमें शरीरोंकी सृष्टि कर लेते हैं, वैसे ही एक शरीरकी समाप्तिके अनन्तर दूसरे शरीरकी भी सृष्टि कर लेते हैं।'

'प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। अतः समस्त प्राकृत-प्रपञ्च और उसकी प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक स्थितिमें तीनों गुण सम्मिलित हैं। प्रकृतिका यह विलास प्रवाह रूपसे नित्य—अनादि, अनन्त है और पुरुषको प्रलुब्ध रखनेके लिए है। इसमें गुण-दोष कुछ नहीं है। गुण-दोषकी भावना बुद्धि भेदसे भिन्न-भिन्न है। प्रकृतिकी यह कर्म-धारा तो चल रही है। पुरुष इसमें अपने कर्तृत्त्वका अहंकार करके आबद्ध होता है। जब वह अपनेको कर्त्ता मान लेता है, उसे उसका भोक्ता बनना पड़ता है। अन्यथा वह स्वरूपतः असंसक्त है।'

'इन अनन्त वात्सल्यमयीके अंकमें ही इनके सब पुत्र सो रहे हैं। वे सो रहे हैं, अतः स्वप्न देख रहे हैं। उनका समस्त सुख-दुःख स्वाप्निक है। वे तो आनन्द रूप हैं। अनन्तके अंश और स्नेहमयीके शिशु; किन्तु मोह निद्रामें मग्न दुःस्वप्न देख रहे हैं। ये दयामयी उन्हें जगानेका यत्न करती हैं तो वह उन्हें दुःखद लगता है। लेकिन जागरणका बीज इन्होंने सब शिशुओंको सौंप रखा है। ये स्वयं ही जागरणात्मिका-प्रकाश स्वरूपा हैं। प्रत्येक अन्तःकरणमें प्रीतिके रूपमें ये विराजमान हैं। लेकिन इनके निर्मल स्वरूपको न पहिचाननेके कारण प्राणी पदार्थोंमें उस प्रीतिको भी अटकाकर अत्यन्त दीन,

दुःखी हो गया है ।'

'प्रपञ्चका यह समस्त वाह्य विस्तार तो इनका महाकाली स्वरूप है । यहाँ तो ये कालात्मिका बनी क्रीड़ा कर रही हैं । इस स्वरूपका उपभोग—साहचर्य तो अकाल पुरुष ही महाकाल बनकर कर सकता है । यहाँ कहीं भी आसक्तको कालका कवल बनना पड़ता है । मृत्युसे मृत्युमें, एक जन्मसे दूसरे जन्ममें भटकना ही उसकी नियति बन जाती है ।'

'अमृत स्वरूपा हैं ये वस्तुतः; किन्तु इनका यह स्वरूप अनन्तरमें अन्तर्यामीसे एक होकर है । हृषीकेशकी ओर उन्मुख प्राणी इनके द्वारा अमृतत्त्व उपलब्ध करता है । यह अन्तर्मुखका सब प्रकार पालन, रक्षण, पोषण, संवर्धन करनेमें सावधान, सचेष्ट रहती हैं । इन प्रेम स्वरूपाका आश्रित सर्वत्रसे अभय प्राप्त कर लेता है ।'

'परिच्छिन्नताका—व्यष्टि व्यक्तित्वका मोह ही बन्धन है । उसका समूलोन्मूलन ही पूर्णत्त्वकी प्राप्ति है और अपूर्ण सदा आपद्ग्रस्त ही रहेगा । अपनत्वका सम्पूर्ण समर्पण इन भक्ति देवीकी भव्य अनुकम्पाके बिना सम्भव नहीं है । ये श्रद्धा स्वरूपिणी अन्तःको उज्ज्वल एवं विनम्र बनाती हैं, तभी मानस-भूमि साधनोंके लिए उर्वरा होती है ।'

'हनुमान ! साधनका अर्थ ही है सतत संयम, सतत सावधानी, सतत प्रयत्न; क्योंकि प्रपञ्च प्रकृति तो पतनोन्मुखी है । इसमें परिमार्जनका प्रयत्न एवं उत्थानकी चेष्टा सतत आवश्यक है । इसमें विकृतिमल स्वयं आता है । संस्कार करते रहना पड़ता है । यह संस्कार श्रमहीन, अप्रयास चल सकता है, आरम्भसे ही आनन्ददायी हो सकता है यदि प्राणी अपनी इन वात्सल्यमयीका आश्रय ले । भक्ति तो आनन्द स्वरूप है । इनका आश्रय आरम्भसे ही अभय, आनन्द एवं अविचल पदका सुनिश्चित आश्वासन है ।'

'पवनकुमार ! तुमको इस उपदेशकी आवश्यकता नहीं थी; किन्तु तुम हमारे आश्रितोंके परम रक्षक, पथप्रदाता हो, अतः तुम्हारे आचार्यत्वकी परम्परा हमसे ही आरम्भ हो, इसलिए यह उपदेश हमने किया है ।' श्रीरामने उपसंहार करके पूछा—'हमें प्रसन्नता होगी यदि तुम अपनी सर्वथा निर्मलमतिके मननका निष्कर्ष हमें सुनाओगे ।'

'देव ! जहाँ तक शरीरका सम्बन्ध है, इसकी सार्थकता आपकी सेवामें ही है ।' हनुमानने अपना निश्चय निवेदन किया—'अविद्यासे प्रपञ्चकी प्रतीति होती है, यह बहुत पीछेकी बात है; किन्तु यह तो स्पष्ट तथ्य है कि व्यक्तित्व केवल संस्कार मूलक भ्रम है । व्यष्टि-देह नामकी वस्तु सहस्रों छिद्र वाले चर्मसे आवृत वैसी ही पृथकता है, जैसे मशक वारिणीके भीतरके आकाश एवं वायुके पार्थक्यकी कल्पनाकी जाय । शरीरमें आकाश, वायु, अग्निका तो समष्टिसे कोई पार्थक्य है नहीं । जल एवं मृत्तिका भी निरन्तर परिवर्तित हो रही है । असंख्यों परमाणुओंके प्रवाहमें एक प्रतीयमान आकृतिका नाम ही देह है ।'

'यह देह भी समष्टिपर आश्रित है । समष्टि वायु ही शरीरमें प्राण बना है । समष्टि अग्नि ही इसकी उष्णता है । आकाशमें खण्ड सम्भव नहीं । समष्टि जल ही इसे आर्द्र रखता है और स्थूलाकारका आधार अन्न भी समष्टि पार्थिवांशसे ही आना है । अतः यह समष्टिसे जीवित है । समष्टिपर अवलम्बित है ।'

'शरीर किसीका हो—मुझ वानरका, देवताका, दानवका, मानवका—ज्ञानीका या अज्ञानीका । स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर भी, वह समष्टिका अंश, समष्टि-सञ्चालित है । अतः समष्टिके सञ्चालकका—सर्वेश्वरेश्वर आपका दास है । आपके दासत्वमें ही शरीरकी सार्थकता है । भले निर्मल अन्तःकरणमें ज्ञानोदय होकर अविद्यानाश हो जाय, फिर जन्म-मरण न हो; किन्तु आपके इस आनन्दघन श्रीविग्रहका साक्षात्कार न हुआ, इसकी सेवा नहीं प्राप्त हुई तो इन्द्रियोंकी उपलब्धि व्यर्थ हो गयी । इन नेत्र-कर्णादिकी कोई सार्थकता ही नहीं रही । इनकी सार्थकता तो आपके दर्शन एवं दास्यमें ही है ।'

'जहाँ तक जीवदृष्टि है—अनेक घटोंके जलमें प्रतिबिम्ब सूर्यके समान अन्तःकरण रूप-घटमें प्रकाशित चेतना आपका-ही प्रतिबिम्ब है । आपका ही अंश है । नरके हृदयमें अन्तर्यामी नारायण रूपसे तो आप अवस्थित हो ही, वह आपका सखा नर भी तो आपका प्रतिबिम्ब ही है । आभास चेतन—प्रतिबिम्ब अपने विम्बसे भिन्न भले प्रतीत हो, भले उसमें उस जल या दर्पणकी विकृति, रंग अथवा गतिकी प्रतीति हो, जिसमें वह प्रतिबिम्बित है; किन्तु वह अपने विम्बसे अभिन्न ही तो है ।'

'अभिनिवेश—शरीरसे तादात्म्य ममताका मूल कारण है और अन्तःकरणसे तादात्म्य अपनेमें अन्तःकरणके धर्मोंको आरोपित करके कर्तृत्व-भोक्तृत्वसे युक्त, परिच्छिन्न बनाता है । आपके श्रीचरणोंमें अनुराग हो तो यह तादात्म्यभ्रम आगे ।'

'कर्म प्रवाह अनादि है । प्रकृतिके गुणोंके द्वारा उसकी धार चल रही है । कोई व्यष्टि कर्ता नहीं है, न हो सकता है । समष्टिका सञ्चालन आप सर्वेश्वरेश्वरकी अचिन्त्य शक्तिसे हो रहा है । इसका कण-कण, पत्ता-पत्ता आपके इंगितसे ही गतिशील है । इसमें व्यष्टिका अपना कर्तृत्व कुछ नहीं है । लेकिन माया मोहित प्राणी अपनेको कर्ता मानकर भोक्ता बननेको बाध्य हो गया है । वह अपनेको आपके श्रीचरणोंमें अर्पित करदे, अनादि कर्तृत्वका अर्पण ही उसके इस प्रवाहसे परित्राण पावन पथ है ।'

'मेरे स्वामी ! आप नित्य, शाश्वत, विभु हो । आप अद्वितीयके अतिरिक्त दूसरी सत्ता ही नहीं है । वस्तु तथ्य तो यही है कि आप ही हो । सर्वरूप, सर्वनामा, सर्वमय आप ही परम सत्य हो ।' हनुमानने श्रीरघुनाथके पादपद्मोंमें मस्तक रखा तो उनके सिरपर एक साथ श्रीसीताराम दोनोंने करपल्लव रख दिये ।

●●●

चुटकी-सेवा

'आञ्जनेयने अयोध्या आकर हम सबको अपने आराध्य अग्रजकी सेवासे सर्वथा वञ्चित कर दिया है ।' भरतादि तीनों भाई अन्तःपुरमें श्रीजनकनन्दिनीके समीप उपस्थित हुए—'हम उन पवनपुत्रकी तत्परतासे पराजित हैं । कोई भी सेवाका अवसर वे दूसरेको देते ही नहीं । पहिलेसे प्रस्तुत मिलते हैं । पुत्र जब पीड़ित हो तो अम्बाके अतिरिक्त किसकी शरण जावें ? अतः आप अनुग्रह करके कोई उपाय निकालें ।'

'हनुमानने तो मुझे भी सेवा-वञ्चित कर दिया है ।' श्रीजानकीने कहा—'उसकी चल पाती तो वह रात्रिके एकान्तकी पाद-संवाहन-सेवा भी मुझे देना नहीं चाहता था । अन्तःपुरमें भी वह सम्राट्के साथ लगा ही रहता है। रात्रिमें शयनकक्षमें भी उपस्थित रहनेका आग्रह कर रहा था । बड़ी कठिनाईसे स्वयं तुम लोगोंके अग्रज ही वारित कर सके उसे । वह वानर है, अतः मानवकी मर्यादा समझता ही नहीं ।'

'आप कुछ करें ।' भरतने अनुरोध किया । श्रीमैथिली अनुकूल हैं, यह देखकर उनको साहस हो गया था ।

'क्या किया जा सकता है ?' वैदेहीने सहज पूछ लिया ।

'सम्राटकी सेवा-सूची बननी चाहिए और उसपर यह अंकित होना चाहिए कि कौन-सी सेवा किसे अर्पितकी गयी है ।' लक्ष्मणने सुझाव दिया—'उस सूची पर यदि आप सम्राट्से हस्ताक्षर करा दें तो वह राजसदन एवं राजसभामें प्रामाणिक हो जायेगी । उसका अल्लंघन कोई नहीं कर सकेगा ।'

'तुम लोग ऐसी सूची बनाकर मुझे दे दो ।' श्रीजानकीने कहा—'हस्ताक्षर मैं करा दूँगी; किन्तु अन्तःपुरकी सेवा मेरा भाग रहना चाहिए ।'

'यह आवश्यक तो नहीं है कि अयोध्याके सम्राट्की कोई सेवा किसी वानरको दी ही जाय ?' शत्रुघ्नकुमारने पूछ लिया—'सम्राट्के स्वजन जब सेवाको समुत्सुक हैं, किसी भी अन्यको यह अवसर देना कैसे उचित हो सकता है ?'

'तुम लोगोंको उचित लगे, वैसी सूची बना लो ।' श्रीजनक-नन्दिनीको यह अच्छा तो नहीं लगा कि उनके हनुमानको ही प्रभुकी सेवासे सर्वथा वञ्चित किया जाय; किन्तु वे भी सेवाका अवसर न मिलनेसे झुँझला गयी थीं । अतः उन्होंने स्वीकृति दे दी । तीनों भाइयोंने प्रातः उत्थानसे लेकर रात्रि-शयन तककी सम्राट्की समस्त सेवाओंकी सूची बनायी । बहुत सोचकर देख लिया कि कोई छोटी सेवा भी छूट न जाय । कौन-सी सेवा किसका दायित्व है, यह भी लिख लिया । सम्राट् किसीको बुलाना चाहें तो वह बुलानेकी सेवा तक अंकित करली गयी ।

'आपके तीनों अनुज बहुत खिन्न हैं कि उन्हें आपकी सेवाका अवसर ही नहीं मिलता है ।' श्रीसीताजीने एकान्तमें श्रीरघुनाथके करोंमें सूची देकर

निवेदन किया—'उन्होंने यह सूची बनायी है । वे चाहते हैं कि आप हस्ताक्षर करके इसे विधान बना दें ।'

'इसमें तुम्हारी भी स्वीकृति है ?' श्रीराघवेन्द्रने पूरी सूची ध्यानपूर्वक देख ली । उसमें कहीं हनुमानका नाम न देखकर उनके अधरोंपर हास्य आया । इन लीलामयका हास्य ही तो जनोन्मादकरी माया है । उसका मर्म कौन समझ पाया है । बिना कोई प्रतिवाद, बिना कोई संशोधन किये हस्ताक्षर करके अपनी मुद्रासे उसे अंकित कर दिया ।

एकान्त कक्षसे सम्राटके बाहर निकलते ही पवनकुमार सम्मुख आये तो शत्रुघ्नने रोक दिया—'सम्राट्की सेवाका एक सुनिश्चित विधान बन गया है । सम्राट्ने उसे स्वीकृति दे दी है । अन्तःपुरसे सम्राट्के आगे लोगोंको सावधान करते चलनेकी सेवा मेरी है । आपको उस सेवा-विधानका उल्लंघन नहीं करना चाहिए ।'

'मैं ऐसी धृष्टता नहीं करूँगा ।' हनुमानने पीछे हटते हुए विनम्र शब्दोंमें अनुरोध किया—'सेवा-विधानको मैं जाननेका अधिकारी होऊँ तो आप मुझे उससे सूचित कर दें ।'

वह सूची हनुमानजीके हाथमें दे दी गयी । उसे उन्होंने आदिसे अन्त तक देख ली । तीनों भाइयोंके अधरोंपर स्मित रेखा तो थी ही, श्रीरघुनाथ भी मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे । पवनकुमारने सूची सम्राट्के करोंमें तब दी, जब वे राज-सभामें साम्राज्ञीके साथ सिंहासनासीन हुए । सूची करोंमें देकर हाथ जोड़कर बोले—'प्रभुकी जो सेवा इस सूचीमें न हो, उसे प्राप्त करनेकी यह दास प्रार्थना करता है ।'

'सूचीमें जो सेवा न हो' भरतने लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी ओर देखा—'ऐसी तो कोई सेवा ही नहीं है ।' दोनोंकी मुखभंगी आश्वस्त थी । अतः भरतने कह दिया—'अवश्य वह सेवा जो इस सूचीमें न हो, आपका स्वत्व रहेगी ।'

'क्योंकि प्रभुने सेवा-विधान अपने हस्ताक्षरसे स्वीकार किया है, यह भी अंकित करके हस्ताक्षर कर देनेका अनुग्रह करें ।' हनुमानने प्रार्थना की ।

'इस सूचीसे जो सेवा अवशिष्ट हो, वह हनुमानजीका दायित्व रहेगी ।'

सूची सम्राट्के करोंसे लेकर भरतने उसपर नीचे इतना बढ़ा दिया । श्रीराघवेन्द्रने हस्ताक्षर करके उसे भी मुद्रांकित कर दिया ।

'जब कभी सम्राट्को जम्हाई आवेगी, चुटकी बजानेकी सेवा यह दास करेगा ।' सूचीपर हस्ताक्षर हो जानेके पश्चात् हनुमानने यह कहकर सबको चौंका दिया । सचमुच सूचीमें इस सेवाका कहीं उल्लेख नहीं था । इस सेवाका एक सुपरिणाम उसी क्षण पवनपुत्रको प्राप्त हुआ । उनको श्रीरघुनाथके पादपीठके समीप बैठे रहनेका वैधानिक स्वत्व प्राप्त हो गया । अभी तक वे वहाँ बैठते थे । किसीने अब तक आपत्ति नहीं की थी; किन्तु अब तो कोई आपत्ति कर ही नहीं सकता था । राजसभामें, राजभवनमें, कहीं भी नगरमें या अन्यत्र भ्रमणमें श्रीरघुनाथके सम्मुख रहनेका अधिकार मिल गया आञ्जनेयको । क्योंकि श्रीराघवेन्द्रको जम्हाई कब आवेगी, इसका कोई निश्चित समय कैसे बताया जा सकता है । अतः पवनकुमारको तो उनके श्रीमुखपर सदा दृष्टि लगाये रहना है । उनकी दृष्टिमें व्याघात बननेका अधिकार किसीको नहीं रह गया ।

दिन किसी प्रकार व्यतीत हो गया । भोजन, मध्याह्न विश्राम पहिले बीत चुका था । राजसभामें, कथा--श्रवणके समय, सायं सन्ध्या पूजन कालमें, रात्रिके प्रथम-प्रहरकी पुराण चर्चामें हनुमान श्रीरामके मुखपर दृष्टि लगाये सदा उनके सम्मुख उपस्थित रहे । कइयोंको कुछ असुविधा हुई; किन्तु कोई कुछ कह सकता नहीं था । भरतादि भाइयोंको भी अटपटा लगा, लेकिन सन्तोष यही था कि अब उन्हें भी सेवाका सुअवसर प्राप्त हो गया था ।

रात्रि-विश्रामका समय आया । श्रीराम अपने एकान्त कक्षमें प्रविष्ट होने लगे तो पवनकुमार भी साथ चले । श्रीजानकीने रोका—'हनुमान ! तुम्हें पहिले भी समझाया गया है कि रात्रिमें मेरे इस शयन-कक्षमें तुम्हें नहीं आना चाहिए ।'

'अम्ब ! मेरे इन आराध्यको रात्रिमें जृम्भणका वेग नहीं आता ?' हनुमानने अत्यन्त भोलेपनसे पूछा ।

'इसका आश्वासन मैं नहीं दे सकती ।' श्रीसीताने कुछ हँसकर, कुछ झुँझलाकर कहा—'किन्तु मैं तुम्हें अपने इस कक्षमें रात्रिमें आनेकी अनुमति नहीं दूँगी ।

'अच्छा अम्ब !' आञ्जनेयने कोई आग्रह नहीं किया । वे अविलम्ब पीछे हट गये । वहाँसे चले गये ।

हनुमान तो चले गये; किन्तु अपने एकान्त कक्षमें पहुँचते ही श्रीजनक-नन्दिनी दूसरी भारी उलझनमें पड़ गयीं । उनके आराध्य पूरा मुख खोले शय्यापर पड़े थे । श्रीजानकीने पूछा—'आपको क्या हुआ है ?'

कोई उत्तर नहीं । कोई संकेत भी तो ऐसा जो समझमें नहीं आया । श्रीरामने वाम कर उठाकर ऊपर संकेत कर दिया; किन्तु ऊपर—कक्षके भीतर ऊपर तो कुछ नहीं था । वहाँ तो सदाकी भाँति मुक्तादाम शोभित उज्ज्वल कौशेयवितान मात्र था । श्रीमैथिलीने हिलाया, जल पिलानेका प्रयत्न किया; किन्तु कोई परिणाम नहीं । श्रीरामने मुख बन्द नहीं किया । वे बोले नहीं । मुखमें जल लेना अस्वीकार कर दिया ।

'अरी कोई है ! शीघ्र अम्बाको सूचना दे । वे अभी यहाँ पधारें ।' व्याकुल जनक-नन्दिनीने द्वार-रक्षिकाको पुकारा—'तीनों अम्बाओंको बुला । भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नको भी पुकार ले ।'

कुछ क्षणोंमें तो वहाँ राजसदनके सभी सदस्य, सब सेवक-सेविकाएँ एकत्र हो गयीं । माताओंके आते ही श्रीरामने शय्यासे उठकर हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया; किन्तु मुख नहीं बन्द किया । पूछनेपर केवल हाथसे ऊपर संकेत करते थे । यह संककेत किसीकी समझमें नहीं आता था ।

'गुरुदेवको लेने जाओ !' माता कौशल्याने लक्ष्मणकी ओर देखा । भरतको आज्ञा दी—'राजकीय भिषक्को शीघ्र ले जाओ ।'

भिषक्का आना व्यर्थ था । उन्होंने नाड़ी-परीक्षण किया । हृदय गति देखी; किन्तु श्रीरघुनाथने कर-संकेतसे उनको सूचित कर दिया कि उनको कोई शारीरिक व्याधि नहीं है । वे कोई शारीरिक व्याधि नहीं है । वे कोई औषधि ग्रहण नहीं करेंगे ।

महर्षि वशिष्ठ लक्ष्मणसे समाचार पाकर उसी समय रथमें बैठकर राजसदन आ गये । श्रीरामने उनके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया; किन्तु मुख बन्द हुआ नहीं । वैद्यराजने निवेदन किया—'हनुस्तम्भका कोई लक्षण नहीं है ।'

'हनुस्तम्भ तो नहीं है; किन्तु हनुमान कहाँ हैं ?' महर्षिने इधर-उधर देखकर पूछा ।

'हनुमान ?' अब सबका ध्यान गया । राजसदनके सब एकत्र हो गये और पवनकुमारका पता नहीं ?

'उनको ढूँढ़ो । उन्हें यहाँ ले आओ ।' महर्षिका आदेश हुआ—श्रीराम बार-बार ऊपर संकेत कर रहे हैं । देखो कि इस कक्षके ऊपर शिखरपर क्या है ?'

'कक्षके ऊपर शिखरपर ।' अब सबका ध्यान संकेतकी ओर गया । शिखरपर कुछ है, यह अबतक तो किसीने सोचा नहीं था ।

'आपको कुलगुरु बुला रहे हैं ।' सेवक शिखरपर पहुँचे तो देखकर चकित रह गये । वहाँ हनुमान बैठे हैं । उनके नेत्र निमीलित हो रहे हैं । अश्रुधारा अखण्ड चल रही है । शरीरका रोम-रोम उत्थित है । बार-बार गात्र कम्पित हो रहा है । वे तो दोनों करोंसे चुटकी बजाते कीर्त्तनमें तन्मय हैं—

'राम राम राम, सीता राम राम राम ।
जय जय राम राम राम, सीता राम राम राम ॥'

सेवकने पुकारा, हिलाया और सन्देश दिया तो तन्मयता दूर हुई । चुटकी बजाते ही शिखरसे नीचे उतरे । गुरुदेवके पदोंमें प्रणाम करते समय श्रीराघवेन्द्रके मुखपर दृष्टि गयी तो चुटकी बन्द कैसे कर दें ?

'बन्द करो इसे ।' महर्षि वशिष्ठने आज्ञा दी । हनुमानजीके चुटकी बजाना बन्द करते ही श्रीरामने मुख बन्द कर लिया । अब महर्षिने पवनकुमारसे पूछा—'तुम वहाँ शिखरपर बैठे क्या कर रहे थे ?'

'स्वामीको जम्हाई आवे तो चुटकी बजानेकी सेवाका दायित्व मुझे दिया गया है ।' पवनकुमारने अत्यन्त भोलेपनसे कहा—'अम्बाने अपने कक्षमें मुझे आनेकी अनुमति नहीं दी और यह आश्वासन भी नहीं दिया कि रात्रिमें मेरे स्वामीको जम्हाई नहीं आवेगी । जम्हाई पता नहीं कब आवे, अतः मैं चुटकी बजा रहा था कि जब भी आवे, मैं अपनी सेवामें प्रमत्त न सिद्ध होऊँ ।'

'वत्से ! तुम श्रीरामके मुख खोले रहनेका मर्म समझ गयी हो ।' महर्षिने

स्नेहपूर्वक श्रीजनक-नन्दिनीकी ओर देखा—'ये भक्तवत्सल अपनेमें तन्मय आश्रितके भावका सत्कार किये बिना रह नहीं सकते। हनुमान चुटकी बजावेंगे तो इन्हें अखण्ड जम्हाई आवेगी ही। अतः तुम अपनी उस सेवा-सूचीमें संशोधन कर लो।'

महर्षि आदेश देकर विदा हुए तो श्रीजानकीने भरतकी ओर देखा—'वह सूची मुझे दे दो।'

सभी भाई अत्यन्त लज्जित थे। सूची लेकर श्रीजनक-नन्दिनीने उसी समय फाड़ दी और स्नेहपूर्वक हनुमानकी ओर देखकर कहा—'वत्स! यह अपराध मुझसे हुआ था। मैं हार गयी तुमसे—तुम्हारी निष्ठासे। अब मुझपर दया करो। यह चुटकी बजाना बन्द रखो और जैसे पहिले सेवा कर रहे थे, वैसे ही सेवा करते रहो।

'सम्राट्की सब सेवा आपकी।' भाइयोंने एक स्वरसे स्वीकार किया—'अब आप हम सबपर अनुग्रह करो।'

'पवनकुमार! आजसे यह मर्यादा स्थापित हुई कि मेरी सेवा तुम्हारे अनुग्रहसे ही किसीको प्राप्त होगी।' श्रीरामने हनुमानके मस्तकपर हाथ रखा—'अपनी सेवा मैं भी स्वयं दूसरेको तुम्हारी अनुमति लेकर ही दे सकूँगा।'

श्रीरामकी सेवाके साकार स्वरूप पवनकुमारने आराध्यके चरणोंमें प्रणिपात किया। माताएँ अपने सदन आश्वस्त होकर पधारीं। भरतादि भी अपने भवन गये, किन्तु अब यह रात्रि तो श्रीहनुमानकी श्रद्धा, सेवानिष्ठाका स्तवन करते ही व्यतीत होनी थी।

●●●

पवनपुत्रको प्यारदान

'अपने वानर बेटेके लिए मैं आज स्वयं रन्धन करूँगी ।' अत्यधिक स्नेह है श्रीजनक-नन्दिनीका आञ्जनेयके प्रति । और प्रेम हो, श्रद्धा हो, स्नेह हो, यह सब प्रीतिकी वृत्तियाँ वाहनकी अपेक्षा करती हैं । श्रम और पदार्थका—सेवाका वाहन बनाकर ही ये व्यक्त होती हैं । आज ब्रह्ममुहूर्तमें उठते ही श्रीजानकीने अपने स्वामीसे अनुमति ली । रघुनाथने हँसकर अनुमति दे दी । अतः आज राजसभामें सम्राट्के साथ सिंहासनासीन रहनेकी भी आवश्यकता नहीं रह गयी ।

प्रभातसे पूर्व ही स्नान एवं नित्यार्चन करके अयोध्याकी उन साम्राज्ञीने पाकशालामें प्रवेश किया । आज सबके लिए पृथक रन्धन होगा । अब अवधेश्वरी अपने लाड़ले हनुमानके लिए रन्धन करेंगी । सेविकाओंको केवल सहायता करनी है । सामग्री प्रस्तुत कर देने तथा अन्य ऊपरी कार्यों तक ही उनका सहयोग सीमित है । उत्सुकता-कुतूहलके कारण तीनों बहिनें आ गयीं; किन्तु उनको पाकशालामें प्रवेश मात्र मिला । आज रसोई तो श्रीजानकीको अपने करोंसे ही प्रस्तुत करनी है ।

'जीजी अपने वानर बेटेके लिए व्यञ्जन बना रही हैं ।' उर्मिलामें बहुत उत्साह है । वे सेविकाओंको संकेत या आदेश करनेके स्थानपर स्वयं सामग्री लेने दौड़ती हैं । चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय चतुर्विध व्यञ्जन और एक-एक प्रकारमें अनगिनत भेद । मधुर, लवण, अम्ल, कटु, तिक्त, कषाय सब रस; किन्तु स्वयं श्रीवैदेही बार-बार कहती हैं—'उसे मधुर ही प्रिय लगेगा । लवण युक्त भी वह खा लेगा; किन्तु कषाय, अम्ल, कटु, तिक्त उसे प्रिय नहीं हो सकते ।'

प्रिय हों या न हों, रखने सब रस हैं । सबको अत्यन्त स्वादिष्ट बनाकर रखना है । अवश्य ही मधुर रसका साम्राज्य है । मिष्ठान्नकी बहुत अधिक वस्तुएँ हैं । लवण पड़े व्यञ्जन भी बहुत हैं । शेष चारों रसोंके पदार्थोंको भी लवण अथवा शर्कराने या दोनोंके सहयोगने स्वादिष्ट बनाया है ।

जो अनन्त अनन्त ब्रह्माण्डोंकी इच्छा मात्रसे सृष्टि करती हैं, वे स्वयं

व्यञ्जन बनानेमें लगी हैं । एक-एक पदार्थकी राशियाँ और पदार्थोंकी संख्या नहीं । श्रुतकीर्तिने पूछ लिया—'जीजी ! आप आज संपूर्ण अयोध्याको आमन्त्रित करनेवाली हो ?'

'चल ! तूने तो मेरे हनुमानका यह साधारण मानव रूप ही देखा है ।' स्नेहकी झिड़की मिली छोटी बहिनको—'उसका वह वास्तविक अम्बरव्यापी कनक भूधराकार रूप देखती तो भयके मारे मूर्छित ही हो जाती । वह यहाँ आकर संकोचवश अपने इस रूपके अनुरूप ही भोजन करता है । भूखा रहता है प्रतिदिन । मैं आज उसे भरपेट भोजन कराऊँगी ।'

'वे कनक भूधराकार बनेंगे तो अपने प्रांगणमें बैठेंगे ?' माण्डवीने आश्चर्यपूर्वक पूछा ।

'प्रांगणमें बैठ लेगा ।' श्रीमैथिली रन्धनमें जुटी हैं । इन्हें दूसरी ओर देखनेका अवकाश नहीं है । 'वही तो उसका वास्तविक रूप है । ऐसा रूप कि उसकी गर्जनासे राक्षस सेनापति तक भयसे भाग खड़े होते थे । स्वयं दशग्रीव उसकी वज्र मुष्टिके आघातसे भूमिपर मुखके बल गिर गया था ।'

किस माताको अपने प्रिय पुत्रके सद्गुण, बल, वीर्य, शौर्यका वर्णन करनेमें सुख नहीं मिलता ? रन्धन चल रहा था और चल रही थी पवनपुत्रकी पवित्र गाथा—'उसके बलकी, उसकी बुद्धिकी सीमा नहीं है । इतना होनेपर भी वह कितना विनम्र, कितना संकोची है । मेरे सम्मुख शिशुके समान भोला तथा सभीत बना रहता है ।'

'कनक भूधराकार शरीर' सबको अत्यन्त उत्सुकता उत्पन्न हो गयी श्रीपवनकुमारके वास्तविक रूपको देखने की । माण्डवीने प्रांगणकी मणि भूमिको पुनः मार्जन कराके जलसे धुलवाया । उसे पूरे प्रांगणमें स्वयं लग गयीं, श्रुतकीर्तिको लेकर नाना रंगोंके चित्रांकनमें । उसके दक्षिण भागसे सटाकर उत्तराभिमुख बहुत विस्तृत बहुमूल्य कौशेयास्तरण आस्तृत कराया । प्रांगण तोरण, पताकादिसे सज्जित हुआ ।

स्वर्णके रत्नजटित थाल तो बहुत छोटे होते हैं । महाथाल (परात) स्वर्णके स्वच्छ कराये गये । बहुत बड़े पात्र, जो समारोहमें सामग्री रखनेके काम आते हैं, भोजनके लिए स्वच्छ हुए । यह सब होता रहा और श्रीजनक-

नन्दिनी रन्धनमें लगी रहीं। मध्याह्न तक उन्होंने रन्धनसे तनिक भी विराम नहीं लिया।

भाइयोंके साथ श्रीरघुनाथने मध्याह्न स्नान करके सन्ध्या कर ली। राजकीय पाकशालामें प्रस्तुत पदार्थोंसे ब्राह्मणोंको, अतिथि अभ्यागतोंको, कुल वृद्धोंको उन्होंने भोजन करा लिया, तब श्रीवैदेहीने प्रार्थना की 'आप नैवेद्य ग्रहण कर लें; क्योंकि मेरा हनुमान तो आपके प्रसादका व्यसनी है।'

श्रीरघुनाथने भाइयोंके साथ भोजन कर लिया। लक्ष्मणजीने प्रस्ताव किया—'आज हनुमानजीको हम सब मिलकर भोजन करावेंगे।'

सामग्रीको देखते आवश्यक था कि परोसनेमें सहायक साथ लिए जायें। कोई सेविका साथ नहीं लेना था। अतः श्रीजानकीने अपने तीनों देवरों तथा बहिनोंका सहयोग स्वीकार कर लिया। श्रीरघुनाथ पृथक आसनपर इस अनुपम सत्कारको देखने बैठ गये। आज शयन कक्षमें विश्राम करने नहीं गये।

हनुमानको श्रीजानकीने हाथ पकड़कर आसनपर बैठाया। अपनी वात्सल्यमयी अम्बाके स्नेहाग्रहसे जब वे केशरीकुमार अपने वास्तविक रूप में बैठे—उनका स्वर्णशैल शरीर बैठनेपर भी राजसदनके शिखरको स्पर्श कर रहा था। उनकी प्रचण्ड मार्तण्ड अंग कान्ति अद्‌भुत, आश्चर्यजनक थी। यह रूप देखकर भरत, शत्रुघ्न तथा तीनों राजवधुएँ विस्मित रह गयीं।

हनुमान आनन्द विभोर भोजन करने लगे। आज स्वयं अम्बा जानकीने रन्धन किया था। आजके स्नेहकी, स्वादकी कोई समता है ? हनुमानको पदार्थका स्वाद भी दीखता तो उन महाशक्तिके करोंसे प्रस्तुत पदार्थ; किन्तु हनुमानको तो पदार्थोंके कण-कणमें उनका अनन्त वात्सल्य प्राप्त था। अतः भोजनके पदार्थोंपर ध्यान कैसे जाता। व दोनों हाथों बड़े पात्र उठाकर मुखमं डालने लगे। पेय, लेह्य पदार्थ अपने पूरे शरीरपर लपेटने-पोतने लगे। उन्होंने खाद्य, चोष्य आदिका भेद दूर कर दिया। अनेक पदार्थ एक साथ मुखमें डाल लेते थे और मुख चलानेका भी कष्ट न करके कण्ठसे नीचे उतार देते थे। उनके भोजनका क्रम था जैसे किसी महागह्वरमें उठाकर पात्र उड़ेल दिये जा रहे हों। पवनकुमारके सम्मुख पात्र पहुँचानेके लिए दौड़ना पड़ने लगा परसने वालोंको। कोई पात्र आया और उठाकर मुखमें डाल लिया। फलतः परसने वालोंको भी

यह अवसर नहीं रहा कि शष्कुली (पूड़ी) के साथ वे शाकका पात्र पकड़ा सकें। जो भी पात्र हाथमें आवे, शीघ्र दौड़कर दे दो, इतना ही किया जा सकता था।

पदार्थ कितने भी प्रस्तुत किये गये हों, इस क्रमसे कब तक चल सकते थे। बहिनोंने ही नहीं, देवरोंने भी प्रश्न भरी दृष्टिसे श्रीजनकनन्दिनीकी ओर देखना प्रारम्भ किया। भरतने सविनय पूछा—'राजकीय रन्धनशालाको सूचित किया जाय ?'

स्पष्ट था कि उस रन्धनशालाके सेवक सम्पूर्ण शक्तिसे लगकर आहार पूर्तिमें समर्थ नहीं थे। अब तो कोई चमत्कार ही कुछ कर सकता था। स्मरण करनेपर सिद्धियाँ व्यञ्जन पात्रोंको अक्षय बना देंगी। स्वयं अन्न-पूर्णा सेवा करनेमें अपना सौभाग्य मानेंगी; किन्तु परम स्नेह भाजन पुत्रको सिद्धियोंके द्वारा परितृप्त करना तो जगदम्बाके वात्सल्यके उपयुक्त नहीं था।

श्रीजानकी उठीं। उन्होंने अपने आराध्यकी ओर कातर दृगोंसे देखा तो श्रीरघुनाथ भी उठ खड़े हुए। एक साथ दो कार्य हुए। श्रीजनकनन्दिनीने श्रीराघवेन्द्रका उच्छिष्ट पात्र उठाया और उसमें-से एक ग्राम स्वयं अपने करोंसे हनुमानके मुखमें दिया। दूसरी ओर श्रीरघुनाथने हनुमानके पीछे पहुँचकर उनके मस्तकके पिछले भागमें अपने दक्षिण हाथकी अनामिकासे लिखा—'ॐ नमः शिवाय।'

हनुमानने परितृप्तकी डकार ली—'अम्ब ! आज इस वानरकी जन्म-जन्मकी क्षुधा तृप्त हो गयी।'

श्रीलक्ष्मणलालने सहर्ष जलपात्र देकर कहा—'आपको अब आचमन तो कराया नहीं जा सकता। सरयू-स्नान ही आपका शरीर स्वच्छ करेगा।'

सबके मुखोंपर हास्य आ गया। हनुमान बिना संकोच सरयू-स्नान करने कूद गये।

●●●

अयोध्याके कथावाचक

अयोध्याकी प्रजा अत्यन्त सुखी थी । राज्यमें कहीं कोई रोगी नहीं होता था । सर्प-भय, वृश्चिकादिका भय, अकाल-महामारीका भय अथवा चोर-डाकुओंका भय नहीं रह गया था । दैहिक, नैसर्गिक तथा देवताओंके प्रकोपका कोई भय नहीं रह गया था ।

कोई नारी विधवा नहीं होती थी । बालक या युवाकी मृत्यु नहीं होती थी । वृद्ध मरते भी थे तो किसी दीर्घायु स्वजनके सम्मुख । उससे कम आयुके व्यक्तिकी मृत्यु नहीं होती थी ।

राज्यमें कोई व्यभिचारी, सुरापायी, द्यूतलिप्सु नहीं था । लोग कृपण नहीं थे । लोभी नहीं थे । सब प्रसन्न रहते थे । सेवा परायण थे । सबको दूसरोंको सुख देना प्रिय था । सब दूसरोंको प्रसन्न रखनेमें प्रसन्न रहते थे ।

वणिक् भी लोभहीन व्यापार करते थे । केवल अपना पारिश्रमिक प्राप्त करके सन्तुष्ट थे और धनका संग्रह दान अथवा यज्ञके लिए ही करते थे । राज्यमें स्थान-स्थानपर प्रशस्त मार्ग, सरिताओंपर सेतु बन गये थे । कूप, वापी, सरोवरोंकी बहुलता थी । सामान्य ग्रामोंके समीप भी फलोद्यान एवं पुष्पोद्यान थे ।

गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके गृहोंमें पृथक अग्निशाला थी, जो अतिथिके आगमनका मानों मार्ग ही देखती हो । ग्रामोंमें उपासना गृह थे । राजकीय अतिथिशालाओंके अतिरिक्त लोगोंने धर्मशालाएँ, कूप, सार्वजनिक उद्यान बनवाये थे ।

ब्राह्मण वेदाध्यन-अध्यापन, यजन-याजनमें लगे रहते थे । क्षत्रिय शस्त्र शिक्षण, शास्त्राध्यनमें लगे थे; किन्तु उन्हें किसीकी रक्षाका अवसर ही नहीं आता था । वैश्य व्यापार करते थे केवल लोगोंको पदार्थ सुलभ करनेके उद्देश्यसे । शूद्र—सेवक पुरस्कार निरपेक्ष सेवा करते थे ।

धन्वन्तरिके समान भिषक् थे । राज्यमें चिकित्सालयोंकी पर्याप्त व्यवस्था थी; किन्तु उनका कार्य नवीन औषधियोंके शोध तथा निर्माण तक

सीमित हो गया था । कोई रोगी ही नहीं होता था तो वे उपचार कार्य कहाँसे पाते ।

न्याय सुलभ था । स्थानीय ऋषि-मुनि न्याय-विधान दे सकते थे और स्थानीय शासन कर्मचारी उसके अनुसार दण्ड व्यवस्था कर दे सकता था । कोई झूठ नहीं बोलता था, अतः साक्षीकी आवश्यकता नहीं थी । कोई भी सीधे सम्राट्के सम्मुख उपस्थित हो सकता था ।

न्यायालय निष्क्रिय नहीं थे । उनमें विवाद उपस्थित होते थे; किन्तु विचित्र विवाद । ऐसे मधुर विवाद कि उनमें दण्ड विधानकी नहीं, सौजन्य पूर्ण समझसे सन्धि करा देना ही आवश्यक होता था । प्रायः वादी कहता था कि अमुक क्षेत्र, भवन अथवा धन उसका नहीं है, परन्तु कोई दूसरा उसे लेनेके लिए उसपर अनुचित दबाव डाल रहा है । प्रतिवादीका पक्ष होता था वह धन, भवन क्षेत्र या उद्यान न्यायतः उस दूसरेका—वादीका ही है । वह उसे स्वीकार कर लें तो प्रतिवादी उसकी सुरक्षा चिन्तासे मुक्त हो ।

लोगोंके मुखपर बार-बार श्रीरामकी प्रशंसा, श्रीरामका गुणगान आता था । जिसे देखो वह सगर्व कह रहा है—हमारे सम्राट् ऐसा करते हैं ।' राम, राम, राम, लोगोंकी वाणीका भूषण बन गया था यह शब्द । दिशाएँ इस पावन नामसे सर्वत्र पवित्र होती रहती थीं ।

पृथ्वीके समान क्षमाशील और सबके धारक-पोषक, जलके समान सरस—सबको स्वच्छ पवित्र करने वाले, अग्निके समान तेजस्वी तथा आपत्तिके त्राता, वाययुके समान सबके प्राण, आकाशके समान समीप रहकर भी अस्पृश्य, समुद्रके समान अविचल, श्री-ह्री-कीर्ति-धर्मके नित्य निवास श्रीराघवेन्द्र जैसा सम्राट् धराने दूसरा नहीं पाया । अतः राम-राज्य सदाके लिए शासकोंका आदर्श बन गया ।

जब देशमें शान्ति रहती है, प्रजा पेट पालनकी चिन्तासे परित्राण पा जाती है, तब समृद्ध जनपदमें भगवती सरस्वतीकी सम्यक् आराधना होती है । कलाके लिए उर्वर क्षेत्र हैं वे, जो समृद्ध हैं और संघर्षोंसे सुरक्षित हैं । राम-राज्यमें भरपूर शान्ति थी और सम्यक् समृद्धि थी, अतः कलाके प्रत्येक क्षेत्रमें आश्चर्यजनक उन्नति हुई । लेकिन वह उन्नति उच्छृंखल नहीं हो सकती

थी; क्योंकि सबमें श्रद्धा थी, संयम था ।

भोग-प्रवण, अर्थ प्रधान समाजकी कला उच्छृंखल होती है । वह वासनाको उत्तेजित करनेवाली, मानवको पशु या दानव बनाकर पतनके गर्तमें गिराने वाली होती है ।

प्रतिभा तीक्ष्ण तलवार है । वह संयमी, सद्भावना सम्पन्न सत्पुरुषोंके करोंमें होगी तो समाजके लिए सुरक्षाका आश्वासन बनेगी और उन्मत्त व्यक्तिके करोंमें होगी तो उसका तथा औरोंका भी अंगच्छेद करेगी । उत्पातको उत्पन्न करेगी ।

श्रीरामके शासनने सुरक्षा दे रखी थी, समृद्धि दे रखी थी तो साथ ही संयम तथा सात्त्विकतासे भी प्रजाको सम्पन्न बना रखा था । अतः कला, श्रद्धा-संवलित, धर्म भाविता, अध्यात्मोन्मुख थी । उसका अद्भव ही आराधनाके उद्देश्यसे होता था ।

मूर्तिकार अपनी कलाको मन्दिर-निर्माणमें कृतार्थ करते थे । पाषाण, काष्ठादिके शिल्पियोंकी साधना थी आराधना-गृहोंको सज्जित करना । चित्रकार अपनी तूलिका, अपने सम्राट्का शौर्य, शील प्रकट करनेमें अथवा भगवदवतार-विग्रहोंकी विविध भैंगियोंको व्यक्त करनेमें पवित्र करते थे । संगीत घर-घरमें गूँजता था—भगवद्-गुणगानसे वातावरणको पावन करता संगीत और अधिकांश नर-नारी भावुक थे । उनको लेखनी, तूलिका अथवा तक्षण, तल्लीन करनेके साधन थे श्रीराम-पादारविन्दमें । वंशी, वीणादि वाद्य प्रत्येक गृहोंके श्रृंगार थे; किन्तु वे आराधना-कक्षमें अथवा एकान्तमें बजते थे अन्तरको उन्मुख करनेके लिए ।

कोई भी कुलनारी अथवा पुरुष निःसंकोच किसी मन्दिरमें कभी कोई वाद्य उठा ले सकता था अथवा नृत्य करने लग सकता था । दर्शकोंके नेत्र अश्रुवर्षण करने लगते थे । लोग भावमग्न हो उठते थे । सहज स्वाभाविक हो उठी थी हरिभक्ति । किसीके कण्ठसे किसी क्षण काव्यधारा फूट पड़ती थी और श्रोताओंको आत्मविस्मृत करके अपने आराध्यके चिन्तनमें समाहित कर देती थी ।

शासनकी समूची व्यवस्था प्रायः भरतपर निर्भर थी और उसका

सञ्चालन लक्ष्मण और शत्रुघ्न करते थे । प्रजाका सीधा सम्पर्क शत्रुघ्नसे ही था; क्योंकि प्रजासे प्राप्त करको कोषमें सुरक्षित करना, पारितोषिक वितरण तथा प्रजाकी सुख-सुविधा-सुरक्षाका ध्यान रखना शत्रुघ्नने अपना दायित्व बना लिया था ।

श्रीरामने तो लक्ष्मणको युवराज बनाना चाहा था; किन्तु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया था । अतः राजपरिवार, राजसदनके सेवक एवं राजकुलके स्वजन-सम्बन्धियोंके सत्कारका भार उनपर था । वे इनकी सुख-सुविधापर दृष्टि रखते थे ।

भरतको दोनों भाइयोंके कार्योका विवरण सुन लेना था और आवश्यक निर्देश दे देने थे । क्योंकि सर्वत्र लोग सन्तुष्ट थे । सम्राट्से लेकर सामान्य कर्मचारियों तक किसीके समीप अधिक कार्य-भार नहीं था । समस्त राज्य-सेवकोंको आदेश था कि प्रजाके किसी वर्ग, किसी सदस्य, किसी स्थानकी कोई सुख-सुविधा-सुरक्षाकी माँग आनेपर तत्काल उसकी पूर्ति करके तब अपने उच्चाधिकारीको सूचना दी जाय । लेकिन इसके अवसर आते ही नहीं थे ।

ग्राम-ग्राम, नगर-नगरमें लोग यज्ञका, विशेष आराधनाका, कथा-कीर्तनका, ज्ञानसत्रका आयोजन करते ही रहते थे और उनमें उत्साहपूर्वक वेदज्ञ ब्राह्मणोंको, विरक्त मुनिगणोंको आमन्त्रित करते रहते थे । यही गौरवका तथा स्पर्धाका विषय था सबके लिए ।

सानुज सम्राट् प्रजाके पुत्रोत्सव, विवाहोत्सव तथा ऐसे पुण्य आयोजनोंमें यथासम्भव सम्मिलित होते थे । सम्पूर्ण राज्यमें ऐसे आयोजन चलते ही रहते थे, अतः अनेक बार सम्राट्की ओरसे उनके प्रतिनिधिरूपमें उनके किसी अनुज अथवा मन्त्रीका आ जाना आश्चर्यका अथवा आवेदकके अपमान-अवज्ञाकका प्रतीक नहीं था; किन्तु सर्वसमर्थ सम्राट् इसका अवसर नहीं आने देते थे । सबको लगता था कि सम्राट्का वह सर्वाधिक स्नेहभाजन है और सम्राट् उसके आयोजनोंमें, उत्सवोंमें सानुज सोत्साह सम्मिलित होते हैं । उन प्रजावत्सलके उपहार ऐसे अवसरोंपर प्रत्येकको पर्याप्त अधिक होने ही हैं ।

प्रत्येक सदन नित्य कथा-कीर्त्तनसे पवित्र रहता था । प्रत्येक स्त्री-पुरुष कलाकार था—किसी-न-किसी कलाका विशेष आराधक और उसकी कला

अन्तर्मुख करनेवाली, सात्त्विक तथा अपने परमोदार, सद्गुणैकधाम सम्राट्को अर्पित थी। फिर भी समस्त राज्यमें मूर्त्तिकार, शिल्पी, संगीतज्ञ, लीलाभिनय-निपुण व्यक्तियों अथवा मण्डलियोंका सम्मान बहुत बढ़ गया था। बहुत बढ़ गया था भगवत्कथा-श्रवण करानेवालोंका समादार। फलस्वरूप इनकी संख्या भी बहुत बढ़ गयी थी। इस वर्गमें भी कोई अर्थ-लुब्ध नहीं था। उलटे यह वर्ग प्रायः इतना वीतराग कि श्रोताओंको इनकी सेवाका अवसर कठिनतासे सुलभ होता था।

सब कथाकार, लीलाभिनयकर्त्ता, कीर्त्तनकार, गायक, मूर्तिकार, शिल्पीवर्गने अपना आदर्श बना लिया था शिवशर्माको। सेवाको स्वीकार करनेका आग्रह करते ही वे कह देते थे—'सम्राट्के कथावाचक, सुरासुर सबके श्रद्धेय महापण्डित शिवशर्माजी हमारे शिक्षागुरु हैं। हम उनके पदानुगामी शिष्य, पदार्थोंका हमें प्रयोजन ही नहीं है। आप सबकी श्रद्धा ही पर्याप्त है। परिग्रह तो पाप है। आप हमें इस पंकमें डालनेका प्रयत्न न करें, यही आपकी अनुकम्पा।'

निखिलकलागुरु, समस्त विद्याओंके आद्याचार्य, योगियोंके आदर्श संरक्षक, वैराग्यके मूर्त विग्रह श्रीशिव शर्माजीसे आप अपरिचित नहीं हैं। उन गंगाधर, धूर्जटि, चन्द्रमौलि, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, भस्मांगराग, अहिभूषण, कपालमाली, कृत्तिवास, कामारिसे कोई आर्य आस्तिक अपरिचित कैसे हो सकता है। उन वृषभध्वज, भूतनाथ, आशुतोषने अयोध्यामें शिवशर्मा नाम अंगीकृत कर लिया था।

भगवान उमाकान्त पधारे थे अयोध्या राज्याभिषेकके समय श्रीराघवेन्द्रका दर्शन करने। दूसरे सब नृपतियोंने, देवताओंने, दिक्पालोंने सम्राट्को अपने उपहार अर्पित किये; किन्तु नित्य अपरिग्रही सृष्टिकी प्रलय करके उसकी विभूतिको अंगराग बनानेके व्यसनी स्थाणु शिवके समीप क्या था जो उपहारमें अर्पित करते? नवीन सम्राट्को डमरू, कपाल, त्रिशूल, सर्प अथवा अपना पहिना गजचर्म तो दिया नहीं जा सकता था। भोले बाबाको भूल ही गया कि कुबेर उनके अनुचर हैं और अन्नपूर्णा—जगद्धात्री वामांगमें ही स्थित हैं। वे स्तवनके अनन्तर स्वयं बोले—'श्रीराम! इस अवसरपर आप

मुझसे कुछ माँग लो ।'

सर्वेश्वरेश्वर, निखिलभुवनैक सम्राट्से कुछ माँग लेनेको कहनेका साहस त्रिपुरारिके अतिरिक्त दूसरा कोई कर भी तो नहीं सकता था । नवीन सम्राट् भी सुनकर प्रसन्न हुए । दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर बोले—'आप मुझपर प्रसन्न ही हैं तो मेरी सभाके कथावाचक बन जायें ।'

'एवमस्तु !' औढरदानी भी हँसे—'इसका अर्थ है कि तुम मुझे अपने समीप ही रखना चाहते हो । अच्छी बात, आजसे शिवशर्मा तुम्हारे धरापर इस युगलस्वरूपसे साक्षात् एकत्र रहने तक अयोध्याका कथावाचक हुआ ।'

अर्थ-गर्भ बना यह आशीर्वाद । शिव शर्मा अयोध्यासे उस दिन अन्तर्हित हो गये, जिस दिन भगवती जनक-नन्दिनीको सौमित्र रथमें बैठाकर वनमें ले गये ।

जो प्रलयंकर हैं, पूरी सृष्टिके साक्षी तो वही हैं । एक ब्राह्माण्डकी अनेकों प्रलयोंके वे प्रत्यक्ष साक्षी, उनसे अच्छा सृष्टिकी उत्पत्ति-प्रलयका वर्णन करने वाला दूसरा कोई कहाँसे आवेगा । सब अवतार उनके सम्मुख हुए । सब सत्पुरुषोंको देखा उन्होंने । अतः पुराण कथाओंके वे प्रत्यक्ष द्रष्टा । ज्ञान, वैराग्य एवं भक्तिके, योगके विविध साधनोंके वे परमाचार्य । नरक-स्वर्ग, भूलोक, पाताल, महः, जनः, तपः तथा सत्यलोक एवं दिक्लोकोंमें भी कोई इन हरिप्रियका अनदेखा है ? अब ये स्वयं कथावाचक बन गये तो ब्रह्मलोकमें भी ऐसी कथा क्या कभी सुलभ होगी ?

श्रीशिव शर्माकी कथा-श्रवणके आकर्षणने पृथ्वीके ही नहीं, ब्रह्मलोक तकके महर्षि, ब्रह्मर्षि, देवर्षि, काण्डर्षि, राजर्षि वर्गको, मुनिमण्डलको, सिद्धोंको, साधकोंको अयोध्याका नित्य अतिथि बना दिया था ।

●●●

धर्मारण्य-यात्रा

अनेक उद्देश्य एक ही कार्यसे सिद्ध हों, यह दृष्टि रहती है महत् पुरुषोंकी। श्रीरघुनाथने कुलगुरु महर्षि वशिष्ठसे पूछा—'भगवन् ! सीताका हरण होनेपर उन्हें नैकषेयोंके यहाँसे पुनः प्राप्त करनेके प्रयत्नमें मुझे बहुत अधिक संहार करना पड़ा है। वे अधर्मी थे, सुर-साधु-उत्पीड़क थे, आततायी थे; किन्तु महर्षि पुलस्त्यके वंशज थे। उनमें दशग्रीव वेदज्ञ था, उद्भट विद्वान था, शिवभक्त था। इन ब्रह्मबन्धु राक्षसोंके वधके भी पापका परिमार्जन होना चाहिए। आप सर्वज्ञ हैं। पृथ्वीके समस्त तीर्थोंमें न भी गये हों, तो भी उनका प्रभाव आपसे अज्ञात नहीं है। आप मुझे किस तीर्थमें इस पाप-शुद्धिके लिए जाकर स्नान करनेकी आज्ञा देते हैं ?'

'वत्स रामभद्र ! अधमतम प्राणी तुम्हारा स्मरण करके तुम्हारे नामका उच्चारण करके समस्त पापोंसे पवित्र हो जाता है। ऐसा कोई महापाप नहीं जो राम कहने मात्रसे भस्म न हो जाता हो। कोटि-कोटि जन्मोंके पातकोपपातक समूहोंका अविलम्ब संहारक तुम्हारा स्मरण है।' महर्षिने अत्यन्त आनन्दमग्न होकर कहा—'किन्तु तुम मर्यादा पुरुषोत्तम हो। मनुष्योंके सम्मुख यह आदर्श उपस्थित करना चाहते हो कि रावण जैसे लोकोत्पीड़क, अधर्मरतका भी विवश होकर वध करना पड़े, तो भी उसका प्रायश्चित किया जाना चाहिए। तुम निशाचरोंमें भी ब्राह्मण रक्त है, यह भावना करके, उनके भी वधमें पाप मानते हो, यह लोकादर्श ही है।'

इस स्तवनसे तो काम नहीं चलता था। कोई भी सत्कर्म करना चाहता हो तो उसे मना करना अधर्म है। श्रीराघवेन्द्र तीर्थयात्रा करना चाहते हैं। वह अनावश्यक भले हो, पुण्यकर्म है। मनुष्यके लिए तीर्थयात्रासे अधिक सुगम दूसरे प्रायश्चित्त जो हैं, उनमें उसकी आस्था होनी कठिन है। फिर नियम यह है कि व्यक्तिकी निष्ठा, रुचि उस समय जैसी हो, उसके अनुकूल साधन उसे बतलाया जाना चाहिए। पुण्य एवं प्रायश्चित्त दोनोंका मूलाधार आस्था है। मनुष्यकी रुचिका निषेधकर अन्य साधनोंका निर्देश तभी उचित है, जब

उसकी रुचिके अनुकूल साधन सम्भव न हो । तीर्थयात्रा प्रायश्चित नहीं है, ऐसी बात तो है नहीं । अतः जब श्रीराम तीर्थयात्रा पूछ रहे हैं तो उन्हें उपयुक्त तीर्थकी यात्राका ही निर्देश किया जाना चाहिए ।

श्रीराघवेन्द्रने ही रामेश्वरकी स्थापना की । महासागर स्नान ही उन्होंने नहीं किया, नित्य सरयू-स्नान भी करते हैं । यह सब तो लंका विजयके पश्चात् ही हुआ । अब इन तीर्थोंका ही स्नान-दान तो पुनः बतलाया नहीं जा सकता । महर्षिने दो क्षण नेत्र बन्द करके ध्यान किया । उनके ये सर्वसमर्थ यजमान क्यों तीर्थयात्रा करना चाहते हैं ? किसी तीर्थका उद्धार करना है ? किसी तीर्थमें कोई उत्पात है ? महर्षिको समाधान प्राप्त हो गया ।

'गंगा, यमुना, नर्मदा, सरयू, सरस्वती, गोमती, ताप्ती प्रभृति सभी नदियाँ परम पावन हैं । इनमें गंगा सर्वश्रेष्ठ हैं । इनके तो दर्शन मात्रसे सम्पूर्ण पाप भस्म हो जाते हैं । कलिमें नर्मदाके दर्शनसे भी अनेक जन्मोंके पापोंका नाश हो जाता है ।' महर्षि वशिष्ठने विस्तारपूर्वक तीर्थोंका वर्णन करके उनका माहात्म्य सुनानेके अनन्तर कहा—'सब तीर्थोंमें उत्तम तीर्थ धर्मारण्य[१] है । पूर्व कालमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवने सब देवताओंके साथ इसीको स्थापित किया था । तुम इसी धर्म क्षेत्रकी यात्रा करो ।'

इस यात्रामें श्रीजानकीकी तो साथ थीं ही, सभी भाई सपत्नीक साथ थे । माताएँ थीं और महर्षि वशिष्ठ पत्नी एवं शिष्योंके साथ थे । अनेक दूसरे नरेश, प्रजावर्गके लोग साथ चले । सेना सुरक्षाके लिए साथ चलती ही । श्रीपवनकुमारको भी साथ ही रहना था ।

तीर्थयात्राके समस्त नियमोंका पालन करते हुए अयोध्यासे उत्तरकी ओर प्रस्थान हुआ । आगे जाकर यह यात्री दल पश्चिम मुड़ गया । सहस्रों रथ, गज, अश्व तथा शिविकाएँ थीं । शकट, ऊँट, अश्वतरी यूथ थे भार-वहनके लिए । मार्गमें पड़नेवाले ग्राम, नगर पवित्र हो गये । मण्डलीक नरपतियोंने आगे आकर अपने सम्मान्य सम्राट्का सत्कार किया । प्रजाका स्वागत ग्रहण करते, सबको यथोचित पुरस्कार देते, अरण्योंमें पथ तथा सरिताओंपर सेतु-

---

१. गुजरातमें अब यह 'धमारण' कहा जाता है । बड़ौदासे यहाँके लिए मोटर बसें जाती हैं । अहमदाबादसे भी मार्ग है ।

निर्माण करते आनन्दपूर्वक यह तीर्थयात्रा चलती रही ।

भगवन्नाम जप, कीर्तन, तीर्थस्नान, दानके अतिरिक्त सभी संयम-नियमका पालन कर रहे थे । एकाहार और वह भी हविष्यान्न, भूमि-शयन—तीर्थयात्रीकी आवश्यकता स्वतः कम हो जाती है । दसवें दिन धर्मारण्य क्षेत्रके समीप पहुँचकर श्रीरघुनाथने 'माण्डलिकपुर' में रात्रि-विश्रामका आदेश दिया ।

'धर्मारण्य ?' जिसने सुना, वही चकित रह गया । लोगोंने समाचार दिया—'अब तो कोई वहाँकी यात्रा नहीं करता । वह तो अब निर्जन अरण्य है । वहाँ व्याघ्र, सिंह भरे पड़े हैं । सुनते हैं कि उस घोर वनमें यक्ष-राक्षस निवास करते हैं ।'

'तब तो उस पावन क्षेत्रका उद्धार आवश्यक है ।' मर्यादा पुरुषोत्तमने गम्भीर होकर कहा—'एक अत्युत्तम तीर्थका इस प्रकार उच्छेद नहीं होना चाहिए ।'

शत्रुघ्न कुमारने कुछ स्थानीय लोगोंके प्रतिनिधियोंको सम्राट्के सम्मुख उपस्थित किया था । क्योंकि बहुत दूरसे ही अनेक प्रकारकी बातें इस तीर्थ स्थलके सम्बन्धमें सुनी जा रही थीं । लोग अनेक प्रकारकी आतंकजनक बातें कहते थे । लोक परम्परामें इस प्रकार भयानक समाचार बहुत बड़े होकर फैलते हैं; किन्तु उनके मूलमें कुछ होता अवश्य है ।

अयोध्याके यात्री दलमें उत्साह था । सब समझ चुके थे कि उनके सर्वसमर्थ स्वामी इस तीर्थका उद्धार करने ही पधारे हैं । त्रिभुवनको आतंकित करनेवाले दशग्रीवका जिन्होंने दलन किया, उनके संरक्षणमें भला भय कैसा ? मार्गके लोग भी साथ बढ़ते गये थे । समीपके लोग भी समाचार देकर सावधान करने तथा साथ चलनेको समुत्सुक ही आते थे ।

'धर्मारण्य पुनः प्रतिष्ठित होगा !' लोगोंमें यह सम्वाद शीघ्रतापूर्वक फैलने लगा था—'अयोध्याके सर्वसमर्थ सम्राट्का नाम सुनकर यक्ष-राक्षस भाग गये होंगे । व्याघ्र-सिंह तो उनके साथ आये वानरश्रेष्ठ हनुमानकी गर्जनासे वन-त्यागकर चले जायेंगे ।'

एक अगम्य धर्म-क्षेत्रके पुनरोद्धारका दर्शन करनेकी उत्कण्ठा बहुत

अधिक लोगोंको आकर्षित कर लायी। सब आगतोंके आवास, आहार, यात्राकी समुचित व्यवस्था कुमार शत्रुघ्न सावधानी पूर्वक कर रहे थे ।

अब आगे वन अगम्य था। श्रीराघवेन्द्रने गजका त्याग कर दिया और शिविकामें विराजमान हुए । सेनाके अग्रचर दलको स्थानीय व्यवसाय कुशल, शूर, मार्गज्ञाता वैश्योंका मार्ग दर्शन प्राप्त हुआ । इन लगोंने उत्साहके साथ श्रीरघुनाथकी शिविका स्वयं उठायी। अचानक कुछ आगे जानेपर सभी वाहनोंकी गति इतनी मन्द पड़ गयी जैसे उनसे चला ही न जाता हो । सेनाने कुमार शत्रुघ्नका ध्यान इधर आकृष्ट किया। उन्होंने श्रीरघुनाथसे प्रार्थना की। श्रीरामने गुरुदेवके समीप जाकर वाहनोंकी गतिरोधका कारण पूछा ।

'हम लोग परम पावन धर्मारण्य क्षेत्रमें पहँच चुके हैं । महर्षिने बतलाया—'सुरोंने वाहनोंकी गति स्तम्भनके द्वारा यह सूचित किया है कि इस क्षेत्रमें वाहनोंपर बैठकर यात्रा करना उचित नहीं है ।'

तत्काल सबने वाहनोंका त्याग कर दिया । सभी पैदल चलने लगे। 'मधुवासनक' ग्राम पहुँचकर श्रीरघुनाथने कुलगुरुके द्वारा निर्दिष्ट पद्धतिसे मातृकाओंकी प्रतिष्ठा तथा पूजन किया । यहाँसे आगे सुवर्णा नदीके दक्षिण तटपर हरिक्षेत्रका निरीक्षण किया। यहाँ यज्ञके योग्य अनेक स्थल देखकर मर्यादा पुरुषोत्तम प्रसन्न हुए। सुवर्णाके उत्तर तटपर सेना तथा साथके यात्रियोंका शिविर पड़ा । यहाँ श्रीराघवेन्द्रने सभी देव मन्दिरोंमें पूजन करके उनके जीर्णोद्धारकी आज्ञा दी । पत्नी सहित पितृ श्राद्ध सम्पन्न किया । सुवर्णाके दोनों तटोंपर रामेश्वर तथा कामेश्वर नामसे दो शिव मन्दिरोंकी स्थापना की।

यहाँ रात्रि-विश्रामके समय एक घटना हुई । यात्रियोंमें सब दिनकी यात्रा तथा पूजन-श्राद्धादिके श्रमसे श्रान्त हो जानेके कारण सो गये थे; किन्तु श्रीरघुनाथ तीर्थमें प्रथम दिन उपवास तथा रात्रि जागरण करना चाहिए, इस नियमका निर्वाह करते हुए जागृत थे । अचानक अर्धरात्रिममें किसी स्त्रीके रुदनका शब्द सुनायी पड़ा ।

'यह अपने शिविरसे दूर इस निर्जन अरण्यमें कौन इतने आर्त स्वरमें रुदन कर रही है ?' श्रीराघवेन्द्रने तत्काल उसके समीप दूत भेजे । 'वे कौन हैं, देवी या दानवी ? किसीने उनको कष्ट दिया है ? उनको तिरस्कृत किया

है ? उनका धन-हरण किया है ? उनके किसी स्वजनको मारा है ? वे कठोर शब्दोंका उच्चारण करती क्यों रुदन करती हैं ?'

'देव ! वे यहाँ आना स्वीकार नहीं करतीं ।' दूत गये और लौट आये । उन्होंने निवेदन किया—'उनका कहना है कि आप ही उनका मानसिक दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं । वे आपको ही परिचय देंगी और अपना दुःख सुनावेंगी । आप उनके समीप पधारें ।'

श्रीरघुनाथने कवच धारण किया । त्रोण कसे और धनुष लेकर तत्काल चल पड़े । किसी अबलापर संकट है तो प्रजापाल उपेक्षा कैसे कर सकता है । उसे प्रस्तुत होकर ही जाना चाहिए । वहाँ जाकर देखते ही लगा कि वे तेजोमयी मानवी नहीं हैं । दोनों हाथ जोड़कर बोले 'मैं इक्ष्वाकु गौत्रीय दाशरथि राम आपको प्रणाम करता हूँ । आप कौन हैं ? आपको क्या कष्ट है ? कृपा करके यह सूचित करें ।'

'श्रीराम ! आप सबका दुःख दूर करने वाले साक्षात् परम पुरुष हो । आपने धरापर अवतार लेकर सुरोंका संकट दूर कर दिया । दशग्रीव आपके रोषानलमें दग्ध हो गया । धन्य हैं वे जो आपका दर्शन पाते हैं । जो आपकी सन्निधिमें हैं, वे कृत-कृत्य हैं ।' उस देवीने स्तवनके अनन्तर करुण स्वरमें कहा—रघुकुल शिरोमणि ! आप जैसे स्वामीके होते भी मैं सुनी हूँ, यह आपका दोष नहीं है ! मैं इस धर्मारण्य क्षेत्रकी अधिदेवता हूँ । आज द्वादश वर्षसे मेरे क्षेत्रके देव मन्दिर अनर्चित पड़े हैं । यहाँ हिंसक वन्य पशु विहार करते हैं । विप्रोंके कण्ठका वेदपाठ सुननेके अभ्यस्त मेरे श्रवण अब व्याघ्रकी गर्जना सुनते हैं । आप पधारे हैं तो यहाँकी निर्जनता दूर कीजिए ।'

'देवि ! मैं आपके आदेशका पालन करूँगा ।' श्रीरामने आश्वासन दिया—'आप इस निर्जनताका कारण बतला दें और यह भी आदेश करें कि यहाँ किनको बसाना है ।'

लोहासुरके भयसे यहाँके ब्राह्मण भाग गये । उनके साथ ही यहाँके वैश्य भी दुःखी होकर चले गये ।' देवीने बतलाया—'यद्यपि उस दुर्जय, महामायावी असुरको देवताओंने आक्रमण करके मार डाला है; किन्तु उसके आतंकसे त्रस्त मनुष्य अबतक लौटकर यहाँ नहीं आ रहे हैं । बारह वर्षसे

यहाँके गृह अनाथके समान शून्य हैं । जिन वापियोंमें श्रद्धालु तीर्थयात्री स्नान करते थे, उनमें शूकर लोटते हैं । श्रुतिके स्वरोंके स्थानपर श्रृगालीका फेत्कार मुझे सुनना पड़ता है । जिन मण्डपोंमें यज्ञानुष्ठान या वेदपाठ होता था, वहाँ गवय बैठते हैं । यज्ञवेदियोंपर बाँवी बन गयी हैं । आप इस अवस्थासे मेरा उद्धार करें ।'

'यहाँके ब्राह्मण अनेक दिशाओंमें चले गये हैं ।' श्रीरामने कहा—'आप उनकी संख्या, गोत्रादि निर्देश करें तो मैं उन्हें आदरपूर्वक बुलानेका प्रयत्न करूँगा ।'

'यहाँ अष्टादश सहस्र वेदोंके पारंगत विद्वान रहते थे । उनके पूर्वजोंको ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवने यहाँ स्थापित किया था । वे चौंसठ गोत्रोंके हैं ।' देवीने विस्तारसे बतलाकर अन्तमें कहा—'उनके साथ यहाँ छत्तीस सहस्र संयमी, सदाचारी वैश्य रहते थे । इस क्षेत्रमें संज्ञाके साथ बकुलादित्य राजा माने जाते हैं । यहाँ धनाध्यक्ष कुबेर तथा दोनों अश्विनीकुमारका निवास है ।'

उस देवीने उस क्षेत्रका आचार, धर्मकृत्य वहाँके लोगोंके प्राचीन कुलाचारका वर्णन किया । श्रीरघुनाथने आश्वासन दिया—'मैं यहाँ नगर बसाऊँगा । सत्य मन्दिरकी स्थापना करूँगा ।'

देवीके अन्तर्हित होनेपर श्रीराघवेन्द्र शिविरमें लौट आये । दूसरे दिन प्रातः उन्होंने सहस्रों दूत विभिन्न दिशाओंमें इस क्षेत्रके ब्राह्मणों तथा वैश्योंको अन्वेषण करके बुलाने भेजा । बहुतसे उस यात्री दलमें ही निकल आये जो उनके साथ आसपाससे आ गये थे । सेवकोंको अधिक कठिनाई नहीं हुई । उस क्षेत्रके लोग बहुत दूर नहीं गये थे । उनको लोग जानते थे और वे भी अपने स्थान लौटनेको उत्सुक थे । राजसेवकोंके द्वारा सत्कार पाकर, सम्मान सहित आग्रह किये जानेसे वे सपरिवार चले आये ।

आगत ब्राह्मणोंका श्रीरामने सविधि पूजन किया । उनको भोजन कराके अन्न, धन, वस्त्र, गायें आदि दान कीं । उनके आवासकी सुव्यवस्था करायी । अरण्यको स्वच्छ करा दिया । वहाँके क्रूर प्राणी पहिले ही भाग गये थे ।

आगत ब्राह्मणोंमें अधिकांश वीतराग थे । कुछ शिलोच्छ वृत्तिवाले थे । जो दान लेते भी थे, उन्होंने भी ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवकी अनुमतिके बिना

राजासे प्रतिग्रह लेना अस्वीकार कर दिया था; किन्तु महर्षि वशिष्ठके द्वारा आवाहन किये जानेपर त्रिदेव प्रकट हो गये । उन्होंने श्रीरघुनाथको तीर्थके उद्धारकी तथा ब्राह्मणोंको सहयोग देने की, दान लेनेकी आज्ञा दी ।

निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया । महान निर्माण, सविधि स्थापन, अर्चन-पूजनादिकी स्थायी व्यवस्था, सब उत्साहपूर्वक सम्पन्न हुई । केवल तीर्थके देवस्थानोंका ही निर्माण नहीं हुआ, वहाँके सरोवर, वापी, कूप सबका जीर्णोद्धार हुआ । नगर-निर्मित हुआ । उसकी सुरक्षा-व्यवस्था हुई । उपवन, उद्यान लगे । मार्ग प्रशस्त किये गये । ब्राह्मणोंको तो दानसे ही तृप्त कर दिया । वैश्योंको भी आवास, आवश्यक सुविधाएँ सब प्राप्त हुईं । वाहन सेवकादि मिले ।

श्रीराघवेन्द्रने, उनके अनुजोंने तथा साथ आये लोगोंने अनेक नवीन मन्दिर, वापी, कूपादि वहाँ बनवाये । श्रीहनुमानजीको वहाँका क्षेत्र-रक्षक नियुक्त किया । इस प्रकार उस परमपावन क्षेत्रका उद्धार करके, उसे समृद्ध, शोभा सम्पन्न, सर्वसुगम बनाकर श्रीराम अपने साथ गये यात्री समूहके साथ अयोध्या लौटे ।

अयोध्या आकर तीर्थयात्राके पश्चात् होने वाला यज्ञ तो होना ही था । उसमें आमन्त्रित होकर सभी सम्बन्धी एवं सामन्तगण पधारे । यज्ञान्तमें सबका समुचित सत्कार हुआ ।

●●●

माताओंका परलोक प्रस्थान

'अब अनुमति दो वत्स !' एक दिन माता कौशल्याने नेत्रोंमें अश्रु भरकर एकान्तमें श्रीरामसे कहा—'तुम्हारे पिताको हमारी प्रतीक्षा करते पर्याप्त समय हो गया । तुम्हारे दर्शनकी आशा और भरतकी आकुलताने हममें-से एकको भी उनका अनुगमन नहीं करने दिया । तुम मर्यादा पुरुषोत्तम हो । भली प्रकार जानते हो कि स्त्रीकी परमगति पति ही होता है । हम पुत्र-मोहसे बनी रहें,

यह उत्तम आदर्श नहीं होगा ।'

'माँ !' श्रीरामके नेत्र निर्झर बन गये । वे जननीके अंकमें मुख छिपाकर रुदन करने लगे । एक शब्द भी बोला नहीं गया उनसे ।

'वत्स ! तुम्हारे पिताको उचित अवसरपर तुम्हारे करोंकी जलाञ्जलि नहीं प्राप्त हुई ।' माताके दृग भी वर्षा कर रहे थे—'जननीको उससे वञ्चित मत करो । सन्तानको लेकर यही सबसे बड़ी कामना माता-पिताकी होती है । तुममें शरीरके प्रति मोह सम्भव नहीं है । अतः अपनी माताको उसके धर्म पालनमें बल दो ।'

'आप एकाकिनी जायेंगी ?' श्रीरामने किसी प्रकार पूछा । कोई आशा नहीं थी कि इसका उत्तर 'हाँ' में मिलेगा ।

'सुमित्रा सदा मेरी अनुगामिनी रही हैं । वे इस अवसर पर मुझे त्याग दें, यह सम्भव नहीं है । सच तो यह है कि तुमसे पूछनेको उन्होंने ही मुझे वाध्य किया है ।' माता कौशल्याने कहा—'बात तुम्हारी माँ कैकेयीने उठायी तुम्हारा अभिषेक सम्पन्न होते ही । उनका स्वर्गीय महाराजके प्रति कितना दृढ़ प्रेम है, तुम जानते हो । एक दिन ही केवल उनमें कुबुद्धि आयी थी । अब उसके कारण उनका आग्रह अत्यधिक बढ़ गया है । उनका कहना है, तुम सत्पुत्र सिद्ध हुए अपने पितासे उन्हें क्षमा दिलाकर; किन्तु अब उन्हें पतिकी सेवामें शीघ्र उपस्थित होना चाहिए ।'

'आप तीनों एक साथ अयोध्या त्याग देंगी ?' श्रीराम स्नेह शिथिल कुछ कह नहीं पा रहे थे ।

'तीनों ही नहीं, तुम्हारी सब माताएँ ही महाराजका सामीप्य प्राप्त करनेको उत्सुक हैं ।' कौशल्याजीने स्नेहपूर्ण स्वरमें कहा—'तुम धर्मज्ञ हो । तुमको अवरोध उपस्थित करनेके स्थानमें हमारा अनुमोदन करना चाहिए । भरत उस समय अत्यन्त आर्त न होते तो एक भी यहाँ रहना नहीं चाहती थी । उस समय अच्छा हुआ । तुम्हारे अभिषेक-दर्शनकी सबकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी । उस समय कैकेयीको अवसर ही प्राप्त नहीं होता । अब तुम पधारो और अपने अनुजोंको प्रस्तुत करो । माताओंकी यह परमसेवा बहुत अप्रिय होनेपर भी पूर्ण कर दो वत्स !'

कर्त्तव्य बहुत निष्ठुर होता है । श्रीरघुनाथको यह सम्वाद भरतको सुनाना पड़ा । लक्ष्मण-शत्रुघ्नने सुना । मन्त्रियोंने सुना । महर्षि वशिष्ठने शान्तचित्त अनुमोदन कर दिया । राजसदनमें और नगरमें रुदन व्याप्त हो गया ।

माताओंने पुत्र-वधुओंको बहुत कठिनाईसे समझाया—'वत्से ! यह नारीका परम धर्म है । हम तुम्हारे लिए पथ-प्रशस्त कर रही हैं । अपना कर्त्तव्य समझो । अब मनको म्लान मत करो । जिस उत्साहसे आर्य नारी भ्राता और पतिको शस्त्रसज्ज करके संग्राममें भेजती है, उसी उत्साहका अवसर है । हम धर्मके लिए परम प्रस्थान कर रही हैं ।'

ब्राह्मणोंको बुलाकर माताओंने उन्हें भरपूर दानसे सत्कृत किया । दास-दासियोंको पर्याप्त पुरस्कार दिये और उनको पुत्र-वधुओंको सौंपा । कैकेयीजीने श्रुति-कीर्त्तिसे विशेष रूपसे कहा—'वत्से ! मन्थरा दासी होनेपर भी मेरी माताके समान रही है ।'

'अम्ब ! अब भी वे वैसी ही सम्मानिता रहेंगी ।' श्रुतकीर्त्तिने भरे कण्ठ स्वीकार किया—'उनका संरक्षण मेरे लिए सौभाग्यका, गर्वका कारण है ।'

'मत कह वत्से ! ऐसा कुछ मत कह ।' मन्थरा उन्मादिनीके समान फटे नेत्रोंसे चारों ओर देखकर बोली—'मन्थरा केवल अपनी रूपमालिनीके लिए जीवित रही है । अब इसे किसीकी सेवाकी अपेक्षा नहीं है । कर सके तो रामभद्रसे इतना कह देना कि मन्थरा यदि तेरी चिता शान्त होनेसे पूर्व मर जाय तो उसका भी शरीर तेरी चिताग्निको ही समर्पित कर दिया जाय ।'

मन्थरा यह कहकर मौन हुई तो फिर वह नहीं बोली । उसने अपने सब वस्त्राभरण कैकेयीकी दूसरी दासियोंको बाँट दिया ।

वधुओंको अपने अत्यन्त प्रिय आभरण अपने ही करोंसे पहिनाकर, उन्हें अपने आराधना कक्षकी अर्चाका भार अर्पित करके, अंकसे लगाकर माताओंने उनसे विदा ली । उनका बहुत आग्रह होनेपर भी उनको राजसदनसे बाहर साथ ले जाना स्वीकार नहीं किया । वधुओंने चरण-रजली । उन्हें आशीर्वाद मिला ।

माताओंने सरयू तट पहुँचनेके लिए कोई वाहन नहीं स्वीकार किया । वे अत्यन्त शान्त, चन्द्र शुक्ल वस्त्रधरा, नग्न पद राजभवनसे चलीं तो उनके

पाद्क्षेपके साथ पृथ्वी उन परम सतियोंके चरणोंसे च्युत कुंकुमसे अंकित होने लगी। सबसे प्रथम उनकी पुत्र-वधुओंको ही वह कुंकुम प्रसाद प्राप्त हुआ।

अयोध्याके राजपथके अतिरिक्त समस्त सदन सूने हो गये। समस्त नर-नारी राजपथके दोनों ओर अथवा राजपथपर पड़ते भवनोंमें एकत्र हो गये। ब्राह्मणोंने श्रुतिके मन्त्रोंसे स्तवन प्रारम्भ किया। भवनोंसे अनवरत पुष्प-वर्षा चलती रही। शेष सब श्रद्धासे अञ्जलि बाँधे मौन बने रहे।

सम्राट् श्रीराघवेन्द्र अपने तीनों अनुजोंके साथ नग्न सिर, नग्नपद, अनाभरण माताओंके पीछे चलते रहे। माताओंके आगे चले जानेपर लोग उनके पदारविन्दोंसे च्युत कुंकुमकण पानेका प्रयत्न करते थे; किन्तु कोई कोलाहल अथवा धक्का-मुक्की नहीं थी। सम्पूर्ण जनसमूह शान्त था। श्रद्धावनत था। किसी पुरुषके शरीरपर कोई आभूषण नहीं था। कोई वाहन कहीं दृष्टि नहीं पड़ता था। मुनियोंके पदोंमें भी पादुका नहीं थी।

सरयूके तटपर चन्दन काष्ठकी चिता-पंक्ति सजी थी। मौन अवनतवदना माताएँ शान्त स्थिर पदोंसे चलती आयीं। भगवान् भास्करने भी मानों मेघावरणमें तिरोहित होकर किञ्चित् अश्रुवर्षा की। माताओंने सरयू स्नान किया। वैसे ही आर्द्र वस्त्र उन्होंने अपने दिवंगत पतिको तिलाञ्जलि दी। महर्षि वशिष्ठके पदोंमें मस्तक झुकाया। ब्राह्मणोंको अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया। इसके पश्चात् चिताओंकी परिक्रमा करके वे उसके ऊपर आस्तृत कुशासनपर बैठ गयीं। प्रत्येकने पतिका कोई-न-कोई वस्त्र अपने अंकमें ले रखा था।

मूर्त्तिमान तपस्या इतनी तेजस्विनी नहीं हो सकती। श्रीरामको, सभी पुत्रोंको, प्रजावर्गको सबने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। अब महामन्त्री सुमन्त्रने श्रीरामकी ओर देखा। संकेत समझकर देवी कौशल्या बोलीं—'नहीं सुमन्त्र! सतीके आह्वानपर आनेमें अग्निदेव प्रमाद नहीं किया करते। अगन्यार्पणका अप्रिय कर्म किसीको करनेकी आवश्यकता नहीं है।'

'अम्ब!' सुमन्त्र फूटकर रो पड़े; किन्तु अब अवसर नहीं था। माताओंने नेत्र बन्द कर लिए थे। उन्होंने अपने भुवन पावन पतिके पादारविन्दका ध्यान किया।

कहना कठिन है कि अग्निदेवको उनके सहज शुद्ध शरीरोंकी आहुति प्राप्त हुई । उन चिताओंसे एक साथ अद्भुत अत्युज्ज्वल प्रकाश पुञ्ज प्रकट हुए और आकाशमें ऊपर दूर तक जाते स्पष्ट देखे गये । उन देवियोंका शरीर ज्योतिःपुञ्जमें परिवर्तित होकर अन्तरिक्षमें अदृश्य हो जानेके पश्चात् अग्निदेव उन चिताओंमें प्रकट हुए । उन्हें केवल वे चन्दन काष्ठकी चिताएँ, उनपर आस्तृत कुश प्राप्त हुए भस्म करनेको और प्राप्त हुईं वे सुगन्धित औषधियोंसे समन्वित घृत कलशोंकी आहुतियाँ जो इस अन्तिम शरीरमेध यज्ञके अंगरूपमें रघुकुल गुरुने निर्दिष्ट कीं ।

बहुत शीघ्र वे चिताएँ शान्त हो गयीं । महर्षिके आदेशानुसार श्रीराम तथा उनके अनुजोंने सचैल स्नान करके तर्पण किया । भस्म-प्रवाह किया अञ्जलि जल उलीचकर । ब्राह्मणोंने, ऋषियोंने, स्वयं महर्षि वशिष्ठने सचैल स्नान करके जलाञ्जलि दी । इस परमतीर्थपर, इस परमपर्वमें स्नान करके अञ्जलि देनेका सौभाग्य सुरोंने भी नहीं छोड़ा । वे मानव रूपमें मनुष्योंमें आ मिले ।

उत्तर क्रिया सविधि सम्पन्न होनी ही थी । श्रीचक्रवर्ती महाराजकी उत्तर क्रियामें भरतने कुछ उठा नहीं रखा था; किन्तु उस समयकी परिस्थिति भिन्न थी और आजकी स्थिति भिन्न । मूर्धाभिषिक्त नरेशको सूतक स्पर्श नहीं करता । श्रीरामको मरणाशौच प्राप्त नहीं होता था । शेष समस्त कृत्य सम्पूर्ण विधिसे चलते रहे । पूरे राज्यमें—सम्पूर्ण पृथ्वीमें राजकीय शोक मनाया गया । सभी स्वजन-सम्बन्धी पधारे । त्रयोदशाहके पश्चात् सम्बन्धियोंको सादर श्रीरघुनाथने विदा किया ।

●●●

दिनचर्या

अव्यवस्थित दिनचर्या अशान्त मानस एवं अपूर्ण व्यक्तित्वका प्रतीक है । मर्यादा पुरुषोत्तम पृथ्वीपर मानवकी धर्म मर्यादाके स्थापनार्थ पधारे थे, अतः उन्हें श्रुति-शास्त्र सम्मत दिनचर्याका भी आदर्श स्थापित ही करना था । उनकी दिनचर्या सम्राट्की दिनचर्या; किन्तु सामान्य व्यक्तिके लिए भी उसमें बहुत कुछ अपनाने योग्य आदर्श हैं । आज वह हमारे लिए भले अशक्य हो; किन्तु हमारे पूर्व पुरुष कैसा जीवन व्यतीत करते थे, एक आदर्श आस्तिक व्यक्तिका भारतमें दैनिक जीवन कैसा था, यह इसका परिचायक है ।

ब्रह्ममुहूर्तके प्रारम्भमें अर्थात् सूर्योदयसे तीन घण्टे पूर्व ही निद्रा त्यागकर प्रथम मुख-कर प्रक्षालन करके शय्याके समीप रखे आसनपर आसीन होकर स्थिर चित्त ध्यान करते थे मर्यादा पुरुषोत्तम ! अपने स्वरूपका ध्यान निर्मल, निष्कल, निर्विकार, अद्वितीय । एक रस परिपूर्ण परम तत्त्वका ध्यान ।

नियमतः सम्राट्का उत्थापन मंगल वाद्यों तथा बन्दीजनोंके स्तवनसे होता था; किन्तु वस्तुतः तो यह उत्थापन निद्रात्याग नहीं था । श्रीजनकनन्दिनी ही जानती थीं कि सम्राट् स्वतः जागृत होते हैं । मंगल वाद्य एवं वन्दियोंका यशोगान तो उनका ध्यानसे जागना बनता है । ध्यानसे उठकर वे पुण्य श्लोक पुरुषोंका—अपने कुलके महान पूर्वजोंका, ब्रह्मा-शिव प्रभृति अपनी विभूतियोंका स्मरण करके नित्य शौचसे निवृत्त होते हैं ।

विशुद्ध नवनीत कोमल मृत्तिका एवं ऋतुके अनुकूल उष्ण, कवोष्ण अथवा शीतल जल प्रस्तुत रहता है हस्त-पाद मार्जन-प्रक्षालनके लिए । सुगन्धित औषधि सम्पुटित दन्तधावन सम्राट्के लिए भिषक् श्रेष्ठ स्वयं निर्मित करते हैं । उसका उपयोग करनेके पश्चात् अनुजोंके साथ सरयू स्नान करने पधारते हैं । स्नान, सन्ध्या, सूर्योपस्थान, नित्य-हवनके अनन्तर देव मन्दिरोंमें दर्शन करके लौटनेमें पर्याप्त विलम्ब होता है । राजसदन आकर भी पहले गो-पूजन, मंगलगज, अश्व, मधु, घृत, एवं आदर्श (दर्पण) का दर्शन करके तब वस्त्राभरण, अंगराग, पुष्पमाल्य धारण होता है ।

कोई कर्त्तव्यमें प्रमाद नहीं करता; किन्तु एक निश्चित नियम है कि सम्राट् अंगराग, पुष्पमाल्य, आहार अथवा ताम्बूल ग्रहणसे पूर्व पूछेंगे ही एक-एक स्वजन, सेवक, सेविकाका नाम लेकर कि वह पदार्थ उन सबको प्राप्त हो गया अथवा नहीं। केवल श्रीजानकी और हनुमान इसके अपवाद हैं। इन्हीं दोनोंको सम्राट्के सेवकके अनन्तर ये पदार्थ प्रसाद रूपमें प्राप्त करनेका स्वत्व है। शेष सबको—सभी सेवकोंको ये पदार्थ प्रथम प्राप्त हो चुके हों, तभी सम्राट् इन्हें स्वीकार करेंगे। ऋतुओंके अनुसार, दिनके अनुसार, पर्वके अनुसार वस्त्र, आभरण, अंगराग, पुष्पमाल्यके रंगमें, जातिमें परिवर्तन होता है।

अलंकृत होकर श्रीराघवेन्द्र पितृ-तर्पण करते हैं। ब्राह्मणोंका पूजन करके उनको गौ, अन्न, वस्त्र, स्वर्णादिका दान करते हैं। तब सदनसे बाहर राज-दर्शनको उपस्थित प्रजावर्गके लोगोंसे मिलनेके पूर्व भाइयोंको, स्वजनोंको, नगरके सुहृद-सखाओंको समय मिलता है। उनसे उनका वृत्त पूछते हैं। उचित सम्मति एवं सहायता देते हैं। प्रजाजनोंसे मिलते समय उनके उपहार स्वयं सप्रेम स्वीकार करते हैं। उनके समाचार पूछते हैं। उनको तथा सेवकोंको भी सत्कृत करते हैं, पुरस्कृत करते हैं।

यह सब करते हुए मध्याह्न हो जाता है। भाइयोंके साथ पुनः सरयू-स्नान करने पधारते हैं। मध्याह्न स्नान, सन्ध्या करके राजसदन लौटनेपर पहिले आगत अतिथियोंको, ब्राह्मणोंको भोजन कराते हैं स्वयं। इससे पूर्व गौओंको, अग्निको, पक्षियोंको उनका भाग प्राप्त हो चुका होता है। वृद्धोंको, वृद्ध सेवक-सेविकाओं तकको भोजन कराके तब भाइयोंके साथ स्वयं भोजन करते हैं। आचमनके अनन्तर ताम्बूल ग्रहण करके अत्यल्प समय मिलता है मध्याह्न विश्रामको। यह समय भी निद्राके लिए नहीं है। इस समयमें अन्तःपुरकी नारियोंको, सेविकाओंको अपनी बात सम्राट्को सुनानेका समय मिलता है।

दिनका तृतीय प्रहर भारतीय दिनचर्यामें उपार्जनका काल है—लौकिक कर्तव्य पूरा करनेका समय। इससे पूर्व ही सम्राट् उठकर अलंकार, अंगराग, पुष्पमाल्य धारणकर लेते हैं और हनुमानको आगे करके रथमें विराजमान होकर

राजसभामें उपस्थित होते हैं । कुलगुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ, सभी मन्त्रीगण, प्रजा प्रधान, सब भाई उपस्थित मिलते हैं राजसभामें । अयोध्यामें सम्राट्की राजसभा—किसी भी दिन कोई लोकपाल, दिक्पाल, कोई सुर, देवता, यक्ष, किन्नर, नाग सम्राट्की सेवामें उपस्थित हो सकते हैं ।

राजसभाके और सदनके, नगरके भी सेवक अत्यन्त विनम्र हैं । सब जानते हैं कि सम्राट् आगतसे कुशल-प्रश्नके समय अवश्य पूछेंगे—आपको यहाँ कोई असुविधा तो नहीं हुई ? नगरमें, राजसभामें आपको सुविधापूर्वक पहुँचाया गया ? उचित वाहन प्राप्त हुआ आपको ? पान्थशालामें प्रबन्ध ठीक है ?'

आगत अस्वीकार ही न कर दे तो उसे नगर द्वारसे रथमें लाया जाता है । सेवक आग्रह करते हैं कि वह पान्थशालामें आहार अथवा अल्पाहार स्वीकार करके तब सम्राट्के समीप जाय । अपरिचित ऋषि, मुनि विप्रवर्ग राजसभामें प्रवेश करते ही—'सावधान !' शब्दोच्चारण करते हैं, सम्राट् स्वयं उठकर उन्हें प्रणाम करते हैं, आसन देकर अर्ध्य, पाद्यादि निवेदित करते हैं ।

देवता ही नहीं, अनेक बार दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, नागोंके प्रमुख पधारते हैं । मानव नरेश, कला प्रवण लोग अथवा वन्य जातियोंके लोग भी आते हैं । कोई दिन नहीं जाता जब शतशः अभ्यागत राज-दर्शनार्थ न आते हों । आगतोंकी कभी ही कोई समस्या होती है । अधिकांश लोग आते हैं सम्राट्का दर्शन करने और उनके श्रीचरणोंमें अपना कोई अतिशय प्रिय उपहार निवेदित करने ।

श्रीराघवेन्द्र किसी भी वन्य पुरुषको, किसी अत्यन्त दरिद्र-कृशकाय तापसको, किसी सेवक वर्गसे आये व्यक्तिको देखकर सिंहासनसे उठकर दौड़ पड़ सकते हैं । अस्त-व्यस्त उसे उठाकर हृदयसे लगाकर पुलक-पूरित हो सकते हैं । निषादराज गुह प्रायः प्रतिदिन आते हैं । प्रतिदिन उनके साथ यही होता है । श्रीराम उनसे ऐसे आतुर मिलते हैं जैसे युगोंके पश्चात् मिले हों ।

भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, हनुमान, सुमन्त्रादि सब सतत सावधान रहते हैं । लेकिन भक्तवत्सल, अनन्त दयार्णव, उदार शिरोमणि सम्राट् सबके अपने हैं । ये भाववश्य—प्रतिदिन राजसभामें आनेवाले नगरके सखा, प्रजा प्रधान तकको कभी नहीं लगा कि श्रीरामका ध्यान आज उनकी ओर कम गया ।

प्रत्येक आगतका उसके भावके अनुसार सत्कार करनेमें ये ही समर्थ हैं। अनेकके सम्बन्धमें आदेश हो जाता है—'आपने अपने रामको इतना पराया समझा कि पान्थशालामें ठहरे।'

इतना पर्याप्त होता है। भाइयोंमें लक्ष्मण या शत्रुघ्न उस आगतका सब उपकरण पान्थशालासे राजसदन उठा ले जायेंगे। श्रीरघुनाथ स्वयं उसे लेकर राजसदन न भी जायें तो भरत अवश्य उसके साथ जायेंगे। अब दिनमें अनेक बार सम्राट् उसके सम्बन्धमें पूछेंगे। विदा होते समय आगतोंको सम्राट्के अत्यधिक उपहार तो प्राप्त होंगे ही, वाहन प्राप्त होंगे और अधिकांशको सम्राट् स्वयं पहुँचाने चल पड़ेंगे।

श्रीरामका स्वभाव ही है कि परिचित-अपरिचित कोई मिले, स्वयं स्मितपूर्वक उससे पहिले बोलेंगे। उसका संकोच स्वयं दूर कर देंगे। ऐसे मिलेंगे जैसे वह बहुत-बहुत परिचित हो उनसे। सचमुच इन सर्वसुहृदसे कोई अपरिचित कैसे हो सकता है।

राजसभाका समय नियत तो है प्रजाको न्यायदान करनेके लिए; किन्तु कभी कोई न्यायकी माँग करने आवे, ऐसा अवसर ही प्रजाको प्राप्त नहीं होता। एक ही निश्चित अभियोग है, बार-बार उपस्थित होता है। कभी भी कोई वणिक्, प्रजाप्रधान, वन्य जातिका सेवक उपस्थित होकर किसी राजकर्मचारीके विरुद्ध उपस्थित कर देता है। प्रायः कुमार शत्रुघ्नके विरुद्ध यह अभियोग उपस्थित होता है—

'हमें सम्राट्की सेवासे वञ्चित किया गया है। हमारे उपहार अस्वीकृत हुए हैं। हमारा अनधिकार? हमारा अपराध क्या है? हम षष्ठांशसे अधिक दे रहे हैं, यह सत्य है; किन्तु सम्राट् क्यों हमें परिग्रहके लिए वाध्य करें। हम इतने उत्तम गज, अश्व, गौ या रत्न, मणि, औषधि क्या करेंगे? यह राजसेवाके उपयुक्त—लेकिन इसे स्वीकृत क्यों नहीं मिलती? कुमार तथा दूसरे राजसेवक हमारी अनुपस्थितिमें अथवा हमारी अस्वीकृतिकी उपेक्षा करके हमारे यहाँ इतने बहुमूल्य उपहार क्यों रखवा देते हैं?'

इन अभियोगोंका एक ही उत्तर सम्राट्के समीप है। ये सस्मित कह देंगे—'राजसेवक तथा कुमार शत्रुघ्न जानते हैं कि आप अपने इस सेवकके,

जिसे आपने सम्राट् बना दिया है, स्वजन हैं । अतः आपको अपने आपको असुविधामें, अल्पभोगमें रखनेका अधिकार नहीं है । आप क्यों मानते हैं कि आपका सदन सम्राट्का नहीं है और सम्राट्की वस्तु अयोध्या ही आनी चाहिए । वह आपके यहाँ सुरक्षित रहे, आप उसका उपयोग करके उसे कार्यक्षम बनाये रहें तो आवश्यकता होनेपर मैं मँगा ले सकूँगा ।'

दिवसके तृतीय प्रहरके अन्तमें राजसभा विसर्जित होती है । सम्राट कभी अपनेको विदार ध्वज स्यन्दनपर और कभी महागजपर जो चतुर्दन्त, श्वेत पर्वतके समान शुभ्र एवं विशाल है, बैठकर नगर-दर्शनके लिए निकलते हैं ।

भवनोंसे लाजा, दूर्वांकुर, पुष्प, केशर-चन्दनकी अनवरत वर्षा होती रहती है । वाद्य बजते चलते हैं, ब्राह्मण वेदपाठ करते, सूत-मागध-बन्दी स्तवन करते साथ होते हैं । सब भाई, पवनकुमार, प्रायः सब मन्त्री एवं प्रजा प्रधान भी साथ होते हैं । केवल ऋषिगण राजसभासे अपने आश्रम चले जाते हैं ।

सम्राट् पान्थशाला देख सकते हैं । वहाँ रुके किसी अभ्यागत विशेषसे मिल सकते हैं । नगरमें किसी सुहृद या श्रेष्ठिके सदनमें कुछ क्षणोंको पधार सकते हैं । किसी देवमन्दिरमें, ऋषि आश्रममें अथवा किसी शिल्पी, कवि, चित्रकारकी कला-शालाको कृतार्थ कर सकते हैं । नगरके किसी फलोद्यान, पुष्पोद्यान, वापी अथवा सरोवरको देखने जा ससकते हैं । किन्हीं भी औद्योगिक संस्थानोंको देख सकते हैं । राजसभासे उठनेपर सम्राट् स्वयं अकस्मात् ही सूचित करते हैं कि वे आज किधर पधारेंगे ।

पथोंके दोनों ओर आपण श्रेष्ठी करोंमें उपहार लिए खड़े रहते हैं । स्थान-स्थानपर नीराजन होता है । प्रायः सम्राट्की ओरसे श्रीभरतलाल उपहार स्वीकृत करते हैं और पारितोषिक देते, घोषित करते चलते हैं । सम्राट् जहाँ पधारते हैं, वहाँके सदनपति, सेवकादि सबको विशेष रूपसे पुरस्कृत किया जाता है ।

मार्गमें कहीं कोई भी आगे आ सकता है । अपना आवेदन प्रस्तुत कर सकता है; किन्तु ऐसा अवसर नहीं आता । होता यह है कि सम्राट् स्वयं किसी तपस्वीको, वृद्धको, नगर श्रेष्ठियोंको या सेवकको समीप बुला लेते हैं । जो उन्हें क्षीणकाय, अल्पधन, अल्प सज्जित लगे, अवश्य बुला लेंगे—'आप

इतने अपरिग्रही, इतने वीतराग हैं ।'

अब वह कितना भी अस्वीकार करे, उसका सामान्य भवन भी विशेष बन जायेगा। उसमें अपार सम्पत्ति एवं बहुमूल्य उपकरण आ जायेंगे। बालकोंको तो विशेष रूपसे सम्राट् समीप बुलाकर स्नेह करते हैं। उनके उपहार स्वयं स्वीकार करते हैं और साग्रह उन्हें पुरस्कृत करते हैं। प्रायः साम्राज्ञी इस नगर-भ्रमणमें साथ नहीं होतीं; किन्तु अवसर विशेषपर वे साथ होती हैं। उस समय नारियोंका सत्कार बढ़ जाता है ।

नगर भ्रमणके अनन्तर सायं स्नान, सन्ध्या-तर्पणका नित्यकर्म सम्पन्न होता है और तब श्रीराघवेन्द्र रात्रिके प्रथम प्रहरमें कथास्थलमें पधारते हैं । राजसदनकी स्त्रियाँ तथा नगरकी सम्मानित महिलाएँ भी पृथक स्थानमें बैठती हैं। श्रीशिवशर्माजी तो प्रधान कथा वाचक हैं ही, आगत ऋषि-महर्षि, विद्वान भी पुराण, इतिहास अथवा शास्त्रका प्रवचन करते हैं ।

रात्रिके द्वितीय प्रहरके प्रारम्भमें अल्पाहार करके सम्राट् अपने निजी मन्त्रणा कक्षमें गुप्तचरोंसे विवरण सुनते हैं । मन्त्रियोंसे मन्त्रणा करते हैं । यह कार्य अल्प समय लेता है । भाइयोंको भी यह समय प्राप्त होता है । इससे अवशिष्ट समय मध्य रात्रि तक राजसदनके सामान्य कक्षमें नागरिक एवं राजसदनके सदस्योंके साथ कलाजीवी—कवि, विदूषक, नृत्य-संगीतकारोंकी कलाको देखने और उन्हें पुरस्कृत करनेका है ।

मध्यरात्रिमें सम्राट् अपने अन्तःपुरके शयनागारमें पधारते हैं । यह सामान्य दिनचर्या है । विशेष पर्वोंपर, उत्सवोंके समय, किसी सम्मानित जनके आगमनपर, कोई विशेष नाट्याभिनय अथवा नगरमें कहीं किसीके यहाँ महोत्सव होनेपर इस दिनचर्यामें तदनुकूल परिवर्तन होता है । यह परिवर्तन होता ही रहता है । सामान्य दिनचर्याको ही इतना कम समय मिलता है कि वह विशेष बन गयी है । सम्राट्को आखेट-यात्रा भी करनी होती है और राज्य-भ्रमणकी यात्राएँ भी । उनकी विशेष व्यवस्था बनती है ।

●●●

गया श्राद्ध

अर्थपुरुषार्थी संसारमें सदा होते रहते हैं। भोग अथार्त् कामपुरुषार्थी तो सभी प्राणी है। सबको ऐन्द्रिय भोग प्रिय है और इसीकी प्राप्तिको अपना लक्ष्य मानते हैं; किन्तु ऐसे भी लोग समाजमें सब कहीं कुछ-न-कुछ मिलते ही हैं जो धनके लिए धन चाहते हैं। जिनका उपार्जन एवं संग्रह न दानके लिए है, न स्वजनोंके काम आता है, न स्वयं उसका उपभोग करते हैं। लेकिन अर्थ जैसे भी आवे, उसमें निरन्तर लगे रहते हैं। ये अर्थ-पुरुषार्थी लोग हैं।

बहुत कम होते हैं मोक्ष पुरुषार्थी। अर्थ, धर्म, काम तीनोंसे मुख मोड़कर परम पुरुषार्थी मोक्ष—जन्म-मरणके चक्रसे परित्राण पानेके प्रयत्नमें लगे लोग मोक्ष पुरुषार्थी हैं। ये अल्प होते हैं समाजमें; किन्तु सर्वदा—सब कहीं ऐसे पवित्र पुरुष होते आये हैं, होते हैं।

सबसे कम हुए हैं धर्म पुरुषार्थी। धर्म साधन है अर्थका और—कामका भी। पुण्य प्रारब्धका ही फल अर्थ तथा भोग है। अतः ऐहिक ऐश्वर्य तथा सुख-सम्पत्तिके लिए और स्वर्गादिकी प्राप्तीके लिए यज्ञ, दान, तप प्रभृति धर्माचरण करने वाले संसारमें बहुत अधिक लोग होते हैं। धर्म अन्तःकरणको शुद्ध करता है यदि निष्काम आचरित हो, अतः मोक्षपुरुषार्थी धर्मात्मा तो होंगे ही। अतः अर्थ, काम, मोक्ष तीनों पुरुषार्थोंमें धर्म साधन है, सहायक है। तीनोंके अभीप्सु धर्मका आचरण करते हैं।

धर्मके लिए धर्म—धर्माचरणका फल अथवा भोग नहीं, स्वर्गादि लोक नहीं और मोक्ष भी नहीं, केवल इसलिए धर्माचरण कि वह प्रिय लगता है। वैसा करना स्वभाव बन गया है। ऐसे धन्य व्यक्ति धर्म पुरुषार्थी हैं। अत्यल्प हुए हैं संसारमें; किन्तु हुए हैं, अतः धर्मको भी पुरुषार्थ—पुरुषका परम प्राप्य माना गया है।

सत्पुरुष मानवों और देवताओंमें ही होंगे और असुरोंमें सदा अधर्मी ही होंगे, ऐसा नियम नहीं है। असुरोंमें दानवेन्द्र मय, दैत्येन्द्र प्रह्लाद, विरोचन, बलि, बाणासुर जैसे भगवद्भक्त महापुरुष हुए हैं। ऐसे ही महत्तमोंमें एक

धर्मपुरुषार्थी महाप्राण दानव गये थे ।

दानवोत्तम गय आस्तिक थे । भगवान नारायणके भक्त थे; किन्तु सर्वथा निरपेक्ष—संसारके सुख, सम्मान, पद-प्रतिष्ठा-सम्पत्तिसे निरपेक्ष । सर्वगसे ही नहीं, वैकुण्ठसे भी निरपेक्ष और मोक्षसे भी निरपेक्ष । वे धर्म-पुरुषार्थी थे । तप करना उन्हें प्रिय था, केवल इसलिए तप कर रहे थे । निराहार, निर्जल स्थित थे और कुछ चाहते नहीं थे ।

सृष्टिमें कहीं भी एक गुणकी अत्यधिक वृद्धि सृष्टिका सन्तुलन बिगाड़ती है और प्रलय तककी सम्भावना उपस्थित कर देती है । गयमें सत्त्वगुण बहुत बढ़ गया तो अन्यत्र उसे घटना ही था । सत्त्वात्मक देवताओंको कष्ट होने लगा । सृष्टिमें सर्वत्र रजस-तमसका प्राबल्य अनवसर होने लगा । सृष्टिकर्ताको चिन्ता हुई । वे हंसवाहन गयके समीप आये । वरदान माँगनेको कहा; किन्तु गयको तो कुछ चाहिए ही नहीं था ।

'वत्स ! तुमको कुछ नहीं चाहिए; किन्तु मैं तुम्हारे समीप याचक बनकर आया हूँ ।' ब्रह्माजीने स्वयं याचना की—'तुम्हारे तपः शुद्ध शरीरसे अधिक पवित्र कोई स्थान मेरी सृष्टिमें नहीं है । मैं यज्ञस्थल बनाना चाहता हूँ तुम्हारे शरीरको ।'

'प्रसन्नतापूर्वक बनावें ।' गय लेट गये । उनके वक्षके ऊपर स्रष्टाने कुण्ड बनाकर यज्ञारम्भ किया । सहस्र वर्ष चला वह यज्ञ; किन्तु गयके दिव्य तपः प्रभावसे उनका एक रोम भी नहीं जला । यज्ञकी पुर्णाहुतिके अनन्तर गयके उठ खड़े होनेकी सम्भावनाने ब्रह्माजीको उलझनमें डाल दिया । उन्होंने भगवान विष्णुका स्मरण किया । श्रीहरि पधारे । गयके वक्षपर चतुर्भुज गदाधर खड़े हुए ।

'ब्रह्माजी ! मैं चाहूँ तो अब भी उठकर खड़ा हो सकता हूँ ।' गय हँसकर बोला—'किन्तु मेरे वक्षपर मेरे आराध्य स्थित हैं । जबतक ये यहाँ स्थित हैं, मैं उठनेकी अशिष्टता नहीं करूँगा ।'

'वत्स ! मैं कल्पपर्यन्त श्रीविग्रहरूपमें तुम्हारे वक्षपर स्थित रहूँगा ।' भगवान विष्णुने कहा—'मेरी प्रसन्नताके लिए तुम कोई वरदान माँग लो और स्वीकार कर लो कि मैं तुम्हारे शरीरको एक परम तपस्विनीको शिलारूप देकर

आच्छादित कर दूँ ।'

'आपको जो प्रिय हो, करें ।' गयने वरदान माँगा—'आगे कलिमें लोग अधर्मरत, आस्थाहीन, आचारहीन हो जायेंगे । वे अपने पितरोंका भी श्राद्ध-तर्पण नहीं करेंगे । जो करेंगे भी, वे विधिके अज्ञानसे, पदार्थ दोषसे, पात्र दोषसे पितरोंको प्राप्त नहीं हो सकेगा । फलतः प्रायः पितृलोक स्थित सभी पितर क्षुधा-पिपासासे पीड़ित रहेंगे । अतः आप मुझे वरदान दे दें कि मेरे इस सात कोस विस्तीर्ण शरीरपर कहीं कोई आकर विधिपूर्वक, अविधिपूर्वक, कैसे भी सर्षप मात्र रेणुका पिण्ड भी किसीका स्मरण करके दे दे तो उसके उन पितरोंकी अक्षय तृप्ति हो जाय । उनका श्राद्ध-तर्पण न होनेपर भी उनकी अधोगति न हो । उन्हें कष्ट न हो ।'

'एवमस्तु !' श्रीहरिने गयको वरदान दे दिया । उसका शरीर दिव्य शिलासे आच्छादित करके उसके वक्षस्थानपर स्वयं गदाधर रूपसे स्थित हुए । गयके वक्षपर उनका चरणचिन्ह स्थापित हुआ ।

श्रीरामके होने तक इक्ष्वाकुवंशमें कोई अल्पपुण्य हुआ नहीं था । परमपावन रघुवंशमें प्रायः सब मुक्त पुरुष हुए थे । कोई सम्भावना नहीं थी कि कोई पूर्वज पितृलोक (प्रतीक्षा लोक) में होंगे । सामान्य भगवद्भक्त जिस कुलमें उत्पन्न होता है, उस कुलके इक्कीस पीढ़ियोंके पूर्वजोंका उद्धार हो जाता है । जिस कुलमें स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम अवतीर्ण हुए, उस कुलके किसीका उद्धार होना शेष रहा ?

उद्धार तो उसका हो जाता है—सदा होता रहेगा जो अपनेको मानसिक रूपसे भी श्रीरामके पावन पदोंका सेवक स्वीकार कर लेगा । उनके कुलोद्भव होनेका भान हृदयमें आकर उद्धारक हो जाता है; किन्तु वे मर्यादा पुरुषोत्तम लोक मर्यादाकी स्थापनार्थ धरापर पधारे थे, अतः उन्हें पितृ-तर्पणकी परम्परा भी प्रदर्शित करनी थी । उन्होंने गया-श्राद्धका निश्चय किया ।

सभी स्वजन सम्बन्धियोंको सूचना भेज दी गयी । सबसे आग्रह किया गया कि वे अपने दिवंगत जनोंकी नामावली भेज दें । राज्यमें घोषणा कर दी गयी कि—'सम्राट् गया-श्राद्धके निमित्त यात्रा करेंगे । प्रजाजनोंमें जो भी पितृ-पिण्ड दानार्थ चलना चाहें, सम्राट्के साथ सबके लिए समुचित व्यवस्था

रहेगी। तीर्थमें भी सबको अपने तीर्थ कर्मकी पूरी सुविधा प्राप्त रहेगी।'

सामान्य प्रजाजनोंने ही नहीं, अनेक सम्बन्धी नरेशोंने भी सम्राट्के साथ जानेका निर्णय कर लिया। प्रजाजनोंमें सभी वर्णोंके लोग साथ हो गये। तीर्थ-यात्री यदि राजकीय द्रव्य अथवा आहारका उपयोग न करना चाहें तो उनपर कोई दबाव न पड़े, इस सावधानीके साथ सबकी सुरक्षा तथा अन्य आवश्यकताओंकी सम्पूर्ण व्यवस्था हो गयी।

अयोध्याके श्मशानमें अर्घ्य देकर, पितरोंका आवाहन करके, श्रीराम-जनकनन्दिनीके साथ गैरिक वस्त्र पहिनकर नियमपूर्वक चले। यात्रा रथके द्वारा ही होनी थी; किन्तु गया यात्रीके सम्पूर्ण नियमोंका निर्वाह यथाविधि किया जा रहा था। आभूषण त्याग दिये गये थे। श्रीवैदेहीके शरीरपर भी केवल सौभाग्यके मंगल-चिन्ह मात्र शेष थे। एकाहार और वह भी फलाहार अथवा हविष्यान्न ही होता था। यात्रामें भूमिपर ही तृणाशन पर शयन होता था। अल्पभाषण, नाम-स्मरण तथा दूसरे भी सब नियमोंका पूरा पालन चल रहा था।

गयाके यात्रीको मार्गमें पड़नेवाले प्रधान तीर्थोंपर पिण्डदान करना चाहिए। श्रीराघवेन्द्र सामान्य सरिताओं तथा तीर्थोंपर भी सविधि पिण्डदान करते जा रहे थे। सर्वत्र ब्राह्मणोंको दान देकर सन्तुष्ट करते थे। अनेक स्थानोंपर सरोवर, वापी, पान्थशाला अथवा देव मन्दिरकी स्थापनाका संकल्प करते गये और राज्य कर्मचारियोंने अविलम्ब उनका कार्य प्रारम्भ कर दिया।

मार्गमें मुख्य तीर्थस्थल वाराणसी पड़ता था। काशी नरेशने सम्राट्का स्वागत किया; किन्तु तीर्थयात्री आतिथ्य नहीं स्वीकार किया करता, यह मर्यादा काशी नरेशको भी माननी ही थी। वाराणसीमें स्नान, तर्पण, पिण्डदान, भगवान विश्वनाथ, अन्नपूर्णादिका दर्शन अर्चन करके श्रीरघुनाथने इस अविमुक्त क्षेत्रमें स्वयं शिवलिंगकी स्थापना की। मन्दिर निर्माण कराया और तीर्थपुरोहितोंको, विद्वानोंको तपस्वियोंको दानसे सन्तुष्ट किया।

गया क्षेत्रका प्रथम स्नान एवं पिण्डदान पुनपुन नदीपर होना ही था। आज जो पिण्डदानकी वेदियाँ गयामें हैं, वे तो कालक्रमसे स्थापित हुई हैं। उनमें बहुत अधिक लुप्त हो चुकी हैं। जब जहाँ किसी दिव्य तेजा देवता,

ऋषि या पुण्य श्लोकने श्राद्ध किया, वह स्थान उसके नामकी वेदी बन गया और दसूरोंके लिए वह पिण्डदानका प्रधान क्षेत्र बन गया । अन्यथा सम्पूर्ण गया क्षेत्र ही पिण्डदानके लिए प्रशस्त है । उसमें प्रधान वेदी विष्णुपद ही है ।

श्रीरामने जिस पर्वतपर पितृ श्राद्ध किया, वह राम शिलाके नामसे ही प्रसिद्ध हो गया । उस समय तक प्रसिद्ध वेदियोंपर तथा विष्णुपदपर भी श्राद्ध-पिण्डदान करना ही था ।

गयाकी सरिता है फल्गु । यह वर्षाके अतिरिक्त अन्तःसलिला ही रहती है । इस पावन नदीके क्षेत्रमें तीर्थ पुरोहित रेणुका हटाकर स्थान-स्थानपर उथली वापी बना देते हैं । उसीके जलसे यात्री वहाँ स्नान तथा तर्पणादि करते हैं ।

श्रीराघवेन्द्रने पितृपक्षके प्रारम्भमें श्राद्ध प्रारम्भ किया था । उस समय फल्गुमें जल रहता है । अतः रेणुका हटाकर बनायी गयी वापियोंमें स्नान तर्पणादिकी आवश्यकता नहीं थी ।

पुनपुन स्नान पिण्डदानके पश्चात् प्रथम दिनका स्नान-तर्पण, पिण्डदान फल्गुपर होता है । विधान तो ऐसा है कि तीर्थ यात्री प्रत्येक दिन प्रथम फल्गुपर स्नान तर्पण करके ही अन्य वेदियोंपर जावे और जहाँ सरोवर है, वहाँ स्नान-तर्पण करे; किन्तु आजका अल्पप्राण दुर्बलकाय मानव ऐसा नहीं कर पाता । त्रेतामें तीर्थ निर्मल थे । मानवोंमें अपार श्रद्धा थी और उनका शरीर स्वस्थ, सबल, सक्षम था ।

फल्गुमें वर्षामें भी प्रायः कटि पर्यन्त कभी कदाचित् वक्ष पर्यन्त जल रहता है । श्राद्धपक्षमें यात्री पैदल उसे पार करके सीता कुण्डलपर जाते हैं । इस नामके पड़नेका भी कारण है । फल्गुपार करके श्रीरघुनाथ उस पादुका क्षेत्रमें पिण्डदान करने पधारे तब उनके स्नान, तर्पणके समय श्रीजनक-नन्दिनी फल्गुकी रेणुकापर बैठ गयीं और विनोदवश सहज ढंगसे उन्होंने दक्षिण करमें गीली रेणुका लेकर उसे पिण्डाकार प्रदान किया । सहसा फल्गुके जलसे महाराज दशरथका हाथ कुहनी तक ऊपर उठ आया । उसकी हथेली फैल गयी, जैसे स्वर्गीय महाराज अपनी पुत्रवधूसे प्रस्तुत पिण्ड माँग रहे हों । श्रीजानकीने स्वसुरका कर पहिचान लिया, अतः संकुचित हो गयीं । उन्होंने रेणुका पिण्ड भूमिपर विसर्जित कर दिया ।

श्रीरघुनाथने तर्पणके अनन्तर पिण्डदान प्रारम्भ किया । प्रत्येक दिन पितर प्रत्यक्ष होकर पिण्ड स्वीकार करते थे । आज स्वर्गीय श्रीचक्रवर्ती महाराज प्रकट नहीं हुए । श्रीरामको आश्चर्य हुआ, दुःख हुआ । वे प्रार्थना करने लगे । अन्ततः महाराज प्रकट होकर बोले—'वत्स ! चिन्ता या दुःखकी बात नहीं है । इस क्षेत्रमें श्राद्धकर्ता सपत्नीक हो तो पिण्ड पत्नी ही निर्माण करती है । हम पितरोंको स्थूल पदार्थ तो प्राप्त करना नहीं रहता । हमें तो स्थूल शरीर प्राप्त नहीं है । पदार्थके माध्यमसे हम कर्ताकी श्रद्धा प्राप्तकर परितृप्त होते हैं । आज मेरी पुत्र-वधूने रेणुका पिण्ड बनाया । मैंने उसकी परीक्षाके लिए हाथ फैलाया; किन्तु हाथपर पिण्ड देकर उस धर्ममयीने विधि भंग नहीं किया । उसके भूमिपर उत्सर्जित पिण्डसे मैं परितृप्त हो गया, अतः पुनः अर्पित पिण्ड स्वीकार करने आनेकी आवश्यकता नहीं थी ।'

तबसे उस स्थानका नाम सीता कुण्ड पड़ गया और यात्री वहाँ रेणुका पिण्ड प्रदान करें, यह विधि बन गयी । जिनका संकल्प सृष्टि, स्थिति, संहारका मूल है, उनकी क्रिया ही तो शास्त्रकी शाश्वत विधि है ।

विष्णु पद प्रभृति स्थानोंमें श्राद्ध करके, अक्षयवटके नीचे पिण्डदान तीर्थ पुरोहितका पूजन करके, उन्हें भोजन करा तीर्थ कार्य सम्पन्न हुआ और श्रीराघवेन्द्र लौटे । साथ गया तीर्थ यात्रियोंका समूह लौटा । सबने सविधि अपने-अपने पितरोंका श्राद्ध किया था । मार्गमें लौटते सबकी स्वतः वाराणसी पुरीकी तीर्थ यात्रा सम्पन्न हो गयी ।

अयोध्या लौटनेपर यज्ञादि करके काषायवस्त्र विदा करके सम्राट् तथा साम्राज्ञीने वस्त्रालंकार धारण किया । स्वभावतः इस अवसरपर सभी स्वजन-सम्बन्धी आये थे । उन्हें सादर सत्कृत करके ही विदा किया जाना था । वे अयोध्याके महोत्सव तथा सम्राट्की प्रशंसा करते गये ।

●●●

सम्बन्धियोंका सत्कार

आश्रित-कार्य-निर्वाहकत्त्व, आश्रयण सौकर्या पादकत्व, सर्वशास्त्रज्ञ, उपासित-सर्वलोक श्रीराममें ही ये दिव्य सद्गुण निवास करते हैं । विलक्षण प्रतिभावान प्रत्युत्पन्न मति श्रीराघवेन्द्र ही सबकी भाव रक्षा करनेमें समर्थ हैं ।

महाराज जनकने यह नियम नहीं रखा कि कन्याके पति-गृह नहीं जाना चाहिए । वे अपनी पूरी व्यवस्थाके साथ विशेष अवसरोंपर अयोध्या आ जाते हैं । राज्याभिषेकके समय पधारे और प्रत्येक तीर्थ-यात्रासे लौटनेपर श्रीरघुनाथ उन्हें आमन्त्रित करते ही हैं । प्रत्येक यज्ञमें भी उन्हें आना है ।

अयोध्याके सम्मुख सरयूके दूसरे तटपर महाराजने अपने आवासका सुनिश्चित स्थान बना लिया है । मिथिलाके सेवक आकर स्थान स्वच्छ करते हैं और वहाँ वस्त्र, शिविरोंका एक भव्य नगर बस जाता है । प्रत्येक सामग्री, सब सेवक मिथिलासे आते हैं । इस प्रकार महाराज विदेह अयोध्या आकर भी अपने नगरमें निवास करते हैं । अपनी कन्याओंसे वहीं मिलते हैं । सरयूके पार अयोध्यामें आते हैं केवल राजसभामें अपने सम्राट् जामाताको उपहार अर्पित करने ।

'आप ही हमारी प्रतिष्ठा हैं, पालक हैं, । आपकी कृपासे मैं दशग्रीवपर विजय पा सका । अयोध्या आपकी है ।' श्रीराम हाथ जोड़कर प्रत्येक विदाके समय खड़े हो जाते हैं—'दोनों वंशोंमें प्रीति बनी रहे, ऐसा आशीर्वाद दें । भरत सेवामें साथ जायेंगे और हमें कुछ तो अर्चाका अवसर प्राप्त होना चाहिए ।'

'मैं तुम्हारे दर्शनसे तृप्त हूँ । तुम साक्षात् परात्पर पुरुष मेरी दृष्टिके सम्मुख हो, यही मेरा परम सौभाग्य है । केवल भरत नहीं, तुम चारों भाई मिथिला पधारो तो हमारी पुत्रियोंको भी अपनी मातासे मिलनेका अवसर प्राप्त हो ।' महाराज जनक अयोध्याके उपहार तो स्वीकार नहीं कर सकते । वे सौजन्यसे, स्नेहसे कह देते हैं—'वत्स ! ये वस्तुएँ, यह रत्नराशि मैंने स्वीकार कर ली । अब इन्हें मैं अपनी पुत्रियोंको प्रदान करता हूँ ।'

प्रत्येक बारका यह आमन्त्रण स्वीकार कर लिया जा सके, ऐसी

परिस्थिति नहीं होती; किन्तु इस प्रेमाग्रहको सदा अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता । अनेक बार चारों भाई सपत्नीक सपरिकर मिथिला पधारते हैं। वहाँका स्वागत, स्नेह, सत्कार—यह भाव-प्राण हृदयोंके चिन्तनका धन है । प्रत्येक बार ऐसा ही उत्साह, ऐसी ही स्वागत जैसे रघुवंशी कुमार विवाहके प्रथमावसरपर ही पधारे हैं । केवल इतना अन्तर कि संकोच कम हो गया है अन्तःपुरमें ।

प्रत्येक बार विदा होते समय वही व्याकुलता, वही स्नेह, वही अपार सामग्री जैसे महाराज विदेह पुत्रियोंको अभी विवाह करके ही विदा कर रहे हों ।

मिथिला आना होता है तो सचमुच अयोध्यासे बारात ही आती है। श्रीराघवेन्द्र ही तो अकेले जामाता नहीं हैं मिथिलाके । श्रीरामके विवाहके समय जो बाराती आये थे, उनमें जितने बाराती आये थे, उनमें जितने युवक थे, वे सभी तो विदेहपुरीसे विवाहित होकर लौटे थे । जनकपुरके जन-जनके घरोंमें विवाह मण्डप बने थे । अयोध्यासे आये ब्राह्मणसे लेकर सेवकों तकको जनकपुरके लोगोंने दम्पत्ति बनाकर विदा किया था । अब अयोध्याके घर-घरमें जनकपुरकी कन्याएँ हैं । सभी वर्णोंके गृहोंमें जनकपुरके उन वर्णोंकी वधुएँ विद्यमान हैं । साम्राज्ञीके साथ ही पितृगृहदर्शनका पुनीत नियम बना लिया है सबने । अतः अब अयोध्यासे उन सबको साथ लेकर जाना पड़ता है और वे साथ ही लौटती हैं ।

यहाँ भारतीय परम्पराका एक नियम स्मरण रखने योग्य है । कन्या केवल संकट कालमें पतिसे पृथक रहती थी । ऐसे अवसरपर वह जैसे अन्यत्र उचित स्थानमें शरण ले 'सकती' थी पितृगृह भी रह सकती थी; किन्तु सामान्य समयमें पतिके साथ ही पितृगृह रहती थी । पतिसे पृथक पितृगृह जाने और रहनेकी प्रथा प्राचीन नहीं है ।

श्रीराघवेन्द्र जब कभी जनकपुर पधारते थे, भाइयोंके साथ और उन सब व्यस्कोंके साथ ही पधारते थे, जो जनकपुरमें विवाहित थे । जनकपुरके घर-घरमें कन्या-जामाताओंका सत्कार सम्पन्न होता था । महाराज विदेह बहुत कठिनाईसे विदा करना स्वीकार करते थे । एक-एक यात्रासे लौटनेमें कई-कई

महीने लगना स्वाभाविक था । मिथिला महोत्सवमयी हो उठती थी । रघुवंशी कुमारोंके सत्कारके नित्य नवीन आयोजन, विदा माँगनेपर भी अनेक उत्सव, अनेक वृहदायोजन बाधक बनते थे । ऐसा मधुर संयोग भी क्या कोई समाप्त करना चाहता है । विदा तो विवशता ही थी दोनों पक्षोंकी ।

'बहिनने हमें कुछ कहने योग्य नहीं रखा है ।' बड़ा संकोच था कैकेयके युवराज कुमार युधाजितको—'सम्राट्का अनुग्रह कि हमें उपहार अर्पणका अवसर प्राप्त हुआ ।'

'आप ऐसा कहकर हमें क्यों लज्जित करते हैं ? छोटी अम्बाके अनुग्रहसे ही तो राम लोकोत्तर सुयश अर्जित कर सका है ।' श्रीराम राज्याभिषेकके अनन्तर विदा करते समय युधाजितके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये थे—'मातुल ! यह राज्य आपका है । हम चारों भाई आपके आज्ञानुवर्ती हैं । आप ही हमारे संरक्षक, निर्देशक हैं । आप हमारी अल्प सेवा स्वीकार करें । लक्ष्मण आपको पहुँचाने जा रहे हैं ।'

'यह सामग्री अयोध्या ही रहनी चाहिए ।' कुमार युधाजित अयोध्याका उपहार तो स्वीकार नहीं कर सकते थे । विनम्र स्वर बोले—सम्राट्के सौजन्य एवं सौहार्दने साहस दे दिया है कि मैं पिता श्री की प्रार्थना सेवामें उपस्थित करूँ । वे चाहते हैं कि आप चारों भाई कैकेयको कृतार्थ करें ।'

'मातुल ! उन आदरणीयका आदेश स्वीकार करके हम सब प्रसन्न होंगे ।' श्रीराम भी समझते थे कि कैकेय नरेशके साथ सुखद सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए उनका आतिथ्य स्वीकार करना आवश्यक है । उनके मनमें जो ग्लानि, जो कुण्ठा आ गयी है, उसे समाप्त किया जाना चाहिए । अतः आमन्त्रण स्वीकार करके कहा—'किन्तु मातुल ! अभी दीर्घकालके पश्चात् मैं अयोध्या आया हूँ । बहुत दूर है हमारा यह ननिहाल । अतः समय मिलते ही लक्ष्मणके साथ मैं आऊँगा । यहाँ शासनकी सुरक्षाकी दृष्टिसे भी दो भाइयोंका रहना आवश्यक है ।'

परम नीतिज्ञ युधाजितसे अविदित नहीं था कि भरत कैकेयीको माता नहीं कहते हैं । वे युधाजितको भी मातुल सम्बोधन नहीं करते । अतः वे कैकेय जाना स्वीकार करेंगे, इसकी कोई सम्भावना नहीं है । इस तथ्यको ध्यानमें

रखकर भरतके आनेका आग्रह उचित नहीं था । इससे कटुता उत्पन्न होनेकी आशंका थी । भरतके साथ ही शत्रुघ्न रहेंगे, यह सुनिश्चित तथ्य था । अतः कुमार युधाजित राज्याभिषेकके अनन्तर सम्राट्का लक्ष्मणके साथ कैकेय आनेकी स्वीकृति लेकर सानन्द लौट गये थे ।

श्रीराघवेन्द्र जब तीर्थयात्रा करके लौट आये, यात्रान्तमें अयोध्याके महायज्ञका आमन्त्रण कैकेय भी पहुँचा । इस बार कुमार युधाजित अपने पिता कैकेय नरेश महाराज अश्वपतिका पत्र लेकर आये थे । यज्ञान्तमें सम्बन्धियोंके विदा हो जाने तक वे रुके रहे । श्रीरामने इस बार उनके आग्रहको स्वीकार कर लिया । लक्ष्मणके साथ वे कैकेय पधारे ।

महाराज अश्वपतिने इन भागिनेयोंका अभूतपूर्व स्वागत किया । राज्यके दूसरे सब कार्य स्थगित कर दिये गये । कुमार युधाजित निरन्तर श्रीराम-लक्ष्मणके साथ रहते ही थे, स्वयं महाराज अश्वपति अधिकांश समय देते थे इनके समीप ।

संसारका सुन्दरतम प्रदेश कैकेय और वहाँ भूमण्डलके सम्राट् सम्मान्य अतिथि होकर नहीं आये थे, दौहित्र बनकर पधारे थे । समस्त नागरिकोंके स्नेह भाजन—सारा कैकेय स्वागतमें उमड़ पड़ा था । पूरे राज्यके नागरिकोंका आग्रह था—'कमसे कम एक दिनका सत्कार सौभाग्य उनके नगरको प्राप्त होना चाहिए ।'

राजधानीमें, मातामहके समीप रहनेका तो अवसर ही अत्यल्प प्राप्त हुआ । राज्यके समारोहोंमें सम्मिलित होते, पर्वतीय मनोरम उपत्यकाओंमें भ्रमण करते, विभिन्न स्थानोंके नागरिकोंके आग्रहको सम्मान देते ही कई मास व्यतीत हो गये । अत्यन्त संकोचके साथ मातामहसे विदा लेनी पड़ी ।

सबसे अधिक सुविधा प्राप्त थी मगध नरेश महाराज सुमित्रको । उनको पृथक आग्रह करने अथवा आमन्त्रण देनेकी आवश्यकता ही नहीं थी । अयोध्याके राजकुमारोंको उनके राज्यमें होकर ही मिथिला जाना था और जाते समय वे तभी शीघ्र विदा पा सकते थे जब लौटते समय मातामहके यहाँ कुछ दिन रुकनेका आश्वासन देकर जायें । महाराज सुमित्रको दौहित्रोंका सपत्नीक आतिथ्य करनेका अवसर सुलभ होता था । वे तो बहुत कठिनाईसे अयोध्याके अन्य लोगोंको दो-चार दिन पश्चात् विदा करते थे ।

'महाराज मिथिलेशका आमन्त्रण ही मेरा आमन्त्रण मान लिया करो।' महाराज सुमित्रने श्रीरामसे सहास्य कहा था—'सम्राट्का स्वागत करने योग्य मगध हो या न हो, अपने दौहित्रोंको स्नेह देने योग्य अवश्य है ।'

'आप हमारे पूज्य हैं, परमादरणीय हैं ।' संकोचमें आकर श्रीराम अञ्जलि बाँध लेते थे—'अयोध्या आपके अनुग्रहसे सुरक्षित है । हम सब तो आपके आशीर्वादसे पोषित हैं ।'

दक्षिण कौशलकी स्थिति सर्वथा भिन्न थी । दक्षिण कौशलके नरेश अयोध्यासे सम्बन्धके पूर्व भी अयोध्याकी राजसभाके सामन्त थे । इस पदको वहाँ परम्परामें परम गौरवार्ह माना जाता था । अतः सम्बन्धके पश्चात् भी वहाँके युवराज अयोध्यामें ही अधिक रहते थे । राजसभाके महत्त्वपूर्ण अधिवेशनोंमें उनको उपस्थित रहना था । राजसभामें उनका स्थान महामन्त्रीके समान बन गया था ।

यह सब था; किन्तु वहाँके युवराज सम्राटको अपने यहाँ आमन्त्रित करनेका साहस नहीं कर पाते थे । श्रीरामने भी उन्हें कभी इस संकोचमें नहीं डाला । दक्षिण कौशल भाइयोंके साथ पधारनेका श्रीराघवेन्द्रका ढंग ही अन्यत्रसे भिन्न था । चाहे जब वे वहाँके युवराजको सूचित करते थे—'मातुल ! हमारे साथ आपको आखेट-यात्रा करनी है । समाचार मिला है कि आपकी ओर वाराह बहुत बढ़ गये हैं । उनमें एकलोंने आतंक उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया है । आपको हम अवसर नहीं देते और मातामह वृद्ध हो चुके । हम चारों भाई चलेंगे । आपको आतिथ्य एवं आखेट दोनोंकी व्यवस्था करनी है ।'

यह यात्रा आखेट-यात्रा कम होती थी, मातामहका सत्कार स्वीकार करना अधिक होता था । केवल सामान्य अरण्यके आसपास वनसे ग्रामजनोंको वनके एकत्र पशुओंके आतंकसे मुक्त करना होता था और वह कार्य ऐसा नहीं था कि दक्षिण कौशलके शूर न कर सकते हों । यह तो जानबूझकर सम्राट एवं उनके अनुजोंको आमन्त्रित करनेका उपाय था । उनके लिए यह आखेट सुरक्षित रखा जाता था । एकल पशुओंकी पूरी गतिविधि स्थितिकी जानकारी रखी जाती थी ।

सृष्टिमें कौन है जिसका श्रीरामसे सम्बन्ध न हो ? इन सर्वसुहृदसे

जिसे अपने सम्बन्धका ज्ञान न हो, वह भाग्यहीन । अयोध्याके सम्बन्ध पूरे संसारमें थे ।

'सब भाइयोंके साथ सम्राट्को हमारे यहाँ पधारना है ।' किसी भी नरेशका आमन्त्रण कभी आ सकता था । ऐसे आमन्त्रण आते ही रहते थे । एक साथ अनेक आमन्त्रण—आग्रहपूर्ण आमन्त्रण आते थे—'इस बार हमारे आग्रहको स्वीकृत करनेका अनुग्रह करें ।'

क्षत्रियोंके ही नहीं, विप्रोंके, ऋषि-मुनियोंके, प्रसिद्ध व्यापारियोंके आमन्त्रण आते थे और अनेक स्थान थे जहाँ अनामन्त्रित स्वयं जाना आवश्यक था । कोई भावका धनी अपने अन्तरमें आकुल अभीप्सा लेकर एकान्तमें पुकारेगा तो अयोध्यानाथ उसके यहाँ पधारनेमें आमन्त्रणकी अपेक्षा करेंगे ? उसकी मूक पुकार अस्वीकृत होगी ?

श्रीसीताराम अयोध्याको त्यागकर कहीं नहीं जाते । अवधकी प्रजाको प्रतिदिन इनका दर्शन प्राप्त होता है । किसी सम्बन्धीका, किसी भावुकका आग्रह अस्वीकृत नहीं होता । सम्राट् भाइयोंके साथ, अनेक बार साम्राज्ञीके साथ भी जाते हैं और कहीं तो कई महीने निवास करते हैं । दोनों बातें सत्य हैं । समस्त विपरीतताओंका जिनमें सन्निवेश होता है, उनके सम्बन्धमें यह बात आश्चर्यजनक तो नहीं है ।

●●●

महायाजी

अश्वमेध, राजसूय, वाजपेय ये तीनों यज्ञ राजाके ही करनेके हैं । तीनोंमें बहुत कम अन्तर है । राजसूयको जीवनमें सम्राट् एक ही बार कर सकता है । जब कोई यह यज्ञ कर लेता है, उसके जीवनकालमें दूसरेको उससे अधिक शक्तिशाली हो जानेपर भी वह यज्ञ करनेका अधिकार नहीं हुआ करता । राजसूय यज्ञ सम्पन्न हो जानेका अर्थ है सार्वभौम सम्राट् पदकी प्राप्ति ।

राजसूय यज्ञमें अश्व नहीं छोड़ा जाता । सम्राट्के प्रतिनिधियोंको सेनाके साथ समस्त पृथ्वीके नरेशोंसे कर ले आना चाहिये । यह आवश्यक नहीं है कि दूसरे नरेश पराजित होकर ही कर दें । अनेक बार तो नरेशकी अनुपस्थितिमें राज्य-सेवक कर दे देते हैं । अनेक बार युद्ध करनेके अनिच्छुक सौजन्यवश अथवा उपेक्षापूर्वक कुछ भेंट भेज देते हैं । कर क्या हो, कुछ निर्णय नहीं है । केवल सम्राटकी स्वीकृतिका प्रतीक है कर और वह कैसे भी प्राप्त हो गया, कुछ अल्प भी आ गया तो कार्य सम्पन्न हो गया । इस प्रकार पृथ्वीके समस्त राज्योंसे कर प्राप्त करके राजसूय यज्ञ सम्पन्न होता है ।

वाजपेय यज्ञमें अश्वपूजन होता है; किन्तु अश्व छोड़ा नहीं जाता । केवल घोषणा कर दी जाती है कि अमुक नरेश वाजपेय करने जा रहे हैं, जिनको उनको सम्राट् न स्वीकार करना हो, वे आकर बाधा उपस्थित करें । इसमें दूसरे नरेशोंको आकर आक्रमण करनेकी चुनौती दी जाती है । अवश्य ही यह कार्य शक्तिशाली नरेशोंके लिए भी सरल नहीं होता । अपने राज्यसे दूर जा कर किसी पर आक्रमण करनेके लिए उससे कई गुनी शक्ति आवश्यक है । अतः अधिकांश नरेश ऐसी चुनौतियोंकी उपेक्षा कर देते हैं ।

अश्वमेध इन दिनों—राजसूय तथा वाजपेयसे भिन्न है । इसमें सब कुछ अश्वपर निर्भर है । मन्त्रपूत दिव्यशक्ति सम्पन्न अश्वको सञ्चालित नहीं किया जाता । उसका अनुगमन किया जाता है । वह स्वयं जहाँ चाहे, जाय । वह सम्पूर्ण पृथ्वी घूमे या थोड़े स्थानोंपर घूमकर लौट आवे, उसकी इच्छा । यज्ञ अश्वके लौटनेपर ही सम्पन्न होता है । अश्वके भालपर स्वर्णपट्ट बँधा रहता है—'अमुक अश्वमेध-दीक्षितका यह अश्व है । जहाँ से जा रहा है, वह हमारा विजित प्रदेश माना जायेगा । जिसमें शौर्य हो, साहस हो, शक्ति हो, वह अश्वको पकड़े ।'

अश्व प्रायः उन राज्योंमें अवश्य जाता है, जहाँ उसके पकड़े जानेकी सम्भावना हो । यह उसके मन्त्रपूत होनेका प्रभाव है । पकड़े जानेपर युद्ध करके उसे प्राप्त करना आवश्यक हो जाता है । अपने राज्यमें आये अश्वको पकड़कर युद्धकी चुनौती स्वीकार कर लेना सरल है । इस प्रकार अन्य राज्योंको पराजित करके अश्व लौटा लानेके लिए बहुत अधिक शौर्य एवं शक्ति आवश्यक है ।

भारतमें आस्तिक व्यक्तिकी महत्त्वाकांक्षी थी यज्ञ । भारतीयकी शक्ति, साधन, उपार्जन, उपभोगके लिए नहीं था । यज्ञके लिए जो जितना बड़ा साधन-सम्पन्न, उसका उतना महान यज्ञ । संग्रह ही यज्ञके लिए था, हिन्दूका जीवन यज्ञ और महोत्सव यज्ञ ।

यज्ञका अर्थ होता है संग्रहका सुरों तथा समाजके लिए उत्सर्ग और साथ-साथ कठोर संयम एवं श्रम । केवल धनसे यज्ञ नहीं होता । उसके लिए पर्याप्त सहयोगी तथा शरीरमें तप करनेकी शक्ति आवश्यक है ।

श्रीरघुनाथके राजकालमें राज्य-समृद्धिकी सीमाका भी अतिक्रम कर चुका था । जन-जन अपने अधिपतिके प्रति अनुरक्त था । अतः इस सुयोगका परम लाभ तो यज्ञ ही था । भोग तो जीवनका लक्ष्य भारतने कभी माना नहीं और श्रीरामके राज्यमें कहीं कोई उपद्रव था नहीं कि उसे शमित करनेके लिए समय देना आवश्यक हो ।

राजसूय एक ही बार होना सम्भव था । वह सानन्द सोत्साह सम्पन्न हो गया । अश्वमेधकी मर्यादा है—सौ अश्वमेध करने वाला शतक्रतु इन्द्र पद प्राप्त करता है । इन्द्र जिनका सेवक कहनेमें अपना गौरव मानते थे, वे क्यों शतक्रतु बननेकी स्पर्धा करें ? अतः श्रीरामने वाजपेयको उत्तम माना । यह यज्ञ भी निष्काम—केवल प्रजाको—विप्रोंको सन्तुष्ट करनेके लिए । संग्रहीत धनके वितरणका उच्चतम आदर्श उपस्थित करनेके लिए यह शुभारम्भ था ।

प्रत्येक यज्ञके आरम्भमें सब सम्बन्धी, सब वानर-यूथप आमन्त्रित होते थे । सब अयोध्या आते थे । सब सामन्तगण, ऋषि-महर्षि अयोध्या पधारते थे आमन्त्रित होकर । यज्ञान्तमें भी पर्याप्त समय रुककर तब स्वजन-सम्बन्धियोंको, विभीषणको, सुग्रीवादि वानर-यूथपोंको विदा प्राप्त होती थी । अयोध्याको उत्सव-नगरी बननेका अवसर प्राप्त हो गया था ।

अयोध्याके समीप सरयूके दोनों तटोंपर दूर-दूर तक प्रायः यज्ञ-धूम उठता रहता था । यज्ञ-मण्डप बनता था तो उसके समीप ऋत्विकोंका, आचार्यका, ऋषि-मुनियोंका आवास आवश्यक था । यज्ञमें दीक्षित यजमान सपत्नीक, सहायकोंके साथ यज्ञशालासे लगी पत्नीशालामें रहेगा ही । सामग्रीके लिए सेवकोंके लिए भी आवास बनना ही था । इस प्रकार एक पूरा महानगर बन

जाता था । आगत राजाओंके शिविर पड़ते थे आसपास ।

यज्ञ-कालमें यजमान सपत्नीक संयमपूर्वक रहता है । दोनों आभरण और उत्तम वस्त्र त्याग देते हैं । तैल, अभ्यंग, अंगराग, पुष्पमाल्य वर्जित होता है । वेदिकापर कुशास्तरणके ऊपर शयन, हविष्यान्त भोजन, त्रिकाल स्नान-सन्ध्या, यह तो अनिवार्य है ही । यजमान-पत्नी रात्रि-जागरण करके अश्व-परिचर्या करती हैं । यजमानको पत्नीके साथ यज्ञशालामें हवन तथा देव-पूजन करते ही प्रायः सात घण्टे प्रतिदिन लगते हैं । मध्याह्न-विश्रामके समय यज्ञशालामें ही कथा-कीर्तन होता है और उसमें यजमानको उपस्थित रहना ही है ।

एक वाजपेय यज्ञ कमसे कम सहस्र दिन लेता है । श्रीरामने तेरह सहस्र वर्ष राज्य किया ।१ इस राज्यकालमें उन्होंने एक सहस्र वाजपेय यज्ञ किये । एक यज्ञमें यज्ञकालके अतिरिक्त उसकी प्रस्तुतिमें, ऋत्विकों तथा सम्बन्धियोंको आमन्त्रित करने तथा उनके आगमनमें और यज्ञान्तमें आगतोंको विदा करने, स्थान स्वच्छादि करनेमें भी समयका लगना स्वाभाविक होता है । सहस्र दिनों तक चलने वाले महायज्ञको फिर प्रारम्भ करनेके लिए पाँच-सात वर्षका अन्तराल अल्प ही कहा जायेगा । अतः श्रीरामका तेरह सहस्र वर्षका राज्यकाल एक महायाजीका शासनकाल था । जो प्रायः यज्ञ-दीक्षित ही रहा करता था । साम्राज्ञीके साथ कठोर संयम एवं तपका यह जीवन आज तपस्वीके भी लिए कल्पनासे परे है ।

'आप यही अनुग्रह करें कि सदा हमारे हृदयमें निवास करें ।' राजाओंको, ऋषियोंको, सबको सम्राट्से यज्ञान्तमें यही प्रार्थना करनी थी ।

यज्ञान्तमें श्रीराम होताको पूर्व दिशाका, ब्रह्माको दक्षिण दिशाका, अध्वर्युको पश्चिमका और उद्गाताको पूर्व दिशाका राज्य अर्पित करके मध्यका सम्पूर्ण राज्य आचार्यको दान कर देते थे । अश्व, गज, गौ, अन्न, वस्त्रादि सर्वस्व दान कर देते थे । साम्राज्ञी श्रीजानकीके शरीरपर भी सौमंगल्य चिन्ह ही शेष रह जाते थे ।

---

१. श्रीमद्भागवत ६-११-१८ । कुछ ग्रन्थोंमें ग्यारह सहस्र वर्षका भी वर्णन है । कल्पभेदसे दोनों वर्णन सत्य हैं ।

'हम ब्राह्मण शासन नहीं कर सकते, अतः आप यह राज्य हमारा प्रसाद मानकर स्वीकार करें ।' महर्षियोंको राज्य लेकर क्या करना था । दूसरे राजाओंके उपहारार्पणसे राज्यकोष परिपूर्ण हो जाता था ।

यज्ञान्तमें आगत पशु-पक्षी तकको आहार, दानसे समृद्ध करके सबके साथ सम्राट् अवभृथ स्नान करते थे । विदाके समय श्रीराम प्रायः वानरेन्द्र सुग्रीवसे कहते थे—'अंगद तुम्हारे सुपुत्र हैं । इनका सत्कार करना ।'

'आप सब हमारे सुहृद हैं । सगे भाइयोंके समान हैं । आपने मुझे विपत्तिसे बचाया है ।' जाम्बवन्त, नल, नील, नीलादिसे बार-बार कहते थे । सुग्रीवसे कहते थे—'इन्होंने मेरे लिए प्राणों तकके उत्सर्गकी चिन्ता नहीं की । तुम इनका सम्मान करना ।'

'तुम धर्मज्ञ हो । मैं तुम्हारा आदर करता हूँ ।' विभीषणको बार-बार सम्राट् स्मरण कराते थे—'लंकाके राक्षसोंके पिछले अपराध भूल जाना । धर्मपूर्वक राज्य करो । मेरी और सुग्रीवकी स्मृति रखना । हमारी शक्ति तुम्हारे साथ है ।'

'हनुमान ! तुम्हारे एक-एक उपकारके बदले प्राण भी दे दूँ तो कम है । तब भी तुम्हारे शेष उपकारोंका ऋणी रहूँगा ।' श्रीरामने भरी सभामें अनेक बार कहा गद्गदकण्ठ—'तुमपर कभी ऐसा अवसर न आवे कि मैं प्रत्युपकार कर सकूँ ।'

'सदा आपके इन श्रीचरणोंमें मेरी भक्ति बनी रहे ।' पवनकुमार व्याकुल होकर चरण पकड़ लेते थे । अपने कण्ठकी मणिमाला श्रीरामने अपने करोंसे आञ्जनेयको पहिना दी थी ।

बड़े कष्टसे, रुदन करते ही सबको यज्ञान्तमें विदा होना पड़ता होगा ।

यही आश्वासन था कि शीघ्र अयोध्यासे दूसरे यज्ञका आमन्त्रण प्राप्त होगा ।

●●●

श्रीजानकीका दोहद

आह्निक चर्या तो चलती ही है; किन्तु विशेष अवसरोंके विशेष कृत्य भी होते हैं, पूर्वाह्नमें सम्राट् और साम्राज्ञी दोनों देव-सेवामें पृथक-पृथक लगे होते हैं। श्रीजनक-नन्दिनीने सासुकी देवार्चना उनके रहते ही सम्हाल ली थी। अपराह्न उनका सासुओंकी सेवामें व्यतीत होता था, जब वे थीं और उनकी अनुपस्थितिमें सम्राट्के साथ राजसभामें रहना पड़ता है।

राजसदनके अन्तःपुरका प्रबन्ध सम्हालनेका कार्य करती तो श्रुतिकीर्ति ही हैं; किन्तु उनकी तीनों बड़ी बहिनें मानती ही नहीं कि वे बच्ची नहीं रही हैं। सब चाहती हैं कि वे संलालित होती रहें। वे स्वयं साग्रह लगी रहती हैं, अतः कोई उन्हें वारित नहीं करता। सेवक-सेविकाओंका, सम्राट् एवं उनके अनुजोंका, आगत अतिथियोंका सब प्रबन्ध वे स्वयं देखती हैं। प्रतिदिन जो अपरिमित दान होता है, सहस्रशः विप्रवर्ग भोजन करता है, उस सबकी व्यवस्था वे बनाये रखती हैं।

साम्राज्ञीपर कोई भार नहीं है। वे राजसभामें और राजकीय यात्रामें सम्राट्के साथ न हों तो अपने सदन एवं उद्यानमें विराजें। उनसे मिलनेवाली मुनि-पत्नियाँ, नगरकी वृद्धाएँ, कुलवधुएँ इतनी आती हैं। उन्हें इससे अवकाश ही नहीं मिलता।

माण्डवीजीका वेश अवश्य परिवर्तित हो गया भरतके नन्दिग्रामसे राजसदन लौट आनेपर; किन्तु वे उपासनामयी हैं। उन्हें देवसदनमें ही प्रायः पाया जाता है। उनको कलाकी आराधना भी अपने उपासना कक्षके एकान्तमें ही सूझती है।

स्वभावसे सहज शासिका, तेजस्विनी हैं उर्मिला। जैसे राजसदनकी श्री हों साक्षात्। कहती हैं—'बड़ी जीजीको अपनी आवश्यकताओंका ही स्मरण नहीं रहता। माण्डवी जीजी तो पूजाकी प्रतिमा हैं। जैसे चाहे वैसे उन्हें बैठा दो और सज्जित कर दो। श्रुतकीर्ति करती सब है; श्रमशीला हैं; किन्तु बच्ची है। उसे समझाना पड़ता है। आदेश देना पड़ता है।'

अन्तःपुरके उद्यानसे लेकर सबके अपने भवनोंमें, अश्वशाला, गोशाला, गजशाला तकमें क्या स्थिति है, क्या परिवर्तन आवश्यक है, सबकी सुधि रखती हैं उर्मिला। सब कहीं उनके आदेश पहुँचते हैं। अन्तःपुरमें ही नहीं, राजधानीमें भी जो चित्रशाला, संगीत-विद्यालय, नाट्य-गोष्ठियाँ हैं, उन सबको उर्मिलाजीके आदेश अपेक्षित हैं। कलाकार उन्हें साक्षात् हंसवाहिनी मानते हैं। श्रेष्ठि-समुदाय और स्वयं सम्राट् समझते हैं कि वे अयोध्याकी अधिदेवता श्री हैं। महा सेनापति शस्त्र-पूजाके समय उनसे आशीर्वाद लेने आते हैं। अयोध्याकी विजयवाहिनीका प्रत्येक शूर उनको प्रत्यक्ष महाशक्ति मानकर मस्तक झुकाता है।

आनन्दघन सम्राट्, आनन्दधाम अयोध्या—महोत्सव तो चलते ही रहते हैं। वैदिक धर्म आनन्दका अनुरागी, आनन्दका अभीप्सु, आनन्दका उपासक है। इसीसे भारतीय परम्परामें जयन्ती मनानेकी प्रथा है, निर्वाण-दिवस नहीं मनाये जाते। हम पूर्वजोंके निर्वाण-दिवसको श्राद्ध-दिन—श्रद्धार्पणका दिन कहते हैं। आनन्द; किन्तु उन्मद—उच्छृखंल नहीं। सात्त्विकतासे उज्ज्वल, श्रद्धा-समन्वित, श्रेयोन्मुख जीवनका शुभ्र आनन्द अभीष्ट है भारतको। अयोध्याके आनन्दोत्सवोंमें धर्मका, श्रद्धाका भव्य समन्वय रहता है।

अर्थ और काम भी पुरुषार्थ हैं। जीवनमें इनकी आवश्यकता, उपयोगिताको अस्वीकार करनेवाला समाज रसहीन, साधनहीन बन जायेगा; किन्तु इन्हींको प्रधानता देनेवाला पुरुष पशु या पिशाच हो जाता है। भारतने धर्मानुकूल अर्थको उपार्जनीय माना और अर्थ-व्ययका प्रधान प्रयोजन माना धर्म। धर्मसम्मत काम सेवनीय है। अर्थ और कामपर धर्मका अंकुश अपेक्षित है और स्वयं धर्मको मोक्षका साधन-सोपान बनना चाहिये। धर्मकी सफलता ही है अन्तःकरणको निर्मल करके मोक्षका अधिकारी बना देनेमें।

अयोध्यामें मोक्षके साक्षात् स्वरूप परात्पर पुरुष स्वयं उपस्थित थे। वे धर्मके परम प्रभु और श्रुतिके परमोपदेष्टा सृष्टिकर्त्ताके सुत ब्रह्मर्षि वशिष्ठ विद्यमान थे धर्मकृत्योंके सञ्चालक बनकर। अर्थ अयोध्याका आराध्य तो बनता क्या, सेवक भी नहीं समझा गया। वह उपेक्षित रहा, दूसरेको दानकी वस्तु रहा। जहाँ स्वयं श्री सादर सेविका बनी विद्यमान रहें, जहाँ कोषपति कुबेर

ही अपनेको किंकर मानें, वहाँ अर्थ कोई स्वीकार भी करता है तो केवल किसी पर कृपा करके उसे अनुगृहीत करनेके लिए, उसका दान या उपहार मानकर ।

कामको अवश्य अवसरोंकी प्रतीक्षा करनी पड़ती थी । उसे अवसर मिलता था विशेष पर्वोंपर । वसन्त पञ्चमी, होली जैसे पर्वोंपर आनन्दोल्लासका उन्मुक्त महोत्सव चलता था । स्वयं श्रीराम भी वैदेहीके साथ अपने रंग भवनमें अथवा अन्तःपुरसे लगे उद्यानमें पधारते थे ।

अन्तःपुरसे लगे उपवनमें केवल स्त्री उद्यान-रक्षिकाएँ थीं । सम्राट्के पधारनेके समय वहाँ संगीत, वाद्य, नृत्य चलता था; किन्तु नारियोंके समूह द्वारा । उनमें भी सब श्रीसीताकी सखियाँ, सेविकाएँ ही थीं । सरोवरमें जल-विहार, कुञ्जकी सुरम्य, सुरभित, शीतल छायामें नाना विनोद और शतधारा प्रक्षेप (पिचकारीसे परस्पर जल डालना) प्रभृति प्रमोद चलता था ।

ऐसे ही एक महोत्सवके समय श्रीजनक-नन्दिनी विनोद-क्रीड़ाके मध्य ही कुछ शिथिलताका अनुभव करके समीपके सुसज्ज विश्राम-कक्षमें चली गयीं । श्रीराघवेन्द्रने उनका अनुगमन किया । ऐसे अवसरपर सखियाँ और सेविकाएँ उस एकान्त कक्षमें नहीं जा सकती थीं । वे कक्षके बाहर समीप ही रहीं, जिससे आवश्यकता होनेपर, आह्वान आनेपर सेवामें तत्काल उपस्थित हो सकें ।

'तुम्हें कुछ श्रान्त देखता हूँ ।' श्रीरामने समीप बैठते हुए कहा ।

'कोई विशेष बात नहीं है ।' संकोचपूर्वक श्रीमैथिलीने उत्तर दिया— 'शरीर कुछ शिथिल लग रहा था ।'

'अब समय आ गया है, जब तुम अयोध्याके सिंहासनको उत्तराधिकारी प्रदान करने वाली हो ।' स्नेहपूर्वक पद्मपाणि करोंमें लेकर श्रीराघवेन्द्रने पूछा— 'तुम्हारा दोहद क्या है ? तुम्हारे मनमें जो कुछ आता हो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा !'

नारीकी सफलता है मातृत्व प्राप्त करना । जब उसके उदरमें सन्तान आ जाती है, उसका दोहद—उसके मनमें उठने वाली इच्छा पूर्णकी जानी चाहिये । अन्यथा सन्तानमें अतृप्त कामनाकी कुण्ठा उसमें अनेक विकृतियोंका रूप ले सकती है । चिड़चिड़ापनसे लेकर उन्माद तक तथा अनेक अस्वाभाविक असंयम इसके परिणाम होते हैं ।

'मैं पुण्य तपोवनोंके दर्शन करना चाहती हूँ ।' श्रीमैथिलीने सहास्य सलज्ज भावसे कहा—'आप तो सर्वज्ञ हैं । सब समझ लेते हैं । गंगातटपर जाकर मुनि-पत्नियोंको वल्कल, कन्द, फल, कमण्डलु आदि देकर प्रणाम करनेकी इच्छा है और उनके ही आहारपर, उनके ही समान रहना चाहती हूँ, भले एक ही दिन रहना सुलभ हो सके ।'

सुर-मुनियोंके उद्धारके लिए ही जो धरापर आयी हैं, उनके ब्रह्मण्यदेव स्वामीका अंश उदरमें आया तो दोहद भी उसके अनुरूप ही होगा । तपस्वियोंकी सेवा और रक्षा ही तो रघुवंशकी परम्परा रही है । सन्तान जैसी होनेवाली होगी, मातामें दोहद भी वैसा ही तो उत्पन्न होगा ।

'मेरा साथ जाना सम्भव नहीं होगा । मेरे जानेसे तुम्हारी इच्छापूर्तिमें भी बाधा होगी । मेरे साथ अनेक औपचारिकताएँ सम्बद्ध हो गयी हैं । मेरे साथ मन्त्री, सभासद भी जाना चाहेंगे । तपस्वीजन भी मेरा आतिथ्य करना चाहेंगे ।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक समझाया—'अतः मैं कल ही तुम्हें लक्ष्मणके साथ भेज दूँगा । तुम तपोवनमें इच्छानुसार रुक सकती हो ।'

कौन जानता था कि ये लीलामय यह भूमिका क्यों बना रहे हैं । क्रूर नियति—लेकिन इनका पदाश्रित भी प्रारब्ध-परतन्त्र नहीं होता तो इनके लिए नियतिके नियम—प्रारब्धकी परवशता कैसी ? लोकादर्शकी रक्षाके लिए शासकको कितने बड़े आत्म-बलिदानको प्रस्तुत रहना चाहिये, यह मर्यादा स्थापित करनी थी मर्यादापुरुषोत्तमको । अतः उनकी इच्छानुसार भगवती योगमाया परिस्थितियोंका विधान करनेमें लग गयी थीं ।

●●●

अपवाद-श्रवण

अन्तरंग सखा विदूषक विजय श्रीरामके समीप आ बैठा, जब वे उपवन-क्रीड़ासे लौटकर स्नान-सन्ध्यादि सायंकालीन उपासना करके रात्रिके प्रथम प्रहरमें अपने अन्तरंग मन्त्रणा-कक्षमें आकर आसीन हुए । विजय विदूषक प्रत्यक्षमें और सम्राटका अत्यन्त अन्तरंग गुप्तचर था वास्तविक रूपमें । विदूषक होनेके कारण उसे नगरमें बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त थीं । वह सबको अपने परिहासोंसे प्रसन्न कर लेता था । चाहे जहाँ, चाहे जब चला जाता था और इसके लिए पूछे जाने पर अटपटे कारण गढ़ लेता था ।

'तू यहाँ क्यों आया ?' किसीके भी अन्तःपुरमें विजयको पहुँच जानेपर कोई वृद्धा या नववधू उसे डाँट दे सकती है । वह किसीके डाँटनेका बुरा नहीं मानता ।

'चींटियोंके लिए शर्करा डालने !' विजय ऐसी कोई अटपटी बात कह देगा ।

'पिपीलिकाओंको शर्करा भवनके भीतर ?' कोई कहेगा ही—'तुझे वन उपवन कुछ नहीं मिलता ?'

अरे तो क्या हो गया ? तुझे शर्करा कबसे अप्रिय हो गयी है ?' विजय मुख बनावेगा—'तू ही तनिक देरको पिपीलिका बन जा । ले मुख खोल ।'

लेकिन कोई अधिक असन्तुष्ट हो, इससे पूर्व ही वह चौंककर भाग खड़ा होगा—'अरे ! शर्करा साथ लाना तो मैं भूल ही गया ।'

जो सम्राट्से भी ऐसे उलटे-सीधे परिहास कर लेता है, उससे असन्तुष्ट होनेसे लाभ ? सब जानते हैं कि विजय बहुत सीधा है । सर्वथा निर्दोष, निश्छल है । इससे कपट सम्भव नहीं और न किसीका कोई अहित कर सकता । तनिक परिहासप्रिय है । सबको हँसाता रहता है । वह गुप्तचर है, कोई नहीं जानता । सब समझते हैं कि अपने भुलक्कड़ एवं सनकी स्वभावके कारण वह कहीं जाना चाहता है और कहीं जा पहुँचता है । अयोध्यामें इसीलिए वह अव्याहत गति बन गया है ।

अत्यन्त गम्भीर, संकोचीनाथ श्रीराघवेन्द्र भी अपने इस विदूषकसे यदा-कदा परिहास कर लेते हैं; किन्तु आज एकान्त मन्त्रणा-कक्षमें यह अकेले समीप आ बैठा तो श्रीराघवेन्द्रने गम्भीर होकर पूछा—'मित्र ! प्रजा मेरे और राजपरिवारके सम्बन्धमें क्या विचार रखती है ? लोग हमारे सम्बन्धमें परस्पर क्या कहते हैं ।'

'कहते हैं कि सम्राट् और उनके अनुज रथों पर चढ़ते हैं । कोई भी जटा-दाढ़ीवाला या बड़ी शिखावाला विप्र दीखे तो रथसे कूदकर दौड़ पड़ते हैं उसके पद पकड़ने । मानो वह भाग जानेको उद्यत हो । विजयने हँसकर कहा—'लोगोंका असन्तोष है कि सम्राट् अनन्तशायीके समान इन्दीवरसुन्दर हैं, सबके पालक हैं; किन्तु चतुर्भुज क्यों नहीं है ? अपने एक अनुजको तो चतुर्भुज बना दें ।'

'मित्र ! परिहास मत करो और मैं प्रशंसा भी सुनना नहीं चाहता ।' श्रीरामने अत्यन्त गम्भीर होकर कहा—'प्रजामें लोग मेरे सम्बन्धमें राजपरिवारके सम्बन्धमें कुछ दोष भी देखते होंगे । तुमने ऐसी सूचना मुझे कभी नहीं दी ।'

'इसमें सूचना देनेकी क्या बात है ? आपने एक वानर पाल रखा है । वह इतना विकट है कि मुझे भी डरा देता है । सौभाग्य है कि इस समय कहीं गया है ।' विजयने इधर-उधर देखा कि हनुमान कहीं समीप तो नहीं हैं—'वह कोई सामाजिक शिष्टाचार समझता ही नहीं । कभी सुसभ्य मानव रहता है, कभी बड़ी भारी पूँछ प्रकट कर लेता है । एक ओरसे सब स्त्रियोंको आपत्ति है कि वह सबको इतनी कुरूपा मानता है कि किसीकी ओर देखता ही नहीं । सुरुचिके सम्बन्धमें उसे कुछ पता नहीं ।'

'विजय ! तुम्हें मेरी शपथ ।' श्रीरामने रोका न होता तो विजयका अटपटा प्रवचन पूरे प्रहर भर भी चल सकता था । 'तुम सदा कुछ छिपा जाते हो । मुझे सदा लगता है कि तुम कुछ संगीपन कर रहे हो । कुछ छिपाओ मत । मुझे बताओ कि प्रजा मेरे या राजपरिवारमें किसीके किसी व्यवहारमें त्रुटि देखती है ? किसीको कोई दोष लगाती है ?'

शपथ सुनकर विजय गम्भीर हो गया, उसने दोनों हाथोंसे अपना सिर पीट लिया । उसके नेत्र भर आये—'विजय ! अब दुर्भाग्य तुझे दुर्मुख बननेको

बाध्य कर रहा है । इस विपत्तिसे बचनेका कोई उपाय नहीं रहा तेरे समीप ।'

अनेक क्षणों तक विजय मौन बना रहा । उसके नेत्रोंसे बड़ी-बड़ी बूँदें टपकती रहीं । श्रीरामने आग्रहपूर्वक पुनः कहा—'मेरी शपथ विजय ! समाचार सुना देनेमें तुम्हें किसी दोषका भागी नहीं बनना पड़ेगा ।'

'एक दिन एक रजक अपनी पत्नीको पीटने लगा ।' विजयने मस्तक झुकाकर रोते-रोते कहा—'अपराध है यह अयोध्यामें कि कोई किसी नारीपर हाथ उठावे । अतः मैं ब्रह्ममुहूर्तके उस अन्धकारमें कुछ समीप जाकर सुनने लगा । मेरा अभाग्य मुझे वहाँ ले गया था ।'

'श्रीराम सम्राट् हैं । वे जो करें, उन्हें सब शोभा देता है । वे कुछ करें, उन्हें कोई अंगुली नहीं उठावेगा ।' वह रजक क्रोधमें उच्चस्वरमें कह रहा था—'मैं उनके जैसा स्त्रीजित नहीं हूँ कि रात्रिमें अन्यत्र रही स्त्रीको स्वीकार कर लूँ । कौन विश्वास करेगा कि तू पितृगृहमें ही थी । उन्होंने भले नौमास निशाचरके पास रही सीताको स्वीकार कर लिया, मैं तुझे अब अपने गृहमें नहीं रहने दूँगा ।'

'मुझे क्षमा करें ?' विजयने रोते-रोते चरण पकड़े—'सती-शिरोमणि जगदम्बा साम्राज्ञीके सम्बन्धमें वे शब्द सुनने भी अपराध थे, अतः मैं वहाँसे दूर चला गया ।'

'भद्र ! नागरिक भी कुछ कहते हैं मेरे सम्बन्धमें ?' श्रीरामने पुनः आग्रह किया ।

'नागरिक तो बहुमुख हैं । वे आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं कि श्रीरामने समुद्रपर सेतु बाँधकर दुष्कर कार्य किया । सुरासुरजयी दशग्रीवको समरशैय्या दे दी । वनमें भी वानर-रीछ-सेना सज्जित कर ली ।' विजय पुनः धाराप्रवाह बोलने लगा ।

'विजय ! मैंने पहिले कहा है कि मैं प्रशंसा नहीं सुनना चाहता ।' श्रीरामने रोका—'सीताके सम्बन्धमें यह अपवाद भी लोगोंमें चर्चित है ?'

'है स्वामी !' विजय पुनः व्याकुल रुदन करने लगा । वह हिचकता बोला—'लोग कहते हैं—श्रीरामको सीतासे चिढ़ होनी थी । वे अनाचारी राक्षस रावणके यहाँ रही थीं । राक्षसने अंकमें उठाकर ही उन्हें रथमें डाला होगा,

पर यह श्रीराम सहन कैसे करते हैं ? अब पत्नियोंका यह असंयम हमको भी सहन करना पड़ेगा । राजाका अनुवर्तन करनेको प्रजा बाध्य है ।'

'अच्छा विजय ! तुम भाइयोंको यहाँ भेज दो !' श्रीरामने गम्भीर होकर सुना । अन्तमें विदूषकको विदा कर दिया ।

तीनों भाई आदेश सुनकर आ गये । जैसे बैठे थे, वैसे ही चले आये । आकर देखा, उनके अत्यन्त आदरणीय अग्रज अवाङ्मुख, साश्रुनेत्र, कान्तिहीन बैठे हैं; सब स्तब्ध हाथ जोड़े खड़े रह गये ।

'आप सब मेरे सर्वस्व हैं । यह राज्य आपका है ।' आज ही श्रीराम अतिशय शोकमें अनुजोंको 'आप' कह रहे थे—'आप सबने भी सीताके सम्बन्धमें नगरमें चलता अपवाद सुना है ?'

'कुछ लोगोंमें कुचर्चा है तो सही ।' सिर झुकाकर सबने स्वीकार किया । सब चिन्तित, उद्विग्न कि 'अब ये क्या कहने वाले हैं ।'

'पुरवासियोंमें, ग्रामोंमें भी सीता-विषयक जो चर्चा चल पड़ी है, वह सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है । अत्यन्त गर्हित चर्चा है वह । श्रीराम उसी प्रकार मन्द, कातर स्वरमें कहते गये—'सीता सत्कुलोत्पन्ना हैं । अयोनिजा हैं । रावणने उनका हरण किया, अतः मेरे मनमें भी सन्देह आया था । मैंने उनको अस्वीकार किया था समस्त वानर-सेनाके सम्मुख । तब जानकीने अग्नि-प्रवेश किया । लक्ष्मण इसके साक्षी हैं । अग्नि, वायु, इन्द्रने मुझे जानकी अर्पित की—'ये शुद्ध हैं । मेरा हृदय सीताको शुद्ध स्वीकार करता है ।'

भाइयोंने मस्तक झुका रखा था । कुछ कहनेकी स्थिति नहीं थी । श्रीरामने ही कहा—'मनुष्यपर लांछन लगना मृत्युके तुल्य है । मिथ्या कलंक भी जब तक रहता है, कलंकितकी हानि करता है । महात्माओंने यशको आदरणीय माना है ।'

'अपने यश-अपयशसे उदासीन हुआ जा सकता है, किन्तु शासकका अपना व्यक्तित्व नहीं होता ।' श्रीरामने कहा—'शासक समाजका है । उसके आचरण—उसका मिथ्यापवाद भी लोगोंका आचरण बन जाता है । अतः शासकको समस्त प्रजाके हितार्थ आत्मोत्सर्गके लिए सदा प्रस्तुत रहना चाहिए ।'

सब भाई शान्त, स्तब्ध, शंकित सुनते रहे ।

●●●

सीता-त्याग

'आप सबको मेरी शपथ ! कोई प्रतिवाद मत करो और किसीसे कुछ मत कहो ।' श्रीरामने किसी भाईको बोलनेका अवसर नहीं दिया । वे सत्य ही 'उपासित लोक' हैं । लोक-जनसमूह ही उनका उपास्य है । उनके लिए जनता ही जनार्दन; अतः उन्होंने कहा—'लक्ष्मण ! मैं अग्रजके नाते, सम्राट्‌के नाते आदेश दे रहा हूँ, पालन करो । प्रतिवाद करनेवालेको मेरी हत्याका दोष होगा ।'

अब किसीके लिए बोलनेका अवकाश ही कहाँ था । लक्ष्मणको आदेश हुआ—'महामन्त्री सुमन्त्रके सारथ्यमें सीताको रथपर लेकर कल प्रातः जाओ । सीतासे या किसीसे भी अभी यहाँ कोई कुछ नहीं कहेगा । महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके समीप गंगातटपर निर्जनमें सीताको छोड़ देना । वे यहाँसे जो कुछ रथमें लेकर जाना चाहें, ले जाने दो । गंगातटपर उन्हें उतारकर तब बतला देना कि 'रामने उनका त्याग कर दिया है । वे चाहे जहाँ जानेको स्वतन्त्र हैं ।'

'सबको मैं अपने जीवनकी शपथ देता हूँ ।' श्रीरामने फिर कहा—'सीताका पक्ष लेकर विवाद मत करना । कुछ मत कहना । मैं लोकमें आदर्शकी रक्षाके लिए जीवन तक त्याग सकता हूँ ।'

सचमुच श्रीराम जीवन ही तो त्याग रहे थे । श्रीजानकी उनका जीवन ही तो हैं । तीनों भाई रुदन करते विदा हुए । श्रीरामकी क्या अवस्था थी, न कहना ही उत्तम है । अन्तरमें दावानल जल रहा था; किन्तु कहना एक शब्द नहीं था । उलटे अपनेको प्रसन्न दिखलाना था । श्रीजनक-नन्दिनीको बोलनेका भी अवसर दिये बिना निद्राभिनय करके शय्या स्वीकार कर लेना ही एकमात्र मार्ग था । जिसे अपनेसे सर्वथा अभिन्न जानते-मानते हैं, जो सर्वथा निर्दोष हैं, उन्हें प्रातः निर्वासित करनेका आदेश देनेके पश्चात् अब उनसे संलाप या स्नेह-प्रदर्शनका दम्भ श्रीरामसे सम्भव नहीं था ।

तीनों भाइयोंके अन्तःपुरोंमें भी कुछ ऐसा ही हुआ । तीनोंकी पत्नियोंको प्रतीत हुआ कि उनके स्वामी आज अत्यन्त अस्वस्थ हैं । पूछनेपर एक ही

उत्तर—'आज कुछ मत पूछो। प्रातः स्वयं पता लग जायेगा। मानस अत्यन्त अस्वस्थ है।'

'पता नहीं, क्या हुआ है ?' बहुत अधिक व्याकुलता, अज्ञात अनिष्टकी आशंका और भी आकुल करती है। अब निद्रा किसे आनी थी। मौन पड़े रहकर किसी प्रकार रात्रि काट देनी थी। श्रीराम और उनके तीनों भाइयोंको, श्रीसीताकी तीनों बहिनोंको वह रात्रि कल्पके समान दीर्घ प्रतीत हुई। उसके पल भी युग लगे। केवल श्रीजानकी इस सबसे अनभिज्ञ निश्चिन्त सो रही थीं। उनके सुख-शान्तिकी यह अन्तिम रात्रि। उन्होंने समझा था कि स्वामी। दिनके आमोद-प्रमोदमें अधिक श्रान्त हो गये हैं।

प्रातःकाल हुआ। ब्राह्ममुहूर्तमें मंगल-वाद्य बजने लगे। बन्दियोंने यशोगान प्रारम्भ किया। हाय री सम्राट्की विवशता ! वे वाद्य-स्वर, वह स्तवन-शब्दावली विष-बुझे बाणके समान विद्ध कर रही थी अनन्तरो; किन्तु उसे वारित नहीं किया जा सकता था। शान्त सहन करना था उसे।

प्रातःकृत्य सम्पन्न किये सबने। अयोध्याके अभाग्यका वह सूर्योदय हुआ। गगनमें भले प्रकाश हुआ हो, अयोध्या सदाके लिए अन्धकार-मग्ना होने जा रही थी। सुमन्त्र रथ लेकर राजसदन उपस्थित हुए। लक्ष्मणने निवेदन किया जाकर श्रीमैथिलीको वनमें चलना है। श्रीरामने अपनेको आह्निक क्रियामें व्यस्त बना रखा था। अपने हृदयको ही विदा देनेका साहस कोई कहाँसे प्राप्त करे।

श्रीजनक-नन्दिनी अत्यन्त उत्साहमें थीं। उन्होंने सेविकाओंसे रथमें वल्कल, सुस्वादु कन्द, शुष्क फल (मेवे) कमण्डलु आदि मँगाये और आकर बैठ गयीं। मार्गमें मिलनेवाली ग्रामीण प्रजाके लिए भी उन्होंने वस्त्राभरण रखे रथमें। रथ अयोध्यासे निकला तो सबसे प्रथम श्रीराम अपने अन्तःपुरमें लौटे और सूने अन्तःपुरमें शय्यापर गिरकर मूर्छित हो गये।

'अम्बा कहाँ गयीं ?' संज्ञा लौटनेपर पवनपुत्रने ही पहिले पूछा।

'वे सदाके लिए चलीं गयीं।' श्रीरामने सबसे पहिले आञ्जनेयको ही सूचित किया—'उनके लंका-निवासको लेकर प्रजामें गर्हित अपवाद फैलने लगा था। मैंने ही तुम्हारी अम्बाको निर्वासित कर दिया है। वे सदाके लिए अयोध्यासे

विदा कर दी गयीं !'

'अम्बा निर्वासित कर दी गयीं ?' एक बार आञ्जनेयके नेत्र अंगार हो उठे । उन्होंने दाँत कटकटाये । पता नहीं, वे क्या करनेवाले थे । वे स्वयं भी कहाँ समझते थे इसे ।

'तुम क्रुद्ध हो ? तुम्हारा क्रोध उचित है ।' श्रीरामने कातर कण्ठसे कहा—'तुम्हारी अम्बाको निर्वासित करनेवाला यह राम तुम्हारे सम्मुख है । इसपर क्रोध करो । इसे दण्ड दो ।'

'स्वामी ! आप मुझे भी निर्वासित कर दें ।' नन्हें शिशुके समान हनुमान फूट-फूटकर चरणोंपर सिर रखकर रुदन करने लगे—'आपका मैं दास हूँ; किन्तु अम्बाहीन अयोध्यामें रहना मेरे लिए अत्यन्त कष्टप्रद है ।'

'हनुमान ! आज राम किसीसे अपने समीप रहनेका अनुरोध करने योग्य नहीं रह गया है ।' श्रीरघुनाथके कमलदल-लोचनोंसे प्रवाह फूट पड़ा था—'यह निर्दय, निर्मम निष्ठुर, अकृतज्ञ है । सीता जैसी परम सतीको इसने निर्वासित कर दिया तो कोई इसपर क्यों विश्वास करे । अब स्वजन बन्धु इसे त्याग दें तो इसे कुछ कहनेका कोई अधिकार नहीं रहा है ।'

'मेरे स्वामी ! मेरे आराध्य !' हनुमान जा नहीं सके; किन्तु अद्भुत अवस्था हो गयी उनकी । वे अयोध्याके राजसदनमें आते अब कातर हो उठते थे । यहाँ आहार ग्रहण कर नहीं पाते थे । केवल श्रीरामकी सेवा—वह भी अब राजसभामें अनुपस्थित रहते थे । सिंहासनपर अकेले श्रीरघुनाथके चरणोंके समीप बैठते जैसे हृदय फट जायेगा । अब उन्हें श्रीराघवेन्द्रने स्वयं अन्तःपुरके शयन-कक्षमें आ जानेकी अनुमति दी; किन्तु अम्बाकी स्मृति यह करने नहीं देती थी । सर्वथा मूक हो गये थे । अखण्ड राम-नाम-जप और तब आते थे अरण्यसे जब सम्राट् राजसभासे उठते थे । वे श्रीरामके दास थे; किन्तु अयोध्याके सम्राट्से जैसे उनका कोई परिचय नहीं रह गया था ।

भरत-शत्रुघ्न प्रातः स्नान-सन्धया करने सरयू-तट गये तो तब लौटे जब सुमन्त्र मूर्छितप्राय लक्ष्मणको रथमें लिये लौटे । दोनों भाई साहस कर सके थे श्रीमैथिलीको जाते समय सम्मुख जाकर प्रणाम करनेका; किन्तु रथ चला गया तो उसी दिशाकी ओर देखते बेसुध बैठे रह गये ।

अयोध्याके अन्तःपुरमें किसीने आहार-ग्रहण नहीं किया । सम्राट् अस्वस्थ हैं, यह समाचार मिला था । भरत-शत्रुघ्न सरयू तटसे लौटे नहीं थे और लक्ष्मण अत्यन्त कान्तिहीन गये थे । अन्तःपुरमें सब उपोषित, आकुल थे । महामन्त्री भी नहीं थे, अतः किसीसे कुछ पूछकर जाननेका भी मार्ग नहीं था ।

विदेह-नन्दिनी अत्यन्त उत्साहपूर्वक चली थीं । उनका दक्षिण नेत्र, स्फुरित हो रहा था; किन्तु उन्होंने अपशकुनोंपर ध्यान नहीं दिया । उनको लग रहा था कि स्वामीने स्नेहवश उनका कहना तत्काल स्वीकार कर लिया है । लक्ष्मण सुमन्त्रके समीप बैठे थे । रथमें बैठी वेदेहीने इसे अपने लाड़ले देवरका शील समझ लिया था ।

'मार्गमें जनपदके नागरिक स्वागत करते थे, जयघोष करते थे । और विप्र आशीर्वाद देते थे—'साम्राज्ञी सौभाग्यवती हों । पतिके अनुकूल पुत्र प्राप्त करें ।'

मार्गमें प्रजाजनोंको पारितोषिक प्रदान करते श्रीमैथिलीने ऐसे भी बहुत अधिक दान, उपहार घोषित किये जो अयोध्यासे भेजे जाने थे । लक्ष्मण चुपचाप स्वीकृतिमें सिर हिला देते थे । उनके मौन, अनुत्साहसे आकर्षित होकर श्रीसीताने पूछा—'लक्ष्मण ! तुम इतने अनुत्साहित तथा मौन क्यों हो आज ? मैं दिनभरको ही तो आयी हूँ ।

'अम्ब ! मेरा मन स्वस्थ नहीं है ।' लक्ष्मणने कातर प्रार्थनाकी—'आप अभी कुछ न पूछें । आर्यका आदेश है कि गंगातट पहुँचकर मैं आपसे निवदेन करूँ ।'

'तब रथ शीघ्र चलाओ !' श्रीजानकी कहाँ जानती थीं कि वे क्या सुननेकी शीघ्रता कर रही हैं ।

'अम्ब ! अयोध्याके सम्राट्ने कहा है ।' रथ जब नौकासे गंगा पार करने गया, श्रीजनक-नन्दिनी उतर गयीं रथसे पुलिनपर, तब लक्ष्मण उनके चरणोंके समीप घुटनोंके बल बैठकर हाथ जोड़कर रुदन करते बोले—'अयोध्याकी प्रजामें आपके लंकामें रहनेको लेकर अनेक अपवाद फैल रहे हैं । सम्राट् आपके सम्बन्धमें असन्दिग्ध हैं; किन्तु वे सम्राट् हैं । प्रजाके आदर्शच्युत

होनेकी आशंका हो गयी है, अतः वे आपको त्यागते हैं । उन्होंने कहा है कि आप कहीं भी जा सकती हैं ।'

इतना भी लक्ष्मण किसी प्रकार कह सके । नेत्रोंके आगे अन्धकार छा गया । वे संज्ञाशून्य हो गये ।

'सम्राट्का कल्याण हो !' धन्य आर्य-नारी ! यह निर्मम आदेश सुनकर भी उन भूमिजाके मुखसे यही निकला । वे न रुदन कर सकीं, न मूर्च्छित हुईं । जैसे समस्त स्नायु शून्य हो गये हों । जैसे अनन्त मरुस्थलमें वे एकाकिनी हो गयी हों । इस दुःख, शोककी पराकाष्ठाकी प्रथम प्रतिक्रिया साहसमें, वज्र-जैसी स्थिरतामें हुई । उन्होंने स्थिरकण्ठ कहा—'सम्राट्ने उचित किया है । मैं तो उनके चरणोंकी दासी हूँ—सदा दासी रहूँगी । प्रजाके परितोषके लिए, शास्त्रोंकी मर्यादा मिथ्यापवादसे भी मिटे नहीं, इसके लिए इस दासीकी बलि देनेका स्वत्व है उन्हें । यह उनका आदेश सिरसे स्वीकार करती है । इसका कुछ भी हो, प्रजा सन्तुष्ट रहे । प्रजाकी मर्यादा रक्षित रहे । सम्राट् स्वस्थ-प्रसन्न रहें ।'

लक्ष्मणने भूमिपर मस्तक रखा चेतना प्राप्त करके । सुमन्त्र अवसन्न बैठे थे रथपर । उनमें बोलने-हिलनेकी शक्ति नहीं रह गयी थी । लक्ष्मण उठ खड़े हुए—'मुझे आपको यहाँ उतारकर अविलम्ब लौटनेका आदेश है ।'

'आदेश ! आदेश ! आदेश !' सब आदेश सञ्चालित प्राणहीन पुतलोंके समान । हृदय या बुद्धि क्या कहती है, इसे सुननेका आदेश नहीं है ।

'लक्ष्मण ! तुम्हारा मंगल हो । दुःखी मत हो । मैं जानती हूँ कि तुम अवश हो । तुम सम्राट्के आदेश-परतन्त्र हो ।' श्रीजानकीने सान्त्वना देकर कहा—'मेरा एक अनुरोध है, मेरी ओर एक बार देखते जाओ कि मैं अन्तर्वत्नी हूँ । मुझमें जो तुम्हारे अग्रजका अंश है, उसे लेकर कोई अपवाद न उठे ।'

'अम्ब ! मैंने वनमें भी कभी आपके श्रीचरणोंके अतिरिक्त ऊपर दृष्टि नहीं उठायी है ।' लक्ष्मण मस्तक झुकाये क्रन्दन करते बोले—'आज जब आप अग्रजसे पृथक हैं, एकाकिनी हैं, मैं आपकी ओर देखनेका साहस नहीं कर सकूँगा । ऐसा आदेश आप मुझे मत दें ।'

'अच्छा लक्ष्मण ! तुम जाओ ।' अत्यन्त हताश स्वरमें श्रीवैदेहीने कहा—

'उनका वह आवेशजन्य साहस, स्थैर्य समाप्त हो रहा था—'सम्राट्से कहना, यह सीता भी उनकी एक विपन्न प्रजा है, इतना अवश्य स्मरण रखेंगे ।'

लक्ष्मण शीघ्रतापूर्वक मुड़े । समझ गये कि एक क्षणका भी विलम्ब करनेपर पुनः संज्ञाशून्य हो जायेंगे । किसी प्रकार रथमें बैठे । झकझोरकर सुमन्त्रको सचेत किया और रथ लौटानेका संकेत करके अचेत हो गये । सुमन्त्रने भी श्रीजानकीके मूर्च्छित होकर गिरनेका शब्द सुन लिया; किन्तु रथ लौटना ही था ।

आकुल अश्व बार-बार पीछे मुड़ना चाहते थे । सुमन्त्र स्वयं जैसे उन्मत्त हो गये थे । लक्ष्मण अचेत हैं, यह भी उन्हें पता नहीं था । वे कभी लक्ष्मणको, कभी अश्वोंको सम्बोधन करके प्रलाप कर रहे थे । इस उन्मादमें प्राणोंके समान पाले अश्वोंको निष्ठुरता पूर्वक हाँक रहे थे ।

'भाग्यहीन, अधम, अतिशय क्रूर सारथिके पल्ले पड़े हो, तुम्हें पता नहीं है ?' लाल-लाल नेत्र सुमन्त्र अट्टहास कर उठते थे—'दैवने इस बधिकको अयोध्याका महामन्त्री बना दिया है । यही था जिसे स्वर्गीय सम्राट्ने अपने प्राणप्रिय पुत्र तथा पुत्रवधूको वनमें पहुँचानेको भेजा और यही है जो आज अपनी पुत्रवधूके समान साम्राज्ञीको वनमें हिंस्र पशुओंके समीप छोड़ चला है ।'

'सुमन्त्र ! सृष्टिकर्त्ताने तुझे अयोध्याका अमंगल बनाकर उत्पन्न किया है ।' महामन्त्री उन्मादग्रस्त होकर कभी क्रन्दन करते थे, कभी अट्टहास—'तू इस समृद्ध साम्राज्यमें अग्नि लगानेके लिए उल्मुक-पिशाच बनाया गया है । अपना कर्त्तव्य पालन कर ! कर्त्तव्य !'

मार्ग-भर महामन्त्री प्रलाप करते रहे । अयोध्याके उपकण्ठमें रथको—विदारध्वजको आते देखकर भरत-शत्रुघ्न दौड़े थे । महामन्त्रीको उन्होंने ही उनके सदन पहुँचाया और लक्ष्मणको अन्तःपुरमें ले गये ।

●●●

अयोध्याकी अवस्था

अयोध्याकी अधिदेवताको ही जब वहाँसे निर्वासित कर दिया गया, क्या अवस्था कही जाय वहाँकी ! महर्षि वशिष्ठने सुना और बहुत देर तक जैसे-के-वैसे बैठे रह गये । उन्होंने इस सम्बन्धमें कभी किसीसे एक शब्द नहीं कहा; किन्तु जैसे वे शासनसे, प्रजासे सर्वथा उदासीन हो गये । राजसभा अथवा राजसदन बुलानेपर ही पधारनेका नियम कर लिया । पूछनेपर ही बोलते थे । वह भी अत्यल्प शब्द । प्रायः पूछनेवालेका समर्थन कर देते थे । अपनी ओरसे कुछ कहना, समझाना छोड़कर वे अन्तर्मुख रहने लगे ।

श्रीराम जैसे केवल सम्राट् रह गये । वह भी अनेक दिनों तक राजसभामें आये ही नहीं । दिनचर्याको भी अत्यन्त संक्षिप्त कर लिया । आवश्यक कार्य मात्र करते थे । मन्त्रियों, प्रजा-प्रतिनिधियोंके पूछनेपर भी अपनी सम्मति न देकर उनसे ही पूछते थे ।

महोत्सवमयी अयोध्या सुनसान पुरी बन गयी । जैसे सब केवल कर्तव्य कर्मके लिए जीवित हों । कार्य सब करते थे । प्रमत्त कोई नहीं था; किन्तु जैसे अन्तरका उत्साह, उल्लास जीवनसे विदा हो गया । भरतको राज्य-संचालन करना था । शत्रुघ्नको उनकी सहायता करनी थी । करना था, अतः सब कर रहे थे । जीना था, अतः जीते चले जा रहे थे ।

श्रीरामकी आन्तरिक व्यथासे भाई अनजान नहीं थे । आञ्जनेय अब सबसे अधिक दुःखी, सबसे अधिक उदासीन । वे श्रीरामकी सेवा करते थे, प्रमादहीन करते थे । किन्तु जैसे श्रीराघवेन्द्रको बोलकर व्यथित कोई नहीं करना चाहता था, हनुमानको भी कोई बोलकर व्यथित नहीं करता था । श्रीराम व्यथित होनेपर अत्यन्त खिन्न होकर एकान्त कक्षमें चले जाते थे; किन्तु हनुमान बहुत बार उग्र हो उठते थे । दाँत कटकटाते, मुट्ठियाँ बाँधते और फिर स्वयं अपने वक्षपर मुष्टि-प्रहार करने लगते । कहीं वनमें भाग जाते । किसीको पता नहीं था कि वे क्या खाते हैं । रात्रिमें कहाँ रहते हैं । बस 'राम, राम, राम' की रट । बोलनेपर भी कदाचित् ही उत्तर देते थे ।

लक्ष्मणको अपने अग्रजकी व्यथाने व्याकुल बना दिया था । अब वे अपने अन्तःपुरमें भी कम ही जाते थे । रात्रिमें भी श्रीरामके समीप ही सो रहते थे उनके चरणोंके समीप । सब राज्य-कार्य त्यागकर श्रीरघुनाथके साथ ही लगे रहते थे । सीता-हरणके पश्चात् श्रीरामकी व्याकुलता कम करनेके लिए, चित्रकूटमें स्वजनोंकी स्मृतिमें अग्रज व्याकुल न बनें, इसलिए जो उपाय अपनाया था उन्होंने, उसीका अवलम्बन इस समय भी ले रखा था । वे बार-बार प्रश्न करते थे । श्रीरामको उन्हें उत्तर देकर समझाना पड़ता था । लक्ष्मण केवल ज्ञान, वैराग्य, भक्ति ही नहीं पूछते थे । वे प्राचीन पुरुषोंका चरित भी पूछते थे । इस क्रममें श्रीरामको नृग, अम्बरीष, रन्तिदेवादिके सब पुण्य चरित सुनाने पड़े ।

अन्तःपुरकी अवस्था इससे अधिक शोचनीय थी । लक्ष्मणका समय अग्रजको सम्हालनेमें और श्रीरामका समय लक्ष्मणको समझानेमें व्यतीत हो जाता था । भरत-शत्रुघ्नको सम्पूर्ण शासनका प्रबन्ध देखना था । पुरी तथा राजसदनको भी सुव्यस्थित रखना था । लेकिन राजसदनकी नारियोंको— श्रीजानकीकी बहिनों तथा सखियोंको यह सुविधा भी प्राप्त नहीं थी ।

माण्डवी और श्रुतकीर्तिने अब राजसदनकी व्यवस्था अपना दायित्व मान लिया था । उर्मिलाकी अन्यमनस्कताने इन्हें व्यथित बनाया तो व्यस्त भी । सेवकों, सेविकाओंको कोई तो चाहिये जिससे आदेश प्राप्त करें । अतिथि, अभ्यागत आवेंगे ही । उनका उचित सत्कार होना चाहिये । ब्राह्मणोंको प्रतिदिन भोजन कराके सम्राट् श्रद्धा-सहित दान करनेमें संकोच करेंगे नहीं । अतः भरत सचिन्त रहते हैं । इससे राजभवनका भीतरी भार माण्डवीपर आ गया है । श्रुतकीर्ति उनकी विनम्र सहायिका हैं ।

श्रीजानकीकी सहेलियोंका, दासियोंका सबसे अधिक ध्यान रखा जाता है । उनका सम्मान किया जाता है । उनसे सेवा इसलिए ली जाती है कि सेवा न लेनेपर वे अधिक दुःखी होंगी । उनको अपनी उपेक्षा, अपने तिरस्कारका अनुभव न हो, इसका बहुत अधिक ध्यान माण्डवी-श्रुतकीर्ति रखती हैं । उनको अपनी सहेलियोंसे अधिक सत्कार देती हैं ।

'हाय जीजी ! विपत्ति अकेले तुम्हारे ललाटमें विधाताने लिखी ।'

उर्मिलाने सुनते ही सिर पीट लिया । वे मनस्विनी जैसे उसी पल हारकर थककर गिर गयीं । फिर उनमें ओज, तेज, स्फूर्ति आयी ही नहीं । वे कलाकी साक्षात् स्वरूपा; किन्तु वे सरस्वती मूक बन गयीं । उनकी वाणी, तूलिका फिर नहीं उठी । सेविकाने एक दिन धूलि झाड़नेका उपक्रम किया तो उन्होंने सब कुछ नगरके संगीत-शिक्षणालय तथा कला केन्द्रको भिजवा दिया । वहाँ वे उपकरण श्रद्धा-सम्मान-सहित रख लिये गये; किन्तु वहाँ भी उनका उपयोग नहीं था । अब कहाँ कोई शिक्षणार्थी आता था । अब संगीत, नृत्य, अभिनयके महोत्सव तो अयोध्यामें स्वप्न बन चुके थे । सम्राट्को उनके अनुजोंको जब उनमें रुचि नहीं थी, महामन्त्री तक उनके नामसे चिढ़ उठते थे । ऐसे आयोजनोंका उत्साह कहाँसे आवे ?'

'यह सब विस्तार किसलिए ? किसके लिए ?' अयोध्याके राजसदनका रसोईघर अब बहुत सामान्य पदार्थ प्रस्तुत करता था; किन्तु उर्मिलाको उसपर भी आपत्ति थी—'केवल अतिथि, अभ्यागत एवं विप्रोंके लिए रन्धन पर्याप्त है ।'

सचमुच राजकुलमें तो अब किसीके अन्तःपुरमें कोई वधू कुछ भी बनाती नहीं । किसके लिए बनावे ? किसीका उत्साह आस्वादनमें नहीं है । कोई नहीं देखता कि सम्मुख क्या परसा गया है । जैसे सबको कर्तव्य मानकर कार्योंमें लगे रहना है, वैसे ही केवल एक समय कुछ मुखमें डाल लेना है । यह भी कोई नहीं सूचित करता कि लवण, अम्ल, तिक्त या मधु व्यंजनमें अत्यधिक है, अल्प है या सर्वथा नहीं है ।

राजवधुएँ तीनों तपस्विनी हो गयी हैं । जब सम्राट् और उनके अनुजोंने ही प्रायः आभरण, अंगराग, माल्यका परित्याग कर दिया है, उनकी पत्नियोंको श्रृंगार प्रिय लग सकता है ? यह तो अच्छा है कि तीनों सगर्भा हैं । फलतः सहेलियाँ उनके केशोंमें बलात् तैल डालकर केश कुछ सम्हाल देती हैं । अन्यथा वे तो जटाधारिणी बननेको उद्यत है ।

'तुम सब इतना श्रम क्यों करती हो ? उद्यानकी यह सेवा, यह सज्जा किसके लिए ?' उर्मिलाको एक प्रश्न सर्वत्र सूझता है—'यह सब किसके लिए ?' वे उद्यानको अब पुष्पित, फलित देखकर भी दुःखी होती हैं—'जीजी वनमें चली गयीं ! सम्राट्को भी वन प्रिय है । वन बन जाने दो इस उपवनको ।'

'आर्यपुत्र उचित कर रहे हैं !' अभिन्न सहयोगिनी हैं उर्मिला अपने स्वामीकी। उनका कहना है—'सम्राट् स्वयं जीजीको निर्वासित करके अचेत हो गये हैं। अग्रजकी इस अवस्थामें सेवा-सम्हाल अत्यन्त आवश्यक है अनुजके लिए।'

'जीजीके लिए वन है और हमारे लिए ये राजसदनके भोग हैं !' उर्मिलाने अपने सदनसे सब सज्जा हटा दी है। वे अब शय्याके स्थानपर वेदिकाके ऊपर मृगचर्म बिछाकर शयन करने लगी हैं। आहारमें भी कन्द-मूल लेती हैं।'

'जीजी ! तुम यह सब न करो तो ?' श्रुतिकीर्ति अनेक बार चरण पकड़कर रो पड़ती हैं—'तुमने तो चौदह वर्ष पूरे राजसदनको सप्राण रखा था; किन्तु इस बार तुम्हीं शिथिल हो रही हो तो मैं कहाँसे साहस संग्रहीत करूँ ?'

'मैं तो तेरा संग्रहालय समृद्ध कर रही हूँ।' उर्मिला हँसकर भी हास्यमें उल्लास नहीं ला पातीं। वह स्वर्णप्रतिमा, महासेनापतिके शब्दोंमें साक्षात् महाशक्ति अब अत्यन्त शिथिल हो गयी हैं हैं। फीका हास्य उनका—'तू जानती है कि मुझे इन सबका अच्छा अभ्यास है। अब तू बच्ची नहीं रही। अन्तःपुर सम्हालनेका अनुभव है तुझे।'

अश्रु पीकर उठ जाना पड़ता है श्रुतकीर्तिको। अब वे बच्ची नहीं रहीं, अतः विधाताने भी उनके ही ऊपर सब विपत्तिका भार डाल दिया है। जब साम्राज्ञीसे सुताके समान स्नेह पानेका समय आया, दुर्भाग्यने दूर कर दिया उनको।

उर्मिलाको पुष्प, सुगन्धि, अंगराग—सबसे अरुचि हो गयी है। अनेक बार वे अपनी ही कलाकृतियोंको उठाकर फेंक देती हैं। अपने बनाये श्रीजानकीके चित्रके सम्मुख जा खड़ी होती हैं—'जीजी ! हम अभागिनी बहिनें तुम्हारी सेवाके योग्य नहीं हैं ? तुम परम सतीने हमें अपने पादस्पर्शकी अधिकारिणी नहीं समझा ?'

वृद्धाएँ कहती हैं—'सगर्भा वधुओंको दुःखी नहीं रहना चाहिये।'

'हाय ! जीजी अन्तर्वत्नी थीं। इतना अपार दुःख उनपर अकस्मात् आ पड़ा।'

उर्मिलाको अपने शरीरका स्मरण ही कम रहता है । वे अपनी आदर्शभूता, आराध्या जीजीके सम्बन्धमें ही सोचते-सोचते उन्मादिनी हुई जा रही हैं ।

महामन्त्री सुमन्त्र अब स्वस्थ नहीं रहते । कहते हैं—'बहुत वृद्ध हो गये । स्मृति साथ नहीं देती है ।'

प्रायः एकान्तमें रहते हैं । कभी रुदन-कभी अट्टहास । इन सम्मान्यने अपना कार्यभार प्रायः सब पुत्रपर छोड़ दिया है । अब राजसभामें इनके पुत्र ही पिताके दायित्वका निर्वाह करते हैं । श्रीराघवेन्द्र भी कभी ही, अत्यन्त आवश्यक होनेपर, अतिशय नम्रतापूर्वक सुमन्त्रका स्मरण करते हैं ।

विचारे विजयके दुःखपर कौन ध्यान दे । वह आनन्दमूर्त्ति विदूषक, सदा दूसरोंको हँसाने वाला—अब वह एकाग्रसेवी गम्भीर बन गया है । उसने दूसरे ही दिन सम्राट्से सेवा-निवृत्तिकी स्वीकृति ले ली । सम्राट्ने भी उसका आग्रह स्वीकार कर लिया ।

'सब जा रहे हैं । सबको जाना चाहिए । राम ऐसा नहीं है कि इसपर विश्वास करके कोई इसके समीप रह सके । इसने सीता जैसी परम सतीको निर्वासित कर दिया ।' श्रीराम बार-बार अपने आपसे कहते हैं । किसी सेवकको, किसी सखाको कार्य-निवृत्त होनेसे रोकते नहीं । जो अवकाश चाहता है, उसे स्वीकृति दे देते हैं—'पितृव्य सुमन्त्र तटस्थ हो गये । कुलगुरु नित्य निरपेक्ष हैं । विजय चला गया !'

श्रीरामकी व्यथा समझते हैं आञ्जनेय; किन्तु वे भी अपने अन्तरपर कहाँ पूरा नियन्त्रण रख पाते हैं । वे भी अपनेको अन्यमनस्क अथवा उत्तेजित होनेसे रोक नहीं पाते । केवल लक्ष्मण छायाके समान साथ लगे हैं । इन्होंने अग्रजमें अपने आपको उत्सर्ग कर रखा है ।

कोई गणना थी कि अयोध्यामें कितने अतिथि, स्वजन सम्बन्धी प्रतिदिन आते रहते थे । अब सबको अयोध्याका मार्ग एक साथ भूल गया । महाराज विदेह अब आ नहीं पाते । श्रीसीता अयोध्या नहीं रहीं—यह स्मृति ही उन्हें अस्तव्यस्त बना देती है । कोई नहीं आ पाता मिथिलासे और अयोध्या किसीको मिथिला अब आमन्त्रित भी किया जाता तो कोई जा पाता ?

विदर्भ, दक्षिण कौशल, कैकय—सभी सम्बन्धियोंकी एक ही दशा है। अब अयोध्या आनेका उत्साह कहीं किसीमें नहीं रहा है और अयोध्याके किसीको भी आमन्त्रित करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता।

देवता तक जैसे अयोध्यासे उपरत हो गये हैं। अब वे भी किसी अर्चनके आह्वानमें प्रत्यक्ष नहीं पधारते। नहीं पधारते आजकल देवर्षि और दूसरे सुरासुर-वन्दित ऋषि-मुनिगण। जो विद्वान, विरक्त महर्षि वशिष्ठके सान्निध्यमें बस गये हैं, वे अयोध्या त्यागकर चले नहीं गये, यह उनकी असीम अनुकम्पा; किन्तु उन्होंने भी अब नगरमें, राजसदनमें आना त्याग दिया है। उनमें-से कुछ मौनव्रती बन गये हैं। कुछ अत्यन्त उपरत होकर शिलाद या कणाद बन गये हैं।[1] कुछने क्षेत्र-सन्यास ग्रहण कर लिया है।

प्रजा ? प्रजा तो अद्भुत है। जनरुचि कभी एक-सी रहती नहीं। अधिक लोग दुःखी हैं अपने सम्राट्के उदासीन, दुःखी रहनेसे। दबे स्वरमें कहा जाने लगा है—'सम्राट्ने उचित नहीं किया। निरपराध, सर्वथा शुद्ध साम्राज्ञीका त्याग किसी प्रकार नहीं करना चाहिये था।'

'सम्राट्ने उचित किया।' यह कहनेवाले कम नहीं थे। ऐसे स्वार्थ दृष्टि सदासे समाजमें अधिक रहे हैं। उन्हें दूसरेके सुख-दुःखसे प्रयोजन नहीं था। उनकी दृष्टि केवल अपनेपर थी—'अब हमारी स्त्रियाँ, हमारी कुलवधुएं कोई दुस्साहस नहीं कर सकेंगी। कभी कोई दुर्घटना हो ही गयी, जैसे वैदेहीके साथ हुई तो वे समुद्धारकी आशा करनेके स्थानपर स्वयं उसी समय आत्मोत्सर्ग कर देंगी।'

'सम्राट्ने उचित निर्णय किया; किन्तु उसे करनेमें देर की।' यह कहने वाले पामरजन भी थे। अन्तमें—अश्वमेधके अन्तमें महर्षि वाल्मीकिके शपथ-ग्रहणपर भी इसी वर्गके विक्षोभके कारण कोई बोलनेका साहस नहीं कर सका था।

●●●

---

१. फसल कट जानेपर खेतोंमें गिरे दाने 'शिल' कहे जाते हैं। उन्हें चुनकर अपना निर्वाह करनेवाले शिलाद कहलाते हैं। अन्नमण्डी उठ जानेपर बिखरे दाने 'कण' हैं। उनपर जो जीविका चलाते हैं वे कणाद हैं। अमुक निश्चित सीमासे बाहर न जानेका व्रत क्षेत्र सन्यास है।

वैदेही वाल्मीकि आश्रममें

'आर्य ! आप धैर्य धारण करें ! अन्यथा आपकी अपकीर्त्ति होगी ।' लक्ष्मण बार—बार श्रीरामको समझाते हैं— 'लोग कहेंगे कि श्रीराम स्त्रीजित हैं । स्त्रीके लिए व्याकुल हैं । ऐसी स्त्रीके लिए   । वह न कहने योग्य अपवाद पुनः शक्ति प्राप्त कर लेगा । वैसे मैं आपकी मनोव्यथा समझता हूँ ।'

'वत्स ! तुम्हारे समान मनोनुकूल भाई संसारमें दुर्लभ हैं ।' श्रीरामने अपनेको किसी प्रकार स्थिर किया— 'सीताने क्या कहा ? उनका क्या हुआ, तुम्हें कुछ पता है ?'

'वे आर्या अम्बा पहिले यही समझती थीं कि मैं आपसे एक—दो दिनके वियोगसे ही दुःखी हूँ ।' मुझे मार्गमें समझाती थीं— 'सम्राट् मेरे भी तो प्रिय हैं, तुम इतने दुःखी क्यों ?' लक्ष्मणने रोते—रोते सुनाया— 'महामन्त्री रथको नौकापर रोके रहें । गंगाके दूसरे पार उतरकर मैंने आपका आदेश सुनाया । सुनकर दो क्षण अवसन्न रह गयीं । फिर बोलीं— 'वत्स ! तुम राजाज्ञा पालन करो । मैं आज ही सुरसरिको शरीर अर्पित कर देती; किन्तु मेरे भीतर उनका अंश पल रहा है, अतः मैं जीवित रहूँगी । गुरुजनोंको मेरा प्रणाम कहना । तुम्हारे अग्रज धर्ममें स्थित हैं । वे मुझे शुद्ध जानते हैं, मेरे लिए इतना पर्याप्त हैं । उनसे कहना— 'वे मेरे स्वामी हैं, मेरा कर्त्तव्य है कि जिससे उनका कलंक दूर हो, वह मैं करूँ । मेरी परम गति वही है । मेरा त्याग उचित था । वे प्रसन्न रहें । पति ही स्त्रीका देवता है, गुरु है । प्राण देकर भी मैं उनका हित करनेकी चेष्टा करती रहूँगी ।'

'आर्य ! उन पूज्याने कहा कि मैं देखता जाऊँ कि वे अन्तर्वत्नी हैं ।' लक्ष्मणने दोनों करोंसे मुख ढक लिया— 'मैं कैसे उनकी ओर दृष्टि उठा सकता था । किसी प्रकार उनके चरणोंमें प्रणाम करके मैं नौकापर आकर रथमें बैठ गया । वे भूमिपर गिरीं और छटपटाकर मूर्च्छित हो गयीं, यह देखकर भी वज्र—हृदय लक्ष्मण उनके समीप लौट नहीं सका । केवल बार—बार दृष्टि लौटती थी । मैंने देखा कि दूरसे उनकी यह अवस्था देखकर गंगातटपर स्नानार्थ

आये कुछ बालक ब्रह्मचारी दौड़ पड़े, वे वनकी ओर गये। कुछ क्षणोंके उपरान्त ही दौड़ते हुए महर्षि वाल्मीकि आये। उन्होंने आर्याके मुखपर जल डाला। वे सचेत हुईं। महर्षिने कुछ कहा। वे उठीं और महर्षिके पीछे—पीछे उनके आश्रमकी ओर चली गयीं।'

'मार्गमं मैंने उन्मत्तप्राय महामन्त्रीसे कहा— 'आर्या त्रिभुवनपावन हैं; किन्तु पहिले उन्हें रावण हरण कर ले गया और अब पतिने इन्हें त्यागनेका अतिशय नृशंस कर्म किया है।' लक्ष्मणके नेत्र लाल हो रहे थे। अजस्त्र अश्रुप्रवाह चल रहा था— 'आर्य क्षमा करें! इस क्षुद्र सेवककी समझमें इस कर्मका औचित्य कभी नहीं आवेगा। अपनी उस अर्द्धोन्मादावस्थामें ही महामन्त्रीने जो कहा, उसे सुनकर मैं अत्यन्त भयभीत हो गया हूँ।'

'वत्स! मैं वह सुननेको उत्सुक हूँ।' श्रीराघवेन्द्रने कहा— 'राम अब वज्रहृदय हो गया है। कुछ भी सुन सकता है।'

महामन्त्रीने कहा— ''लक्ष्मण! मुझे ऐसी स्थिति आवेगी, यह बहुत पहिलेसे ज्ञात था; किन्तु मैंने किसीसे कहा नहीं। महर्षि दुर्वासाने स्वर्गीय श्रीचक्रवर्ती महाराजसे कहा था— 'श्रीराम सीता, लक्ष्मण, भरत सबको त्याग देंगे।''

'आर्य!' लक्ष्मणने अत्यन्त आर्त होकर अग्रजके चरण पकड़ लिये।

'वत्स! यदि रामने ऐसा किया तो तुम्हें त्यागनेके अनन्तर वह अपना शरीर भी नहीं रख सकेगा। सीताका त्याग करके राम जीवित है; किन्तु तुम्हारा त्याग करके जीवन नहीं रख सकेगा।' अनुजको हृदयसे लगा कर राघवेन्द्र भी रो रहे थे— 'अन्ततः महर्षिने कोई कारण भी तो बतलाया होगा?'

'पितृव्य महामन्त्रीने कहा था कि महर्षि दुर्वासा उस समय कुलगुरुके आश्रममें चातुर्मास्य कर रहे थे, जब महामन्त्री हमारे स्वर्गीय पिताके साथ उनके दर्शन करने गये थे।' लक्ष्मणने सुनाया— 'पिताश्रीने उन सर्वज्ञसे पूछा था कि मेरे ज्येष्ठ पुत्र और वंश कैसा होगा? इसके उत्तरमें महर्षिने एक आख्यायिका सुना दी।'

'देवासुर—संग्राममें देवताओंने दैत्योंको पराजित करके उनका पीछा किया। प्राण—भयसे दैत्य भागे। वे महर्षि भृगुकी पत्नीकी शरणमें गये।

दयामयी ऋषि—पत्नीने उन्हें अभय दिया । इससे रुष्ट होकर विष्णुने भृगु पत्नीका अपने चक्रसे सिर काट दिया ।' दुर्वासाजीने सुनाया— 'पत्नी—वियोगसे क्रुद्ध भृगुने हरिको शाप दिया— "तुमने मुझे पत्नीसे वियुक्त किया है, मैं भी तुम्हें पत्नीसे वियुक्त करूँगा ।"

'महर्षि भृगुको शाप देकर पश्चात्ताप हुआ । अन्ततः विष्णुपत्नी रमा उनकी पुत्री ही हैं । यह शाप उन्होंने आवेशमें अपनी सुताको ही दे डाला ।' महर्षि दुर्वासाने बतलाया— 'क्रोधके आवेशमें कैसे विवेक लुप्त हो जाता है, इसका अनुभव मुझसे अधिक किसीको नहीं होगा; किन्तु स्वभाव दुस्त्यज है, यह भी मैं जानता हूँ । महर्षि भृगुने विष्णुका पूजन करके उन्हें प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया ।'

'मैं रामावतारमें पत्नी—वियोग स्वीकार कर लूँगा ।' श्रीहरिने यह आश्वासन दिया ।

'मुनिगण कहते हैं, आप साक्षात् श्रीहरि हैं ।' लक्ष्मणकी यह बात सुनकर श्रीराम गम्भीर हो गये ।

x x x x

'भगवन् ! अपने आश्रमके सममीप ही सुरसरि—तटपर एक तेजोमयी देवी अनाथाके समान रुदन करती थीं ।' महर्षि वाल्मीकिसे उनके आश्रमके ब्रह्मचारी बालकोंने दौड़ते हुए आकर उतावलीमें सुनाया— 'वे अभी—अभी छटपटाकर मूर्च्छित हो गयी हैं । एक कोई राजपुरुष नौकपर रथ लेकर आये थे । हम दूरसे देख रहे थे । वे उन्हें वहाँ छोड़कर चले गये । उनका रथ तो दूसरे तट पहुंच गया होगा ।'

महर्षि वाल्मीकि दौड़े । उनका उत्तरीय मृगचर्म वहीं गिर गया । पादुका पदोंमें आयी ही नहीं । ब्रह्मचारी बालक गुरुदेवकी अनुमतिके बिना साथ तो नहीं गये, किन्तु दूरसे देखते रहे ।

महर्षिने गंगाका जल लिया चुल्लूमें और कुछ मन्त्र पढ़कर श्रीजानकीके मुखपर छिड़का । भगवती सीताने पलकें खोलीं । महर्षिको देखकर उठ बैठीं । बैठे—बैठे ही भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम किया ।

'वत्से ! मैं जानता हूँ कि तुम दिवंगत चक्रवर्ती सम्राट् महाराज दशरकी

स्नुषा हो ।' महर्षि स्वयं समीप खड़े होकर वात्सल्यपूर्ण स्वरमें बोले— 'महाराज सीरध्वज जनक मेरे मित्र हैं । अतः तुम अपनेको पिताके समीप ही समझो । तुम्हें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं तपोबलसे सब जानता हूँ । तुम्हारी पवित्रतासे मैं अवगत हूँ । तुम निष्पापा हो । श्रीराम भी निर्दोष हैं । सम्राट्को— शासकको लोकादर्शकी रक्षाके लिए आत्मबलि भी देनी पड़ती है । यह भी जानता हूँ कि तुम इस परिस्थितिमें पितृगृह नहीं जा सकती हो, अन्यथा मैं तुम्हें साथ लेकर मिथिला चल सकता था । पुत्री ! तुम्हारा स्वागत । यहाँसे थोड़ी दूरीपर बहुत—सी तापसी रहती हैं । वे तुम्हें अपने मध्य पाकर प्रसन्न होंगी, तुम्हारा पालन वे प्रयत्नपूर्वक करेंगी । तुम चलकर उनका अर्घ्य स्वीकार करो । उनके समीप ही रहो ।'

'भगवन् ! अब इस अनाश्रयाके आप ही आश्रय हैं ।' श्रीजानकीने अञ्जलि बाँधकर मस्तक झुकाया और उठ खड़ी हुई— 'दुर्दैवने श्रीचरणोंमें मुझे डाल दिया है । आपकी आज्ञा स्वीकार है मुझे ।'

महर्षि वाल्मीकि मुड़ पड़े । वे मन्द पदोंसे चलने लगे; क्योंकि जानते थे कि श्रीवैदेही शीघ्र गतिसे नहीं चल सकेंगी । मस्तक झुकाये, पृथ्वीकी ओर देखती श्रीजानकी महर्षिके पीछे—पीछे चचल पड़ीं ।

महर्षि वाल्मीकिके अपने उटजसे थोड़ी दूरीपर तपस्विनियोंकी कुटिया थी । ब्रह्मचारी बालकोंने दौड़कर उन्हें समाचार दिया— 'सुरसरितटपर एक तेजोमयी देवी मूर्च्छिता पड़ी थीं । हमारे गुरुदेव उन्हें सचेत करके इधर ही लिये आ रहे हैं ।'

तपस्विनियोंमें अनेक उन ब्रह्मचारी बालकोंकी माताएँ थीं । महर्षि वाल्मीकि विपद्ग्रस्ता, सुपुत्र विधवा वृद्धा ब्राह्मणियोंको आश्रय दे देते थे । उन देवियोंको भी आश्रय दे देते थे, जिनके पति दीर्घकालके लिए प्रवासमें चले गये हों, अथवा तपस्यामें लगे हों । उनके पुत्र महर्षिके समीप रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे ।

सबकी सब तपस्विनियाँ एक साथ अपनी कुटीरोंसे निकल आयीं । उन्होंने आगे आकर श्रीजानकीका स्वागत किया । उनको आसन देकर अर्घ्य अर्पित किया । श्रीवैदेहीने उनको प्रणाम किया ।

'सीतासे कुछ पूछनेकी आवश्यकता नहीं है ।' महर्षिने तपस्विनियों से कहा— 'ये अब यहीं रहेंगी । सबको इनका सावधानीसे पालन करना चाहियें । इनको श्रम करने अथवा जल, कन्द—फल आदि लानेका कभी अवसर नहीं मिला । यह कार्य अन्तेवासी बालक कर दिया करेंगे । किसी आपत्तिग्रस्ता अत्यन्त दुःखियाकी सेवा कैसे करनी चाहिये, यह तुम सब जानती हो । सीताकी सेवा तुम्हारी साधनाका अंग होकर तुम्हें शीघ्र सफलता देगी ।'

महर्षिके आदेशसे तपस्विनियोंकी कुटियोंके समीप ही ब्रह्मचारियोंने पृथक थोड़ी बड़ी पर्णकुटी दूसरे ही दिन बना दी और उसमें शयनके लिए समतल वेदिका निर्मित कर दी ।

विचित्र विधान है विधाताका । सम्पूर्ण पृथ्वीके एकछत्र सम्राट्की राजमहिषी रथमें मुनियों, मुनि—पत्नियोंके लिए उत्तम, कोमल वल्कल, मृगचर्म, व्याघ्राम्बर, रुद्राक्ष—तुलसीकी मालाएँ, कमण्डलु आदि रथमें भरकर अयोध्यासे उत्साहपूर्वक चली थीं । वह सब सामग्री रथमें धरी रह गयी । अयोध्या लौट गयी । उन श्रीजानकीको तपस्विनियोंसे प्राप्त वल्कल, मृगचर्म, कुशासन, तृण चटाइयाँ, व्याघ्राम्बर, जल—कलश, कमण्डलु, तुम्बे, कन्द, मूल, फल प्रभृति कितने ही आवश्यक उपकरण संकोचपूर्वक स्वीकार करने पड़े ।

'वत्से ! तू इतना संकोच क्यों करती है ?' वृद्धा तापसाओंने मिलते ही अपना लिया— 'तू हमारी अपनी ही पुत्री है । तेरी जो अवस्था है, उसमें ये उपकरण तो अत्यल्प हैं तेरे लिए ।'

'अम्ब ! आप हमें वारित क्यों करती हैं ?' महर्षिके आश्रमके बालक ब्रह्मचारियोंने निश्चल श्रद्धासे कहा— 'गुरुदेव कहते हैं, आप साक्षात् महाशक्ति हैं । देवी हंसवाहिनी भी आपके अनुग्रहकी आकांक्षा करती हैं । आपकी सेवाका सौभाग्य हमें मिला तो आप वारित मत करें ।'

'वत्से ! तेरे सुकोमल अरुण कर और ये पंकज—पद श्रम करने योग्य हैं ?' तपस्विनोंमें जैसे वात्सल्य उमड़ पड़ा है— 'इस समय तू उस शिशुपर तो दया कर, जो तेरे भीतर है । तुझे तनिक भी श्रान्त नहीं होना चाहिये ।

बालकोंने वेदिकापर बहुत अधिक कुशास्तरण किया है । उसके ऊपर व्याघ्राम्बर, मृगचर्म अनेक डाले हैं । उनपर भी वल्कल बिछाया है । उनका

वश चले तो वे प्रतिदिन किसलय—तल्पपर कुसुम—दलोंका अस्तरण करें; किन्तु भगवती जानकी यह स्वीकार ही नहीं करती हैं ।

तपस्विनीके समीप जो उत्तम नूतन वल्कल, कलश, कमण्डलु, तूंबे, मृगचर्म थे, वे सब इस उटजमें आ गये । अनेक औषधियाँ, कन्दमूल, फल ब्रह्मचारी बालक प्रतिदिन दे जाते हैं । अस्वीकार करनेपर भी रख जाते हैं । कुटियाको सुरभित सुमनोंसे सजा दिया करते हैं । तापसियाँ अनेक औषधियाँ रख गयी हैं । अनेक प्रकारकी धूप जलाती रहती हैं यहाँ आकर ।

स्वयं महर्षि वाल्मीकि प्रातःकृत्योंके पश्चात् एवं सायंकाल पधारते हैं । सब व्यवस्था देखते हैं । पूछते हैं । कुछ—न—कुछ कन्द, मूल, फल प्रसाद दे जाते हैं कुछ आदेश दे जाते हैं— 'वत्से ! तू दुःखी रहेगी तो शिशुपर कुप्रभाव पड़ेगा । तुझे अपनेको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न रखना चाहिये । श्रम थोड़ा करना चाहिये । बालक तुलसी—पुष्प रोपित कर देंगे यहाँ । तू उनकी देख—भाल कर लिया कर । मृग शावकोंसे, मृगियोंसे तनिक विनोद कर लिया कर !'

महर्षिके आश्रममें तो मृग, केहरी, व्याघ्र सब एक साथ घूमते, बैठते, क्रीड़ा करते हैं । आश्रमके सबसे बड़े व्याघ्रने और महासिंहने पता नहीं क्यों अब श्रीजानकीके उटजके द्वारपर ही अपनी बैठक बना ली है । उनकी संगिनियाँ उनसे सटी बैठी रहती हैं । मृगयूथ उछलता उटजके भीतर तक आ जाता है । शशक जैसे छोटे प्राणी चाहे जब अंकमें आ बैठते हैं ।

महर्षिने अब अपने दैनिक कथा—सत्संगकी दिशा बदल दी है । अब वे तत्त्व—विवेचन, वैराग्य, योगकी व्याख्याके स्थानपर पुण्यश्लोक, प्रचण्ड—पौरुष प्राचीन सम्राटोंकी गाथाएँ सुनाया करते हैं । एकाग्रमना श्रीजानकी श्रवण करती हैं उन्हें ।

'भगवती' बालकोंने यह नाम दे दिया है । तापसियोंको भी यह सम्बोधन रुच गया है । श्रीजानकी कितना भी चाहें, उन्हें जल लाना तो दूर, कोई उटज—मार्जन भी नहीं करने देती । वे संकोचमयी, श्रद्धामयी; किन्तु यहाँ वे सबकी वात्सल्य—भाजना हैं । महर्षि तकको भी केवल प्रणाम ही कर पाती हैं । वे भी अपने उटजमें वल्कल तक बिछाने नहीं देते ।

●●●

पशु—पक्षियोंको भी न्याय

'अन्यमनस्कताके कारण आज चार दिन हो गये, मैंने राजकार्य देखा नहीं है । लक्ष्मण ! यह कर्त्तव्यच्युति मेरे लिए बड़े कष्टकी बात है । अतः प्रजा—प्रतिनिधिगणोंको, मन्त्रियोंको सूचना दो कि वे राज—सभामें उपस्थित हों । कुलगुरुसे भी प्रार्थना करो । नगरमें घोषणा कराओ कि कार्यार्थी उपस्थित हों ।' श्रीरघुनाथने अपना चित्त स्थिर कर लिया था । उनका स्वस्थ स्वर सुनकर लक्ष्मणको प्रसन्नता हुई— 'राजाके द्वारपर न्यायार्थियोंकी भीड़ लगे तो राजा पाप—भागी होता है । न्याय ठीक, अविलम्ब, सरल, सहज सुलभ होना चाहिये सबके लिये । उनके घरपर आवश्यक कार्य हो सकते हैं । प्रजाको न्याय प्राप्तिमें कठिनाई और विलम्ब नहीं होना चाहिये ।'

मध्याह्न—विश्रामसे पूर्व ही यह आदेश लक्ष्मणको मिल गया । आज श्रीरामने सम्राटोचित वेश धारण किया । मुकुट, वस्त्र, आभरण, अंगराग पुष्पमाल्य सब स्वीकार किया उन्होंने । आञ्जनेयकी उदासीनता, अरण्यप्रियताके कारण अब लक्ष्मणको ही अग्रजके समीप सदा उपस्थित रहना था ।

तृतीय प्रहरके प्रारम्भमें सम्राट् राजसभामें पधारे । प्रजा—प्रतिनिधि, मन्त्रीगण, विप्रगण प्रथम आकर अपने स्थानोंपर बैठ चुके थे । सम्राट्के आनेपर सबने अभ्युत्थान दिया । इसी समय महर्षि वशिष्ठ पधारे । सम्राट्ने उठकर उनकी पद—वन्दना की । महर्षिके आसन ग्रहण कर लेनेपर सम्राट् सिंहासनासीन हुए । अयोध्याके इतिहासका यह प्रथम दिन था, जब सम्राट् बिना साम्राज्ञीके अकेले राजसभामें सिंहासनपर बैठे थे ।

बड़ा अटपटा, बहुत असंगत लगता था सबको; किन्तु सम्राट् श्रीराम शान्त, गम्भीर थे । लक्ष्मणने राजाज्ञा पाकर बाहर पुकारकर देखा । आकर निवेदन किया— 'कोई कार्यार्थी राजसभाके द्वारपर नहीं है ।'

'आप सबमें—से किसीको कुछ कहना है ?' श्रीराघवेन्द्रने मन्त्रियों, प्रजा—प्रतिनिधियोंकी ओर देखा । सबने मस्तक झुका लिया । राजसभाकी बैठक समाप्त हो गयी । सम्राट् सिंहासनसे उठ गये । यह प्रतिदिनका क्रम

बन गया । अब कहाँ किसमें उत्साह था कि राजसभामें कार्यार्थी न होनेपर काव्य— रसास्वादन, कला— चर्चा अथवा विनोद— वार्ता होती । श्रीराघवेन्द्रने नगर— भ्रमणका उत्साह नहीं दिखलाया । अब वे सम्राट्— केवल सम्राट् थे और सम्राट्का कर्तव्य अप्रमत्त पालनेको प्रस्तुत थे; किन्तु केवल कर्तव्य—पालन, इससे अधिक कुछ नहीं ।

'लक्ष्मण ! कोई न्यायार्थी तो नहीं आया है ?' एक दिन इसी प्रकार श्रीरघुनाथने राजसभामें धर्मासनपर बैठते ही आदेश दिया ।

'कोई नहीं आया है देव !' लक्ष्मणने जाकर पुकारा और लौटकर सूचना दी ।

'एक बार और जाकर ध्यानसे देखो !' आज श्रीरामने अनुजसे कहा— 'मेरा मन कहता है, किसीको होना चाहिये ।'

'एक श्वान अवश्य बाहर खड़ा है ।' लक्ष्मणने लौटकर निवेदन किया— 'वह यहाँके लिए अपरिचित लगता है । मेरी ओर देखकर रोता था ।'

'लक्ष्मण ! शासकको प्राणिमात्रका रक्षक होना चाहिये । इस धर्मासनपर बैठकर मानवेतर प्राणियोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती । सबको समुचित न्याय देना शासकका कर्तव्य है ।' श्रीरामने आदेश दिया— 'उस श्वानको ले आओ ।'

'महाभाग ! तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?' लक्ष्मणने श्वानके समीप जाकर पूछा— 'तुम न्याय पाने आये हो, अतः आशा करनी चाहिये कि तुम हमारी भाषा समझते होगे । सारमेय ! स्वस्थ—मन कहीं अथवा संकेतसे ही सूचित करो ।'

'जो सर्वेश्वर हैं, शरणागतवत्सल हैं, मैं उपेक्षणीय पशु उनके सम्मुख ही अपनी प्रार्थना उपस्थित करना चाहता हूँ ।' श्वानने स्पष्ट मानव—भाषामें कहा— 'मैं अस्पृश्य पशु हूँ, अतः उन पतितपावनकी आज्ञाके बिना राजसभामें प्रवेश नहीं कर सकता ।'

'वह कोई हो, ले आओ !' श्रीराघवेन्द्रने सुनकर भाईको आदेश दिया— 'धर्मासनके सम्मुख आनेका सबको अधिकार है ।'

लक्ष्मणके द्वारा अनुमति पाकर श्वानने राजसभामें प्रवेश किया । उसने

अपने ढंगसे दोनों पैर आगे फैलाकर, उसपर सिर लम्बा रखकर अभिवादन किया। उसके मस्तकपर आघात लगा था। वहाँ रक्तसे सने केश स्पष्ट दीख रहे थे। श्रीराघवेन्द्रने मेघ—गम्भीर स्वरमें कहा— 'सारमेय ! यहाँ तुम सर्वथा निर्भय हो। अपनी बात स्पष्ट, निर्भीक कहो।'

'राजा ही सर्वपालक होता है। सभी प्राणी राजाके रक्ष्य होते हैं। आप धर्मके रक्षक हैं। सब प्रमाणोंके प्रमाण हैं। मैं मस्तक झुकाकर आपको प्रणाम करता हूँ।' श्वानने पहिलेके समान पुनः अपने ढंगसे अभिवादन करके अभियोग उपस्थित किया— 'भिक्षु सर्वार्थसिद्ध एक विप्रके घर रहता है। उसने मुझे निरपराध लगुडसे आहत किया है।'

'अभियुक्त उपस्थित किया जाय ?' सम्राट्ने आदेश दिया।

राजसेवक अविलम्ब दौड़ गये। थोड़े ही समयमें भिक्षु सर्वार्थसिद्ध सिंहासनके सम्मुख उपस्थित किया गया। सम्राट्ने शान्त स्वरमें कहा— 'आप साधनोन्मुख प्रतीत होते हैं। शास्त्रज्ञ लगते हैं। आप जानते हैं कि क्रोध, तप, यज्ञ, दान आदि पुण्योंका नाशक है। क्रोध पापका पिता है। आपने इस श्वानपर क्यों प्रहार किया ? इस प्राणीने आपका क्या अपराध किया था ?'

'मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझसे अपराध हुआ है।' भिक्षुने भी स्वस्थ कण्ठ, निर्भय कहा— 'मैंने क्रोधावेशमें ही इस पर प्रहार किया। इसका कोई अपराध नहीं है। यह मार्गमें खड़ा था। मैंने इससे हटनेको कहा, पर यह हटा नहीं। मैं इसे एक ओर त्यागकर जा सकता था; किन्तु मैं क्षुधातुर था। क्षुधा पीड़ित होनेसे मुझे रोष आया।'

'आपको भिक्षाके लिए भटकना पड़ता है ?' श्रीरामने चौंककर पूछा।'

'सम्राट् अन्यथा अर्थ न लें !' भिक्षुने नम्रतापूर्वक निवेदन किया— 'मैंने कुछ नियम कर रखा है। सरयू—तटके वानप्रस्थोंके उटजसे ही भिक्षा—ग्रहण करता हूँ। आज अपने अध्ययन, जपमें भिक्षाके समयका ध्यान नहीं रहा। भिक्षाका समय व्यतीत हो गया था। वानप्रस्थाश्रमी अपने अन्य नियमोंमें लग गये थे। मुझे भिक्षा मिली नहीं थी। दोष सब मेरा था; किन्तु क्षुधाने मुझे रुष्ट कर दिया था। मैंने इस निर्दोष पशुपर लगुड—प्रहार किया। मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे दण्ड दें। जब शासकसे अपराधका दण्ड प्राप्त हो

जाता है, तब वह दण्ड ही प्रायश्चित बन जाता है। तब नरकका भय नहीं रहता। अतः आप मुझे दण्ड देकर शुद्ध कर दें।'

'अभियुक्त अपना अपराध स्वीकार करता है; किन्तु— श्रीरामने मन्त्रियों, सभासदों तथा कुलगुरुकी ओर देखा— 'यह ब्राह्मण है। विवेकशील साधक है। इसे शरीर—दण्ड देनेकी अनुमति शास्त्र नहीं देता। इसे क्या दण्ड दिया जाना चाहिये ?'

'वेदज्ञ साधन—निष्ठसे अपराध भी हो जाय तो शासकको उसे शरीर—दण्ड नहीं देना चाहिये। यह स्मृतिकी आज्ञा है। जो स्वयं अन्यके घर रहता है, भिक्षा माँगकर उदरपूर्ति करता है, उस अपरिग्रहोंके पास धरा क्या है कि उसे कोई अर्थ—दण्ड देगा। अतः उसके लिए दण्ड—निर्णय समस्या तो थी ही।

'आप मुझसे प्रसन्न हैं, सन्तुष्ट हैं तो इसे कुलपति महन्त बना दें।' श्वानने स्वतः कहा— 'कौलक्चर (कालिञ्जर) देशमें कौलापत्य पद दे दें।'

'लक्ष्मण ! इन भिक्षु महानुभावको कौलक्चरका कौलापत्य बनाया गया।' सम्राट्ने आदेश किया— 'इनको गजशालासे गज चुन लेने दो। उपयुक्त वस्त्राभरण देकर उस गजपर इनकी नगर—शोभा—यात्रा निकालो और सम्मानके साथ सेवक साथ देकर इन्हें कौलक्चर भेज दो।'

भिक्षु अत्यन्त प्रसन्न हुआ। उसने आशीर्वाद दिया— 'सम्राट्का कल्याण हो।'

'आपने इसे दण्ड दिया या पुरस्कृत किया ?' एक मन्त्रीने पूछा। भिक्षु राजसभासे लक्ष्मणके साथ जा चुका था।

'मैंने केवल वह किया जो अभियोग उपस्थित करनेवालेने चाहा।' सम्राट्ने गम्भीर होकर कहा— 'यह दण्ड है या पुरस्कार, आप इन सारमेय महाभागसे ज्ञात करें।'

'यह दण्ड है सम्राट् !' श्वान फिर स्वतः बोला— 'मैं इस शरीरसे पूर्व वहींका कुलपति था। सबको खिलाकर खाता था। देव—सम्पत्तिकी सुरक्षा करता था। अत्यन्त सावधानी रखता था। लेकिन एक दिन देवार्चनके लिए शीत—कालमें हाथसे घृत निकालने लगा। वह घृत मेरे नखोंमें रह गया।

मैंने उष्ण भोजन किया तो वह आहारमें मिलकर उदरमें चला गया । इतनी सावधानी रखनेपर भी मुझे श्वान होना पड़ा । यह तो प्रमादी है । देवधन, गोधनका सेवन नरक देनेवाला है । इसका प्रमाद ही अब इसे नरकगामी बनावेगा ।'

x x x x

'सम्राट् न्याय करें ! सरिता—तटपर स्थित महावट मेरा है ।' ऐसे ही एक दिन राजसभामें एक गीध उपस्थित हो गया । वह बिना अनुमति उड़ता आया और सिंहासनके सम्मुख सबके मध्य निर्भीक बैठकर मनुष्य भाषामें बोला ।

'वह वृक्ष मेरा है सम्राट् !' गृद्धके पीछे ही उड़ता एक असाधारण बड़ा उलूक आया । वह भी गीधके बराबर बैठ गया भूमिपर । मनुष्य भाषामें ही बोला ।

'आप दोनोंमें उस वृक्षपर कौन कितने वर्षोंसे रहते हैं, यह सूचित करनेका कष्ट करें ।' सम्राट्ने दोनोंकी ओर देखकर कहा ।

'मैं बहुत ऊँचे उड़ सकता हूँ । सम्पूर्ण पृथ्वी देख सकता हूँ ।' गीधने कहा— 'मैं जब उस वृक्षपर सर्वप्रथम बैठा था, तब प्रथम मनु स्वायम्भुवके पुत्र पृथ्वीपर बसे थे । वे ब्रह्मलोकसे आये थे । मनुकी सन्तानके साथ ही मेरी उत्पत्ति हुई है ।'

'यह तथ्य है कि मैं दिनमें देख नहीं सकता हूँ; किन्तु रात्रिमें निर्बाध उड़ता हूँ । रात्रिके अन्धकारमें समस्त पृथ्वी मैंने देखी है । उस समय गुहाएँ ही थीं, उन्हें भी मैंने देखा है ।' उलूकने कहा— 'मैंने जब उस वृक्ष—कोटरमें प्रथम अपना नीड बनाया, पृथ्वीपर केवल वृक्ष थे । कुछ सरीसृप, क्षुद्र कीट, तितलियाँ और हम अण्डज पक्षी थे । उस समय तक द्विपाद मनुष्य तो क्या चतुष्पाद भी उत्पन्न नहीं हुए थे । जलचरोंके सम्बन्धमें मैं नहीं जानता ।'

'लक्ष्मण ! वह वृक्ष इन लक्ष्मी—वाहनका है । सेवक भेजकर इनके लिए सुरक्षित कर दिया जाय ।' सम्राट्ने निर्णय दिया— 'अन्यके स्वत्वपर अधिकार करनेकी चेष्टाका दण्ड गृद्धको प्राप्त होना चाहिये ।'

'राम ! गीधको मत मारो । यह तो पहिलेसे मृतप्राय है ।' अचानक

आकाशवाणी हुई— 'यह पूर्वकल्पमें कुबेरके समान धनाढ्य ब्रह्मदत्त नामक विप्र था। महर्षि गौतम इसके अतिथि हुए। इसने अहंकार और प्रमादवश उनको भोजनमें माँस परसा। ऋषिने शाप दे दिया— 'गृद्ध हो जा आमिषाशी!' इसे आगामी कल्पमें कुबेर होना है।'

'मैंने जानबूझकर आपके दर्शनकी आकांक्षासे उस उलूकसे विवाद किया।' गीध बोला— 'समझता था कि आप न्याय करेंगे। मुझे प्राणदण्ड प्राप्त होगा। आप अनन्त दयार्णवसे अनुरोध करूँगा कि आपकी उपस्थितिमें मुझे दण्ड दिया जाय तो आप उसे स्वीकार कर लेंगे। अब आकाशवाणीने मुझे इस सौभाग्यसे भी वञ्चित कर दिया।'

'आपको देखकर मुझे पितृव्य जटायुका स्मरण हो आया था। मैं उनके ऋणसे कभी उऋण नहीं हो सकता।' श्रीरामने भरे कण्ठसे कहा— 'आकाशवाणीने मुझपर अनुग्रह किया। आपको प्राण—दण्ड देनेका साहस मैं नहीं कर सकता था। आपको दण्ड दिया जाय, यह निर्णय करके भी मैं सचिन्त था कि आपको कौन—सा दण्ड दिया जाय। आप कहाँ निर्वासित होना स्वीकार करेंगे।'

'सत्य ही श्रुति—संत आपको करुणासिन्धु कहते हैं।' गीधने अत्यन्त आदरपूर्वक कहा— 'आप अपने कर—स्पर्शसे मेरा उद्धार कर दें।' यद्यपि मैं इसका अधिकारी नहीं हूँ। आमिशाषी अपवित्र पक्षी हूँ। अपराधी हूँ; किन्तु अब आपके सम्मुख आ गया हूँ।'

श्रीराम सिंहासनसे उठे। वे शान्त, स्थिर पदोंसे गृद्धके समीप आये। अपना दक्षिण कर बढ़ाकर उन्होंने गीधके पृष्ठदेशका स्पर्श किया। सहसा एक अद्भुत ज्योति प्रकट हुई। गीधका शरीर अदृश्य हो गया। जैसे वह गृद्ध—देह धुलकर ज्योति बन गया हो। वह प्रकाश पुनः पुञ्जीभूत हुआ और एक दिव्य पुरुषाकारमें प्रकट हुआ। उस पुरुषने श्रीरामका स्तवन किया। उनकी प्रदक्षिणा की। अन्तमें अन्तरिक्षमें ऊपर चला गया।

'अब गृद्ध—स्पर्शसे शुद्ध होनेके लिए स्नान करना आवश्यक है।' स्वयं श्रीरामने कहा। वे सिंहासनपर नहीं गये। राजसभा विसर्जित हो गयी उस दिन, उसी समय।

●●●

शत्रुघ्नकी लवण-वधार्थ यात्रा

'आप सब अनुग्रह करके अयोध्या आये हैं। आत्माराम, आप्तकाम महात्मागणोंका अपना तो कोई प्रयोजन होता नहीं। वे हम जैसे प्रपञ्चासक्त पुरुषोंके कल्याणार्थ ही पर्यटन करते हैं।' ग्रीष्मकालमें एक दिन बहुतसे तपस्वी ऋषि-मुनि अयोध्या आये। श्रीरघुनाथने उनका स्वागत किया। उनकी अर्ध्य, पाद्यादिसे पूजा की आसन देकर। अर्चाके अनन्तर अञ्जलि बाँधकर बोले— 'यह राज्य, मेरा जीवन और सब वैभव महात्माओंकी सेवामें ही अर्पित है। आप सब आज्ञा करें कि मैं आप सबकी क्या सेवा करूँ?'

'हम सब भयाक्रान्त आपकी शरण आये हैं।' उन आगत तापसोंने कहा—'अशरणोंकी आप ही शरण हो। प्राणीको तभी तक भव-भय भी रहता है, जब तक वह आप अभयपदके पादपद्मोंकी शरण नहीं लेता।'

'आप सबको कौन भय दे रहा है?' श्रीरामके स्वरमें अत्यन्त गम्भीरता आ गयी।

'सतयुगमें लीला-का पुत्र मधु हुआ। यद्यपि वह दैत्य था; किन्तु ब्राह्मणोंका भक्त था।' आगत ऋषियोंमें-से भार्गवने कहा—'मधुकी भक्ति तथा तपसे प्रसन्न होकर भगवान शिवने उसे दर्शन दिया।'

आशुतोष वृषभध्वजने उसे अपना ज्योतिर्मय त्रिशूल प्रदान करके वरदान दिया—'जब तक यह त्रिशूल तुम्हारे हाथमें रहेगा, तुम सबसे अपराजित रहोगे।'

'उस धर्मात्मा दैत्यने मधुपुरी बसायी। अयोध्याके समान ही सप्तपुरियोंमें प्रसिद्ध मोक्षदायिनी पुरी मधुराका उसके द्वारा पुनरुद्धार हो गया।' भार्गवने कहा—'भगवान शंकरके अन्तर्हित होनेपर वह धर्मपूर्वक शासन करता रहा। लेकिन उसकी पत्नी अनृलाके गर्भसे उसे जो पुत्र प्राप्त हुआ लवण, वह जन्मसे ही दुर्विनीत एवं मदमत्त निकला। जब पुत्रको किसी प्रकार मधु सत्पथपर नहीं ला सका, तब दुःखी होकर मधुपुरी त्यागकर वरुणालय चला गया।'

'पिताके चले जानेसे लवणासुरपर रहा-सहा अंकुश भी समाप्त हो गया ।' महर्षि भार्गवने कहा—'भगवान शंकरने जो त्रिशूल मधुको दिया था, वह लवणको प्राप्त हो गया । इससे वह और भी उद्धत हो गया । सुरालय नष्ट कर दिये उसने, विप्रोंको उत्पीड़ित करके भगा दिया । सभी सात्त्विकजनोंको बड़ा कष्ट देता है । उस मोक्षदापुरीको उसने यमपुरी बना रखा है ।'

'वह रहता कहाँ है ?' श्रीरामने पूछा—'उसका आहार क्या है ?'

'रहता वह मधुवनमें ही है ।' ऋषियोंने कहा—'यों तो वह प्राणि-भक्षी है; किन्तु तापस-भक्षण उसका प्रिय आहार है ।'

'इस सुर-साधु-संकटको समाप्त करना आवश्यक है । श्रीराघवेन्द्र गम्भीर हो गये । स्वाभाविक तो यह था कि स्वयं उस तापस-भक्षी दैत्यको मारने जाते; किन्तु श्रीजानकीके त्यागके पश्चात् वे बहुत शोक-सन्तप्त, व्यवहारसे उपरत हो रहे थे । उन्होंने भाइयोंकी ओर देखकर पूछा—'इस असुरके वधको कौन उद्यत है ?'

'मैं इसे मार दूँगा ।' भरतने उठकर कहा—'यह सेवा मेरा भाग है ।'

'आपने आरम्भसे अयोध्याका पालन किया है ।' शत्रुघ्नने हाथ जोड़कर खड़े होकर प्रार्थनाकी—'आर्य ! आप आजकल सम्राट्की जो मनःस्थिति है, उससे अवगत हैं । इस समय इनका त्याग मत करें । राज्यके सञ्चालनका आपको अनुभव है । यह सेवा मैं सरलतापूर्वक सम्पन्न कर दूँगा ।'

'ठीक है, यह कार्य कुमारको ही सम्पन्न करना चाहिये ।' श्रीरामने स्वीकृति घोषित करके लक्ष्मणको संकेतसे समीप बुलाकर कुछ कहा । लक्ष्मण राजसदन गये । शीघ्र तिलक करनेकी सामग्री ले आये ।

'कुमार ! उत्तर मत देना । आज्ञा पालन करो । अब श्रीरामने शत्रुघ्नकुमारको समीप बुलाया—'मैं तुम्हें मधुपुरीके राज्यपर अभिषिक्त कर रहा हूँ । इस राज्याभिषेकको स्वीकार करो । तुम्हें अब मधुपुरी रहकर असुरके अत्याचारसे सन्त्रस्त प्रजाको आश्वस्त करना है । उसे सुव्यवस्था प्रदान करना है ।'

'यह तो अधर्म है कि बड़ोंके रहते छोटेका अभिषेक हो; किन्तु मैं आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता ।' बहुत लज्जित हुए शत्रुघ्न । बहुत मन्द

स्वरमें बोले—'अपराध मेरा ही है कि मैंने बड़ोंके सम्मुख मौन बने रहनेका अपना व्रत भंग किया । आर्य भरतके स्वीकार करनेपर भी बीचमें बोल पड़ा । यह निर्वासन इसीका दण्ड है ।'

'कुमार ! यह मेरी इच्छा है ।' श्रीरामने स्नेहपूर्वक समझाया—'मधुपुरी अयोध्याके समान ही मोक्षदायिनी पुरी है । उस नित्यधामको लवणासुरने उत्पातका केन्द्र बना रखा है । असुरको मार देना ही पर्याप्त नहीं है । उसके अनुयायी वर्गको तो वहाँ प्रतिष्ठित किया नहीं जा सकता । वहाँके उत्पीडनसे पलायित विप्रोंको, प्रजाको बुलाकर बसाना है । उच्छिन्न, ध्वस्त देव-मन्दिरोंकी पुनः प्रतिष्ठा करनी है । वहाँ एक श्रमशील, उत्साही, प्रजासे सहानुभूति रखनेवाला, श्रद्धालु शासक आवश्यक है ।'

महर्षि वशिष्ठने विप्रोंके साथ मन्त्र-पाठ करते हुए सविधि शत्रुघ्नकुमारका अभिषेक किया । श्रीराघवेन्द्रने उनके मस्तकपर रत्न-मुकुट रखकर राज्य-तिलक किया ।

'कुमार सावधान ! तुम्हें इस प्रकार यात्रा करनी है कि इस अभियानका पता लवणासुरको पहिलेसे नहीं लगना चाहिये ।' श्रीरामने अनुजको समझाया—'भगवान शंकरका त्रिशूल अमोघ है । वैसे भी त्रिपुरारिके शस्त्रकी महिमा सुरक्षित रहनी चाहिये । लवण अवश्य उसे अपने सदनमें सम्मानपूर्वक रखकर उसकी नित्य पूजा करता होगा । जब वह त्रिशूलको छोड़कर कहीं गया हो, तब नगर घेर लो और उसे बिना त्रिशूलके युद्ध करनेपर विवश करके मार दो ।'

'वहाँ न धन है, न सेवक है, न स्त्रियाँ हैं । वहाँ तुमको सर्वथा नवीन निर्माण करना है । लवण-वधके पश्चात् जो प्रजा बचेगी या अन्यत्रसे आवेगी, वह अत्यन्त विपन्न होगी । उनमें अनेक पत्नी-विरहित होंगे । उनको यदि वे स्वीकार करें, विवाहित करना होगा । उन्हें भवन बनवाकर देने होंगे । सम्पत्ति और पशुधन प्रदान करना होगा ।' श्रीरघुनाथने विस्तृत निर्देश किया—'तुम पर्याप्त बड़ी सेना साथ ले जाओ । गज, अश्व, रथ, पदाति सभी अधिक होने चाहिये । तुम्हारी पत्नीके साथ सेविकाएँ तथा अन्य कुमारिकाएँ जायेंगी । सेवकोंका समुदाय, गोधन, स्वर्ण, अन्न सब साथ भेजनेकी व्यवस्था भरत करेंगे ।

इसमें संकोच मत करो। यह समझकर मत यात्रा करो कि केवल असुर-संहार करना है। तुम्हें नवीन राज्य स्थापित करना है। निर्जनमें नगर बसा लेनेकी अपेक्षा अत्याचारी असुरके उत्पातसे सन्त्रस्त, विध्वस्त स्थानमें सुव्यवस्थित राज्यकी स्थापना अधिक कठिन होती है।'

आगत ऋषि-मुनियोंको आश्वासन प्राप्त हो गया। उन्होंने शत्रुघ्नका मार्ग-दर्शन स्वीकार कर लिया। लवणासुरको पहिलेसे सचेत नहीं करना था; अतः शत्रुघ्नके साथ जाने वाली सेना, सामग्री, सेवकादिके अनेक दल बनाये गये। इन सब दलोंको पृथक मार्गोंसे यात्रा करना था। इनमें-से अनेक दलोंको पर्याप्त घूमकर पहुँचना था।

सैनिकोंका एक भाग सामग्री, स्त्रियों और सेवकोंको सुरक्षाके लिए सुनिश्चित कर दिया गया। इस भागकी अनेक सैनिक टुकड़ियाँ बना दी गयीं। इनको सामग्री, सम्पत्ति, सेवक, स्त्रियोंके भी कई भाग करके उन्हें विभिन्न पथोंसे अपने संरक्षणमें ले जाना था। इन्हें आदेश दिया गया था कि ये लोग अपनेको तीर्थयात्री प्रकट करेंगे। मन्द गतिसे चलेंगे। लवणासुरके मारे जानेका समाचार मिल जानेपर मधुपुरी पहुँचेंगे।

मधुपुरी सप्तपुरियोंमें-से एक मोक्षदायिनी पुरी है। जो वहाँ जा रहे हैं, वे तीर्थयात्रा नहीं कर रहे हैं ? उनको युद्धमें तो सम्मिलित नहीं होना था। अतः उन्हें कहाँ असत्यका आश्रय लेना था। उन दिनों यात्रियोंके दल चलते थे। उनकी सुरक्षाके लिए साथ सैनिक चलते थे पृथ्वीके सम्राट्के स्वजन तीर्थयात्रा करेंगे तो उनके साथ गज, अश्व, रथ, गायें, अपार अन्न, धन तो जायेगा ही। 'तीर्थयात्री हैं' इतना उत्तर पर्याप्त होता है किसीके मार्गमें पूछनेपर। तीर्थयात्रीका कोई निश्चित लक्ष्य तो है नहीं। वह तो तीर्थ-भ्रमण करने निकला है। देवभूमि भारतमें तो कोई दिशा नहीं, जिस ओर लोक-प्रसिद्ध तीर्थ न हों।

तीर्थयात्रीके समीप ध्वज होते हैं, वाद्य होते हैं। भजन-कीर्तन करते यात्री-दल चलता है। सम्पन्न यात्री मार्गमें किसीका आतिथ्य स्वीकार नहीं करते। जलकी सुविधा देखकर जनपदोंसे दूर ही शिविर-स्थापन करते हैं। मार्गमें पड़नेवाली पवित्र सरिताओंमें स्नान, देवस्थानोंके दर्शन, विप्रों तथा तीर्थ

पुरोहितोंका दान-मानसे सत्कार करता तीर्थयात्री-दल चलता है । अयोध्याके इस यात्री दलको भी यह सब करना था ।

सेनाका दूसरा भाग जो युद्धके लिए निश्चित किया गया, उसमें शत्रुघ्नकुमारने जो पदाति रखे, उनको भी आदेश था कि वे मार्ग-श्रमसे श्रान्त न हों । उन्हें यात्रा रथोंपर बैठकर करनी थी । इस दलकी भी टुकड़ियाँ बना दी गयीं । यह दल भी यात्री-दलोंके साथ सुरक्षा-सैनिकके रूपमें ही अयोध्यासे चला । केवल इसे यह विशेष आदेश था कि जब यात्री दल मधुपुरीसे दूर रुक जायँ, ये सैनिक अपने वाहनोंसे शीघ्र मधुपुरीके समीप पहुँच जायँ, किन्तु अपनेको अरण्यमें छिपाये केवल रात्रिमें यात्रा करें । मुख्य यात्री-दलसे पृथक होनेके पश्चात् सैनिक-दलोंको किसी भी जनपदसे दूर रहना चाहिये ।

सामान्य यात्री दलसे इतनी दूरीपर पृथक होना था कि एक ही रात्रिमें मधुपुरीके पार्श्व तक तीव्रगामी वाहनोंसे पहुँचा जा सके । मधुपुरीके चारों ओर सघन अरण्य हो गया था । लवणासुरने सुदृढ़ प्राकारसे परिवेष्टित अपने पिताकी इस पुरीको भी प्रायः निर्जन बना दिया था । वहाँ उसके अनुचर असुर ही अवशिष्ट थे । उसके आतंकके कारण दूर-दूरके जनपदोंके लोग उस ओर जानेका साहस ही नहीं करते थे । अतः मधुपुरीके चारों ओरका अरण्य मधुवन निर्जन था । सैनिकोंका अभियान उसमें गुप्त रह सकता था । उसके प्रकट होनेकी कोई आशंका नहीं थी ।

यह भी स्वाभाविक था कि मधुवनके आतंकग्रस्त क्षेत्रके समीप पहुँचकर यात्री दल विश्राम करेंगे । आगेकी यात्राकी सावधानीसे योजना बनावेंगे । वे कहीं-न-कहींसे, किसी-न-किसी ओरसे घूमकर ही जायेंगे; किन्तु बहुत अधिक घूमनेसे मार्ग बढ़ता देखकर हिचकेंगे । पता लगानेका स्वयं प्रयत्न करेंगे । उनके कुछ सैनिक मधुवनमें कुछ दूरी तक भीतर अवश्य जायेंगे । मधुवनके सीमान्त जनपदोंके लोगोंको तीर्थयात्री-दलोंकी इन प्रवृत्तियोंका ऐसा परिचय हो गया था कि वे सामान्य सूचना देने, सावधान कर दनेके अतिरिक्त अधिक रुचि नहीं लिया करते थे । यात्री दलके रुकने पर उनको कुछ विक्रयका अवसर ही मिलता था । अतः यात्री-दल अधिक रुकें, इसमें उनका लाभ था ।

शत्रुघ्नकुमारने अपने साथ बहुत थोड़े सैनिक लिये थे । वे निश्चित

स्थान समय निश्चित पहुँच जाने वाले थे । मधुपुरीके चारों ओर अरण्यमें छिपे उनके सैनिक उनके आगमन और संकेतकी प्रतीक्षा करेंगे तथा लवणासुरकी गतिविधका ध्यान रखेंगे । वह कब क्या करता है, पुरीसे कब बाहर जाता है, यह विवरण उन्हें रखना था । वह कब लौटता है, कैसे लौटता है, किस दशामें लौटता है, यह सब सूचनाएँ पहुँचते ही शत्रुघ्नको देनी थी ।

शत्रुघ्नकुमारको प्रजाके लोग पहिचानते थे । अतः उन्हें जनपदोंसे दूर रहते तपोवनों, अरण्योंके मार्गसे ही आगे बढ़ना था । उनको यात्री-दलों अथवा मधुवनमें प्रविष्ट होने वाले सैनिककोंसे दो दिन पीछे पहुँचना था ।

युद्ध-यात्राके समान यात्रा नहीं थी । अतः रणवाद्य मूक बने रहे । शंख, श्रृंगादि मंगलवाद्य बजे यात्रा प्रारम्भ करते समय । ये वाद्य तो यात्री-दल अपने ठहरनेके स्थानोंपर पहुँचते तथा प्रस्थान करते समय बजाता ही है ।

प्रत्येक दलके साथ आगत ऋषि-मुनियोंमें-से कुछ तपस्वी थे । शत्रुघ्नके साथ सपरिवार विद्वान ब्राह्मण भेजे गये थे; क्योंकि नवीन पुरीकी— राज्यकी स्थापना अभीष्ट थी । ब्राह्मणोंके बिना तो यह सम्भव नहीं था । मधुपुरीसे पलायित विप्र तो पीछे क्रमशः आने वाले थे ।

श्रीरामने, भरतने, लक्ष्मणने, कुलगुरुने और महामन्त्री सुमन्त्रने नगर-सीमा तक जाकर शत्रुघ्नको विदा किया । सुमन्त्रने अपने पुत्रको शत्रुघ्नके साथ कर दिया था । बड़ोंको प्रणाम करके, उनका आशीर्वाद लेकर यह दल विदा हुआ । अयोध्यासे आगे जाकर उसे अनेक दलोंमें विभक्त होना था ।

●●●

लव-कुश-जन्म

'आपका मंगल हो । भगवतीने युग्म पुत्ररत्न प्राप्त किये ।' एक तापसीने महर्षि वाल्मीकिको समाचार दिया । महर्षि आज प्रातःसे इस समाचारकी प्रतीक्षा कर रहे थे । बार-बार श्वांसकी गति देखते थे और ग्रह-स्थितिपर विचार करते थे ।

तपस्विनियोंने भी वैदेहीकी कुटियाको ही सूतिकागार बना दिया था । उसमें औषधियोंकी धूनी दी जा रही थी । शस्त्र-तलवार लटकायी गयी थी महर्षिकी शिक्षण-शालासे लाकर । तपस्विनियाँ ही वहाँ धात्री थीं, स्वजन थीं, सेविकाएँ थीं और सहायिकाएँ थीं । वे सहज वीतराग; किन्तु सीतापर उनका अपार वात्सल्य था । उन्होंने वैदेहीके पुत्र-जन्मपर शंख-ध्वनिकी और श्रुति-मन्त्रोंका गान किया ।

एक सामान्य जनके भी पुत्र होता है तो बधाईके वाद्य बजते हैं, उत्सव होता है; किन्तु पूरी पृथ्वीके सम्राट्के पुत्र हुए—एक नहीं, दो पुत्र और केवल शंख-नाद, कुछ मन्त्र-पाठ—बस ।

महर्षि वाल्मीकिने ही स्नान करके बालकोंका जातकर्म-संस्कार कराया । वे स्वयं आचार्य थे और पिताके स्थान-पूरक भी थे । जातकर्मके पश्चात् तपस्विनियोंने ही नाल-छेदन किया ।

अकस्मात् सैनिकोंके साथ शत्रुघ्नकुमार उसी दिन आश्रममें पहुँचे । महर्षिको उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और प्रार्थना की—'आर्या भगवतीने आपके ही यहाँ आश्रय लिया है, यह जानकर उनके श्रीचरणोंमें प्रणाम करनेके लोभसे यहाँ आया हूँ ।'

'वत्स ! देख ही रहे हो कि अतिथि होनेपर भी मैंने तुम्हें अर्घ्य नहीं दिया है ।' महर्षिने मंगल-सूचना दी—'तुम्हें जात-सूतक प्राप्त है । श्रीराम पिता हो गये हैं । पुत्री सीताने आज ही युग्म पुत्ररत्न प्राप्त किये हैं ।'

'कुमार ! तुम किञ्चित् विलम्बसे आये हो, अन्यथा अपने भ्रातृ-पुत्रोंको देख सकते थे ।' महर्षिने कहा—'उनका जातकर्म सम्पन्न हो चुका है ।'

शत्रुघ्नको मन मसोसकर रह जाना पड़ा। नाल-छेदनके पूर्व शिशु सूतिकागारसे बाहर आता है कुछ क्षणोंको। तब उसको देखा जा सकता है। नाल-छेदनके पूर्व जात-सूतक-दोष नहीं होता। तब तक दान किया जा सकता है। दोनों अवसर हाथसे निकल गये थे। अब तो किसीको कुछ दान भी नहीं किया जा सकता था। ऐसा निर्मम दैव—आर्या भगवतीको निर्वासित होना पड़ा। उनके प्रथम सन्तान भी हुई तो उपस्थित रहते हुए भी शत्रुघ्न कोई दान, कोई उपहार किसीको देनेकी स्थितिमें नहीं रहे।

अब यह जात-सूतक द्वादश दिनपर समाप्त होगा। सैनिक आगे जा चुके हैं। ब्राह्मण हैं, स्त्रियाँ हैं, पशु हैं, सामग्री है और वह भी अनेक दलोंमें विभक्त है। सबको सूचना देकर मार्गमें रोकपाना शक्य नहीं है। लवण जैसा दुर्धर्ष शत्रु है। उसे तनिक भी पता लगेगा तो सावधान हो जायेगा। त्रिशूल साथ रखने लगेगा, तब अजेय हो जायेगा। किसी भी प्रकार यहाँ भगवान प्राचेतसाश्रममें रुका नहीं जा सकता।

शत्रुघ्नको रात्रिमें निद्रा नहीं आयी। महर्षि वाल्मीकिने पहिले ही क्षमा माँग ली थी 'कुमार'! मैं आज तुम्हारा उचित आतिथ्य नहीं कर सकूँगा। बहुत व्यस्त हूँ।'

शत्रुघ्नकुमार यह देखकर हर्षित हुए थे कि महर्षि स्वयं बहुत उत्साहित थे। 'मैंने दौहित्र पाया है।' वे बार-बार कहते थे। आश्रमके ब्रह्मचारियोंको लेकर वे आश्रम सजानेमें लगे थे। उन्होंने देवताओंको सन्तुष्ट करनेके लिए यज्ञ किये। रक्षोघ्न मन्त्रोंसे सूतिकागारकी रक्षा कर आये। ग्रह-शान्ति की।

'पुत्रीके सन्तान होनेसे उसके पिताको सूतक नहीं प्राप्त होता।' महर्षि उत्सव कर रहे थे—तपोवनके उपयुक्त उत्सव। वे आज स्वयं अपने अन्तेवासियोंके साथ सस्वर सामगान कर रहे थे। उन्होंने आसपासके सब तपस्वियोंको आमन्त्रित कर दिया था। पशु-पक्षी सबको फल, कन्द, अंकुर अर्पित करनेमें लगे थे।

प्राचेतसाश्रममें महोत्सव था उस दिन। भले पृथ्वीपर होनेवाला महोत्सव अल्प हो, गगनसे अनवरत पुष्प-वर्षा हो रही थी। गन्धर्वोंके वाद्य, अप्सराओंके नृत्य, किन्नरोंका कलगान क्या कभी दूसरे दिन अथवा अन्यत्र कृतार्थ

होता ?

लताएँ फूलोंके गुच्छभारसे पत्रहीन प्रतीत हो रही थीं। तरुओंमें सुपक्व फल लदे थे और उनसे मधु-क्षरण हो रहा था। भ्रमरोंके झुण्ड गुञ्जार करते घूमते थे। पक्षियोंमें जैसे कलगानकी प्रतिस्पर्धा चल रही थी। मयूरोंके नृत्य और कोकिलकी कूक विरमित ही नहीं होती थी।

गायें, मृग ही नहीं, केहरी तक कूदते थे, नाचते थे। सम्पूर्ण तपोवन आनन्दमग्न था। पत्ता-पत्ता झूम रहा था। उठ रहा था महर्षिके हवनकुण्डसे अखण्ड सुरभित धूम्र। गूंज रहा था सस्वर सामगान। इधर-उधर दौड़ते फिर रहे थे तपस्वी ब्रह्मचारी बालक।

शत्रुघ्न तथा उनके साथके सैनिक दिनके चतुर्थ प्रहरके अन्तमें, सायंकाल आश्रम आये थे। इतनेपर भी मन्त्रमुग्ध रह गये थे। प्रकृति भी उत्सव मनाती है ? पशु-पक्षी ही नहीं, तरु-लता-तृण तक आनन्दमग्न होते हैं ?

अयोध्यामें ऐसे प्रकृतिके अनेक चमत्कार शत्रुघ्नने देखे थे। देखा था जब श्रीरामके विवाहोत्सवपर बारात चली थी अयोध्यासे। देखा था जब नववधुओंको लेकर बारात लौटी थी। देखा था जब चौदह वर्षके पश्चात् अयोध्याके सर्वस्व अरण्यसे आये थे पुष्पकपर बैठकर। अणु-अणुका नर्तन, तृण-तृणका लास्य, पृथ्वी-पर्वतोंमें मणियोंका प्राकट्य, सरिता-वापियोंमें, सरोंमें कमल-कुमुदका एक साथ खिल उठना, सब देखा था शत्रुघ्नने; किन्तु आज प्रकृतिने इस प्राचेतसाश्रममें जैसे अपना समस्त वैभव उड़ेल दिया था, इसके सम्मुख तो वह सब कुछ भी नहीं था। इसका तो स्वप्न भी इससे पूर्व सम्भव नहीं था। इतना ऐश्वर्य, इतना उल्लास और इस सबमें अलौकिक शान्ति, अखण्ड सात्विकता।

शत्रुघ्न तथा उनके साथके सैनिक स्वयं नहीं समझ सके कि वे रात्रि भर पक्षियोंका संगीत सुनते रहे, निर्झरोंका मधुर निनाद सुनते रहे, कोई अतिलौकिक स्वप्न देखते रहे अथवा समाधिस्थ रहे।

महर्षिको, उनके अन्तेवासियोंको निद्रा नहीं आती थी। तपस्विनी वृन्द तो श्रीजानकीके समीप एकत्र था। उसे निद्रा लेनेका प्रश्न ही नहीं था। निद्रा तो उस रात पशु-पक्षियों तकने नहीं ली। पद्मोंने भी अपने दल नहीं समेटे।

प्राचेतसाश्रममें उस रात निद्रा तीनका ही सत्कार पा सकी । दोनों नवजात शिशुओंका और सद्यःप्रसूता उनकी सकल-वन्दनीया जननीका ।

शत्रुघ्नकुमारने अपने साथके सैनिकोंके साथ ब्रह्ममुहूर्तमें ही नित्यकर्म किया । स्नान करके सन्ध्या की । अब हवन-तर्पण-देव-पूजन तो बारह दिन पश्चात् ही करने थे । अपना अहोभाग्य माना उन्होंने कि यह सुअवसर उन्हें प्राप्त हुआ । अन्यथा अयोध्यामें स्थित शिशुओंके पिता तथा पितृव्य तो इस सौभाग्यकी सूचनासे भी वञ्चित ही रहे ।

महर्षिको अभिवादन करके शत्रुघ्नने सूर्योदयके पश्चात् अनुमति ली । उन्हें शीघ्र मधुवन पहुँचना था । प्राचेतसाश्रमके मंगल-समाचारने उनको बहुत अधिक उत्साहित कर दिया था ।

तपस्विनियोंको शिशुओं तथा अपनी स्नेह भाजना भगवतीकी सेवा-सुरक्षामें अपने आह्निक विस्मृत ही हो गये थे । महर्षि तथा ब्रह्मचारी बालक आवश्यक औषधियाँ, फल, कन्द, पुष्प तथा दूसरे उपकरणोंके संग्रहमें लग गये थे । देव-पूजनादि भी करते रहना था उन्हें ।

पशु-पक्षियोंके समूह एकत्र हो गये थे । भगवतीके उटजके समीप । वे हटानेपर भी बार-बार वहीं आ जाते थे । उन सबने भी उपहारार्पण आरम्भ कर दिया था—दुर्लभ उपहारार्पण । उनके समान अलभ्य मणि, औषधि आदि मनुष्य तो दुर्गम स्थानोंसे नहीं ला सकता ।

●●●

लवण-वध

असुर-लवण आशासे अधिक प्रमत्त निकला । शत्रुघ्नके सैनिक उसकी पुरीके चारों ओर पहुंच गये; किन्तु उसे पता नहीं लगा । वह शिवका त्रिशूल पाकर अपनेको अपराजेय मानता था । उसने साथी और सहायक भी नहीं बनाये थे । उसके उद्धत स्वभावके कारण उसके पिता मधुके स्वजन-सम्बन्धी,

सेवक भी लवणको त्यागकर चले गये थे ।

लवणासुर विलासी-कामी नहीं था । अतः उसने स्त्रियोंका संग्रह नहीं किया । कहीं कन्या अथवा नारी-अपहरण करने नहीं गया । उसके समीप शूर्पणखाने आकर शरण ली थी । वही उसकी संरक्षिका बन गयी थी । लवण उसका कुछ सम्मान करता था ।

लवणासुर क्रोधी था, हिंसा-व्यसनी था । वह प्राणि-भक्षी था । उसकी उदर-पूर्ति सहजमें नहीं होती थी । इसके लिए प्रायः प्रतिदिन आखेट करने निकलता था और तपस्वी उसके विशेष लक्ष्य थे । नगरमें बहुत थोड़े राक्षस लवणासुरके अनुगामी रह गये थे । स्त्रियाँ तो जैसे थीं ही नहीं ।

लवणासुर रुक्ष-प्रकृति, क्रोधी, आखेटक था; किन्तु महत्त्वाकांक्षी नहीं था । वह प्राणियोंका वध करके प्रतिदिन ले आता था । उनसे उदरपूर्ति करके सोता रहता था । उसे प्राणियोंका कच्चा मांस और रुधिर-पान प्रिय था । रसोईकी खटराग अनावश्यक थी । उसे विश्राम था कि वह अपराजेय है । अतः किसीके आक्रमणका उसे भय नहीं था । दूसरे राज्यों अथवा स्वर्गादि पर आक्रमणका उसमें उत्साह नहीं था । जब तक मधुवनमें उसकी उदर-पूर्तिको पर्याप्त प्राणी मिलते हैं, वह क्यों अन्यत्र जाकर युद्धका श्रम उठावे । मारो, खाओ, सो जाओ— इतनी ही जीवनकी कृतार्थता उसने मान रखी थी । ऐसे व्यक्तिका आश्रय लेने दैत्य, दानव, राक्षस क्यों आते ? उन्हें क्या मिलने वाला था । इस चिड़चिड़े व्यक्तिकी सेवा कोई क्यों करे ?

शत्रुघ्न पहुँचे तो उनके अरण्यमें छिपे सैनिकोंने लवणासुरकी पूरी प्रवृत्ति निवेदन की । वह प्रायः दिनके प्रथम प्रहरमें पुरीसे निकलकर आखेटके लिए जाता था । प्रत्येक दिन पृथक-पृथक दिशाओंमें जाता था । मध्याह्नके कुछ ही पश्चात् बहुतसे प्राणी अपने कन्धोंपर लादे, शूलमें पिरोये रक्त-लथपथ लौटता था । नगरमें जाकर उस दिन फिर बाहर नहीं निकलता था । आखेटमें भी उसके साथ जाते दूसरे किसीको देखा नहीं गया था ।

'नगरको घेर लो ! सावधान रहो कि कहींसे कोई निकलकर बाहर न जा सके ।' शत्रुघ्नने सब सुनकर अपने सैनिकोंको आदेश दिया—'राक्षस बहुत मायावी होते हैं । आकाशपर भी सतर्क दृष्टि रखो । कोई गगन मार्गसे

निकले—पक्षीके भी रूपमें तो उसे बाण मारकर गिरा दो ।'

लवणासुर आखेट करने निकल गया था । शत्रुघ्नने अवसरका समुचित लाभ उठाया । अरण्यमें आश्रय लिये उनके छिपे सैनिकोंने शीघ्र नगरको घेर लिया । शत्रुघ्नने घूमकर अपनी सेनाके व्यूहका निरीक्षण किया । फिर स्वयं धनुष चढ़ाकर नगर-द्वारके सम्मुख खड़े हो गये । अब इस कंकण-व्यूहबद्ध अयोध्याकी विजयवाहिनीके भीतरसे बाहर अथवा बाहरसे भीतर किसीका भी प्रवेश अशक्य हो गया ।

कज्जल-कृष्ण-वर्ण, पर्वताकार काया, तप्त-ताम्र-केश, श्मश्रु, सर्पाकार रोमोंसे आच्छादित शरीर, गोलाकार प्रज्वलित नेत्र, कराल दंष्ट्रा, लवणासुर मध्याह्नके पश्चात् लौटा । उसने महिष, वाराह, मृगादि बहुतसे पशु अपने शूलमें पिरोकर कन्धेपर लाद रखे थे । उन पशुओंके रक्त तथा स्वेदसे उसका शरीर लथपथ था ।

बहुत लोगोंको चलते-फिरते या खड़े-खड़े भोजन करना अच्छा लगता है । बहुतोंको व्यवस्थित बैठे बिना आहार अच्छा नहीं लगता । लवण दूसरे वर्गमें था । उसे कच्चे पशु ही चबाने थे; किन्तु अपने भवनके भीतर एकान्त कक्षमें वह अपना आहार ग्रहण किया करता था । आज वह अधिक असन्तुष्ट था । उसे कोई तपस्वी नहीं मिला था । तपस्वियोंका कंकालप्राय शरीर अपने आहारमें उसे विशेष चर्व्य, मूली आदिके समान लगता था । पता नहीं सबके सब तपस्वी कहाँ चले गये थे । उसकी दृष्टिमें यह अपराध था । मांसाहारी व्यक्ति जैसे मुर्गी या बकरा पालते हैं, मधुवनमें तपस्वियोंको लवणने उसी दृष्टिसे बसने दिया था । वह वैसे ही उन्हें क्रमशः खा रहा था । आज कोई तपस्वी न मिलनेसे उसका मध्याह्न भोजन उसे स्वादहीन लगने वाला था ।

'तू कौन है ? यहाँ द्वारपर क्यों खड़ा है ?' शत्रुघ्नको देखते ही लवण गर्जा—'द्वारसे हट ! जीवित रहना चाहता है तो भाग जा !'

'अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्ने मुझे इस पुरीका शासक नियुक्त किया है ।' शत्रुघ्नने उत्तर दिया—'उनका आदेश है कि यह पावन पुरी असुरोंके द्वारा अपवित्र न करने दी जाय । तुझे जीवित रहना है तो अब पाताल चला जा । पृथ्वीपर परम धर्मज्ञ सम्राट् श्रीरामका शासन है ।'

'राम— जिसके अनुजने बुआ शूर्पणखाको कर्ण-नासाहीन बनाया ? जिस रामने बुआके भाई रावणको मार दिया ?' लवणासुर गर्ज उठा— 'मैं नहीं मानता उसे सम्राट् ।'

'मैं उन्हीं श्रीरामका अनुज हूँ ।' शत्रुघ्नका स्वर भी तीव्र हुआ— 'तू उनके शासनकी उपेक्षा करके यमलोक जायेगा । रावणके समीप पहुँचनेकी शीघ्रता है तुझे ?'

'ठहर ! मुझे अपना शस्त्र लेने दे ।' लवणासुरने महिष, वाराह आदिके शवोंसे विद्ध शूल एक ओर फेंका और शत्रुघ्नको धक्का देकर पुरीद्वारमें प्रवेश करने झपटा ।

'तू नगरमें नहीं जा सकता !' शत्रुघ्नने खड्ग खींच लिया— 'आगे बढ़ते ही तेरा मस्तक पृथ्वीपर पर लुढ़कता दीखेगा !'

लवणासुरने अपना शूल रिक्त किया मृत पशुओंको फेंककर; किन्तु उसका प्रयत्न व्यर्थ था । शत्रुघ्नके शरोंने वह शूल काट दिया । लवणासुरने वृक्ष, शिलाएँ जो उठायीं, शत्रुघ्न काटते गये बाणोंसे । अन्तमें श्रीरामके द्वारा प्रदत्त खड्गसे उसका मस्तक काट दिया उन्होंने ।

लवणासुर मारा गया । उसके अनुयायियों तथा शूर्पणखाके पास अब अधोलोकोंमें स्थित दानवोंके पास जानेके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था । शत्रुघ्नने सैनिकोंका घेरा पुरीपर-से उठा लिया । इससे असुरोंको भाग जानेका अवकाश मिल गया । वे सब भाग गये ।

प्रतीक्षा करते दलोंको सन्देश भेज दिया गया । वे सब शीघ्र आ गये । शत्रुघ्नने साथ आये ब्राह्मणोंको सबसे प्रथम उनकी रुचिके अनुकूल आवास दिया । मधुपुरी यमुना-तटपर परिखा-परिवेष्टित थी । शत्रुघ्नको उसमें देवमन्दिरों, यज्ञशालाओंका उद्धार अधिक करना पड़ा । लवणासुरने इन्हें ध्वस्त कर दिया था ।

मधुने पुरी व्यवस्थित बसायी थी । भवन सुदृढ़ थे । गजशाला, अश्वशाला, गोशालाके निर्माण उत्तम थे । सभागृह, चतुरष्क, राजपथ, वीथियाँ सब थीं । सरोवर, वापियाँ, कूप स्वच्छ करने पड़े । उपवन (फलोद्यान) तथा पुष्प-वाटिकाएँ बन चुकी थीं । इनकी ओर लवणासुर क्यों ध्यान देता । उसे

न पुष्पोंसे प्रीति थी, न वह फलाहारी था । इन सबको परिष्कृत करवाना पड़ा कुमारको ।

पान्थशाला तथा आपण अनेक वर्षोंसे उपयोगमें न आनेके कारण वनपशुओंके तथा चमगादड़ोंके आवास बन गये थे । इनको संस्कारित करवाना पड़ा ।

साथ आये पूरे समाजको पहिले राजसदन तथा कुछ भवनोंमें स्थान देकर देवालयोंका जीर्णोद्धार एवं पुनर्निर्माण पहिले प्रारम्भ कर दिया । भारतीय सभ्यता शरीरको पीछे, किन्तु श्रद्धाको पहिले पोषित करना उत्तम मानती है ।

मन्दिर, सरोवर, कूप, वापी आदिके कार्यारम्भमें सुविधा भी थी । साथ आये सब श्रद्धा-प्रेरित श्रममें लग गये । समीपके जनपदोंमें सुप्रचार हुआ । देवालय-निर्माण, तीर्थके पुनरुद्धारकी प्रेरणा बहुतसे श्रद्धालु सात्त्विक जनोंको आकर्षित करके ले आयी । उनके आगमनने श्रमजीवियोंको, स्थापत्य-शिल्पियोंको उत्साहित किया । व्यापारी आने लगे । विप्र, वृद्ध एवं भावप्रिय साधक आये । तीर्थयात्री उत्साहित हुए ।

मधुपुरीसे जो लोग लवणके उत्पातसे भाग गये थे, उनका पता लगनेपर शत्रुघ्नने उन्हें सादर आमन्त्रित किया । कुछ स्वयं आ गये । उनके भवन, उद्यान उनको दिये गये । आवश्यक उपकरण, उपयोगी पशु आर्थिक सहायता प्राप्त होने लगी उन्हें । अवश्य किसी उत्पातीके उपद्रव जितनी शीघ्र नगरको उजाड़ देता है, उतनी शीघ्र कोई भी सुव्यवस्था उसे बसा नहीं पाती; किन्तु मधुपुरीको एक विशेषता प्राप्त थी । उस मोक्षदायिनी पुरीका अपना आकर्षण कम नहीं था । अतः उसे समृद्ध नगर बननेमें बहुत अधिक विलम्ब नहीं हुआ ।

मथुराकी भाग्यलिपि ही सम्भवतः ऐसी ही थी । वह अनेक बार उजड़ी और बसी । अनेक बार आक्रान्ताओंने उसे ध्वस्त किया । श्रद्धालु मधुने उसे बसाया था; किन्तु उसके पुत्रोंने ही उसे उजाड़ डाला । शत्रुघ्नको सुनसान नगर प्राप्त हुआ था । उसमें भी देवस्थान ध्वस्त हो चुके थे । शत्रुघ्नने बसाया उसे । द्वापरान्तमें भी तो महाराज उग्रसेनकी इस पावन पुरीको उनके पुत्र कंसने असुरोंका केन्द्र बना डाला था । यदुवंशी और विप्रोंको भगा दिया था । श्रीकृष्णने इसे पुनः समृद्ध किया और स्वयं निर्जन बनाकर द्वारिका जा बसे । उसे फिर

बसाया उनके प्रपौत्र वज्रनाभने । उसके पश्चात् भी मथुरा आक्रान्ताओंका आखेट होती रही ।

कुमार शत्रुघ्नने नित्यपुरी मथुराका पुनरुद्धार किया । वहाँ राज्यकी स्थापना की । प्रजाको बसाया । ऐसे नवीन स्थानकी स्थापनामें श्रम तो होता ही है; किन्तु उसका एक सुफल भी होता है । संस्थापककी अपनी योजना पूर्णतः सफल होती है । सब आगत प्रजा एवं सेवक वर्ग उसके सम्पूर्ण नियन्त्रणमें रहता है । उसे किसी अन्यके पूर्व निर्माण तथा उसके द्वारा संस्थापित उन लोगोंसे काम नहीं चलाना पड़ता, जिनमें अनेकोंका उसे संकोच करना पड़े और अनेक उससे सम्मानकी आशा करें । शत्रुघ्नका यह राज्य भरपूर सुव्यवस्थित बना । यमुनातट तपस्वी विप्रोंके वेदपाठसे गुञ्जित होने लगा ।

मधुपुरी भारतका हृदय है । वह द्वारिका, प्रयाग, उत्तराखण्ड तथा रामेश्वर जानेवाले तीर्थ-यात्रियोंकी मिलन-स्थली है । अतः व्यापारियोंका केन्द्र बनते उसे विलम्ब नहीं होना था । क्षत्रिय सैनिकोंकी पर्याप्त बड़ी संख्या शत्रुघ्न अपने साथ अयोध्यासे ले आये थे । उनके साथके सेवक तो थे ही, बाहरके लोग आये तो उनके सेवक भी साथ आये । मधुपुरी चारों वर्णोंके गृहोंसे परिपूर्ण हो गयी ।

शत्रुघ्नने विद्वान विप्रोंमें-से अपने मन्त्री नियुक्त किये । प्रजाके प्रत्येक वर्गकी पञ्चायतें बनीं और उनके प्रतिनिधियोंको राजसभामें स्थान मिला । मधुपुरीकी पूरी शासन-व्यवस्था एवं विधान अयोध्याकी शासन-व्यवस्थाकी अनुकृति थी । शत्रुघ्न ही अयोध्याके शासनका अनेक वर्षों तक सक्रिय सञ्चालन करते रहे थे, अतः इस नूतन राज्यकी स्थापनाके लिए उनके समीप परिपक्व अनुभव था ।

शत्रुघ्नकी स्वयंकी दिनचर्या भी अयोध्यामें ही सुनिश्चित हो चुकी थी । एक आदर्श आर्यपुरुषकी दिनचर्या ही तो मर्यादा-पुरुषोत्तमके परिवारमें चल सकती थी । नवीन शासकके आचार-व्यवहारका प्रजा सहज अनुकरण कर लेती है । मधुपुरीका उच्छिन्न जीवन व्यवस्थित हो गया ।

अपने अग्रज अयोध्याके सम्राट्का आदर्श था शत्रुघ्नके सम्मुख । उसका सुपरिणाम शीघ्र स्पष्ट हो गया । राज्य स्थापित हुआ, समृद्ध हुआ, जन-बहुल

हो गया । शासकका सुयश फैला दिशाओंमें । अयोध्याके पश्चात् कला-जीवियोंका, कवियोंका, वेदज्ञ विद्वानोंका, तपस्वी ऋषि-मुनियोंका और घूमकर व्यापार करनेवालोंका भी मधुपुरी आकर्षण-केन्द्र बन गयी ।

शत्रुघ्नकुमारने मधुपुरीमें दो पुत्र प्राप्त किये, सुबाहु और श्रुतसेन । ये दोनों परस्परमें दो वर्षकी आयुका ही अन्तर रखते थे । यह सब हुआ; किन्तु शत्रुघ्नकुमारका मन अयोध्याके लिए छटपटाता ही रहा । वे अपनेको निर्वासित ही मानते रहे । उनका पवित्र हृदय प्रभुत्व नहीं, अपने आराध्य अग्रजकी सन्निधि एवं स्नेह-प्राप्तिको आकुल बना रहा । वे मधुपुरीमें राज्यकी सुस्थापनाके निमित्त बारह वर्ष रहे । इसके अनन्तर मन्त्रियोंको प्रबन्ध देकर पत्नी-पुत्रोंके साथ अयोध्या लौटे ।

●●●

शत्रुघ्न लौटे

अयोध्या लौटनेका निश्चय करते ही जैसे एक बड़ा भार सिरसे उतर गया । श्रुतकीर्तिको भी अपनी बहिनोंसे पृथक मधुपुरीमें रहना कभी प्रिय नहीं लगा था । उन्हें यहाँकी सेविकाओंका महाराज्ञी कहना बहुत अटपटा ही नहीं लगता था, उत्पीडक भी लगता था । ऐसा लगता था कि उन्होंने किसी और-का स्वत्व अन्यायपूर्वक अपहरण कर लिया है ।

स्वयं शत्रुघ्नकुमार कदाचित् ही राजसभामें सिंहासनपर बैठते थे । वे अपनेको अन्य कार्योंमें इतना व्यस्त रखते थे कि राजसभामें विशेष अधिवेशनके अतिरिक्त उनके बैठनेका अवसर ही नहीं आता था । नवीन राज्य था । नवीन प्रजा आकर बसी थी । राजा स्वयं घूमकर सब कुछ देखते थे । कोई विवाद भी हो तो उसे उसी स्थानपर सुलझा देते थे । राजसभामें कोई न्याय माँगने आवे, इसका एक भी अवसर नहीं आया ।

मन्त्री, पुरोहित, प्रजा-प्रतिनिधियोंको प्रबन्ध सौंपकर अयोध्या लौटना

निश्चित हुआ तो स्मृतियोंने अन्तरको अत्यधिक आकुल कर दिया । सबसे प्रमुख स्मृति थी महर्षि वाल्मीकिके आश्रमकी । उस प्राचेतसाश्रम पहुँचकर भी आराध्य श्रीजनक-नन्दिनीके चरण-दर्शन नहीं हो सके थे । अब उनका दर्शन होना था । उनके कुमारोंको देखना था, जो अब बारह वर्षके हो चुके होंगे ।

श्रुतकीर्तिजीमें अपनी आदरणीय अग्रजासे मिलनेकी उत्कण्ठा कम नहीं थी; किन्तु अनेक बार अपनी उत्सुकताको प्रमुखता देना उचित नहीं हुआ करता । श्रीसीता ऋषि-आश्रममें रहती थीं । तपस्विनी वेशमें, तापसीके समान रहती होंगी । उन्हींके समान रहते होंगे उनके दोनों कुमार । जो वस्तुतः साम्राज्ञी हैं, निर्दोष निर्वासिता हैं, आज विवशा वनवासिनी बने रहनेको बाध्य हैं, उनके समीप जानेका प्रश्न था ।

किसी मुनि-पत्नीके समीप कोई महारानी जावें, यह एक भिन्न स्थिति है; किन्तु निर्वासिता साम्राज्ञीके समीप महारानीके वेशमें, वस्त्रालंकार-सज्जिता उनकी अनुजा पहुँचे, यह किसी प्रकार उचित नहीं था । यह तो उनको तिरस्कृत, क्षुब्ध करनेका प्रयत्न होता । उनके कुमार हैं—अयोध्याके साम्राज्यके वास्तविक उत्तराधिकारी कुमार और वे मुनि-बालक-वेशमें होंगे । उनके समीप श्रुतकीर्ति अपने राजकुमारोंको कैसे ले जायें ? यह तो उन कुमारोंकी अवेहलना होगी ।

वे दोनों कुमार और शत्रुघ्नके पुत्र भी बालक ही तो हैं । इन बालकोंमें किसीने कुछ पूछ लिया तो ? कैसे परिचय देना शक्य होगा ?

शत्रुघ्नने अपनी जीवन-संगिनीसे मन्त्रणा की । दोनोंने निर्णय किया कि श्रुतकीर्ति अपने पुत्रोंके साथ सीधे अयोध्या जावेंगी । जैसे वे आते समय सीधी आयी हैं, जाते समय भी वैसे ही लौटेंगी । उनके साथ महामन्त्री सुमन्त्रके पुत्र तथा सैनिक जायेंगे । केवल दो-चार सैनिकोंके साथ शत्रुघ्नकुमार महर्षि प्राचेतसके आश्रम होकर अयोध्या आवेंगे ।

शत्रुघ्नकुमारको मार्गमें सात-आठ दिन लगने थे । अब युद्धयात्रा तो थी नहीं कि रथके अश्व पूरे वेगमें हाँके जायें और रात्रि-विश्राम भी नाममात्रका किया जाय । श्रुतकीर्ति महामन्त्रीके पुत्रके साथ सैनिकोंकी सुरक्षामें पहिले अयोध्या पहुँचे, इसमें कोई आपत्ति नहीं थी ।

महर्षि वाल्मीकिने शत्रुघ्नका स्वागत किया । उनको अर्ध्य दिया । उनके

साथियोंको, रथोंके अश्वोंको सुव्यवस्थित विश्राम-स्थान दिया। अश्व वृक्षोंसे बाँध दिये गये। उन्हें ब्रह्मचारी बालकोंने पर्याप्त तृण डाल दिया। ऋषि-आश्रममें आगत-अतिथिके ठहरनेका स्थान यज्ञशाला होती है। शत्रुघ्नको तथा साथके सैनिकोंको भी वहीं रात्रि-विश्राम करना था।

महर्षि स्वयं शत्रुघ्नको लेकर श्रीजानकीके समीप पहुँचा आये। सूर्यास्त हो चुका था। शत्रुघ्नने सायं सन्ध्या समाप्त कर ली थी स्नान करके। श्रीसीताकी कुटीर तैल-दीपसे आलोकित थी। उनके दोनों कुमार अपने अभ्यास-अध्ययनके निमित्त महर्षिके उटजमें थे।

'कुमार! तुम्हारा कल्याण हो।' श्रीमैथिलीने अपने पदोंमें प्रणत शत्रुघ्नको सस्नेह आशीर्वाद दिया। कुशासन दिया बैठनेके लिए।

'आज बारह वर्ष पश्चात् अयोध्या लौट रहा हूँ।' शत्रुघ्नने संक्षिप्त वर्णन सुना दिया मधुपुरी जाने, लवण-वधादिका। यह भी सुना दिया कि जाते समय यहाँ होते गये थे; किन्तु उस दिन साक्षात्कारका अवसर ही नहीं था।

'श्रुतकीर्ति प्रसन्न है?' श्रीवैदेहीने अपनी चर्चा ही नहीं की। शत्रुघ्नने संकोचपूर्वक अपने दोनों पुत्रोंकी ओरसे प्रणाम किया तो उल्लसित जानकीने कहा—'दोनों दीर्घायु हों। अपने उज्ज्वल कुलके अनुरूप यशस्वी, ऐश्वर्यशाली हों।'

अद्भुत क्षमता—श्रीजानकीने अपने क्लेशकी चर्चा ही नहीं की। अपने पुत्रोंकी चर्चा नहीं की। किस कष्टसे, विपन्न स्थितिमें उनका पालन पोषण हो रहा है, कोई चर्चा नहीं। शत्रुघ्न किस मुखसे अपने उन भ्रातृ पुत्रोंके सम्बन्धमें पूछें?

'सम्राट्का मंगल हो! उनके श्रीचरणोंमें मेरा प्रणाम मूक रहकर ही कर लेना।' अन्तमें शत्रुघ्नको विदा करते उन महनीयाने कहा—'वे ही मेरे सर्वस्व हैं। वे ही मेरे आराध्य हैं। उनको मेरी चर्चा करके व्यथित मत करना। मैं उनके पुत्रोंको योग्य बनानेमें लगी हूँ। महर्षिका उनपर मातामहके समान स्नेह है। दोनों सुयोग्य होंगे तो स्वयं पिताका वात्सल्य अर्जित कर लेंगे।

श्रद्धा, सतीत्व, संयम, आस्था और आत्मोत्सर्गकी साक्षात् मूर्तिके पदोंमें पृथ्वीपर मस्तक रखकर शत्रुघ्नने प्रणाम किया। रात्रि हो रही थी। तपस्विनियाँ

सम्भवतः विदा होनेकी ही प्रतीक्षा कर रही थीं । दोनों कुमार लौटे नहीं थे । विलम्ब करना उचित नहीं था । शत्रुघ्न अपने विश्राम-स्थानपर लौटे; क्योंकि श्रीजानकीने बतला दिया—'दोनों अरण्यमें उत्पन्न बालक हैं । मुनि-कुमारों जैसे ही अल्हड़, अभय । आवश्यक नहीं है कि वे रात्रिमें माताके समीप आ ही जावें । वैसे भी उपनयनके पश्चात् ब्रह्मचारीको गुरुगृह रहना चाहिये । यहाँ महर्षि उनके मातामह भी हैं, आचार्य भी । दोनों उनके समीप भी रात्रि-शयन कर लेते हैं । पूरी रात अभ्यास भी चलता है उनका कभी-कभी । उनपर मेरा न स्वत्व है, न अंकुश । मैं तो उनकी पालिका मात्र हूँ । मुझसे अधिक चिन्ता उनकी महर्षि करते हैं ।'

शत्रुघ्न अपने विश्राम-स्थानपर लौट आये । उन्होंने चित्रकूटमें इन आर्याका तपस्विनी-वेश देखा था और आज यहाँ देखा । चित्रकूटमें वनदेवी लगती थी ये आर्या और यहाँ साक्षात् जगद्धात्री लगती हैं । इतनी महिमामयी कि मन इनकी महिमाका स्पर्श नहीं कर पाता । अपने परमाराध्यके वियोगका असीम वड़वानल अन्तरमें लिये विश्वको वात्सल्य बाँटती, स्नेह-शान्तिकी मूर्ति ।

कहाँकी निद्रा, कहाँका विश्राम । मन उन्हीं परम पूजनीयाके पादारविन्दोंका चिन्तन कर रहा था । सहसा वीणाकार स्वर श्रवणोंमें पड़ा । इतना मधुर स्वर, ऐसा स्वर-ताल कि भ्रम हो गया—क्या भगवती हंसवाहिनी स्वयं प्राचेतसाश्रम पधारी हैं ? क्या वे यहाँ आज स्वयं अपनी कला प्रकट करने लगी हैं ।

तभी सुमधुर संगीत श्रवणमें पड़ा । मन-प्राण सब श्रवणोंमें समाहित हो गये । स्पष्ट कोई बालक-कण्ठ था । अत्यन्त ललित काव्य—श्रीराम-कथाका काव्य । एक-एक पदके अनेक-अनेक अर्थ । बड़े मधुर स्वरमें गाया जा रहा था । निश्चय दो बालक होंगे । एक वीणा-वादन कर रहा था और एक गा रहा था । कभी दोनों सम्मिलित गान करते थे । अवश्य यह लोकोत्तर काव्य महर्षि प्राचेतसकी प्रतिभाका प्रसाद होना चाहिये ।

संगीत सम्पूर्ण रात्रि तो नहीं चला; किन्तु ब्रह्ममुहूर्तसे पहिले विरमित भी नहीं हुआ । उठकर नित्यकर्म, स्नान, सन्ध्या, हवन-तर्पणादिसे निवृत्त हुए शत्रुघ्न और जाकर महर्षि वाल्मीकिके चरणोंमें प्रणाम किया । दोनों बालक

महर्षिके समीप ही बैठे थे । दोनों कमल लोचन, इन्दीवर-सुन्दर, विशालबाहु वक्ष । महर्षिने कहा दोनोंको शत्रुघ्न की ओर संकेत करके—'ये तुम्हारे प्रणम्य हैं ।'

दोनोंने प्रणाम कर लिया । महर्षिने परिचय देना उचित नहीं माना तो शत्रुघ्नको भी पूछना धृष्टता प्रतीत हुई । रात्रिमें ही पता लग गया था कि श्रीजनक-नन्दिनी मध्याह्न-पर्यन्त मौन रहती हैं । अतः महर्षिको प्रणाम करके, अनुमति लेकर अयोध्याकी ओर चल पड़े ।

●●●

अनुजोंके पुत्र

'आर्य ! मेरा दुर्भाग्य कि मैं सुर-मुनीन्द्र-सेव्य आपके इन श्रीचरणोंसे द्वादश वर्ष दूर रहा ।' स्नेहवश स्वयं श्रीराघवेन्द्र शत्रुघ्नको लेने नगरद्वार तक आ गये थे । शत्रुघ्नने रथसे उतरकर उनके सम्मुख प्रणिपात किया । अनुजको बलपूर्वक उठाकर श्रीरामने जब हृदयसे लगा लिया, तब लगभग रुदन करते शत्रुघ्नने कहा—'आपसे पृथक मैं मधुपुरी रह नहीं सकता ।'

'तुम्हारा आगमन तो बहुत अच्छा हुआ ।' छोटे भाईको हृदयसे लगाये ही श्रीरघुनाथ बोले—'मैं स्वयं चाहता था कि तीनों बड़े राजकुमारोंका उपनयन एक साथ हो और वे एक साथ गुरुगृह-निवास करें ।'

शत्रुघ्नने भरत तथा लक्ष्मणकी चरण-वन्दनाकी । यह समाचार तो मथुरा मिल ही गया था कि भरत तथा लक्ष्मणके दो-दो पुत्र हो चुके हैं । जैसे शत्रुघ्नने अपने प्रत्येक पुत्रके उत्पन्न होनेपर अयोध्या समाचार भेजा था, भरत एवं लक्ष्मणके भी प्रत्येक पुत्रके होनेका समाचार उन्हें प्राप्त होता रहा था ।

श्रीभरतलालके पुत्रोंका नाम था तक्ष तथा पुष्कल । लक्ष्मणके पुत्र थे अंगद और चित्रकेतु । इन सब कुमारोंमें आयुका थोड़ा-थोड़ा अन्तर था । क्षत्रिय बालकका उपनयन संस्कार सातसे नौ वर्ष तककी अवस्थामें हो जाना चाहिये ।

इनमें-से तक्ष, अंगद तथा सुबाहु अब उपनयनके योग्य हो चुके थे । इनमें आयुका अन्तर दो से तीन मासका था । सबसे बड़े तक्ष अब नवम वर्षमें प्रवेश कर चुके थे । तीनों भाइयोंके छोटे पुत्र अपने सहोदर अग्रजोंसे दो वर्षके लगभग छोटे थे । अतः पुष्कल, चित्रकेतु तथा श्रुतसेनकी आयुमें परस्पर दो-से-तीन मासका अन्तर था । इनमें सबसे छोटे शत्रुघ्नके द्वितीय पुत्र श्रुतसेन अभी छठवें वर्षमें ही प्रविष्ट हुए थे ।

श्रीजनक-नन्दिनीके भी पुत्र हैं और वे इन सब कुमारोंमें ज्येष्ठ हैं, यह जानते हुए भी कहनेका साहस कोई नहीं करता था । यद्यपि यह भी सब जानते थे कि अन्तःपुरमें उर्मिलाने स्पष्ट घोषित कर रखा था कि—'सब अनुज सम्राट्के सेवक हैं, अतः सम्राट्को पुत्रोंपर स्वत्व प्राप्त है । वे उनके संस्कार स्वेच्छानुसार करा सकते हैं; किन्तु मैं अपने उदरजातमें किसीको परिवेत्ता[1] नहीं बनने दूँगी । उर्मिलाके जीवित रहते यह अधर्म इस कुलमें नहीं होगा ।'

श्रीराघवेन्द्र अपनी ओजस्विनी अनुज-वधूका यह आक्रोश लक्ष्मणके द्वारा सुनकर मौन रह गये थे । अभी सब भ्रातृपुत्र बालक थे । अभी उनके विवाहका प्रश्न नहीं उठता था; किन्तु उर्मिला बालकोंके किसी भी संस्कारके समय अत्यन्त उदास हो जाती थीं । वे केवल उतने कर्तव्यका निर्वाह किसी प्रकार कर देती थीं, जो माताको नियमानुसार करने ही चाहिये । ऐसे अवसरोंपर वे प्रातः अपने कक्षमें बन्द पड़ी रहती थीं ।

तीन कुमारोंका उपनयन संस्कार हुआ—अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट्के भ्रातृपुत्रोंका; किन्तु जब कुमारोंके माता-पितामें ही उत्साह न हो, केवल सम्राट्का उत्साह कितना उत्सवको सप्राण बना सकता है । मन्त्रियोंमें, प्रजामें पूरा उत्साह था । नगर सम्पूर्ण सज्जित हुआ । राजसदन भी सज्जित हुआ; किन्तु उर्मिलाने अपना अन्तःपुर सज्जित करनेसे सेविकाओंको रोक दिया तो माण्डवी, श्रुतकीर्तिने भी उनका अनुकरण किया । कुमारोंका संस्कार श्रीरामने अपने सदनमें सम्पन्न कराया ।

महर्षि वशिष्ठ भी उपराम हो रहे थे । वे राजसभामें और प्रधान

---

१. जब बड़े भाईके अविवाहित रहते छोटा भाई विवाह कर लेता है तो उसे परिवेत्ता कहते हैं । यह अधर्म है, इसका प्रायश्चित्त विधान है ।

संस्कारोंके समय विप्रवृन्दके साथ उपस्थित तो हो जाते थे; किन्तु कुमारोंके सब संस्कार जैसे उनके पौत्र महर्षि पराशरने सम्पन्न कराये थे, उपनयनमें उन्होंने ही कुमारोंको गायत्री-दीक्षा दी । सूर्यकुलमें महाराज इक्ष्वाकुके समयसे आते कुलगुरुने अब अपना भार अपने पौत्रको दे दिया था ।

कुमारोंने गुरुकुल-गमन किया । उनकी शिक्षा-दीक्षा महर्षि पराशरके आचार्यत्वमें ही सम्पन्न हुई । यद्यपि यह सम्भव नहीं था कि श्रीराम एवं उनके अनुजोंके समान उनके पुत्र चौंसठ दिनोंमें ही सम्पूर्ण वेद-वेदांग, षट्शास्त्र एवं समस्त कलाओंके पारंगत हो जाते; किन्तु अन्य अन्तेवासियोंके समान उन्हें बारह वर्ष या उससे भी अधिक नहीं लगा । तीन वर्षमें उन्होंने अपना प्रशिक्षण पूर्ण कर लिया ।

बड़े तीनों कुमार गुरुगृहमें ही थे, जब उनके तीनों अनुजोंका भी उपनयन हो गया । अपने अग्रजोंके समावर्तनसे पूर्व ही उनकी शिक्षा प्रारम्भ हो गयी । इस प्रकार सभी कुमारोंकी शिक्षा पाँच वर्षमें पूर्ण हो गयी ।

सेवकोंके पुत्रोंको आठ वर्षकी अवस्थासे आज्ञापालन एवं सेवा करनेका अभ्यास हो, तब वे उत्तम सेवक होते हैं । दस वर्षकी अवस्थाका वैश्य-बालक व्यापारी बन जाता है । बारह वर्षकी अवस्थामें क्षत्रिय-कुमार महारथी हुए हैं और चौदह वर्षकी अवस्थाके विप्र-पुत्रोंने कठिनतम वैदिक अनुष्ठानोंका सफल आचार्यत्व किया है ।

रघुवंशी कुमार अपने पिता-वर्गके समान तेजस्वी, धीर, प्रतिभाशाली थे । उनमें ओजस्विता, स्फूर्ति, प्रत्युत्पन्न-मति और शीघ्र ग्रहणकी जन्मजात क्षमता थी । गुरुगृहमें उनको धनुर्वेदकी सैद्धान्तिक सम्पूर्ण शिक्षा प्राप्त हुई । वहाँ इसका व्यावहारिक अभ्यास अल्प ही हो सकता था । महर्षि वशिष्ठ तथा पराशरजी भी अस्त्र-शिक्षण सैद्धान्तिक ही अधिक देते थे ।

धनुर्वेदकी व्यावहारिक शिक्षा कुमारोंके गुरुगृहके लौटनेपर उन्हें शत्रुघ्नने दी । उनकी इसमें अभिरुचि थी और अवकाश भी उन्हींको था । भरतने श्रीरामकी आज्ञासे दिग्विजय यात्रा की और बहुत अधिक गन्धर्वोंको विजय करके असीम सम्पत्ति करके रूपमें ले आये । लक्ष्मणको सम्राट्की सेवामें रहना था । शत्रुघ्नने इसलिए भी यह कार्य स्वयं अपने ऊपर ले लिया, जिससे

श्रीराम उन्हें पुनः मथुरा जानेका आग्रह न कर सकें ।

क्षत्रिय-कुमारके शस्त्र-शिक्षणके अनिवार्य अंग हैं मल्लयुद्ध, अश्वारोहण, रथचालन तथा गज-वशीकरण । बालकोंको शत्रुघ्न अस्त्र-शस्त्र-संचालन, लक्ष्यवेधकी शिक्षा देते थे । अश्वारोहणका अभ्यास कराते थे । महामन्त्री सुमन्त्रके पुत्रोंसे वे रथ-संचालन सीखते थे और गजशालाके महामात्र-प्रमुख उन्हें गजोंको अपनी इच्छानुसार चलाना, दौड़ाना तथा उन्मत्त गजको भी नियन्त्रणमें ले आना समझाते-सिखलाते थे ।

आखेट आवश्यक था क्षत्रिय-कुमारके लिए; क्योंकि उससे केवल चल-लक्ष्यवेधका ही अभ्यास नहीं होता । उससे अप्रमत्त दीर्घकाल तक स्थिर रहना, अन्धकारमें भी आहटका अनुमान करना, श्रवण तथा दृष्टिका सूक्ष्मतम उपयोग और शीत-उष्ण एवं मशकादिसे उपद्रुत होनेपर भी स्थिर, अञ्चल रहनेका अभ्यास होता है ।

आखेट क्षणार्धमें निर्णय लेने तथा सक्रिय होनेकी शिक्षा है । आखेट दृष्टिमात्रसे शत्रु-मित्र-उदासीनको परखनेकी विद्या है । आखेट सम्मुखके शत्रुके भावको उसकी दृष्टि अथवा रोमके किञ्चित् हिलनेसे भाँप लेनेकी कला है । आखेट वन, पर्वतोंपर पड़े सामान्य दृष्टिके लिए अदृश्य सूक्ष्मतम संकेतोंको शीघ्रतासे पढ़ते-दौड़ते जानेकी विद्या है ।

राजकुमारोंको आरम्भमें ही समझा दिया गया कि वे बधिक नहीं है । वन-पशुको मारनेमें उनकी वीरता नहीं है, वृद्ध, अकेले पड़े, अपने आपको ही भार बने वनपशु वध्य होते हैं । मनुष्य-भक्षी अत्यन्त धूर्त वन-पशुको ढूँढ़कर मार देनेमें शौर्य है और जहाँ अत्यधिक संख्या-वृद्धिके कारण वन्यपशु कृषकोंकी कृषि तथा वनके उच्छेदक बन गये हों, वहाँ उनकी संख्या सीमित करनेके लिए सावधानी आवश्यक है आखेटमें । वहाँ भी केवल नर पशु जो शिशु न हों, वध्य होते हैं ।

कुमारोंके लिए आखेट आवश्यक था; क्योंकि दीर्घकालसे श्रीराम तथा उनके अनुज आखेटसे उपरत हो गये थे । वनके वृद्ध एवं बढ़े पशुओंका आखेट करनेकी प्रजा माँग कर रही थी । इससे राजकुमारोंका जहाँ अभ्यास परिमार्जित होना था, वहीं प्रजाकी आवश्यकतापूर्ति भी होती थी ।

राजकुमार केवल आखेट-सहायक निषादराज गुहके पुत्रको साथ लेकर अरण्यमें जाते थे। शीघ्र ही उनकी यह व्यावहारिक शिक्षा सम्पन्न हो गयी। तब उन्हें दिव्यास्त्र प्राप्त हुए। वे सविधि सैन्य-संचालन शूर बन गये।

●●●

लव-कुश-प्रशिक्षण

एकान्त-सेवी आराधकोंको अरण्य आशीर्वाद देता है अथवा प्रबल पौरुष वयक्तिको प्रमादहीन रखना सिखलाता है। अरण्यमें अनेक भय हैं तो अनन्त सद्गुण भी हैं; किन्तु इतना सुनिश्चित है कि कितनी भी सुव्यवस्था कर ली जाय, अन्ततः अरण्य तपस्थली ही रहता है। वहाँ पहुँचकर सम्राटोंको भी सहन करनेका अभ्यास करना पड़ता है।

काननवासीका अभय सहज स्वभाव है। संघर्ष एवं आशंकाके मध्य सतत सतर्क रहना उसे वन सिखला देता है। संक एवं मृत्यु उसके लिए अर्थहीन हो जाते हैं। इनके मध्य वह हँसते-खेलते रहना सीख लेता है।

कुश और लवकी उत्पत्ति अरण्यमें हुई। एकछत्र भूमण्डलके सम्राट्के ये सुत तपोवनमें तापसियोंके द्वारा पालित हुए। इन्हें सुरभित अंग मार्जन एवं सुगन्धित तैल सुलभ नहीं हुआ; किन्तु सुरदुर्लभ औषधियाँ, अद्भुत-प्रभाव वन-फलोंके बीजोंके तैलोंके द्वारा विश्ववन्द्य तपस्विनियोंने इन्हें संलालित किया।

सौन्दर्य-सद्गुणैक-सिन्धु माता-पिताके ये दोनों शिशु सूतिकागारसे बाहर आते ही केशरी, कपि, ऋक्षादिके स्नेह-भाजन हो गये। किस शिशुको सिंहनी स्नेहसे सूँघकर अपना सुख-स्पर्श देती है और अपना पयपान करानेका प्रयत्न करती है? किस अबोधके करोंसे केश खींचे जानेपर भल्लूक नाच उठता है? किसीको कपि भी अंकमें उठाकर वृक्षोंपर कूदनेको आतुर बनते हैं? किसे लताओंका नैसर्गिक पुष्पित दोला प्राप्त होता है और मयूर, हंस, पिक लोरी सुनाकर शयन कराते हैं।

जगन्माता श्रीजानकी, अरण्यमें पशुओंकी श्रद्धा प्राप्त करने और उन्हें स्नेहदानका पूर्वाभ्यास था उनको । वे चाहे जब अपने दोनों शिशु पुष्पोंसे लदी मालतीके दोलेमें सुलाकर केशरी या गजसे कह देतीं—'अब तुम इन्हें संदोलित करके शयन कराओ ।'

लव-कुशके संस्कार भले नगरके भव्य समारोहोंके चाकचिक्यमें सम्पन्न नहीं हुए; किन्तु सविधि सम्पन्न हुए । महर्षि वाल्मीकिने प्रत्येक संस्कार समयपर और तपोबलके उपयुक्त विधिसे सावधानीपूर्वक सम्पन्न कराये ।

इन शिशुओंको घुटनों सरकनेके लिए सुचिक्कन मणि-प्रांगण भले अप्राप्त रहा; किन्तु असंख्य वनपशुओंका संग-सुलभ रहा । झुण्डके झुण्ड पक्षी इनके साथ क्रीड़ा करने उपस्थित ही रहते थे । महर्षि प्राचेतस उनके आश्रमके अन्तेवासी, तपस्विनियोंका समुदाय इन शिशुओंको पाकर वात्सल्य-विभोर हो गया था । ये किलकते सरकते भागते थे तो लताओंसे पुष्प झरकर भूमिको कोमल कर देते थे । वृक्षोंके पत्र व्यजन करते हिलते थे । सम्पूर्ण प्रकृति इनकी धात्री बन गयी थी ।

श्रीसीता वात्सल्यमयी हैं । वात्सल्य इनका स्वरूप है । तृण, तरु, पिपीलिका तक प्रत्येक प्राणी ही इनका स्नेह भाजन है । अब मातृत्वने इनके वात्सल्यको जैसे नित्य कृपोन्मुख कर दिया था । अपने दोनों शिशुओंकी तो उन्हें चिन्ता करनी नहीं थी । इन चञ्चलोंके असंख्य पशु-पक्षी सखा थे । इनको स्नान कराने, पुष्प-श्रृंगार करनेवाले तपस्विनियोंके तपःपूत कर रहे थे । केवल इनको दुग्ध-पान कराना था और वह स्वयं स्मरण रखना था । ये दोनों तो आनन्दसिन्धुके सुत थे । जन्मसे ही रुदन इन्होंने जाना ही नहीं था ।

लव-कुश पैरों चलने योग्य हुए और उनका शिक्षण, प्रशिक्षण दोनों प्रारम्भ हो गया । श्रीजनक-नन्दिनीके समीप दूसरा तो कोई कार्य ही नहीं था । वे चाहे जितना आग्रह-अनुरोध करें, उन्हें उटजमार्जन, जलानयन जैसे कार्य तपस्विनियाँ करने नहीं देती थीं । शिशुओंकी सेवामें उनको सुख मिलता था । ब्रह्मचारी बालक फल, कन्द, शाक लाना भूल सकते नहीं थे । उलटे वनपशु जो उपहार डाल जाते थे, उन्हें वितरित करते रहना था ।

जहाँ बालकोंको विनोदमें, बहलानेके लिए भी व्याकरणके सूत्र और

श्रुतियोंके मन्त्र सुननेको मिलते हों, वहाँ उसे विद्वान बननेके लिए श्रम कहाँ करना पड़ता है । अक्षर-गान ही नहीं, आरम्भिक अधिकांश शिक्षा मातासे अनौपचारिक रूपमें प्राप्त हो गयी । जब अक्षरम्भ-संस्कार हुआ, लव-कुश सरलतासे भूर्जपत्रपर अंकित ग्रन्थ पढ़ सकते थे । उपनयनके समय तक तो उनको श्रुतियोंके अधिकांश मन्त्र सस्वर कण्ठ हो चुके थे । महर्षिके अन्तेवासी इन दोनों बालकोंको मन्त्र तथा मन्त्रोंके घन, जटा-पाठ करानेकी क्रीड़ा तबसे करने लगे थे, जबसे दोनोंने बोलना प्रारम्भ किया था ।

महर्षि वाल्मीकिको दोनों अनुपम श्रुतधर शिष्य प्राप्त हुए थे । अतः महर्षिने वेद, वेदांग, शास्त्र शिक्षाके साथ इन दोनोंको गान्धर्ववेदका उत्तम अभ्यास कराया । मातासे इन्होंने वीणावादन सीखा । महर्षिने इन्हें अपना आदि काव्य कण्ठस्थ करा दिया और उसके गायनकी पद्धति सिखलायी । लव-कुश कभी-कभी इस अमृतवर्षी काव्यके गानमें तन्मय होते थे तो सम्पूर्ण निशा व्यतीत हो जाती थी आश्रमके समस्त वासियोंकी स्वरतन्मय होकर ।

शत्रुघ्नकुमार अब मधुपुरीसे लौटते हुए रात्रिमें प्राचेतसाश्रम रुके थे, उस रात्रि लव-कुश दोनों भाई अपने गानमें निमग्न थे । तब इनकी आयु केवल बारह वर्षकी थी ।

महर्षि वाल्मीकि आदि कवि ही नहीं थे, अलौकिक तपस्वी थे और उस तपस्यासे पूर्व सुप्रसिद्ध धनुर्धर रहे थे । उन्होंने अब अपने पूर्वके पराक्रम एवं पद्धतिको स्मरण कर लिया था । लव-कुशको लक्ष्यवेधका अभ्यास कराते समय वे अपने शरीरको भी विस्मृत हो जाते थे ।

'वत्से ! इन बालकोंको वाल्मीकि सृष्टिका सर्वोत्तम अस्त्रवेत्ता बना देगा ।' महर्षिने श्रीमैथिलीको आश्वासन दिया था—'अपने सर्व-समर्थ, सर्वज्ञ पितासे ये किञ्चितन्यून भी नहीं रहेंगे ।'

उत्तम विनयी, श्रद्धालु, प्रतिभा-सम्पन्न शिष्य प्राप्त हो तो शिक्षकको उसके साथ श्रम करनेमें आनन्दानुभव होता है । लव-कुश श्रद्धा, विनयमें जैसे अद्वितीय थे, सेवा तत्पर थे, वैसे ही उनकी स्फूर्ति, स्मरणशक्ति तथा धृतिकी सीमा नहीं थी । सामान्य शस्त्र-चालनका अभ्यास उनका बहुत शीघ्र उत्तम हो गया । उन्होंने साधारण धनुषसे ऐसी शर-वर्षाका अभ्यास कर लिया कि

संसारके सुप्रसिद्ध धनुर्धर भी उनका सामना नहीं कर सकते थे ।

यह सत्य है कि तबतक सृष्टिमें दिव्यास्त्र-ज्ञाता महर्षि विश्वामित्र ही थे और उन्होंने श्रीराम-लक्ष्मणको अपने सब दिव्यास्त्र इन दोनोंकी बाल्यावस्थामें ही दे दिये थे; किन्तु महर्षि वाल्मीकिने दूसरी जो पद्धति अपना ली, उसके साथ विश्वामित्रके श्रेष्ठत्वका भी सम्मान समाप्त हो गया । ऐसा कौन-सा सुर था जो आदि कविके आह्वानकी उपेक्षा कर देता । महर्षि एक-एक दिन कई-कई देवताओंका आह्वान करते थे और उनके उपस्थित होनेपर आदेश कर देते थे—'यदि ये दोनों बालक आपको अधिकारी प्रतीत हों तो आप अपना दिव्यास्त्र इन्हें सब भेदोपभेदोंके साथ प्रदान करें ।'

इस प्रकार स्वयं अग्निने लव-कुशको आग्नेयास्त्र प्रदान किया । वायु वायव्यास्त्र दे गये । वरुणने वारुणास्त्रके साथ अनेक प्रकारके पाश दिये । दूसरोंकी चर्चा व्यर्थ है, भगवान् ब्रह्माने आकर ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मशिरस्त्रास्त्र दिये । कैलासेश्वर वृषभध्वज प्रसन्न होकर पाशुपत दे गये ।

जब श्रीहरिने नारायणास्त्रके साथ इषीकास्त्र, सम्मोहनास्त्र भी दे दिया, तब ऐन्द्रास्त्र जैसे अस्त्र कैसे अलभ्य रह सकते थे । लव-कुश दोनों सृष्टिके अद्वितीय अस्त्रज्ञ हो गये । अग्निदेवने दोनोंको दिव्य अखण्डनीय धनुष तथा अक्षय त्रोण प्रदान किये ।

संसारमें कम शूर थे त्रेतामें जो वितस्ति वाणोंका प्रयोग कर सकते थे । अयोध्यामें भी श्रीराम तथा उनके अनुज और अनुजपुत्र मात्र; किन्तु लव-कुशके लिए इन नन्हें वाणोंसे खेलना साधारण क्रीड़ा थी । वे सामान्य धनुषकी ज्याके सहारे भी इनकी अजस्त्र वर्षा करके बर्र जैसे उत्पीड़क मक्षिका-वर्गके प्राणियोंको भी मारे बिना, अपने समीप आनेसे रोक दिया करते थे ।

भगवान् नर-नारायणके अतिरिक्त पृथ्वीपर किसीके समीप इषीकास्त्र नहीं रहा है; किन्तु दोनों भाइयोंने अपने अभ्यास-कालमें धरासे अम्बर तक इषीकास्त्रसे अछिद्र भित्ति बना दी इषीका (सींकों) की । वायुकी गति रुद्ध हो गयी ।

इन अमोघास्त्रोंका प्रयोग, उपसंहार प्राप्त करके भगवती सीताके ये दोनों सुत त्रिभुवनमें सबसे अजेय हो गये थे । सुर-असुर सम्मिलित आक्रमण

करके भी इन्हें पराभूत करनेकी आशा नहीं कर सकते थे। लेकिन दोनों मर्यादा-पुरुषोत्तमके पुत्र थे। शक्तिका गर्व उनके मानसको कभी स्पर्श नहीं कर सका।

असत् पुरुषके समीप शक्ति होती है तो वह उद्धत हो जाता है। उसकी शक्ति उसे निर्बलोंको उत्पीड़ित करनेके लिए उत्साहित करती है। वह उच्छृंखल बनकर सभी मर्यादाओंकी उपेक्षा करने लगता है।

सत्पुरुषके समीप शक्ति होती है तो वह अधिक विनम्र, सेवाशील बन जाता है। अबलोंका संरक्षण उसे अपना अनिवार्य कर्त्तव्य लगता है। अतः वह इसीमें व्यस्त, संयमी तथा मर्यादाओंके माननेमें सदा सतर्क रहनेवाला होता है।

लव-कुश दोनों भाइयोंके समीप अनन्त अस्त्रज्ञानकी शक्ति थी, परन्तु साथ ही सन्तोषका पाठ उन्हें माताके दूधके साथ प्राप्त हुआ था। उनके लिए संयम सहज स्वभाव था। असंयम, औद्धत्यको उन्होंने सदा घृणास्पद, त्याज्य ही सुना-समझा था।

लव-कुशके लिए अपनी स्नेहमयी जननी परमाराध्या इष्टदेवी थीं। महर्षि वाल्मीकि शिक्षक थे, गुरु थे, पूज्य थे; किन्तु दोनों भाई कभी समझ नहीं सके कि दूसरे अन्तेवासियोंके समान वे महर्षिका पाद-संवाहन क्यों नहीं कर सकते। उन्होंने मातासे पूछा था—'अम्ब ! भगवान प्राचेतस हमारे पूज्य हैं ?'

'परम पूज्य हैं वत्स !' श्रीवैदेहीने मस्तक झुकाया।

'किन्तु हमारा अपराध क्या है कि वे वन्दनीय हमें अपनी चरण-सेवाका अवसर ही नहीं देते।' दोनों बालक कुछ खिन्न स्वरमें कह रहे थे—'अन्य सभी अन्तेवासियोंको यह सौभाग्य सुलभ है।'

'तुम दोनोंको वे अपना दौहित्र मानते हैं।' श्रीमैथिलीने श्रद्धा-विगलित स्वरमें कहा—'दौहित्रको स्नेह पानेका स्वत्व है। उसकी सेवा स्वीकार करनेकी श्रुति आज्ञा नहीं देती। तुम दोनोंको आग्रह करके उन्हें संकोचमें नहीं डालना चाहिये। उनके विनम्र आज्ञापालक बने रहो।'

'अम्ब ! तुम भी तो अपनी चरण-सेवा नहीं देती हो।' दोनों बालक ही थे। दोनों अन्तेवासियोंको सेवाशील देखते थे। उनके सरल श्रद्धापूरित

चित्तमें खेद होता था—'कोई भी ऋषि-मुनि अथवा तपस्विनी मातामही हमें सेवाके योग्य क्यों नहीं मानतीं ?'

'स्त्रियोंको बालकोंसे शरीर-सेवा नहीं लेनी चाहिये ।' सस्मित श्रीजानकीने कहा—'मैं तुम्हारे लाये फल, कन्दादि तो स्वीकार करती ही हूँ । दूसरे सबके तुम दोनों दौहित्र हो । अतः तुम दोनों सबके द्वारा संलालित होने योग्य हो । कोई भी तुम्हारा सेव्य बनना स्वीकार नहीं करेगा ।'

'हमारा कोई सेव्य नहीं है ?' दोनों भाइयोंने आश्चर्यपूर्वक पूछा ।

'हैं—बहुत हैं तुम्हारे सेव्य ।' भगवती वैदेहीके दृग भर आये—'किन्तु अभी तुम दोनों बालक हो । दूरस्थ हैं तुम्हारे सेव्य । दूसरे आश्रमोंके ऋषि-मुनि जब यहाँ अतिथि होते हैं, वे तुम्हारी सेवा स्वीकार कर लेंगे । अभी तो तुम बालक हो ।'

'अम्ब ! तुम रुदन मत करो ।' दोनों व्याकुल हो उठते हैं जब उनकी ये आराध्या जननी दृगोंमें अश्रु भर लेती हैं । दोनों समझ गये हैं कि इनसे कुछ पूछनेपर ये प्रायः दुःखी हो जाती हैं । दोनों आश्वस्त हैं—'हम बड़े होकर दूरस्थ सेवनीयोंके दर्शन कर लेंगे । हमको कोई शीघ्रता नहीं है । हम सेवा करेंगे—सारे संसारकी सेवा करेंगे ।'

कुशसे लव कुछ ही पल छोटे हैं; किन्तु कुशका वात्सल्य है अपने अनुजपर । दोनोंको कदाचित् ही कभी लगा हो कि वे योद्धा हैं—भूमण्डलके अद्वितीय योद्धा । दोनोंको गायन प्रिय है । महर्षिके आदि काव्यका गायन करते रहते हैं दोनों । महर्षि इसमें प्रोत्साहन देते रहते हैं । दोनोंकी एक ही महत्वाकांक्षा है—'बड़े होकर वे सेवा करेंगे—संसारके सब प्राणियोंकी सेवा ।'

●●●

शत्रुघ्नका पुत्रोंको अभिषेक

'अब तुमको मधुपुरी प्रस्थान करना चाहिये।' श्रीरामने एक दिन शत्रुघ्नकुमारको समीप बैठाकर स्नेहपूर्वक समझाया—'शासककी अपनी रुचि, अपने सुखका कोई महत्व नहीं है। क्षत्रियका पुत्र दूसरोंको शान्ति सुरक्षा देनेके लिए ही उत्पन्न होता है। कर्तव्य कठोर है, इसलिए कातर होना उत्तम नहीं है। प्रजा-प्रतिनिधि तथा मन्त्रियोंके बार-बार सन्देश आ रहे हैं। उनका अनुरोध उचित है। उनको एक सुयोग्य संरक्षक चाहिये। एक अवश्य उनके मध्य ऐसा चाहिये, जिसकी निष्पक्षतापर, सहानुभूतिपर वे विश्वास करते हों। जिसका सम्मान करते हों। साथ ही जो उन्हें अपने समूहसे शक्तिशाली लगे।'

'मनुष्य बहुत समय तक केवल आन्तरिक शक्तिके आधारपर संयमित रह सकता है, यदि वह एकान्त-सेवी हो अथवा परमार्थ-कामी हो।' श्रीरामने कहा—'किन्तु, अर्थ, धर्म, काममें लगे लोगोंसे स्वतः मर्यादापालनकी सम्भावना बहुत काल तक नहीं करनी चाहिये। उनको नियन्त्रणमें रखना आवश्यक है। नियन्त्रक—शासक वह सफल होता है, जिसकी शक्तिसे सब भय भी मानें और जिसके स्नेह तथा सेवाके कारण उसपर श्रद्धा भी करें।'

'कुमार! तुम्हें अपनेसे पृथक करते मुझे कम दुःख नहीं होता है; किन्तु तुम जानते हो कि राम प्रजाके हितके लिए अपना अंग-छेद करनेको भी उद्यत रहता है।' श्रीरघुनाथने आदेश किया—'मधुपुरीकी प्रजाकी आस्था है तुमपर। तुम उनके प्रिय हो। तुमने उनको असुरके उत्पातसे परित्राण दिया है। अतः उनका पालन करो। मेरे अभिषेकको अन्यथा मत करो। अब सीधे पहुँचो वहाँ। अयोध्यामें मुझे जैसे ही तुम्हारी आवश्यकता होगी, अवश्य तुम्हें बुला लूँगा। लेकिन अब मधुपुरीको शासकहीन करके मत आना। अपने पुत्रोंको वहाँकी प्रजाके पालनका दायित्व देकर आना।'

इस आदेशमें अनेक बातें अन्तर्निहित थीं—

१. शत्रुघ्नको अपने स्त्री-पुत्र सबको साथ ले जाना था और सीधे जाना था अर्थात् इस बार वे महर्षि वाल्मीकिके आश्रम रुकते जाये, यह सम्राट्को

स्वीकृत नहीं था ।

२. अब शत्रुघ्नकुमारको अयोध्याका आमन्त्रण पाये बिना यहाँ नहीं आना चाहिये । यद्यपि परमोदार अग्रजने बिना अनुमति आ जानेपर उपालम्भ नहीं दिया था; किन्तु यह सूचित कर दिया था कि यह उन्हें अच्छा नहीं लगा ।

३. अब अयोध्यासे तब बुलाया जायेगा, जब श्रीरघुनाथ स्वयं शत्रुघ्नका यह निर्वासन समाप्त कर देना चाहेंगे । उस अवस्थामें शत्रुघ्नको अपने पुत्रोंको मधुपुरीके राज्यपर अभिषिक्त करके आना है ।

प्रजाके अत्यन्त घृणित, अज्ञानपूर्ण, शत्रुघ्नकी समझसे दण्डनीय आक्षेपको भी सम्मान देकर जिन्होंने परम पवित्र पत्नीका परित्याग कर दिया, उनकी प्रजा-प्रीति, प्रजापालनकी चिन्ताका महत्त्व कम समझनेका साहस कौन कर सकता है । अतः शत्रुघ्नको यह आदेश स्वीकार करना पड़ा । एक ही आश्वासन था कि सम्राट् उन्हें कभी-न-कभी अपने समीप बुला लेनेको—सदाके लिए बुला लेनेको कह चुके । सत्यसन्ध श्रीरामके वचन अन्यथा नहीं हुआ करते ।

शत्रुघ्नको स्वयं कुछ नहीं करना था । श्रीराघवेन्द्रने पहिलेसे अपने इन अनुजकी यात्राका पूरा प्रबन्ध कर रखा था । चतुरंगिणी सेना, अपार सम्पत्ति, सेवक-सेविकाओंका समूह—सब प्रस्तुत था । शत्रुघ्नको समाचार नहीं था और सब सज्जित था । यह अग्रजका स्नेहोपहार था । इसे अस्वीकार किया नहीं जा सकता था ।

श्रुतकीर्तिको अपनी बहिनोंसे विदा लेनी पड़ी । दोनों बालक सुबाहु और श्रुतसेन अपने भाइयोंसे, मित्रोंसे मिलकर विदा हुए । विप्रोंने स्वस्त्ययन किया । मंगलवाद्य साथ चले । उर्मिला और माण्डवीकी पदरज मस्तकपर धारण करके शत्रुघ्न राजसदनसे निकले । श्रीराम भाइयोंके साथ उन्हें सरयूतट तक पहुँचाने गये । वहाँ भी हाथ पकड़कर उन्होंने शत्रुघ्नको रथपर बैठाया । शत्रुघ्नको और उनके पुत्रोंको आशीर्वाद दिया । बार-बार शत्रुघ्नको पुनः अयोध्या बुला लेनेका आश्वासन दिया । आत्मीयजनोंसे इस प्रकार दीर्घकालके लिए विदा होना सभीको विह्वल बना देता है । ये तो अत्यन्त प्रिय सुहृद वियुक्त हो रहे थे ।

संसारका स्वरूप ही यह है कि यहाँ एक स्थानका विषाद, अन्यत्रका उल्लास बनता है । एकके शोकाश्रु किसीके हास्यको उत्पन्न करते, उत्साहित करते हैं । शत्रुघ्न मार्गमें विश्राम करते मधुपुरी पहुँचे तो वहाँ उनका अत्यन्त भव्य स्वागत हुआ । पहिले तो वे लवणासुरकी पुरीपर आक्रान्त बनकर गुप्त रीतिसे आये थे । विजयी होनेपर भी निर्जन पुरी प्राप्त हुई थी उन्हें प्रवेशके समय; किन्तु यह पहिला अवसर था, जब प्रजाको अपने पालक, अपने उद्धार-कर्त्ता, अपने संरक्षक शासकका स्वागत करनेका अवसर मिला था । शत्रुघ्न जैसे प्रजाके पूजनीय पिता थे । सबमें उत्साह उमड़ पड़ता था ।

वाद्यघोष, मन्त्रपाठ, नृत्य, स्तवन, लाजा-हरिद्रा, कुंकुम, कुसुम, दूर्वाङ्कुर वर्षा, नीराजन तथा प्रजाके उपहारार्पणके मध्य शत्रुघ्न सपरिवार राजसदन पहुँचे । उन्होंने विप्रोंको, श्रेष्ठिवर्गको, सूत-मागधादिको, सेवकोंको— सबको पुरस्कार देकर सम्मानित किया । अयोध्या सम्राट्की ओरसे वस्त्र, आभरण, अन्न, गज-अश्व, गायें प्राप्त हुईं यथा-योग्य सबको ।

मन्त्रियों तथा प्रजा-प्रतिनिधियोंके मतैक्यने राज्यको समृद्ध बनाया था । राज्यकोषमें अन्न-धन बढ़ा था । अश्व, गज, रथ, पदाति सेना समृद्ध हुई थी । नगर तथा नगरसे दूर ग्रामोंकी भी शोभा-समृद्धि बढ़ी थी । पथ, मन्दिर, पान्थशालाएँ, सरोवर, कूप, वापी, सरिताओंपर सेतु—सब जनोपयोगी निर्माण सभी ओर पर्याप्त अधिक हुए थे ।

प्रजामें कोई असन्तोष, कोई विवाद कहीं नहीं था । किसी एकको भी उत्पीड़न अथवा शासक कर्मचारियोंकी उपेक्षाका उपालम्भ नहीं देना था । केवल प्रजा अपने परम प्रिय शासकका सान्निध्य पानेको उत्सुक थी ।

'हम राजदर्शनके पुण्यसे वञ्चित रहें, ऐसा हमारा कोई अपराध है ?' प्रजा-मन्त्रियों तथा अपने प्रतिनिधियोंसे बार-बार पूछती थी । शत्रुघ्नको आकर पहिले इसी सम्बन्धमें सावधान होना पड़ा कि लोग उत्साहातिरेकमें उपहारार्पण करके अभावका कष्ट न उठावें ।

अपने कुमारोंको शत्रुघ्नने प्रजासे परिचित होनेको उत्साहित किया । उन्हें शासनके अनुभवका अधिकतम अवसर देने लगे । छोटे कुमार श्रुतसेनने नगरसे बाहर दूरस्थ भागोंका निरीक्षण आरम्भ कर दिया था और सुबाहुने

नगरके लोगोंका स्नेहार्जन किया ।

'अयोध्यासे आह्वान आवेगा ?' शत्रुघ्नके प्राण इसी की आतुर प्रतीक्षा करते रहते थे ।

'उर्मिला और माण्डवी जीजीके पदोंमें बैठनेका सौभाग्य पुनः प्राप्त होगा ।' श्रुतकीर्तिकी प्रधान आशा यही थी ।

मन्त्रियोंको, प्रजा-प्रतिनिधियोंको शत्रुघ्नने स्पष्ट सूचित कर दिया था कि वे कभी भी अयोध्या जा सकते हैं । लेकिन अब प्रजाने अपने शासक प्राप्त कर लिये थे । कुमार सुबाहु एवं श्रुतसेनके शील, सौजन्य, शौर्य, औदार्य तथा सौहार्द्रने सबको सम्मोहित कर लिया था ।

अयोध्यासे आह्वान आया— यद्यपि पर्याप्त विलम्बसे आया; किन्तु शत्रुघ्नके प्राण मानो पुनरुज्जीवित हो उठे । श्रीराघवेन्द्रने शम्बूक-वधके पश्चात् अयोध्या लौटकर अपने अश्वमेध-यज्ञ करनेका निर्णय घोषित किया था । इस महायज्ञमें सहायताके लिए सभी सुहृदोंको आमन्त्रित किया गया था । शत्रुघ्नने अपनी संगिनीको सचेत कर दिया—'सम्राट्ने आश्वासन दे रखा है कि अयोध्या आकर पुनः पृथक होना अब हमारी इच्छापर निर्भर करेगा ।'

मन्त्रियोंको, प्रजा-प्रतिनिधियोंको सूचना दे दी गयी । प्रजाको राजसदनकी घोषणासे आश्चर्य नहीं हुआ । सबको पहिलेसे सम्भावना थी कि कभी ऐसी स्थिति आ सकती है । अतः सर्वत्र घोषणाका स्वागत हुआ ।

अल्पकालिक शुभ मुहूर्त शोधित करके कुमार शत्रुघ्नने मधुपुरी राज्यके दो भाग किये । राजधानीके सिंहासनपर ज्येष्ठ पुत्र सुबाहुका और दूसरे भागपर श्रुतसेनका अभिषेक कर दिया ।

प्रजासे, पुत्रोंसे सत्कृत होकर शत्रुघ्न सपत्नीक अयोध्याकी ओर चल पड़े । उन्होंने पुत्रोंको आदेश दे दिया था कि अश्वमेधके आरम्भमें अयोध्यासे आदेश आनेपर वे सम्राट्की सेवामें उपस्थित हों ।

●●●

शम्बूक-वध

आप कहीं चले जायें, पृथ्वीके किसी भी राज्यमें आपको वैज्ञानिक शोधकी असीम स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होनेवाली है । व्यक्तिको शक्ति प्राप्त करनेकी उतनी ही स्वतन्त्रता दी जा सकती है, जितनी समाजकी मर्यादाओंकी सुरक्षाको सन्दिग्ध न बनाती हो । आप चाहते हों—शक्ति प्राप्त करनेका इसलिए उद्योग करते हों कि कभी भी बिना वैधानिक मार्गके राष्ट्रपति या प्रधानमंत्रीकी कार्यकारिणीमें उनकी इच्छाके विपरीत प्रविष्ट हो सकें तो आपके प्रयत्नकी सफलतासे पूर्व—आपके शक्ति-सम्पन्न होनेसे पहिले आपको प्राणदण्ड दे देनेवाला शासक सावधान समझा जाना चाहिये । उसके विरुद्ध अन्यायका आरोप नहीं लगाया जा सकता । शम्बूकवधके प्रसंगमें यह तथ्य स्मरण रखें ।

यदि सम्भावना हो जाय कि कोई ऐसी शक्ति प्राप्त करनेके प्रयत्नमें हैं कि वह बलात् अवैधानिक रूपमें विधान सभामें बैठ सके और ऐसी शक्ति प्राप्त कर लेना सम्भव भी हो तो संकट उत्पन्न होनेसे पूर्व उसको मार देना उचित उपाय माना जायेगा ।

सुर आग्नेय-तत्त्व-प्रधान ज्योतिर्मय सूक्ष्म देह-धारी हैं । स्वर्ग मानसिक सूक्ष्म लोक है । वहाँ कोई मानव किसी समय परिस्थिति विशेषमें अल्पकालके लिए अतिथि हो सकता है; किन्तु सशरीर स्थायी रूपसे स्वर्गमें रहनेकी मानवकी आकांक्षा अवैधानिक है । यह उस लोककी मर्यादाके प्रतिकूल हैं, अतः अपराध है ।

त्रिशंकुने यह अपराध किया था । महर्षि विश्वामित्रके तपोबलने उसे सशरीर स्वर्ग भेज दिया; किन्तु सुरोंने उसे वहाँ रहने नहीं दिया । वह अविलम्ब नीचे गिरा दिया गया । जहाँ पुण्यात्मा प्राणी देहत्यागके पश्चात् जाते हैं, वहाँ सशरीर जा धमकनेका प्रयत्न ऐसा ही है जैसे कोई गुरिल्ला वनमानुष बलपूर्वक विधान सभामें घुस जाना चाहे । तब उसका स्वागत होगा या उसे गोली मारी जायेगी ?

शम्बूक शूद्र था । युग त्रेताका था । वह उग्र तप कर रहा था । उसका

उद्देश्य सशरीर स्वर्ग ज़ाना था । अनधिकारी व्यक्ति, निषिद्ध समयमें, निषिद्ध रीतिसे, निषिद्ध स्थानमें प्रवेशका प्रयत्न कर रहा था । तपस्यामें अपार शक्ति है । अनेक बार तपोबलसे असुरोंने (यद्यपि वे देववर्गके ही हैं, देवताओंके अग्रज हैं) स्वर्ग पर अधिकार कर लिया है । अतः शम्बूकके तपसे सुरोंका सशंक होना स्वाभाविक था । विप्रपुत्रकी मृत्यु तो सुरोंकी ओरसे पृथ्वीके शासकको जो मर्यादाकी रक्षाका दायित्व रखता था, सावधान करनेका प्रयत्न था ।

अयोध्याकी राजसभामें प्रायः कोई कार्यार्थी नहीं आता था । प्रजाके लोग सन्तुष्ट, सम्पन्न, शान्त थे और स्वधर्मनिष्ठ थे । अतः असन्तोष, अभाव, संघर्ष स्वप्न हो गये थे । शासके लिए कोई कार्य नहीं रह गया था ।

'अकाल मृत्यु ?' अचानक एक दिन पूरे नगरमें सनसनी व्याप्त हो गयी । त्रेतामें किसी बालककी मृत्यु एक अकल्पनीय दुर्घटना थी और वह घटित हुई थी । घर-घर, जन-जनके मुखपर वही चर्चा, सब आशंकाग्रस्त—'अकाल मृत्यु ?'

किसी दूरस्थ ग्रामसे एक ब्राह्मण अपने शिशुका शव हाथोंपर उठाये रुदन करता अयोध्या आया था । वह रोते-रोते बार-बार कह रहा था—'वत्स ! तुम्हारा कोई पाप नहीं था । मैंने सब विचार करके देख लिया, ग्रह गणित कर लिये, तुम्हें दीर्घायु योग मिला था । मैंने भी ऐसा कोई पाप नहीं किया कि मुझे पुत्र-वियोग प्राप्त हो । यह अवश्य और किसीका दोष है । दूसरेके दोषका दण्ड दूसरेको मिले तो वह शासकका प्रमाद होता है । तुम पितृ-श्राद्ध किये बिना परलोक कैसे चले गये ?'

'राम ! तुम्हें दीर्घायु प्राप्त हो ।' ब्राह्मणके पुत्रकी अकाल मृत्यु सुनकर सम्राट् स्वयं भाइयोंके साथ राजद्वारपर आये तो उन्हें देखकर ब्राह्मणने शाप नहीं दिया, क्रोध नहीं किया । केवल दुःखित स्वरमें बोला—'हम पति-पत्नी तो यहाँ राजद्वारपर अनशन करके देहत्याग करने आ गये हैं; क्योंकि राजाके दोषसे ही राज्यमें ऐसे अमंगल होते हैं । अब इस शिशुके शवका तुम्हें जो उचित लगे, करो ।'

ब्राह्मणने पुत्रका शव सम्मुख रख दिया । श्रीराम बहुत दुःखी हुए ।

उन्होंने उस विप्रसे कहा—'ब्रह्मन् ! आप हमें कुछ समय दें । इस शिशुको पुनर्जीवन देनेके लिए जो भी प्रयत्न सम्भव होगा, राम अवश्य करेगा ।'

'शिशुका शरीर तैलद्रोणीमें इस प्रकार सुरक्षित किया जाय कि सप्राण होनेपर उसे कष्ट न हो ।' भरतको आदेश हुआ 'निरन्तर तब तक सावधान सेवक इस शरीरपर दृष्टि रखें, जब तक यह सप्राण नहीं हो जाता ।'

'लक्ष्मण ! कुलगुरुको और आस-पास जितने महात्मा प्राप्त हों, सबको शीघ्र बुला लो ।' मर्यादा-पुरुषोत्तमको मृत्यु-लोककी मर्यादा भी सुरक्षित रखनी थी । वे सक्रिय हो चुके थे—'जब तक यह शिशु जीवन नहीं प्राप्त करता, राम जल ग्रहण नहीं कर सकता ।'

ब्राह्मण और उसकी पत्नी अवाक् देखते रह गये । अब आग्रह करनेका कोई भी अर्थ नहीं था । सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम एक बातको दो प्रकारसे तो बोल नहीं सकते । उनके मुखसे निकल गया वह अटल हो गया । श्रीराम जल-ग्रहण नहीं करेंगे तो उनके भाई, भ्रातृपत्नियाँ, राजपरिवारके सेवक-स्वजन अथवा अयोध्याके कोई भी प्रजाजन जल ग्रहण कर सकेंगे ?

अब केवल ब्राह्मण दम्पत्तिके अनशन तक बात कहाँ रही ? अयोध्याके तो पशु-पक्षियों तकने आहारसे मुख हटा लिया । कैसा भी होता इस बालकका प्रारब्ध-जिसके जीवनके साथ इतने प्राण सम्बद्ध हो गये, उसे मार देनेका साहस स्वयं मृत्युमें भी होगा ! यह तो सुनिश्चित हो गया कि शिशुको प्राण प्राप्त होकर रहेंगे । वह जीवित होगा, दीर्घायु होगा । प्रश्न केवल समयका रह गया और जब स्वयं श्रीरामने जल-ग्रहण त्याग दिया, समय दीर्घ नहीं हो सकता । विश्वका विधायक इतने बड़े समूहके ऐसे संकल्पके सम्मुख अधिक सुस्थिर नहीं रह सकता ।

ब्राह्मण और उसकी पत्नीका रुदन शान्त हो गया । उन्होंने राजद्वार पर पड़े रहनेका आग्रह स्वतः त्याग दिया और पान्थशालामें चले गये । उनसे आहार-ग्रहणको भी कहा जाता तो वे अपने ऐसे उदार सम्राट्की जीवन-रक्षाके लिए वह भी कर लेते । अब पुत्रके पुनर्जीवनका उनका आग्रह उन्हें मोह लगने लगा था । वे अपने इस प्रकार अयोध्या आनेपर दुःखित थे, पश्चात्ताप-पीड़ित थे; किन्तु अब बात उनके वशमें नहीं थी । अब तो सम्राट्ने संकल्प कर लिया

था । सम्राट् उपोषित थे तो किसीको भी जल-ग्रहण नहीं करना था ।

'मेरा क्या दोष है ? इस त्रेतायुगमें ही बालककी मृत्यु कैसे हो गयी ?' महात्माओंके आते ही श्रीरामने उनका सत्कार करके पूछा । क्योंकि सतयुग अथवा त्रेतामें मृत प्राणीको जब त्रेतामें मनुष्य शरीर प्राप्त करने योग्य प्रारब्ध मिला तो उसे अपने उद्धारका अवसर प्राप्त हुए बिना काल-कवलित क्यों होना चाहिये । ऐसे कलुषित प्रारब्धोंका उदय तो केवल कलियुगमें होता है, जब कि नरकसे अथवा पशुयोनिसे प्राणी केवल मानव-शरीरमें आने मात्रको जन्म लेकर मर जा सकता है ।

देवर्षि नारद आ गये अकस्मात् । श्रीराघवेन्द्रका प्रश्न उन्होंने सुन लिया था । उन नित्य परिव्राजकका स्वभाव ही ऐसा है कि उठकर चल देनेकी शीघ्रता लगी रहती है उन्हें । अतः स्वयं बोले—'रामभद्र ! यह बालमृत्यु वर्णाश्रम धर्ममें विपर्ययकी सूचक है । वर्णाश्रमकी मर्यादामें सबको रखना शासकका कर्तव्य है ।'

'निष्काम कर्म अथवा तप करनेका सबको सब समय अधिकार है । अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए, मोक्षके लिए, भगवत्प्रेम-प्राप्तिके लिए किये जानेवाले साधन प्रतिबन्धोंसे प्रायः विनिमुक्त हैं ।' देवर्षिने अपने वचनोंकी व्याख्याकी— 'लेकिन जब कर्म सकाम होता है, तब वह तप, जप, यज्ञ, पाठ, अर्चन कुछ भी हो, उसमें देश, काल तथा अधिकारीका निर्णय आवश्यक हो जाता है । इसमें विपर्यय होनेपर लोकमें व्यवस्था-विपर्यय अनिवार्य है ।'

'प्रथम पाद्मकल्पके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें तो एक ही वर्ण था । मानव केवल प्रणवका जप करता था, तप एवं ध्यानमें तल्लीन वृक्षोंके नीचे या गुहामें चाहे जहाँ रहता था; किन्तु वर्तमान श्वेत वाराह कल्पके इस वैवस्वत मन्वन्तरके सतयुगमें केवल ब्राह्मणको सकाम तप करनेका अधिकार था । भौतिक भोगों एवं यशादिके सम्बन्धमें सबकी प्रारब्ध पर दृढ़ आस्था थी । ब्राह्मण स्वर्ग-काम तप करते थे । वे सन्तोषी, तितिक्षु तथा भोग-पराङ्मुख थे, अतः उनका तप कोई अव्यवस्था उत्पन्न नहीं करता था ।'

'त्रेतामें सतयुगके समान सब सात्विक नहीं रह गये । रजोगुण बढ़ा तो कर्म-प्रवृत्ति बढ़ी । क्षत्रियके पुरुषार्थकी पुकार उठी कि वह यश एवं प्रभुत्वकी

प्राप्तिके लिए प्रयत्न करेगा । अतः त्रेतामें तप करनेका अधिकार क्षत्रियको भी प्राप्त हो गया । इससे भी कोई अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती थी । क्योंकि क्षत्रिय भोगोन्मुख नहीं हैं । उन्हें प्रभुत्व चाहिये, शक्ति चाहिये शेष समाजकी रक्षा करनेके लिए । अतः वे तपसे शक्ति-सम्पन्न बनें तो बाधा नहीं है ।'

'आगे द्वापर संशयका युग आवेगा । मनुष्य प्रारब्ध-प्रधान या पुरुषार्थ—इसमें सन्दिग्ध हो जायेगा । वैश्यको अर्थ चाहिये । यद्यपि अर्थ उसे भी उपभोगके लिए नहीं, धर्मके लिए, यज्ञ, देवस्थान धर्मशाला सरोवरादि-निर्माण तथा दानके लिए ही चाहिये; किन्तु इसमें वह पुरुषार्थ करना श्रेष्ठ मानता है तो आधिदैविक उपाय—तप भी उसके लिए विहित हो गया । उसके तपसे भी कोई अव्यवस्था उत्पन्न नहीं होती ।'

'अव्यवस्था तब उत्पन्न होती है जब भोग-काम लोग आधिदैविक उपायका अवलम्बन लेते हैं । कलियुगमें ऐसा होगा । तब दरिद्र, अयोग्य व्यक्ति साधुवेश स्वीकार करेंगे । जप-तप करेंगे—इसलिए करेंगे कि इससे उन्हें कोई सिद्धि प्राप्त हो जाय अथवा समाजमें उनके प्रति श्रद्धा जागृत हो जाय । इस सिद्धि अथवा लोक-श्रद्धाके द्वारा वे अर्थोपार्जन करके विशाल भवन तथा प्रभूत भोगोंका परिग्रह करेंगे । फलतः अकाल, महामारी—असामयिक मृत्यु प्रभृति उपद्रव संसारमें सामान्य घटना बन जायेंगे ।'

'श्रीराम, इस त्रेतामें असमयमें, एक शूद्र-अनधिकारी उग्र सकाम तप—अनधिकृत साधन, सशरीर स्वर्ग जानेकी कामनासे, अनुचितकी उपलब्धिके लिए कर रहा है ।' देवर्षिने अब कारण स्पष्ट किया—'अतः उसके पार्श्वमें बसनेवाले इस विप्रका पुत्र मरा है । ब्राह्मण वेदज्ञ होनेके कारण पड़ोसीको वारित करनेका दायित्व इसका भी है । वह शूद्र तपसे निवृत्त हो, तब विप्रपुत्र सजीव होगा ।'

देवर्षिने कारण बतलाया और 'नारायणहरि' कीर्तन करते चले गये । श्रीरामने पुष्पक विमानका स्मरण किया । विमान उपस्थित होनेपर लक्ष्मणके साथ उसमें आरूढ़ हुए । अरण्यमें तपोनिरत शूद्रका अन्वेषण नहीं करना पड़ा । वह दिव्य विमान सीधे उस स्थानपर पहुँचा । अब श्रीरामको इस अनधिकारीके तपमें अपने योगदानका भी आभास हुआ । यह दण्डकारण्य था । यहाँ तपस्वी ब्राह्मणोंको भी राक्षस उदरस्थ कर लेते थे । श्रीरामने राक्षसोंको मारकर इसे

निरुपद्रव न किया होता तो महातप करने आकर शूद्र कभीका राक्षसोंके पेटमें पहुँच चुका होता ।

दण्डकारण्यके भी दक्षिण भागमें एक कृष्ण वर्ण, दीर्घ जटा-श्मश्रु, कंकालप्राय पुरुष अपने दोनों पैर वृक्षकी शाखासे बाँधकर उलटे लटका नीचे आर्द्र ईंधन जलाकर उठते धूम्रमें मुख किये था । पुष्पक वहाँ उतरा श्रीरामने समीप जाकर पूछा—'महानुभाव ! आप कौन हैं ? अपना परिचय दें । आप यह अशास्त्रीय तामस तप किस उद्देश्यसे कर रहे हैं ?'

शूद्रका साहस नहीं था कि वह सम्राट्को देखकर भी स्थिर रह पाता । प्रयत्न करके उसने हाथ ऊपर उठाकर शाखा पकड़ी । ऊपर शाखा पर बैठकर अपने पैर खोले, नीचे आया । उसने अपना परिचय दिये बिना मस्तक झुकाकर कहा—'मैं इसी शरीरसे देवत्व पानेका प्रयत्न कर रहा हूं ।'

'आप यज्ञोपवीतहीन हैं, अतः द्विज नहीं हो सकते ।' श्रीरामने शासकके आदेशपूर्ण स्वरमें कहा—'मानव-शरीरसे देवत्व नहीं पाया जाता । यह विप्रके लिए भी वर्जित दुराग्रह है । आप इस तपका त्याग करके अपने आवास लौटें । अपना समाजोचित कर्तव्य करें । मैं आपको आपके स्थानपर पहुंचा दे सकता हूँ । विमानमें बैठें ।

शूद्र तापसने स्वीकृतिमें सिर भी नहीं हिलाया । वह चुप खड़ा रहा । तब श्रीरामने खड्ग खींच लिया । यद्यपि आघात करते उनका कर कम्पित हुआ; किन्तु उसका मस्तक काट दिया उन्होंने । सहसा उसके शरीरसे एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ । देवताओंने पुष्प-वर्षा की । देवलोकका विमान उस दिव्य पुरुषको लेने आ गया ।

'इन तपस्वीकी कामना पूर्ण हो गयी ।' श्रीरामने विमानमें आये देवताओंसे प्रार्थना की—'अब उस मृत ब्राह्मण-पुत्रको भी जीवनदान प्राप्त हो ।'

'वह जीवित हो चुका सम्राट् !' देवताओंने प्रसन्न होकर कहा—'आपने सुरोंका प्रिय किया और पृथ्वी तथा देवलोक दोनोंकी मर्यादा रक्षा की है ।'

●●●

अश्वमेधकी प्रेरणा

अगस्त्याश्रम वहाँसे दूर नहीं था, जहाँ तक तपस्वी शूद्रका अन्वेषण करते विमान आ पहुँचा था । वैसे भी सत्पुरुष अपनी प्रशंसा-श्रवणसे बचना चाहते हैं । जब मृत ब्राह्मणपुत्र जीवित हो चुका, तब तत्काल अयोध्या लौटना अनावश्यक हो गया । वहाँ अभी जाकर तो प्रशंसा ही सुनना था । अतः महर्षि अगस्त्यके दर्शन करना अधिक उचित प्रतीत हुआ ।

अमिततेजा महर्षि अगस्त्य जैसे पुष्पकके आगमनकी प्रतीक्षा ही करते हों । विमानके भूमिपर उतरते ही अर्घ्य लिये आगे आ गये । श्रीराघवेन्द्रने लक्ष्मणके साथ भूमिष्ठ होकर प्रणिपात किया । महर्षिने दोनों भाइयोंको उठाकर हृदयसे लगाया । उटजमें ले जाकर आसन देकर पूजन किया ।

श्रीराम अब भी कुछ लज्जित थे । इन्होंने मस्तक झुका रखा था । एक तपस्वीको मारना पड़ा, यह कर्म अब भी करुणासिन्धुको उचित नहीं प्रतीत हो रहा था । सर्वज्ञ महर्षिने इसे लक्षित किया । बोले—'तुम सम्राट् हो, मेरे प्रिय हो और आज तो धर्म-रक्षक होकर उपस्थित हुए हो । एक विप्रके पुत्रको तुमने जीवनदान किया है, अतः अत्यन्त आदरणीय हो गये हो । शासकको लोकोत्पीड़कका उच्छेद करना कर्तव्य है ।'

'भगवन् ! वह अरण्यमें एकाकी तप कर रहा था ।' श्रीरघुनाथने शंकाकी ।

'वह सुरोंके लिए आतंक बन रहा था ।' महर्षिने स्नेह-पूर्वक तनिक झिड़का—'अज्ञके समान तुम ऐसे तर्क नहीं कर सकते । तप-मन्त्र या यन्त्र-शक्ति, भूत-प्रेत साधनके द्वारा जो दूर बैठकर दूसरोंके अनिष्टका कारण बनते हैं, वे केवल अपराधी ही नहीं होते, घोर दुष्कर्मी होते हैं । उनका वध एक समर्थके शासनका विधान होना चाहिये । ऐसे अप्रत्यक्ष उत्पीड़कोंसे प्रजाको परित्राण देनेवाला अधिक प्रशंसनीय है । तुमने उस अनधिकारी, अनुचित दुराग्रही शूद्रको मारकर शासका कर्तव्य पालन किया है ।'

'श्रीराम ! राजा उचित कर्म करनेवालोंको विशेष अवसरोंपर पुरस्कृत

करता है ।' महर्षिने हँसकर कहा—'ऐसे ही राजा भी कोई प्रशंसनीय कर्म करे तो उसे पुरस्कृत किया जाना चाहिये । तुम मेरे उपहार स्वीकार करो ।'

कभी देवी लोपामुद्रा (अगस्त्यपत्नी)के मनमें दक्षिणके किसी राजसदनमें जानेपर वहाँकी रानीको देखकर वैसे उत्तम वस्त्र तथा आभूषणोंकी कामना जागी थी । उन्होंने आकर पतिसे कहा । महर्षि हँस पड़े थे; किन्तु विश्वकर्माने स्वतः महर्षिके मनकी बात समझकर महर्षि-पत्नी तथा महर्षिके भी उपयुक्त दिव्य वस्त्र तथा आभरण प्रस्तुत कर दिये थे । ऐसे वस्त्र जो न कभी मलिन होते थे, न जीर्ण होते थे । ऐसे आभूषण जिन्हें धारण करनेपर अंगकान्ति अम्लान रहती थी । शरीर स्वस्थ बना रहता था । स्फूर्ति जागृत रहती थी ।

'अब हम इन वस्त्राभरणोंको धारण करके भोगी बनेंगे ?' विश्वकर्मा उन्हें अर्पित करके चले गये तो महर्षिने पत्नीकी ओर देखा । उन अमल अन्तःकरण देवीको बड़ी ग्लानि हुई । अतिशय लज्जा लगी । अपने मानसिक लोभको भी च्युति मानकर उन्होंने बहुत दिनों तक कठोर तप किया । वस्त्राभरण वैसे ही उपेक्षित पड़े रहे ।

महर्षिने उन वस्त्राभरणोंमें-से पुरुषोचित वस्त्र, आभूषण उठाये और बोले—'ये हम अरण्यवासियोंके लिए अनुपयोगी हैं । इन्हें स्वीकार करो ।'

'भगवन् ! क्षत्रियको किसीसे भी दान नहीं लेना चाहिये ।' श्रीरामने संकोचपूर्वक कहा—'ब्राह्मणसे प्रतिग्रह लेना तो किसी प्रकार उचित नहीं ।'

'आदि सतयुगमें कोई शासक नहीं था । पृथ्वीपर जब रजोगुणका प्रभाव पड़ा, मतभेद उत्पन्न होने लगा, ऋषियोंने सुरेन्द्रसे शासक प्रदान करनेकी प्रार्थनाकी । सुरोंने मनुको ही प्रथम शासक नियुक्त किया ।' महर्षि ने समझाया—'तभीसे राजाका सत्कार करना सबका कर्तव्य निश्चित हुआ । राजाको सबसे भेंट लेनेका अधिकार देवताओंने दिया ।'

महर्षिके स्नेहकी स्नेहकी अवमानना अनुचित थी, अतः उनका उपहार स्वीकार करना पड़ा । महर्षिके आग्रहपर सानुज श्रीराम उस रात्रि उसी आश्रममें रहे ।

'देवराज इन्द्रने देवताओंको दुःखी होते देखकर अपने ही तपस्वी पुरोहित विश्वरूपका वध किया था । यद्यपि विश्वरूप ब्राह्मण थे; किन्तु अपने

मातृस्नेहके कारण मातृपक्षीय असुरोंको भी अप्रत्यक्ष आहुति देकर पुष्ट करते रहते थे ।' प्रातःकाल विदा होनेसे पूर्व श्रीरामको महर्षि अगस्त्यने एक वैदिक आख्यान सुनाया—'इससे इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी । इस हत्याका प्रायश्चित्त अश्वमेध यज्ञके द्वारा करके देवेन्द्र परिशुद्ध-कल्मष हो गये थे ।'

महर्षिने देख लिया था कि श्रीरामके मनसे शूद्र-तापसके वधकी ग्लानि जा नहीं रही है । वे समझानेपर शील-संकोचके कारण बोलते नहीं हैं; किन्तु उनका अतिशय उदार अन्तःकरण सुरोंके तथा मेरे कहनेपर भी अपने कर्मको नृशंस ही मानता है । कर्त्तव्यके कठोर दायित्वको पूरा करनेके लिए इन्होंने उसे मार तो दिया; किन्तु मनमें दुःखी हो रहे हैं । अतः महर्षिने इस उपाख्यानके अन्तमें कहा—'सुरगुरु बृहस्पतिने विधान किया है कि अश्वमेध करके मूर्धाभिषिक्त नरेश समस्त विश्वके वधसे भी निष्पाप हो जाता है ।'

'वत्स श्रीराम ? तुम समर्थ हो । तुम्हारे पूर्वजोंने सौ-सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं । तुम अश्वमेध करो ।' अगस्त्यने प्रेरणा दी—'इससे तुम्हारा सुयश सम्पूर्ण भूमण्डलमें विस्तीर्ण होगा । अश्वमेधके समान दूसरा कोई यज्ञ शक्तिशाली नरेशके लिए यश, पुण्य और परमैश्वर्य प्रदाता नहीं है ।'

'कुछ करना चाहिये—कुछ अवश्य किया जाना चाहिये, जिससे यह मानसिक ग्लानि मिटे ।' शम्बूक-वधके पश्चात् बार-बार श्रीराघवेन्द्रका अन्तःकरण पुकार रहा था; किन्तु क्या किया जाना चाहिये, यह नहीं सूझ रहा था । ऐसे कर्मोंका प्रायश्चित्त स्वयं निर्णय किया जाय, यह मर्यादा नहीं है । सुर उसे अपराध ही नहीं मानते थे । महर्षि अगस्त्यने भी उसे उचित कह दिया, इससे श्रीरामकी उलझन ही बढ़ी थी । अब दूसरा कोई ऋषि-महर्षि इस कर्मको अकरणीय ही नहीं मानेगा तो प्रायश्चित्त कैसे बतावेगा ?

अनेक अवसरोंपर हिंसा उचित होती है । युद्धमें किसीकी प्राण-रक्षार्थ, गौ-ब्राह्मण, बालक, नारी तथा अपने प्राण-संकटसे परित्राणके लिए हिंसा अनुचित नहीं है । शम्बूककी हत्यासे विप्रपुत्रको जीवन प्राप्त हुआ, अतः वह हत्या उचित थी, यह तो प्रमाणित हो गया; किन्तु यह कार्य मर्यादाके अनुरूप नहीं हुआ । मर्यादा-पुरुषोत्तमका अनुकरण करेंगे आगे मानव । सामान्य मनुष्यकी निर्णायिका क्षमताको छुट्टी नहीं मिलनी चाहिये । जिसे भी कोई तपस्वी, साधक

अनुचित तप कहने लगे, वही राजा उसका वध कर दे, यह मर्यादा तो स्थापन करने योग्य नहीं है । वेन जैसे श्रुति-संत-विरोधी शासक भी तो होंगे—हो सकते हैं ।

मानवके मनकी राजस-तामस प्रवृत्तियोंको तनिक भी अवलम्ब मिल जाय तो वे अनर्थकारिणी हो जाती हैं । अतः मर्यादा-पुरुषोत्तमको यही लोकमें दिखलाना था कि वे स्वयं अपने तापस-वधके कार्यको उचित नहीं मानते, भले सुर एवं ऋषि उसमें अनौचित्य न देखते हों । इसके लिए कुछ प्रतिकार किया जाना आवश्यक था । प्रतिकार भी ऐसा जो अपने ही मनसे निर्णीत न हो । जिसको शास्त्र प्रतिपादित कहा जा सके । जिसे किसी सुप्रसिद्ध ऋषिका समर्थन प्राप्त हो ।

अब महर्षि अगस्त्यने प्रायश्चित्तका स्पष्ट नाम लेकर अश्वमेध यज्ञ करनेका आदेश दिया तो समस्याका समाधान हो गया । श्रीरामका चित्त प्रसन्न हो गया । मनमें कलसे जो उलझन चल रही थी, मिट गयी । इनके सदा गम्भीर मुखपर प्रसन्नता आ गयी ।

'मैं अवश्य आदेशका पालन करूँगा ।' श्रीराघवेन्द्रने स्वीकार किया । महर्षिके चरणोंमें सानुज प्रणाम करके उनसे विदा लेकर, उनकी परिक्रमा करके पुष्पकपर बैठे । विमान अयोध्या उतरा तो वहाँ सम्राट्की आतुर प्रतीक्षा चल रही थी । ब्राह्मण दम्पत्ति जीवित पुत्रको लिये हर्ष-विभोर सबसे आगे दौड़ते आये ।

श्रीरामने उस ब्राह्मणको बहुत अधिक धन, गायें आदि देकर आदरपूर्वक भोजन कराके विदा किया । उसके जानेके पश्चात् कुलगुरु तथा विप्रोंको भोजन कराके सब भाइयोंके साथ जब स्वयं भोजन कर लिया, तब अयोध्याकी प्रजाने अपने व्रतका पारण किया ।

●●●

स्वर्ण-सीता

अश्वमेध यज्ञ किया जाय, इस सम्बन्धमें अयोध्यामें दो मत हो ही नहीं सकता था। प्रजा और प्रजा-प्रतिनिधि बहुत पहिलेसे इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। राज्यकी विजय-वाहिनीके सैनिकोंकी यह परमभिलाषा थी। महासेनापति अनेक सैनिक समारोहोंमें कह चुके थे—'दशग्रीव-दलनका श्रेय वानर-रीछोंने ले लिया। अब तो अयोध्याके सैनिकोंको सम्राट्के अश्वमेध यज्ञके समय अपने शौर्यको सार्थक करनेका अवसर प्राप्त होगा ?'

'कब आवेगा वह अवसर ?' सैनिक बार-बार पूछते थे। राजसूय तथा वाजपेय यज्ञोंने उनको सन्तुष्ट नहीं किया था। अश्वमेध करनेकी सम्राट्की इच्छाका पता लगा तो सैनिकोंको लगा कि उन्हें वरदान प्राप्त हुआ।

'अपना राजकोष परिपूर्ण है। प्रजा सम्पन्न है। सामन्तगण समृद्ध हैं। कहीं कोई शत्रु है नहीं।' महामन्त्रीने सब ओरसे समीक्षा करके सम्मति दी—'इससे अधिक उपयुक्त अवसर अश्वमेध यज्ञके लिए दूसरा नहीं हो सकता।'

महामन्त्रीकी सम्मतिको सभी मन्त्रियोंका समर्थन प्राप्त था। श्रीरामने भरत तथा लक्ष्मणसे पूछा। उनका उत्तर था—'हम तो आपके सेवक हैं। आपकी इच्छामें हमारी इच्छा नित्य सन्निहित है; किन्तु अश्वमेध यज्ञकी परम्पराका निर्वाह हुआ है इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न अयोध्याके अधिपतियोंके द्वारा। अपने पूर्वपुरुषोंकी परम्पराका निर्वाह शोभनीय समझा जायेगा।'

'अश्वमेध होगा तो देवरके साथ श्रुतकीर्तिको अयोध्या आनेका अवसर प्राप्त होगा।' अन्तःपुरमें इस समाचारका स्वागत इस आशाके साथ हुआ—'सम्भव है सम्राट् जीजीका निर्वासन इस सुयोगमें समाप्त कर दें।'

'वत्स ! अश्वमेध यज्ञ सुरोंके, ऋषियोंके सत्कारका उत्तम अवसर देता है।' महर्षि वशिष्ठने श्रीरामका प्रस्ताव सुनकर गम्भीर होकर कहा—किन्तु अश्व-परिचर्या कौन करेगा ? तुम पुनः पत्नी-परिग्रह स्वीकार कर लो तो यह यज्ञ तुम्हारे लिए सरल एवं सुख-सौभाग्यदायी होगा।'

'भगवन् ! आप ऐसा आदेश मत करें।' श्रीरामने व्याकुल होकर

कुलगुरुके चरण पकड़ लिये—'रामने प्रतिज्ञा कर ली है कि सीताके अतिरिक्त सृष्टिकी समस्त कन्याओंको सदा माता मानेगा। अश्व-परिचर्या मैं स्वयं सम्पन्न करूँगा।'

जिनके छोटे भाई वनमें चौदह वर्ष अनिद्र रहे, अनाहार रहे, सतत सावधान एवं श्रमशील रहे, वे स्वयं दिन भर यज्ञ-कुण्डके समीप बैठकर आहुति दें और रात्रिमें जागकर अश्व-परिचर्या भी कर लें, यह अशक्य तो नहीं था। यदि अनुज चौदह वर्ष अनिद्र रह सकता है तो अग्रज कुछ महीने नहीं रह सकेगा, यह कहनेका साहस करेगा कोई ?

'कठिनाई तो है; किन्तु तुम पहिले अपने स्वजन-सम्बन्धी, परिचित जनोंको आमन्त्रित करो। कठिनाईका भी कुछ उपाय अवश्य निकलेगा।' महर्षिने कुछ सोचकर कहा—'अपने सब सहायकोंको आमन्त्रित करो। यज्ञके उपयुक्त सामग्री मैं सूचित कर दूँगा। सुमन्त्रको मेरे समीप भेज दो। पृथ्वीके सब प्रसिद्ध पुरुषोंको आमन्त्रित करो। सभी ऋषि-मुनि, राजागण, कलाजीवी, प्रधान वणिक्, अरण्यानी जातियोंके अग्रणी, सेवा-कुशल लोग बुलाओ। उनके आवास तथा सत्कारकी व्यवस्था करो।'

श्रीरामने सबसे पहिले दूत भेजे शत्रुघ्नकुमारको बुलाने मथुरा और सुग्रीवको बुलाने किष्किन्धा। पवनकुमारको सभी वानर-रीछ-यूथपोंको ससैन्य आमन्त्रित कर आनेका आदेश दे दिया। निषादराज गुह अपने सेवकोंके साथ अयोध्या आकर टिक गये और यज्ञस्थलकी स्वच्छताका भार उन्होंने स्वयं उठा लिया।

दक्षिण कौशल, मगध, कैकय, मिथिला प्रभृति सभी सम्बन्धियोंके यहाँ दूत भेजे गये। सर्वत्र पृथ्वीपर एक ही चर्चा फैल गयी—'अयोध्या सम्राट् अश्वमेध यज्ञ करेंगे ?'

'सम्राट् पुनः विवाह करेंगे ?' जो सुनता था, उसीके मनमें दो ही प्रश्न पहिले उठते थे—'अथवा उन्होंने सीताको अपना लेनेका निश्चय किया है ?'

पत्नीके बिना अश्वमेध तो क्या गृहस्थ कोई भी यज्ञ, तीर्थादि कर नहीं सकता। इतना महान यज्ञ यजमान एकाकी नहीं कर सकता और पत्नी साथ है नहीं। तब दोमें-से कोई एक निर्णय अवश्य अयोध्यामें किया गया

होगा । मिथिलामें आशा तथा आशंका दोनोंने सभीको उद्विग्न किया । अनेक स्थानोंमें राजाओंको आशाका आलोक दीखा । अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट् पुनः विवाह स्वीकार करें तो लोकपाल, दिक्पाल भी अपनी पुत्री प्रदान करना चाहेंगे । राजाओंने पता लगानेको अपने चर अयोध्या भेजे तो अनुचित किया, यह नहीं कहा जा सकता ।

कोई चर अयोध्या आकर क्या पता लगाता ? स्वयं अयोध्याके नागरिकोंको कुछ पता नहीं था । वे स्वयं ही समझ नहीं पा रहे थे कि उनके सम्राट् क्या करने वाले हैं । लेकिन यह अनिश्चय अधिक समय तक नहीं रहा । सुमन्त्रके द्वारा जो सम्राट्का निश्चय ज्ञात हुआ, उसने सबको चकित कर दिया । सब श्रीराघवेन्द्रकी स्थिरता, शील तथा संयमकी स्तुति करने लगे ।

महामन्त्री सुमन्त्र कुलगुरु महर्षि वशिष्ठके समीप गये थे । महर्षिने उनसे कहा—'सुमन्त्र ! श्रीराम अश्वमेध यज्ञ करना चाहते हैं । मैंने उनसे पूछा था कि वे पुनः पत्नी-परिग्रह स्वीकार करेंगे ? उन्होंने स्पष्ट अस्वीकार कर दिया ।'

'इस सेवकको क्या आदेश है ?' सुमन्त्रके मनमें भी यही उलझन चल रही थी । वे सर्वथा निर्दोष साम्राज्ञीके निर्वासनसे बहुत दुःखी थे । इस सुअवसरमें यदि वे महिमामयी आ सकें तो अयोध्याका अहोभाग्य !

'श्रीरामने अश्व-परिचर्याका दायित्व स्वयं वहन करना स्वीकार करके वैदेहीको बुलानेमें अपनी अनिच्छा भी व्यक्त कर दी है ।' महर्षिकी वाणीने महामन्त्रीकी आशापर तुषारपात कर दिया ।

'पत्नीकी अनुपस्थितिमें यज्ञका कोई विधान है ?' सुमन्त्रने पूछ लिया ।

'इसीलिए तुम्हें यहाँ बुलाया है । किसीकी भी अनुपस्थितिमें किसी भी कार्यमें उसका प्रतिनिधि नियुक्त किया जा सकता है ।' महर्षिने अत्यन्त गम्भीर स्वरमें कहा—'यह प्रतिनिधि सजीव ही हो, आवश्यक नहीं है । हम ब्राह्मण तो यज्ञ-हवनादिमें केवल गौरी, गणपति, नवग्रहादिके ही प्रतीक नहीं रखते, जहाँ ब्राह्मणोंका अभाव हो, उपयुक्त अथर्ववेदीय न प्राप्त हो, वहाँ ब्रह्माके स्थानपर कुशसे ब्रह्माका प्रतीक बनाकर स्थापित करके काम चला लेते हैं ।'

'कुशका ब्रह्मा—ब्राह्मणका प्रतीक ।' महामन्त्री कई क्षण तक मस्तक

झुकाये सोचते रहे—'अर्थात् भगवन् आपका आदेश है कि इस यज्ञमें साम्राज्ञीका प्रतीक प्रस्तुत करके काम चलाया जावेगा ?'

'इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है । यज्ञमें पत्नीके स्थानकी पूर्ति आवश्यक है । श्रीराम न दूसरी पत्नी स्वीकार करेंगे और न सीताको बुलाना ही चाहते हैं ।' महर्षि वशिष्ठने अब स्पष्ट किया—'मैंने तुम्हें इसलिए बुलाया है कि तुम ऐसे कुशल मूर्ति-निर्माताका अन्वेषण करके उसे अविलम्ब इस कार्यमें लगा दो । स्वर्ण-निर्मित सीताकी उनके रूप, रंग आकारको उतनी ही बड़ी मूर्ति बैठी हुई आवश्यक होगी । मूर्तिकारको समझा देना कि मूर्ति यजमानके वाम भागमें विराजमान, सम्राट्के उन्मुख ठीक-ठीक सीताके समान बननी चाहिये ।'

'विश्वकर्मा भी हमारी सौन्दर्य-सिन्धु साम्राज्ञीकी अनुकृति निर्माणमें समर्थ होंगे, मुझे आशा नहीं है ।' सुमन्त्रने वहीं स्पष्ट अस्वीकार कर दिया ।

'जानता हूँ कि सीताकी अनुकृति सम्भव नहीं है ।' महर्षिने महामन्त्रीको समझाया—'कुशसे बनाया गया ब्रह्मा क्या किसी भी विद्वान ब्राह्मणके समान दीखता है ? हताश मत बनो । मूर्तिकारोंको कहो कि मूर्ति सीताके समान दीखे, वे इसका पूरा प्रयत्न करें ।'

सुमन्त्रने लौटकर प्रसिद्ध स्वर्णकार मूर्ति-निर्माताओंको बुलाया तो सम्राट्के निश्चयका समाचार नगरमें फैल गया । जो राजाओंके चर अयोध्या आये थे, वे निराश होकर भी सम्राट्की स्तुति करते ही लौटे ।

कलाकारोंने मूर्ति-निर्माणकी स्वीकृति दी एक नियमके साथ । मूर्ति-निर्माण राजसदनमें होगा और सम्राट् उसमें सहयोग देंगे । वे मूर्तिके निर्माणमें स्वयं देखकर सुझाव देते रहेंगे । श्रीरघुनाथने इस सहयोगकी स्वीकृति दे दी ।

●●●

अश्वमेधका आरम्भ

अश्वमेधके उपयुक्त अश्वका निर्देश महर्षि अगस्त्यने किया था, अतः श्रीरामने उनसे प्रार्थनाकी—'भगवन् ! आप मेरी अश्वशाला देख लेनेकी अनुकम्पा करें । आप ही निर्णय करें कि उसमें कोई अश्वमेधके योग्य अश्व है या नहीं ।'

महर्षि अगस्त्यके साथ दूसरे अनेक ऋषि-मुनि तथा उपस्थित लोग अश्वशाला गये । श्रीरघुनाथ भाइयोंके साथ उनका अनुगमन कर रहे थे । अश्वशालाके अध्यक्षने स्वागत किया । अनेक रंगोंके, अनेक गुणोंसे सम्पन्न अश्वोंकी पंक्तियाँ थीं वहाँ । ऋषि-मुनियोंको अश्वोंमें विशेष रुचि नहीं थी । अश्वशालाका अध्यक्ष इसे समझता था । अतः उसने उन्हें श्यामकर्ण अश्वोंके समीप सीधे पहुंचा दिया ।

'वत्स श्रीराम ! तुम्हारी अश्वशालामें सहस्रों अश्व अश्वमेधके योग्य हैं ।' एक दृष्टि डालकर महर्षि अगस्त्य सन्तुष्ट बोले—'इन अश्वोंमें-से प्रत्येक सुलक्षण, सर्वगुणयुक्त है । ऐसे उत्तम अश्व वरुणके पास भी नहीं हैं ।'

अश्व-चयन अनावश्यक हो गया । सरयूतटपर चार योजन वर्गाकार भूमि स्वर्ण-हलसे स्वयं श्रीराघवेन्द्रने जोती । अब उस भूमिमें मण्डपोंका निर्माण प्रारम्भ हुआ । यज्ञ-कुण्ड बनाये गये । अनेक रत्नोंसे वे कुण्ड सुसज्जित हुए । यज्ञ-मण्डप भली प्रकार मूल्यवान वस्त्रों एवं रत्न-मालाओंसे अलंकृत किये गये ।

महर्षि वशिष्ठने अपने शिष्य भेजकर महर्षि-वृन्दको आमन्त्रित किया । देवर्षि नारद, असित, पर्वत, कपिल, जातूकर्ण्य अंगिरा, मरीचि, अत्रि आर्ष्टिषेण, गौतम, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, हारीत संवर्त प्रभृति सभी सुप्रसिद्ध महर्षि पधारे । उनका भली प्रकार सत्कार हुआ । उनको महर्षि वशिष्ठने अपने समीप आवास दिया ।

बसन्त ऋतुका आरम्भ होनपर कुलगुरु महर्षि वशिष्ठने यज्ञ प्रारम्भ करनेकी आज्ञा दी । अग्रजके आदेशसे लक्ष्मणने सेनापति कालजितको सेना सज्जित करके अश्वशालासे सर्वोत्तम श्यामकर्ण अश्व ले आनेको कहा ।

लोकपाल भी उस दस ध्रुवक (भौंरी) वाले ह्स्वरोमा अश्वको देखकर

मुग्ध होगये । उस चन्द्रोज्चल हयकी पूँछ पीली थी, मुख लाल था, दोनों कर्ण काले और छोटे थे । वह मणिकण्ठ, मुक्तामालसे सज्जित, रत्नोंसे आभूषित था । उसका मुख तथा शरीर मनोरम था । उसपर श्वेत छत्र लगा था और दोनों ओर चवँर चल रहे थे । वह सैनिकोंसे सेवित, सुरक्षित आया । वह स्वयं हिनहिनाता, उछलता, पदोंसे पृथ्वी खोदता यज्ञ-मण्डपमें आया ।

अश्वके उपस्थित होनेपर यज्ञानुष्ठानका आरम्भ हुआ । श्रीरघुनाथने आभूषणोंका, कौशेयाम्बरका परित्याग करके यज्ञ-दीक्षा ली । उत्तरीय मृगचर्म बना । हाथोंमें मृगशृंग तथा कक्षमें दण्ड, शोभित हुआ । स्वर्ण-निर्मित श्रीसीताकी मूर्तिके साथ बैठे । अब वर्षभर एक समय हविष्यान्न भोजन, रात्रिमें भूमिपर शयन व्रत बन गया ।

महर्षि वशिष्ठने आचार्यत्व ग्रहण किया । अमित तेजस्वी महर्षि अगस्त्य ब्रह्मा (कृताकृत दर्शक) बने । इस प्रकार अध्वर्यु, उद्गाताका भी वरण करनेके अनन्तर यज्ञ-मण्डपके तोरणयुक्त आठो द्वारोंपर मन्त्रवेत्ता दो-दो ब्राह्मण बैठाये गये । पूर्व द्वारपर महर्षि देवल और असित, दक्षिण द्वारपर प्रजापति कश्यप एवं अत्रि, पश्चिम द्वारपर ऋषि जातूकर्ण्य तथा जाजलि, उत्तर द्वारपर द्वित तथा एकत-की नियुक्ति हुई । इनके मध्यके कोण-द्वारोंपर भी मन्त्रवेत्ता दो-दो ऋषि बैठे ।

गणपति, नवग्रह, योगिनी, दिक्पालादिका पूजन हो जानेक पश्चात् अश्वका पूजन प्रारम्भ हुआ । सर्वाभरणभूषिता सौभाग्यवती स्त्रियोंने हरिद्रा, अक्षत, चन्दनादि द्वारा अश्वका पूजन अश्वशालामें ही किया था । अब यज्ञ-मण्डपमें श्रीरामने उसका पुनः पूजन करके नीराजन किया ।

महर्षि वशिष्ठने चन्दन-कुंकु-चर्चित अश्वके प्रशस्त भालपर स्वर्णपत्र बाँधा । उसमें अंकित था—'सुरेन्द्रके भी सम्मान्य मित्र स्वर्गीय चक्रवर्ती महाराज दशरथके पुत्र त्रिभुवनजयी दुर्धर्ष दशग्रीव-दलन-कर्त्ता श्रीरामने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया । उनके इस अश्वमेधीय अश्वकी रक्षा कुमार शत्रुघ्न अयोध्याकी अपार विजयवाहिनीके साथ कर रहे हैं । जो अपनेको धनुर्धर माननेका गर्व करते हों, जिनमें अपनी शक्तिका दर्प हो, वे इस अश्वको पकड़नेका साहस करें । जहाँसे अश्व जा रहा है, वह भूमि अयोध्या-सम्राट्की अधिकृत मानी

जायेगी । सावधान ! अश्व पकड़ने वालेका दर्प चूर्ण करके अश्व प्राप्त किया जायेगा ।'

'कुमार ! तुम्हें अश्वका अनुगमन और सेवा करनी है । वह अपनी इच्छासे जहाँ-जिधर जाना चाहे, उसके पीछे चलो । वह दौड़े या खड़ा रहे, उसको बाधा मत दो ।' महर्षि वशिष्ठने शत्रुघ्नकुमारको समझाया—'अब अश्व साक्षात् यज्ञस्वरूप नारायण हो चुका । वह जहाँ खड़ा रहे, वहाँ दान करो । जहाँ मूत्र या पुरीषोत्सर्ग करे, वहाँ हवन किया जाना चाहिये । उसे कोई कष्ट न हो । साथ ही उसकी रक्षामें बहुत सावधानी आवश्यक है । अश्वमेध यज्ञके अश्वका देवता, दैत्य सभी हरण कर सकते हैं । अतः न केवल नरपतियोंसे, मायावी अदृश्य रहनेवालोंसे भी सतर्क रहना ।'

'कुमार ! अश्वके अनुगमनमें अनेक स्थानोंपर युद्ध अनिवार्य है ।' श्रीरामने शत्रुघ्नको सावधान किया—'युद्ध अनिवार्य ही हो, तभी किया जाना चाहिये । युद्धमें आहत होनेपर भी क्रोधावेशमें कोई अनुचित प्रहार न किया जाय, इस विषयमें सचेत रहना है । वृद्ध, बालक, रोगी, ब्राह्मण तो अवध्य हैं ही, भीत, शस्त्र या वाहनहीन, भागते, शरण आये शत्रुपर भी प्रहार मत करना । जो दिव्यास्त्र नहीं जानते, उनपर भूलकर भी दिव्यास्त्र मत उठाना । युद्धमें पर-पक्षकी भी न्यूनतम हानि हो, यह ध्यान रखना । अश्वमेध करनेवाला सम्राट् होता है । जो अश्व पकड़ते हैं । पराजित होनेपर वे भी अपनी प्रजा ही होंगे । उनका पालन, उनकी क्षति-पूर्त्ति अपना कर्तव्य हो जायेगा । अतः उनके औद्धत्यसे, उनकी अज्ञतासे होनेवाली उनकी हानि, उनके यहाँका संहार भी अपनी ही हानि है । इस तथ्यको कभी विस्मृत मत करना ।'

'सैनिकोंमें कोई भी कभी पराये धन अथवा परस्त्रीकी ओर लुब्ध दृष्टिसे देखेगा तो दण्डनीय होगा ।' श्रीराघवेन्द्रने सावधान किया—'सैनिकोंको, वाहनोंको आवश्यकता होनेपर भी प्रजामें-से किसीके क्षेत्र उपवानादिमें-से कुछ अनुमतिके बिना नहीं लेना चाहिये । जो लोग स्वेच्छासे भेंट करें, उनकी अस्वीकृतिको मत देखो, उनको उनके पदार्थका पूरा मूल्य दो । अश्वका अनुगमन करते हुए यदि कहीं सेनाके गमनके कारण किसीकी कृषिकी, वाटिकाकी कोई हानि होती है, कहीं वृक्ष कटते या टूटते हैं तो उनकी क्षति-पूर्ति करो । वे

न चाहें तो भी क्षति-पूर्ति करो ।'

'शत्रुघ्न ! सेनाके साथ भिषक् हैं । सरिताओंपर सेतु बनानेके साधन हैं । दुर्गम स्थलोंमें मार्ग बनानेकी शक्ति है ।' श्रीरघुनाथने आदेश किया— 'यह तुम्हारा अभियान केवल दिग्विजयके लिए नहीं है । यह प्रजाकी पूरी स्थिति देख लेने और उसे सुविधा-दानके लिए भी है । जहाँ प्रजाको चिकित्साकी आवश्यकता है, सरिताओंपर सेतु अथवा दुर्गम स्थानोंमें मार्ग अपेक्षित हैं, जहाँ उन्हें कूप-सरोवरादि चाहिये अथवा जहाँ वे हिंसक प्राणियोंसे आतंकित हैं, वहाँ उनको सुखी करो, उनको अभीष्ट सुविधा दो, उनका भय दूर करो । इसके लिए जहाँ तुम्हारे पास समय न हो, वहाँकी सूचना यहाँ भेज दो । सर्वत्र तुमको व्यवस्था करनेका समय नहीं मिलेगा; किन्तु तुम प्रजाको आश्वस्त करते चलो ।'

'जो आयुमें बड़े हैं, आदरणीय हैं, उनपर प्रथम प्रहार मत करना ।' श्रीराघवेन्द्रने शत्रुघ्नकुमारको और भी आदेश दिये—'मार्गमें जो वेदज्ञ, तपस्वी विद्वान अथवा कला-प्रवीण मिलें, उनसे अयोध्या आनेकी प्रार्थना करना । वे स्वीकार कर लें तो उनकी यात्रा-व्यवस्था करते जाना । तीर्थोंका, देवमन्दिरोंका, ब्राह्मणोंका, तपस्वियोंका पूजन, सत्कार करना और भरपूर दान करते चलना । सत्पुरुषोंका, धर्मात्माओंका, भगवद्भक्तोंका सम्मान करना ।'

'यह युद्ध-यात्रा नहीं है । सैनिकोंको भली प्रकार समझा देना कि अश्वका अनुगमन साक्षात् यज्ञेशका अनुगमन है । अतः समस्त प्राणियोंके प्रति उदार, आदर-भाव रखकर संयमपूर्वक, तप-तितिक्षाका पालन करते सबको चलना है ।' अन्तिम आदेश हुआ—'सब भगवन्नाम-स्मरण करते चलें । सतर्क रहनेके साथ प्रमाद तथा परस्परके वार्तालापसे यथासम्भव बचे रहें । सैनिक जहाँ तीर्थादिमें धर्म-कृत्य करना चाहें, उन्हें स्वीकृति तथा सुविधा देते रहना है ।'

'कुमार शत्रुघ्न अश्वरक्षाके लिए जा रहे हैं । इनका आदेश-पालन करते हुए इनके साथ कौन जाना चाहते हैं ?' श्रीरामने अपने हाथपर पानका बीड़ा रखकर हाथ आगे बढ़ाया—'जो यात्राके कष्टको सहनेको उद्यत हों और प्रबल शत्रुके साथ संग्राम करनेका जिनमें उत्साह हो, वे यह बीड़ा उठा लें ।'

श्रीभरतलालके पुत्र पुष्कलने तत्काल उठकर बीड़ा उठा लिया—'मैं

आपकी अनुमति चाहता हूँ ।'

सबने पुष्कलकी प्रशंसा की । श्रीरघुनाथने स्वयं हनुमानको आदेश किया—'पवनकुमार ! मेरी आज्ञासे तुम भी शत्रुघ्नके रक्षक बनकर इनके साथ जाओ । मेरी ही भाँति मेरे इन छोटे भाईकी रक्षा करना । जहाँ इनकी बुद्धि विचलित हो, वहाँ समझा-बुझाकर इन्हें कर्त्तव्यका ज्ञान कराना ।'

अंगद, गवय, मयन्द, दधिमुख, शतबलि, नील, नल तथा वानरेन्द्र सुग्रीवको भी वानरोंकी विशाल सेनाके साथ जानेका आदेश हुआ । इसके पश्चात् श्रीरामने महामन्त्री सुमन्त्रसे पूछा—'अश्वकी रक्षामें और किनको नियुक्त किया जाना चाहिये ?'

महामन्त्रीके सुझाव देनेपर प्रतापाग्र्य, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, उदग्राश्व, शस्त्रवित् प्रभृति सुप्रसिद्ध धनुर्धर शूर नरेशोंको भी अपनी चतुरंगिणी सेनाके साथ अश्व-रक्षार्थ शत्रुघ्नके साथ जानेका आदेश हुआ ।

शत्रुघ्नको पुष्कल अत्यन्त प्रिय थे । वे माताओंसे विदा होकर आ गये । अब शंखनाद हुआ, ब्राह्मणने स्वस्ति-पाठ किया । श्रीरघुनाथने अश्वको प्रणाम करके प्रार्थना की—'अब आप इच्छानुसार भू-भ्रमण करने पधारें ।'

अश्वने हींसकर हर्ष प्रकट किया । अश्वके पीछे सभी ऋषि-मुनि, सदस्यगण यज्ञशालाके बाहर तक आये । भेरी-घोष, जयनादके मध्य अश्व आगे बढ़ा । श्रीरघुनाथ तथा मुनिगणोंको प्रणाम करके कुमार शत्रुघ्न पुष्कलके साथ अश्वके पीछे चले । सम्पूर्ण सेना अयोध्याके सेनापति कालजितके सेनापतित्वमें साथ थी । अश्व, गज, रथ, पदातिकी वह अपार चतुरंगिणी सेना अश्वका अनुगमन कर रही थी । अश्वको किसी प्रकारकी बाधा न पड़े, इसलिए सम्पूर्ण सेनाको अश्वसे कम-से-कम अध कोस पीछे ही रहना था । केवल कुछ अश्वारोही अश्वसे इतनी दूर चल रहे थे, जिससे आगे जाते अश्वपर दृष्टि बनी रहे और उसकी सेवा एवं सुरक्षा आवश्यक होनेपर तत्काल उसके समीप पहुँचा जा सके । लेकिन यह दूरी भी पर्यन्त बढ़ जाती थी, जब वह प्रबल-वेग अश्व प्रसन्न होकर दौड़ना प्रारम्भ कर देता था ।

'यह अयोध्याके सम्राट्का अश्व है ।' सर्वत्र अश्वको देखकर लोग प्रसन्न होते थे—'दशकन्धरजयी, शीलसिन्धु, परमोदार हमारे सम्राट्का अश्व !'

सामान्य जनताने ही नहीं, प्रसिद्ध शूर नरेशोंने भी अश्वका स्वागत किया। शत्रुघ्नका सत्कार करके वे कहते थे—'यह राज्य तथा पुत्र, पशु, धन-वैभव-सहित हम भी आपके ही हैं। हम सम्राट् श्रीरामके सेवक हैं। हमें सेवाका अवसर देकर अनुगृहीत करें।'

अयोध्यासे चला अश्व इस प्रकार अबाध असम प्रदेश तक चलता गया। शत्रुघ्नको सर्वत्र स्वागत-सत्कार मिलता गया। वे अहिछत्रा नगरीके समीप पहुँचे। उस नगरीकी शोभा अद्भुत थी। अत्यन्त उच्च एवं भव्य था उस नगरीके मध्य देवी कामाख्याका मन्दिर। मन्त्री सुमतिसे परिचय प्राप्त करके शत्रुघ्नने मन्दिरमें जाकर देवीका दर्शन-पूजन किया। मन्त्री सुमतिकुमार शत्रुघ्नको वहाँके नरेश सुमदका पूर्ववृत्त सुनाने लगे—'सम्मिलित शत्रुसेनासे पराभूत होकर राजा सुमद हेमकूटके शिखरपर दीर्घकाल तक तप करते रहे। उन्हें विचलित करनेमें सुरांगनाएँ और स्वयं मन्मथ असफल हो गया। भगवती दुर्गाने उन्हें दर्शन दिया। देवीके वात्सल्य-भाजन ये नरेश सुरासुर सबसे अजेय, परमभक्त एवं धर्मात्मा हैं।'

राजा सुमदको भी अश्वमेधीय अश्वके नगरमें आनेका समाचार मिला। उन्होंने सेवकोंसे पता लगाया और श्रीरामका अश्व है, यह सुनते ही हर्ष-विभोर हो गये—'अब मेरा जन्म सफल हुआ' अब मैं कृतकृत्य हुआ। जगदम्बाने प्रथम दर्शन देकर ही कहा था कि यह अश्व आवेगा, तब सम्पूर्ण राज्य इसके रक्षक श्रीरामके अनुजको अर्पित करके मैं उन परात्पर पुरुषके सेवकोंमें सम्मिलित होनेका अधिकारी हो जाऊँगा।'

मन्त्रियों, पुरोहितों, पुत्रादिके साथ राजा सुमद स्वागत करने बढ़े। उन्होंने महागजपर शत्रुघ्न तथा पुष्कलको बैठाया और स्वयं उनपर छत्र लगाकर बैठे उनके पीछे। नगरमें समस्त सेनाको ले आये। सबका स्वागत-सत्कार किया। सुमदने तो निश्चय कर ही लिया था कि वे शत्रुघ्नकुमारकी सेवामें साथ अवश्य जायेंगे। उन्हें समझाया नहीं जा सकता था। वे निर्मल-हृदय, परमभक्त; किन्तु इस प्रकार किसीका राज्य भी तो शत्रुघ्न स्वीकार नहीं कर सकते थे।

'राजन्! मैंने आपका राज्य-कोष सब स्वीकार कर लिया। अब आप

मेरा आदेश मान लें ।' कुमार शत्रुघ्नने सुमदसे कहा—'आपके राजकुमार यहाँके प्रशासनका दायित्व ग्रहण करें । आप अपने पुरोहितोंको बुलाकर उनका अभिषेक करा दें ।'

राजकुमारका राज्याभिषेक हो गया । शासनका भार उन्हें देकर राजा सुमद शत्रुघ्नके साथ अश्वरक्षक बनकर चल पड़े । यह दल परस्पर धर्म-चर्चा, भगवच्चर्चा करता आगे बढ़ा । क्योंकि अश्व मुड़ पड़ा था, उसके पीछे यह सेना नीलांचल (श्रीजगन्नाथपुरी) की ओर चल पड़ी ।

पुरी पहुँचकर सभीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई । कुमार शत्रुघ्नने सबके साथ समुद्र-स्नान किया और श्रीजगन्नाथके दर्शन किये । प्रचुर दान मिला ब्राह्मणको ।[१]

●●●

सुबाहु-शापोद्धार

अश्व नीलाचल पहुँचनेसे पूर्व मार्गमें च्यवनाश्रम रुका था । कुमार शत्रुघ्नने महर्षि च्यवनकी वन्दना की । वे भृगुनन्दन श्रीरामके अनन्य भक्त मर्यादापुरुषोत्तमका स्तवन एवं उनके माहात्म्यका वर्णन करने लगे । शत्रुघ्नने प्रार्थना की—'आप अयोध्या पधारकर हमारे नगरको अपनी चरण-रजसे पवित्र करें ।'

'अच्छा !' ऋषि-मुनियोंको यात्राके लिए प्रस्तुत होनेमें क्या विलम्ब । महर्षिने कमण्डलु उठाया, मृगचर्म समेटकर कक्षमें दबाया, पत्नीसे बोले—'भद्रे ! चलो, अयोध्या चलें ।'

'आप आज्ञा दें तो मैं ऋषिको पहुँचा आऊँ ।' हनुमानजीने कुमार

---

१. वर्तमान जगन्नाथपुरी द्वापरान्तके पश्चात् प्रतिष्ठित हुई है; किन्तु पद्मपुराण पातालखण्डके इस वर्णनसे सिद्ध है कि पूर्वकल्पमें भी यह क्षेत्र इसी प्रकार था ।

शत्रुघ्नसे पूछा । क्योंकि महर्षि च्यवन पैदल चल पड़े थे । उन्होंने यह भी अपेक्षा नहीं की कि शत्रुघ्न कोई वाहनकी व्यवस्था करते । पवनपुत्रको सहर्ष अनुमति मिली । उन्होंने ऋषिको सपत्नी अपने कन्धोंपर बैठाया और अयोध्या कूदकर पहुँचे । यहाँसे यह क्रम ही बन गया कि जो ऋषि-मुनि मार्गमें मिलते, अयोध्या जाना चाहते, उन्हें हनुमानजी पहुँचा आया करते । अयोध्यामें श्रीराघवेन्द्र उनका स्वागत तो करते ही थे ।

अश्व नीलाचलमें अधिक रुका नहीं । अश्वमेधीय अश्व तो यज्ञ पुरुषसे आविष्ट होता है । वह कहीं किसीपर मार्गमें अनुग्रह करनेको भले रुके, अन्यथा वह सीधे वहाँ जाता है, जहाँ उसके पकड़े जानेकी सम्भावना होती है । राजा सुमदके यहाँ वह अनुग्रह करने पहुँचा था । अब नीलाचल से चला तो चक्रांका नगरी पहुँचा था ।

मेरे पिताजीके भूमण्डलपर विद्यमान रहते, यह इतना अहंकार किसने प्रदर्शित करनेका साहस किया है ?' चक्रांकापुरीके नरेश सुबाहुके राजकुमार दमन आखेट करने निकले थे । अश्व उनके सम्मुख जाकर खड़ा हो गया था । उसके सिरपर बँधा स्वर्ण पट्ट पढ़कर राजकुमारके अधर फड़कने लगे—'इस उद्दण्डताका परिणाम उसे भोगना चाहिये । हम शान्त हैं, इसका यह अर्थ तो नहीं है कि हम दुर्बल या भीरु हैं । कोई हमें चुनौती देनेका साहस कैसे करता है ?'

राजकुमारने सेवकोंको आदेश दिया कि वे उस अश्वको पकड़कर नगरमें ले जायें । अपने सेनापतिको शीघ्र सैन्य-सज्जित करके आनेको कहला दिया । अश्व वेगपूर्वक दौड़ता आया था । जब तक उसके पीछे आने वाले अंगरक्षक आये, कुमार दमनकी सुसज्ज सेना आ पहुँची थी और उसने व्यूह बना लिया था ।

'अश्व कहाँ गया ? किसने उसे पकड़नेका दुस्साहस किया है ?' पहिली बार अश्व पकड़ा गया था । अभी तक उसका सर्वत्र स्वागत होता आया था । अतः उसके रक्षक सैनिक आवेशमें आ गये ।

'मैंने पकड़ा है तुम्हारा अश्व ।' धनुष चढ़ाये राजकुमार दमनने उसी सतेज स्वरमें उत्तर दिया—'तुम लोग अपने साथ आये सेनापति, स्वामीसे कह

दो कि उनमें पौरुष हो तो अश्वको युद्ध करके प्राप्त करें ।

महारथी राजा प्रतापाग्र्य अश्व-रक्षक अग्रचारी दलके नायक थे । राजकुमार दमनकी बात सैनिकोंने जाकर उनसे कही तो वे अपने चार अश्वोंसे जुते-स्वर्ण-रथपर बैठे क्रोधमें भरे अग्रचारी पूरी सेनाके साथ युद्ध करने आ पहुँचे । दमनको देखकर उन्होंने डाँटा—'तू अभी बालक है । बाल-चापल्य-वश तूने, अश्व पकड़ा है । उसे छोड़ दे और नगरमें जाकर बालकोंके साथ खेल ।

'महाराज ! बालकोंका मन बहुधा बड़ोंके साथ भी खेल लेनेको उत्सुक होता है ।' दमनने शालीनता-सहित उत्तर दिया—'क्षत्रिय बालकोंकी प्रिय क्रीड़ा युद्ध है । आप धनुष उठाइये । युद्धके बिना अश्व पानेका और कोई मार्ग आपके समीप नहीं है ।'

तुमुल युद्ध आरम्भ हो गया । दोनों दलोंके अश्व, गज मरने लगे । रथ टूटने लगे । सैनिकोंके कर, पद, मस्तक कटने लगे । रक्तका तर्पण पृथ्वी प्राप्त करने लगी । हुंकार, चीत्कारसे गगन गूँजने लगा । अन्तमें कुमार दमनके वाणसे आहत राजा प्रतापाग्र्य मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । सारथि उन्हें उठाकर रथमें डालकर युद्धभूमिसे बाहर ले गया ।

सैनिकोंने यह समाचार कुमार शत्रुघ्न तक पहुँचाया । सुनकर शत्रुघ्न सेनाके साथ युद्ध-स्थलमें आये । वहाँ तो गज, अश्व तथा शूरोंके शवसे मेदिनी पटी पड़ी थी । इसी समय भरतकुमार पुष्कलने प्रार्थना की—'पितृव्य ! प्रतिपक्षमें एक बालक राजकुमार है । उससे युद्ध करना आपके योग्य नहीं है । आप मुझे इस सामान्य कार्यको सम्पन्न करनेकी अनुमति दें ।'

शत्रुघ्नने अनुमति दे दी । पर्याप्त बड़ी सेना पुष्कलके साथ कर दी । इस बारका युद्ध समबल, समवय राजकुमारोंमें था । दोनों दिव्यास्त्रोंके ज्ञाता थे । दोनोंने उनका प्रयोग किया और प्रतिपक्षके दिव्यास्त्रको प्रत्यास्त्रसे प्रशमित किया । आग्नेय, वारुणास्त्र, वायव्य, पार्वतास्त्र, वज्रास्त्र प्रभृतिके प्रयोग दोनों करते गये । अन्तमें पुष्कलके वाणका आघात हृदयपर लगनेसे राजकुमार दमन मूर्छित हो गया । सारथि उसके रथको एक ओर हटा ले गया ।

रक्तमें लथपथ आहत सैनिक भागते नगरमें पहुँचे । उन्होंने राजा

सुबाहुको समाचार दिया—'राजन् ! आपके पुत्रने अयोध्या-नरेशके अश्वमेधीय अश्वको पकड़वा लिया, युद्ध अनिवार्य था । राजकुमारने बड़ा विकट युद्ध किया । अश्व-रक्षकोंके अग्रणीको भी आहत कर दिया; किन्तु यह सुनकर अश्व-रक्षक सेनाके प्रधान सेनापति अयोध्या-नरेशके छोटे भाई शत्रुघ्न आ पहुँचे । शत्रुघ्नके भ्रातृपुत्र पुष्कलके साथ युद्धमें आपके पुत्र आहत होकर मूर्छित हो गये हैं ।'

सैनिकोंसे यह समाचार पाकर राजा सुबाहु अपने रथपर बैठे । उनके गदायुद्ध-निपुण छोटे भाई सुकेतु तथा राजकुमार चित्रांग एवं विचित्र भी युद्ध सज्ज हुए । सम्पूर्ण चतुरंगिणी सेनाके साथ राजा सुबाहु युद्ध-भूमिमें आये । उनकी सेनाको आते देखकर शत्रुघ्नकी सेना भी युद्धोद्यत हो गयी । सुबाहुने पहिले अपने पुत्र दमनको आते देखा । राजकुमार दमन मुखपर जलके छींटे पड़नेसे सचेत हो गया । पिताने उसके पौरुष एवं प्रयत्नकी प्रशंसा की । राजा सुबाहुने तत्काल सेनाको क्रौञ्च-व्यूह बनानेका आदेश दिया ।

'कुमार ! इस राज्यके सभी लोग विष्णुभक्त, धर्मात्मा, परस्त्रीको माता माननेवाले हैं ।' मन्त्री सुमतिने शत्रुघ्नको सावधान किया—ये राजा सुबाहु और इनकी प्रजा संसारके सम्बन्धकी चर्चा न सुनती है, न करती है । ये लोग सदा हरि-कथामें ही सुख लेते हैं । विष्णुभक्ति, धर्माचरण तथा विप्रोंके सेवाव्रती होनेसे ये अतुलनीय पराक्रमी हो गये हैं ।'

शत्रुघ्नकुमारने मन्त्रीकी बात सुनकर अपने दलको पुकारा—'प्रतिपक्षके क्रौञ्च-व्यूहका भेदन करनेमें समर्थ शूर मेरे हाथसे पानका बीड़ा ग्रहण करे ।'

महाराज जनकके युवराज श्रीलक्ष्मीनिधिने आगे आकर पानका बीड़ा उठा लिया । कुमार शत्रुघ्नके आदेशसे महारथी रिपुताप, नीलरत्न, उग्रास्य, वीरमर्दन प्रभृति नरेश लक्ष्मीनिधिके साथ व्यूह-भेदन करने चले ।

व्यूहके मुखभागमें राजा सुबाहुके छोटे भाई सुकेतु थे, अतः लक्ष्मीनिधिका द्वन्द्व युद्ध उनसे होना ही था । सुकेतु युद्धके आरम्भमें ही लक्ष्मीनिधिके आघातसे आहत हो गये । उनके रथके चारों अश्व तथा सारथि मारे गये । धनुष कट जानेपर सुकेतु भारी गदा उठाकर पैदल आगे बढ़े । लक्ष्मीनिधिने भी अपनी गदा उठायी और रथसे कूद पड़े । गदा-युद्ध देर तक चलता रहा; किन्तु जब लक्ष्मीनिधिकी गदा सुकेतुने पकड़ ली तब लक्ष्मीनिधि

बाहु युद्ध करने उनसे लिपट गये । इस मल्लयुद्धके आघात-प्रतिघातमें दोनों वीर एक साथ मूर्छित होकर गिरे । सेनाओंमें दोनोंकी प्रशंसा, दोनोंका जयनाद गूँजने गा ।

क्रौञ्च व्यूहके कण्ठ भागमें राजा सुबाहुके दूसरे पुत्र चित्रांग थे, सुकेतुके गिरनेसे व्यूहका मुख भाग भंग हुआ तो युद्धका भार उनपर आ पड़ा । चित्रांगकी विषम वाणवर्षासे अपने पक्षका संहार होता देखकर कुमार पुष्कल आगे आ गये । अब दिव्यास्त्रोंका प्रयोग प्रारम्भ हो गया । पुष्कलने भ्रामकास्त्रका प्रयोग करके चित्रांगका रथ आकाशमें अश्वोंके साथ उड़ा दिया । एक मुहूर्ततक व्योममें अश्वोंके साथ घूमनेके पश्चात् वह रथ कठिनाईसे भूमिपर आया, किन्तु भूमिपर आते ही चित्रांगने भी पुष्कलका रथ इसी प्रकार उड़ा दिया ।

पुष्कलका रथ भी पृथ्वीपर कठिनाईसे आया । अब उन्होंने चित्रांगका रथ नष्ट कर दिया । उसका सारथि तथा अश्व मार दिये । चित्रांग रथ परिवर्तित करता रहा; किन्तु उसके दस रथ पुष्कलने नष्ट कर दिये । चित्रांगने भल्ल-प्रहार करके पुष्कलको आहत किया तो क्रोधमें आकर पुष्कलने चित्रांगके वधकी प्रतिज्ञा कर ली । श्रीरघुनाथके पादपंकजोंके विश्वासपर की गयी प्रतिज्ञाको पूर्ण होना ही था । यद्यपि पुष्कलके वाणको चित्रांगने मध्यसे काट दिया; किन्तु वाणाग्रने उसका मस्तक उड़ा दिया धड़से ।

राजा सुबाहु पुत्रके मारे जानेसे शोकार्त हो उठे; किन्तु उनके दोनों पुत्र दमन तथा विचित्रने आकर उन्हें समझाया कि युद्धमें मरण तो शूरका सौभाग्य है । वे दोनों पिताकी आज्ञा लेकर युद्ध करने शत्रुदलमें प्रविष्ट हो गये । दमनने रिपुतापसे और विचित्रने नीलरत्नसे युद्ध-प्रारम्भ किया । स्वयं राजा सुबाहु शत्रुघ्नकुमारके साथ युद्ध करने आगे बढ़े ।

राजा सुबाहुका व्यूह भंग हो चुका था । वे पुत्र-वधके कारण क्रोधमें भरे अजस्र वाणवृष्टि कर रहे थे । कुमार शत्रुघ्नके पार्श्वरक्षक पवनकुमार यह देखकर क्रुद्ध हो उठे । सुबाहुने हनुमानजीको लक्ष्य बनाया; किन्तु हनुमानने उनके वाणोंको हाथसे पकड़कर तोड़ फेंका । राजा सुबाहुके रथके अपनी पूँछमें लपेटकर खींच ले चले । इस अवस्थामें भी सुबाहु विचलित नहीं हुए । वे हनुमानकी पूँछ, मुख बाहुपर तीक्ष्ण वाण-प्रहार करते रहे । अब हनुमानको

क्रोध आ गया । उछलकर उन्होंने सुबाहुके वक्षपर अपने दक्षिण चरणसे प्रहार किया ।

पवनपुत्रके पादाघातसे पीड़ित सुबाहु मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े । उनके मुखसे उष्ण शोणित वमन होने लगा । वेगपूर्वक श्वांस लेते हुए वे काँप रहे थे । यह तो सुबाहुकी वाह्य दशा थी; किन्तु आञ्जनेयके चरण-प्रहारने उनके अनन्तरको भी उद्वेलित कर दिया था । मूर्छामें ही स्वप्नके समान उनको श्रीरघुनाथके दर्शन हुए । अयोध्यामें सरयूतटपर बनी त्रिलोक-मनोहर यज्ञशाला मूर्तिमान हो गयी । मानस-नेत्रोंके सम्मुख ऐणेयाजिनोत्तरीय, मृगशृंगकर, नवदूर्वादलश्याम श्रीरामका श्रीविग्रह प्रकट हो गया । देवर्षि, महर्षि, गन्धर्वगण तथा मूर्तिमान वेद उन परम पुरुषका स्तवन करते दीखे ।

सुबाहु धर्मात्मा थे । विष्णुभक्त थे । निर्मल हृदय थे । 'यह युद्ध भी उनका अहंकार नहीं था, क्षत्रिय-कर्तव्य था । केवल एक प्रतिबन्ध था, उन्हें अब तक किसी महापुरुषकी पदरज नहीं प्राप्त थी । पवनपुत्रके पद-प्रहारसे परिपूतवे भगवद्दर्शनके अधिकारी हो गये । श्रीरघुनाथने उन्हें दर्शन दिया मूर्छामें ही ।

मूर्छा दूर होते ही सुबाहु उठे । दोनों पुत्रोंको पुकारा—'युद्ध बन्द करो । दमन ! कितना अनर्थ हुआ कि तुमने साक्षात् श्रीहरिके यज्ञीय अश्वको अवरुद्ध किया । श्रीराम तो कार्य-कारणातीत साक्षात् परब्रह्म हैं । अभी इस तत्त्वको मैं समझ सका हूँ ।'

'मैं तत्त्व-ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छासे तीर्थाटन कर रहा था ।' सुबाहुने पुत्रोंको अपना पूर्ववृत्त सुनाया—'अनेक ऋषि-मुनियोंका सत्संग करते आसितांग मुनिके समीप पहुँचा । उन परम दयालुने मुझे समझाया कि श्रीराम ही साक्षात् परमब्रह्म हैं; किन्तु अपनी मूर्खतावश मैंने उन मुनिका उपहास किया । मैंने श्रीरामको सामान्य मनुष्य कहा । इसपर क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दे दिया— 'तू मेरी अवज्ञा करता है और परात्पर पुरुषको सामान्य मानव कहता है, अतः तत्त्व-ज्ञान-शून्य होकर उदरपूर्तिमें ही लगा रहे ।'

'मैंने व्याकुल होकर मुनिके चरण पकड़े, उनसे प्रार्थना की । वे सदय हुए ।' सुबाहुने सुनाया— 'उन्होंने शापानुग्रह किया कि श्रीरामचन्द्रजीके

अश्वमेधयज्ञमें दीक्षित होनेपर उनका अश्व तुम्हारे राज्यमें आवेगा । उसे अवरुद्ध करनेपर युद्ध होगा । तब श्रीपवनपुत्रके पाद-प्रहारसे तुम्हें श्रीरामके स्वरूपका ज्ञान होगा ।'

'उन महामुनिका आशीर्वाद आज सत्य हुआ । अतः अब तुम लोग उन मेरे परमाराध्यके अश्वको ले आओ ।' सुबाहुने अश्रुमोचन करते कहा—'मैं उन अयोध्यानाथके अनुजके चरण पकड़कर क्षमा माँगूँगा । धन, रत्न, कोष तथा राज्य भी उन्हें अर्पण कर दूँगा । अब अयोध्या जाकर यज्ञके तथा उन पुरुषोत्तमके दर्शन करूँगा ।'

पितृ-भक्त पुत्रोंने पिताको आश्वस्त किया—'हम तो आपके श्रीचरणोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते । हम सभी आपके ही किंकर हैं, अतः राज्यके साथ हमें भी अर्पित कर दीजिये ।'

अश्व वहाँ लाया गया । राजा सुबाहु पुत्र-पौत्र, मन्त्री आदिके साथ उसे लेकर पैदल ही शत्रुघ्नके समीप गये । उन्होंने पृथ्वीमें पड़कर शत्रुघ्नको प्रणाम किया तो दौड़कर शत्रुघ्नकुमारने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया । राजा सुबाहुने शत्रुघ्नका पूजन किया । प्रार्थना की—'मेरा पुत्र दमन बालक है, अज्ञ है, उसके अपराधको क्षमा कर दें । मेरा यह समृद्ध राज्य, समस्त सेना श्रीरामकी सेवामें समर्पित है । ये मेरे पुत्र और मैं भी आपका सेवक हूँ । हम आपकी आज्ञाका पालन करेंगे । इस सबको स्वीकार करके हमें कृतार्थ करें ।'

राजा सुबाहु श्रीराम-दर्शनको उत्सुक थे । हनुमानजीको अपना उद्धारक मानकर उनकी चरण-वन्दना की उन्होंने । कुमार शत्रुघ्नके आदेशसे अपने पुत्र दमनका राज्याभिषेक कर दिया । पुष्कलके हाथसे मारे गये अपने पुत्र चित्रांगकी अन्त्येष्टि की । इस क्रियाके पश्चात् राजा सुबाहु सेनाके साथ अश्व-रक्षकोंमें सम्मिलित हो गये ।

यज्ञीय अश्व यहाँसे पुनः पूर्व चला और भारतकी वामावर्त परिक्रमा करता आगे बढ़ा । उसकी सर्वत्र अर्चा, स्वागत ही हो रहा था । नरपतिगण शत्रुघ्नका ससैन्य सत्कार करना अपना सौभाग्य मानते थे ।

●●●

सत्यवानका सर्वस्व समर्पण

अश्व स्वेच्छापूर्वक चलता हुआ तेजःपुर पहुँचा था । शतशः देव-मन्दिरोंसे सुशोभित इस नगरमें आकर अश्व अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ा । वह बार-बार हिनहिनाता था और उछलता-कूदता नृत्य-सा करता था । भगवती भागीरथीके तटपर बसे इस नगरमें पहुँचकर कुमार शत्रुघ्न तथा उनके साथके सभी लोगोंके मन अचानक शान्त, प्रसन्न हो गये । सुरसरिके तटपर असंख्य ऋषि-महर्षियोंके आश्रम, नगरके भवनोंमें-से प्रायः प्रत्येकसे उठता अग्निहोत्रका सुरभित धूम—लगता था कि जैसे सब लोग फिर अयोध्या ही पहुँच गये हों ।

'मन्त्रिवर ! यह किस पावन पुरुषके द्वारा पालित नगर है ?' कुमार शत्रुघ्नने मन्त्रीसे पूछा—'इतना समृद्ध, सात्विक, शान्तिदायी नगर अयोध्याके अतिरिक्त पृथ्वीपर दूसरा भी है, हम तो यह समझते ही नहीं थे । अवश्य यहाँके शासक धर्मात्मा तथा कोई महाभागवत होने चाहिये ।'

'आपका अनुमान ठीक ही है ।' मन्त्री सुमतिने बतलाया—'यहाँके नरपति अपने अयोध्यानाथके अनन्य चरणानुरागी, जीवन्मुक्त, श्रुति-सेतुपालक, यज्ञानुष्ठानरत सत्यवानजी हैं । हमारा देवात्मा अश्व अवश्य उनपर अनुग्रह करने ही यहाँ आया है ।'

सुमति मन्त्रीने बतलाया कि यहाँके नरपति पहिले महाराज ऋतम्भर थे । महर्षि जाबालिके उपदेशसे उन्होंने सन्तान-प्राप्तिके लिए निष्ठापूर्वक गौ-पूजन किया । गाय तो सर्वदेवमयी हैं । राजा ऋतम्भराने गोमूत्र यावक व्रत लेकर गौ-पूजन प्रारम्भ किया था । गोचारण, गौ जल पी ले तब जल-ग्रहण, गौ बैठे तब बैठना, रात्रिमें गोशालामें दीपक रखकर वहीं भूमि-शयन करना, इस नैष्ठिक गोसेवासे गौकी प्रसन्नता प्राप्त हुई । सुप्रसन्ना सुरभिसे उन्होंने वरदान ही माँगा कि—'मुझे सुन्दर, सुशील, पितृ-सेवक, धर्मात्मा, श्रीरामभक्त पुत्र हो ।'

'यहाँके वर्तमान नरेश सत्यवानकी उत्पत्ति गोमाताके उस वरदानके फलस्वरूप हुई ।' मन्त्री सुमतिने कहा—'राजा ऋतम्भर ऐसा पुत्र पाकर कृतार्थ हो गये । युवा होनेपर पुत्रको राज्य देकर वे वनमें जप करने चले गये ।

सत्यवानका समय भगवन्नाम-स्मरण, देव-पूजन, भगवत्कथा तथा यज्ञादि धर्म-कार्योंमें ही व्यतीत होता है। इन पुण्यात्मा राजाके प्रभावसे सम्पूर्ण प्रजा हरिभक्त, धर्मात्मा हो गयी है। इस ओरके ऋषि-मुनि यहीं आश्रम बनाकर रहने लगे हैं। इस राज्यमें आठ वर्षकी आयुसे अस्सी वर्ष तकके सब मनुष्य एकादशी व्रत करते हैं। सबको गौ-सेवा एवं तुलसी-सेवा प्रिय हैं।

'यदि यहाँ युद्ध हुआ ?' शत्रुघ्नकी आशंका अकारण नहीं थी। अश्व यहाँ अपने आप आया था। अनेक भगवद्भक्त अपने क्षत्रिय धर्मको महत्त्व दिया करते हैं। अभी सुबाहुसे ही युद्ध हो चुका था जो धर्मात्मा थे, भगवद्भक्त थे। यहाँ अनन्य भागवतसे काम पड़ा है—'मेरे अग्रज अपना-पराया कभी देखते नहीं। उन्हें केवल अपना चरणाश्रित सूझता है। सत्यवान जैसे महाभागवतसे संग्राममें विजय पाना अशक्य भी हो सकता है; क्योंकि श्रीअयोध्यानाथकी शक्ति एवं आशीर्वादके वे मुझसे कहीं अधिक अधिकारी हैं। सबको सावधान कर दो कि कुछ भी हो, कोई भी परिस्थिति आ जाय, प्राण-संकटमें भी यहाँ किसीके द्वारा मन, वाणी, कर्मसे किसीकी अवज्ञा नहीं होनी चाहिये।'

'आपका निर्णय आपके ही योग्य है।' सुमतिने हँसकर कहा—'किन्तु मैं यहाँ पहिले भी आ चुका हूँ। आप जानते हैं कि मुझे तीर्थाटन और उसमें भी अपने आराध्यके अनुरागियोंका सान्निध्य प्राप्त करनेका व्यसन है। मैं राजा सत्यवानका स्वभाव जानता हूँ। ये महाभाग तभी रोष करते हैं, जब कोई किसी मर्यादाका उल्लंघन करे। श्रुति-शास्त्र, सुर-विप्रकी अवज्ञा तथा भगवन्निन्दा इन्हें असह्य है। अन्यथा ये अत्यन्त शान्त स्वभाव हैं। युद्ध अप्रिय है इन्हें। मुझे तो विश्वास है कि अश्वके आगमनका समाचार पाकर वे अविलम्ब सर्वस्व समर्पण करने आपके समीप चल देंगे। हमें उनका सत्कार करनेको प्रस्तुत रहना चाहिये।'

मन्त्री सुमतिका अनुमान सत्य निकला। अश्वपर जैसे ही लोगोंकी दृष्टि पड़ी, उसके भालपर बँधे पट्टको पढ़ते ही नगर गूँजने लगा 'श्रीरामचन्द्र भगवानकी जय! मर्यादा-पुरुषोत्तमकी जय! कुमार शत्रुघ्नकी जय!'

लोगोंने भूमिष्ठ होकर अश्वको प्रणिपात किया। उसका पूजन, नीराजन

चलने लगा। पूरे नगरमें लोग दौड़ने लगे। एक दूसरेको समाचार देने लगे। ऐसा उल्लास जैसे उनके मध्य स्वयं श्रीरघुनाथ आ गये हों। छोटे बालक तक अश्वके पैरोंमें पुष्पाञ्जलि देने दौड़े। अश्वके सम्मुख हरित तृण तथा सुस्वादु पदार्थोंका ढेर उपस्थित हो गया। विप्रोंने वेद-मन्त्रोंसे उसका अभिषेक तथा स्तवन प्रारम्भ कर दिया था। अश्व-रक्षक दूरसे चकित देख रहे थे कि अश्व इतना प्रसन्न है, मानो बहुत दिनोंके पश्चात् उसे अपने परिचितोंके मध्य पहुँचनेका अवसर मिला है। वह लोगोंको सूँघता है, कूदता है, हर्षसे हिनहिनाता है।

'महाराज! आपके नगरमें अयोध्याधीश मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामका अश्वमेधीय अश्व आया है।' एक बड़ी भीड़ लगभग साथ ही अपने प्रिय पालक राजा सत्यवानके समीप पहुँची। लोग दौड़ते आये थे। हर्ष-विह्वल थे—'उन सर्वेश्वरके अनुरूप ही है उनका भुवन-मनोहर अश्व। अश्व-रक्षक सेनाके नायक होकर श्रीरामके सबसे छोटे भाई कुमार शत्रुघ्न आये हैं आपके नगरमें।'

'जो मेरे सर्वस्व हैं, जिनका स्मरण ही मेरा जीवन है, उन मेरे स्वामी श्रीरामका अश्व मेरे यहाँ आया है? उनके अनुजने यहाँ आनेकी अनुकम्पा की है?' सुनते ही सत्यवानके नेत्रोंसे अविरल अश्रु-प्रवाह चल पड़ा। रोम-रोम पुलकित हो गया। स्वेदसे शरीर स्नात हो उठा। अंग काँपने लगा। अत्यन्त उत्कण्ठा कि उठकर दौड़ पड़ें; किन्तु देह तो क्या पलक तक जैसे स्तब्ध, गतिहीन हो गये। नरेश पाषाणकी मूर्तिके समान बन गये। विलम्ब लगा इस स्तब्धीभावसे छूटकर सचेष्ट होनेमें।

'अश्वके साथ तो श्रीरघुनाथके परम भक्त पवनपुत्र भी होंगे।' सत्यवान उठे भी तो आनन्द-विह्वल नृत्य करने लगे। उच्च स्वरसे राम-नाम लेते कीर्त्तन करने लगे दोनों हाथ उठाकर। प्रजाके लोगोंके लिए अपने महाभागवत नरेशका यह रूप अपरिचित नहीं था। लोग भी राजाके साथ हाथ उठाकर कीर्तन करते नृत्य करने लगे। सब प्रेम-विह्वल। सबको शरीरका ही स्मरण नहीं रहा।

'असंख्य भगवद्भक्त आये होंगे अश्वके साथ। मेरे स्वामीके स्वजन, उनके चरणानुरागी। आज यह नगर उन सबकी चरणरेणुसे पवित्र हो गया।' सत्यवानके अन्तरमें भावनाओंका प्रबल उद्रेक हो रहा है। वे जैसे थे, वैसे

ही उठकर कीर्त्तन करते, नृत्य करते चल पड़े । उन्हें स्वयं पता नहीं कि वे कहाँ जा रहे हैं, तो अब आगतोंकी अभ्यर्थना, अर्घ्य आदि देनेका स्मरण किसे रहे ।

मन्त्रियोंको राजगुरुने सावधान किया । उन्होंने शत्रुघ्नकुमारको अर्पित करनेके लिए बहुमूल्य उपहार साथ लिये । अन्ततः उनके नरेशको इतने सम्मानित अतिथिका दर्शन रिक्त हस्त तो नहीं करना चाहिये ।

शत्रुघ्नकुमारने जयघोष सुना । हाथ उठाये कीर्तन करते आती बहुत बड़ी भक्ति-भावित लोगोंकी भीड़ अपनी ओर आती देखी । उसके मध्य राजा सत्यवानको पहिचान लेना कठिन नहीं था । कुमार उठे, आगे बढ़े । सहसा कीर्तन बन्द हुआ । पूरे समूहने पृथ्वीमें पड़कर प्रणिपात किया ।

'आज सेवकके सौभाग्यका उदय हुआ । आज स्वामीने इसे अपनानेका अनुग्रह किया ।' शत्रुघ्न बार-बार प्रयत्न करके राजा सत्यवानको उठाते थे; किन्तु सत्यवान उनके चरणोंको पकड़कर बैठ जाते थे । अपने अश्रुओंसे उन्होंने शत्रुघ्नके चरण प्रक्षालित कर दिये ।

'तुम लोग यह सब क्यों ले आये ?' राजा सत्यवानने अपने मंत्रियोंको उपहार देते देखकर कहा—'यह राज्य, भूमि, कोष, भवन क्या सत्यवानका है कि वह उसमें-से उपहार अर्पित करेगा ? यह सब जिनका है, उनके प्रतिनिधि ये आज स्वयं आ गये यहाँ । अब ये जानें और इनका राज्य जाने । सत्यवान अब इनके श्रीचरणोंको छोड़कर कहीं पृथक रहने वाला नहीं है ।'

सर्वस्व-समर्पण राजा सुबाहुने भी किया था । वे भी शत्रुघ्नके साथ ही थे; किन्तु उनका मस्तक झुक गया था । यह सहज समर्पण तो श्रीरघुनाथकी असीम अनुकम्पा हो, तब कहीं अन्तरमें आता है ।

कुमार शत्रुघ्नके अनुरोध करने, समझानेपर भी राजा सत्यवान पुनः मन्त्रियोंके साथ नगरमें नहीं गये । वे गये; किन्तु इस प्रकार जैसे शत्रुघ्नके सेवक हों और उनके साथ ही आये हों । सत्यवानके पुत्र राजकुमार रुक्मको सिंहासनपर शत्रुघ्नने ही बैठाकर अभिषेक किया ।

मन्त्रियोंने, कुलगुरुने सेनाके साथ शत्रुघ्नकुमारका आतिथ्य किया । राजा सत्यवान तो मिलते ही जैसे इस नगरके राजा नहीं रह गये । उन्होंने

सच्चे हृदयसे सर्वस्व अर्पित कर दिया था । उनके चित्तका दृढ़ भाव—'अब नगर कोई अपना है कि हम आतिथ्य करेंगे । जो आये हैं, नगर उनका है । अपने स्थानमें आये हैं वे । वे स्वामी हैं । उनको आदेश करके सेवकोंसे सेवा लेनी चाहिये ।'

सत्यवानने तब भी पत्नी-पुत्र एवं मन्त्रियोंसे कुछ नहीं कहा, जब वे शत्रुघ्नके साथ जाने लगे । कोई सेना, कोई सैनिक या सामग्री साथ जायेगी या नहीं, इस ओर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया । उनके पुत्रने जो उपहार, अश्व, गज, रत्न, सैनिक दिये, शत्रुघ्नने स्वीकार कर लिया । राजा सत्यवानने तो केवल अपना कवच, धनुष, त्रोण तथा रथ लिया और अश्व-रक्षकोंमें आकर सम्मिलित हो गये ।

●●●

विद्युन्माली-वध

अचानक दिशाएँ अन्धकारमें डूब गयीं । जैसे पावसारम्भमें अथवा शरद ऋतुमें जब गगनमें बहुत छोटे मेघ-खण्ड हों, उनकी छाया पृथ्वीपर बढ़ती आती है और सहसा सूर्यका प्रकाश अन्तर्हित हो जाता है, वैसे ही अन्धकार बढ़ता आया । शत्रुघ्नकुमार और साथके लोग कुछ समझ सकें, इससे पहिले ही सब कुछ दीखना बन्द हो गया । मेघाच्छन्न अमानिशाके समान अन्धकार । अपना हाथ भी फैलानेपर न दीखे । दिनमें अचानक ऐसे अन्धकारके फैलनेसे पक्षी वृक्षोंपर चीत्कार करने लगे । अश्व, गज, रथ सबकी गति रुक गयी । पशुओंने भी व्याकुल शब्द करना प्रारम्भ किया ।

मनुष्योंमें भी सब परस्पर अपने समीपस्थोंको पुकारने लगे । केवल यही उपाय रह गया था यह जाननेका कि दूसरे सकुशल हैं । क्योंकि कोई आघात किसी पर नहीं हो रहा था, कुमार शत्रुघ्नको भी यह सोचना कठिन हो गया कि वे क्या करें । वे किसी दिव्यास्त्रका प्रयोग कर सकते थे; किन्तु

पहिले यह निश्चय होना आवश्यक था कि अन्धकारका कारण क्या है । किसी तपस्वीका प्रभाव, किसी देवताका कोप, किसी असुरकी माया, अथवा स्थानकी ही कोई विशेषता, अनेक कारण अन्धकारके सम्भव थे । अतः कारण जाने बिना प्रतिकार करना उचित नहीं था । कुछ देर प्रतीक्षा ही करनी थी सबको । वाहनोंकी गति स्वतः अवरुद्ध हो गयी थी । किसीको भी कष्ट नहीं हो रहा था, अतः प्रतीक्षा उचित थी ।

जैसे अन्धकार बढ़ता आया था, वैसे ही दो घड़ीके पश्चात् दूर हो गया । ऐसा लगा मानो आकाशमें ही कोई बात हुई हो । कभी-कभी खग्रास सूर्य-ग्रहण होनेपर ऐसा अन्धकार होते सुना गया है । जब अन्धकार दूर हुआ, पक्षियोंका प्रसन्न कलरव सुनायी पड़ा । सबने सबसे पहिले वाहन देखे, आसपास दृष्टि डाली । कहीं कोई उत्पात, किसी हानिका कोई चिह्न नहीं था ।

'अपना अश्व कहाँ है ?' सबसे पहिले कुमार पुष्कलका ध्यान इस ओर गया । क्षणभरमें सब चौंक गये । अब यह कहना नहीं रह गया कि किसी मायावीने अश्व-हरणके लिए ही मायासे इस अन्धकारको प्रकट किया था । अन्धकारके आवरणमें उसने अश्वका हरण किया । 'कौन है वह ? किसी दुर्बुद्धिने ऐसा साहस किया ? किसे यमराज अपना आखेट बनानेको उत्सुक हैं ?'

'वह एक राक्षस है ।' सेनाके अग्रचर दलने आकर सबकी उलझन दूर कर दी । 'उसके साथ सहस्रों राक्षस हैं । अश्वोंको उसीने पकड़ा है । वह भागा नहीं, युद्धके लिए प्रस्तुत जान पड़ता है ।'

राक्षस विद्युन्माली रावणका सखा था । पातालमें निवास करता था । दशग्रीव-वधका समाचार पाकर बहुत दुःखी हुआ था । उसे इसका भी क्षोभ था कि उसके मित्र रावणने समयपर उसे स्मरण नहीं किया । वह श्रीरामसे अपने मित्रके वधका प्रतिशोध तो लेना चाहता था; किन्तु जानता था कि अयोध्यापर आक्रमण करके विजय-प्राप्तिकी कोई आशा नहीं है । उसे सबसे अधिक भय वशिष्ठके शापसे लगता था । वे रघुकुलगुरु कभी भी कुपित हो सकते थे ।

'राम कभी तो अश्वमेध करेंगे ।' विद्युन्माली प्रतीक्षा ही कर रहा था ।

उसके चर अयोध्याका समाचार उसे देते रहते थे । उसकी आशा सफल हुई । श्रीरामने अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया । अब विद्युन्मालीने अपनी योजना बनायी । वह चाहता था कि अश्व दुर्गम अरण्यमें आ जाय, तब वह उसका अपहरण करे । उसने अयोध्यासे दूर हिमालयके पद-प्रान्तका अरण्य अपने उपयुक्त माना था ।

विद्युन्माली अश्वको लेकर पाताल जा सकता था । अश्वको कहीं छिपा दे सकता था; किन्तु यह सब उसकी योजनामें नहीं था । वह जानता था कि अश्व-रक्षामें अयोध्याकी सेनाका चतुर्थांशसे अधिक नहीं होगा । वह इस सेनाको ध्वस्त कर दे, तब भी अयोध्याके सब महारथी एक साथ नहीं आवेंगे । श्रीराम अपने भाइयों, भ्रातृपुत्रों तथा सम्बन्धियोंको क्रमशः युद्ध करने भेजेंगे । स्वयं अन्तमें आवेंगे । तब आवेंगे जब दूसरे कोई सहायक उनके समीप नहीं रह जायेंगे । विद्युन्माली समझता था कि इस प्रकार उसे अयोध्याकी विजय-वाहिनीको अनेक भाग करके विध्वस्त करनेका अवसर मिलेगा । वह अपनी पूरी सेनाके साथ है । प्रतिपक्ष विभक्त होकर आवेगा । अयोध्यामें सब ऋषि-मुनि यज्ञमें वरण किये गये होंगे । वे इस समय युद्ध-स्थलमें नहीं आ सकते ।

अन्धकार विद्युन्मालीने इसलिए प्रकट किया था, जिससे अश्वको पहिले अधिकृत कर ले । अश्व-हरणके प्रयत्नमें ही युद्ध होने लगे, यह उसे स्वीकार नहीं था । अपने अविश्वाशी हृदयके अनुसार सोचता था—'अश्व यदि उन लोगोंके समीप रहा तो युद्धमें मेरी क्षणिक मूर्छाको भी अपनी विजय मानकर वे यहींसे अश्वको अयोध्या भेज दे सकते हैं । अश्व अपने अधिकारमें रहेगा तो युद्ध करनेको वे विवश रहेंगे ।'

विद्युन्मालीके लिए अश्व युद्धकी चुनौती था । वह अश्वको कहीं छिपाने नहीं ले गया । वहीं उसने अपनी सेनाके पृष्ठ भागमें अश्वको सुरक्षित किया । अश्व देखा जा सके प्रतिपक्षके द्वारा; किन्तु सहसा छीना न जा सके, इतना पर्याप्त था । उसे तो युद्ध करना ही था ।

विद्युन्मालीके साथके राक्षस रथोंपर बैठे थे । उन रथोंमें अश्वतरी (खच्चर) अथवा गर्दभ जुते थे । स्वयं विद्युन्माली एक उत्तम विमानपर बैठा हुआ था । गज, अश्व, पदाति सेना उसके समीप नहीं थी । गगनसे विमान

द्वारा और पृथ्वीपर रथोंसे तीव्र वेग आक्रमणके पक्षमें था वह ।

'पर्वताकार, अञ्जन-कृष्ण, रक्त-श्मश्रुकेश, उग्रदंष्ट्रा, विकराल मुख राक्षसोंकी सेना है उस दुरात्मा राक्षसके साथ ।' अग्रचर दलने शत्रुघ्नकुमारको समाचार दिया । स्पष्ट था कि उस राक्षससे संग्राम करनेका साहस अग्रचर दल नहीं कर रहा था ।

'किन-किनको इस राक्षसके संहारके लिए नियुक्त किया जाना चाहिये ?' शत्रुघ्नकुमारने अपने मन्त्रीसे पूछा ।

'कुमार पुष्कल अस्त्र-शस्त्रोंके महान ज्ञाता हैं । युवक होनेसे उत्साही हैं । राक्षसोंसे युद्धका अनुभव करनेका उन्हें अवसर मिलना चाहिये ।' स्पष्ट हो गया कि जैसे शत्रुघ्नकुमार राक्षसोंकी सेनाको इस योग्य नहीं मानते थे कि स्वयं पूरी सेनाके साथ उनसे युद्ध करना आवश्यक मानते, वैसे ही मन्त्री सुमतिको भी राक्षस अधिक ध्यान देने योग्य नहीं लगे । उन्होंने केवल इतना कहा—'राजकुमार लक्ष्मीनिधि तथा हनुमान कुछ प्रधान योद्धाओंके साथ पुष्कलके साथ युद्धमें जायें, यह आदेश आप दे दें ।'

मन्त्री सुमतिके इस सुझावने पुष्कलको उत्साहित किया । उन्होंने प्रतिज्ञा की—'मैं भले उस राक्षसको यमलोक न भेज सकूँ, किन्तु उसे मूर्च्छित अवश्य कर दूँगा । श्रीरघुनाथके चरण-कमलोंकी अनुकम्पासे मैं अपनी प्रतिज्ञा अवश्य पूरी कर दूँगा ।'

'आप आज्ञा दीजिये, मैं उस राक्षसको अकेला ही सेना-सहित मार दूँगा ।' श्रीहनुमानजी पुष्कलकी प्रतिज्ञा सुनकर आवेशमें आ गये—'यदि मैं ऐसा न कर सकूँ तो मैं श्रीराघवेन्द्रका सेवक नहीं ।'

'मैं उस राक्षसको आज अपने बाणोंसे मार न दूं तो पापका भागी बनूँ ! मेरी अधोगति हो !' शत्रुघ्नने धनुष उठाकर प्रतिज्ञा की । वे पवनकुमारका अत्यधिक आदर करते थे । उन्हें आञ्जनेयके आवेश-वचन असह्य हो गये । उनकी उपस्थितिमें केशरी-कुमारको प्रतिज्ञा क्यों करनी पड़े ।

अब कुछ चुने लोगोंको युद्ध करने भेजनेका प्रश्न ही दब गया । शत्रुघ्नकुमारने पुष्कलको आज्ञा दी—'वत्स ! तुम आगे चलो । तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेका अवसर मिलना चाहिये । मैं तुम्हारे पीछे शीघ्र आ रहा हूँ ।

'राम कहाँ है ? मेरे सखा रावणको मारकर वह अयोध्यामें छिपा बैठा है ?' पुष्कलको देखते ही विद्युन्माली ने अट्टहास किया—'आज उसके भाइयोंको, उसे और तुम सबको मारकर मैं रामका रुधिर-पान करूँगा !'

'दुर्बुद्धि निशाचर ! व्यर्थ बकवाद मत कर ।' पुष्कलने प्रताड़ना की—'अपना पराक्रम प्रकट कर । तेरी मृत्यु तुझे यहाँ ले आयी है । अपना धनुष उठा । मरणोन्मुख पिपीलिकाओंके पंख प्रकट हो जाते हैं । वे ऐसे उत्साह से उड़ती हैं, जैसे पूरे व्योमको पार कर लेंगी ।'

पुष्कलको अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेमें विलम्ब नहीं लगा । विद्युन्मालीने ही प्रथम प्रहार किया । उसने पूरी शक्तिसे शक्ति चलायी; किन्तु पुष्कलने बाण मारकर उसके टुकड़े उड़ा दिये । पुष्कलका बाण विद्युन्मालीका कवच फोड़कर उसके वक्षमें प्रविष्ट हो गया । रक्तकी धारा फूट पड़ी । राक्षस मूर्छित होकर विमानसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ।

विद्युन्मालीका छोटा भाई उग्रदंष्ट्र विमानमें अपने अग्रजके समीप ही बैठा था । शीघ्रतासे उसने बड़े भाईका शरीर उठाकर विमानमें रखा । अब पुष्कलके साथ उग्रदंष्ट्रका युद्ध आरम्भ हो गया । यद्यपि पुष्कलने प्रहार करके उग्रदंष्ट्रको भी व्याकुल कर दिया; किन्तु उसने भयंकर त्रिशूल फेंका पुष्कलपर । उसका आघात वक्षपर लगनेसे पुष्कल मूर्छित होकर रथमें ही गिर गये ।

पुष्कलके मूर्छित होते ही पवनकुमारको क्रोध आया । वे आकाशमें स्थित होकर गर्जना करने लगे । विमानमें बैठे राक्षस योद्धाओंको वे अपने नखोंसे विदीर्ण करने लगे । जो हनुमानकी पकड़में आया, उसका शरीर चिथड़ा हो गया । कितनोंको उनकी पूँछके प्रहारने यमलोक भेज दिया, अनेक उनके चरणोंसे कुचल गये । बहुतसे नखोंसे फाड़ दिये गये । विमान कामवेग था । उसे पूरे वेगसे उसका चालक भगा ले जाना चाहता था; किन्तु वायुपुत्रके अतर्क्य वेगसे विमान परित्राण पाता ? वे इस समय प्रलयंकर हो रहे थे । नन्हें पत्तेके समान विमान उनके प्रहारोंसे अस्त-व्यस्त वहीं चक्राकार घूमने लगा था ।

उग्रदंष्ट्रने इस समय आञ्जनेयपर अपना प्रज्वलित त्रिशूल चलाया । पवनकुमारने उस ज्वालमालावृत त्रिशूलको मुख खोलकर अपने मुखमें ही ले लिया और दाँतोंसे चबाकर चूर-चूर कर दिया । अब उन अप्रमेयपराक्रम

पवनकुमारके थप्पड़ पड़ने लगे उग्रदंष्ट्रपर । राक्षसने दो थप्पड़में ही समझ लिया कि यदि तीसरा पड़ गया तो उसके प्राण प्रयाण कर जायेंगे । मायासे अदृश्य होकर उसने माया प्रकट की ।

अचानक पहिलेके समान अन्धकार छा गया सर्वत्र । अन्धकार तनिक हल्का हुआ तो नग्न, भयानकाकार, कुरूप दैत्य चारों और दौड़ते दीखने लगे । वे मुख फाड़े निगल लेनेको उद्यत दौड़े आते थे । यह देखकर सेनामें भगदड़ पड़ गयी । चारों ओर लोग त्राहि ! त्राहि !' पुकारने लगे ।

'डरो मत !' मेघ गम्भीर घोष गूंजा शत्रुघ्नका । भागते सैनिकोंको आश्वासन मिला । शत्रुघ्न युद्धभूमिमें पहुंचे ही थे कि यह मायिक अन्धकार तथा नग्न दैत्य दीखे । उन्होंने अपना धनुष चढ़ाया, श्रीरघुनाथका स्मरण करके मायोच्छेदक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया । जैसे मेघावरणको भेदन करके सहस्रांशु प्रकट हो जायें, प्रकाश हो गया सर्वत्र । अन्धकारमें दीखने वाले मायिक दैत्योंका कहीं नाम नहीं था ।

शत्रुघ्नके आने तथा अस्त्र-प्रयोगसे एक क्षणके लिए विमानमें बैठे राक्षसोंको परित्राण ही प्राप्त हुआ; क्योंकि पवनकुमारके प्रलयंकर प्रहार बन्द हो गये । वे शत्रुघ्नके समीप चले गये थे; किन्तु राक्षसोंको प्रसन्न होनेका कारण नहीं था । शत्रुघ्नकुमारके स्वर्णपुंख सहस्रशः शर अनवरत विमानपर ही पड़ने प्रारम्भ हो गये थे । कुछ ही क्षणोंमें विमान टूटकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । उसके आरोहियोंको कूदकर ही अपने प्राण बचाने पड़े ।

विद्युन्माली अबतक सचेत हो चुका था । विमानके टूटते ही उसने अपना धनुष चढ़ाया । उसके राक्षस सैनिक अपनी जन्मजात सिद्धिके कारण भी गगनचारी रह सकते थे । वे विमानके टूटनेपर पुनः आकाशमें जाकर प्रतिपक्षपर प्रहार करने लगे थे । विद्युन्मालीने वाण-वृष्टि करके शत्रुघ्नका रथ ढक दिया ।

कुमार शत्रुघ्नने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया । उससे न केवल शत्रुके शर उड़ गये, व्योममें स्थित राक्षस वात्याचक्रमें पड़कर भूमिमें पटापट गिरने लगे । इस स्थितिके साथ सुलझनेके लिए राक्षसने रौद्रास्त्र उठाया । उसकी असह्य ज्वाला सबको दग्ध कर देती; किन्तु शत्रुघ्नकुमारने नारायणास्त्रका प्रयोग

किया उसी समय । इस अमोघास्त्रने रौद्रास्त्रको निरस्त कर दिया । सब राक्षसोंके वाण भस्म हो गये । अब विद्युन्माली त्रिशूल लेकर शत्रुघ्नपर टूटा । मूर्ख राक्षस ! उसे पता नहीं था कि नारायणास्त्र प्रतिकारके प्रयत्नसे अधिक उग्र हो जाता है । त्रिशूल उठाने वाली भुजा मूलीके समान कट गयी । राक्षसका मस्तक कुण्डल-सहित कटकर पृथ्वीपर कूदने लगा ।

भाईका मस्तक कट गया, इससे क्रुद्ध उग्रदंष्ट्र राक्षस शूरोंको लेकर शत्रुघ्नपर टूटा । प्रज्वलित पावकपर पतंग पावसमें टूटते हैं; किन्तु परिणाम क्या होता है ? शत्रुघ्नके क्षुरप्रसायक ने उग्रदंष्ट्रका सिर भी उड़ा दिया ।

अब जो राक्षस बच गये थे, उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये । कवच उतार फेंके । रथोंपर जो थे, वे भी कूदकर पृथ्वीपर आ गये । दोनों हाथ उठाकर उन्होंने पुकारना प्रारम्भ किया—'प्राणदान ! हम आपकी शरण हैं !'

प्रतिपक्षके द्वारा प्रतिकारका प्रयत्न त्यागकर शरणकी पुकार किये जानेपर नारायणास्त्रकी ज्वाला शान्त हो गयी । राक्षसोंने अश्व लाकर अर्पण किया । शत्रुघ्नने उन्हें अभय देकर आदेश किया—'तुम सब पाताल चले जाओ । पृथ्वीपर आनेका साहस मत करना । पृथ्वी पर ही रहना हो तो लंका जाकर विभीषणजीसे आश्रय माँगो और उनके अनुवर्ती होकर रहो ।'

राक्षस पाताल चले गये । विजय-दुन्दुभि बजने लगी । शंखनाद होने लगा । बन्धन-मुक्त होकर यज्ञीय अश्व उत्तर दिशाकी ओर चल पड़ा ।

●●●

आरण्यक मुनि

अपनी गतिमें अश्व स्वतन्त्र था। वह सीधे किसी एक ही दिशामें जाय, यह आवश्यक नहीं था। विद्युन्मालीके बन्धनसे मुक्त होनेपर मुड़ा और मध्य भारतकी ओर दौड़ पड़ा। अश्व दौड़ता गया। वह आकर अमर-कण्टकपर नर्मदा-उद्गमके समीप रुका।

नर्मदा-तटपर अनेक ऋषि-महर्षि निवास करते थे। लेकिन एक पुरानी पर्णशाला पलाशके पत्तोंसे बनी ऐसी दीखी, जो लगभग जलमें बनी थी। नर्मदाकी लहरोंका जल उसको सींचता लगता था। शत्रुघ्नने मन्त्रीसे पूछा—'सुमति ! यह रेवाके सलिलसे सटा किसका आश्रम है ?'

'यह उग्र तपस्वी, समस्त शास्त्रोंके मर्मज्ञ, श्रीरघुनाथके अनन्य भक्त आरण्यक मुनिका उटज है।' मन्त्रीने कहा—'हम लोगोंको इनका दर्शन करना चाहिये। ऐसे सन्तोंका दर्शन प्राणीको पवित्र करता है।'

शत्रुघ्नने सेनाको वहीं छोड़ा। मन्त्री तथा दो-चार प्रधान नरेश एवं पवनपुत्रके साथ उस आश्रममें गये। सबने मुनिको प्रणिपात किया। मुनिने पूछा—'आप सब कहाँ एकत्रित हुए हैं ? यहाँ कैसे पधारे हैं ?'

'हम लोग रघुकुल-नरेशके अश्व-रक्षक हैं।' मन्त्रीने ही कहा—'वे अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं।'

'बहुत सामग्री एकत्र करके, बहुत श्रम एवं समय लगाकर किये जानेवाले यज्ञोंसे क्या लाभ ? ऋषि-मुनि प्रायः सांसारिक लोगोंकी बातोंपर ध्यान नहीं देते। आरण्यक मुनिने भी मन्त्री सुमतिकी बातपर ध्यान नहीं दिया। वे कहने लगे—'इन सब पुण्य कर्मोंका फल क्षणभंगुर है। भगवान् श्रीरामका स्मरण ही समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला तथा परमपद-प्रदाता है।'

आरण्यक मुनिने अपना पूर्वचरित सुनाना प्रारम्भ किया कि वे तत्वज्ञानकी इच्छासे महर्षियोंके आश्रमोंमें भटकते फिरे थे। मानव-शरीर पाकर भव-सागरसे पार होना ही चाहिये, यह उनकी तीव्र उत्सुकता थी, उन्हें अनेक प्रकारके साधन बतलाये गये; किन्तु जिसका जो अधिकार है, उसके अनुरूप

साधनमें ही उसकी रुचि हो सकती है । सौभाग्यवश उन्हें महर्षि लोमश मिल गये । उन्होंने आरण्यकजीको श्रीराम-मन्त्र दिया । श्रीरामका ध्यान बतलाया तथा सम्पूर्ण रामचरित सुनाया ।१

---

१. पद्मपुराण, पाताल खण्डमें यह श्रीरामचरित आया है । इसकी विशेषता है कि इसमें अनेक स्थानोंपर आयु तथा घटनाओंकी तिथि निर्दिष्ट है । यद्यपि ये आयु-निर्देश तथा तिथियाँ वाल्मीकीय रामायणसे मेल नहीं रखतीं, इसीलिए मैंने इनका उपयोग मूल चरितमें नहीं किया है; किन्तु यहाँ इनको दे रहा हूँ । महर्षि लोमश अत्यन्त दीर्घजीवी हैं । पता नहीं उन्होंने किस कल्पके रामचरितका वर्णन सुनाया । महर्षि वाल्मीकि-वर्णित चरित इससे भिन्न कल्पका है, यह निश्चित है । यहाँ संक्षिप्तमें आयु तथा तिथियोंके उल्लेख मात्र दे रहा हूँ । स्मरण रखें कि ये तिथियाँ वाल्मीकि-वर्णित चरितसे भिन्न हैं ।

— श्रीरामने पन्द्रह वर्षकी अवस्थामें जनकपुरमें पिनाक तोड़ा । विवाहके समय सीताजीकी अवस्था छः वर्षकी थी ।

—बारह वर्ष तक अयोध्या रहनेके उपरान्त सत्ताइस वर्षकी आयुमें श्रीरामको वनवास हुआ ।

— तीन रात्रि अयोध्यासे चलनेपर केवल जल पीकर रहे । चौथे दिन फलाहार किया । पाँचवे दिन चित्रकूट पहुंचे ।

— बारह वर्ष वनवासके बीत जानेपर तेरहवें वर्ष पंचवटी जाकर रहने लगे ।

— माघ कृष्ण अष्टमीको वृन्द नामक मुहूर्तमें रावणने सीता-हरण किया ।

— इस सीता-हरणके दस महीने पीछे कार्तिक शुक्ल नवमीको सम्पातीने वानरोंको सीताका पता बतलाया । एकादशी (प्रबोधिनी) को हनुमानने समुद्र-लंघन किया । द्वादशीकी रात्रिमें उन्हें श्रीसीताजीका दर्शन हुआ । त्रयोदशीको उनका अक्षयकुमारादिसे युद्ध हुआ । चतुर्दशीको उन्हें मेघनादने ब्रह्मास्त्रसे बाँधा । उसी दिन लंका जली । पूर्णिमाको वे वानरोंके समीप लौट आये ।

— मार्गशीर्ष कृष्ण प्रतिपदासे पञ्चमी तक मार्गमें लगा । षष्ठीको मधुवनमें पहुँचे । सप्तमीको श्रीरामको सीताजीका समाचार दिया ।

— मार्गशीर्ष कृष्ण अष्टमीको उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें, विजय नामक मुहूर्तमें, मध्याह्न समय श्रीराम कपि-सेनाके साथ लंकाकी ओर चले । सात दिन मार्गमें लगा, तब समुद्रतट पहुँचे । मार्गशीर्ष शुक्ल प्रतिपदासे तृतीया तक समुद्रतट टिके रहे । चतुर्थीको विभीषण मिले । पञ्चमीको समुद्रपार करनेपर विचार हुआ । चार दिनों तक श्रीरामने अनशन किया । दशमीसे सेतु-बन्धन प्रारम्भ हुआ । यह त्रयोदशीको पूर्ण हुआ । चतुर्दशीको श्रीराम समुद्रपार सुबेलपर पहुँचे । मार्गशीर्ष पूर्णिमासे पौष कृष्ण द्वितीया तक सेना समुद्रपार हो सकी ।

पौष कृष्ण तृतीयासे दशमी पर्यन्त आठ दिन लंकापुरीपर वानर-सेनाका घेरा पड़ा रहा । एकादशीको रावणके चर शुक-सारण सेनामें घुस आये । द्वादशीको शार्दूलने वानर-

'मेरे उन उपदेष्टा परम दयालु महर्षि लोमशने मुझसे कहा है ।' आरण्यक मुनिने चरित सुनाकर कहा—'श्रीराम अश्वमेध यज्ञ आरम्भ करेंगे,

---

सेनाकी गणना की । रावणको उसने प्रधान वीरोंका परिचय दिया । त्रयोदशीसे अमावस्या तक रावणने अपने सैनिकोंको युद्धके लिए प्रस्तुत किया ।

पौष शुक्ल प्रतिपदाको अंगद दूत होकर लंका गये । पौष शुक्ल द्वितीयासे युद्ध प्रारम्भ हुआ । अष्टमी तक वानरोंसे युद्ध होता रहा । नवमीको मेघनादने श्रीरामको नागपाशमें बाँधा । दशमीको वायुदेवने श्रीरामको गरुड़-मन्त्र बतलाया । उसके जपसे एकादशीको गरुड़ने आकर नागपाश दूर किया ।

द्वादशीको श्रीरामने धूम्राक्षको मारा । त्रयोदशीको उन्होंने कम्पनका वध किया । चतुर्दशीसे माघ कृष्ण प्रतिपदा तकके युद्धके पश्चात् नीलने प्रहस्तको समर-शय्या दी । द्वितीयासे चतुर्थी तक रावण श्रीरामसे युद्ध करता रहा । अन्तमें हारकर भाग गया लंकामें ।

माघ कृष्ण पञ्चमीसे अष्टमी तकके प्रयत्नसे कुम्भकर्ण जगाया जा सका । नवमीसे कुम्भकर्णने युद्ध प्रारम्भ किया । श्रीरामके द्वारा वह चतुर्दशीको मारा गया । कुम्भकर्णकी मृत्युके शोकमें रावणने माघकी अमावस्याको युद्धविराम रखा ।

माघ शुक्ल प्रतिपदासे चतुर्थी तकके चार दिनोंमें विसतन्तु प्रभृति पाँच राक्षसनायक खेत रहे । पञ्चमीसे सप्तमी तक युद्ध करके अतिकाय सदाको सो गया । अष्टमीसे द्वादशी तकके संघर्षमें निकुम्भ-कुम्भ मौतके घाट उतर गये । तीन दिन मकराक्ष युद्ध करके मरा ।

फाल्गुन कृष्ण द्वितीयाको इन्द्रजितने लक्ष्मणपर शक्ति-प्रहार किया । तृतीयासे सप्तमी तक लक्ष्मणके उपचारमें व्यस्त श्रीरामने युद्ध-विराम रखा । अष्टमीसे युद्ध प्रारम्भ करके त्रयोदशीको लक्ष्मणने मेघनादको मार दिया । चतुर्दशीको रावणने यज्ञदीक्षा ली । युद्ध बन्द रहा ।

फाल्गुन अमावस्याको रावण युद्धभूमिमें आया । फाल्गुन शुक्ल पञ्चमी तक दशग्रीव युद्ध करता रहा । षष्ठीसे अष्टमी तकमें महापार्श्व प्रभृति सेनापति मारे गये । नवमीको लक्ष्मणको शक्ति लगी, रावणके द्वारा । दशमीको श्रीरामने घोर युद्ध किया । एकादशीको इन्द्रका रथ उनका सारथि मातलि श्रीरामके पास ले आया । द्वादशीसे चैत्र कृष्ण चतुर्दशी तक अट्ठारह दिन राम-रावणका घोरतर संग्राम हुआ । इसी चैत्रकृष्ण चतुर्दशीको रावण मारा गया । यह युद्ध पौष शुक्ल द्वितीयासे चैत्रकृष्ण चतुर्दशी तक सत्तासी दिन हुआ । मध्यमें पन्द्रह दिन बन्द रहा । बहत्तर दिन यह संग्राम चला । रावणादिका दाह-संस्कार चैत्र अमावस्याको हुआ ।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदाको श्रीराम युद्धभूमिमें ही रहे । द्वितीयाको विभीषणका राज्याभिषेक हुआ । तृतीयाको श्रीजानकीकी अग्नि-परीक्षा हुई । चतुर्थीको श्रीराम पुष्पका रूढ़ होकर लंकासे चले । चैत्र शुक्ल पञ्चमीको भरद्वाजाश्रम पहुंचे । षष्ठीको नन्दिग्राम आकर भरतसे मिले ।

चैत्र शुक्ल सप्तमीको श्रीरामका राज्याभिषेक हुआ । इस राज्याभिषेकके समय श्रीराम बयालिस वर्ष पूरा कर रहे थे । उस समय श्रीजानकीकी अवस्था तैंतीस वर्षकी थी ।

उनका अश्व तुम्हारे आश्रमपर आवेगा । तुमको अश्व-रक्षक अयोध्या पहुँचा देंगे । वहाँ तुम उन कमल-लोचन परात्पर पुरुषका प्रत्यक्ष दर्शन पा सकोगे। मैं उसी पुण्यक्षणकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ ।

'अच्छा, अब तुम लोग बतलाओ कि यहाँ क्यों आये हो ?' आरण्यकजीने जैसे अब सावधानी प्राप्त की— 'कौन धर्मात्मा राजा यज्ञानुष्ठान कर रहा है ?'

'भगवन् ! हम सब आपका दर्शन करके कृतार्थ हुए ।' मन्त्री सुमतिने निवदेन किया—'महर्षि अगस्त्यके आदेशसे हमारे स्वामी अयोध्यानाथ श्रीराम ही अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं । उन्हींके यज्ञीय अश्वकी रक्षा करते उनके अनुज ये शत्रुघ्नकुमार आपके श्रीचरणों तक पहुँचे हैं ।'

'आज मेरा मनोरथ सफल हुआ । आज मेरा जन्म-धारण सफल हुआ । आज मैं धन्य हो गया ।' आरण्यक मुनि तो आनन्दके मारे उठकर नृत्य करने लगे—'अब मैं अयोध्या जाकर अपने आराध्यके दर्शन कर सकूँगा । वहाँ उन श्रीरघुनाथके परम भक्त पवनपुत्रके पदोंमें प्रणाम करूँगा तो वे मुझे हृदयसे लगावेंगे ।'

'ब्रह्मर्षि ! मैं हनुमान आपको प्रणाम करता हूँ ।' हनुमानजीने आगे आकर प्रणाम किया । आरण्यक मुनिने सुनते ही उठकर आञ्जनेयको हृदयसे लगाया ।

'ये श्रीरघुनाथके सबसे छोटे भाई शत्रुघ्नकुमार हैं ।' अब हनुमानजीने परिचय देना प्रारम्भ किया—'ये भरत-कुमार पुष्कल हैं । ये परम रामभक्त राजा सुबाहु हैं और श्रीरामका नाम सुनते ही अपना सर्वस्व समर्पित कर देनेवाले ये राजा सत्यवान हैं ।'

हनुमानजीने सबका परिचय दिया । मुनि आरण्यकको सबने प्रणाम किया । आरण्यकजीने सबका सत्कार किया । सब लोग वहीं एक रात्रि रहे; क्योंकि अश्व वहाँ चुपचाप खड़ा था । सम्भवतः वह दीर्घ यात्रासे श्रान्त हो गया था ।

प्रातःकाल सबने नर्मदा-स्नान किया । आरण्यक मुनि बहुत वृद्ध थे । अतः शत्रुघ्नकुमारने उनके लिए शिविकाकी व्यवस्था की । मुनिको शिविकामें

बैठाकर उन्हें अयोध्या भेजा और उनसे अश्वके पीछे जानेकी आज्ञा ली । अब अश्व मन्दगतिसे चल पड़ा था ।

महामुनि आरण्यक मार्गमें श्रीरामके ध्यानमें मग्न रहे । उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी । आराध्यके दर्शन इस प्रकार सुलभ होंगे, इसकी कल्पना उन्होंने नहीं की थी । उन्हें पता ही नहीं लगा कि पथ कैसे समाप्त हो रहा है । अमरकण्टकसे अयोध्या पर्याप्त दूर है । शिविका-वाहकोंको पथ-विश्राम भी करना ही था । मार्गमें मुनिके आहारादिकी व्यवस्था शत्रुघ्नकुमारने कर दी थी; किन्तु मुनिको शरीर-सुधि हो तब शिविकासे उतरें । वे तो बैठे और जैसे समाधिमें स्थित हो गये । उन्हों तो चेतना तब आयी जब अयोध्यामें यज्ञशालाके द्वारपर उनकी शिविका पहुँच गयी और श्रीराघवेन्द्र सूचना पाकर उनका स्वागत करने आये ।

श्रीरामके दूर्वादल श्रीअंगपर दृष्टि पड़ते ही आरण्यक मुनि हड़बड़ा कर उठे । श्रीरघुनाथने गोत्र, पिताका नाम लेकर उन्हें प्रणिपात किया; किन्तु मुनिका शरीर तो जैसे काष्ठ अथवा पाषाण-निर्मित हो, इस प्रकार निष्क्रिय हो गया । उनके नेत्रोंसे झरती अश्रुधारा ही कहती थी कि वे जीवित हैं ।

श्रीरामने उठकर स्वयं उनका कर पकड़ा । उन्हें ले आकर यज्ञमण्डपमें मुनि-मण्डलके मध्य एक उच्चासनपर बैठाया । स्वयं स्वर्ण-पात्रमें जल लेकर उनके चरण-प्रक्षालन करने बैठ गये । आरण्यक मुनिके नेत्र श्रीरामके मुखपर लगे थे । उनका शरीर निस्पन्द था । वे केवल चलते आये थे, बैठ गये थे; किन्तु इन क्रियाओंका भी उन्हें पता नहीं था ।

सहसा तीव्र शब्दके साथ मुनिका ब्रह्मरन्ध्र फटा । उससे एक ज्योति निकली । सबके देखते ही वह श्रीराममें प्रविष्ट हो गयी । यज्ञ-मण्डप गूँजने लगा—'धन्य ! धन्य ! साधु ! साक्षात् परम पुरुषसे अत्यन्त दुर्लभ सायुज्जय प्राप्त हुआ इन महापुरुषको ।'

मर्यादा-पुरुषोत्तमको शास्त्रीय मर्यादा माननी ही थी । आरण्यक मुनिका विमान सज्जित हुआ । मुनि-मण्डल साथ चला । स्वयं श्रीरामने उस पावन देहको सरयू-समर्पित किया । उस दिन यज्ञ तो विरमित रहना ही था । यज्ञशालाकी आवश्यक शुद्धि भी अपेक्षित थी । महर्षि वशिष्ठने शुद्धि, प्रायश्चित्त प्रभृति सम्पन्न कराये ।

●●●

शिव-भक्तसे संग्राम

आरण्यक मुनिके आश्रमसे चलकर अश्व नर्मदा किनारे आगे बढ़ा। इस क्रममें वह देवताओं द्वारा निर्मित देवपुर पहुँचा। ऐसा अद्भुत नगर, जिसके भवनोंकी भित्तियाँ स्फटिक-निर्मित थीं। सामान्य सेवकोंके सदन भी रजतसे बने थे। नगरका गोपुर माणिक्यसे बना था और उसमें सभी रंगोंकी मणियाँ जड़ी थीं। जहाँ स्वयं भगवान् त्रिलोचन इन्दु-भाल भक्त-भाव-परवश पुर-पाल बनकर रहते हों, उस वीर-शिरोमणि नरेश वीर-मणिके नगरका वैभव वर्णनसे बाहर है।

नरेश वीरमणिके युवराज रुक्मांगद अपनी रानियों तथा सेविकाओंको साथ लेकर वन-विहार करने निकले थे। उनके समीप अश्वमेधीय अश्व पहुँचा तो युवराज्ञीने ही कहा—'स्वामी! इस शोभाशाली अश्वको तो देखें। इसके मस्तकपर स्वर्ण-पत्र बँधा है। किसका है यह अश्व? इस प्रकार उन्मुक्त क्यों घूम रहा है? इसे पकड़िये।'

रुक्मांगदने क्रीड़ा-पूर्वक अश्व पकड़ लिया; किन्तु अश्वके भालपर बँधे स्वर्णपत्रको पढ़कर उसकी भृकुटि कठोर हो गयी—'स्वयं भगवान् पिनाकपाणि जिनके रक्षक हैं, उन मेरे पिताके समान पृथ्वीपर दूसरा कौन शौर्य एवं बलमें समान हो सकता है। यह राजा रामचन्द्र कौन है जो इतना अहंकार करता है। देवता, दानव, यक्ष सभी तो मेरे पिताकी चरण-वन्दना करते हैं। अतः इसी अश्वके द्वारा मेरे पिता अश्वमेध-यज्ञ करेंगे।'

रुक्मांगदके साथ सैनिक नहीं गये थे। वह स्त्रियोंके साथ वनमें क्रीड़ा करने गया था। अतः अश्वको पकड़कर स्वयं नगरमें लौटा। स्त्रियोंको उसने अन्तःपुरमें भेज दिया। पिताके सम्मुख राजकुमार अश्व लेकर उपस्थित हुआ तो राजा वीरमणिने उसकी प्रशंसा की। पुत्रकी भर्त्सना तो उन्होंने नहीं की; किन्तु उनके मनमें सन्देह उठा—'यह तो अश्व लेकर चुपकेसे चला आया है, यह कार्य तो चोरके जैसा हुआ।'

वीरमणिने भगवान् शंकरसे जाकर पुत्रका कर्म सुनाया। सुनकर

सदाशिव बोले—'तुम्हारे पुत्रने अच्छा नहीं किया । जिनका मैं हृदयमें ध्यान करता हूँ, जिनका नाम-जप करता रहता हूँ, उन्हीं मेरे आराध्यका यह यज्ञीय अश्व है । युद्ध होता है तो उसका परम-लाभ यह अवश्य होगा कि हम लोग श्रीरघुनाथके चरण-कमलोंका दर्शन कर सकेंगे; किन्तु मेरे द्वारा रक्षित होनेपर भी शत्रुघ्न अश्व अवश्य बलपूर्वक ले जायेंगे । अतएव मेरी सम्मति तो यह है कि तुम विनीत बनकर जाओ और राज्य-सहित अश्व अर्पण करके श्रीरघुनाथकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त करो ।'

'यह अवसर कहाँ रहा देव ? अश्व आया था, तभी सहर्ष मैं जाता इसमें शोभा थी । अब अश्व लेकर जाना मेरी भीरुता मानी जायेगी ।' वीरमणिने हाथ जोड़कर कहा—'अब तो क्षत्रियोचित युद्ध ही कर्तव्य बन गया है । मैं आपकी शरण हूँ ।'

'मैं तुम्हारी भक्तिके कारण तुम्हारे वशमें हूँ । युद्धमें मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ । शत्रुघ्नके सहित उनकी सेना पराजित होगी; किन्तु भगवान् भोलेनाथने कह दिया—'यदि मेरे स्वामी श्रीरघुनाथ स्वयं आ गये तो मैं उनकी चरण-वन्दना ही करूँगा । उनसे युद्ध नहीं कर सकूंगा ।'

'तब आप अपने इस सेवकको अश्व तथा राज्यके साथ उनके श्रीचरणोंमें समर्पित कर दें ।' वीरमणिने हर्षित होकर कहा—'इससे अधिक सौभाग्य मेरा नहीं हो सकता ।'

राजा वीरमणिने अपनी सेनाको सज्जित होनेका आदेश दे दिया । राजकुमार रुक्मांगदने युद्धमें प्रथम नेतृत्व सम्हाला । दूसरी ओर कुमार शत्रुघ्नके सैनिक अश्वका अन्वेषण कर रहे थे । अश्व अचानक अदृश्य हो गया था । सैनिकोंके सम्मुखसे अश्व दौड़ा था । अब वह कहीं दीख नहीं रहा था ।

'यहाँ आसपास कोई बलवान राजा रहता है ?' शत्रुघ्नकुमारने मन्त्रीसे पूछा—'उसने अश्वका अपहरण किया हो तो उसकी शक्ति तथा सैन्यबल कितना है ?'

मन्त्री सुमतिको उत्तर देनेका अवकाश नहीं मिला । उसी समय देवर्षि नारद वहाँ आकाशसे उतरे । आते ही उन्होंने कहा—'कुमार ! तुम लोग अश्वके सम्बन्धमें चिन्तित हो; किन्तु मैं यहाँ युद्ध देखने आया हूँ । समीप ही देवपुर

है । उसके नरेश वीरमणि ससैन्य आ रहे हैं और आ रहे हैं उनकी सहायता करने स्वयं भगवान् त्रिपुरारि भूतगणोंके साथ । अश्व तो तुम्हें इस युद्धके पश्चात् प्राप्त होगा । तुम्हारी विजय तो होगी; किन्तु बहुत विकट संग्रामको प्रस्तुत रहो ।'

देवर्षि नारद आकाशमें स्थित रहकर युद्ध देखना चाहते थे, अतः वे चले गये । देवपुरकी सेनाके रणवाद्य सुनायी पड़ने लगे थे । राजा वीरमणिके सेनापति रिपुवार, राजाके छोटे भाई वीरसिंह, राजकुमार रुक्मांगद तथा शुभांगद सभी रथोंपर आरूढ़ नगरसे निकले ।

मन्त्री सुमतिकी सम्मतिसे कुमार पुष्कल दूसरे राजाओंके साथ संग्राम करने आगे बढ़े । शत्रुघ्नको भगवान् शिव अथवा राजा वीरमणिके युद्धमें आनेपर उनसे युद्ध करना था । पुष्कलने प्रथमाक्रमण किया । फलतः युवराज रुक्मांगदको अपनी सेनाकी रक्षाके लिये आगे आना पड़ा ।

पुष्कल और रुक्मांगदका युद्ध अद्भुत था । दोनों अस्त्रज्ञ थे । दोनों ने शर-वृष्टि करना आरम्भ किया था । दोनोंका तेज अप्रतिहत था । रुक्मांगदने चुनौती दी—'पुष्कल ! सावधान बैठना । तुम्हारा रथ आकाशमें जा रहा है ।'

सचमुच राजकुमार रुक्मांगदके भ्रामकास्त्रसे पुष्कलका रथ अश्वों सहित उड़ा और एक योजन दूर जा गिरा । पृथ्वीपर आकर भी वह चक्कर काटता रहा । कठिनाईसे सारथिने रोका । युद्ध-भूमिमें आकर पुष्कलने कहा—'रुक्मांगद ! तुम वीर हो । तुम्हारे जैसे उत्तम अस्त्रज्ञ पृथ्वीपर रहने योग्य नहीं हैं । तुम्हें शीघ्र स्वर्ग जाना चाहिए ।'

पुष्कलके अस्त्र-प्रयोगने रुक्मांगदका रथ उड़ाकर सूर्य मण्डलके समीप पहुँचा दिया । अश्व सहित रथ भस्म हो गया उस प्रचण्ड ज्वालामें । वहाँ कहाँ राखका पता लगना था । रुक्मांगद रथसे कूदा,; किन्तु देर हो चुकी थी । रथ बहुत दूर जा चुका था । पृथ्वीपर उसका अर्ध दग्ध, प्राणहीन शरीर गिरा ।

पुत्रकी वीरगति देखकर राजा वीरमणि क्रोधमें भर उठे । उन्होंने पुष्कलकी ओर रथ बढ़ाया । यह देखकर हनुमानने हुंकार की और कूदे; किन्तु पुष्कलने उन्हें रोका—'महाकपे ! आप क्यों मध्यमें आते हैं । आप पूज्य पितृव्यके समीप रहें । आप तो जानते हैं कि श्रीरघुनाथका स्मरण करके प्राणी सब दुस्तर

संकटोंके पार हो जाता है । मैं उनके श्रीचरणोंके ही आश्रित हूँ । इस युद्ध-संकटको मैं अवश्य पार कर लूँगा ।'

'पुष्कल ! तुम बालक हो और वीरमणि अस्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं । स्वयं भगवान् पुरारि इनके रक्षक हैं ।' हनुमानजीने समझाया—'अतः तुम इनके सामने मत पड़ो ।'

'भगवान शिव स्वयं जिनका सदा स्मरण करते हैं, मैं उनके सहारे खड़ा हूँ ।' पुष्कलने स्थिर स्वरमें कहा—'वीरमणिको आज मुझसे पराजित होना पड़ेगा ।'

ऐसी अविचल आस्थाको पराजित करनेकी शक्ति सम्भवतः सर्वेश्वर के समीप भी नहीं है । हनुमानजी यह सत्य भली प्रकार जानते हैं । वीरमणिने ही आगे आकर कहा—'बालक ! मेरे सामने मत पड़ो । इस समय मैं क्रोधमें भरा हूँ । प्राण बचाना हो तो हट जाओ यहाँसे ।'

'राजन् ! आप अपनेको सम्हालें ! श्रीरामका सेवक जब उनके सहारे खड़ा होता है, उसे त्रिभुवनमें पराजित करनेवाला कोई नहीं हो सकता ।' पुष्कलने हँसकर कहा—'आप पौरुष प्रकट करें ।'

राजा वीरमणि खुलकर हँसे । उन्हें पुष्कलका यह कोरा बाल-हठ लगा । दोनों ओरसे आघात-प्रत्याघात चलने लगे । इस युद्धमें अन्ततः राजा वीरमणिका कवच, शिरस्त्राण कट गया । उनका रथ नष्ट हो गया । उन्हें दूसरा रथ स्वीकार करना पड़ा । उन्होंने स्वीकार किया—'पुष्कल ! तुम धन्य हो ।'

'आप वृद्ध होनेके कारण सम्मान्य हैं !' पुष्कलने कहा—'तथापि युद्धमें अब युद्धोचित्त सत्कार करनेको मैं बाध्य हूँ । मेरे तीन वाणोंसे ही आप मूर्छित हो जानेवाले हैं ।'

पुष्कलका प्रथम वाण अग्निके समान तेजस्वी था; किन्तु उसे वीरमणिने काट दिया । दूसरा वाण पुष्कलने अपनी मातृ-भक्तिका स्मरण करके चलाया, वह भी कट गया । तीसरा वाण श्रीरघुनाथका स्मरण करके छूटा । वह प्रज्वलित बाण राजा वीरमणिके वक्षको वदीर्ण कर गया । वे मूर्छित होकर गिर पड़े । देवपुरकी सेनामें हाहाकार मच गया ।

राजा वीरमणिके अनुजने अपने अग्रजको मूर्छित होते देखा तो अपना

रथ बढ़ाया; किन्तु उन्हें पवनकुमारने रोक दिया। वीरसिंहकी वाण-वर्षा प्रचण्ड थी; किन्तु वज्रदेह आञ्जनेय पर उसका क्या प्रभाव पड़ता। हनुमानने एक मुष्टिका धर दी। वक्षमें महावीरका मुष्टिका प्रहार पड़ते ही वीरसिंह मूर्छित हो गये। राजकुमार शुभांगद दौड़ा चाचाको गिरते देख; किन्तु पवनपुत्रने पूँछमें लपेटकर उसका रथ पटक दिया। वह भी मूर्छित हो गया।

अपने भक्तकी सहायता करने अब भगवान शंकर स्वयं संग्राम भूमिमें पहुँचे। उन प्रलयंकरके साथ उनके प्रमथ गण आये पृथ्वी कम्पित करते। कुमार शत्रुघ्नने आगे रथ बढ़ाया अपना। शत्रुघ्नको देखकर शिवने वीरभद्रको आज्ञा दी—'तुम मेरे प्रिय भक्तको पीड़ा देनेवाले पुष्कलसे प्रतिशोध लो। मैं शत्रुघ्नको सम्हालता हूँ।'

हनुमानसे नन्दी युद्ध करने लगे। कुशध्वजसे प्रचण्ड सुबाहुसे भृंगी, सुमदसे चण्ड, इस प्रकार शिवगण सब प्रधान राजाओंसे युद्ध करने लगे।

रात-दिन अविराम चलने लगा युद्ध। पुष्कलने वीरभद्रका त्रिशूल काट दिया तो वीरभद्रने पटककर पुष्कलका रथ तोड़ डाला। कौन कल्पना कर सकता है कि बालक पुष्कल उद्भट वीरभद्रसे मल्लयुद्ध कर सकेंगे; किन्तु चार दिन-रात अविराम मल्ल युद्ध किया पुष्कलने। पाँचवे दिन पुष्कलने वीरभद्रको पटक लिया; किन्तु सुरासुरजयी वीरभद्र स्वयं रुद्रके मूर्तिमान क्रोध हैं। उन्होंने पुष्कलको पैर पकड़कर घुमाया और पृथ्वीपर पटक दिया। फिर उनके कुण्डल-भूषित मस्तकको त्रिशूलसे काट दिया। इसके अनन्तर वीरभद्र भीषण गर्जना करने लगे। सैनिक थर्रा उठे।

पुष्कलकी मृत्यु सुनकर शत्रुघ्न दुःखी हो गये। शिवने समझाया—'शत्रुघ्न! दक्ष-यज्ञ ध्वंस करने वाले, मेरा साक्षात् अंश वीरभद्रसे पाँच दिन युद्ध करके पुष्कल धन्य हो गया। तुम उसका शोक छोड़ो और युद्ध करो।'

शत्रुघ्न क्रुद्ध हो उठे। उनकी शर-वर्षा प्रचण्डतम हो उठी। भगवान महेश्वरके धनुषसे भी अजस्र वाण छूटने लगे। सब सशंक हो गये—'पता नहीं, क्या होने वाला है।'

ग्यारह दिनों तक यह युद्ध अखण्ड चला। बारहवें दिन शत्रुघ्नने ब्रह्मास्त्र प्रयोग किया, पुरारि हँसकर उसे पी गये। इससे शत्रुघ्नको बड़ा आश्चर्य हुआ।

पर्वतको नष्ट करने आ जाते हो ? एक शिखर इसका तुम लंका-युद्धके समय ले जा चुके हो । अब क्यों आ गये ?'

'देवपुरमें वीरमणिके साथ युद्धमें हमारे पक्षके बहुत योद्धा मारे गये हैं । उनको जीवित करनेके लिए मैं यह पर्वत ले जाऊँगा ।' पवनकुमारने ललकारा—'बाधा मत दो ! अन्यथा सबको मरना पड़ेगा । तुम औषधि देकर पर्वत बचा सकते हो, अन्यथा मैं पूरा पर्वत अवश्य ले जाऊँगा ।'

ऐसे प्रबलसे प्रतिरोध करना व्यर्थ था । देवताओंने प्रणाम करके श्रीपवननन्दनको औषधि दे दी । हनुमान औषधि लेकर युद्ध-क्षेत्रमें आये । उन्होंने मन्त्री सुमतिसे कहा—'केवल अपने पक्षके लोगोंको जीवित करना अन्याय होगा । भगवान शिवने ही हमारे पक्षके मृत-मूर्छितोंके शरीरोंकी रक्षाकी है । अतः मैं उनके सेवकोंको भी जीवित करूँगा ।'

'यदि मैं सचमुच श्रीरघुनाथका सेवक हूँ तो औषधि इन्हें जीवित कर दे ।' हनुमानने पहिले पुष्कलके सिरको धड़से जोड़कर उनके वक्षपर औषधि रखकर कहा । तत्काल पुष्कल उठ बैठे । फिर तो यह सबके लिए महामन्त्र हो गया । बिना स्वपर-भेदके आञ्जनेयने सभी मृत-मूर्छितोंको स्वस्थ, सजीव बना दिया ।'

युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया । राजा वीरमणि शत्रुघ्नसे युद्ध करने लगे । दोनों ओरसे दिव्यास्त्रोंकी वर्षा आरम्भ हुई । आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, पार्वतास्त्र, वज्रास्त्रके प्रयोग चलते रहे । अन्तमें राजा वीरमणिने ब्रह्मास्त्र प्रयुक्त किया । कुमार शत्रुघ्नने मोहनास्त्रसे ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया । राजा वीरमणि मोहनास्त्रके आघातसे मूर्छित हो गये ।

वीरमणिके मूर्छित होनेपर भगवान भूतनाथ युद्धमें आ गये । शत्रुघ्नकुमारने उनके साथ भी तुमुल संघर्ष किया, उन विश्वनाथ पर विजय तो नहीं पायी जा सकती । शत्रुघ्न अत्यन्त व्याकुल हो गये पिनाकपाणिके प्रहारोंसे । तभी पवनपुत्रने सचेत किया—'अपने अग्रजका स्मरण कीजिये । उनके अतिरिक्त इन प्रलयंकरको अन्य कोई शान्त नहीं कर सकता ।'

'ये अत्यन्त उग्र रुद्र, धनुष उठाकर मेरे विरुद्ध युद्ध करने आ गये हैं । इनसे आप ही मेरी रक्षा कीजिये !' शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथका स्मरण किया ।

पर्वतको नष्ट करने आ जाते हो ? एक शिखर इसका तुम लंका-युद्धके समय ले जा चुके हो । अब क्यों आ गये ?'

'देवपुरमें वीरमणिके साथ युद्धमें हमारे पक्षके बहुत योद्धा मारे गये हैं । उनको जीवित करनेके लिए मैं यह पर्वत ले जाऊँगा ।' पवनकुमारने ललकारा—'बाधा मत दो ! अन्यथा सबको मरना पड़ेगा । तुम औषधि देकर पर्वत बचा सकते हो, अन्यथा मैं पूरा पर्वत अवश्य ले जाऊँगा ।'

ऐसे प्रबलसे प्रतिरोध करना व्यर्थ था । देवताओंने प्रणाम करके श्रीपवननन्दनको औषधि दे दी । हनुमान औषधि लेकर युद्ध-क्षेत्रमें आये । उन्होंने मन्त्री सुमतिसे कहा—'केवल अपने पक्षके लोगोंको जीवित करना अन्याय होगा । भगवान शिवने ही हमारे पक्षके मृत-मूर्छितोंके शरीरोंकी रक्षाकी है । अतः मैं उनके सेवकोंको भी जीवित करूँगा ।'

'यदि मैं सचमुच श्रीरघुनाथका सेवक हूँ तो औषधि इन्हें जीवित कर दे ।' हनुमानने पहिले पुष्कलके सिरको धड़से जोड़कर उनके वक्षपर औषधि रखकर कहा । तत्काल पुष्कल उठ बैठे । फिर तो यह सबके लिए महामन्त्र हो गया । बिना स्वपर-भेदके आञ्जनेयने सभी मृत-मूर्छितोंको स्वस्थ, सजीव बना दिया ।'

युद्ध पुनः प्रारम्भ हो गया । राजा वीरमणि शत्रुघ्नसे युद्ध करने लगे । दोनों ओरसे दिव्यास्त्रोंकी वर्षा आरम्भ हुई । आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, वायव्यास्त्र, पार्वतास्त्र, वज्रास्त्रके प्रयोग चलते रहे । अन्तमें राजा वीरमणिने ब्रह्मास्त्र प्रयुक्त किया । कुमार शत्रुघ्नने मोहनास्त्रसे ब्रह्मास्त्रको शान्त कर दिया । राजा वीरमणि मोहनास्त्रके आघातसे मूर्छित हो गये ।

वीरमणिके मूर्छित होनेपर भगवान भूतनाथ युद्धमें आ गये । शत्रुघ्नकुमारने उनके साथ भी तुमुल संघर्ष किया, उन विश्वनाथ पर विजय तो नहीं पायी जा सकती । शत्रुघ्न अत्यन्त व्याकुल हो गये पिनाकपाणिके प्रहारोंसे । तभी पवनपुत्रने सचेत किया—'अपने अग्रजका स्मरण कीजिये । उनके अतिरिक्त इन प्रलयंकरको अन्य कोई शान्त नहीं कर सकता ।'

'ये अत्यन्त उग्र रुद्र, धनुष उठाकर मेरे विरुद्ध युद्ध करने आ गये हैं । इनसे आप ही मेरी रक्षा कीजिये !' शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथका स्मरण किया ।

तत्काल दूर्वादल-श्याम, पद्मपलाश-लोचन श्रीराम मृगशृंग-पाणि, यज्ञदीक्षित रूपमें प्रकट हो गये ।

शत्रुघ्नकुमारने अग्रजके चरणोंमें प्रणाम किया । हनुमानजीने चरण-वन्दनाकी । पुष्कल, सुबाहु आदि अभी प्रणाम नहीं कर सके थे, कि भगवान शंकर आगे आये । अञ्जलि बाँधकर स्तुति करने लगे—'सर्वेश्वर परमपुरुष ! भक्तवत्सल ! मैंने अपने भक्तके वशमें होकर आपके कार्यमें बाधा डालनेका अपराध किया । मुझे क्षमा करें । यहाँके राजा वीरमणिने अवन्तिकामें शिप्रातटपर कठिन तप करके मुझे प्रसन्न कर लिया था । मैंने इसे आपके अश्वमेधीय अश्वके आगमन तक रक्षाका वरदान दिया था । अब अश्वके साथ इस राजाको इसके पुत्र, बन्धु-बन्धवों सहित मैं आपके चरणोंमें अर्पित करता हूँ । आप इसे अपनाकर मुझपर अनुग्रह करें ।'

'जो आपका प्रिय है, वह मुझे परम प्रिय है ।' श्रीरघुनाथने पदोंमें प्रणत वीरमणिको उठाकर हृदयसे लगा लिया—'आपमें और मुझमें भेद देखनेवाले अज्ञ हैं ।'

श्रीरघुनाथ जैसे प्रकट हुए थे, वैसे ही अदृश्य हो गये । भगवान शिव भी राजाको समझाकर गणोंके साथ कैलाश चले गये । राजा वीरमणिने राज्यपर पुत्रका अभिषेक कर दिया । सेनाके साथ वे शत्रुघ्नके साथ हो गये; क्योंकि भगवान शंकर उनको आदेश दे गये थे—'राजन् ! श्रीरघुनाथका आश्रय ही सर्वश्रेष्ट है । अतः अब तुम उन सर्वेश्वरकी ही शरणमें रहो ।'

●●●

अश्व-गात्र स्तम्भ

अनियन्त्रित-गति अश्व नर्मदा किनारेसे पुनः दौड़ पड़ा । इस बार वह हेमकूट पर्वतपर जाकर रुका । उस पर्वतके शिखरपर एक उत्तम उद्यान था । उस नाना प्रकारके वृक्षोंसे शोभित उद्यानमें प्रवेश करते ही अश्वका सारा शरीर स्तम्भित हो गया । वह अपने कर्ण तथा पूँछ हिलानेमें भी असमर्थ हो गया ।

'स्वामिन् ! पता नहीं, अश्वको क्या हो गया है ।' अश्वके साथ चलते अग्रचर दलके लोगोंने पीछे लौटकर शत्रुघ्नको समाचार दिया—'वह अचानक स्तब्ध खड़ा हो गया है । तनिक भी हिलता-डोलता नहीं है ।'

अश्वमेधीय अश्व मन्त्रपूत, देवातात्मा होता है । उसे रुग्ण नहीं होना चाहिए । कुमार शत्रुघ्न शेष लोगोंके साथ उस अश्वके समीप गये । सेवक कह रहे थे—'इस पर्वतपर अश्वने कहीं जल नहीं पिया । कहीं तृणको मुख नहीं लगाया । कुछ सूँघा नहीं । वह दौड़ता ही आया था ।'

इसका अर्थ था कि अश्वपर दूषित जल अथवा किसी विषैले तृण, पुष्पगन्धका प्रभाव नहीं पड़ा था । वायुमें कोई दोष होता तो दूसरे अश्वोंपर भी पड़ती । समीप आकर कुमार शत्रुघ्नने, साथके अश्व-चिकित्सकोंने भी अश्वके शरीरकी भली प्रकार परीक्षा की । उसे न किसी विषैले जन्तुने काटा था और न उसमें किसी आन्तरिक व्याधिके ही लक्षण थे । अश्वके नेत्र, कर्ण, जिह्वादिका रंग, उष्णता, आर्द्रता सब स्वस्थ कहनेवाले थे । उसका उदर कोमल था और फूला नहीं था । अश्वकी कर्णमूल ग्रन्थि अथवा अन्य कहीं भी शोथ नहीं था ।

पुष्कलने भुजाओंमें भरकर अश्वके दोनों चरणोंको बारी-बारीसे ऊपर उठानेका प्रयत्न किया; किन्तु असफल हो गये । मन्त्री सुमतिने कहा—'अश्वको कोई व्याधि नहीं जान पड़ती । हमें कोई तपस्वी ऋषि-मुनि आसपास हो तो उनकी शरण लेनी पड़ेगी । अश्वको कोई आधिदैविक बाधा पीड़ित करती प्रतीत होती है ।'

अन्ध-विश्वास है भली प्रकार भौतिक कारणोंपर प्रथम विचार न कर लेना; किन्तु जब कोई बाहरी कारण न प्राप्त हो, तब आधिदैवत कारणको

न मानना अज्ञता है । इन दोनों अतियोंके मध्य विचारवान् आस्तिक अपना मार्ग बनाते हैं । मन्त्रीने तत्काल किसी तपस्वीके अन्वेषणार्थ चर भेज दिये ।

उस स्थानसे एक योजन दूर पूर्व दिशामें महर्षि शौनकका आश्रम मिल गया । पूर्वकी ओर गये सेवकोंने लौटकर समाचार दिया । उन्हें केवल मुनि-आश्रम देखनेकी आज्ञा थी । पता लगनेपर कुमार शत्रुघ्न स्वयं पुष्कल, हनुमानादिके साथ उस आश्रमपर गये । वाहन आश्रम सीमासे बाहर छोड़कर उन्होंने आश्रममें जाकर अपना गोत्र, पिताके नामके साथ अपना नाम लेकर ऋषिको दण्डवत्-प्रणिपात किया ।

महर्षि शौनकने अर्घ्य, पाद्य देकर आगत अतिथियोंका सत्कार किया । जब सब लोग सुखपूर्वक बैठ गये, तब पूछा—'आप सब बहुत दूरसे आये लगते हैं । यहाँ इस ओर आप कैसे पधारे हैं ?

'भगवन् ! हम लोग अयोध्यानाथ श्रीरघुनाथके अश्वमेधीय अश्वके रक्षक हैं ।' शत्रुघ्नने कहा—'आपके आश्रमसे एक योजन पश्चिम इसी पर्वत-शिखरपर बहुत सुन्दर पुष्पित, फलोंसे पूर्ण उद्यान है । हमारा अश्व उसमें प्रविष्ट हो गया । वहाँ पहुँचते ही उसका सम्पूर्ण शरीर स्तम्भित हो गया है । हम सब आपकी शरण आये हैं । अश्वका गात्र-स्तम्भ दूर हो, वह उपाय बतलानेका अनुग्रह करें । उसकी यह अवस्था क्यों हुई ?'

महर्षि शौनकने कुछ क्षण नेत्र बन्द करके ध्यान किया । क्योंकि सदा सर्वज्ञ तो केवल परमात्मा है । ऋषि, मुनि, योगी ध्यान करके अभीष्ट जाननेमें समर्थ होते हैं । अश्वके गात्र-स्तम्भका कारण ध्यानके द्वारा जानकर उन्होंने बतलाया—

'बहुत पूर्वकालमें कावेरीके तटपर एक सात्विक ब्राह्मण तपस्वी रहता था । व्रत, तपस्या करते हुए जब उसका शरीर छूटा, तब अपने पुण्योंके फलस्वरूप वह देवता हो गया । देव-शरीर प्राप्त होनेपर विमानमें बैठकर वह अप्सराओंके साथ मेरु-शिखरपर जाकर विहार करने लगा । अब उसे अपने देवत्वका गर्व हो गया था । मेरु-शिखरपर रहने वाले ऋषियोंकी अवज्ञा करके वह उनके आश्रमोंमें भी अप्सराओंके साथ जब नृत्य, गानादिमें लगा, ऋषियोंने शाप दे दिया—'तू राक्षसोंके समान अमर्यादित आचरण करता है अतः राक्षस

हो जा ।"

वह देवता तत्काल राक्षस हो गया । उसने दुःखी होकर उन ऋषियोंसे प्रार्थना की—'आप सब महात्मा हैं, दयालु हैं, मेरा अपराध क्षमा करके मेरे उद्धारका उपाय बतलावें ।'

'त्रेतामें श्रीरामके अश्वमेधीय अश्वका वेग स्तम्भित कर देना ।' उन ऋषियोंने कहा—'तब तुम्हें श्रीरामकथा-श्रवणका अवसर प्राप्त होगा । उस परम पावन कथाके श्रवणसे निष्पाप होकर तुम पुनः देवत्व प्राप्त कर लोगे ।'

महर्षि शौनकने कहा—'उसी राक्षस बने देवताने अश्वका वेग स्तम्भित किया है । अतः आप सब श्रीराम-कथा-कीर्तनके द्वारा अश्वको उससे उन्मुक्त करो ।'

सबको बहुत प्रसन्नता हुई । उपाय अत्यन्त सरल निकला और ऐसा निकला जो सबको ही प्रिय था । महर्षिसे अनुमति लेकर शत्रुघ्नकुमार अश्वके समीप लौटे । सभी सैनिक अश्वको घेरकर बैठ गये । श्रीराम-चरित-श्रवणका ऐसा सुअवसर कौन नहीं चाहता ।

शत्रुघ्नकुमारके अनुरोधपर श्रीहनुमानजीने आरम्भसे लेकर श्रीराम-चरितका वर्णन प्रारम्भ किया । पवनकुमार स्वभावसे श्रीराम-कथा-श्रवणके रसिक हैं । वे आज वर्णन करनेवाले बन गये थे । तन्मय होकर वर्णन कर रहे थे । उनके लोचनोंसे अश्रुधारा चल रही थी । शरीर पुलकित हो रहा था । विस्तारपूर्वक श्रीराम-चरितका वर्णन सुनाया उन्होंने ।

'देव ! आप इस भुवनपावनी कथाके श्रवणसे सर्वथा निष्पाप हो गये हैं ।' अन्तमें आञ्जनेयने अश्वमें आविष्ट उस देवताको सम्बोधित किया—'आपका कुत्सित राक्षसयोनिसे उद्धार हो गया । देखिये, आपको लेने विमान आ गया है । अतः अश्वका गात्र त्यागकर अपने विमानमें बैठिए और यथेच्छ स्थानको पधारिए ।'

'मैं अनुगृहीत हुआ । ऋषियोंने शाप देकर भी दया ही की थी सत्पुरुषोंका क्रोध भी कल्याणकारी ही होता है । उसके कारण मेरा अहंकार मिटा । मुझे त्रिलोक-पावनी कथा-श्रवणका सौभाग्य प्राप्त हुआ ।' देवताने प्रकट होकर प्रार्थनाकी—'मैंने अपने उद्धारके हेतु अश्व-स्तम्भन किया था, इस

अपराधको आप सब क्षमा करें । आप सब श्रीराघवेन्द्रके स्वजन हैं । दयालु हैं । भगवद्भक्त हैं । मैं आप सबको प्रणाम करता हूँ ।'

उस देवताने सबकी अश्वकी भी प्रदक्षिणा की । सबसे अनुमति लेकर वह विमानमें बैठा । शीघ्र वह विमान अन्तरिक्षमें अदृश्य हो गया । अश्व गात्र-स्तम्भ दूर हो जानेसे प्रसन्न हो गया था । शत्रुघ्नकुमारने उस स्थानपर सामान्य यज्ञकी व्यवस्था की; क्योंकि जहाँ भी अश्व मल-मूत्र त्याग करता अथवा अधिक देर तक रुकता था, वहाँ यज्ञ, दानादि करना आवश्यक विधिमें था ।

अश्व अपनी इच्छाके अनुसार भारतवर्षमें घूमता रहा । उसे इस प्रकार बिना किसी क्रमके घूमते हुए सात महीने व्यतीत हो गये । अनेक प्रदेशोंमें-से उसे दो या तीन बार निकलना पड़ा ।

हिमालयके दुर्गम प्रदेश पता नहीं क्यों अश्वको अधिक प्रिय थे । सम्भवतः वह जल-बहुल, पवित्र क्षेत्र देवात्मा अश्वको अधिक आकर्षित करता था; किन्तु वहाँके तपस्वी तो अश्वका अवरोध करनेवाले नहीं थे । यक्षेश्वर कुबेरने जब आगे आकर अलकापुरीसे बाहर ही अश्वको अर्घ्य अर्पित कर दिया, तब उन साक्षात् शंकरके सखासे सत्कृत अश्वको किन्नर, किम्पुरुषादि उपदेवताओंमें कौन पकड़नेका साहस करता ।

अश्वको मरुधरा सहज ही अनाकर्षक लगनेवाली थी । अतः उसने मरुस्थल तथा पश्चिम भारतका केवल एक बार चक्कर लगाया । वह जिस किसी प्रदेशमें पहुँचा, वहाँके नरेश उसका पूजन करके शत्रुघ्नकुमारको उपहार अर्पित कर गये । उनमें-से अनेक पुत्रोंको राज्य देकर अश्व-रक्षकोंमें सम्मिलित हो गये ।

अश्व पुनः हिमालयकी ओर लौटा और वहाँसे पूर्व चल पड़ा । पूर्वमें मिथिला, विदर्भके राजकुमार तो अश्व-रक्षकोंमें ही थे । इन दोनों प्रदेशोंमें कुमार शत्रुघ्नको सम्पूर्ण सेनाके साथ सत्कार स्वीकार करना पड़ा । जब तक अश्व इनकी सीमामें रहा, समस्त सैनिकोंके आहार, शयनादिकी व्यवस्था इनके अधिपतियोंने अत्यन्त स्नेहपूर्वक की ।

अंग, बंग, कलिंगमें अश्व इस क्रमसे नहीं गया । वह अंग देशसे कलिंग (उत्कल) की ओर मुड़ गया और वहाँसे मुड़कर बंग पहुँचा । इन प्रदेशोंके

आस्तिक अधिपति लोगोंने भी अश्वका स्तवन किया। उन्होंने भी उपहार दिये। श्रीरघुनाथका दिगन्त-धवल सुयश, उन दशग्रीव-दलनकर्ताका पराक्रम जानते हुए, शत्रुघ्नकुमारके साथकी असंख्य सेनाको प्रत्यक्ष देखकर किसे मरनेकी शीघ्रता थी कि वह अश्वको पकड़नेका साहस करता।

●●●

राजा सुरथसे युद्ध

अखिल लोक-वन्दनीया देवमाता अदितिका कर्ण-कुण्डल गिरनेसे जिस स्थानका नाम ही कुण्डलपुर पड़ गया था, राजा सुरथके प्रशासनने उसे सृष्टिका आदर्शतम राज्य बना दिया था। पूरे राज्यमें सब एकपत्नीव्रत पालक थे। चोर, अनाचारी, सुरापी, परस्वहारी उस राज्यमें सुना ही नहीं जाता था। कोई पापी नहीं, कोई असन्तुष्ट नहीं, कोई लोभ नहीं फलतः कोई रोगी नहीं, कोई दरिद्र नहीं, कोई अभावग्रस्त नहीं।

नरेश परम राम-भक्त थे। प्रजामें भी सब राम-भक्त ! अनेक भव्य श्रीराम-मन्दिर बने थे स्थान-स्थानपर। सब अपने वर्णाश्रम धर्मका पालन करते हुए रामनामका निरन्तर जप करते रहते थे। रामार्चन तथा रामकथा-श्रवण एकमात्र सबका प्रिय कार्य था। प्रत्येक प्रतिदिन अश्वत्थ और तुलसीका पूजन करता था। सब घरोंमें गायें थीं। सबको गो-पूजन, गो-सेवा सुलभ थी।

न कहीं झगड़ा, न संघर्ष। किसीके समीप इन व्यर्थ बातोंके लिए समय नहीं था। परनिन्दा, परचर्चा कहीं नहीं चलती थी। सब सन्तुष्ट थे, अतः समय बहुत था सबके समीप; किन्तु सब मानते थे कि भगवच्चर्चा, नाम-जप, पूजनमें वे पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं।

उस राज्यमें पाप-परायण पामरका प्रवेश ही नहीं था। धर्माजित भोग भोगनेवाले विषयी भी नहीं थे। स्वर्ग वहाँके लोगोंको हेय लगता था। अत; वहाँ धर्मपुरुषार्थ भी उपेक्षणीय ही था। उन श्रीरघुनाथके परम परायण भक्तोंके

लिए मोक्ष दुर्लभ नहीं था; किन्तु वे सब सर्वथा निष्काम होते हुए भी अपनेको साधक भी स्वीकार नहीं करते थे ।

राजासे प्रजातक सबकी एक ही कामना थी—श्रीरघुनाथका प्रत्यक्ष साक्षात्कार । अयोध्या बहुत दूर थी कुण्डलपुरसे । वर्तमान मणिपुर एवं असमसे अयोध्याका मार्ग अब भी बहुत सरल सीधा नहीं है । लेकिन जहाँ सच्ची उत्सुकता है, वहाँ भक्तवत्सल भगवान स्वयं कोई मार्ग अपने आगमनका बना लेते हैं । श्रीरघुनाथका अश्वमेधीय अश्व बंग देशसे आगे बढ़ा तो आकर कुण्डलपुर ही रुका ।

अद्‌भुत थे राजा सुरथ । उनके राज्यमें यमदूतोंका प्रवेश ही नहीं था, क्योंकि वहाँ कोई किसी प्रकार अधर्म करता ही नहीं था । मरनेके पश्चात् सब भगवद्धाम जाते थे । यमराज द्वादश महाभागवतोंमें हैं । वे भक्ताचार्य हैं । अतः राजा सुरथकी परीक्षा करके उन्हें वरदान देने वे स्वयं मुनिवेश बनाकर कुण्डलपुर पधारे ।

उन जटाधारी, वल्कलवस्त्र मुनिकी राजाने सविधि पूजा करके प्रार्थनाकी—'आज मेरा जीवन धन्य हो गया । मेरा घर पवित्र हो गया कि आप जैसे तापस पधारे । अब कृपा करके मुझे श्रीरघुनाथका सुयश सुनावें; क्योंकि जीवनमें और कुछ सुनने योग्य ही नहीं है ।'

राजाकी बात सुनकर मुनि हँसने लगे । इससे चकित होकर राजा सुरथने पूछा—'भगवन् ! आप हँसते क्यों हैं ?'

'राजन् ! मैं तुम्हारे भोलेपनपर हँसता हूँ ।' उन कृत्रिम मुनिने कहा—'तुमने एक कल्पना पाल ली है । तुम यह भी नहीं जानते कि संसारमें सब प्राणी कर्म-परवश है । कर्मसे ही स्वर्ग प्राप्त होता है । कर्मसे ही इस लोकमें धन, धान्य, स्त्री-पुत्र मिलते हैं । सौ अश्वमेध यज्ञ करके पुरन्दर स्वर्गपति हुए हैं । ब्रह्माको भी सृष्टिकर्ता-पद कर्मसे मिला है । तुम उत्तम कर्म पूछनेके स्थानमें अपना समय क्यों नष्ट करना चाहते हो ।'

'ब्रह्मबन्धु ! अब अपना मुख बन्द करो ।' क्रुद्ध होकर नरेशने कहा—'तुम्हारी बातें सुनना भी पाप है । तुम मेरे राज्यसे तत्काल निकल जाओ । तुम ब्राह्मण हो, इससे मैं तुम्हें शरीर-दण्ड नहीं देता । तुम इन्द्र और ब्रह्माकी

बात करते हो ? इन दोनोंका पद क्या नाशवान नहीं है; तुम कर्मकी स्तुति करनेवाले कौन हो ? तुम्हें यह भी पता नहीं है कि कर्मसे प्राप्त गति सदा विनाशवान होती है । अविनाशी पद केवल श्रीरघुनाथके स्मरणसे प्राप्त होता है ।'

'राजन् ! मैं तुम्हारी दृढ़ निष्ठासे सन्तुष्ट हूँ ।' राजा सेवक बुलाने जा रहे थे उस मुनिको निर्वासित करनेके लिए; किन्तु मुनि इतनेमें अपने वास्तविक वेशमें प्रकट होकर बोले—'मैं संयमिनीपुरीका शासक यमराज हूँ । तुम मुझसे कोई भी अभीष्ट वरदान माँग लो । मेरा आगमान व्यर्थ नहीं होना चाहिए ।'

'श्रीरघुनाथजीकी कृपासे मेरी कोई कामना अपूर्ण नहीं है । मुझे कुछ नहीं चाहिए ।' राजा सुरथने माँगा—'लेकिन भगवन् ! आप वरदान ही देना चाहते हैं तो आप धर्मराजसे मैं माँगता हूँ कि श्रीरघुनाथके प्रत्यक्ष दर्शनसे पूर्व मेरी मृत्यु न हो । कोई भी मुझे उससे पूर्व मारने अथवा संज्ञाशून्य करनेमें समर्थ न हो ।'

'एवमस्तु !' मृत्युके अधीश्वरने ही वरदान दे दिया । वरदान देकर यमराज अदृश्य हो गये । यमराजके वरदानने परम भक्त राजाकी उत्सुकता अधिक बढ़ा दी । वे जिस स्थितिको अपनेको अनधिकारी मानकर अलभ्य मानते थे, उसे प्राप्त होनेका आश्वासन मिला तो आकुलता अधिक बढ़ गयी—'मेरे नेत्र कब धन्य होंगे ? कब मैं उन भुवनसुन्दरका दर्शन पा सकूँगा ।'

'आपके नगरके समीप श्रीरघुनाथका अश्वमेधीय अश्व आया है । सेवकोंने राजाको समाचार दिया—'ऐसा सुन्दर अश्व हमने सुना भी नहीं था । उसके मस्तकपर स्वर्ण पत्र बँधा है रत्नाक्षरोंसे अलंकृत ।'

'वह मेरे आराध्यका अश्व है ।' राजा सुरथको ऐसा लगा कि साक्षात् श्रीरघुनाथ ही आये हों । उनका शरीर रोमाञ्चित हो गया । एक बार तो वे स्वयं उठ खड़े हुए सिंहासनसे । फिर सुप्रसन्न बोले—'मेरे स्वामीका अश्व आया है तो अवश्य उसे लेने वे स्वयं आवेंगे । उन अनन्त करुणासागरने इस क्षुद्रजन पर अनुग्रह करनेके लिए ही यह मार्ग निकाला है । तुम लोग अश्वको ले आओ । किसीका अवरोध मत सुनो; किन्तु उसे आदरपूर्वक ले

आओ । युद्ध तो होगा ही, अतः उसे मेरे अन्तःपुरमें लाकर रखो । मेरी रानी अपनी पुत्रवधुओंके साथ अश्वका पूजन करेगी । वे प्रयत्नपूर्वक उसकी सेवा करती रहेंगी । मैं अभी उन्हें आदेश देता हूँ कि अश्वको कोई कष्ट न हो । उसकी पूजा प्रतिदिन सावधानीसे की जाय । वह आराध्यके समान ही सम्मान्य, सेव्य माना जाय ।'

'आप धन्य हैं ! आप-सा स्वामी पाकर हम सब सनाथ हैं ।' मन्त्री, सैनिक, सभासद सब प्रसन्न हो गये—'अब अवश्य आपके इस निर्णयके कारण हम सबको श्रीरघुनाथके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त होगा ।'

'स्वामिन् ! अश्वका अपहरण हो गया । अश्वके साथ चलनेवाले अग्रचर दलने शत्रुघ्नकुमारके समीप लौटकर निवेदन किया—'समीप कोई नगर है । उसके राजाके सैनिक आये । हमने उन्हें रोका; किन्तु वे हमारी बात सुनकर हमारा उपहास करने लगे ।'

'अश्वके मस्तकपर स्वर्णपत्र क्या केवल शोभाके लिए बाँध रखा है ?' उन सैनिकोंने कहा—'जिनमें शक्ति हो, वे अश्व पकड़ें, यह इस स्वर्णपट्टमें लिखा है । शक्तिसिन्धु सर्वेश्वरने केवल तुम लोगोंको ही तो शक्ति नहीं दी है । हम भी उन्हींके आश्रित हैं । अपने अग्रणीसे कह दो कि हम अश्व ले जा रहे हैं । युद्ध-भूमिमें उनका उचित सत्कार करने हमारे अधिपति शीघ्र उपस्थित होंगे ।'

'कौन हैं इन सैनिकोंके अधिपति ? किसका राज्य है यहाँ ? शत्रुघ्नकुमारने मन्त्रीकी ओर देखा— 'इस राजाके सैनिकोंके उत्तरमें भी अशिष्टता, अभिमानका लेश नहीं है ।'

'यह आगे कुण्डलपुर नगर है । इसके नरेश सुरथ सुप्रसिद्ध रामभक्त हैं । इनकी कीर्तिका गान देवता भी करते हैं ।' मन्त्री सुमतिने परिचय दिया— 'इनके राज्यमें परधन, परस्त्री परलोलुप दृष्टि कोई नहीं डालता । यह चर्चा भी तुच्छ है । यहाँ तो प्रजाका कोई जन अपने पुण्यकर्मोंके फलकी भी स्पृहा नहीं करता । यहाँ सबके मुखपर सदा 'राम' नाम रहता है । सब श्रीरामके सुयशका गान करते हैं । सब श्रीरघुनाथकी प्रीति-पगे हैं ।'

'काश अयोध्याके लोग भी ऐसे होते ! 'शत्रुघ्नकुमारने दीर्घश्वास ली— 'हमारी प्रजाने श्रीरघुनाथपर ही आक्षेप किया और भगवती धरानन्दिनीको प्रभुने

निर्वासित किया । सुमति ! तुम कहते हो कि यहाँ कोई अन्यका दोष नहीं देखता और हम सबको अपने समस्त सद्‌गुणैकाश्रय अधीश्वरमें भी दोष-दर्शन करते हिचक नहीं हुई । मैं जानता हूँ कि मेरे स्वामी भक्तिपरवश हैं और तुम्हारे वर्णनसे लगता है कि हममें कोई यहाँके राजा एवं प्रजावर्गकी भक्तिकी तुलना नहीं कर सकता । आश्चर्य यही है कि ऐसे अनन्य भक्तोंने अपने आराध्यका यज्ञीय अश्व अवरुद्ध करना उचित मान लिया । अब हमारा क्या कर्तव्य है ? भक्तापराध किया नहीं जाना चाहिए और हम अश्वको छोड़ नहीं सकते हैं ।'

'कुमार ! किसी अन्यन्त नीति-निपुणको दूत बनाकर भेजा जाना चाहिए । पता लगना आवश्यक है कि राजा सुरथ अन्ततः चाहते क्या हैं ।' मन्त्री सुमतिने सम्मति दी—'हमारे मध्य वानर युवराज अंगदजी हैं । जिन्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर दशग्रीवके समीप स्वयं राघवेन्द्रने भेजा था, उनसे अधिक उपयुक्त दूत दूसरा कोई नहीं हो सकता ।'

कुमार शत्रुघ्नकी आज्ञासे अंगद दूत बनकर कुण्डलपुर गये । उनको राजा सुरथ भगवच्चर्चा करते मिले । उन्होंने अंगदका स्वागत करके पूछा—'कपिश्रेष्ठ ! आप कैसे पधारे !'

'मैं वानरेन्द्र बालिका पुत्र अंगद हूँ । सम्भव है, आपने मेरे दिवंगत पिताका नाम सुना हो । श्रीशत्रुघ्नकुमारका दूत बनकर आपके समीप आया हूँ ।' अंगदने अपना परिचय देकर कहा—'आपके सेवकोंने श्रीरघुनाथके यज्ञीय अश्वको पकड़ लिया है । उनके द्वारा अज्ञानवश यह बड़ा अन्याय हुआ है । अब आप मेरे साथ अश्वरक्षक सेनाके अग्रणी शत्रुघ्नजीके समीप चलो और अश्वके साथ आत्मसर्मपण करो । अन्यथा कुपित शत्रुघ्नके शरोंसे समर-भूमिमें आपको शयन करना पड़ेगा ।'

'वानरश्रेष्ठ ! आप बात तो ठीक कहते हैं; किन्तु मैं भी क्षत्रिय हूँ । किसीके भी भयसे मैं अश्वको छोड़ नहीं सकता । आप सबको जिनका भरोसा एवं बल है, वे श्रीरघुनाथ ही इस क्षुद्रजनके भी आश्रय हैं ।' राजाने शान्त स्वरमें कहा—'यदि भगवान श्रीराम स्वयं पधारें, मुझे दर्शन दें, तब तो यह राज्य, मेरे पुत्रादि तथा मैं उनका सेवक हूँ ही; किन्तु मैं उनके न आने तक अश्व नहीं दूंगा । क्षत्रिय धर्म ही ऐसा है कि इसमें स्वामीसे भी विरोध करना

पड़ता है। आप अपने नायकसे कह दें, मैं उनका युद्धमें उचित सत्कार करूँगा। वे कुण्डलपुरमें युद्ध बन्दी बननेको प्रस्तुत रहें।'

'राजन्! जिन्होंने लवणासुरका वध किया, अभी कुछ ही काल पूर्व विद्युन्माली राक्षसको मारा है, उन वीर-शिरोमणि शत्रुघ्नको बन्दी बनानेकी बात करनेका तुम साहस करते हो?' अंगद आवेशमें आ गये—'तुम्हारी बुद्धि ठिकाने है? वीरभद्रके छक्के छुड़ा देनेवाले भरतपुत्र पुष्कलको बन्दी बना सकोगे? अनन्तपराक्रम पवनपुत्र हनुमानका नाम सुना है तुमने? सौ योजन समुद्र कूदकर दशग्रीवकी उपस्थितिमें लंका जला देनेवाले आञ्जनेयको कोई बन्दी कर सकेगा? सम्पूर्ण पृथ्वीको ध्वस्त करनेमें समर्थ वानरेन्द्र सुग्रीवसे युद्ध करोगे? कुशध्वज, नीलरत्न, रिपुताप, सुबाहु, प्रतापाग्रय, विमल, सुमद, वीरमणि जैसे प्रख्यात अस्त्रवेत्ता शत्रुघ्नकी सेवामें रहते हैं। इन शूरोंके समुद्रमें एक मशक जैसे तुम होते किस गणनामें हो। शत्रुघ्न दयालु हैं, अतः दुर्बुद्धि त्यागकर उनके समीप चलो। पुत्रों सहित अश्व उन्हें समर्पित करके श्रीरामके दर्शन करने अयोध्या चले जाना। हम तुम्हारी यात्राकी व्यवस्था कर देंगे।'

'यदि मैं मन, वाणी कर्मसे श्रीरघुनाथका सच्चा दास हूँ तो वे मेरे दयालु स्वामी अवश्य यहीं आकर मुझे दर्शन देंगे।' अंगदकी उत्तेजनापूर्ण बात सुनकर भी राजा सुरथ शान्त थे—'अन्यथा शत्रुघ्न, हनुमान आदि वीर मुझे बाँध लें और बलपूर्वक अश्व ले जायें। आप लौटो और अपने नायकसे कहो कि मैं अपने योद्धा लेकर शीघ्र युद्ध-भूमिमें आ रहा हूँ।'

अंगदको लौट जाना पड़ा। उनका सन्देश पाकर कुमार शत्रुघ्नकी सेनाके सब वीर युद्धोद्यत हो गये।

राजा सुरथके दस वीर पुत्र थे—चम्पक, मोहक, रिपुञ्जय, दुर्वार, प्रतापी, बलमोदक, हर्यश्व, सहदेव भूरिदेव और असुतापन। ये सभी रथोंपर बैठकर युद्धके लिए निकले। शीघ्र द्वैरथ युद्ध प्रारम्भ हो गया। पुष्कल पवनपुत्रसे रक्षित होकर चम्पकसे, जनककुमार लक्ष्मीनिधि कुशध्वजको साथ लेकर मोहकके साथ, रिपुञ्जयके साथ विमल, इस प्रकार दोनों दलोंने अपने प्रतिद्वन्द्वी चुन लिये। युद्धवाद्य बजने लगे। दोनों ओर अपने पक्षका जयघोष होने लगा।

विचित्र अनुभव हो रहा था शत्रुघ्नके पक्षको। कुमार पुष्कलने अपने

सम्मुख उपस्थित चम्पकसे नाम पूछा तो उस राजकुमारने कहा—'यहाँ नाम या कुलसे युद्ध नहीं होगा। युद्ध होगा बाणोंसे, फिर भी पूछते हो तो सुनो—श्रीराम ही मेरे पिता, माता, बन्धु, सर्वस्व हैं। मेरा सच्चा नाम रामदास है। वैसे लोग मुझे यहाँका ज्येष्ठ राजकुमार चम्पक कहते हैं।'

पुष्कलको प्रसन्नता हुई। सत्पुरुषसे शत्रुता भी उत्तम; किन्तु कुपुरुषकी प्रीति भी पतनका कारण बनती है। पुष्कलने शर-वृष्टि प्रारम्भ करते कहा—'वीर! तुम जैसे नैष्ठिक श्रीराम-भक्तसे तो पराभवमें भी गौरव ही है।'

अजस्र बाण-वर्षा—पुष्कल निपुण योद्धा थे। अब तकके अनेक युद्धोंमें विजयी रहे थे; किन्तु उनके बाणोंको चम्पक टुकड़े किये दे रहे थे। पुष्कलको उन्होंने अपने प्रहारोंसे बहुत पीड़ित किया। पुष्कल अपने प्रति द्वन्द्वीके बाणोंको सर्वथा काट नहीं पा रहे थे। समझ लिया कि उद्भट अस्त्रज्ञसे काम पड़ा है, तब ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया।

बिना डरे, बिना तनिक भी हिचके राजकुमार चम्पकने भी ब्रह्मास्त्रसे ही उत्तर दिया। दोनों अस्त्र परस्पर टकराये, इतना प्रचण्ड तेज प्रकट हुआ, मानो प्रलय हो जायेगी। एक बार पूरी सेना, शत्रुघ्न तक चौंक पड़े; किन्तु केवल एक क्षण। दूसरे ही क्षण चम्पकने दोनों अस्त्रोंको शान्त करके आकृष्ट कर लिया। ब्रह्मास्त्रके उपसंहारका यह अद्भुत कौशल देखकर स्व-पर सभी पुकार उठे—'कुमार चम्पक धन्य हैं! धन्य हैं!'

'पुष्कल सावधान!' चम्पकने पुकारकर चुनौती दी—'तुमने दिव्यास्त्रका प्रयोग करके मुझे भी वैसा करनेको बाध्य किया। अब समर्थ हो तो अपनी रक्षा कर लो!'

पुष्कलने देख लिया कि चम्पकने अमोघ रामास्त्र सन्धान किया है। अन्ततः उन्होंने भी तो अमोघ ब्रह्मास्त्र ही पहिले उठाया था। बहुत बाण मारे पुष्कलने; किन्तु वे तो रामास्त्रके समीप जाकर स्वयं गिर पड़ते थे। कोई भी दिव्यास्त्र कैसे काट सकता था उसे; किन्तु रामास्त्र संहारक तो नहीं है। वह दिव्यास्त्र आया तो उससे अद्भुत पाश प्रकट हुए। उन पाशोंने पुष्कलको भली प्रकार जकड़ दिया।

'अब चलो और चुपचाप कुछ काल हमारे कुण्डलपुरके कारागारका

आतिथ्य ग्रहण करो ।' चम्पकने रथ बढ़ाकर पुष्कलके रथसे सटाकर खड़ा किया । पुष्कलको अपने रथपर खींच लिया । पुष्कलके सारथीको रथ भगा ले जानेका समय ही प्राप्त नहीं हुआ था ।

'राजकुमार चम्पक पुष्कलको बन्दी बनाकर अपने नगरमें ले जा रहा है !' शत्रुघ्नकी सेनाके लोग एक साथ पुकार उठे । उसमें एक भी महारथी ऐसा नहीं था जो चम्पकको रोकने आगे बढ़ता; क्योंकि सबके साथ कुण्डलपुरके योद्धा भिड़े थे । शत्रुघ्न पक्षके शूरोंको अपनी ही रक्षाके कठिन संघर्ष करना पड़ रहा था ।

'पुष्कल बन्दी हो गये;' अंगद चौंके । उनको अब लगा कि राजा सुरथने डींग नहीं मारी थी सबको बन्दी बनानेकी । उस जैसे नैष्ठिक राम-भक्तके लिए कुछ भी अशक्य नहीं है । उसके युवराजने बहुत बड़ेसे बन्दी बनाना प्रारम्भ किया ।

पवनपुत्रपर पुष्कलकी रक्षाका भार था । पुष्कलके बन्दी होते ही वे झपटे । उनको आते देखकर चम्पकने उनपर अजस्र वाण-वर्षा प्रारम्भ की । हनुमानजीने सरकंडोंके समान चम्पकके वाणोंको पकड़कर तोड़ फेंका; किन्तु उनके फेंके शालतरुको चम्पकने भी वाणोंसे टुकड़े-टुकड़े कर दिया । अब हनुमान चम्पकको पकड़कर आकाशमें उड़ गये । वहाँ भी उस पराक्रमी राजकुमारने युद्ध किया । आञ्जनेय उसके आघातोंसे पीड़ित हुए । अन्तमें उसे पैर पकड़कर सौ बार घुमाकर एक हाथीके हौदेपर पटक दिया । वहाँसे मूर्छित होकर चम्पक भूमिपर गिर पड़ा ।

चम्पकके साथके सैनिक हाहाकर करने लगे । हनुमानने अब पाशबद्ध पुष्कलको मुक्त किया । दिव्यास्त्रके पाश तो छुड़ानेका प्रयत्न अन्यके द्वारा किये जानेपर स्वयं अदृश्य हो जाया करते हैं । पाशमुक्त होकर भी पुष्कल अभी युद्धके योग्य नहीं हुए थे । उन्हें रथमें सेनाके पिछले भागमें विश्राम लेने जानेको बाध्य होना पड़ा ।

'कपिश्रेष्ठ ! तुम धन्य हो । तुम्हारा पराक्रम महान है । तुमने राक्षस-राजधानी लंकामें श्रीरघुनाथजीके बहुत बड़े कार्य किये हैं ।' पुत्रको मूर्छित देखकर राजा सुरथने रथ बढ़ाया । पवनकुमारके पास आकर बोले—'मेरा पुत्र तुमसे

युद्धकर सका, यही उसकी श्लाघ्य शूरता है; किन्तु सावधान ! मेरी सत्य प्रतिज्ञा सुन लो । मैं तुम्हें बन्दी बनाकर अपनी पुरीमें अवश्य ले जाऊँगा ।'

'राजन् ! मैं जिनका सेवक हूँ, तुम भी उन्हीं श्रीराघवेन्द्रके चरण चिन्तक हो, यह जानता हूँ ।' हनुमानजीने बिना रुष्ट हुए कहा—'मेरे दयामय स्वामी भक्त-वत्सल हैं । उनके आश्रितजनके लिए सृष्टिमें अशक्य कुछ नहीं है । अतः तुम अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेका प्रयत्न करो । तुम मुझे बन्दी बना भी लोगे तो मुझे विश्वास है कि मेरे वे सर्वसमर्थ स्वामी अवश्य आकर मुझे बन्धन-मुक्त कर देंगे । श्रीरघुनाथका स्मरण करनेवाले न विफल होते, न दुःख पाते ।'

राजा सुरथने तीक्ष्ण शरोंसे वायुनन्दनको विद्ध करना प्रारम्भ किया । उनके वज्रदेहसे भी रक्तकी धारा चलने लगी; किन्तु बलपूर्वक उन्होंने राजाका धनुष पकड़कर तोड़ डाला । राजा सुरथ एकके बाद दूसरा धनुष उठाते गये । हनुमानने अस्सी धनुष तोड़े । वे उग्रतर होते गये । उनकी गर्जनासे मानो गगन फटा जाता हो ।

राजा सुरथने शक्तिका प्रहार किया । आहत हनुमान गिरे, पर तत्काल उठ खड़े हुए । अब राजाका रथ पकड़कर वे आकाशमें ले उड़े । ऊपर जाकर रथ छोड़ दिया । भूमिमें गिरकर रथ नष्ट हो गया । घोड़े और सारथी मारे गये । राजा सुरथ दूसरे रथपर दौड़कर बैठे । उस रथकी भी यही गति हुई । इस प्रकार हनुमानने राजाके उनचास रथ नष्ट किये ।

'धन्य हो तुम ! सचमुच परम पराक्रमी हो !' राजा सुरथने पुकारकर प्रशंसा की—'एक क्षण रुको ! इस बार मेरे अस्त्रसे सावधान हो जाओ !'

राजा सुरथने पाशुपत अस्त्र सन्धान करके संकल्प किया—'इससे किसीका संहार न हो । इन कपिश्रेष्ठको भी कोई पीड़ा न हो । केवल ये पाशबद्ध हो जायें ।'

अमोघ पाशुपतास्त्रसे पाश प्रकट हुए । हनुमान उन पाशोंके बन्धनमें जकड़ गये; किन्तु यह संकल्प तो था नहीं कि वे कब तक बन्धनमें रहें । पवनपुत्रने श्रीरामका स्मरण किया । उनके अल्प प्रयत्नसे ही वे पाश जैसे स्वयं छूट गिरे ।

'अच्छा !' राजा सुरथको युद्धोद्यत हनुमानको देखकर आश्चर्य नहीं

हुआ। उन्होंने इस बार ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया। सुरथको कहाँ पता था कि पवपुत्रको शैशवमें ही ब्रह्माजी अपने अस्त्रसे अभय दे चुके हैं। हनुमानने ब्रह्मास्त्रको एक बार मस्तक झुकाया। इतना आदर पर्याप्त था। फिर तो मुख खोलते ही ब्रह्मास्त्र उनके मुखगह्वरमें लीन हो गया।

'राजन्! और कोई अमोघ अस्त्र है तुम्हारे समीप?' हँसकर हनुमानने राजा सुरथको ललकारा।

'है क्यों नहीं।' सुरथने हतप्रभ हुए बिना धनुषपर इस बार रामास्त्र चढ़ाया। उससे प्रकट पाशोंसे जब पवनपुत्र जकड़ गये, तब बोला—'अब तुम बन्दी हो गये।'

'राजन्! तुमने मेरे स्वामीके अस्त्रसे ही मुझे बाँधा है। इस अस्त्रका आदर तो मुझे करना ही पड़ेगा।' हनुमानजीने शान्त स्वरमें कहा—'तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। मुझे अपने नगरमें ले चलो। मेरे स्वामी स्वतः आकर मुझे मुक्त करेंगे। उनके चरणाश्रितोंको भवपाशकी भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। अपने जनोंको वे विस्मृत नहीं हुआ करते। मुझे विश्वास है कि मेरे बन्धनमें आते ही अवश्य वे अयोध्यासे चल पड़े होंगे।'

'आप उनको पुकारो!' सुरथने कहा—'उनके आये बिना मैं आपको छोड़नेवाला नहीं हूँ।'

पुष्कल स्वस्थ हो चुके थे। पवनकुमारके बन्दी होनेका समाचार मिलते ही उन्होंने सारथिको पूर्णवेगसे रथ दौड़ानेको कहा। आते ही राजा सुरथपर दिव्यास्त्रोंकी झड़ी लगा दी; किन्तु जो पवनपुत्रको बाँधनेमें समर्थ हुआ, पुष्कलकी दिव्यास्त्रवृष्टिकी चिन्ता करता वह? राजाने सब दिव्यास्त्र, दिव्यास्त्रोंकी झड़ी लगा दी; किन्तु जो पवनपुत्रको बाँधनेमें समर्थ हुआ, पुष्कलकी दिव्यास्त्रवृष्टिकी चिन्ता करता वह? राजाने सब दिव्यास्त्र, दिव्यास्त्रोंसे शान्त कर दिये। अन्ततः उनके तीक्ष्णतम नाराचके द्वारा वक्षपर विकट आघात लगनेसे पुष्कल मूर्छित होकर गिर पड़े।

पुष्कलके गिरते ही शत्रुघ्नकुमारका रथ आगे आया। शत्रुघ्नके ललकारनेपर सुरथने कहा—'कुमार! देख ही रहे हो कि तुम्हारे पक्षके प्रचण्ड-पराक्रम पवनकुमारको मैंने बाँध लिया है। तुम शीघ्र अपने अग्रजका स्मरण

करो । वे यहाँ आकर तुम्हारी रक्षा करें । अन्यथा मुझसे प्राण बचाना तुम्हें असम्भव हो जायेगा ।'

सुरथने इतने अधिक बाण चलाये कि उन्हें काट देना अशक्य हो गया । उनको भस्म करनेके लिए कुमार शत्रुघ्नको आग्नेयास्त्रका प्रयोग करना पड़ा । तत्काल सुरथने वारुणास्त्रके द्वारा आग्नेयास्त्रकी अग्नि बुझा दी । दूसरे किसी दिव्यास्त्रको सफल होते न देखकर शत्रुघ्नने सबको सम्मोहनिद्रामें सुप्त करदेवाला मोहनास्त्र उठाया ।

'यह क्या बचपना है ।' राजा सुरथने हँसकर झिड़का 'कुमार ! जानते हो कि श्रीरामके चरणाश्रितोंको महामाया भी मोहित नहीं कर पाती, उसे अस्त्र-प्रभाव मोहित कर लेगा ?'

'भवपाशभञ्जक ज्ञानघन राघवेन्द्रकी जय !' कहकर सुरथने बाण छोड़ा । शत्रुघ्नका मोहनास्त्र कटकर गिर पड़ा । अब सुरथने अपने धनुषपर एक प्रज्वलित बाण चढ़ाया । यद्यपि कुमार शत्रुघ्नने उस शरको मार्गमें ही काट दिया; किन्तु उसका अग्रिम भाग उनके वक्षमें पूरा धंस गया । मूर्छित होकर शत्रुघ्न रथपर गिर पड़े ।

राजा सुरथकी विजय हो गयी । शत्रुघ्नके पक्षके सब प्रधान शूर सुरथके पुत्रोंके प्रहारसे मूर्छित हो चुके थे । पवनपुत्र बन्दी थे । सामान्य सैनिक भयसे भागे । अयोध्या दूर—वे वहाँ तक जाकर समाचार भी देंगे तो बहुत दिन लगेंगे । दूसरी ओर सुरथके सब पुत्र सुरक्षित थे । चम्पक भी मूर्छा दूर होनेसे सचेत हो गया था ।

'मेरे स्वामी ! अब आप ही संकटसे अपने जनोंका उद्धार करो !' श्रीपवनकुमारने मन-ही-मन प्रार्थना प्रारम्भ की—'आपका स्मरण प्राणीको भयतापसे त्राण देनेवाला है । हम सब आपके आश्रित असहाय हो गये हैं । आपकी ही शक्तिसे राजा सुरथने हमें बाँधा है । पधारो परम कृपालु ! अपने परमभक्त सुरथकी पावन अभिलाषा भी पूर्ण कर दो !'

अकस्मात् गगनसे पुष्पकलकी मञ्जु-मधुर ध्वनि सुनायी पड़ी । वह चन्द्रोज्वल विमान विशाल हंसके समान राजा सुरथके रथके सम्मुख ही उतरा । विमानसे उतरते यज्ञदीक्षाधारी वेशमें श्रीरघुनाथको भरत, लक्ष्मण तथा

मुनिगणोंके साथ सुरथने देखा। रथसे कूदकर उन्होंने दण्डवत प्रणिपात किया।

'मेरे सर्वस्व ! इस सेवकका अपराध क्षमा करें !' सुरथ अञ्जलि बाँधकर साश्रुनयन स्तवन करके बोले—'मैंने अश्व-निग्रह करके भारी अपराध किया। आपको आनेका कष्ट करना पड़ा; किन्तु माता-पिताके वात्सल्यका विश्वास ही बालकसे औद्धत्य करा लेता है। इस सेवकको राज्य एवं पुत्रादिके साथ स्वीकृति देकर सनाथ करें !'

'राजन् ! तुमसे मैं प्रसन्न हूँ। तुमने क्षत्रियोचित धर्मका पालन किया है।' श्रीरघुनाथने कहा—'पवनपुत्रको बाँधकर तो तुमने अकल्पनीय पौरुष प्रदर्शित किया।'

श्रीरघुनाथने स्वयं समीप जाकर हनुमानको पाशमुक्त किया। उनकी दृष्टिपातसे ही शत्रुघ्नादि मूर्छित लोग सचेत हो गये। अयोध्यासे सर्वज्ञ महर्षि वशिष्ठ द्वारा प्रेरित किये जानेसे श्रीराम भाइयोंके साथ पुष्पक पर बैठकर यहाँ पहुँचे थे।

अब तो राज्य श्रीरामका था। सुरथ सेवक थे। वे नगरमें गये। तीन दिन वहाँ रुके रहे। राजकुमार चम्पकका राज्याभिषेक किया; क्योंकि राजा सुरथ शत्रुघ्नके साथ अश्व-रक्षक बनकर जानेका निश्चय कर चुके थे। चौथे दिन श्रीरघुनाथ अपने साथ आये मुनिगण तथा भरत एवं लक्ष्मणको लेकर पुष्पकमें अयोध्या जानेको बैठे। विमानके विदा होनेपर अश्व चला। शत्रुघ्न ससैन्य राजा सुरथको लेकर अश्वका अनुगमन करने लगे।

●●●

लव-कुश युद्ध

अश्वमेधीय मन्त्रपूत देवात्मा अश्व दौड़ता आ रहा था । उसके रक्षक शत्रुघ्नादि सब पीछे छूट गये थे । अचानक आकर वह वाल्मीकि आश्रमके समीपमें लवके सम्मुख खड़ा हो गया । चन्द्रगौर श्यामकर्ण अश्व, ऐसे अश्वका वर्णन लवने अश्वशास्त्रमें पढ़ा था । सर्वसुलक्षण-सम्पन्न ऐसे अश्व सृष्टिमें सुदुर्लभ हैं; किन्तु अश्वके प्रति कोई लोभ लवके मनमें नहीं जागा । अवश्य वे उसके मस्तकपर बँधे स्वर्णपट्टपर रत्नाक्षरोंसे अंकित घोषणा पढ़ने लगे—

'अयोध्याके दशग्रीवजयी चक्रवर्ती सम्राट् श्रीरामका यह अश्वमेधीय अश्व है । यह जहाँसे जा रहा है, वह समस्त पृथ्वी सम्राट्का अधिकृत क्षेत्र समझा जायेगा । जिसे यह स्वीकार न हो, वह अश्वको रोके और संग्राम करे ।'

लवको यह अपने शौर्य, साहसको चुनौती प्रतीत हुई । उन्होंने अश्वको पकड़कर एक वृक्षसे बाँध दिया । स्वयं धनुष चढ़ाकर समीप खड़े हो गये । वे देख लेना चाहते थे कि अरण्यमें मुनि-आश्रमके समीप ऐसी धृष्टता करनेवाले लोग हैं कौन ।

अश्व-रक्षकोंका अग्रचर दल अपने अश्व दौड़ाता कुछ ही क्षणोंमें आ पहुँचा । उन लोगोंने एक मुनिकुमार समझा लवको । उन्हें यह भी लगा कि बालचापल्यवश बालकने अश्व बाँधा है । वे अश्व खोलने आगे बढ़े तो लवने ललकारा—'सावधान; अश्व मैंने बाँधा है । तुम्हारा अश्व अवश्य अत्यन्त दुर्लभ श्रेणीका है; किन्तु मुझे उसका लोभ नहीं है । तुम उसके मस्तकपर बँधा घोषणापत्र खोलकर पृथक करनेके पश्चात् अश्व ले जा सकते हो । इस स्वर्णपट्टको खोलनेसे पूर्व जो अश्व खोलनेका साहस करेगा, उसे मरना पड़ेगा ।'

लवकी इस चेतावनीको भी उन लोगोंने बालकका विनोद माना । दो सैनिक अश्वको खोलनेके प्रयत्नमें जैसे ही लगे, लवने धनुषपर बाण चढ़ाकर फिर चेतावनी दी—'अश्वसे दूर हट जाओ, अन्यथा मारे जाओगे ।'

सैनिक हँस पड़े । इतने छोटे सुकुमार बालककी उन्हें चिन्ता नहीं थी । इस बालकने बाण भी चलाया तो आशा थी कि वह उनके सुदृढ़ कवच से

टकराकर गिर जायेगा । लवने उन्हें चेतावनीकी उपेक्षा करते देखा तो बाण मारकर उनकी भुजाएँ काट दीं । उनके सुदृढ़ कवच कोमल पुष्प पंखड़ीके समान कट गये । इससे चौंककर शेष सैनिक पीछे शत्रुघ्नकुमारको समाचार देने भाग गये ।

'एक इन्दीवरसुन्दर, विशाल-लोचन तेजस्वी सोलह वर्षकी लगभग वयके बालकने अश्वको बाँध रखा है । वह वेशसे मुनिकुमार लगता है ।' अश्व-रक्षकोंने सूचना दी । जटाजूट, कृष्णमृग-चर्मका उत्तरीय देखकर वे मुनिकुमारके अतिरिक्त और क्या समझते लवको !

'मुनि-बालककी अवज्ञा करना अनुचित है ।' शत्रुघ्नने अपने जिन सैनिकोंकी भुजा कटी थी, उन्हें उपचारके लिए पिछले शिविरमें भेज दिया । उनके छिन्न बाहु उनके साथ उठा लाये थे । ऐसे अंगोंका पुनः सन्धान राजभिषक् सरलतापूर्वक कर सकते थे । सेनानायकको भेजा उन्होंने—'वे अस्त्रज्ञ हो सकते हैं; किन्तु उन्हें समझाकर अश्व प्राप्त करनेका प्रयत्न करो । दाम-लोभ तथा भेद उनके साथ सम्भव नहीं है । साम सर्वथा असफल हो जाय, तभी दण्ड-युद्धका आश्रय लेना उचित होगा ।'

'आश्चर्य है कि आप अयोध्याके चक्रवर्ती सम्राट् श्रीरामको नहीं जानते । उनकी सुरासुर-विजयिनी रणवाहिनी और उनके अनुज इस अश्वरक्षामें नियुक्त हैं ।' सेनानायकने जाकर समझाया—'आप बालक हैं । अश्वको जिन्होंने भी रोका, उन प्रख्यात शूरोंको पराजित होना पड़ा है । आप अश्वको बन्धन-मुक्त कर दें ! आपको अश्व इष्ट हो तो ।'

'मुझे अश्व नहीं चाहिए ।' लवने बीचमें रोक दिया । 'उसके भालपर बँधा पत्र खोलो और अश्व ले जाओ । तुम लोगोंमें युद्ध करनेका साहस नहीं था तो ऐसा घोषणा-पत्र घोड़ेके सिरपर क्यों बाँधा ?'

सेना-नायक अपना-सा मुख लेकर लौट गया । उसकी बात सुनकर स्वयं शत्रुघ्नकुमार समझाने आये; किन्तु लवका निश्चय अविचल था—'इस घोषणापत्रके साथ घोटक यहाँसे नहीं जा सकता । मैं किसी सम्राट्को न जानता हूँ, न जानना चाहता हूँ ।'

शत्रुघ्नने सैनिकोंको आज्ञा दी कि घेरकर विवश कर दें । मुनिकुमारपर

अस्त्र-शस्त्र प्रयोग करके उन्हें आहत करना किसी प्रकार मन स्वीकार नहीं कर रहा था और अश्वको बन्धन-मुक्त करना अनिवार्य था ।

लवके धनुषसे होती शर-वर्षासे जब सैनिकोंके कर, पद, मस्तक कटकर गिरने लगे, अश्व, गज, रथ खण्ड-खण्ड होने लगे तब शत्रुघ्न और दूसरोंका भी यह भ्रम दूर हो गया कि उनके सामने कोई साधारण मुनिकुमार है । यह आश्चर्यकी बात थी कि अकेले एक बालक भूमिपर धनुष लिये खड़ा था और अश्व, गज तथा रथपर आरूढ़ समरकुशल शूर सैनिकोंकी अनवरत अस्त्र-शस्त्र वर्षा भी उसका कोई अहित करनेमें समर्थ नहीं थी । वह दूसरोंके अस्त्र-शस्त्रोंके टुकड़े उड़ाये दे रहा था । जैसे स्वयं भगवान् त्रिपुरारि मुनिकुमार बने धनुष लिये आ खड़े हों, इतना दुर्धर्ष, इतना प्रचण्ड, ! प्रतिपक्षका अपार संख्या-बल और अतुलनीय श्रेष्ठता अस्त्र-शस्त्रोंकी नगण्य कर रखी थी उसने । इससे अच्छा अवसर देश-भ्रमणका व्यावहारिक युद्धानुभवका उन्हें मिल नहीं सकता था । पृथ्वीके श्रेष्ठतम शूरोंसे परिचय हो चुका था उनका । अधिकांश युद्धोंमें विजय पायी थी उन्होंने; किन्तु आज रथारूढ होकर भी वे एक पैदल समवयस्कप्राय बालकसे पार नहीं पा रहे थे ।

झुँझलाकर पुष्कलने ही प्रथम दिव्यास्त्र उठाया; किन्तु जब लवने उनके आग्नेयास्त्रको वारुणास्त्रसे शान्त कर दिया; तब दिव्यास्त्रोंकी वर्षा भी सामान्य बात हो गयी । शत्रुघ्नको अब स्वयं युद्धमें सम्मिलित होना पड़ा । राजकुमार पुष्कल मूर्छित हो चुके थे । अत्यन्त आहत हो गये थे लवके प्रहारोंसे ।

'कुश ! तुम्हारे अकेले अनुज बड़ी भारी सेनाके साथ संग्राममें उलझ गये हैं ।' वाल्मीकि-आश्रमके ब्रह्मचारी बालकोंने दूरसे यह संग्राम देखा और भागकर कुशको समाचार दिया—'आयुष्मान लवने किसीका एक उज्ज्वल श्यामकर्ण अश्व बाँध लिया पकड़कर; क्योंकि उसके मस्तकपर चुनौती भरा अशिष्ट स्वर्ण-पत्र अंकित है । लगता है कि उस अश्वके स्वामी के सैनिक आ गये हैं । उन्होंने लवको घेर लिया है । बहुत बड़ी सेना है । सहस्रों रथ, अश्व, गज, पदाति हैं । सब अकेले लवपर आघात कर रहे हैं ।'

'अकेले बालक लवपर इतने लोगोंने आक्रमण कर दिया है ?' कुशको अपनेसे कुछ क्षण छोटे लव सदा बच्चे लगते रहे हैं । क्रोधसे उनकी भृकुटि

कठोर हो गयी । अधर फड़के । धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर ज्याघोष किया उन्होंने और दौड़े ।

'यह उग्रतम ज्याघोष !' हाथी चीत्कार करके भागे । अश्वों तथा रथोंको बहुत परिश्रमपूर्वक नियन्त्रित करना पड़ा । अयोध्याके सैनिक चौंके—'स्वयं सम्राट् आये युद्धमें ? इतना प्रचण्ड ज्याघोष तो केवल श्रीरामके धनुषकी प्रत्यञ्चासे प्रकट होता है ?'

जैसे लवकी दूसरी मूर्ति आ गयी रणक्षेत्रमें; किन्तु लवकी अपेक्षा अधिक क्रुद्ध, अधिक उग्र, अधिक असह्य । अभाग्य प्रतिपक्षका; क्योंकि युद्ध-भूमिमें पहुँचते ही कुशने देखा कि किसीके आघातसे उनके अनुज मूर्छित होकर गिर रहे हैं । असह्य था यह कुशको । उनके धनुषसे प्रलयकालीन मृत्युवर्षा होने लगी थी । अयोध्याके सैनिकोंके शवोंसे पृथ्वी आच्छादित हो उठी थोड़े क्षणोंमें ।

'तुम्हारे त्रोणमें जितने दिव्यास्त्र हों, प्रयोग करके देख लो !' कुशने भयानक स्वरमें चुनौती दी—'समरशैय्या प्राप्त करनेसे पूर्व प्रहारकी तुम्हारी कोई आकांक्षा अधूरी न रह जावे !'

शत्रुघ्न समझ चुके थे कि उनको पूरी शक्तिसे युद्ध करना है । उन्हें अत्यन्त तुच्छ मानकर, उपेक्षणीय समझकर इस प्रकार चुनौती देनेका साहस करनेवाला असाधारण अस्त्रज्ञ है ।

'ये कितने हैं ?' शत्रुघ्न बड़े असमंजसमें पड़े—इन्हें कोई वरदान है कि एकके मूर्छित होते ही उसकी दूसरी मूर्ति स्वयं प्रकट हो जाया करेगी ?'

असुरोंमें अनेकोंको ऐसे वरदान प्राप्त होनेकी बात विख्यात है कि उनके रक्तके पृथ्वीपर गिरते ही उससे वैसा ही दूसरा असुर उठ खड़ा होता था । ऐसे वरदान ब्रह्मा या आशुतोष ही दिया करते हैं तो वे किसी मुनिकुमारको भी तो ऐसा वरदान दे सकते हैं ।

एक और आशंकाने शत्रुघ्नका हृदय उन्मथित कर दिया था । कुशने आते ही उन्हें सभी दिव्यास्त्रोंके उपयोगकी चुनौती दे दी थी । दिव्यास्त्रोंमें तो ब्रह्मास्त्र, पाशुपतास्त्र, नारायणास्त्र भी हैं । तब क्या यह बालक इन सब अमोघास्त्रोंका वेत्ता और इनके उपशममें समर्थ है ? ये सब दिव्यास्त्र तो लक्ष्मणके भी पास हैं; किन्तु इनके उपशममें समर्थ अकेले श्रीराम हैं ।

शत्रुघ्नका हृदय धड़क उठा—'कहीं उनके सर्व-समर्थ लीलामय अग्रज ही तो इन बाल रूपोंमें उपस्थित होकर उनकी परीक्षा नहीं ले रहे हैं ?'

'नहीं, मर्यादापुरुषोत्तम अपने ही आश्रितोंपर कभी आघात नहीं कर सकते । उन भक्तवत्सलसे यह कृत्य असम्भव है ।' इतनेपर भी बुद्धि कोई समाधान नहीं पा रही है । 'स्वर, आकृति और प्रकृतिमें, रंग-रूपमें दोनों बालक श्रीरामकी दूसरी मूर्ति जान पड़ते हैं । दोनोंका चलने-बोलनेका ढंग, दोनोंका ज्याधोष, दोनोंकी स्फूर्ति और अब यह इनकी दिव्यास्त्रके सम्बन्धमें चुनौती ?

शत्रुघ्नने महर्षि वाल्मीकिके समीप सौम्य-शान्त वेशमें इन दोनों बालकोंको अनेक वर्ष पूर्व देखा है । तब ये द्वादशवर्षीय थे । बालकोंके रूप-रंगमें परिवर्तन शीघ्र होता है । अब इनका यह धनुर्धर स्वरूप—इस युद्धकी उत्तेजनामें कुछ स्मरण नहीं आ रहा है । उस समय भी इनका परिचय नहीं प्राप्त हुआ था । केवल इतना लगता है कि ये कहीं देखे हुए हैं । इनको देखकर अपने सर्व-समर्थ सम्राट् बार-बार स्मरण आते हैं ।

इनकी मर्यादा-निष्ठा—बालक होकर, पदाति होकर भी इन्होंने अपनी ओरसे प्रथम किसी दिव्यास्त्रका प्रयोग नहीं किया । यद्यपि इनपर गज, रथ, अश्वारोही असंख्य सैनिक आक्रमण कर रहे हैं; किन्तु ये सामान्य शरोंसे ही सबके अस्त्र-शस्त्रोंके टुकड़े उड़ाये दे रहे हैं । सैनिकोंके शब बिछते जा रहे हैं । ये दिव्यास्त्र तभी उठाते हैं, जब प्रतिपक्ष उनका प्रयोग करे । अब तक इन्होंने केवल शत्रुके दिव्यास्त्रोंका शमनमात्र अपने दिव्यास्त्रोंसे किया है । अद्भुत है इनका अस्त्रज्ञान, अद्भुत है हस्तलाघव, अद्भुत है शौर्य-धैर्य और अद्भुत है क्षमता ।

ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, ब्रह्मशिरस शत्रुघ्नके समीप हैं; किन्तु इनमेंसे कुछ उठानेका उत्साह नहीं है । कहीं मुनिकुमारके समीप ये न हुए ? अनस्त्रज्ञपर दिव्यास्त्र-उपयोगका पाप हो जायेगा । इससे भी बड़ा भय यह है—कहीं इनको इन अस्त्रोंका भी कोई उपशम प्राप्त हो, इनसे भी अभयका वरदान मिला हो—इनकी निर्भीकता इसकी सम्भावना सूचित करती है । तब ये भी इनका उपयोग करेंगे और शत्रुघ्नको इनमेंसे किसीका भी उपशम ज्ञात नहीं । ये तो अमोघ अस्त्र हैं ।

दोमें-से किसी पक्षने इन अमोघास्त्रोंको नहीं उठाया । शत्रुघ्नने कोई दिव्यास्त्र भी नहीं उठाया । वे उनकी व्यथितासे अवगत हो गये । दिव्यास्त्रोंका उत्तर जब दिव्यास्त्रसे लव या कुशने दिया, अयोध्याकी सेनाका ही अधिक विनाश हुआ । अतः दिव्यास्त्रोंका प्रयोग न करना अपने ही हितमें था ।

शत्रुघ्न अब सम्पूर्ण शक्तिसे युद्ध कर रहे थे । लवकी मूर्छा दूर हो गयी थी । वे धनुष उठाकर अव्यग्र अपने अग्रजके साथ युद्धमें आ खड़े हुए थे । एकके साथ ही युद्ध भारी पड़ रहा था अयोध्याके सैनिकोंके लिए, अब दो हो गये थे । शत्रुघ्नके प्रहारोंसे कुश मूर्छित हुए तो लव मानो क्रोधसे प्रलयंकर हो उठे । शीघ्र ही उनके प्रचण्ड प्रहारोंसे शत्रुघ्न समर-भूमिमें गिर गये ।

आहत बचे सैनिकोंके समीप अब अयोध्या भागकर समाचार देनेके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं था । समाचार पाकर श्रीराघवेन्द्रने ससैन्य लक्ष्मणको भेजा । समझाया—'जहाँ तक सम्भव हो, मुनिकुमारोंको मारना मत । अश्व प्राप्त करना ही अपना उद्देश्य है । युद्धमें आहत एवं मृतोंको शक्र सुधावर्षा करके पुनः जीवित कर देंगे । अतः उनके लिए शोक मत करना ।'

लक्ष्मणने भी आकर मुनिकुमार ही समझा लव-कुशको । युद्ध अविराम चल रहा था । लक्ष्मणने भी समझानेका प्रयत्न किया; किन्तु दोनों भाई अपने निश्चयपर अविचल थे—'युद्ध करनेकी इच्छा न हो तो अश्वके मस्तकपर बँधा स्वर्णपट्ट खोल दो और अश्व ले जाओ ।'

कुशने अपने अनुजके समर्थनमें एक तर्क और बढ़ा दिया था—'अरण्य किसीका अधिकृत प्रदेश नहीं हुआ करता । तपोवनोंपर किसी सम्राट्का शासन स्वीकार नहीं किया जा सकता । अतः अश्वको इस घोषणापत्रके साथ यहाँसे जाने नहीं दिया जा सकता ।'

कुशके तर्कका औचित्य स्वीकार था लक्ष्मणको । वे हृदयेसे किसी तपोवनको अधिकृत करनेके पक्षमें नहीं थे; किन्तु मन्त्रपूत, देवात्मा अश्व जब इधर आ ही गया तो उसके सिरसे स्वर्णपत्र खोलनेका तो अर्थ था कि अयोध्याके सम्राट्ने पराजय स्वीकार कर ली । अश्वमेधका आयोजन अपूर्ण त्याग देना पड़ेगा । यह किया नहीं जा सकता था । अश्वको इस घोषणापत्रके साथ ही अयोध्या लौटनेपर यज्ञ सम्भव था । अत; अश्व लौटानेके लिए युद्ध अनिवार्य

हो गया ।

इन्द्रजीत-जयी लक्ष्मणको भी सम्मुख खड़े दोनों लड़के उद्धत, आग्रही ही लगे थे आरम्भमें । उन्होंने भी उपेक्षापूर्वक ही सैनिकोंको युद्ध करनेकी आज्ञा दी थी । यद्यपि शत्रुघ्नकी मूर्छा तथा सैनिकोंके सम्मुख पड़े असंख्य शव सन्दिग्ध बना रहे थे । यह सन्देह भी शीघ्र दूर हो गया । शीघ्र लक्ष्मणके साथ आये सैनिकोंकी संख्या भी घटने लगी । अतः लक्ष्मणको स्वयं धनुष उठाना पड़ा । उन्हें भी कुछ ही देरमें अनुभव हो गया कि यदि वे दिव्यास्त्र उठाते हैं तो इससे उनके अपने पक्षकी ही हानि होती है ।

'अपने अमोघ दिव्यास्त्र भी प्रयोग करके देख लो !' लवने सिंहनाद करते चुनौती दी ।

लक्ष्मणने आग्नेयास्त्र तो नहीं उठाया था; किन्तु सम्मोहनास्त्रका प्रयोग किया था । वे चाहते थे कि दोनों बालक कुछ क्षणोंको मूर्छित हो जायें तो उन्हें निरस्त्र करके बन्दी बनाया जा सकेगा । अश्वको खोलकर बालकोंको मुक्त कर देंगे । असफल हो गया यह प्रयत्न । लवने संज्ञास्त्रका प्रयोग करके सम्मोहनास्त्रको तो व्यर्थ कर ही दिया, उनके अस्त्रका असह्य तेज, संज्ञाका अतिरेक कुछ क्षणों तक अयोध्याकी सेनाको उन्मादी बनाये रहा । सेनाका व्यूह भंग हो गया । वाहन अस्त-व्यस्त भागने लगे थे ।

'अमोघ दिव्यास्त्र ?' लक्ष्मण लवकी चुनौतीसे चौंके—'इन बालकोंको उनका भी भय नहीं है ? कौन हैं ये ?'

लक्ष्मणका हृदय चीत्कार कर उठा—'अयोध्याकी विजयवाहिनीको महासती आर्याका शाप मार रहा है । उनके अपमानका दुष्फल दैव हमें दे रहा है । अन्यथा असम्भव है कि दो मुनिकुमार इतनी विशाल सेनाको, हमारे छह राजकुमारोंको और शत्रुघ्नको भी समरशय्या देकर अक्षत खड़े रहे । अब ये अमोघास्त्रोंको भी शक्तिहीन सिद्ध कर सकते हैं । आर्याका अन्तस्ताप इनके रूपमें उग्रतेजा बना आ गया है ।'

लक्ष्मणका उत्साह नष्ट हो गया । उनको अपने ही मनस्तापने कान्तिहीन कर दिया । युद्ध-भूमिमें कुशने बहुत पहिले चेतना प्राप्त कर ली थी । अनुजको श्रान्त समझकर वे आगे आ खड़े हुए । लक्ष्मण कुशके आघातोंका

केवल उत्तर देते रहे । अपनी ओरसे प्रबल प्रहार करनेका उत्साह ही उनमें नहीं आया । तब भी नहीं आया, जब कुशके प्रहारसे मूर्छित होकर वे रणभूमिमें गिरे ।

अयोध्या पुनः समाचार देनेके अतिरिक्त आहत सैनिक और कर क्या सकते थे । वहाँ श्रीरामके समीप भी इनके अतिरिक्त और क्या उपाय था कि भरतको वे अवशिष्ट सैनिकोंके साथ भेजें । भले इससे यज्ञशाला स्वयं असुरक्षित होती हो ।

जितने स्वजन-सम्बन्धी थे, वे सब प्रायः शत्रुघ्न और लक्ष्मणके साथ सहायतामें जाकर समर-भूमिमें सो चुके थे । भरतको सम्राट् श्रीरामने सावधान करके भेजा था—'मुनिकुमार अतुलनीय अस्त्रज्ञ प्रतीत होते हैं । उनके साथ युद्धमें तनिक भी प्रमाद भयानक होगा । उनपर दया करना अनावश्यक है ।'

भरत संसारके सर्वश्रेष्ठ शूर । मनुष्योंके लिए अजेय-प्राय मायावी गन्धर्वोंको युद्धमें उन्होंने हराया ही नहीं था, करोड़ों गन्धर्वोंका वध करके गन्धर्वोंका पृथ्वीको अपना उपनिवेश बनानेका प्रयत्न सदाके लिए समाप्त कर दिया था । गन्धर्व भरतके भयसे पृथ्वीका ही परित्याग करके भाग गये थे । अकल्पनीय शक्तिशाली, दैत्याकार, गगनचारी, दिव्यास्त्रोंके मर्मज्ञ गन्धर्वोंको इस प्रकार पृथ्वीसे ही भगा देनेवाले भरत युद्ध-भूमिमें आये । उन्हें भी श्रीरामने चेतावनी देना आवश्यक माना था ।

जिनके बिना फरके वाणके आघातसे वज्रदेह पवनपुत्र मूर्छित होकर गिर पड़े थे, उनकी शरवर्षाको लवकुश तिनकोंके समान टुकड़े उड़ा रहे थे । भरत कर्णतक प्रत्यञ्चा खींचकर बाण छोड़ते स्वेदसे लथपथ हो गये; किन्तु दोनो कुमारोंने हँसते-हँसते उनकी बाणवृष्टि व्यर्थ कर दी ।

'तुम भी अपने अनुजोंके समान अपने मनकी ओर देखो !' कुशने हँसकर चुनौती दी—'अयोध्यावालोंको अपने दिव्यास्त्रका असीम गर्व है । तुम्हारे त्रोणमें भी अमोघ दिव्यास्त्र होंगे ।'

इस चुनौतीने भरतको चौंका दिया—'शत्रुघ्नने, लक्ष्मणने किन्हीं अमोघ दिव्यास्त्रोंका उपयोग किया ? इन कुमारोंको उनको लौटा देना आता है ?'

दिव्यास्त्र किसीने नहीं उठाये; किन्तु अन्तमें भरतकी भी वही अवस्था

हुई जो उनके अनुजोंकी हुई थी । वे भी मूर्छित होकर गिर पड़े ।

समाचार पाकर श्रीराम अयोध्याके सुरक्षा-सैनिकोंके साथ स्वयं पधारे । उन्होंने आते ही लव-कुशसे पूछा—'तुम दोनों कौन हो !'

'तुमको युद्ध करना हो तो करो !' कुशने कहा—'तुम्हें हमारे परिचयसे क्या प्रयोजन है ?'

'मैं अपरिचितपर आघात नहीं करता ।' श्रीरामने शान्त स्वरमें ही कहा—'तुमने अश्व पकड़ा है, अतः यह जानना आवश्यक है कि मुनिकुमार ही हो अथवा देवता, दैत्य, दानवमें कोई इस वेशमें हमारे सामने हैं ।'

'किसने कहा कि हम मुनिकुमार हैं ?' लवने सतेज स्वरमें उत्तर दिया—'महर्षि वाल्मीकि हमारे पालक हैं, आचार्य हैं । हम दोनों क्षत्रिय हैं ।'

अबतक यही भूल चली आ रही थी । वेश देखकर लव-कुशको मुनिकुमार मानते रहे थे सब । किसीने भी उनसे परिचय पूछना आवश्यक नहीं माना था । अब श्रीरामने पूछा—'किसके पुत्र हो तुम ?

'हमारी माताका नाम सीता है ।' कुशने कहा—'हमें अपने पिताका नाम ज्ञात नहीं है । पूछनेपर अम्बा रुदन करने लगती हैं, अतः जिज्ञासा करके उन्हें अधिक दुःखी नहीं कर सके । हमारे पालक आचार्यने भी हमें नहीं बतलाया । वे प्रतीक्षा करनेकी आज्ञा करते हैं ।'

यह परिचय श्रीरामके लिए पर्याप्त था । उनके अपने ही पुत्रोंने अश्व बाँधा था । उनके पुत्र अचिन्त्य-पराक्रम—अयोध्याकी पूरी सेना, भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्न भी इन पदाति बालकोंसे पराभूत पड़े थे समर-भूमिमें । इनपर श्रीराम धनुष उठा पाते ?

साथ आये सैनिकोंको, अब तक संग्राममें अविराम जूझ रहे पवनकुमार, अंगद, सुग्रीवादिको युद्ध करनेके लिए उत्साहित करके श्रीरामने रथ एक ओर हटा लेनेका सारथिको संकेत किया । अपनेको विदारध्वज रथमें वे उत्तरीय ओढ़कर सो गये ।

●●●

बन्दी पवन-पुत्र

अंगद और हनुमान आज अत्यन्त आपदग्रस्त थे। जिनके स्मरणसे आपत्ति-विनिवारण होता है, वे आञ्जनेय विवश हो गये थे। उनके वज्रदेहको भले मेघनाद और रावणके बाण विद्ध न कर सके हों, लव-कुशके बाणोंसे वे विह्वल हो गये थे। इतना व्याकुल वे कभी नहीं हुए थे।

श्रीराम जब रथपर सो गये, अयोध्याकी सेनामें युद्ध करनेको बचा कौन था ? जो सुरक्षा सैनिक थे, कुछ क्षणोंमें धराशायी हो गये। वानर-वीरोंमें सुग्रीव, नल, नील, द्विविद, मैन्द, गय, गवाक्षादि सबको और ऋक्षराज जाम्बवन्तको भी लव-कुशने मूर्छित कर दिया।

युद्धके प्रारम्भसे हनुमान और अंगद वृक्ष तथा शिलाओंकी वर्षा कर रहे थे। अब तक लव-कुश इनके आक्रमणोंका प्रतिषेध करते रहे थे। इनके फेंके वृक्ष तथा शिलाओंके टुकड़े कर देते थे। कई बार हनुमान या अंगदने समीप जाकर मुष्टि-प्रहारका प्रयत्न किया; किन्तु समीप पहुँचते ही लव या कुश मर्मस्थलोंपर वितस्तिबाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर देते थे। इन नन्हें, तीक्ष्ण, अत्यन्त वेधक बाणोंसे मुख, नेत्र बचानेके लिए प्रत्येक बार पीछे हट जाना पड़ता था। कोई उल्लेखनीय आघात करनेका अवसर अंगद या आञ्जनेयको नहीं मिला।

अब समरांगणमें जब दो ही वानर बच रहे तो लव-कुश दोनों भाइयोंने इनकी ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। दोनों वानरोंको बाण मारकर आकाशमें फेंक दिया उन्होंने। अब एक-एकने एक-एकको सम्हाल लिया। हनुमान या अंगदमें जो नीचे आने लगता, उसीको बाण मारकर वे अधिक ऊपर उछाल देते थे। लव-कुश अन्ततः बालक थे। उनके लिए यह विनोद क्रीड़ा बन गयी; किन्तु आञ्जनेय और अंगदके अंग-अंग बाण-विद्ध हो गये। दोनोंके शरीरसे रक्तका झरना फूट निकला।

'वानर अवध्य होते हैं।' कुशने लवकी ओर तब देखा जब गगनमें दोनों निश्चेष्ट मूर्छित लगने लगे। बाण-प्रहार बन्द हुआ तो दोनों भूमिपर

गिर पड़े । कुशने हनुमानको बाँधा भली प्रकार । रणभूमिकी ओर लवने देखा । कोई प्रतिपक्षी खड़ा नहीं था । शयन करते श्रीरामको भी उन्होंने मान लिया कि किसी बाणके लगनेसे मूर्छित पड़े हैं । दोनों भाई अश्व तथा बन्दी पवनपुत्रको लेकर विजयसे हर्षित आश्रम लौटे ।

'अम्ब ! अम्ब ! उटजसे बाहर आओ ।' लवने उत्साहपूर्वक पुकारा— 'देखो, हम क्या ले आये हैं ।'

'क्या ले आये हो तुम लोग !' श्रीजनक-नन्दिनी यह कहती उटजसे निकलीं और पवनपुत्रपर दृष्टि पड़ते ही चौंक पड़ीं—'हाय ! तुमने इनको क्यों बाँध रखा है ?'

'अम्ब ! इसे खोलो मत । अयोध्याकी सेनामें यही सबसे अधिक उत्पाती था ।' कुशने माताको हनुमानका बन्धन खोलते देखा तो समीप आकर मना किया ।

'अयोध्याकी सेना ?' श्रीवैदेहीने पुत्रकी ओर देखा । अब तक उनके कर हनुमानको बन्धन-मुक्त कर चुके थे । उनके सुधास्निग्ध कर आञ्जनेयके क्षतिग्रस्त शरीरपर घूम रहे थे ।

'अम्ब !' अश्रुपूरित-लोचन हनुमान श्रीमैथिलीके चरणोंपर लुण्ठित हो गये ।

'अम्ब, तुमने अश्व तो देखा ही नहीं ।' लवने अश्वकी ओर संकेत किया—'यह जिसका अश्व है, वह तो पीछे आया । इसके तीन भाई आये क्रमशः युद्ध करने । इनकी असंख्य सेना थी; किन्तु तुम चिन्ता मत करो । अब उनमें सब समर-भूमिमें सो चुके हैं ।'

'हाय ! तुम नहीं जानते कि तुमने क्या किया है ।' श्रीजानकीने दोनों हाथ अपने सिरपर पटके । वे मूर्छित हो गयीं, लव-कुश दोनों हतबुद्धि खड़े रह गये । उनकी समझमें ही नहीं आया कि उनसे क्या दोष हुआ है ।

महर्षि वाल्मीकिको अब तक का समाचार मिल चुका था । समाचार तो पहिले ही मिल चुका था अपने ब्रह्मचारी अन्तेवासियों द्वारा; किन्तु युद्ध-भूमिमें जाना उन्हें उचित नहीं लगा था । उन्होंने अपने छात्रोंको दूर रहकर

युद्ध देखते रहने तथा समाचार देते रहनेका आदेश दे रखा था। युद्धकी प्रत्येक स्थितिसे वे अवगत थे।

कोई आशंका महर्षिको किसी पक्षके सम्बन्धमें नहीं थी। वे आश्वस्त थे—स्मरण करते ही सुरेन्द्र तथा सुरवैद्य अश्विनीकुमार आ जायेंगे। मृत लोगोंको जीवित तथा आहतोंको स्वस्थ करनेमें विलम्ब नहीं होगा। अतः वे चाहते थे कि अयोध्याके लोग, स्वयं श्रीराम भी उनके शिष्योंका पौरुष देख लें।

'भगवतीके दोनों पुत्रोंने विजय प्राप्त की। अयोध्याकी पूरी सेना समर-शय्या प्राप्तकर चुकी।' अन्तेवासियोंने दौड़कर समाचार दिया था—'लव-कुश अश्वके साथ एक विशाल वानरको भी बाँधकर ला रहे हैं।'

युद्ध दिनके प्रथम प्रहरमें प्रारम्भ हुआ था। इतनी शीघ्र समाप्त हो जायेगा, इसकी आशा महर्षिको भी नहीं हुई। समाचार मिलते ही वे श्रीसीताके उटजकी ओर चल पड़े थे।

'वत्से ! श्रीरामको कुछ नहीं हुआ है।' महर्षिने सबसे पहिले भगवती वैदेहीको आश्वस्त किया—'उन्होंने युद्ध किया ही नहीं। इन कुमारोंसे परिचय पूछकर वे अपने रथमें सो गये थे। मुझे ब्रह्मचारी बालकोंने सब सुनाया है।'

'अम्ब ! सचमुच उन्होंने युद्ध नहीं किया।' कुशने भी सरलतासे कहा—'हमने तो समझा था कि कोई शर लग जानेसे वे रथमें मूर्छित पड़े हैं।'

'भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न अथवा इनके कोई पुत्र मृत नहीं हैं !' महर्षिने देखा कि श्रीजानकी मूर्छासे जगकर भी अवसन्न फटे-फटे नेत्रोंसे उनकी ओर देख रही हैं तो महर्षिने स्थिति स्पष्ट की—'शोकका कोई कारण नहीं है। वे केवल मूर्छित हैं। तुम अपने चित्तको स्थिर करो। युद्ध श्रान्त अपने इन बालकोंको सम्हालो, विश्राम दो। इनकी भर्त्सना मत करना। इन्होंने शूरोंके योग्य श्लाघनीय शौर्य प्रदर्शित किया है। मैं इनपर प्रसन्न हूँ। सुरेन्द्र और सुरवैद्योंका आवाहन कर रहा हूँ। मूर्छितों तथा आहतोंको अश्विनीकुमार स्वस्थ कर देंगे। मृत मनुष्यों तथा पशुओंको भी शक्र जीवित कर देंगे। अयोध्याकी सेना स्वस्थ-समृद्ध जायेगी। तुम तनिक भी चिन्ता मत करो।'

'भगवन् ! मैंने तो समझा था कि पुत्रोंने मेरे लिए अनल-प्रवेशका अवसर उपस्थित कर दिया है।' श्रीवैदेहीने भूमिपर मस्तक रखकर प्रणाम

किया ।

'वत्से ! धैर्य-धारण उचित है ।' महर्षिने संकेतमें ही मन्तव्य स्पष्ट किया—'अभी बालकोंको स्थिति समझानेका अवसर उपस्थित नहीं हुआ है ।'

'तुम लोग अपनी जननीके साथ जाओ । स्नान करके समर-श्रम दूर करो ।' महर्षिने लव-कुशको आदेश दिया—'यह अश्व इन वानरोत्तमको ले जाने दो । अश्व जिनका है, वे हम सबके सम्मान्य हैं । उनके यज्ञमें बाधा नहीं पड़नी चाहिए ।'

महर्षिका संकेत हनुमानने समझ लिया । उन्होंने श्रीजनक-नन्दिनी और महर्षिके चरणोंमें भी मस्तक रखकर प्रणाम किया । दोनोंकी प्रदक्षिणा करके अश्व लेकर वहाँसे समर-भूमिकी ओर चल पड़े ।

लव-कुशने समझ लिया था कि यह युद्ध उनके अविवेकसे हुआ । वे दोनों भाई संकुचित हो गये थे । दोनोंने मातासे गंगा-स्नानकी अनुमति माँगी, जो उन्हें प्राप्त हो गयी ।

श्रीजानकी अत्यन्त खिन्न हो गयी थीं । उनका मन प्राण, रोम-रोम जिनकी मंगल-कामना करता है, जो आराध्य हैं, सर्वस्व हैं, बालकोंने उनका अपराध किया । जिनकी अर्चा करनी उचित थी, उन गुरुजनोंको आहत किया । इसमें बालकोंका अपराध नहीं है । यह उन्होंने अनजानमें किया; किन्तु अपराध तो किया ही । हृदयपर यह अनुभूति भार बनकर बैठ गयी है ।

'अयोध्याके सैनिक यह भी तो मान सकते हैं कि सीताने अपने पुत्रोंके द्वारा अपने निर्वासनका प्रतिशोध लिया है ।' इसका कोई समाधान नहीं है । श्रीराघवेन्द्र तथा उनके अनुज उदार हैं । वे बालकोंकी निर्दोषिता समझ सकते हैं; किन्तु उनके समझनेका महत्त्व कहाँ है । वे तो श्रीवैदेहीको भी निर्दोष ही समझते थे—समझते हैं । राजा स्वयं कुछ समझे, उसे प्रजाके समझनेको महत्त्व देना पड़ता है । उसे अपनी समझको स्वीकार करके चलनेका स्वत्त्व होता........ ?

महर्षि वाल्मीकि भी इस तथ्यको समझ रहे थे; किन्तु अब जो हो चुका था, उसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता था । एक आशा थी—उचित आशा थी कि शूरोंको किसीका शौर्य सन्तुष्ट करता है । समरमें अयोध्याके सैनिक ही आये थे । वे शूर थे, क्षत्रिय थे । लव-कुशके शौर्य, अस्त्र-ज्ञानका

वे सम्मान करेंगे । इन बालकोंके प्रति उनमें गौरव-बुद्धि जागेगी । जब उन्हें पता लगेगा कि ये श्रीरामके आत्मज हैं, वे इनका सम्मान करेंगे । इन्हें अपनानेके पक्षमें होंगे । वीर अपनेसे अधिक योग्य एवं वीरका आधिपत्य स्वीकार करनेमें हिचकते नहीं । अतः सम्भव है, अयोध्याकी सेना बालकोंको अपना युवराज बनानेके पक्षमें हो जाय ।

महर्षि वाल्मीकिने सुरेन्द्र तथा सुरवैद्योंका स्मरण किया । वे यह आवाहन न भी करते तो भी देवराजको यह सेवा करनी थी । अश्विनीकुमारोंने अविलम्ब अपना कार्य आरम्भ कर दिया ।

महर्षि अपने आश्रमवासी शिष्योंके साथ श्रीरामके स्यन्दनके समीप पहुँचे । उन्होंने स्तवन किया—'जो सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सर्वलोकेश्वर आज धरापर आकर सबके संरक्षक सम्राट् बने हैं, उन उत्तमश्लोकको यह प्राचेतस प्रसन्न करना चाहता है ।'

महर्षि वाल्मीकिका स्वर श्रवणमें पड़ते ही श्रीरामने उत्तरीय फेंका और स्यन्दनसे भूमिपर उतर आये । उन्होंने महर्षिको प्रणाम किया । महर्षिने आशीर्वाद देकर कहा—'यद्यपि आप मेरे आश्रमके समीप तक आ गये हैं; किन्तु ऐसा अनवसर है कि मैं आतिथ्य-ग्रहणका आग्रह करनेकी स्थितिमें नहीं रह गया ।'

'आपका अनुग्रह और आशीर्वाद पाकर लोकपाल भी कृतार्थ हो जायेंगे ।' श्रीराम भी जानते थे कि श्रीमैथिलीके वाल्मीकि-आश्रममें रहते वहाँ आतिथ्यग्रहण करने जाया नहीं जा सकता । प्रजा इसका कोई भी अर्थ कर ले सकती है ।

'बालकोंने अज्ञानवश जो अविनय की है, उसके लिए वे लज्जित हैं ।' महर्षिने भी यह अवसर इससे कुछ अधिक कहनेके उपयुक्त नहीं समझा ।

पवनकुमार इस समय तक अश्व लेकर आ चुके थे । श्रीरघुनाथके सचेत होते ही अश्व स्वयं उनके सम्मुख आकर खड़ा हो गया । उसने हिनहिनाहटके साथ हर्ष-ध्वनिकी । हनुमानने भी अपने आराध्यके चरणोंमें प्रणाम किया ।

अब तक अश्विनीकुमारोंके प्रयत्नसे भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न तथा इनके

सब कुमार सचेत हो चुके थे । वे उठकर सम्राट्के समीप आ गये । सबने महर्षि वाल्मीकिको प्रणाम किया । अश्वको देखकर ही यह स्पष्ट हो गया कि वह महर्षिके अनुग्रहसे ही प्राप्त हुआ है ।

'आप हमें अनुमति दें !' श्रीरामने महर्षिसे प्रार्थना की । वे भी नहीं चाहते थे कि इस समय लव-कुशका परिचय प्रकट किया जाय ।

सुरेन्द्रने सुधा-वृष्टि करके सबको जीवित कर दिया था । सैनिक और पशु भी प्राण-लाभ करके स्वस्थ-प्रसन्न हो गये थे । उनके अंग यथावत् हो चुके थे । अश्व अब अयोध्याकी ओर चल पड़ा था, अतः उसका अनुगमन आवश्यक हो गया था ।

महर्षिने आशीर्वाद दे दिया । अयोध्याकी सेना सुप्रसन्न लौट पड़ी । केवल हनुमान खिन्न थे । उन्होंने कुछ कहा नहीं; किन्तु लव-कुशका परिचय प्राप्त करनेके पश्चात् वे उनके अकल्पनीय वीर बालकोंके अनुरक्त हो गये थे । उन दोनोंको तो कमसे-कम साथ ले चलना ही चाहिए था । आञ्जनेय नहीं समझ पा रहे थे कि उन बालकोंको किस अपराधपर अब यहाँ छोड़ा जा रहा है । लेकिन आराध्यके निर्णयका विरोध उनके स्वभावमें ही नहीं है । वे मौन बने रहे ।

अयोध्याके सैनिकोंकी चर्चाका विषय वे दोनों बालक थे । उनके शील, शौर्य, अस्त्र ज्ञानकी सब भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे । महासेनापति तथा भरत तकके मुख पर था—'सुनिश्चित है कि वे ब्रह्मास्त्र-वेत्ता हैं । उनके समीप नारायणास्त्र, पाशुपतास्त्र भी अवश्य होंगे; किन्तु बालक होनेपर भी उनका धैर्य, उनकी मर्यादा-निष्ठा अपने सम्मान्य सम्राट्के अतिरिक्त सृष्टिमें अलभ्य है । उन्होंने अत्यन्त संकटमें होनेपर भी अपनी ओरसे कभी कोई दिव्यास्त्र नहीं उठाया । उनका हस्तलाघव अपूर्व है ।'

●●●

लव-कुशका रामायण-गान

'अन्तरके आह्लादका उत्स होता है काव्य। इसका उपयोग अन्तरको आह्लादित करनेमें ही है।' महर्षि वाल्मीकिने लव-कुशको समीप बुलाकर समझाया—'कला यदि लोक-हृदयको रसाप्लुत नहीं करती तो वह वन्ध्या है। अतः तुम दोनोंको अयोध्या जाना चाहिए। इस समय वहाँ अश्वमेध यज्ञ हो रहा है। समस्त भूमण्डलके ऋषि-मुनि, तपस्वी, राजागण, वणिक्-श्रेष्ठ तथा सेवा-निपुण एकत्र हैं। कलाके प्रदर्शनका इससे अधिक उपयुक्त समय एवं स्थान दूसरा नहीं है।'

'तुम दोनों वहाँ नगरमें, यज्ञ-शिविरमें भी रामायण-गान करना। जो भी सम्मानपूर्वक बुलावे, वहाँ जाना। लेकिन किसीके अन्तःपुरमें मत जाना।' महर्षिने अपने शिष्योंको समझाया—'यदि सम्राट् श्रीराम बुलावें तो उनकी सभामें भी जाना। राजा पिताके समान सम्मान्य होता है। तुम जो चरित-गान करते हो, वह उन्हीं श्रीरामका है। वह उनको सुप्रसन्न करे, यह सबसे श्रेयस्कर उपयोग है इसका। लेकिन वे कोई पुरस्कार दें तो स्वीकार मत करना।'

महर्षिने लव-कुशको सूचित कर दिया कि उनके साथ दूसरा कोई अन्तेवासी नहीं जायेगा। अयोध्याकी पान्थशालामें उनको ठहरना है। वहाँ उनके आहारकी व्यवस्था स्वतः हो जायेगी।

लव-कुशने सादर महर्षिका आदेश स्वीकार कर लिया। उन्हें कोई संकोच नहीं था। पूछा भी नहीं कि जहाँके सैनिकोंसे, स्वयं राजासे इतना तुमुल संघर्ष उन्होंने किया है, वहाँ जाना उचित है या नहीं। स्नेहमय आचार्य आदेश करते हैं तो सन्देह करनेका कारण श्रद्धालु सच्छिष्यको नहीं रहता।

जननीको जाकर प्रणाम किया। महर्षिने श्रीजनक-नन्दिनीको पहिले समझा दिया था। वे स्वयं भी उत्सुक थीं कि भले वे अपने आराध्यके चरणोंसे दूर हैं; किन्तु अब इन बालकोंको पिताका आश्रय प्राप्त होना चाहिए। इनका पालन करना माताका कर्त्तव्य था, वह उन्होंने पूर्ण कर दिया। अब ये जिसके हैं, उन्हें अर्पित करके वे अपने कर्त्तव्यसे मुक्त हो सकती हैं। इसका उचित

मार्ग जो पिताके समान महर्षि सोचें वही उपयुक्त है ।

'तुम दोनों अयोध्यामें किसीका भी असम्मान मत करना ।' माताने समझाया—'वहाँ प्रायः सभी तुम्हारे सम्मान्य हैं । वहाँके सब लोग उदार हैं, स्नेहशील हैं । वे उपहार दें तो आदरपूर्वक ही अस्वीकार करना । हम कुछ भी लेकर क्या करेंगे ? तुम अपने शिक्षककी आज्ञाका पालन करो । तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो !

माताकी परिक्रमा करके, उनके पदोंमें प्रणाम करके दोनों भाइयोंने प्रस्थान किया । महर्षि वाल्मीकि तथा दूसरे सहपाठी उन्हें आश्रम-सीमा तक पहुँचाने साथ आये । सबने स्वस्ति-वाचन करके विदा दिया ।

धनुष, त्रोण अथवा कोई शस्त्र साथ नहीं ले जाना था । वल्कल वस्त्र, वक्षपर कसे कृष्ण मृग-चर्म, सिरोंपर जटाएँ, कुशके करोंमें वीणा और लवके करमें कमण्डलु, केवल इतना उपकरण था दोनोंके समीप । दोनोंको पैदल ही अयोध्या पहुँचना था ।

अतिथि भारतमें साक्षान्नारायण माना जाता था । गृहस्थ दैनिक आराधनामें आराध्यसे प्रार्थना करता था कि उसे अतिथि प्राप्त हों । अतः अपरिग्रही व्यक्तिके लिए कहींकी यात्रामें कोई कठिनाई नहीं थी । लव-कुश तो ब्रह्मचारी थे । उनका भुवनसुन्दर रूप किसीके भी प्राणोंको पिघला देनेवाला था । इन्दीवर-सुन्दर अंग, कमलदल-विशाल अरुणाभ लोचन, कर-चरण—जैसे सृष्टिकर्ताने अपनी समस्त कला इनके सृजनमें व्यय कर दी हो ।

जिधर, जहाँ जनपदके समीप पहुँचते थे, बालक-वृद्ध-तरुण, नगर-नारी सब दौड़ पड़ते थे । ये इतने सहज, इतने सरल कि किसीके भी कहते ही वीणा झंकृत होने लगती थी और वायु-मण्डल स्वर-माधुरीसे सरस हो जाता था । मनुष्योंकी ही बात नहीं, मृग, पक्षी तक मुग्ध साथ लगे चल पड़ते थे ।

लव-कुशने कोई ग्राम भी नहीं देखा था; किन्तु जैसे अपनेमें ये परम सन्तुष्ट, कौतूहलका नाम नहीं । यदि ये किसीका आग्रह स्वीकार करते, इन्हें सदाके लिए अपने समीप ही रख लेनेका सौभाग्य कौन छोड़ देता ? लेकिन यात्री किसीका कैसे हो सकता है ? ये अयोध्याके यात्री थे । लोगोंके अतिशय अनुरोधपर कहीं रात्रि-विश्राम, आहार-ग्रहण, कुछ काल रुक जाना यही बहुत

था। इनकी यात्रा चलती रही। इनकी वीणा बजती रही। इनके कलकण्ठसे गुंजित राम-कथा काव्यसे जनपद पवित्र होते रहे।

'अयोध्यामें अश्वमेध यज्ञ हो रहा है। हमको भी उसका दर्शन करके पवित्र होना है।' जिनके मनमें उत्सुकता नहीं भी थी, लव-कुशके सौन्दर्यने, उनके स्वर-सौष्ठवने उन्हें उत्सुक बना दिया। लव-कुश अयोध्या पहुँचे तो उनके साथ बहुत बड़ा समुदाय साथ था। उसमें प्रजाके सभी वर्गके लोग थे। अनेक स्थानोंके थे। बहुतसे कुछ आगे भी दौड़ आये थे। लव-कुशके आनेसे पूर्व ही उनकी कीर्ति अयोध्या पहुँच चुकी थी।

अयोध्या, अश्वमेधके समय बाहरके लोगोंका समुदाय आता ही रहता था। शासनकी ओरसे आगतोंके आवास, आहरादिकी समुचित व्यवस्था थी। राज्यके कर्मचारी सबका सत्कार करते थे। अतः आगतोंके सम्मुख कोई समस्या नहीं थी।

लव-कुशको श्रोता एकत्र नहीं करने थे। उनके स्वरका आकर्षण श्रोताओंका एक बड़ा समुदाय साथ ले आया था। अयोध्या नगरमें और यज्ञशालाके शिविरोंमें शीघ्र आग्रहपूर्वक उनको आमन्त्रितत किया जाने लगा। प्रसिद्ध राजाओंने, श्रेष्ठि-वर्गने ही नहीं, मुनि-मण्डलोंने भी आदरपूर्वक आमन्त्रित किया।

'अश्रुत-पूर्व गायक, अकल्पित सुमधुर स्वर, साक्षात् पुष्पधन्वाके समान सुन्दर दो युवक गायक आये हैं नगरमें।' सर्वत्र यही चर्चा—'अपने सद्‌गुणैकधाम सम्राट्‌की ही कीर्ति-कथाका गान करते हैं; किन्तु अतिशय रमणीय है उनका गान-काव्य, सर्वाकर्षक है उनकी शैली।'

'किसीका कोई उपहार वे स्वीकार नहीं करते।' इस बातने लोक-श्रद्धाको अत्यधिक उद्दीप्त कर दिया। नगरके नागरिक भी लव-कुशके पीछे घूमने लगे। इन कुमारोंके संगीतके श्रोताओंकी संख्या पहिले ही दिन सहस्रों तक पहुँच गयी। अन्यत्रसे आये संगीतकारोंने अपने वाद्य धर दिये। नर्तकों एवं अभिनयकारोंकी रंगशालाएँ सूनी हो गयीं।

अनेकोंके द्वारा श्रीराम तक लव-कुशके गानकी प्रशंसा पहुँची। यज्ञके विश्राम-कालमें यज्ञशालाके समीपके सभा-मण्डपमें कीर्तन, कथा, संगीत हुआ

करता था । वहाँ अब श्रोताओंका अभाव हो गया । यज्ञीय सभासद भी उस समय लव-कुशका गायन सुनने चले गये ।

ऋषियोंकी, मन्त्रियोंकी, प्रजाप्रतिनिधियोंकी सम्मतिसे श्रीरामने सुमन्त्रके द्वारा दोनों गायकोंको यज्ञ-मण्डपमें गायनके लिए आमन्त्रित किया । दोनोंने स्वीकार कर लिया । नगरमें यज्ञशालाके समीपस्थ शिविरोंमें भी घोषणा करा दी गयी कि प्राचेतसाश्रमसे आये दोनों गायक कलसे यज्ञशालाके सभा-मण्डपमें ही गान करेंगे ।

सभा-मण्डप पहिलेसे पर्याप्त विस्तीर्ण था । उसे अधिक व्यवस्थित किया गया । उसमें महिलाओंके बैठनेकी व्यवस्था पृथक थी । राजपरिवारकी महिलाएँ, नगरकी कुलवधुएँ भी बैठ सकें, यह व्यवस्था थी । राजाओं तथा उनके परिकरको बैठनेके पृथक् स्थान थे । मुनि-मण्डल तथा विप्रवर्ग एक ओर बैठता था । सम्मान्य नागरिक, सामान्य नागरिक, सेवक, सबके ही लिए उपयुक्त स्थान थे । सम्राट्के समीप ही सुरक्षित स्थान था । कभी भी कोई देवता अथवा दिव्य लोकके ऋषिगण आ सकते थे ।

'शत्रुघ्न ! महासेनापतिने सूचना दी है कि सभी सैनिक इन युवकोंके गायन-श्रवणके उत्सुक हैं ।' भरतने सायंकाल ही अनुजको सतर्क किया—'नगर और आगतोंके शिविर भी सुनसान हो जा सकते हैं । अतः सुरक्षाकी सर्वत्र समुचित व्यवस्था आवश्यक है ।'

'वही हैं— वही जिन्होंने पृथ्वीपर खड़े रहकर ही हमारी पूरी विजयवाहिनीको पराभूत कर दिया था ।' सैनिकोंकी चर्चा अब नगरमें भी फैल चुकी थी—'सृष्टिके ये सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर इतने अनुपम गायक भी हैं, कोई कैसे सोच सकता है । महर्षि वाल्मीकिके ये शिष्य पराक्रममें, अस्त्रज्ञानमें, संगीतमें, अपनी विनम्रतामें अतुलनीय हैं । तुम्बरू इनका संगीत श्रवण कर लें तो इनके सम्मुख वीणा छूनेका साहस नहीं करेंगे ।'

सैनिकोंके श्रद्धा-भाजन हो गये थे दोनों कुमार । कोई उनके दिव्यास्त्र-ज्ञानकी प्रशंसा करता था, कोई स्वर-सौष्ठवका स्तवन करता था और कोई उनके शील, विनम्रतापर मुग्ध था । सैनिकोंमें अनेकोंने कहा—'कहीं ये हमारे युवराज होते ।'

सभास्थलके मध्यमें विस्तृत स्थल था । वह उज्ज्वल आस्तरणसे आच्छादित था । सम्राट्का सिंहासन लगा था । उनके अनुजोंको समीप रहना ही था । चारों ओर सोपानाकार आसनोंकी पंक्तियोंपर मुनिगण, नरपति-वृन्द, नागरिक आकर बैठ चुके थे ।

लव-कुश शान्त भावसे आये । वीणा भूमिमें रखकर अञ्जलि बाँधकर मुनिगणोंको, सम्राट्को तथा सभी समुदायको उन्होंने घूमकर मस्तक झुकाया । सम्राट्की अनुमति पाकर मध्यमें बैठ गये । कुशने वीणा उठा ली । लव अपने अग्रजके समीप बैठे । दोनों भाइयोंका मुख सम्राट्की ओर था ।

मंगलाचरणपूर्वक दोनों भाइयोंने महर्षि वाल्मीकिके आदि काव्यका गायन प्रारम्भ किया । यह गायन तो प्रतिदिनका क्रम बन गया । बाईस अध्याय प्रतिदिनके क्रमसे लव-कुश श्रीरामके चरितका अबतकका अंश सुना रहे थे ।

प्रथम दिन ही किसीको पता नहीं लगा कि कब सम्राट् सिंहासनसे उतरकर दोनों गायकोंके समीप उसी आस्तरणपर जा बैठे । महर्षि वशिष्ठ और मुनि-मण्डल तक जब उस अलौकिक संगीतके आकर्षणसे आसनोंसे उतरकर नीचे आ गया तो सम्राट् या राजाओंका वहाँ आ बैठना आश्चर्यकी बात नहीं थी ।

दूसरे दिनसे ही बैठनेकी व्यवस्थामें परिवर्तन हो गया । मध्यका स्थान विस्तीर्ण किया गया । सम्मान अब सिंहासनोंपर बैठनेमें नहीं रह गया । गायकोंके समीप स्थान मिलना सम्मानकी बात हो गयी । अयोध्याकी इस संगीत-सभामें दोनो युवक गायक सबके आकर्षणके केन्द्र हो गये । उनसे दो शब्द बोल लेनेका सुअवसर भी सौभाग्यका, गौरवका प्रतीक माना जाने लगा ।

'सम्राट् क्षमा करें !' दोनों बालकोंने उस समय हाथ जोड़ लिए, जब श्रीरामने गायनकी समाप्तिपर अपने कोषका सर्वश्रेष्ठ कण्ठाभरण पुरस्कार देनेके लिए उठाया । यज्ञदीक्षित होनेके कारण सम्राट्के शरीरपर कोई आभूषण नहीं था । कुशने कहा—'हम प्रतिग्रह स्वीकार नहीं करते । यह संगीत हमारी जन-सेवा है । विश्वात्माकी आराधनाका यह स्वरूप हमारे उपदेष्टाने हमारे लिए निर्दिष्ट किया है ।'

'तुम दोनोंने यह अपूर्व काव्य किससे प्राप्त किया ? तुम किसके पुत्र

हो ?' श्रीरामने पूछा तो सम्पूर्ण सभा निस्तब्ध हो गयी । यह परिचय प्राप्त करनेको तो सबके हृदय उत्सुक हो उठे थे ।

'भगवान् प्राचेतस हमारे पालक हैं, आचार्य हैं । यह उनकी प्रतिभासे उत्पन्न काव्य है । अपनी यह कृति उन्होंने ही कृपा करके हमें प्रदान की है ।' कुशने अत्यन्त श्रद्धा-समन्वित स्वरमें कहा ।

'भगवान् प्राचेतसकी जय !' सभा-मण्डप गूँज उठा— 'महर्षि वाल्मीकिकी जय !'

शीघ्र सब नीरव हो गये । इन युवकोंके द्वारा दूसरे प्रश्नका उत्तर, इनका अपना परिचय प्राप्त करनेकी उत्सुकता अब और अधिक बढ़ गयी ।

'हमें अपने पिताका नाम ज्ञात नहीं । पूछनेपर अम्बा अत्यन्त दुःखी हो जाती हैं, अतः हमने आग्रह नहीं किया ।' कुशने शान्त स्वरमें कहा— 'हम विदेह-राजनन्दिनी सीताके पुत्र हैं । हम दोनों एक साथ उत्पन्न हुए हैं ।'

'सीताके पुत्र ?' पूरी सभामें सनसनी व्याप्त हो गयी—'निश्चय अपने सम्राट्के पुत्र ! हमारे युवराज !'

'लक्ष्मण ! भगवान् प्राचेतसको यहाँ पधारनेकी प्रार्थना करो ।' श्रीरामने लोगोंमें व्याप्त जनरव सुनकर अनुजको आज्ञा दी । लोग लक्ष्मणको जाते देखकर आगेकी घटनाकी प्रतीक्षा करने लगे । उस दिन सभा विसर्जित कर दी गयी ।

●●●

भूमिजाका भू-प्रवेश

'अपने युवराज ।' अयोध्यामें किसीको लव-कुशके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं रहा था । आगत नरेशों तथा अन्य जनोंने इसका स्वागत किया था । सैनिकोंमें सबसे अधिक उत्साह था । उन्हें रोक न दिया गया होता तो वे उसी समय लव-कुशका सैनिक अभिनन्दन करते । उन्हें कल तक प्रतीक्षा करनेको

कहकर शान्त किया जा सकता था ।

'हमारे अग्रज !' भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्नके कुमारोंको बहुत ग्लानि थी— 'हमने इन आदरणीयोंके विरुद्ध शस्त्र उठानेकी धृष्टता की ।'

अब सैनिकोंको और इन कुमारोंको भी अपनी पराजयमें गौरवका अनुभव होने लगा था । यह समुदाय लव-कुशके संगीतका कम, उनके शौर्य एवं शीलका अधिक श्रद्धालु उपासक बन गया था ।

'ये जीजीके आत्मज हैं !' उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्तिने माँग की कि दोनों बालकोंको आज ही राजभवनके अन्तःपुरमें आवास प्राप्त होना चाहिये । लेकिन उनको भी कल तक प्रतीक्षा करनेको कहा गया ।

'आयुष्मान् ! सम्राट् चाहते हैं कि तुम दोनों आजकी रात्रि शासकीय विशेष अतिथिशालामें रहना स्वीकार कर लो ।' महामन्त्री सुमन्त्रने लव-कुशसे कहा—'तुम समझ ही गये हो कि तुम स्वयं सम्राट्के पुत्र हो । आज अत्यधिक लोग तुम दोनोंसे मिलेंगे तो परिस्थिति जटिल भी हो जा सकती है । आशा है कल महर्षि प्राचेतसके साथ तुम्हारी माता भी पधारेंगी ।'

लव-कुशने महामन्त्रीकी सम्मति स्वीकार कर ली । उन्होंने यज्ञशालामें बहुत दूरसे मुख्य यजमानके पार्श्वमें आसीन स्वर्ण-मूर्तिके दर्शन किये थे । उन्हें आश्चर्य था कि उनकी अम्बाकी मूर्त्ति वहाँ क्यों है । आज तथ्य प्रकट हुआ । उन्हें भी कल तक प्रतीक्षा ही करनी थी । वैसे उन्हें अयोध्याके राज्य तथा राजनीतिमें कोई रुचि नहीं थी । वे अपनी अम्बाके समीप रहनेको उत्सुक थे । यदि अम्बा राजसदन नहीं रहतीं तो उनके समीप तपोवनमें ही वे रहेंगे, यह दोनों भाइयोंने रात्रिमें ही निश्चय कर लिया ।

दूसरे दिनकी सभामें और भी अधिक लोगोंकी भीड़ एकत्र हुई । कोई अव्यवस्था उत्पन्न न हो, कोई जयघोष न किया जाय, इसकी सर्वत्र सूचना दे दी गयी । सब कहीं सैनिकोंको प्रबन्धपर नियुक्त कर दिया गया ।

'राजकुलके सदस्य, राजपरिवारके सम्बन्धी आगत अतिथि, मन्त्रीगण राजसेवक तथा सैनिक शान्त रहेंगे । ये केवल प्रजाका अभिमत सुनेंगे ।' श्रीराघवेन्द्रने पहिले ही घोषणा करा दी—'इनमें-से कोई अपना मत प्रकट करनेके लिए नहीं बोलेगा । मुनिगण, विप्रवृन्द भी हस्तक्षेप नहीं करेंगे ।'

प्रलम्बकाय, परिपुष्ट बलिष्ठ; किन्तु वृद्ध शरीर, श्वेत श्मश्रु-केष, विशाल भाल, भव्य गौर वर्ण आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने सभा-मण्डपमें प्रवेश किया। उनके पीछे-पीछे गैरिक-वसना, अधोमुखी अपने आपमें ही संकुचित श्रीवैदेही भी आयीं। महर्षिने देख लिया कि लव-कुशको सम्राट्के सिंहासनके समीप भरतादिके कुमारोंके साथ ही बैठाया गया है। लव-कुशने भी अपने गुरुदेव तथा अम्बाको देखा। नेत्र-संकेतसे ही महर्षिने उन्हें उठनेसे रोक दिया था, अतः वहींसे मस्तक झुकाकर दोनों भाइयोंने प्रणाम कर लिया।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठने वाल्मीकिको उठकर अंकमाल दी। श्रीरामने अनुजोंके साथ प्रणाम किया। यह औपचारिकता पूर्ण हो जानेपर महर्षि वाल्मीकिने दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर एक बार सम्राट्को और पूरी सभाको घूमकर देखा। मेघ-गम्भीर स्वरमें बोले—'मैं प्रचेताका बारहवाँ पुत्र वाल्मीकि शपथ ले रहा हूँ। सब जानते हैं कि मैंने दीर्घकालीन तपस्या की है। यदि सीता पवित्र न हो तो मेरा तप निष्फल हो जाय।'

'यदि जनक-नन्दिनी सीता सुरसरिके समान पावन, परम सती न हों तो वाल्मीकिके सब पुण्य नष्ट हो जायें।'

'यदि मन, वचन, कर्मसे सीता केवल राम-परायण न हों तो वाल्मीकिके सब पुण्य नष्ट हों और यह नरकगामी हो।'

महर्षि वाल्मीकिने तीन बार शपथकी घोषणा की; किन्तु हायरे अयोध्याका अभाग्य ! सामान्य लोगोंमें-से एक भी उनका समर्थन करने नहीं उठा। जैसे सबको साँप सूँघ गया हो। सब हतबुद्धि, किं-कर्तव्य-विमूढ़ मस्तक झुकाये बैठे रह गये। जो सैनिक, स्वजन, सम्बन्धी, राजपुरुष बोल सकते थे, उन्हें सम्राट्ने बोलनेसे पहिले ही वर्जित कर दिया था।

महर्षि वाल्मीकिने एक बार चारों ओर फिर देखा। उनके नेत्र लाल-लाल हो रहे थे। लगता था कि वे शाप देकर सबको भस्म कर देंगे; किन्तु उन्होंने श्रीरामकी ओर देखा जो अञ्जलि बाँधे, मस्तक झुकाये अत्यन्त कातर नेत्रोंसे उन्हींकी ओर देख रहे थे। महर्षिके नेत्रोंसे बिन्दु झरने लगे। वे अत्यधिक निराश हो गये।

'यह सब क्या है ?' लव-कुशके अधर फड़कने लगे थे। लेकिन उन्होंने

देख लिया कि उन्हींके समान उनके समीप बैठे सब राजकुमारोंकी अवस्था है। सभी सैनिक उत्तेजित होकर हाथ मसल रहे थे। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सुमन्त्रने तथा सभी ऋषियोंने मस्तक झुका लिया था। अपने अत्यन्त सम्मान्य सम्राट्के संकोचसे सब चुप थे।

'जन-समूह स्वयं जनार्दनका स्वरूप है। कुछ क्षण प्रतीक्षा करनेके पश्चात् श्रीराम बोले—'सीताको आगे आकर स्वयं सबके सम्मुख शपथ ग्रहण करनी चाहिये।'

'अनर्थ !' उर्मिलाके मुखसे अस्फुट चीत्कार निकला। मूर्छित हो गयीं वे यह कहकर—'जीजी शपथ ग्रहण करेंगी ?'

माण्डवी, श्रुतकीर्ति पीली पड़ गयीं। देवी अरुन्धतीने महर्षि वशिष्ठसे धीरेसे कहा—'आप कुछ नहीं करेंगे तो अनर्थ अवश्यम्भावी है। पता नहीं, क्या शपथ करें सती शिरोमणि सीता।'

'जो अवश्यम्भावी है, उसे रोकनेमें वशिष्ठ भी समर्थ नहीं है देवि !' ब्रह्मर्षिके नेत्रोंमें अश्रु आ गये। उन सर्वज्ञने भी एक बार ऊपर देखा और निराशासे मस्तक नीचे कर लिया।

'वत्से ! अपने स्वामीके आदेशका पालन करो !' भर्राये कण्ठसे कहकर वाल्मीकि एक ओर हट गये।

'जीजी !' श्रुतिकीर्तिने चीत्कार की और माण्डवीसे लिपटकर वे भी मूर्छित हो गयीं। उन्होंने, माण्डवीने, देवी अरुन्धतीने लक्षित कर लिया कि श्रीमैथिलीमें वह स्थैर्य, वह तेज आ गया है जो सती नारीमें स्वामीके शरीरके साथ अपनेको आहुति बनानेसे पूर्व आया करता है। श्रीजानकीके चरणोंसे जैसे असह्य आलोक प्रकट होने लगा है। सभामें उपस्थित ऋषियों तकने अनुभव किया कि श्रीसीताके पदोंसे ऊपर दृष्टि उठाना शक्य नहीं रह गया है। समस्त उपस्थित लोग अवनत-मस्तक स्तब्ध बैठे थे।

'यदि मैं मन, वाणी, कर्मसे कभी भी अन्यमनो-लग्ना न रही होऊँ तो माधवी माता मुझे बिवर प्रदान करें।' भगवती सीताने शपथ लिया। सुरोंने सशंक देखा कि सूर्यमण्डल सहसा हतप्रभ हो गया। सभामें सभीको अपनेको सम्हालना पड़ा; क्योंकि पृथ्वी-कम्प प्रारम्भ हो चुका था।

'यदि मेरा मन सदा श्रीराममें ही लगा रहा है, मैं इन्हींके प्रति नैष्ठिकी रही हूँ तो धरादेवी मुझे स्थान दें !' महासती मैथिलीने दूसरी बार शपथ ग्रहण की । दिनमें ही आकाशसे उल्कापात होने लगे । पृथ्वीके भीतरसे भयानक गड़गड़ाहटकी ध्वनि आने लगी । सभीके मुखोंपर भय छा गया ।

'यदि सीता सचमुच पतिव्रता है तो पृथ्वीदेवीको इसे अंकमें लेना चाहिये ।' तीसरी शपथ पूर्ण होते-न-होते सभास्थलके सम्मुखकी पृथ्वी फट गयी । उसमें-से ज्योतिर्मय विमानमें बैठी भगवती भूदेवी प्रकट हुईं । उनके शत-सहस्र सूर्योंके सदृश तेजके कारण सभीके नेत्र बन्द हो गये ।

'वत्से !' भूदेवीने दोनों भुजाएँ फैलाकर भगवती सीताको अंकमें ले लिया । उनका वह दिव्य विमान उनको तथा वैदेहीको लेकर पुनः भूमिमें प्रविष्ट हो गया । भूमिका वह दरार ऐसे विलीन हो गया, जैसे पृथ्वी कभी वहाँ फटी ही न हो ।

'भगवती भूमिजाकी जय !' 'महासती साम्राज्ञी सीताकी जय !' 'परम पूजनीया विदेहनन्दिनीकी जय !'

अभी कुछ क्षण पूर्व जिनके मुखोंसे शब्द नहीं फूट रहे थे, वे ही लोग अब उठकर, दोनों हाथ उठाकर जयघोष करते थकते नहीं थे । अब यदि सैनिक रोकते नहीं तो वे उस स्थानकी रज लेने टूट पड़ना चाहते थे, जहाँ श्रीसीताने भू-प्रवेश किया था ।

'सीते ! प्राणप्रिये !' श्रीराम भी सिंहासनसे लगभग कूद पड़े थे । वे सम्भवतः भू-विवरमें प्रविष्ट होती अभिन्न सहचरीको भुजाओंमें भरकर उठा लेनेको झपटे थे; किन्तु वह विमान भू-प्रविष्ट हो चुका था । भूमिका वह दरार पलक झपकते अदृश्य हो गया । श्रीराघव दो क्षण उन्मत्तकी भाँति भुजाएँ फैलाये देखते रहे—घूरते रहे उस स्थानकी ओर । अचानक उनके नेत्रोंसे मानों अंगार वर्षा होने लगी । उन्होंने झपटकर धनुष उठाया और प्रत्यञ्चा चढ़ा ली—'पृथ्वीको नष्ट कर दूँगा यदि यह मेरी पत्नीको लौटाती नहीं है ।'

श्रीरामकी हुंकृतिसे सुर भी काँप उठे । सभा-भवनमें गूँजता जयनाद सहसा स्तम्भित हो गया । सब भयके कारण स्तब्ध रह गये ।

'राम ! धनुष रख दो ! तुम ऐसा कुछ नहीं करोगे ।' अचानक अमिततेजा

रघुकुल-गुरु महर्षि वशिष्ठ अपने आसनसे उठे । उनका इतना रुष्ट, इतना तीक्ष्ण स्वर अयोध्याके लोगोंने प्रथम बार सुना । उन्हें क्रोध भी आता है, यह प्रथम बार लोगोंने जाना । वे अपने सिंहासनसे उतरे । हतप्रभ श्रीराम कुलगुरुकी ओर देखने लगे थे । समीप आकर उसी तीक्ष्ण भर्त्सना-भरे स्वरमें महर्षि बोले—'कोई अधिकार नहीं है—तुम्हें क्रोध करनेका या सीताको प्राप्त करनेका कोई अधिकार नहीं है । तुमने उन महासतीको सर्वथा निर्दोष जानते हुए भी निर्वासित कर रखा था । तुमने उन्हें शपथ-ग्रहणको बाध्य किया ।'

'अयोध्याकी अधम प्रजाने आदिशक्ति अखिलेश्वरी सीताको साम्राज्ञी रूपमें प्राप्त करनेका अपनेको अनधिकारी सिद्ध कर दिया है ।' महर्षि वशिष्ठका स्वर आवेशसे काँप रहा था । काँप रहा था उनका सम्पूर्ण शरीर । उनके नेत्रोंसे रोषके कारण अश्रु-बिन्दु टपक रहे थे—'किसीको यहाँ उनका नाम लेनेका, उनका जयघोष करनेका अधिकार नहीं है ।'

नूतन सृष्टि करनेमें समर्थ महर्षि विश्वामित्र भी जिनके सम्मुख शक्तिहीन सिद्ध हुए थे, वे स्रष्टाके साक्षात् पुत्र रोषमें हैं, यह देखकर सबके तालु शुष्क होने लगे । स्वयं श्रीरामके हाथसे धनुष छूट गिरा । भयसे, संकोचसे वे मस्तक झुकाये खड़े रह गये । किसीका साहस नहीं हुआ कि महर्षिसे शान्त होनेकी भी वह प्रार्थना कर सके ।

'अब यदि भगवान प्राचेतस अनुग्रह करें तो तुम सब भगवती भूमिसुताके पुत्रोंको पालक रूपमें पाकर कृतार्थ हो सकते हो ।' महर्षि वाल्मीकि ने चौंककर वशिष्ठजीको भुजाओंमें समेटकर हृदयसे लगा लिया; क्योंकि वशिष्ठजी भावावेशमें महर्षि वाल्मीकिके चरण पकड़ने झुक चुके थे । अवरुद्ध कण्ठसे वशिष्ठने कहा—'भगवन् ! अब अयोध्या आपकी अनुकम्पाकी याचना करती है ।'

सबके ही नेत्र आर्द्र हो चुके थे । सबके नेत्रोंमें रघुकुल-गुरुके शब्दोंकी याचना मूर्त हो रही थी । भगवती सीताके भू-प्रविष्ट होते ही लव-कुश अपने स्थानसे उठकर महर्षि वाल्मीकिसे आकर लिपट गये थे और फूट-फूटकर रुदन करने लगे थे । इन बालकोंने पिताको जाना ही नहीं था । जन्मसे अम्बा ही इनकी सर्वस्व थीं, आराध्या थीं । वे लोकाराध्या अम्ब इस प्रकार दो शब्द

भी कहे बिना चली गयीं—इनके शोकका कोई अनुमान कर सकता है ?

श्रीराम स्वयं दीनकी भाँति महर्षि वाल्मीकिकी ओर देख रहे थे। जिस महापुरुषने अपने लोकोत्तर तपको शपथपर रखकर सीताको देनेका प्रयत्न किया, उसकी शपथका भी आग्रह सुना नहीं गया। अब किस मुखसे कहें कि वह सीताके पुत्रोंको प्रदान कर दें ? महर्षि वाल्मीकिने पालन किया लव-कुशका। उनका अधिकार नहीं है इनपर ? उनकी शिक्षाने दोनों बालकोंको अयोध्याकी सेनापर विजयी बनाया, वे यदि चाहेंगे तो उनके ये शिष्य स्वयं स्वतन्त्र साम्राज्य नहीं स्थापित कर लेंगे अपनी शक्तिसे ?

वाल्मीकि अयोध्याको उसकी परम पावन साम्राज्ञी देने आये थे, अयोध्याको उसके त्रिभुवन-जय समर्थ युवराज लौटाने आये थे, उनका दान स्वीकार नहीं किया गया। अब तो उनकी इच्छा कि वह अयोध्याकी, अयोध्याके सम्राट्की, अयोध्याके कुलगुरुकी याचना स्वीकार करें—न करें।

'राम ! ये तुम्हारे पुत्र हैं।' महर्षि वाल्मिकि यद्यपि ब्रह्मर्षि वशिष्ठकी याचना अस्वीकार नहीं कर सके; किन्तु अब उनका स्वर रूक्ष हो गया था। वे 'श्रीराम' भी नहीं कह सके ? लव-कुशके कर पकड़कर श्रीरामकी ओर उन्हें बढ़ाते बोले—'यह पुत्री सीताका न्यास बचा है मेरे समीप। तुम इन्हें स्वीकार करो।'

जैसे कोई कंगाल धनपर टूट पड़े, श्रीरामने लव-कुशका कर पकड़कर उन्हें हृदयसे लगा लिया।

महर्षि वाल्मीकि मुड़ पड़े। उन्होंने वशिष्ठजीकी ओर भी नहीं देखा। जनरव गूँजता रहा, 'भगवान प्राचेतसकी जय !' 'आदिकवि महर्षि वाल्मीकिकी जय !' लवकुश आर्त पुकारते रहे—'आचार्य ! मातामह आचार्य !' किन्तु महर्षिने मुड़कर नहीं देखा। कहते हैं कि सीता-त्यागके लिए श्रीरामको, अयोध्याके लोगोंको वे कभी क्षमा नहीं कर सके। वे अत्यन्त एकान्त-प्रिय हो गये। गंगा-तट त्यागकर सुदूर पूर्व चले गये। भारतके पूर्वी सीमान्तमें ब्रह्मपुत्रके तटपर वाल्मीकिका तपोवन अब भी प्रसिद्ध है।

●●●

अश्वमेध-पूर्ण

'अभ्यागत-अतिथि सब अवभृथ स्नानकी प्रतीक्षामें है। उन्हें अयोध्या रहते पर्याप्त अधिक दिन हो गये।' महर्षि वशिष्ठने श्रीराघवेन्द्रसे सस्नेह कहा—'अपनेको अब स्वस्थ करो। यज्ञकी पूर्णाहुति आवश्यक है।'

यज्ञ विरमित नहीं हुआ था; किन्तु जब यजमानका किसी भी कार्यमें उत्साह ही न रह गया हो तो यज्ञ-कार्य आगे कैसे प्रगति करे ? प्रतिदिन थोड़ी आहुतियाँ देकर यज्ञको अखण्ड रखा जा रहा था। श्रीराम रात्रिमें अश्वके समीप बैठे रहते थे। दिनमें वे यज्ञशालामें रहते तो थे, किन्तु अन्यमनस्क, उदासीन। ऐसी अवस्थामें उनको कुछ भी करनेको कहनेका उत्साह ऋत्विकोंमें नहीं था।

जनरुचि विचित्र होती है। जिन्होंने अपवादका प्रसार करके श्रीजनक-नन्दिनीको निर्वासित करानेमें योगदान किया था, जिन्होंने श्रीमैथिलीके त्यागके पश्चात् श्रीरामकी प्रशंसा की थी, उनके कार्यको उचित कहा था, जो शपथके समय महर्षि वाल्मीकिके शपथ-ग्रहणके पश्चात् भी एक शब्द तक बोलनेमें कृपण होकर मौन बैठे रहे थे, उनमें अब श्रद्धा उमड़ पड़ी थी। वे नियमसे साम्राज्ञीकी स्वर्ण-प्रतिमाको प्रतिदिन पुष्पाञ्जलि अर्पित करते थे।

लव-कुश बहुत उदास रहने लगे थे। उर्मिलाने उन्हें अपने समीप ही रखना प्रारम्भ कर दिया था। जो स्नेह, जो वात्सल्य उन्होंने अपने पुत्र अंगद और चित्रकेतुको भी नहीं दिया था, वह उनमें उद्दीप्त हो उठा था। लव-कुश भी उनका बहुत अधिक सम्मान करने लगे थे। वे पिताके समीप कम ही बैठते थे। उनका कमण्डलु, मृगचर्म, वल्कल प्रथम दिन ही श्रुतिकीर्तिने लेकर अपने संग्रहालयमें सुरक्षित कर दिया था। उनकी जटाओंको सुलझानेमें जो केश प्राप्त हुए वे भी और उनकी वीणा भी। अब वे राजकुमारोंके उपयुक्त वस्त्राभरण धारण कर चुके थे।

महर्षि वाल्मीकिके आश्रमके अन्तेवासी लव-कुशके धनुष तथा त्रोण दे गये। वे सब भी बहुत खिन्न थे। उन्होंने समाचार दिया—'आचार्यदेव आश्रम ही नहीं लौटे हैं। उनका उटज सुरक्षित रखा जा रहा है। तपस्विनियाँ तथा

वानप्रस्थाश्रमी वहाँ रहेंगे; किन्तु शिक्षा-प्राप्त करने आये अन्तेवासियोंको तो अब कहीं अन्य ऋषिकी शरण लेना है । आचार्यदेवके पुनरागमनकी आशा किसीको नहीं है ।'

महर्षि वशिष्ठने उदारतापूर्वक वाल्मीकि आश्रमके अन्तेवासियोंको अपने यहाँ आश्रय देना स्वीकार कर लिया । वे विद्यार्थी भी लव-कुशके सामीप्यका सुयोग देखकर प्रसन्न हुए । सब अयोध्या आ गये ।

भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नके पुत्र, कुश तथा लवका सम्मान करने लगे थे । जैसे इनके पिता अपने अग्रजकी सेवा और अनुगमन करते थे, वैसे ही ये राजकुमार भी अपने इन दोनों अग्रजोंका अनुगमन करने लगे ।

लव-कुशको उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति तीन माताएँ प्राप्त हुईं । तीनोंका वात्सल्य इनपर उमड़ा पड़ता था; किन्तु दोनों कुमारोंके मुखपर प्रसन्नता नहीं लौटी । अपनी गैरिक-वसना, अधोमुखी, सभामें शपथ-समुद्यता जननी जैसे नेत्रोंके सम्मुख ही दीखती थीं उन्हें । बार-बार दोनोंके नेत्र भर आते थे । दोनों भाई अधिकांश एकान्त ढूँढ़ते थे; क्योंकि वहाँ परस्पर लिपटकर खुलकर रो सकते थे । अयोध्याके राजसदनमें सबके स्नेह-भाजन होनेपर भी उनका संकोच दूर होनेका नाम ही नहीं लेता था ।

आञ्जनेय अब जैसे गुम-सुम बन गये थे । वे श्रीरामके चरणोंके समीप बैठे रहते थे; किन्तु जैसे उनके लोचन सदास्रावी निर्झर बन गये हों । उनके अधरोंपर अब अहर्निशि 'सीताराम-सीताराम' रहने लगा था ।

यज्ञशालामें मन्त्र-पाठके अतिरिक्त शान्ति रहने लगी थी । मध्याह्नमें सभा-मण्डपमें सम्राट् सानुज उपस्थित रहते थे, ऋषिगण आते थे, अतः थोड़े वृद्ध नरेश एवं दूसरे अतिथि भी आ जाते थे । अब वहाँ प्रायः किसी पुण्यश्लोक प्राचीन पुरुषका चरित सुनाया जाता था ।

सूत, मागध, बन्दी-जनोंको मना कर दिया गया था । संगीत, वाद्य, अभिनय, नृत्य, सब बन्द हो गये थे । सम्पूर्ण अयोध्या तथा यज्ञशालाके शिविरोंमें उदासी छा गयी थी । केवल यज्ञ चल रहा था, इसलिए कि उसे अपूर्ण छोड़ा नहीं जा सकता था ।

अश्व आ ही गया था । महर्षिकी आज्ञा स्वीकार करके श्रीरामने

ऋत्विक, सभासदोंको पूर्णाहुति करनेका अनुरोध किया । ऋषि-मुनियोंको भी अब यही अभीष्ट था । यज्ञकी शेष आहुतियाँ पूर्ण की गयीं । यजमानने अश्वकी अर्चा सम्पन्न करके उस देवात्मा अश्वको आमन्त्रित किया—'अग्निदेव अब आपके पावन शरीरकी आहुतिसे सन्तुष्ट होना चाहते हैं ।'

अश्वने हिनहिनाकर स्वीकृतिमें सिर हिलाया । वह स्वयं यूपस्थानपर जा खड़ा हुआ । अश्वालम्भनके नामपर यजमानको उसके कण्ठपर खड्गका स्पर्श मात्र करना पड़ा । पशुका पूरा शरीर उज्वल कर्पूरकी राशि बन गया । श्रीरामने उस कर्पूरकी अञ्जलियाँ अग्निदेवको अर्पित कीं ।

यज्ञ पूर्ण हुआ । ऋत्विक, सदस्य एवं आगतोंका पूजन सम्पन्न हुआ अन्तिम देव-पूजनके पश्चात् । सबको दान-सम्मानसे सन्तुष्ट किया गया । गौ, गज, अश्व, भूमि, रत्न, स्वर्ण, अन्न, वस्त्र, आभूषण ब्राह्मणोंको, बन्दीजनोंको—सबको भरपूर प्राप्त हुए । आग्रह करके, अस्वीकार करनेपर भी अत्यधिक दिये गये ।

अवभृथ स्नान भी हुआ सरयूमें । यज्ञीय भस्म सबने सम्पूर्ण शरीरमें मल लिया और स्नान कर लिया—बस । शंख भी बजे और विप्रोंने मन्त्र-पाठ भी किये, इतना और कहा जा सकता है; किन्तु अवभृथ स्नानका उत्साह किसीमें नहीं था । सामान्य जनके यज्ञीय अवभृथ स्नानमें भी वाद्य बजते हैं । नृत्य-गान होता है । स्नानके समय नर-नारी आनन्दमग्न होकर परस्पर जल उलीचते हैं । लेकिन अयोध्याके सम्राट्के अश्वमेध यज्ञका अवभृथ स्नान था, मानो किसी पुण्य पर्वका तीर्थ-स्नान हो । समस्त आगतोंने, पूरी प्रजाने यज्ञ-भस्म लगाकर मौन, शान्त स्नान कर लिया सरयूमें । उल्लास, उत्साह अब कहाँ था अयोध्यामें ।

अवश्य किसीका भी सत्कार करनेमें कोई शिथिलता शासकवर्गकी ओरसे नहीं देखी गयी । स्नानके उपरान्त सबको उत्तम वस्त्र, आभरण, अंगरागादि आदर-सहित राजपुरुषोंने अर्पित किये । सभीको उचित रीतिसे आसन देकर भोजन कराया । पशु-पक्षी तकको भी तृप्त करनेमें कोई शिथिलता कहीं नहीं आयी ।

श्रीराम, उनके सब भाई, सब राजकुमार आगतोंके सत्कारमें लगे रहे ।

महर्षि वशिष्ठ अपने शिष्यों सहित विप्रवर्गका सत्कार कर रहे थे ।

सुपूजित सुरगण सर्वप्रथम विदा हुए । ऋषि-मुनिगण, विप्रवृन्द भी दान-मान प्राप्त करके प्रस्थान करने लगा । बहुत अधिक तपस्वी, मुनिगण जो सरयूतटपर आश्रम बनाकर बस गये थे, जिनको अब स्थायी निवासी माना जाने लगा था, उनमें भी परिव्रजनकी इच्छा प्रबल हो उठी । उन्होंने भी महर्षि तथा सम्राट्से अनुमति माँगी । अब किसीको रोकनेका उत्साह नहीं रह गया था श्रीराममें । जो भी जाना चाहते थे, उन्हें पर्याप्त अधिक दानसे पूर्ण करके विदा देना था । वे भी आशीर्वाद देकर चले गये ।

अयोध्यामें बहुत अधिक कलाजीवी आकर बस गये थे । सहस्रों राजपुरुषोंने स्थायी आवास बना लिये थे । देश-देशके विख्यात वणिकोंने अपने विशाल सदन बनाकर अपने व्यापारका मुख्य केन्द्र स्थापित कर लिया था । सेवा-निपुण वर्गका बहुत बड़ा भाग समस्त भू-मण्डलसे सिमटकर अयोध्यामें आश्रय लेकर रहता था । अब इस श्रेणीके सभी लोगोंको कोई-न-कोई आवश्यक कार्य आ पड़ा था । कोई किसी कारणसे और कोई किसी कारणसे सखेद अन्यत्र जानेकी विवशता अनुभव करने लगा । सम्राट् तथा राजकर्मचारी किसीको कैसे रोकें ?

'अयोध्या आपकी है । आप इच्छानुसार यहाँ आनेको स्वतन्त्र हैं । हमें अवसर मिलेगा तो हम सेवा करनेमें अपना सौभाग्य मानेंगे ।' सविनय यह या ऐसी प्रार्थना करके, विपुल पुरस्कारसे सत्कृत करके सबको विदा देना था ।

अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ तो यज्ञ-भूमि, यज्ञशालाके समीपका शिविर-नगर तो उजड़ ही गया, सरयूतटका बड़ा भाग मुनि-आश्रमोंसे सूना हो गया । नगरके आधेसे अधिक सदन सूने हो गये ।

●●●

कालपुरुष पधारे

'अवतार-काल पूर्ण हो गया पृथ्वीपर श्रीरामका ।' देवताओंने ब्रह्मलोक जाकर भगवान ब्रह्मासे प्रार्थना की—'उन सर्वेश्वरेश्वरके पृथ्वीपर रहनेसे समस्त सुरोंका वहाँ सम्मान समाप्त हो गया है । हमारी पूजा केवल औपचारिक रह गयी है । सब मानव प्रायः निष्काम हो गया है । वे धर्माचरण, यज्ञादि करते हैं; किन्तु उसका फल वे श्रीरामार्पण कर देते हैं । सुरोंको केवल औपचारिक आहुतियाँ प्राप्त होती हैं । कोई हमारा स्मरण नहीं करता ।'

सुरोंपर संकट था राक्षसोंके प्रबल होनेपर । रावणके अत्याचारसे संत्रस्त होकर सृष्टिकर्त्ताकी शरण गये थे । तब ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर परात्पर पुरुष पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए । दशग्रीवको मारकर उन्होंने सुरोंका संकट समाप्त कर दिया । अब सुरोंका स्वार्थ इसमें था कि वे सर्वेश्वरेश्वर पृथ्वीपर अपने प्रकट रूपका तिरोभाव करके स्वधाम पधारें । उनके पृथ्वीपर रहते सुरोंको कौन पूछे ? अब सुरोंका सम्मान संकटमें पड़ गया था । वे पुनः सृष्टिकर्त्ताकी शरण आये थे । क्योंकि दशग्रीवसे वे भयभीत थे तो श्रीरामकी उपस्थितिमें भी कोई दुस्साहस नहीं कर सकते थे ।

राक्षसोंने यज्ञ, देवाराधन, पितृ-तर्पणादि प्रतिबन्धितत कर दिया था । देवता दुर्बल हो रहे थे यज्ञ-भागके बिना । पितरोंको श्राद्ध-तर्पण अप्राप्य हो गया था । अब पितर परम सन्तुष्ट थे । उनको कव्य सविधि श्रद्धा-समेत मिल रहा था, किन्तु सुरोंको आहुतियाँ पानेपर भी सन्तोष नहीं था । मानवने उनकी अपेक्षा करना बन्द कर दिया था । उनकी मनौती करना तो दूर, वे-मनसे भी कोई उन्हें पुकारता नहीं था । केवल कर्त्तव्य मानकर, शास्त्र-विधानके कारण जो आहुतियाँ मनुष्य दे रहे थे—सब दे रहे थे, नियमपूर्वक दे रहे थे, बहुत अधिक दे रहे थे; किन्तु श्रद्धासे सन्तुष्ट होने वाले देवताओंको ये आहुति-भाग—हव्य कैसे रुच सकते थे ? कठिनाई यह थी कि उन्हें अस्वीकार भी नहीं किया जा सकता था । आपको बलात्—धमकी देकर स्वादिष्ट ही भोजन कराते रहा जाय तो आपकी क्या अवस्था होगी ? इस संकटसे परित्राण पानेके लिए देवता भगवान् हंस-वाहनकी शरण गये थे ।

सृष्टिमें एक ही गुणका स्थिर प्राबल्य अव्यवस्था उत्पन्न करता है, इस तथ्यको सृष्टिकर्तासे अधिक कौन समझता। श्रीरामके धरापर रहते तो पृथ्वीपर सत्त्वगुणका प्राबल्य रहना ही था। अतः पद्मसम्भवने कालका स्मरण किया— कालाधिदेवताका।

भयानकताकी चरम सीमा काल। देवता समझ ही नहीं सके कि ब्रह्माजी उनकी प्रार्थना सुनकर उनके अनुकूल कुछ करना चाहते हैं या रुष्ट होकर दण्ड देना चाहते हैं। वे इधर-उधर भागने-छिपने लगे। स्वयं सृष्टिकर्ता भी भयसे काँप उठे कालाधिदेवताको देखकर। उस अकल्पनीय भयानक रूपका वर्णन सम्भव नहीं है। ब्रह्माने किसी प्रकार केवल सम्बोधन किया—'भगवन्!'

'तुमने मुझे क्यों स्मरण किया है?' उन कालपुरुषने पूछा। वे बोले तो लगा, ब्रह्माण्ड फट जायेगा।

'इसलिए कि आप श्रीरामके समीप अयोध्या जावें।' कम्पित स्वरमें चतुर्मुख हंसवाहनने कह दिया। अब उन्हें अपनी भूल ज्ञात हो गयी थी। इन कालपुरुषका आवाहन करके अच्छा नहीं किया उन्होंने। अब किसी प्रकार इनको अपने समीपसे टालना था। जो चाहे जब समूची सृष्टि और सृष्टिकर्त्ताको भी मुखमें रखकर निगल ले सकता है, उसका समीप रहना किसे सह्य होगा?

'क्या?' काल चिल्लाया। वह भी भयसे सिहर उठा—'तुम जानते हो कि वे परात्पर पुरुष अकाल पुरुष हैं। मैं उनकी छायाका भी स्पर्श नहीं कर सकता। उनके आश्रितोंसे मैं डरता-बचता भागता हूँ और तुम मुझे उन कालातीत, कालके कारणके समीप भेजना चाहते हो? मेरा उपहास करते हो?

क्रुद्ध कालके सम्मुख पद्मसम्भवने अपने सब हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए प्रार्थना की—'भगवन्! केवल यह उन्हें सूचित करनेके लिए कि उनका अवतार-काल पूर्ण हो चुका है, आपसे प्रार्थना करनेकी मैंने धृष्टता की है। दूसरा कोई यह प्रार्थना भी वहाँ करनेका साहस नहीं करता है।'

'एवमस्तु!' ब्रह्माको वरदान देनेके ढंगपर कहकर जब कालपुरुष अदृश्य हो गया, तब कहीं सृष्टिकर्त्ताका शरीर-कम्प विरमित हुआ। सुर आश्वस्त होकर स्वर्ग लौट गये।

'एवमस्तु!' कालने कह तो दिया था; किन्तु वह स्वयं चिन्तित हो गया—'अयोध्या वह जाय भी तो उसका कुछ प्रभाव पड़ेगा? उसका प्रभाव

ही न पड़े तो निष्प्रभाव कालकी महत्ता ?'

काल केवल दारुण, भयानक ही नहीं है। कालका भव्य रूप भी है। वह अतिशय सुन्दर भी है। अपने भयावह रूपसे वह अयोध्याको प्रभावित नहीं कर सकता; किन्तु भव्य रूपसे तो कर ही सकता है।

महर्षि वशिष्ठ तथा दूसरे लक्षणज्ञ ऋषि-मुनि चौंके। श्रीराम चौंके और उनके अनुज भी चौंके। जो भी प्रकृति-विपर्ययका परिणाम समझ सकते थे, सब चौंके। केवल अज्ञ, बालबुद्धि लोग प्रसन्न हुए। वृक्षोंमें शिशिरका पतझड़ प्रारम्भ हुआ था, उसी समय पुष्प और फल एक साथ आ गये। सरयूके सुप्रवाहित जलमें इस शीत कालमें राशि-राशि पद्म पुष्प प्रकट हो गये। शरीर-कम्प उत्पन्न करनेवाले शीतके स्थानपर वसन्तके समान सुखद वायु चलने लगी। पशु बिना ऋतुके ही मदनोन्मत्त हो गये और पक्षियोंने नीड़-निर्माण प्रारम्भ कर दिया।

अकालका यह पुष्पोद्गम, फल-प्रसव, पशु-पक्षियोंमें प्रकृति-प्रतिकूल परिवर्तन बड़े अनर्थका पूर्वाभास है। इसे देखकर श्रीरामके अधरोंपर स्मित आया। यह भी स्वयंमें एक अद्भुत विपर्यय था। भगवती भूमिजाके भू-प्रविष्ट होनेके पश्चात् श्रीरघुनाथका स्वभाव ही अत्यन्त गम्भीर हो गया था।

काल आया। अयोध्यामें अकाल पुरुषके समीप तो वह अपने रूपमें आ नहीं सकता था। उसने ऋषि-रूप धारण किया और श्रीरामके राजभवनके द्वारपर पहुँचा। राजभवनमें कभी ऋषि-मुनि तथा विप्रोंके प्रवेशपर प्रतिबन्ध नहीं था। जबसे भगवती सीता अयोध्यासे गयी थीं, श्रीरामने अपने अन्तःपुरके एकान्त कक्षको भी सबके अबाध प्रवेशके लिए उन्मुक्त कर दिया था। लेकिन कालका साहस स्वयं भीतर पद रखनेका नहीं हुआ।

'सम्राट्से निवेदन कर दें कि महर्षि अतिबलका एक शिष्य उनके दर्शनार्थ उपस्थित हुआ है।' लक्ष्मणको द्वारपर देखकर उसने प्रार्थना की।

'आप पधारें।' लक्ष्मणने सविनय कहा—'किसी तपस्वीको यहाँ पूर्वानुमति नहीं लेनी पड़ती।'

'आप आज्ञा ले लें।' कालने अनुरोध किया।

लक्ष्मणको यह आगतकी अत्यन्त विनम्रता प्रतीत हुई। वे अग्रजके समीप गये—'एक तरुण ऋषि आये हैं। अयोध्यामें उन्हें पहिले कभी देखा

नहीं गया । उनका वेश सौम्य है, विनम्र हैं; किन्तु पता नहीं क्यों, उनमें एक अन्तर्हित उग्रता, भयानकता मुझे प्रतीत होती है । उनके सामीप्यसे अरुचि होती है । वे आपका दर्शन करनेको उत्सुक हैं ।'

'वे कोई भी हों, सादर ले आओ ।' श्रीरामने सहज भावसे अनुमति दे दी । लक्ष्मणको आश्चर्य नहीं हुआ कि आगत ऋषिने आते ही मस्तक झुकाया । उनके इन सर्वलोकेश्वरेश्वर सम्राट्के सम्मुख सुर, ऋषि सब शीश झुकाते हैं ।

'मैं अर्ध्य स्वीकार करने योग्य नहीं हूँ ।' कालने श्रीरामको उठकर अर्घ्य उठाते देखकर कहा—'ऋषि अतिबलका सन्देश लाया हूँ । मुझे शीघ्रता है लौटनेकी; किन्तु सम्राट्से एकान्तमें ही वह सन्देश कह सकता हूँ । मुझे अखण्ड एकान्तका आश्वासन अपेक्षित है कुछ क्षणोंके लिए ।'

यह प्रार्थना भी अस्वाभाविक नहीं थी । जिस अन्तःपुरमें ऋषि-मुनि, तपस्वी मात्रके लिए प्रवेश अनिर्बाध था, वहाँ कोई सेवक, स्वजन कभी आ सकता था ।

'लक्ष्मण ! तुम द्वारपर रहो ।' सम्राट्ने आदेश दिया—'अनुमतिके बिना कोई प्रवेश करेगा तो मुझसे प्राणदण्ड प्राप्त होगा ।'

'आप आसन ग्रहण करें ! सन्देश सुनावें !' लक्ष्मणके चले जानेपर श्रीरामने विनयके साथ कहा ।

'आप विराजें । मैं काल हूँ—अतिबल काल । आपके सम्मुख आसन नहीं ग्रहण कर सकता ।' अब कालपुरुषने पदोंमें प्रणत होकर प्रार्थना की—'सृष्टिकर्त्ताने मुझे सूचित करनेका आदेश दिया है कि आपका अवतार-काल पूर्ण हो गया ।'

'आपकी धरापर उपस्थितिके कारण इन्द्र न अवर्षण कर सकते, न अतिवृष्टि । वायु न अन्धड़ चला सकते, न बन्द हो सकते । अग्नि, वरुणादि भी विवश हैं । मैं भी निष्प्रभाव हो गया हूँ ।' कालने संकोचपूर्वक कहा—'मर्त्यलोककी मर्यादा सम-रसता, स्थिर सत्त्वगुण नहीं है । समय तो आपके लीला-संवरणका हो गया है, अब आप समर्थ हैं, जैसा उचित समझें ।'

'मुझे तुम्हारी बात उचित लगती है ।' मर्यादापुरुषोत्तमने स्वीकार कर लिया ।

●●●

लक्ष्मण-त्याग

'अभी मुझे श्रीरामके समीप पहुँचना है ।' अचानक महर्षि दुर्वासा आ पहुँचे । उन्होंने लक्ष्मणसे पूछा—'राम अपने कक्षमें हैं ?'

'हैं भगवन्; किन्तु किसीको भीतर जानेका आदेश नहीं है ।' लक्ष्मणने हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर विनयपूर्वक कहा, लेकिन द्वार रोके स्थिर खड़े रहे—'सम्राट् किसी ऋषिसे एकान्तमें कुछ वार्ता कर रहे हैं ।'

'जिसके समीप पहुँचनेमें विप्रोंपर, तपस्वियोंपर, ऋषि-मुनियोंपर भी प्रतिबन्ध हो, उस राजा और राजकुलको धरापर रहनेका कोई अधिकार नहीं ।' दुर्वासाने क्रोधसे काँपते उच्च स्वरमें कहा—'अविलम्ब रामको मेरे आनेकी सूचना दो । अन्यथा मैं इसी क्षण शाप देकर अयोध्याको भस्म कर दूँगा ।

दुर्वासाजीको कोई ऐसा प्रयोजन नहीं था कि दूसरा कोई उसे पूरा न कर देता; किन्तु ये क्रोधमूर्ति किञ्चित् भी प्रतिवाद सहन नहीं कर पाते । वे कहीं जाना चाहते हैं, किसीसे मिलना चाहते हैं तो कोई उन्हें रोकनेका साहस करे, यह असह्य है उन्हें ।

सामान्य नियम है कि आस्तिक वैदिक धर्ममें आस्थावान शासकके समीप विद्वान ब्राह्मण, ऋषि-मुनि, तपस्वी तथा आपद्ग्रस्त आश्रयार्थीके पहुँचनेपर कभी प्रतिबन्ध नहीं होता । वह बिना पूछे भी शासकके अन्तःपुरमें पहुँच सकता है । प्रतिहार केवल शासकको सूचना दे सकता है । यदि शासक स्नान, भोजनादि किसी ऐसे कार्यमें है, जहाँ उसे एकाकी अथवा केवल पत्नीके साथ होना चाहिये, तो भी आगतको अन्तःपुरमें लाकर आदर-सहित आसन देकर तब प्रतीक्षा करनेको कहना उचित है । दुर्वासाजीको द्वारपर ही रोक दिया गया, यह सामान्य शिष्टाचारके भी अनुककूल नहीं था । इसलिए भी वे क्रुद्ध हो उठे ।

अत्रिपुत्र दुर्वासा साक्षात् भगवान शिवके अंश, उन रुद्रके अवतार हैं । ये सर्वज्ञ जानबूझकर ही ऐसे अनवसरमें आ धमके थे । इन्हें तो श्रीरामको कालको दिये गये वचनको पूर्ण करनेका अवसर देना था ।

'सम्पूर्ण अयोध्या, सब राजकुल ऋषिके शापसे भस्म हो जाय, इसकी अपेक्षा आत्मोत्सर्ग करना श्रेयस्कर है ।' लक्ष्मणने क्षणार्धमें निश्चय कर लिया । जानते थे कि दुर्वासाको शाप देते देर नहीं लगती । जो स्वयं नारायण तकको शाप देनेमें संकोच नहीं करता, वह यहाँ हिचकेगा ? अतः लक्ष्मणने मस्तक झुकाये कक्षमें प्रवेश किया ।

लक्ष्मणके पहुँचते ही कालने सिर झुकाया । लक्ष्मणकी ओर कुछ हँसकर देखते हुए अदृश्य हो गया । श्रीरामने अब भाईकी ओर देखा ।

'महर्षि दुर्वासा द्वारपर उपस्थित हैं ।' लक्ष्मणने निवेदन किया—'वे अविलम्ब आपका दर्शन चाहते हैं ।'

श्रीराम तत्काल उठे और द्वारपर आकर महर्षि दुर्वासाके पदोंमें प्रणाम किया । दुर्वासाजी जहाँ अद्वितीय क्रोधी हैं, वहीं क्षणार्ध-मन्यु हैं । इन्हें दूसरे ही क्षण प्रसन्न होते, दयालु बनते देखा जाता है । श्रीरामको देखते ही सुप्रसन्न बोले—'राम ? मैं बहुत क्षुधार्त हूँ । अनेक दिनोंसे उपोषित हूँ । शीघ्र पायस खिलाओ ।'

'भगवन् ! भीतर पधारें ।' श्रीरघुनाथने सादर ऋषिको लाकर आसन दिया । मधुर पायस परसा अपने करोंसे । दुर्वासाजीने भरपेट भोजन किया । आचमन करके, आशीर्वाद देकर विदा हो गये ।

दुर्वासाके चले जानेपर श्रीराम अपने कक्षमें आये । अब तक लक्ष्मण मस्तक झुकाये, स्तब्ध, स्थिर खड़े थे वहीं । श्रीरघुनाथके आते ही उनके चरणोंपर मस्तक रखकर उठ खड़े हुए । हाथ जोड़कर बोले—'आर्य ! मैंने आज्ञा भंगका अपराध किया है ।'

'लक्ष्मण ! अपने अत्यन्त प्रियजनका परित्याग ही उसका वध है ।' श्रीरामका स्वर जैसे कहीं दूरसे आ रहा हो । जैसे वे सबसे—अपने-आपसे भी तटस्थ बोल रहे हों—'मैंने तुम्हारा त्याग किया । अब तुम कहीं जाने, रहने अथवा कुछ भी करनेको स्वतन्त्र हो । केवल रामके सम्मुख अब मत आना ।'

'जो आज्ञा आर्य !' मृत्यु-दण्ड स्वीकार करने वाले अपराधीका स्वर भी इतना शीतल—भयावह शीतल सम्भव नहीं है ।

श्रीरामके चरणोंसे पृथक् लक्ष्मणके जीवनकी कल्पना ही सम्भव नहीं। सौमित्रके दृगोंसे अश्रु नहीं निकले। कण्ठसे कोई क्रन्दन नहीं फूटा। शोक तथा भयका सीमातीत हो जाना स्थैर्य बन जाता है। लक्ष्मणने मुकुट उतारकर केशोंको उन्मुक्त कर दिया। धनुष, त्रोण, खड्ग शरीरसे पृथक करके धर दिये वहीं। सब आभूषण उतार दिये। केवल कटिवस्त्र, उत्तरीय एवं यज्ञोपवीत रह गया उनके अंगोंपर। मस्तक झुकाये, मौन वे उस कक्षसे निकले। बिना किसीकी ओर देखे चलते गये।

लक्ष्मणको उस अवस्थामें जाते जिसने भी देखा, हतप्रभ रह गया। किसीकी पुकारका कोई उत्तर नहीं। किसीकी ओर देखना नहीं। लक्ष्मण सीधे राजपथसे होते सरयूतट पहुँचे और सलिलका स्पर्श करके वहीं स्थिर आसन लगाकर बैठ गये।

निखिल साधन-निर्देशक, सकल जीवैक-परमाचार्य, उन श्रीअनन्तको कुछ करने—कोई साधन करनेकी आवश्यकता थी ?

अयोध्याके राज-पथसे लक्ष्मण आये थे। अनेक लोगोंने उन्हें देखा था। नगरमें कोलाहल मच गया था—'कुमार लक्ष्मण पैदल, बिना पाद-त्राण, निराभरण, मौन जा रहे हैं। निर्वासितकी भाँति, सर्वत्यागी परम-पथ-गामीकी भाँति जा रहे हैं। ऐसे जा रहे हैं, जैसे उन्होंने वीर सन्यास व्रत१ स्वीकार कर लिया हो।'

असंख्य लोगोंका समुदाय अपना सब काम त्यागकर दौड़ पड़ा था लक्ष्मणके पीछे; किन्तु लक्ष्मण ऐसे गये थे, जैसे वे न कुछ सुनते हों और न कुछ देखते हों। 'क्या हो गया ?' सबके हृदयमें एक ही प्रश्न; परन्तु इसका उत्तर कहीं नहीं था।

सबने स्तब्ध होकर दूरसे देखा—'सरयू-तटपर लक्ष्मणके बैठते ही एक असह्य शत-सहस्र सूर्योंके समान ज्योति प्रकट हुई। सबके नेत्र झपक गये।

---

१. पाण्डवोंका महाप्रस्थान 'वीर सन्यास व्रत' था। क्षत्रिय देहत्यागका निश्चय करके, अन्न-जल त्यागकर मौन होकर उत्तर चल दे और जहाँ गिरना हो, शरीर गिर जाय, इसका नाम वीर सन्यास है।

कठिनाईसे किसीने किञ्चित् लक्षित किया कि दुग्ध-श्वेत, सहस्रफणा भगवान शेष जैसे प्रकट हुए हों और तत्काल सरयू-जलमें अदृश्य हो गये हों ।

उस अलौकिक ज्योतिके अदृश्य हो जानेपर जब लोग सावधान हुए, सरयू-तटपर लक्ष्मणके शरीरका कहीं कोई चिन्ह नहीं था । अब उस स्थानकी रज मस्तकपर चढ़ाकर रुदन करते लौटनेके अतिरिक्त किसीके समीप कोई उपाय नहीं था । सबको लौटाकर अपने सम्राट् तक भी तो यह समाचार पहुँचाना था ।

x x x x

'वधू ! तुमने सुना ?' सेविका दौड़ती, क्रन्दन करती लक्ष्मणके अन्तःपुरमें पहुँची । उसने लक्ष्मणको श्रीरामके कक्षसे निकलकर जाते देख लिया था । उर्मिलाको समाचार देने दौड़ी गयी थी ।

'आज मैं सब सुननेको प्रस्तुत हूँ । मेरे सब दक्षिणांग स्फुरित हो रहे हैं । समझती हूँ, तू मेरे स्वामीके सम्बन्धमें कुछ अमंगल-समाचार ले आयी है ।' उर्मिलाने स्थिर-शान्त स्वरमें कहा—'सुना दे । मैं प्रस्तुत हूँ । हिचकने और आकुल होनेकी आवश्यकता नहीं है ।'

'उन्होंने तुमसे मिलना भी आवश्यक नहीं माना ?' दासी क्रन्दन करती बतला गयी—'वे किसीकी पुकार नहीं सुन रहे थे ।'

'वे चले गये ?' उर्मिलाके मुखसे केवल इतना निकला । उन्होंने अपने दक्षिण करकी ओर देखा । उसमें पड़ा रत्न-कंकण अभी इसी क्षण शब्द करता टूटकर गिर पड़ा था—'स्वामी ! यह दासी शीघ्र आ रही है ।'

वहीं बिना किसी आस्तरणके वहीं भूमिपर उर्मिला स्थिर बैठ गयी । उनके नेत्र बन्द हो गये । उनका शरीर निस्पन्द होने लगा । उनके मुखमें शत-शत चन्द्रोज्ज्वल ज्योत्स्ना फूट पड़ी ।

●●●

पुत्रोंका अभिषेक

'आञ्जनेय ! सभी राजकुमारोंको यहाँ बुला लो !' लक्ष्मण जैसे ही कक्षसे निकले, श्रीरामने हनुमानका स्मरण किया । उनके उपस्थित होते ही आदेश किया—'सब अपने धनुष, त्रोण तथा शस्त्रोंसे सज्जित होकर आवेंगे, सुमन्त्रको कह दो कि इन सब कुमारोंके रथ, यात्राकी पूरी सज्जाके साथ द्वारपर उपस्थित रहेंगे । इनके तिलककी सामग्री उपस्थित करो ।'

अत्यन्त गम्भीर, अस्वाभाविक स्वर-भंगी, आज श्रीरघुनाथथकी ओर देखना हनुमानको भी कठिन लग रहा था । लक्ष्मणको निकलते उन्होंने देख लिया था । वे ज्ञानियोंमें अग्रगण्य—शोक उनका स्पर्श नहीं करता । उनके हृदयसे उनके ये आराध्य कहीं जा नहीं सकते । अतः क्या होने जा रहा है, इसे भली प्रकार समझते हुए भी वे शान्त बने रहे । उन्होंने आज्ञा-पालन किया ।

सभी कुमारोंने आकर सम्राट्के चरणोंमें प्रणिपात किया । आज उन्हें श्रीराघवेन्द्र स्नेहशील पिता या पितृव्य नहीं, सम्राट्—अनन्त ऐश्वर्य-सम्पन्न सम्राट् ही प्रतीत हो रहे थे । ऐसे सम्राट् जिनके सम्मुख मुख खोलनेका साहस कोई स्वजन भी नहीं कर सकता ।

'कोई कुछ नहीं पूछेगा । कोई अस्वीकार नहीं करेगा । केवल सुनो और आज्ञा-पालन करो ।' श्रीरामने कुमारोंकी ओर देखा—'क्षत्रिय-बालकमें धैर्य, पौरुष, पराक्रम नहीं है तो उसका जीवन व्यर्थ है । इक्ष्वाकुवंशका बालक सहायकोंकी अपेक्षा नहीं करता । उसका सहायक उसका धनुष है । नवीन राज्यकी स्थापना वह अपने धनुषके बलपर कहीं भी कर ले सकता है ।'

राजकुमारोंने एक दूसरेकी ओर देखा । उनके मुखोंपर तेज आया । उनकी दृष्टि कहती थी—'सम्राट् यदि परीक्षा लेना चाहते हैं तो हम प्रस्तुत हैं । अरण्य, पर्वत, हिमप्रदेश, मरुभूमि, कहीं भी दुर्गम प्रदेशमें एकाकी जाकर हम राज्य-स्थापन करके उसे सम्राट्के चरणोंमें समर्पित करनेको उद्यत हैं ।'

राजकुमोंने कहा कुछ भी नहीं; किन्तु उनके मुखोंपर आत्म-विश्वासकी दृढ़ता स्पष्ट थी । वे एकाकी प्रवासके लिए प्रस्तुत हो चुके थे । अवश्य उन्हें

कल्पना नहीं थी कि यह अयोध्यासे उनकी अन्तिम विदा है ।

'कुश ! अयोध्याका यह राज्य तुम्हारा है । ये सब तुम्हारे अनुज तुम्हारा अनुवर्तन करेंगे ।' श्रीरामने कुशको संकेत करके तिलक किया । उनकी कटिमें स्वकरोंसे खड्ग बाँधकर बोले—'किन्तु तुम्हें कुछ दिनोंके लिए यहाँसे पृथक जाकर अपने नामसे नगर बसाना है ।'

'लव ! अयोध्याके समान ही अवन्तिका मोक्षदापुरी है ।' लवको तिलक करके सम्राट्ने कहा—'तुमको उस भगवान महाकालकी पुरीका पालन करना है ।'

'तक्ष ! तुम भारतके उत्तरीय प्रदेशमें अपने नामसे नगर स्थापित करोगे ।' तक्षशिलाकी स्थापनाका आदेश था यह ।' 'तुमको शक्तिशाली, स्वाभिमानी उत्तरापथका प्रशासन करना है ।'

'पुष्कर ! तुम भी अपने नामसे ही नगरकी नींव डालो ।' भरतके दूसरे पुत्रका तिलक करके सम्राट्ने कहा—'मध्य भारतके किञ्चित् दक्षिणका क्षेत्र तुम्हारा । तुम भगवान ब्रह्माके प्रिय स्थान पुष्करको भी राजधानी बना सकते हो ।'

लक्ष्मणके बड़े पुत्र अंगदको अंग, बंग, कलिंगका आधिपत्य देकर श्रीरामने तिलक किया । लक्ष्मणके दूसरे पुत्र चित्रकेतुको कारापथ (वर्तमान बलोचिस्तान) का शासक नियुक्त किया ।

'वत्स सुबाहु ! कुमार शत्रुघ्नने मधुपुरीका शासक बनाया है तुम्हें । मैं उसकी स्वीकृति देता हूँ ।' यही स्वीकृति श्रुतसेनको भी प्राप्त हो गयी । श्रीरामने इन दोनों कुमारोंका भी अपने करोंसे अभिषेक किया । सबकी कटिमें अपने करोंसे खड्ग बाँधे ।

'किसीसे विदा लेना आवश्यक नहीं है ।' तिलक करनेके पश्चात् सम्राट्ने स्पष्ट आदेश किया—'तुम्हारे स्यन्दन राजद्वारपर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं । तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र तुम्हारे समीप हैं । तुममें-से प्रत्येकको एकाकी यात्रा करना है । तुम्हारा पौरुष तुम्हें पुकार रहा है । अभी अविलम्ब प्रस्थान करना है तुम्हें ।'

श्रीरघुनाथ नहीं चाहते थे कि अभी-अभी अयोध्यामें जो कुछ हो चुका है अथवा जो कुछ होने जा रहा है, उसे जानकर ये बालक दुःखी एवं हतोत्साह हों। अभी इनमें किसीको लक्ष्मणके नगरसे जाने अथवा उर्मिलाकी स्थितिका पता नहीं था। अब यदि ये तनिक भी रुकते हैं, किसीसे भी मिलते हैं तो इनका कोमल हृदय इन्हें अत्यन्त कातर बना देगा।

'तुम्हारे अग्रजोंको जो सौभाग्य प्राप्त नहीं है, उसका उपभोग करनेका उत्साह उचित नहीं है।' श्रीरामने लव-कुशकी ओर संकेत करके अन्य कुमारोंको कह दिया—'माताओंसे, अपने पितृ-चरणोंसे भी तुम्हें कुछ कहना नहीं है। किसीसे विदा नहीं लेनी है। अयोध्यामें अब किसीसे कोई बात नहीं करनी है। तुम अविलम्ब प्रस्थान करो। तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो।'

राजकुमारोंमें उत्साह था। उनकी कल्पना थी कि उनके ये परमादरणीय सम्राट् उन्हें अपनी योग्यता प्रकट करनेका अवसर देकर उनकी परीक्षा लेना चाहते हैं। सचमुच जब लव-कुशको प्रस्थानसे पूर्व मातृ-पद-वन्दनका सुयोग नहीं प्राप्त हो सकता तो उन्हें भी यह त्याग करना चाहिये। पितृ पद-वन्दनकी आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि सबमें जो श्रेष्ठतम है, सबके पूजनीय हैं, उनकी आज्ञा तथा आशीर्वाद प्राप्त ही हो चुका।

अयोध्यामें किसीसे मिलने अथवा किसीसे कुछ कहनेकी कोई उत्सुकता कुमारोंमें नहीं थी। उनको परस्पर भी पृथक होना है, यह भी खेदकी बात नहीं थी। यह तो प्रत्येकको पृथक-पृथक अपने पौरुषको प्रकट करनेका अवसर प्राप्त हुआ था। सबने भूमिष्ठ होकर श्रीराघवेन्द्रके चरणोंमें प्रणाम किया। उनकी प्रदक्षिणा की। उस कक्षसे निकलकर वे सीधे राजभवनके द्वारपर गये और अपने रथोंमें बैठ गये। रथके अश्व, सारथि—बस यही अब उनके साथी थे। उनके साथ कोई सेवक, सैनिक अथवा धन-रत्न नहीं दिया गया था। राजकुमारोंमें किसीको इसकी अपेक्षा नहीं थी। उन्होंने रथमें बैठते ही सारथियोंको रथ हाँक देनेकी आज्ञा दी।

'सुमन्त्र खड़े देखते रहे एक ओर तटस्थ। अयोध्याके आठों राजकुमारोंके रथ उनके सम्मुखसे चले गये। आज पहिली बार किसी राजकुमारने उन्हें प्रणाम नहीं किया था। किसीने उनसे कुछ पूछा नहीं था। जैसे उनको

देखा ही न हो । अयोध्यामें आज यह ऐसी घटना प्रथम बार हुई, जिसके सम्बन्धमें महामन्त्रीको कुछ पता नहीं था । अयोध्याके साम्राज्यके परम सञ्चालक महामन्त्री नहीं जानते थे कि अयोध्याके आठों राजकुमार कहाँ जा रहे हैं ।

एक साधारण अतिथि अयोध्यासे विदा होता था तो उसे अपार अन्न, धन, वस्त्राभरण, अश्व, गज, रथ, गायें, सेवक, सेविकाएँ देकर विदा किया जाता रहा है । अयोध्याका साधारण नागरिक भी कहीं बाहर जाता है तो उसका रथ-वस्त्रादिसे भरा जाता है । भले वह दो घटी ही-मैं लौटने वाला हो; किन्तु मार्गमें वह मिलनेवाले विप्रोंको, याचकोंको दान करता चलता है । महामन्त्री समझ नहीं पा रहे थे कि अयोध्याके सब राजकुमार इस प्रकार कहीं क्यों भेजे जा रहे हैं कि उनके रथोंमें उनके अपने वस्त्र-शस्त्रोंके अतिरिक्त कुछ रखनेका आदेश नहीं था ।

अयोध्याके नागरिक अभी लक्ष्मणकी स्थिति देखकर लौटे ही थे अथवा किसीसे सुन रहे थे । वे अपनी व्याकुलताको सम्हाल नहीं पा रहे थे । इसी समय आठों राजकुमारोंके आठ रथ उनके सामनेसे दौड़ते निकले । नागरिक कुछ नहीं समझ सके; किन्तु उनको चौंकानेके लिए इतना तथ्य पर्याप्त था कि किसी रथके साथ कोई अश्वारूढ़ अथवा पदाति पार्श्व-रक्षक नहीं था । कोई आखेट-सहायक भी नहीं । सबके हृदय धक्से रह गये—'अयोध्याकी आशाके ये आधार-स्तम्भ एक साथ कहाँ जा रहे हैं इस प्रकार ?'

आठों रथ एक साथ अयोध्याके नगर-द्वारसे बाहर हुए । एकक्षणको रुके । रथारोहियोंने परस्पर अभिवादन किया और रथ विभिन्न दिशाओंमें दौड़ने लगे । वे दूर—अयोध्यासे दूर होते चले गये ।

●●●

आञ्जनेयको आदेश

'अविदित तुमको कुछ नहीं है । तुम जानते हो कि अब मुझे इस व्यक्त लीलाको अव्यक्त करना है । देवता और सृष्टिकर्त्ता भी चाहते हैं कि मैं धरापर-से इस व्यक्त रूपका उपसंहार करूँ ।' श्रीरामने राजकुमारोंके जानेके पश्चात् पवनपुत्रको समीप बुलाया । जब वे पादपीठके पास बैठ गये, अत्यन्त स्नेहपूर्वक बोले—'हनुमान ! तुम्हारे एक-एक उपकारोंका भी ऋण चुकाना मेरे लिए सम्भव नहीं है । तुम क्या चाहते हो, बिना संकोच सूचित करो । तुम्हारी इच्छा राम अवश्य पूर्ण करेगा ।'

'आपके इन श्रीचरणोंमें अविचल अनुरक्ति रहे ।' हनुमानने चरण-कमलोंको अञ्जलिमें ले लिया—'आपका नाम मुखमें बना रहे और आपकी भुवनपावनी कथा सुननेको मिलती रहे ।'

'तुमने स्वयं माँगा है कि जबतक पृथ्वीपर मेरी कथा रहे, तब तक तुम यहाँ रहो ।' भगवती भूमिजाके भू-प्रविष्ट होनेके पश्चात् इस समय श्रीरघुनाथका श्रीमुख शान्त, प्रसन्न दीखा था । ये भक्तवत्सल किसी प्रेमी-प्राणको पाकर सब कुछ भूल जाते हैं । भक्ताग्रगण्य श्रीकेशरीकुमारके समीप इन्हें और कुछ स्मरण नहीं आ सकता था । सुप्रसन्न कह रहे थे—'तुम्हारे लिए तो सीता कभी अदृश्य नहीं हुई और न राम ही तुमसे अदृश्य रह सकता है । तुम्हारे हृदयमें हम नित्या आसीन हैं । तुम जब चाहोगे, जिसके लिए चाहोगे, उसके लिए भी हम प्रत्यक्ष होंगे ।'

'मेरे स्वामी !' पवनकुमारका प्रत्येक रोम प्रेमसे पुलकित हो उठा । उनके नेत्र-सलिलसे श्रीरघुनाथके पादारविन्द प्रक्षालित होते रहे । वाणी गद्गद् होनेसे बोला नहीं गया ।

'हनुमान ! मेरी भी यही इच्छा है कि तुम मेरे भक्तोंकी रक्षाके लिए, उनकी सहायताके लिए, उनको मेरी प्राप्ति सुगम करनेके लिए इस पृथ्वीपर रहो ।' श्रीरामने अपना कर-पंकज पवनकुमारके मस्तकपर रखा—'तुम्हारा स्मरण लोगोंके सब भय, संकटको विनष्ट करता रहेगा ।'

'आगे द्वापरके पश्चात् अत्यन्त कठिन कलियुग आवेगा । मानव अल्पप्राण, हीन-संकल्प, अल्पायुष, अधर्मरत, अपवित्र रहन-सहनवाले हो जायेंगे । करुणासिन्धुका स्वर भर आया—'वे रोग-शोक, आधिव्याधिसे उपद्रुत ही रहेंगे । भय-ताप उन्हें कभी विश्राम नहीं देंगे । मेरा नाम, मेरी कथा ही उनका एकमात्र आधार रह जायेगी । दूसरा कोई साधन सम्भव नहीं रहेगा । उस समय उन अबल, अनाश्रित, संतप्त प्राणियोंकी सहायता तुम्हीं कर सकते हो ।'

'कलि व्याधि-बहुल, कलह-बहुल युग है । प्रेत-पिशाच, पितर-देवता, ग्रहादि सब स्वार्थ-परायण, धर्म-विमुख मानवको उत्पीड़ित करेंगे ।' जैसे श्रीरघुनाथ कहीं दूरके दृश्य स्पष्ट देखते बोल रहे हों—'मानव न प्रारब्धपर विश्वास करेगा, न ईश्वरीय विधानपर । धर्मपर नहीं, पापपर आस्था हो जायेगी उसकी । पुरुषार्थके नामपर असत्य, दम्भ, छल-कपट, परोत्पीडनमें अपना चातुर्य समझेगा । ऐसे हीन-सत्व मानवकी रक्षा तुम्हीं कर सकोगे । तुम उसे सब बाधाओंसे बचानेमें समर्थ हो ।'

'अल्प-प्राण, अल्प-बुद्धि, अशुद्धाचरण, अपवित्र वस्तु व्याप्त समाजमें रहने वाले मनुष्यसे यज्ञ, धर्म, तप, दान, ध्यान कुछ सम्भव नहीं रहेगा ।' खिन्न स्वर हो गया मर्यादापुरुषोत्तमका—'वह धर्माचरणका, साधनका दम्भ करेगा । दूसरोंको ही नहीं, स्वयंको भी धोखा देना चाहेगा । भोग-परायण, पशु-प्राय मानवको तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा नहीं दे सकता । अतः तुम अबल मानवोंपर दया करके इस धरापर ही रहो ।'

'तुम मानव नहीं हो । तुम उपदेवता वानर भी नहीं हो । उपदेवता वानर रूप तुमने स्वेच्छासे स्वीकार किया है । तुम मुझसे सर्वथा अभिन्न भगवान आशुतोषके अंश, उनके साक्षात् स्वरूप हो ।' श्रीरामने मानो पवनपुत्रका स्तवन किया—'तुम इच्छानुसार दृश्य या अदृश्य रहते धरापर रहो । कामरूप तुम हो ही । कालका कोई प्रभाव तुमपर नहीं पड़ेगा; क्योंकि तुम तो कालके भी काल, स्वयं महाकाल हो ।'

'संकटमें तुम्हारा स्मरण करके प्राणी परित्राण पावें । तुम्हारे स्मरणसे उनके अभीष्ट पूर्ण हों । उनकी ग्रह, प्रेतादि बाधाएँ दूर हों ।' वरदानके स्वरमें

कहकर फिर श्रीराघवेन्द्रने समझाया—'आराधनाके अभावमें, यज्ञाहुतिसे वञ्चित देवता अकाल, अतिवृष्टि, भूकम्प, महामारी ही भेजते रहेंगे भूमिपर। श्राद्ध न पानेसे असन्तुष्ट पितर आधि-व्याधि अभावसे उत्पीड़ित करेंगे। अपवित्र, हीनसत्व मानवोंको भूत-प्रेत सभी पीड़ा देंगे। तुम उनकी अर्चा, अल्प श्रद्धा अपवित्रताकी ओर मत देखना। उनकी रक्षा करना। उनकी सहायता करना।

'कठिन कलिकालमें किसी भी प्रकार मेरा नाम लेनेवाले, मेरी कथा सुननेवाले वैसे ही कम रह जायेंगे। हनुमान! तुम उनके स्वजन बने रहना। उनपर सदय रहना। उन अज्ञानी जनोंके अपराधोंपर ध्यान मत देना।' अब अनन्त करुणावरुणालयने आदेश दिया—'तुम मेरी भक्तिके प्रदायक हो। तुम भक्ति और ज्ञान दोनोंके दाता हो। तुम व्याधि-विनाशक हो।'

'कलिमें मनुष्यका मनोबल मृतप्राय हो जायेगा। वह केवल भौतिक प्रयत्नोंसे शक्ति प्राप्त करना चाहेगा और तुम जानते हो कि भौतिक-आसुरी शक्तियाँ अत्यन्त विनाशक हैं। इन्द्रियोंके भोगोंको ही परम प्राप्य माननेवाला मानव पिशाचप्राय बन जायेगा। उसे स्त्री, बालक, वृद्धादिका व्यापक विनाश करनेमें भी संकोच नहीं रह जायेगा। अकारण हत्या मनुष्यका विनोद बन जायेगी। असंख्य प्राणियोंका सामूहिक संहार करते भी लोग हिचकेंगे नहीं।' अतिशय करुणासे कमलदलोचन आर्द्र हो उठे—'हनुमान! समस्त भूखण्डको ध्वस्त करनेके भी प्रयत्न होंगे। उस समय तुम्हें सत्पुरुषोंकी, मेरे आश्रितोंकी रक्षा करनी है। उन्हें बचाना है तुम्हें।'

'पाखण्ड-प्रचुर हो जायेंगे जनपद। इन्द्रजालके कौतुक ईश्वरीय वैभव माने जाने लगेंगे। वाग्मिता एवं बुद्धि-वैभव पूजा प्राप्त करने लगेगा। असंख्य अनर्गल मतवादोंका प्रचार बढ़ेगा। सीधे सरल श्रुतिसम्मत मार्ग उपहासास्पद गिने जायेंगे।' श्रीरामने स्पष्ट आदेश किया—'ऐसे समय अन्धकारमें भटकते जो आर्त मुझे पुकारें, उन्हें उचित आलोक देना। उन्हें सत्पथ प्रदान करना। उन्हें निराश न होना पड़े, उन्हें ठगा न जा सके, उन्हें भ्रान्त न कर सके कोई, यह तुम अपना दायित्व मानना।'

'जो भी मुझे आर्त होकर पुकारे, उसे सहायता देना। उसका संकट

अवश्य टाल देना । जो भी मेरा स्मरण करे, उसे अपना स्नेहभाजन बनाना ।' श्रीरघुनाथने अधिक स्पष्ट किया—'पृथ्वीपर अबसे तुम मेरे प्रतिनिधि हो । मेरे प्रतीक हो । मेरी प्रीतिके प्रदाता हो । मेरे जनोंके रक्षक एवं आश्रय हो । किसीके आचरण, अपवित्रता, अनधिकारको मत देखो । तुम समस्त आश्रय चाहनेवालोंके सहायक, सिद्धिदाता, संकटमोचन बने रहो ।'

हनुमानजीने प्रभुके श्रीचरणोंपर मस्तक रख दिया—'आपके अनुग्रहसे, आपकी शक्तिसे मैं आदेशका पालन करूँगा । जब तक पृथ्वीपर आपकी कथा है, जब तक आपका स्मरण भूतलपर कोई करता है, जब तक आपके नाम-जापक हैं, मैं पृथ्वीपर रहूँगा । असंख्य—अनन्त रूपोंमें आप ही मेरे सम्मुख उपस्थित हैं, यह मेरी बुद्धि बनी रहे । मैं अपने सब प्रयत्नोंसे आपकी ही सेवा कर रहा हूँ, इस स्मृतिमें कभी व्याघात न पड़े । मैं कभी अहंकार एवं कर्तृत्वाभिमानसे अभिभूत न होऊँ । आपका दास, आपका यन्त्र बना रहूँ और आप ही इसका सञ्चालन करते रहें । कभी किसीको भी देखकर यह भ्रम न हो कि वह व्यक्ति है । अबल है । आश्रययार्थी है । आप ही उस रूपमें सेवा-स्वीकार करने पुकारते हैं, यह सदा स्मरण रहे ।'

'एवमस्तु !' स्वस्थ स्पष्ट स्वरमें सर्वेश्वरेश्वर परात्पर पुरुष मर्यादापुरुषोत्तमने वरदान दिया । अपना दक्षिण कर पवनकुमारके मस्तकपर रखा । दो क्षण मौन रहकर पुनः बोले—'अब तुम यहाँसे अपने अनुकूल स्थानपर हिमालय चले जाओ । वहाँ द्वापरमें तुम्हें पाण्डु-पुत्रोंके रूपमें देव-सन्तान प्राप्त होंगे । द्वापरमें तुम पुनः मेरे अवतार-विग्रहका सान्निध्य प्राप्त कर सकोगे ।'

आञ्जनेयने श्रीरघुनाथके चरणोंमें साष्टांग प्रणिपात किया । श्रीरामने उन्हें उठाकर हृदयसे लगाया । आश्वासन देकर स्नेहपूर्वक विदा किया । पवनकुमार उस कक्षसे बाहर आते ही आकाशमें ऊपर उठ गये । वे अयोध्यासे चले गये, यह किसीने लक्षित नहीं किया ।

●●●

लीला-संवरण

'अपने आश्रममें कुलगुरु महर्षि वशिष्ठ नहीं है ।' महामन्त्री सुमन्त्रको सन्देश मिला । राजकुमारोंका अयोध्यासे अचानक जाना असाधारण घटना थी । महामन्त्रीने महर्षिको सूचना देना आवश्यक माना; किन्तु चरने लौटकर जो समाचार दिया, वह अतर्कित था—'महर्षिने कल प्रातः समस्त अन्तेवासियोंको विदा कर दिया । होमधेनु नन्दिनी स्वर्ग चली गयी । देवी अरुन्धतीके साथ महर्षि स्वयं धराका त्याग करके अपने सप्तर्षि लोक चले गये हैं । अयोध्याके समीपके अरण्योंके ऋषिगण, तपस्वी भी कोई नहीं हैं ।'

जिस राजसेवकने यह सन्देश दिया, उसने सूचित किया—'अकेले महर्षिके पौत्र आचार्य पराशर प्रतीक्षा कर रहे थे आश्रममें । उन्होंने आपके लिए सन्देश भेजा है ।'

'सुमन्त्रको अपने पुत्रोंको अविलम्ब अयोध्यासे विदा करना चाहिये । वे राजकुमारोंका अनुगमन करें और उनके साथ रहकर उनकी सहायता करें ।' ऋषि पराशरका आदेश था । उन्होंने कहलाया था—'मैं स्वयं आयुष्मान कुशके समीप जा रहा हूँ । कुमारोंने अपने आचार्योंका वरण कर लिया है । वे अयोध्याके समीपस्थ आश्रमोंसे अपने अभीष्ट ऋषिको प्रार्थना करके सपरिवार अपने ही रथमें साथ ले गये हैं ।'

अयोध्याके महामन्त्रीने इतनी समझदारी पहिले ही की थी । राजकुमारोंको जाते देखकर उन्होंने अपने आठों पुत्रोंको आदेश दे दिया था कि 'वे अपने रथ शीघ्र सजा लें और प्रत्येक राजकुमारके रथका उनमें-से एक-एक अनुगमन करे । अपनेको राजकुमारका आज्ञानुवर्ती माने । अयोध्या राजकुमार आवें, तभी आवें ।'

महामन्त्रीको अब यह समाचार सम्राट्को देना था । यहाँ नगरके समीपके सब ऋषि-मुनि चले गये, कुलगुरुका आश्रम सूना पड़ा है, यह ऐसी अवस्था नहीं थी कि सुमन्त्र इसका कोई समाधान स्वयं निकाल पाते । वे राजभवनके अन्तःपुरमें पहुँचे तो वहाँ सेविकासे समाचार मिला—'श्रीराघवेन्द्र

अभी एकाकी, पैदल लक्ष्मणके अन्तःपुरकी ओर जा रहे हैं ।'

आञ्जनेयको विदा करके श्रीराम अपने आसनसे उठे । उन्होंने उसी क्षण उपस्थित भरत-शत्रुघ्नकी ओर केवल एक बार देखा । बिना कुछ कहे वैसे ही चल पड़े । अनुज दो क्षण स्तब्ध खड़े रहे । इसके पश्चात् वे भी अग्रजसे कुछ पीछे रहकर उनका अनुगमन करने लगे । सुमन्त्र मार्गमें ही भरत-शत्रुघ्नके साथ हो गये ।

'वधू ! अनशन अनावश्यक है ।' पहिली बार श्रीराम अपनी अनुज वधू उर्मिलाके सम्मुख आकर खड़े हुए और सीधे सम्बोधन करके बोले—'राम, सीताके बिना रह सकता था, रह रहा था; किन्तु लक्ष्मणके बिना एक दिन भी नहीं रह सकता । हम सबको उनके पीछे चलना है । अनुज होकर भी वे आगे गये । उठो और चलो ।'

उर्मिलाने हड़बड़ाकर भूमिमें मस्तक रखा । वे उठकर खड़ी हुई तब तक श्रीराम घूम चुके थे । भाइयों और महामन्त्रीको उपस्थित देखकर शान्त स्वरमें बोले—'सबको चलना है । केवल जो रहना चाहें, उनको रोकना नहीं है । जो भी चलना चाहें, राम सबको आमन्त्रित करता है । अब इस पृथ्वीपरका चरित समाप्त । सब रामके साथ, रामके पीछे आ सकते हैं । रामको जो अपना मानते हैं, जो भी अपना मानेंगे, कालकी सीमासे पार, राम उन सबको अपना स्वजन स्वीकार करता है । वे सब रामके समीप आ सकते हैं । उनको रोकनेकी शक्ति कभी किसीको प्राप्त नहीं होगी ।'

श्रीराम सीधे वैसे ही चल पड़े । भरत, शत्रुघ्न, सुमन्त्रमें-से कोई कुछ नहीं बोला । किसीको अब बोलने, पूछने, कहनेको कछ नहीं रह गया था । श्रीरामका पदानुसरण संसारका, शरीरका मोह लेकर तो नहीं किया जा सकता । उनके पीछे तो सदा प्राणीको एकाकी, केवल इनके श्रीचरणोंपर दृष्टि लगाये, सर्वत्रसे निर्मम, निरपेक्ष चलना पड़ता है ।

कोई अपना स्वजन-सम्बन्धी भी है, यह स्मृति लेकर श्रीरामका अनुगमन सम्भव है ? किसीने दूसरी ओर देखा तक नहीं । यह भी नहीं कि उसके साथ, उसके पीछे कौन आ रहे हैं, अथवा किनको आना चाहिये । जैसे सब यहाँ आकर सर्वथा एकाकी हो जाते हैं । कोई सूचना नहीं, कोई पुकार

नहीं, कोई आह्वान या अन्वेषण नहीं । श्रीराम आगे चलते, उनके अरुण-मृदुल चारु चरणोंपर दृष्टि । शरीर भी साथ चल रहा है, यह स्मरण भी नहीं ।

देवी उर्मिला उठकर वैसे ही चल पड़ीं । एकमात्र वे थीं, जिन्हें श्रीराघवने साथ चलनेका स्पष्ट आदेश दिया था । जिन्हें लेने वे अपने कक्षसे यहाँ तक आये थे । अन्यथा जीवको अपनी अन्तःप्रेरणासे ही इनका अनुगमन करना पड़ता है । ये पुकारते नहीं, प्रतीक्षा करते हैं । अनन्तकालसे प्रतीक्षा ही कर रहे हैं । सबको साथ आनेकी अनुमति देकर शाश्वत प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

माण्डवी-श्रुतकीर्ति ये नाम लेनेकी आवश्यकता नहीं है । श्रीराम अन्तःपुरसे निकले, राजभवनके द्वारसे बाहर हुए तो भवनमें कोई प्राणधारी नहीं रह गया था । जो भी सचर थे, चल सकते थे—पशु-पक्षी, कीट-भृंग तक सब पीछे चल पड़े थे । सम्पूर्ण राजसदनमें एक मक्षिका, एक पिपीलिका तक पीछे नहीं पायी जा सकती थी ।

श्रीराम राजसदनसे निकले । अयोध्याके राजपथपर आये और सीधे चलते गये । चलते गये साथ राजसदनसे साथ आये प्राणधारी । चलते गये नगरके सदनोंसे निकले प्राणी । इनकी संख्या बढ़ती चली गयी ।

बालक, वृद्ध, युवा, वृद्धाएँ और असूर्यम्पश्या वधुएँ सब, सब पैदल, सब अपने आपमें एकाकी । कहीं कोई किसीका स्वजन, साथी, सहायक नहीं । किसीको किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं, पता नहीं । अपने शरीरका ही स्मरण नहीं तो अन्यका कैसे हो ।

सब प्राणी—श्रीरामका अनुगमन करते सब केवल प्राणी रह गये हैं । मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट सरीसृप, सब शरीर ही होता है । जीव शरीर नहीं होता । आज शरीर विस्मृत हो चुका है । मनुष्य हों या तुच्छ पिपीलिका—केवल प्राणी हैं आज । कोई भेद नहीं, कोई अनुक्रम नहीं । सब समान, सब एकसे श्रीरामके अनुगत, श्रीरामके परिकर ! सबको—जीवमात्रको श्रीरामके ये पद-पंकज ही शरण हैं । सब इन पादपद्मोंके पीछे ही चल रहे हैं । असंख्य प्राणी चले आ रहे हैं । एक साथ चलती प्राणियोंकी अपार भीड़; किन्तु सब अपने आपमें एकाकी जा रहे हैं ।

गगनसे राशि-राशि पुष्प झर रहे हैं । विमानोंसे, अनेक दिव्य वाहनोंसे

आकाश भर गया है । अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं । गन्धर्वोंके वाद्य आज अन्तिम अभिवादन कर रहे हैं । किन्नर गान कर रहे हैं । महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोकके भी सब ऋषि, महर्षि, देवर्षि, राजर्षि, काण्डर्षि प्रभृत एक साथ स्तवन करनेमें लगे हैं ।

साम्बशिव वृषभारूढ़ आ गये हैं नन्दी, भृंगी, भैरव, वीरभद्रादिके साथ । मूषक-वाहन मंगलमूर्ति गणपति तथा मयूर-वाहन देवसेनापति कुमार कार्तिक बहुत काल पश्चात् एक साथ आये हैं । हंसवाहन सृष्टिकर्ता हैं । गरुड़ारूढ़ रमासहित रमाकान्त हैं । सुरेन्द्र आये हैं ऐरावतपर बैठे । अग्नि, वायु, वरुण, यम प्रभृतिमें-से कोई ऐसा नहीं जो आज न आ गया हो । परात्पर पुरुषके दर्शनका यह अन्तिम अवसर देवता, मुनि छोड़ नहीं सकते थे ।

यक्ष, नाग, किम्पुरुष—सबके अधिपति उपस्थिति हो गये थे । समस्त तीर्थोंके अधिदेवता—इनमें नदियों, सरोवरों, पर्वतोंके अधिदेवता थे, ग्राम-देवता, ग्राम-कालीगण, मूर्तिमान वेद एवं शास्त्रोंके अधिदेव आये थे ।

आकाश आच्छादित था विमानोंसे । वहाँ संगीत, नृत्य, वाद्य, स्तुतिका कोलाहल गूँज रहा था । जयध्वनि उठ रही थी । अनवरत पुष्प-वर्षा हो रही थी; किन्तु पृथ्वी नीरव, निस्तब्ध थी । एक पत्ता तकके गिरनेका भी शब्द नहीं । जैसे वायुके पद भी शिथिल हो गये थे ।

कोई दृष्टि तक नहीं उठा रहा था गगनकी ओर । किसी क्षुद्र प्राणीको भी गगनका यह तुमुल कोलाहल आकर्षित नहीं कर पाता था । श्रीरामके पीछे चलते समस्त प्राणी आज सुरोंके आराध्य, स्तवनीय हो गये थे । उन्हें सुरोंका समादार नहीं करना था । उन्हें सुरोंकी, उनकी शक्तिकी, उनके वरदानकी अपेक्षा नहीं थी । उनके लिए यह सब व्यर्थ हो चुका था । वे आज स्वयं सुरोंके द्वारा स्तुत हो रहे थे । प्राणी रामका पदानुगमन करके सुरोंका सदा प्रणम्य हो जाता है । उस आप्तकामका सुर स्तवन ही कर सकते हैं ।

श्रीराम तथा उनके पीछे चलते असंख्य प्राणी सरयूतट पहुँचे । स्वच्छ-जला, तल-दर्शिनी सरयूमें हिलोरें उठीं और शान्त हो गयीं । जैसे इस दिव्य सरिताने हर्षसे स्वागतको हाथ बढ़ाये और फिर सबके लिए अपना अंक उन्मुक्त कर दिया ।

श्रीराम सीधे चलते आये। चलते चले गये। ऐसे चलते गये जैसे मध्यमें सरयूकी धारा पड़ती ही न हो। जलकी ओर, पृथ्वीकी ओर, किसी भी ओर उनकी दृष्टि नहीं थी।

श्रीरामके पीछे आते उनके अनुज, महामन्त्री सुमन्त्र, अनुज-वधुएँ, अन्तःपुर तथा अयोध्याके नागरिक, पशु-पक्षी, कीट-पतंग-भृंग—सब, ये नाम ही हैं। शरीरोंका पार्थक्य दीखता है, अतः ये नाम भी हैं, अन्यथा सब प्राणी, असंख्य प्राणी चलते आये और सरयूके उस गोप्रतार तीर्थमें चलते चले गये। किसीने देखा नहीं कि मध्यमें कहाँ धराकी सीमा समाप्त हुई और सलिल आया।

चले गये—चले गये श्रीराम, चले गये उनके साथ आये कोटि-कोटि प्राणी, चले गये उनके असंख्य शरीर। वे कोई जलमें डूबे थे कि उनके शव वहाँ मिलते या बहते। वे दिव्यलोकके परिकर—उनके सम्बन्धमें केवल इतना कहा जा सकता है कि वे चले गये।

एक अद्‌भुत, अलौकित ज्योति—ऐसी ज्योति कि अनिमेष सुरोंके नेत्र भी बन्द हो गये उस प्रकाशके सम्मुख। श्रीरामके सरयूमें प्रवेश करते ही वह प्रकाश-पुञ्ज प्रकट हुआ। पीछे चले आते असंख्य प्राणी उसी प्रकाशमें प्रविष्ट होते चले गये।

'चले गये!' सुरोंने, ऋषियोंने, गन्धर्वोंने, सगण ससुत सदाशिवने, रमा-सहित रमाकान्तने, सृष्टिकर्ताने, लोकपाल, दिक्पाल सबने एक साथ कहा—'चले गये।'

कहाँ गये? कैसे गये? किस पथसे गये? कोई लक्षित नहीं कर सका। साकेत कहाँ इन्द्रिय-मान-गोचर है कि वहाँ जाते सुर किसीको देख पाते। अब तो सबको मस्तक झुकाकर जयघोष करना था। प्रणाम एवं पुष्पाञ्जलि अर्पित करनी थी सरयूके उस गोप्रतार तीर्थके शान्त, स्वच्छ, पावन सलिलमें ऊपरसे।

श्रीराम स्वधाम चले गये। उन्होंने धरापर अपनी व्यक्त लीलाका संवरण कर लिया। चले गये उनके साथ उनके स्वजन, परिकर तथा नित्य धामके सब प्राणी। जिन्होंने अवतार-कालके पूरे त्रयोदश सहस्र वर्षसे से अधिकके कालमें श्रीरामका दर्शन किया था, उनका स्पर्श किया था, उनसे संलाप किया

था, वे सब उनके दिव्यधाम चले गये ।

वे भी चले गये जिन्हें श्रीरामने स्पर्श किया था । जिन्हें उन कमल-लोचनने एक बार भी देखा था । वे वृक्ष, लताएँ, तृण, शिलाएं—वे अचर, इन्द्रियहीन भी इस मायिक संसारसे मुक्त होकर श्रीरामके नित्य धाम चले गये ।

अयोध्या, चित्रकूट, दण्डकारण्य, किष्किन्धा, लंकाका नाम लेना पर्याप्त नहीं है । जनकपुर, सिद्धाश्रम, मगध, कैकय, दक्षिण कौशल और इनके मार्गके प्रदेश । गया, मातृगया, धर्मारण्य—जहाँ भी श्रीराम कभी भी गये थे, जहाँसे निकले थे, जिनको उनके दर्शन हुए थे, जिन्हें उन्होंने देख लिया था या बिना देखे स्पर्श कर दिया था, वे सब चर-अचर, पशु-पक्षी कीट, तृण-तरु-लता गुल्म उसी क्षण, जहाँ भी वे थे, वहींसे धराके लिए अदृश्य हो गये । वे श्रीरामके साथ ही उनके दिव्य धाम चले गये ।

अयोध्या—केवल एक नाम ले रहा हूँ । मिथिला, चित्रकूट, किष्किन्धा, लंकाकी भी यही अवस्था—सब अदृश्य हो गये—स्थान नहीं, उनका दिव्य रूप अदृश्य हो गया । लंकामें विभीषण रहे, पर लोक-दृष्टिके लिए लंका भी अदृश्य हो गयी ।

अयोध्या अदृश्य हो गयी । उसके मणि-भवन, स्वर्ण-कलश अदृश्य हो गये । केवल भवन रह गये, भूमि रह गयी । पाषाणमें परिवर्तित भित्तियोंके भवन । साधारण मृत्तिका-भूमि; किन्तु अयोध्या और उसके आस-पास कोई वृक्ष, लता, तृण नहीं । जैसे मरुस्थलमें बसा कोई शुन्य नगर हो । पक्षी, कीट, पिपीलिका तक कहीं कोई प्राणी नहीं । दिव्यधाम अयोध्या अदृश्य हो गयी तो उसका जो अवशेष रहा, अत्यन्त भयावह रह गया ।

●●●

कुशका पुनरागमन

अमित ओजस्वी कुमार कुशने अयोध्याके बाहर रथ आते ही अनुजोंसे कहा था—'वेदज्ञ आचार्यके बिना राज्य-स्थापन अशक्य है । यदि ब्राह्मणका सामीप्य एवं संरक्षण नहीं होगा तो संस्कार उच्छिन्न हो जानसे प्रजा व्रात्य हो जायेगी । शासन निरंकुश अनार्योंका होता है । आदर्श शासन ऋषि-तन्त्र ही हो सकता है ।'

'हमें आचार्य, मन्त्री तथा वृद्धजन आवश्यक हैं ।' लवने अग्रजका समर्थन किया—'मन्त्री कुछ पीछे भी पाये जा सकते हैं । प्रचुर पुरस्कार प्रदान करके विद्वद्वर्गको आकर्षित किया जा सकता है । प्रजाके वृद्ध जनोंको प्राधान्य दिया जा सकता है; किन्तु आचार्योंके बिना कार्यारम्भ ही अनियन्त्रित हो जायेगा । आचार्यकी आवश्यकता सबसे पहिले है ।'

'मैं कुलगुरुके आदरणीय पौत्र पराशरजीसे प्रार्थना करने जा रहा हूँ ।' कुशने अपना निश्चय सूचित किया—'आशा है, वे मुझे अपनाना अस्वीकार नहीं करेंगे ।'

'हम भी आचार्य अपने साथ यहीं अयोध्याके पार्श्ववर्ती तपोवनसे ही ले जायेंगे ।' दूसरे राजकुमारोंने तत्काल निर्णय कर लिया । उन्होंने अपने अभीष्ट ऋषियोंका भी निश्चय कर लिया ।

'वत्स ! तुम्हें दूर तो जाना नहीं है ।' महर्षि पराशरने कुशकी प्रार्थना सुनकर कहा—'तुम प्रस्थान करो, मैं पिताश्रीका सन्देश महामन्त्री तक पहुँचाकर शीघ्र आ रहा हूँ ।'

दूसरे राजकुमार जब प्रार्थना करके अपने आचार्योंको रथमें बैठाकर चले, सुमन्त्रके पुत्र मार्गमें ही उन्हें मिल गये । किसीको भी योग्य मन्त्रीका अन्वेषण नहीं करना पड़ा । उनको दो-दो मन्त्री मिले; क्योंकि उनके सारथि भी सुमन्त्रके ही सुयोग्य शिष्य थे ।

कुमार कुशको पराशरजीने स्थान-निर्देश कर दिया था, जहाँ उन्हें अपनी राजधानी स्थापित करनी थी । वे सुरसरिके उस पावन तटपर पहुँचे । महर्षि

पराशरको बहुत विलम्ब नहीं हुआ । कुशके उस महानगरका नाम कुशावती पड़ा, जो उन्होंने वहाँ बसाया । कालक्रमसे उसके उच्छिन्न जानेपर पीछे उसके समीप ही कौसाम्बी नगर बसा ।

सभी राजकुमार अयोध्यासे दूर चले गये थे । अयोध्याकी जो अवस्था उसी दिन हो गयी, उसका समाचार उन्हें बहुत देरसे मिला । अयोध्यामें तो कोई रह नहीं गया था जो समाचार देता । राजकुमार नवीन राज्य, नवीन राजधानी स्थापन करने गये थे । उनके सम्मुख अत्यधिक कार्य था । उन्हें नवीन शासन-विधान बनाना था । सब कुछ उन्हें नवीन करना था । नवीन जुटाना था । अयोध्यासे तो वे कुछ ले नहीं गये थे । वे अपने कर्तव्यमें व्यस्त रहे । समाचार सभीके समीप कभी किसी पथिक अथवा परिव्रजनशीलसे प्राप्त हुआ । ऐसे यात्रीसे जो अयोध्याके सुयशको सुनकर वहाँ जा पहुँचा था ।

जिसके समीप भी समाचार पहुँचा, वह शोक-मूर्छित हुआ, लेकिन अयोध्यामें वह किसके समीप आता ? किस प्रकार उस जन-शून्य स्थानपर आनेका उत्साह पाता ? कोई राजकुमार अयोध्या नहीं आया ।

सबने अपने राज्य स्थापित कर लिये । सबकी राजधानियाँ समृद्ध हो गयीं । रघुवंशी कुमारोंका शासन प्रजाको सब कहीं आकृष्ट करने लगा । शौर्य जब संयम तथा श्रद्धा-शासित होता है, सम्पत्ति स्वयं सेवा करने दौड़ी आती है । श्रीरामके लोकपावन सुयशने पहिलेसे ही कुमारोंको लोक-सम्मानित बना रखा था । उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई । कहीं संघर्ष नहीं करना पड़ा । प्रजाने उन्हें अपना अधिपति स्वीकार करनेमें अपना सौभाग्य माना ।

विवाह तो होने ही थे । भूमण्डलके श्रेष्ठतम, सुप्रसिद्ध राजाओंके लिए भी अपनी कन्या किसी रघुवंशी कुमारकी परिणीता बना पाना अहोभाग्य था । अत्युत्तम श्रेष्ठ कुलोंकी कन्याओंसे आग्रह-सहित कुमारोंका परिणय हुआ । नवीन सम्बन्ध बने । नवीन सहायक मिले ।

सभी अनुज अपने अग्रज कुशके अनुवर्ती बने रहे । वे कुशको अपना सम्राट् स्वीकार करते रहे । अयोध्याके शासन-विधानको ही सबने अपनाया था । अयोध्यासे ही परम निर्देशक आचार्य ले गये थे । सुमन्त्रके पुत्र ही सर्वत्र महामन्त्री थे । सबको गौरव था कि वे अयोध्यामें उत्पन्न हुए, पले, पढ़े हैं;

किन्तु अयोध्या ?

'वत्स ! मैं अयोध्याकी अधिष्ठातृ देवता हूँ । तुम्हारे इक्ष्वाकुकुलकी पररम्परागत राजधानी अयोध्याकी अधिदेवी ।' एक रात्रि कुशने स्वप्नमें देखा कि उनके सिरके समीप एक अनुपम सौन्दर्यमयी, तेजोमूर्ति खड़ी हैं । उनके वस्त्र मलिन तथा फटे हैं । शरीर मलावच्छन्न है । अनाभरण है । केश रूक्ष हैं, बिखरे हैं । प्रशस्त उन्नत भाल बिन्दु-विहीन है । विशाल लोचन अश्रु टपका रहे हैं । पूरा शरीर कृश है । जैसे कोई सुर-साम्राज्ञी विपत्ति-ग्रस्ता, अनेक कालसे उपोषिता हों । वे कह रही हैं—'कुश ! तुमने मुझे सर्वथा विस्मृत कर दिया, यह तुम्हारे योग्य है ?

'अम्ब ! आपकी यह कैसी अवस्था है ?' स्वप्नमें भी अत्यन्त आकुल हो उठे कुश—'आपकी यह विपन्न दशा ?'

'कुश ! मेरा वैभव श्रीरामके साथ चला गया ?' किन्तु मेरी यह अवस्था न होती यदि तुम भी मुझे विस्मृत न कर देते !' उन देवीके लोचनोंका अश्रु-प्रवाह बढ़ गया—'मेरे शून्य सदनोंमें अब मकड़ियोंके जाल फैले हैं । उनमें चमगादड़ों एवं श्रृगालोंने अपने आवास बना लिये हैं । वहाँके देव-मन्दिरोंमें काई जमी है । जिन राजपथोंपर अलंकृत अश्व एवं रथ दौड़ते थे, वे पथ धूलिसे पट गये हैं । वहाँ अब कण्टक-वीरुध उग आये हैं ।'

'कुश ! जिन अन्तःपुरोंमें अलक्त-रञ्जित पद मणि-नूपुरोंकी झंकार करती उच्चकुलोंकी कुल-वधुएँ— तुम्हारी माताएँ गज-गतिसे हँसती-घूमती थीं, उनमें सायंकाल शृगाली फेत्कार करती हैं ।' वे ज्योतिर्मयी रुदन करती कहती गयीं—'जिन कक्षोंमें तुम्हारे पिता, पितृव्यके पाद-पीठोंपर मुकुट-किरीटसे भी स्पर्श करनेमें सुरेन्द्र सशंकित होते थे, वहाँ वन-विडाल परस्पर कलह करते कूदते रहते हैं ।'

'अयोध्यामें अब मणि-काञ्चन भूमि नहीं है । अब वहाँ स्फटिककी भित्तियाँ नहीं हैं । अब वहाँके सरोवरों एवं वापियोंमें प्रवाल, पद्मराग, वैदूर्यके सोपान नहीं हैं, यह सत्य है । यह सत्य है कि वहाँ सब श्रीहीन पाषाणोंमें परिवर्तित हो गया है; किन्तु-' देवीने हिचकियाँ लेते कहा—'जिन जलाशयोंमें सरोजोंके मध्य हंस रात्रि-शयन करते थे, उनमें सिवार भरी है । अब मण्डूक

वहाँ अखण्ड अपना राग अलापनेको स्वतन्त्र हैं ।'

'जिन कक्षोंमें तुम्हारे अनुज और सखा शैशवमें मणि-किंकिणीका क्वणन सुनते घुटनों सरकते-किलकते थे, उनमें अब महा-अहि आनन्दसे पड़े रहते हैं। अब देवस्थानोंमें अर्चा-विग्रहोंके समीप ही हिंस्र पशु हत्या करते हैं । उद्यान एवं उपवनोंमें उगी सघन कण्टक झाड़ियोंके भीतर वृकोंके बच्चे शशकोंका आखेट करते हैं ।

'अब अयोध्यामें सरोवरोंके सोपानोंपर लेवा केकड़े मारती है । पिककी कुहू-ध्वनि, मयूरोंका केकारव अब अश्रुत-प्राय है । अवश्य गृहोंके गवाक्षोंमें कर्कशरव पक्षियोंने नीड निर्मित कर लिये हैं । पताकाएँ जिनपर फहराती थीं, उनपर अब रात्रिमें बैठकर उलूक भयावह शब्द करते हैं । प्रशस्त क्रीड़ा-स्थलोंमें वेणु-गुल्म उग आये हैं । उनमें ऋक्षोंका आवास है ।'

'स्वच्छ-सलिला सरयूके सोपान नष्ट हो रहे हैं । अब उसका जल आबिल हो गया है और उसमें असंख्य कच्छप भर गये हैं । अब सरयूमें हंस नहीं बकोंकी बहुलता है ।'

'अयोध्यामें अब श्रुतिके पावन स्वर नहीं उठते । बन्दियोंका स्तवन नहीं सुनायी देता । वहाँ अब वन्य पशु अथवा गृध्र झगड़ते हैं । जहाँ ऋषियोंके आश्रम थे, वहाँ अब वृद्ध केहरी अपने पञ्जोंपर सिर रखे लेटे रहते हैं । उनके नेत्र भी आर्द्र हैं कि अब कोई शूर उन्हें इस वार्धक्यकी विपत्तिसे मुक्त करने नहीं आता ।'

'अयोध्याकी परिखापर, भवन-भित्तियोंपर काली, कुत्सित काई जमी है और उसमें स्थान-स्थानपर तृण, नन्हें तरु अपना सिर उठाये खड़े हैं । असंख्य क्षुद्र कीटोंने वहाँ अपना अड्डा जमा लिया है । वहाँके भवन, वीथियाँ, रंगशालाएँ अब सर्प, वृश्चिक तथा उत्पीड़क पशुओंकी विहार-स्थली बन चुकी है ।'

'अयोध्या मोक्षदापुरी है । सप्तपुरियोंमें किसीसे भी किञ्चित् न्यून नहीं । परात्पर पुरुषकी प्राकट्य-भूमि; किन्तु अब कोई यात्री भूले भी उधर नहीं भटकता । इतनी भयावह, इतनी उजाड़ हो चुकी है अयोध्या और कुश ! तुम पूछते हो कि मेरी यह विपन्नावस्था क्यों है ?'

'अयोध्या तुम्हारी पितृ-भूमि है । तुम्हारे पूर्वजोंकी भूमि है । अयोध्याकी

समृद्धि, शोभामें तुम्हारा सुयश है । तुम्हारा गौरव है ।' उस देवीने अन्तमें कहा—'मैं तुम्हें स्मरण दिलाने आयी हूँ कि तुम्हारा शौर्य, तुम्हारी शक्ति अयोध्याकी सेवामें लगे, यह तुम्हारा कुलोचित शील होगा । तुम अपनी राजधानी अयोध्या ले चलो । कितनी भी समृद्ध हो जाय, कुशावती केवल अर्थ, काम, धर्म ददे सकेगी; किन्तु अयोध्या चतुर्वर्ग-प्रदायिनी पुरी है ।'

वे देवी तिरोहित हो गयीं । कुशका स्वप्न भंग हो गया; किन्तु उन्हें पुनः निद्रा नहीं आयी । नित्यकर्मसे निवृत्त होकर, दैनिक तर्पण, पूजनादिके पश्चात् आचार्य पराशरके पदोंकी वन्दना की कुशने उनके आश्रम जाकर और अपना स्वप्न सुनाया ।

'वत्स ! तुम्हारे संकोचवश मैं यहाँ चला आया ।' ऋषि पराशरने स्वप्न सुनकर कहा—'पितामहका आदेश था कि मैं तुम्हारे आचार्यत्वका त्याग न करूँ; किन्तु पावन पुरी अयोध्याका परित्याग मुझे कभी प्रिय नहीं रहा । मुझे प्रतिक्षण प्रतीत होता रहा है कि पितामहका आश्रम मुझे पुकार रहा है । हम अरण्यवासियोंको न हिंसक पशुओंका भय होता है, न नगरोंके प्राप्य पदार्थोंका हमें प्रलोभन है । वन्य कन्द, मूल, शाक हमारा तब भी निर्वाह कर देते हैं, जब तरुओंमें पक्व फल न हों । अब तो तुम्हें दैवी आदेश हो गया है ।'

'मैं आपका सेवक हूँ । पितृ-चरणोंने मेरा शरीर, मेरा जीवन आपकी सेवामें अर्पित कर दिया है ।' कुशके महामन्त्री सुमन्त्रके ज्येष्ठ पुत्रने पूछनेपर कहा—'लेकिन राजन् ! पशुको भी प्रायः अपनी जन्मभूमि प्राणप्रिय होती है । मुझे आशा होती कि आप मुझे अनुमति दे देंगे तो मैं अयोध्या अरण्य हो गयी हो तो भी उटज बनाकर वहाँ जीवन व्यतीत करनेमें आनन्द मनाता । मेरे अन्तरकी सबसे बड़ी कामना यही है कि मेरा शरीर अयोध्यामें छूटे और मेरा शव-दाह वहीं पुण्य-सलिला सरयूके तटपर हो । आप आज्ञा करें । प्रस्थानकी प्रस्तुतिमें विलम्ब नहीं होगा ।

'राजधानी यहाँसे अयोध्या जायेगी । जो लोग कुशावती ही रहना चाहेंगे, उनकी सुरक्षा एवं व्यवस्था सुचारु चलती रहेगी, अतः किसीको आशांकित होनेकी आवश्यकता नहीं है ।' कुशकी राजाज्ञा घोषित हुई—'जो लोग राजाके साथ चलना चाहेंगे, उनको, उनके स्वजन-सम्बन्धियोंको वाहन

प्रदान किये जायेंगे । उनके सब उपकरण शकटों द्वारा पहुँचाये जायेंगे । उनके पशु सुरक्षित भेजे जायेंगे । यहाँ छूटनेवाली अचल सम्पत्तिका उन्हें उचित निष्क्रय प्राप्त होगा ।'

'अयोध्यामें साथ चलने वालोंको उचित आवास प्राप्त होंगे । वणिकवर्गको पण्य-स्थान तथा कृषकोंको भूमि दी जायेगी । विप्रगणोंको, तापसोंको सरयू-तटके समीप निर्मित उटज मिलेंगे ।' घोषणामें स्पष्ट कहा गया— 'स्थान-परिवर्तनमें कुछ कष्ट, कुछ असुविधा होना अवश्यम्भावी है । शासनकी ओरसे सब प्रकारके लोगोंको उनकी आजीविकाके उपार्जनकी सुविधा दी जायेगी ।'

अग्रिम दल पर्याप्त प्रथम भेज दिया गया । उसे नगरके भवनोंको, पथोंको, उद्यानोंको, जलाशयोंको स्वच्छ करना था । तृण, गुल्म, कंटक-तरु एवं झाड़ियाँ काट देनी थीं । वन्य पशु-पक्षियोंको, सर्पादिको भगा देना था । सरयू-तट तथा समीपका अरण्य भी ऐसा कर देना था कि वहाँ ऋषि-मुनि आश्रम बनाकर रह सकें । वहाँ उटज बना देने थे ।'

दूसरे दलमें पशु आये—पशुपाल आये, वस्त्रादि आवश्यक सामग्री आयी । उपवन, उद्यानोंके उपयुक्त फल-पुष्पके बीज, वीरुध तथा उनको आरोपित करनेवाले आये । पर्याप्त सेवक आये ।

उत्तम मुहूर्तमें मन्त्रपाठके मध्य, शंख, भेरी-घोष सहित मुनियोंको, विप्रवर्गको आगे करके कुशने प्रस्थान किया । कुशावती उजाड़ नहीं की गयी । वह एक समृद्ध नगर बना रहा; किन्तु कुछ अयोध्या आ गये । कुशकी राजधानी अयोध्या आ गयी । राजधानी आ जानेपर अनेक स्थानोंके कलाजीवी, व्यापारी, विद्वान स्वतः आकर बसने लगे । अयोध्या पुनः समृद्ध पुरी बनी । पुनः तीर्थयात्रियोंका आगमन प्रारम्भ हुआ ।

●●●

नित्य अयोध्या

अयोध्या अदृश्य हो गयी । नित्य, दिव्यधाम साकेत जो श्रीरामके लिए पृथ्वीपर प्रकट हुआ था, अदृश्य हो गया; किन्तु अयोध्या कहाँ अदृश्य हुई ? अयोध्या पृथ्वीका अंग है । अयोध्या जो पृथ्वी ही नहीं, ब्रह्माण्डका विराट् पुरुषका हृदय-स्थल है, अयोध्या जो परम पावन मोक्ष-प्रदायिनी पुरी है, अयोध्या जहाँ नित्य साकेत-बिहारी श्रीराम सन्निहित रहते हैं, वह कहाँ अदृश्य हुई ? वह अदृश्य कैसे हो सकती है ?

कभी किसीका हृदय दीखता है ? दीखता है शव चीरनेपर केवल रक्त-संचालक यन्त्र कलेजा । वह हृदय जहाँ अन्तर्यामीके साथ मिला जीव-चेतन रहता है, जहाँसे प्राण ऊपर और अपान नीचे जाता है, प्राणापानके मध्यमें जो अंगुष्ठ परिमाणु पुरुषका आवास-स्थल शून्याकाश-वायुरहित स्थान हृदय है, वह शवको चीरनेपर भी देखा जा सकेगा ? वह तो अनुभवैकगम्य है—है, केवल यह अनुभूति है । दीखता है सामान्यतः उसका ऊपरी भाग वक्ष । विराट् पुरुषका हृदयस्थल अयोध्या भी इसी प्रकार अपने ब्राह्य रूपमें ही दीखता है । उसका वास्तविक स्वरूप तो अनुभवगम्य ही है ।

हृदयके ऊपरी भाग अर्थात् वक्षस्थलपर बाह्य परिवर्तन होते रहते हैं । कभी कोई चन्दन लगता है, कोई तिलक करता है, कोई मालाएँ धारण करता है । कभी रोमराजि टूटती-झड़ती है । किसीके कभी श्वेत या श्याम धब्बे भी उभड़ते हैं । अयोध्याके स्वरूपमें—बाह्य स्वरूपमें ये नैसर्गिक एवं औरोंके द्वारा किये गये प्रयत्न हुए हैं—होते रहे हैं । लेकिन अयोध्या नित्य है । अयोध्या मोक्ष-दायिनी पुरी है । अयोध्याके साथ श्रीसीताराम सदा सन्निहित हैं ।

मैं यहाँ नित्य साकेत धामकी चर्चा नहीं कर रहा हूँ । उसकी चर्चा इस ग्रन्थके आरम्भमें प्रथम खण्डमें हो चुकी । मैं चर्चा कर रहा हूँ जो इस पृथ्वीपर, भारतवर्षमें, वर्तमान फैजाबाद जिलेके अन्तर्गत सरयू-तटपर बसा एक सामान्य नगर है, उसकी । उसकी जिसे सम्राट् शकारि विक्रमादित्यने लगभग दो हजार वर्ष पूर्व अरण्यमें किसी दिव्य दृष्टि ऋषिके अनुग्रहसे उपलब्ध किया

और सुनसान अरण्यको जनपदका रूप प्रदान किया ।

मैं उसी अयोध्याकी चर्चा कर रहा हूँ जहाँ जानेपर यात्रीको प्रायः प्रत्येक ओर बड़ी-छोटी, पक्की, गिरती-टूटती कबरें ही अधिक दीख पड़ती हैं । उनकी संख्या देवमन्दिरोंसे बहुत अधिक है । आश्चर्यकी बात नहीं है कि इस्लामके अनुयायियोंने भी अयोध्याको अत्यन्त पवित्र माना और दूर-दूरके अपने मृत स्वजनोंको यहाँ लाकर भूमिमें कयामत सुलाये रखनेकी व्यवस्था करना उचित समझा ? अयोध्याको ही क्यों एक लाख पक्की कबरें बनाकर अपना काबा बनानेकी बात सोची गयी ? इसीलिए तो कि इस भूमिकी पावनता भारतीय रक्तमें धर्म-परिवर्तन करनेके पश्चात् भी बनी रही ? उस पावनताका परित्याग करना प्रिय नहीं था । उसे अपने ढंगसे पकड़नेका प्रयत्न हुआ ।

अब तो उन कबरोंकी संख्या बहुत थोड़ी है । काल उन्हें कम करता जा रहा है । उन्हें नहीं रहना चाहिये था, इसलिए नहीं रहीं । शक्तिके सहारे-दूसरोंको दुःखी करके जो कुछ किया जाता है, वह शुद्ध नहीं होता । उससे संघर्ष उत्पन्न होता है, जो उसे समाप्त कर देता है । यह दुःखकी ही बात थी कि अयोध्याको अधिकृत करनेका इस प्रकारका उद्योग किया गया और अब भी उचित सौजन्य जागा नहीं ।

श्रीरामचरितके साथ श्रीरामकी जन्मभूमिकी यह अर्चा जानबूझकर करने लगा हूँ । यह अटपटी लग सकती है । असंगत लग सकती है; किन्तु क्या आप कह सकते हैं कि सर्वेश्वरेश्वर श्रीराम सबके नहीं है ? वे किसी एक ही सम्प्रदायके हैं ?

सौजन्य, सौहार्द्रपूर्ण प्रयत्न भी सम्भव था । पुष्कर तीर्थराजके पार्श्वमें ही अजमेरके 'उर्स' का महामेला नहीं होता ? भले आरम्भमें कुछ हुआ हो, अप्रिय इतिहासको उलटना अनावश्यक है । देखना यह है कि एक स्थानपर यह सौहार्द्र, यह स्नेह सम्भव हुआ तो अन्यत्र क्यों असम्भव हो गया । सौजन्यपूर्ण ढंगसे, अयोध्यामें आस्था रखनेवाले भावुक भक्तोंका सौहार्द्र प्राप्त करके, असंख्य कबरें बनाने—उनमें सात, बारह हाथ तककी बनानेके लिए कहानियाँ गढ़नेके स्थानपर कोई एक ही भव्य आकर्षण—आराधना-स्थान भी तो बन सकता था, जैसा कि अजमेरमें है । अयोध्या पावनपुरी है तो वह प्रीतिके माध्यमसे सबको प्राप्त हो सकती थी ।

श्रीरघुनाथ सबके हैं, अतः अयोध्या सबकी है । रामभक्तोंमें अनेक भक्तिप्राण श्रीरामभक्त मुस्लिम सन्त प्रिय हैं, प्रसिद्ध हैं, आदरार्ह माने जाते हैं । अनेक ऐसे हुए हैं जिन्होंने उसी आस्थासे अयोध्यामें निवास किया, जिस आस्थासे श्रीसीताराम-चरणानुरागी कोई सन्त करते हैं ।

नित्यपुरी अयोध्या; किन्तु यह अनेक बार आक्रान्ताओंका आखेट मधुपुरीके ही समान । अनेक बार उजड़ी और बसी । यह मत पूछिये कि यहाँ श्रीरामके समयका क्या है ? उस समयका तो कुछ भी नहीं है । वह स्वरूप तो अयोध्याका उनके साथ ही अदृश्य हो गया था । कुशको भी वह अप्राप्य हो गया था ।

कुशके समयका क्या है ? यह प्रश्न भी असंगत है; क्योंकि काल प्रत्येक पार्थिव पदार्थको कवलित कर लेता है । कुश भी त्रेतामें ही हुए थे । आस्थावान आस्तिक मतोंके अनुसार तो लगभग पचास-पचपन करोड़ वर्ष पूर्व । आधुनिक इतिहासके अन्वेषकोंकी बात छोड़ देने योग्य है । उनमें-से एक वर्ग तो श्रीराम तथा श्रीकृष्णको ऐतिहासिक पुरुष ही नहीं मानता । उसके मतसे श्रीराम एवं श्रीकृष्णके चरित हम हिन्दुओंके पूर्वजोंके उर्वर मस्तिष्ककी कल्पना है । (यद्यपि ये अन्वेषक ही मानते हैं कि ये पूर्वज तो असभ्य, अल्पशिक्षित, अविकसित लोग थे । तब पता नहीं इतने उत्कृष्ट चरितोंकी कल्पना वे कैसे कर सके । लेकिन अन्वेषकोंको तो सब परस्पर विरुद्ध बातें कहनेकी पूरी स्वतन्त्रता है ।)

दूरकी कौड़ी लानेके प्रयत्नमें अन्वेषकोंका एक वर्ग अब कहने लगा है—'राम और कृष्ण हुए तो हैं, परन्तु श्रीकृष्ण पहिले हुए हैं और राम तो अभी ईसासे कुछ पूर्व या पश्चात् हुए ।'

देशमें अब भी कुछ बड़े यज्ञ दो-चार वर्षोंके अन्तरसे हो जाते हैं, इसका पता कोई अन्वेषक क्यों रखे । उसे यह जानना क्यों आवश्यक हो कि इन यज्ञोंमें सृष्टि संवत् कल्प संवत्, सतयुग संवत्, त्रेता संवत्, द्वापर संवत्, कलि संवत् भी बोलने पड़ते हैं । इन्हें क्या आवश्यकता कि यह जानें कि हिन्दुओंका एक पञ्चांग भी हुआ करता है जो प्रतिवर्ष नवीन बनता है । वर्ष-वर्षके क्रमसे आगे बढ़ता है और उसमें कौन-सा युग किस दिन, किस महीनेकी किस तिथिको प्रारम्भ हुआ, यह भी लिखा होता है । यह सब विवरण अच्छे

पञ्चागोंमें होता है । लेकिन पञ्चांग तो हम पिछड़े लोगोंकी पुरानी परम्पराकके प्रतीक हैं । उन्हें कोई पाश्चात्य शिक्षा-प्रवीण प्रगतिशील कैसे प्रामाणिक मान सकता है ।

यदि मान लें कि श्रीरामावतार पिछले त्रेतामें ही हुआ तो भी त्रेतान्तमें माननेपर भी मध्यमें ८,६४,००० वर्षकी आयुका द्वापर और कलियुगके पाँच सहस्र वर्षसे अधिक बीत चुके हैं, यह बात प्रत्येक आस्थावान हिन्दू सरलतासे समझ सकता है । इतनी आयु पाषाण, लौह आदिकी नहीं होती । अतः कुशके समयका भी कुछ पाया जाना कैसे सम्भव है ?

अयोध्यामें जो कुछ है, विक्रम सम्वत्के प्रवर्तक शकारि विक्रमादित्यके द्वारा निर्मित है । उससे पूर्व उनको इस स्थलपर आनेपर अरण्य प्राप्त हुआ था । उनके द्वारा बसायी गयी अयोध्या भी कई बार आक्रान्त हुई । इसके देवस्थान तथा भवन ध्वस्त हुए । इसका साक्ष्य वहाँ बहुत है । अत; अब वहाँ जो कुछ है, कनक भवन, हनुमान गढ़ी, मणि पर्वत, लक्ष्मण किला आदि, वह सब बार-बारके जीर्णोद्धार, पुनर्निर्माणके पश्चात्का रूप है ।

मिट्टी, पत्थर और उनसे निर्मित भवन, पदार्थ, मूर्त्तियाँ भी नित्य नहीं हुआ करतीं । इनमें दिव्यता नहीं होती । एक बार किसीसे मैंने पूछा था— 'वृन्दावनकी कितने फीट गहराई तककी मिट्टी कहीं ले जाकर बिछा दी जाय, कितना मोटी तह बिछाई जाय तो वहाँ वृन्दावन बन जायेगा और उसमें वृन्दावनकी दिव्यता आ जायेगी ?'

यही बात अयोध्याके सम्बन्धमें भी पूछी जा सकती है । इसका उत्तर है कि मिट्टीके स्थानान्तरणसे धामका स्थानान्तरण सम्भव नहीं है । सरयूकी धारा सहस्त्रों मन रेणुका अयोध्यामें अन्यत्रसे ले आती है और सहस्त्रों मन मिट्टी प्रतिवर्ष अयोध्याकी अन्यत्र ले जाती है । वायुसे—आँधीसे भी मिट्टीका यह स्थानान्तरण होता रहता है; किन्तु अयोध्यामें सरयू तटकी रज अब भी अवधकी पावन रज है या नहीं ?

हमारा आपका शरीर केवल साढ़े तीन वर्षमें पूरा परिवर्तित हो जाता है । यह वैज्ञानिक तथ्य है कि शरीरकी अस्थियों तकके परमाणु प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहे हैं । पूरे शरीरका साढ़े तीन वर्षमें नवीनीकरणका क्रम अविराम चल रहा है; किन्तु इतनेपर भी क्या आप परिवर्तित होते हैं ? क्या आप

अपने पिताश्री या गुरुदेवके शरीरको पवित्र, पूज्य मानना इसलिए त्याग देंगे; क्योंकि जब आप उनसे उत्पन्न हुए अथवा जब उन्होंने आपपर अनुग्रह करके पारमार्थिक आलोक प्रदान किया, उस समयका उनका शरीर तो पूर्णतः परिवर्तित हो चुका है ?

भगवद्धाम भावमय है। जैसे अपने श्रद्धेयोंके शरीरको हम भावनासे पूजनीय मानते हैं। उनकी दिव्यता नित्य है। उनके पार्थिव रूपमें परिवर्तन हो जानेसे उनकी दिव्य शक्तिका लोप नहीं हो जाता। उनके पार्थिव पदार्थोंका स्थानान्तरण होनेसे उनकी वह दिव्य शक्ति अन्यत्र स्थानान्तरित नहीं हुआ करती।

एक उदाहरण— वृन्दावनमें जगन्नाथ घाटके श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें जगन्नाथ, सुभद्रा, बलरामजीके वही श्रीविग्रह विराजमान है, जो श्रीजगन्नाथ पुरीमें बीस वर्ष श्रीजगन्नाथ मन्दिरमें पूजित होते रहे थे। कलेवर-परिवर्तनके पश्चात् उन्हें यहाँ लाया गया। वे भगवद्विग्रह हैं, पूज्य हैं। उनमें प्रभाव नहीं है, यह कहनेकी धृष्टता कोई आस्तिक नहीं करेगा; किन्तु उनके कारण वृन्दावनको अथवा वृन्दावनके उस मन्दिरको ही पुरीका प्रभाव तो प्राप्त नहीं हुआ। वृन्दावनमें उस मन्दिरमें भी पुरीके समान उच्छिष्ट-दोष नहीं होता, यह कोई स्वीकार करेगा ? इसे शास्त्रका समर्थन प्राप्त होगा ?

अतः अयोध्या नित्य धाम है, दिव्य धाम है समस्त परिवर्तनों, आक्रमणकारियोंके ध्वंसके पश्चात् भी। उसके दिव्य प्रभावमें कोई न्यूनता नहीं आयी। उसके नित्य स्वरूपमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वहाँ कुशके समयका अथवा और प्राचीन कोई पदार्थ हो या न हो। कालक्रमसे, किसी कुकाण्डके कारण आज अयोध्यामें जो कुछ है, वह भी न रहे और वह पुनः अरण्य हो जाय—सपाट समतल भूमि बन जाय तो भी क्या उसका नित्य रूप, उसका दिव्य प्रभाव कुछ न्यून हो जायेगा ?

भगवद्धाममें जो मन्दिर हैं, लीला-स्थान कहे जाते हैं, उनका एक महत्त्व है और भगवद्धामका अपना प्रभाव है, यह दूसरी बात है। भगवद्धामका प्रभाव अलक्ष्य है। अतिशय श्रद्धालु, भगवत्कृपा-प्राप्त साधक ही उसका अनुभव कर पाता है; किन्तु वह प्रभाव पड़ता सबपर है। सबको पुनीत करता रहता है। व्यक्त लीलास्थान, मन्दिर आदि हमें अपने अधिष्ठाताका स्मरण दिलाते हैं।

अद्वैत वेदान्ती कहते हैं—'वृत्यारूढ़ ब्रह्म ही अविद्या-निवर्तक होकर बन्धनका निवर्तक है ।'

भगवान सर्वव्यापक, सर्वत्र, सर्वस्वरूप हैं, यह सत्य होनेपर भी यह तथ्य है कि जीवका कल्याण तब तक नहीं होता, जब तक भगवान उसके स्मरणके विषय नहीं बनते । स्मृतिमें—अन्तःकरणमें आये भावमय भगवान ही भवसागरमें भटकना निवृत्त करते हैं । अतः भगवत्समृतिका बहुत अधिक महत्व है । इसीलिए उन स्मारकोंका भी बहुत अधिक महत्त्व है जो हमें भगवानका, भगवानकी किसी लीलाका स्मरण कराते हैं ।

इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता कि स्थान, मूर्त्ति, पदार्थ जो कहा जाता है, वह ऐतिहासिक सत्य है या नहीं । अन्तर इससे पड़ता है कि आप श्रद्धा-सहित उसे स्वीकार करके भगवत्स्मृतिमें तन्मय होते हो या नहीं । मीराके समीप जो विषका प्याला भेजा गया था, वह भगवानको भोग लगाकर भेजा गया था ? उसे केवल कहा गया कि—'भगवत्प्रसाद है ।' मीराने इसपर आस्था कर ली । कर ली आस्था और ग्रहण किया, तब उसे भगवत्प्रसादत्व प्राप्त हो गया या नहीं ?

अयोध्याके स्थानोंके सम्बन्धमें आपकी आस्था आपको लाभ पहुँचाती है; किन्तु अयोध्या और सरयूके सम्बन्धमें ऐसी बात नहीं है । उनमें अपना प्रभाव है । वे आस्थाहीनको भी पवित्र करती हैं ।

भगवद्धाम पार्थिव होता है, यह भ्रम है । भगवद्धाम भगवानसे नित्य अभिन्न है, अतः चिद्घन है । वह कालके प्रभावसे परे है । सर्वत्र सर्वरूप भगवानके विद्यमान रहते भी कितने लोग उनका अनुभव कर पाते हैं ? कितनोंको उन सौन्दर्य-माधुर्यैकका सान्निध्य प्राप्त है ? उनके साक्षात्कारके लिए साधना, प्रीति और उनकी अनुकम्पा आवश्यक है या नहीं ?

भगवद्धामका प्रवेश, वहाँका निवास भगवानकी अनुकम्पाके बिना नहीं होता । श्रीसीताराम अनुग्रह करते हैं, तब अयोध्याकी प्राप्ति होती है अत्यधिक उनकी कृपा हो तो महाभाग भक्ति-भावित अन्तःकरण भक्तोंको अयोध्याके नित्य दिव्यरूपका दर्शन भी होता है—अब भी होता है ।

●●●

उपसंहार

अनन्त, अचिन्त्य परमतत्त्वके दो रूप हैं—सगुण एवं निर्गुण । प्रत्येक भाव त्रिविध होता है—आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक । इतना महान अनन्त विश्व-ब्रह्माण्ड जिसका आधिभौतिक रूप है, उसका आध्यात्मिक रूप—अधिष्ठान सत्ता निर्गुण, निष्क्रिय, निर्विकार रूप हो और आधिदैविक रूप न हो, यह सम्भव नहीं है ।

निर्गुण रूप अर्थात् ब्रह्म—अद्वितीय निराकार, निर्विकार, निष्क्रिय है । यह श्रुति-प्रतिपाद्य तत्त्व निर्मल अन्तःकरणसे अनुभव-गम्य होता है ।

जो सर्वेश्वरेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वसञ्चालक है, वह सगुण तत्त्व भी साकार-निराकार उभय रूप है । वह सर्व-सामान्यके लिए अदृश्य होनेसे निराकार ही है; किन्तु वह समस्त विरुद्ध-धर्मैकाश्रय अनन्तकरुणावरुणालय, भक्तानुग्रह-स्वरूप समय-समयपर अवतार धारण करके पृथ्वीपर विविध रूपोंमें प्रकट होता रहता है । अभीप्सु भक्तोंके लिए तो उसकी साकार रूपमें सन्निधि सदा सुगम रहती ही है ।

इस सगुण-साकारकी भी यह अचिन्त्य शक्ति—अकल्पनीय महिमा है कि वह साकार होकर भी ससीम-परिच्छिन्न नहीं होता । वह एक देशमें दीखता हुआ भी देश-कालका आश्रय है । वह देश, कालमें नहीं है । देश, काल ही उसमें भावित हैं ।

इस सगुण-साकारके चार रूप हैं—१. नाम, २. रूप, ३. लीला, ४. धाम, इन चारोंमें कोई न्यूनाधिक नहीं है । किसीका महत्त्व या प्रभाव किसीसे कम नहीं है, क्योंकि ये चार प्रतीत होनेपर भी चार नहीं हैं । परस्पर सर्वथा अभिन्न—यह एक ही तत्त्व है । इनके चार रूपका भेद भी हमारे आपके लिए है । क्योंकि हम भेद-दर्शी हैं । अनादि-कालसे भेदमें ही व्यवहार करते, भेदको ही सत्य माननेके हम अभ्यासी हो गये हैं । अतः हमारे कल्याणके लिए वह अकारण कृपालु अपने ही ये चार रूप व्यक्त करता है ।

इन चार रूपोंमें-से दो-की उपलब्धि हमें शब्दात्मक होती है । लीला

और नाम—इनमें नाम तो नित्य शब्दात्मक है; किन्तु लीला कभी धरापर व्यक्त होती है । कुछ थोड़े अत्यन्त उत्कृष्ट भक्तोंके लिए सब समय भी व्यक्त रह सकती है; किन्तु सर्व-साधारणको उसका शब्दात्मक रूप—श्रवण, पठन, कीर्त्तन, स्मरण ही सुलभ होता है ।

रूप सर्व-सामान्यको अर्चा-विग्रह—मूर्त्ति-रूपमें ही सुलभ है । अन्यथा उसका भी वर्णन ही सुना जा सकता है । स्थूल रूपसे केवल धाम सर्व-सुल है । अतः सुलभता क्रमसे ही उनका वर्णन करें तो प्रथम सबसे दुर्लभ रूपको ही लेना उचित है ।

रूप—भगवान नारायण, श्रीकृष्ण तथा श्रीरामके रूपोंमें किंचित् अन्तर है । भगवान नारायण अतल गम्भीर समुद्रके समान अथवा निर्मल क्षितिजके समान नीलवर्ण हैं । श्रीकृष्णकी नीलिमामें तनिक श्यामता है और उनका शरीर किञ्चित् ह्रस्व है । श्रीरामका शरीर मध्यम प्रलम्ब है और वे तनिक हरिदाभ दूर्वादल-श्याम हैं ।

इनमें तीनों श्रीवत्स-वक्षा एवं कौस्तुभ-कण्ठ हैं । इनके शरीरसे एक दिव्य सुरभि निकलती रहती है—तुलसी-मिश्रित नीलोत्पल सुगन्धिके समान सुरभि । अंगराग, वनमालाकी सुगन्धिसे मिलकर वह और भी अद्भुत हो जाती है ।

श्रीनारायणका, श्रीरामका अथवा श्रीकृष्णका शरीर ज्योतिर्मय है । परम सुकुमार है । इतना सुकुमारकी साक्षात् श्री भी अपने करोंसे चरण-संवाहनमें संकोच करती हैं कि उनके कर-स्पर्शसे उन पदोंको कष्ट होगा । केवल करोंकी कान्तिसे ही पाद-संवाहन सम्पन्न करती हैं ।

शीतल सुधा-स्निग्ध श्रीअंगकी कान्ति जहाँ धोती या उत्तरीयके पीतपटपर पड़ती है, वहाँ वह वस्त्र हरित प्रतीत होता है ।

अरुण-मृदुल चरणातल, करपल्लव एवं अधर, विशाल नेत्रोंका श्वेतांश तनिक गुलाबी, कर एवं पदके नख उभरे, सुचिक्कन, अरुणाभा लिये ऐसे जैसे शशिके खण्डोंसे निर्मित हों । उज्वल दन्तावलीकी कान्ति अधरोंको दुग्धोज्वल कर देती है हास्यके समय ।

कुञ्चित, कोमल, सघन, काली केशराशि, धनुषाकार भौंहें उन्नत भाल,

अतसी-कुसुम-सदृश नासिका, कम्बु-कण्ठ, विशाल वक्ष, घुटनोंसे नीचे तक विशाल भुजाएँ, लम्बे कान, छिपीजत्रु, क्षीण कटि। शोभासिन्धुके एक-एक अंगका वर्णन असम्भव है। जहाँ नेत्र जाते हैं, वहीं रह जाते हैं। कल्पनासे भी मानसमें आया यह रूपक, कल्पित होकर भी भव-रोगका निवारक है। जैसे वृत्त्यारूढ़ ब्रह्म अर्थात् कल्पित ब्रह्माकार-वृत्ति भी अविद्यानाशिका है।

यह रूप दुर्लभ है। धन्य हैं वे जिन्हें स्वप्नमें भी इसका दर्शन होता है। वैसे रूप-दर्शन भी दो प्रकारका है—दिव्य एवं मानस। भावनाकी प्रबलतासे अथवा किसी अन्यके संकल्पसे जो भगवद्रूप दीखता है, वह मानस है। जैसे रावणने अनेक राम-रूप मायासे युद्धके समय प्रकट कर दिये थे। इनमें भी दूसरेके संकल्पसे होनेवाला रूप-दर्शन प्रायः कोई प्रभाव नहीं उत्पन्न करता। अपने भावकी प्रबलतासे होनेवाला मानस-दर्शन भक्तिको बढ़ाता है।

दिव्य भगवद्रूप-दर्शन अर्थात् स्वयं भगवान दया करके प्रकट हों। ऐसा दर्शन हृदयमें हो या नेत्रोंके सम्मुख, मोह एवं लोभको तत्काल नष्ट कर देता है। देहासक्ति, यशासक्तिका, समूल उन्मूलन हो जाता है। अतः अन्तःकरणके सञ्चित का नाश हो जाता है। यह दिव्य दर्शन ही आवागमनके चक्रको समाप्त कर देता है।

धाम—जहाँ तक नित्य भगवद्धामकी बात है, वह तो महाभागवतोंको देहपातके पश्चात् उपलब्ध होता है। धरापर जो भगवद्धाम हैं, वे भी सदा सबके लिए सुलभ नहीं है। बहुथ थोड़े लोग-धामनिष्ठ लोग ही वहाँ जाकर निवास कर सकते हैं। सामान्य व्यक्ति कभी सुयोग होनेपर वहाँकी यात्रा कर आ सकता है।

भगवान भाव-गम्य हैं, अतः उनका धाम भाव-गम्य नहीं है, केवल देह-गम्य हैं। ऐसा मान लेना भ्रम है। धामकी प्राप्ति धाममें निवास धामाधिपतिकी अनुकम्पाके बिना सम्भव नहीं है, यह सबको स्वीकार है। श्रीराम अनुग्रह करें तो अयोध्याकी प्राप्ति हो।

धाम साधन-निरपेक्ष उद्धारक है, यह बात भी सत्य है। क्योंकि नाम, रूप, लीला, धाम परस्पर अभिन्न, हैं, अतः इनकी शक्ति भी समान ही है। अतः नाम-जप अथवा रूप-ध्यानसे जो कुछ भी सम्भव है, धाम-निवाससे भी

वही सम्भव है । इसलिए धाममें निवासमात्र प्राणीके निःश्रेयसके लिए पर्याप्त है ।

भगवद्धाम देश नहीं है । वह देशातीत चिन्मय-तत्त्व है— भाव-गम्य है । अतः धामकी प्राप्ति यह नहीं है कि आप अयोध्याकी भौगोलिक सीमाके भीतर हैं । श्रीराम सर्वव्यापक हैं और वे सदा अयोध्यानाथ हैं अयोध्यामें ही रहते हैं । उनका दर्शन-अयोध्याका आविर्भाव सदा सर्वत्र सम्भव है । अयोध्याके भौतिक क्षेत्रका प्रभाव है—अमित प्रभाव है; किन्तु उसे भी ग्रहण करनेकी क्षमता अपनेमें उत्पन्न करनी पड़ती है । चुम्बक लौहको आकर्षित करता है । आग्नेय शीशेपर सूर्यकी किरणें पड़कर अग्नि उत्पन्न करती है; किन्तु यदि ये किसी आवरणमें हों, इनपर मिट्टीका गाढ़ा लेप लगा हो तो ? इसी प्रकार यदि अज्ञानका प्रगाढ़ आवरण हो तो धामका प्रभाव बहुत देरसे होता है । श्रीरामचरितमानसमें काकभुशुण्डिजीको धामके प्रभावसे श्रीरामभक्ति प्राप्त होनेका वर्णन है; किन्तु कितने जन्म लगे ?

कबनेहुँ जन्म अवध बस जोई ।
राम परायन सो परि होई ।।

-श्रीरामचरितमानस ७।९६।६

लेकिन 'कबनिहुँ जनम' कहनेसे ही यह स्पष्ट है कि 'अवध बसने' मात्रसे उसी जन्ममें जन्म-मरणका चक्र समाप्त हो जाना सर्वथा सुनिश्चित नहीं है ।

'हम चिन्मय भगवद्धाममें हैं ।' यह भाव ही भगवद्धामकी उपलब्धि कराता है । यह भाव सुस्थिर-जागृत रहेगा तो धामकी सम्यक् उपलब्धि होगी । इसकी जितनी विस्मृति रहेगी, उतना ही धामका प्रभाव सक्रिय होनेमें विलम्ब होगा ।

नाम—जैसे कोई रूप ऐसा नहीं है जो भगवद्रूप न हो, वैसे ही कोई नाम ऐसा नहीं है जो भगवन्नाम न हो । भगवान सर्वस्वरूप है । सर्वनामा हैं । वस्तु-रूप ही सम्भव नहीं है जो भगवानसे पृथक् हो ।

'सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत ।
मैं सेवक सचराचर रूप रासि भगवंत ॥'

-रामचरितमानस ४-३

यह 'सचराचर' भगवन्त मिथ्या भावना नहीं है । सत्य यही है । अतः शब्दमात्र भगवन्नाम है । जीव माया-मोहित सो रहा है—स्वप्न देख रहा है । इसके दुःख, इसका जन्म-मरण स्वाप्निक हैं । यह सत्य होनेपर भी सत्य तो यही रहेगा कि 'बिनु जागे दुःख दूर न होई ।' सब कहाँ सो रहे हैं ? सर्वव्यापक सच्चिदानन्दकी गोदसे पृथक् कोई सोनेका स्थान सम्भव है ? लेकिन सो रहे हैं—स्वप्न देख रहे हैं, अतः स्वप्नका दुःख यह संसार चल रहा है अनादिकालसे ।

नाम, रूप, लीला, धामका आश्रय इस स्वप्नको समाप्त करके जगा देनेके लिए है । स्वप्न संस्कारज होते हैं । भावनाएँ ही स्वप्नकी सृष्टि करती हैं । अतः जहाँ रोग है, औषधि वहीं लगनी चाहिये । नाम, रूप, लीला, धाम भी भावनात्मक होंगे तब स्वप्न-भंग करेंगे । इस तथ्यसे कि सब रूप भगवानके, सब नाम भगवन्नाम—किसीका कोई काम नहीं चलता । जिस रूपमें आपकी नैष्ठिकी भगवद्बुद्धि होगी, जिस धाममें आपकी निष्ठापूर्वक भगवन्नाम-भाव होगा, वही रूप, वही नाम आपका उद्धारक बनेगा । भगवद्बुद्धि और उसमें दृढ़ निष्ठा उद्धारका हेतु है ।

रूप भगवान हैं और नाम भगवान नहीं हैं, यह व्यापक भ्रम है । सगुण-साकार साक्षात् श्रीराम और उनके 'राम' नाममें कोई अन्तर नहीं है । अतएव नाम लिया नहीं जाता । स्वयं भगवान नामके रूपमें जिह्वापर पधारते हैं । नामोच्चारण साक्षात् भगवानकी सन्निधि है । नामोच्चारण ही भगवत्प्राप्ति है । यह नहीं हो रहा है, इसका अर्थ है कि नाममें निष्ठा नहीं है । हम नामको भगवान नहीं मानते, भले नामको भगवत्प्राप्तिका साधन मानकर लेते हों ।

नाम साधन नहीं है, साध्य है । वैसे उसे आप साधन मानेंगे तो वह साधन भी है—सर्वश्रेष्ठ साधन; किन्तु यह नामका सम्मान, नामका सदुपयोग नहीं है । नाम साक्षात् भगवान हैं, यह निष्ठा नामका उचित सम्मान है । नाम ही अनुग्रह करके प्राणीको अपनाते हैं, तब उनका उच्चारण मनुष्य

कर पाता है । तब नाममें निष्ठा होती है ।

जैसे किसी प्रकार भी धाममें प्रविष्ट होनेसे धामका प्रभाव पड़ता ही है; किन्तु धाम-निष्ठा, धाम-स्मृतिके बिना उसका फल कालान्तरमें, जन्मान्तरमें प्रकट होता है, ऐसे ही 'भाव कुभाव अनख आलस हूँ ।' नाम-जप, नामोच्चारणका प्रभाव पड़ता ही है; किन्तु उससे प्राणीका परम कल्याण तत्काल नहीं होता । वह प्रभाव निष्फल नहीं जाता, परन्तु विलम्बित होता है ।

नाममें रुचि जन्म-जन्मान्तरके पुण्य-प्रभाव तथा भगवत्कृपाके संयोगसे ही होती है । अतः अत्यन्त सुगम, सर्वसुलभ, होकर भी नामका आश्रय सब नहीं ले पाते हैं । नामकी दुर्लभता इतनी ही है कि उसमें रुचि नहीं हो पाती ।

रूपका दर्शन, रूपका ध्यान सबसे कठिन है । धाममें पहुँचना कठिन होता है । पहुँचकर टिकना कठिन होता है । सबके लिए पहुँचना ही सुगम नहीं है । पहुँचनेपर, बस जानेपर भी धाममें धाम-भावना नहीं रह पाती । उसमें भी सामान्य स्थान बुद्धि बन जाती है । नाममें ये कठिनाइयाँ नहीं हैं; किन्तु नाममें रुचि होना सरल नहीं है । यह बड़े सौभाग्यसे होती है ।

लीला—भगवल्लीलामें साक्षात् सम्मिलत होना तो धाम प्राप्तिसे ही सम्भव है । लीलाका आश्रय तीन रूपोंमें लिया जा सकता है—लिया जाता है— १. लीला-चिन्तन, २. लीलाभिनय-दर्शन, ३. लीला-श्रवण-पठन ।

रूप ध्यानकी अपेक्षा लीला-चिन्तन अधिक सरल है । इसमें मन स्वतः लगा रहता है । मानसिक सेवा भी लीला-स्मरणका ही अंग है । भगवद्भक्तोंने लीला-चिन्तन तथा मानसिक सेवाको बहुत अधिक महत्त्व दिया है; क्योंकि इसमें लगकर आप भगवानकी सन्निधिमें सहज भावसे रह पाते हैं । इसमें वाह्य पदार्थ, परिस्थिति तथा शरीरका स्वास्थ्य भी बहुत कम बाधक बन पाता है ।

इतना सब होनेपर भी लीला-चिन्तनके लिए भावनाशील मानस तो आवश्यक है ही । यह भावना-शीलता सबको कहाँ सुलभ है । यह तो कवि, चित्रकार प्रभृति कलाकारोंकी सम्पत्ति है—भव्य सम्पत्ति । इसका सदुपयोग भगवानके समीप पहुँचा देता है ।

सबके लिए सुगम, चिन्ताकर्षक है लीला-दर्शन । राम-लीला, रास-

लीला आबाल-वृद्ध, नर-नारी सभीका मन आकर्षित करके उतने समय भगवानमें लगानेके उत्तम साधन हैं। इनके द्वारा केवल सात्त्विक मनोरंजन ही नहीं होता, यदि लीलाभिनय-कर्त्ता तथा उनके सञ्चालक सावधान हों, भक्त हों, लीलाको लौकिक मनोरंजनका ही माध्यम न बना दें, आधुनिकतम नृत्य-गानके स्तरपर न उतार लावें तो लीला-दर्शन दर्शकके चित्तमें भगवानकी लीलाका आविर्भाव करनेमें समर्थ है। इससे भक्तिदेवीका अनुग्रह प्राप्त होता है।

इसमें भी सर्व-सुलभता नहीं है। न सर्वत्र लीलाभिनय होता, न सब समय यह सम्भव है। लीलाभिनय श्रम तथा अर्थ-साध्य साधन है। इसके दर्शनके लिए भी समयकी, सुविधाकी अपेक्षा है। यह समय तथा सुविधा भी अत्यल्प लोगोंको उपलब्ध होती है।

सबसे सुगम है लीला-श्रवण। इसके भी दो रूप हैं—कथा-श्रवण तथा लीला-चरितका पठन। कथा-श्रवणमें भी लीला-दर्शनके समान ही कठिनाइयाँ हैं। सबसे सुगम होता है चरित-ग्रन्थका पठन। यह दूसरेकी अपेक्षा नहीं करता। अत्यल्प व्ययमें पुस्तक उपलब्ध होती है और अपनी सुविधाके समय पढी जा सकती है।

स्वयं पढ़नेकी अपेक्षा सम्भव हो तो किसीसे सुनना सदा अधिक भावोत्पादक होता है; किन्तु यह सम्भव न हो तो लीलाका-भगवच्चरितका पठन मनको सहज ही भगवानके चिन्तनमें लगा देता है। हृदयमें भगवच्चरित-चिन्तन चलने लगता है, तब स्वतः भावोद्रेक होता है।

यहीं यह स्पष्ट कर देने योग्य है कि नाम, रूप धामके समान ही लीला भी साक्षात् भगवदात्मिका ही है। इसीसे श्रीमद्भागवत, श्रीरामचरितमानस जैसे ग्रन्थ भगवानके वाङ्मय-विग्रह माने जाते हैं। भगवल्लीला-वर्णनके ग्रन्थ भगवत्स्वरूप ही हैं। उनका भगवद्बुद्धिसे सम्मान करके, उनमें श्रद्धा रखकर उनका श्रवण-पठन करने वाला ही उनका सम्पूर्ण लाभ प्राप्त करता है। वैसे तो उनकी उपस्थिति भी स्थानको पवित्र करती रहती है।

यह श्रीरामचरित मैंने इसलिए प्रारम्भ किया था कि इसके लेखनके बहाने मेरे हृदयमें लीला-चिन्तन चल सकेगा। लीला भी क्योंकि भगवदात्मिका

है, अनुग्रहपूर्वक ही अन्तरमें आती है। मेरे मनका जितना अधिकार था, जितना मैं ग्रहणक्षम था, उतना आविर्भाव हुआ। लीला तो अनन्त है, अनन्त दयामयी है।

यह जिनकी लीला है, वे इसके श्रवण-पठन करने वालोंपर अनुग्रह करते रहेंगे, उन्हें स्वजन स्वीकार करते रहेंगे, ऐसी मेरी आस्था है।

श्रीराम चरित उत्तर खण्ड सम्पूर्ण

●●●●●●